









151440



151440

051 2 35







151440



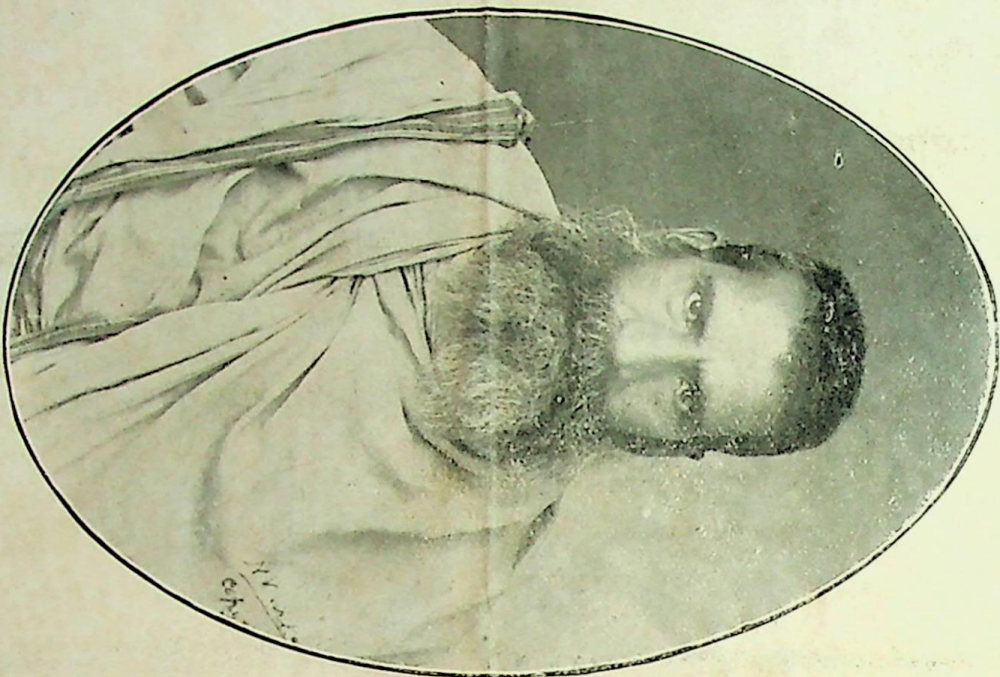




151440



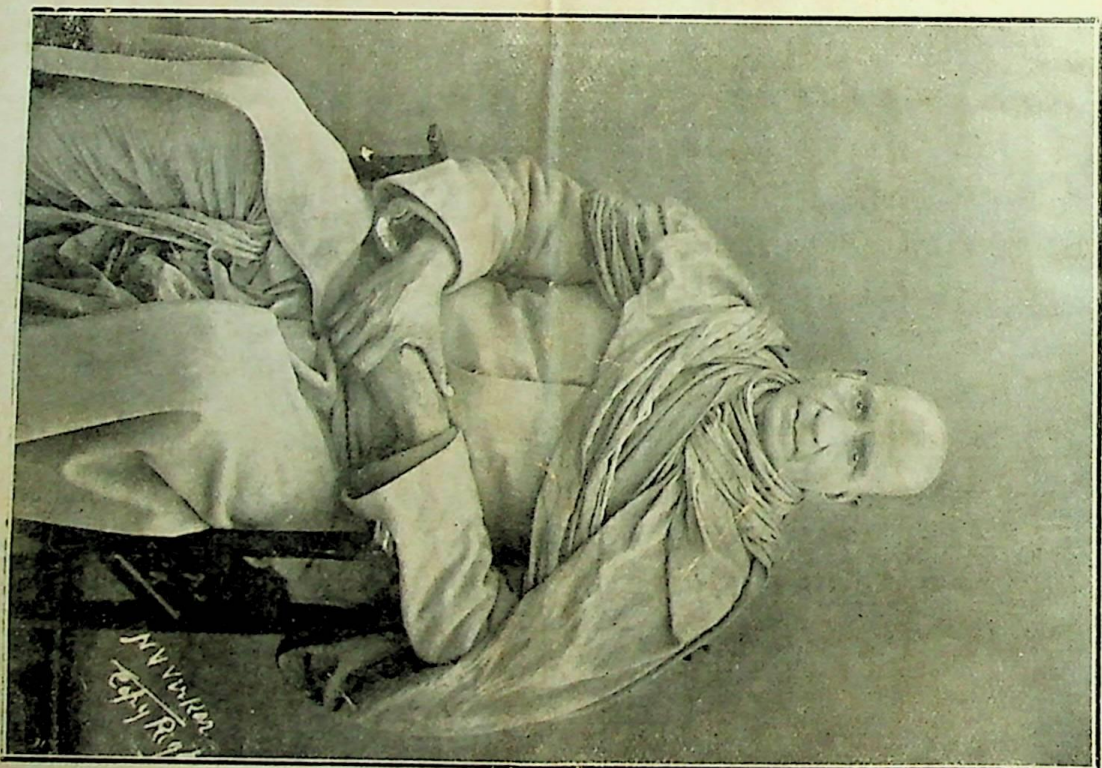
## धर्मवेदी पर



श्री० महात्मा मुनशी रामजी.  
(पूर्वाश्रममें)

(भा०सु०औ०व.)

## बलिदान ।



श्री० स्वा० श्रद्धानंदजी महाराज.  
(सन्धासाश्रममें)

फोटोग्राफर- श्री. ना. वि. वीरकर मुंबई.



वर्ष ८

अंक १

क्रमांक ८५



151440

पौष

संवत् १९८३

जनवरी

सन १९२७

# वैदिकधर्म

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर .

स्वाध्यायमंडल, औंध ( जि. सातारा )

मातृभूमिसे सुखप्राप्ति ।

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।

दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम॥ ६२ ॥

अथर्व. १२। १

हे मातृभूमि ! हम ( ते प्रसूताः ) तेरेसे उत्पन्न अर्थात् तेरे पुत्र हैं अत एव ( उप-स्थाः ) तेरी गोद अर्थात् आश्रय स्थान के सब पदार्थ ( अस्मभ्यं ) हम सब के लिये ( अनमीवाः ) आरोग्यकारक और ( अयक्ष्माः ) रोगरहित होवें । हमारी ( आयुः दीर्घं ) आयु दीर्घ होवे । और हम सब ( प्रतिबुध्यमानाः ) उत्तम ज्ञानी बनकर ( तुभ्यं ) तेरे लिये ( बलि-हृतः ) अपनी बलि देनेवाले ( स्याम ) होवें ।

( १ ) मातृभूमिसे उत्पन्न होनेवाले सब पदार्थ वहां के रहनेवालों को ही मिलें, तथा ( २ ) वे पदार्थ आरोग्य बढ़ाने वाले, नीरोगता करनेवाले और पुष्टि करनेवाले हों । ( ३ ) इस प्रकार वहां के सब लोग पुष्ट नीरोग बलवान और दीर्घायु होकर अपने सर्वस्वका बलि मातृभूमिके सन्मुख अर्पण करने के लिये उद्यत हों । ( ४ ) इस प्रकार की अवस्था जिस देशमें होगी वही देश सुखसे युक्त होगा ।

14,VED-D



151440



## संसार--व्यापी योग ।

### ( १ ) योग का भय ।

‘योग’ शब्द का उच्चार करते ही मनुष्य के मन में एक प्रकार का भय उत्पन्न होता है। इस का कारण यह है कि लोग योग के सम्बन्धकी सच्चा-सच्चा बातें नहीं जानते। इसी लिए इस लेख में बतलाना है कि योग सम्पूर्ण संसार में किस प्रकार समाया है।

### ( २ ) योग शब्द का अर्थ ।

‘युज’ धातु का अर्थ है ‘जोड़ना’। इसी धातु से ‘योग’ शब्द बना है। इसी से ‘योग’ शब्द का धात्वर्थ है ‘जोड़ना, दो पदार्थों को मिलाना, दोनों में दृढ़ सम्बन्ध कराना’। यही अर्थ योगसाधन में है और उसका भाव है ‘जीवात्मा तथा परमात्मा का मीलन’।

### ( ३ ) वैद्य तथा योगी ।

योगशास्त्र में जैसा योग शब्द है वैसा ही वह वैद्यशास्त्र में भी है। वैद्यशास्त्र में योग शब्द का अर्थ है ( १ ) औषधि, ( २ ) औषधिद्रव्य, ( ३ ) उपाययोजना, ( ४ ) शरीर की स्थिरता का उपाय, शरीर का बल बढ़ाना, दीर्घ आयु प्राप्त करना तथा बुद्धिका विकास होकर आरोग्य प्राप्त होना इत्यादि सिद्धियों के उपाय’। वैद्यशास्त्र के ज्ञाता औषधियोजना कर जैसे शरीर-स्वास्थ्यका साधन करते हैं उसी तरह योगी आसन, प्राणायाम, ध्यान, भावनास्थिरीकरण वा जप आदिसे वही कार्य साधते हैं। वैद्यराज बाहर की औषधि से शरीर में समता उत्पन्न करते हैं। और योगी लोग, यह जानकर कि शरीर में होने वाले हेर फेर मनकी

भावना से ही होते हैं, मनकी नियमित भावनाओं से शरीर में समत्व रखते हैं। दोनों का उद्देश एकही है; एक बाह्य साधनों की सहायता लेता है, दूसरा अन्तः शक्ति की जागृति करता है।

यदि यह बात पाठकों की समझमें आ जाय तो वे जान सकते हैं कि बाह्य साधनों से ‘काया सिद्धि’ या ‘वज्रकाया, करने की अपेक्षा अन्तः साधनों से वह कार्य सिद्ध करना अधिक श्रेष्ठ है। इस का उत्तम उदाहरण यह कि अपने देश के शत्रु को भगाने के लिए अन्य देशोंकी सेना को बुलाने की अपेक्षा स्वतः की शक्ति बढ़ाकर शत्रु को भगाना सदैव अधिक हितकारी है। क्योंकि शत्रु को भगाने के लिए जो बाहरी सेनाएँ आवेंगी वे ही यदि स्वदेशमें जम गईं तो उन्हें किस प्रकार निकालेंगे? राजनैतिक दृष्टिसे यह बड़ा भारी संकट है। इसीसे देशके नेता अन्तःशक्ति बढ़ाने पर जोर देते हैं और उसी को बढ़ाने की चेष्टा करते हैं।

यही भेद औषधि के उपयोग से आरोग्य प्राप्त करने में और योगसाधन से स्वास्थ्य बढ़ाने में है। वैद्य-प्रक्रिया में जो औषधिसेवन करना आवश्यक होता है वे औषधियाँ शरीर में विघातक कार्य भी करती हैं। इस विघातक कार्य का प्रतिकार करने के लिए दूसरे उपाय करने पड़ते हैं। इस प्रकार का कष्ट योगसाधन की अन्तःशक्ति की वृद्धि करने में नहीं रहता। जितनी अपनी शक्ति बढ़ेगी उतना लाभ बेखटके मिलेगा।

वैद्य की औषधियोजना में बाह्य औषधि को तथा योगी के अन्तःशक्ति की वृद्धि के साधनों में मानसिक भावना की साधना को प्रधानता है।



यह निःसंदेह है कि स्वास्थ्यके लिए इन दोनों साधनों का उपयोग कर सकें, तो उनके यथोचित प्रमाण में काममें लानेपर अनेक लाभ होंगे । यह सिद्ध होने के लिए वैद्यराज को योगशास्त्र का ज्ञान चाहिए और योगी को वैद्यशास्त्र सीखना चाहिए ।

## ( ४ ) 'वैद्य' योगी और योगी 'वैद्य' ।

हमारा मत है कि वैद्यशास्त्र तथा योगशास्त्र की शिक्षा साथही दी जावे तो जनता की अधिक भलाई होगी । वैद्यक पाठशालाओं में, आर्यागल वैद्यकशालाओं में वा मेडिकल कालेजों में योगशास्त्र आवश्यक विषय होना चाहिए । इस बात को हम ही पहली बार नहीं कहते । योगशास्त्रकार पातञ्जली मुनि स्वयं अच्छे योगी और अच्छे ध्रुवन्तरी वैद्य थे । अश्विनीकुमार स्वतः प्रसिद्ध प्राणायामका अभ्यास करने वाले योगी और औषधि चिकित्सक तथा शस्त्र-वैद्य थे ।

वैद्यको सम्पूर्ण शरीर के स्नायु, धमनी, मज्जाकेंद्र तथा अस्थि आदिका पूर्ण ज्ञान होना चाहिए । इसी तरह योगी को भी इन बातों का ज्ञान होना आवश्यक है । इतनाही नहीं, योगीको सूक्ष्म मज्जाकेंद्र ( नर्व्हस सेन्टर्स ) का ज्ञान और उनके द्वारा शरीर को मन किस प्रकार वश में रखता है इसका ज्ञान अधिक होना जरूर है । इससे स्पष्ट होगा कि शिक्षाके समय योगी और वैद्य मिल जाँय तो जनता का भारी हित होगा ।

## ( ५ ) तुलना ।

योग मार्ग में सब जोर स्वावलम्बन पर है । तब यदि यह कहें कि परावलम्बन के कष्ट इसमें नहीं हैं, तो अत्युक्ति न होगी । इसके समझाने के लिए कुछ उदाहरण लेवेंगे । ( १ ) योगसाधन का ' बस्ति ' अंतडियों का बल बढ़ाता है और नुकसान कुछ भी नहीं करता; यह हाल डाक्टरों के बस्ति ( एनिमा ) का नहीं है । डाक्टरी बस्ति ( एनिमा ) से अंतडियों की शक्ति क्षीण होती है । इसी से कई बार

इस बस्तिसे ( एनिमासे ) हानि होती है । वैद्यों का बस्ति विधि डाक्टरोंके बस्ति से अच्छा है किन्तु उससे भी अधिक अच्छा है योगसाधन का बस्ति ।

युरोपीयन तथा अमेरिकन डाक्टरोंने जिसका प्रचार किया है वह रबर का बस्ति ( एनिमा ), हातसे दबाने का बस्ति, वा अंतःस्नान का बस्ति आदि सब कनिष्ठ हैं । वैद्यों के बस्ति का तत्त्व ही भिन्न है इससे हम उसकी गणना मध्यम वर्ग में करते हैं, किन्तु योग का बस्ति इन दोनों में श्रेष्ठ है इससे वह सर्वश्रेष्ठ है । आजकल कोई कोई समझते हैं कि डाक्टरी बस्ति वैद्यकी बस्ति तथा योगिक बस्ति एक ही है किन्तु यह उनकी भारी भूल है ।

यदि लोग समझ सकें कि जो हाल बस्तिका है वही अन्य उपायों का भी, तो वे जान लेंगे कि मनुष्यका आरोग्य बढ़ाने के लिए योगसाधन कैसा लाभदायक है । ' योगचिकित्सा ' नामक योग का अत्यन्त महत्व का भाग है । वह वैद्यक की औषधी-चिकित्सासे अधिक लोगोपयोगी है । इसका विचार स्वतन्त्र रीतिसे आगे किसी लेख में करेंगे । औषधि देकर रोग मिटाने के लिये जिस प्रकार वैद्य को यह जानना आवश्यक है कि अमुक रोग शरीर के अमुक भाग में अमुक रूप में है; उसी तरह योगी को भी जानने की आवश्यकता है । दोनों रोग के रूप का ज्ञान समान ही रहता है किन्तु उपाय योजना भिन्न है । यदि योगी ' वैद्य ' वा वैद्य ' योगी ' होने से जैसे लोगों की भलाई होगी वैसे उन दोनों में बिगाड वा भिन्नता होनेसे नहीं हो सकती । इसी लिए इस लेख के द्वारा हमारा डाक्टर, सर्जन तथा वैद्यसे कथन है कि वे परस्पर एक दूसरे के शास्त्र का परिचय कर लें और उपाय योजना मिलकर करें ! यह बात सिद्ध हो चाहे न हो, हमें यहाँ केवल इतनाही कहना है कि योगशास्त्र वैद्यशास्त्र की अपेक्षा अधिक निरुपद्रवी तथा अधिक उपयोगी है । इससे जो लोग आरोग्य की इच्छा करते हैं उनको इस शास्त्र की और ध्यान देना परम आवश्यक है ।



## ( ६ ) सार्वत्रिक योगशिक्षा ।

एक समय ऐसा था कि जब आयौ के शिक्षा-क्रम में योगशास्त्र को आवश्यक विषय के नाते स्थान था और वह विद्यार्थियोंको सिखाया भी जाता था। कोई भी कार्य का आरम्भ, ' आसन और प्राणायाम ' करने के पश्चात् ही, करने की प्रथा ऋषि-काल से आज दिन तक बेखटके चली आई है। यदि लोगों को अनुभव न होता कि योगसाधन से सबको लाभ है, तो सब धार्मिक कार्यों में आसन और प्राणायाम को न रखा होता। जो बात उपयोगी होती है वही सर्व साधारण में फैल जाती है। इससे रूढ़ प्रथा से एक ही बात का अनुमान कर सकते हैं कि आसन प्राणायाम आदि योग-साधनों से सब को लाभ हो सकता है।

## ( ७ ) योगका व्यापक प्रयोग ।

इसका दूसरा सबूत यह है कि ' योग ' शब्दका ' प्रयोग, हर जगह है। जिसका लोगों को अधिक उपयोग होता है उसीका शब्द अधिक चल पड़ता है। भाषामें शब्द प्रयोग का यही नियम है। " प्रयोग " शब्द का " उपयोग " बहुत ही अधिक है। जैसे, रासायनिक-प्रयोग, यान्त्रिक प्रयोग, औषधि का प्रयोग आदि। इन शब्दों में उन बातों का ' प्रकर्ययुक्त योग ' ही है। कोई भी ' प्रयोग ' करने के लिए विविधवस्तुओं का ' संयोग ' करना पड़ता है। कुछ प्रयोगों में विविध पदार्थोंका ' वियोग ' करना आवश्यक होगा। किन्तु इन सब में ' योग ' सामान्य ही है।

पुरुषार्थी लोग उद्योग ' उत्-योग ' अर्थात् उत्कृष्ट दशा को पहुंचने का ' योग ' ही करते हैं। और पुरुषार्थ की पराकाष्ठा कर उद्योग से अपने भाग्य का ' सुयोग ' करते हैं। इसी पुरुषार्थ के मार्ग से सब का ' योग-क्षेम ' होता है।

प्रश्न पूछना, चिकित्साबुद्धि से नवीन युक्ति खोज कर निकालना, मार्मिक टीका टिप्पणि करना, मन को एकाग्र करना आदिको संस्कृत में ' अनुयोग ' नाम है। सब लोगों को यह अनुकूल योग है इसी लिए ' अनुयोग ' कहते हैं।

शत्रुपर हमला करने को ' अभियोग ' कहते हैं। अदालत में वकील द्वारा मुकदमा चलाने को भी ' अभियोग ' कहते हैं। वकीलके ' अनुयोग ' में प्रवीण होने ही से वह गवाहों की जिरह अच्छी तरह करा अपने पक्षकार को बचा सकता है।

राजनैतिक कार्यक्षेत्र में भी कभी कभी ' सहयोग ' के साथ ' प्रतियोग ' रह सकता है। इसे राजनैतिक भाषामें ' प्रतियोगी सहकारिता ' कहते हैं। वास्तव में यह ' असहयोग ' ही है पर वह कुछ शर्तों पर किया जाता है इससे उसे प्रतियोगी सहकार कहते हैं।

विपक्षी जब अर्थहीन तथा अयुक्त बातें कहने लगता है तब उसकी बकबक को ' नियोग ' कहते हैं। जिस में कुछ योजना ही नहीं होती उसे ' नियोग ' कहते हैं।

जब कहीं जाना होता है तब शुभ मुहूर्तपर गमन किया जाता है। इस मुहूर्त को ' अधि - योग ' कहते हैं। निश्चित समय पर निश्चित काम करने को ' आ - योग ' कहते हैं।

स्व - पति से जो संतति होती है उसे ' स्व-योग संतति ' कहते हैं। नियोग विधि में स्वकीयों की आज्ञासे अन्य पुरुष से सन्तान उत्पन्न होती है उसे ' नि - योग संतति ' कहते हैं। पाण्डवों के समय यह प्रथा थी, वर्तमान समय में नहीं है।

कोई भी बात की सीमा हो जानेपर उसे ' अति-योग ' कहते हैं। इससे उत्तम ' योग ' का भी ' अति-योग ' न होना चाहिए। यह सिद्ध करने के लिए कि ' योग ' सर्वव्यापी है उपरोक्त शब्दों का मनन काफी है। पाठकों को स्पष्टतया विदित हुआ होगा कि भाषामें सब स्थानों में तथा सब व्यवहारों में अनेक रूपों से ' योग ' शब्द आता है, वह सर्वत्र ' योग ' की उपयोगिता ही बतलाता है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीभगवद्गीता में कहते हैं—

## ( ८ ) समता तथा कुशलता ।

समत्वं योग उच्यते ॥ भ. गी. २। ४८

योगः कर्मसु कौशलम् ॥ भ. गी. २। ५०

' समता ही योग है तथा कर्म करने की चतुराई को ही योग कहते हैं। '



‘समता और कौशल्य योग ही हैं। किस स्थान में इन दो गुणों की आवश्यकता नहीं होती? मनुष्य मात्र के लिए जितने पुरुषार्थ के काम करने की आवश्यकता है उन सब में समता और कौशल्य दोनों की आवश्यकता है।’ इस बात के समझते आपको तुरन्त ज्ञात होगा कि योग सम्पूर्ण संसार में किस प्रकार समायामा है।

## ( ९ ) सर्वांगीण उन्नति ।

योग यद्यपि सर्वव्यापी है तब भी इस सूक्ष्म तथा व्यापक योग की अपेक्षा योग शास्त्र का योग विशेष महत्वका है। इस अष्टांग योग से तेजस्वी बना हुआ शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा आत्मा की गति चाहे जिस शास्त्रमें सहजही में हो सकती है। इसके लिए उदाहरण भगवान् श्रीकृष्णजी का ही है। श्री-

कृष्णजी ‘योगेश्वर’ वा योगीराज थे। वे तत्त्वज्ञानियों में तत्त्वज्ञानी थे, वीरों में वीर थे, मल्लों में मल्ल, राजनीतिज्ञों में राजनीतिज्ञ, वक्ताओं में वक्ता, गृहस्थों में गृहस्थ, ब्रह्मचारियों में कड़े ब्रह्मचारी और धर्मशास्त्रज्ञों में श्रेष्ठ धर्मशास्त्रज्ञ थे। इससे पता चलता है कि योग के कारण बुद्धि किस प्रकार सर्वव्यापी होती है तथा मानवी शक्ति का विकास होकर वह दैवी शक्ति किस प्रकार बनती है।

इस प्रकार योग साधन अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ। इसीसे सब लोगों को आवश्यक है कि इस ओर पूर्ण ध्यान दें जिस से उन्हींका भला होगा। यह निस्संदेह है कि इससे किसी भी प्रकार की हानि तो होती ही नहीं; कुछ न कुछ लाभ अवश्यही होता है।

# छूत और अछूत ।

## २ बौद्ध धर्म ।

करीब सवा दो हजार वर्ष पहले हिन्दु-स्थान में जातिभेद तथा हिंसा सीमा को पहंची। इन दोनों दोषों को निकालकर उनके स्थान में समता तथा अहिंसा के धार्मिक गुणोंकी स्थापना करने के उद्देश्य से भगवान् बुद्ध ने बौद्ध धर्म चलाया। इससे इस धर्म में सब प्रकार के नीति-बंधनों में इन्ही दो गुणों को अग्रस्थान मिला। सब जीवोंपर आत्मवत् दृष्टि रखना उन्हें किसी भी प्रकार से दुःख न देना और सारी मनुष्य जाति में जो निसर्गतः बन्धुभाव है उसे अपने आचरण में लाना आदि सदगुणों को ही इस धर्म में प्रधानता दी गई है। इसी लिए अल्पकालमें इस धर्म का प्रसार अधिक हुआ। और जहां जहां यह धर्म

पहुंचा वहां के मूल धर्म का इसने उच्छेद किया। इस धर्म में ऐसी समता है, इसी लिए उसमें छूत अछूत जैसे संकुचित भाव नजर नहीं आते। इसी लिए बुद्धजी के कुछ उपदेशों का विचार करें।

एक समय बुद्धजी को मारका दर्शन हुआ। उन्होंने ने बुद्धजी से कहा कि ‘आजसे सात दिन बाद तुम्हें सारे संसार का राज्य मिलेगा।’ यह सुन बुद्धजी बोले:-“But it is not now sovereignty that I desire. I will become a Budha and make all the world shout for joy.”

( अब मुझे राज्यपद की इच्छा नहीं है, मैं बुद्ध होऊंगा और ऐसा कार्य करूंगा जिससे सारा संसार आनंद के लिए तत्पर होगा। )

कल्याणो धम्मो, अ० ९४। ३



इस वाक्य से विदित होता है कि गौतम बुद्धजी की इच्छा यही थी कि 'मेरा धर्म सारे संसार के लिए है।' इस इच्छा से मालूम होता है कि किसी भी जाति के, किसी भी देश के वा किसी भी रंग के लोग क्यों न हों; वे इस धर्म में आवें, और उन्हें निर्वाण पद प्राप्त हो।

सब मनुष्यों की उत्पत्ति एक ही तत्त्व से है, इससे वे सब एकसे हैं। बौद्ध धर्म उन सबको समान ही मानता है। जिस प्रकार वर्षा सब पर एकसा बरसती है, उसी प्रकार बुद्धजी सब पर एकसा प्रेम-भाव रखते हैं। क्याही बड़ी बुद्धजी की समता है! उस महात्मा के उदार हृदय में यह भाव ही न था कि अमुक जातिके लोग उच्च और अमुक के नीचे हैं। इसी प्रकार: —

"Well then, we agree that the flame of to day is in a certain sense the same as the flame of yesterday; and in another sense it is different at every moment. Moreover, the flames of the same kind, illuminating with equal power the same kind of rooms, are in a certain sense the same." (41)

"Yes, Sir," replied Kutadanta. (42)

The blessed one continued; "Now, suppose, there is a man, who feels like you, thinks like you, and acts like you, is he not the same man as you?" (43)

"Dost thou deny that the same logic holds good for thyself that holds good for the thing of the world!" (45)

(अच्छा, तो अब यह निश्चय हुआ कि कलकी दीपज्योति और आजकी दीपज्योति कुछ बातों में एक ही है, तथा दूसरी रीति से देखें तो प्रत्येक क्षण में वे भिन्न हैं। एक ही प्रकार की दीप-ज्योतियां, एक प्रकारसे एक ही कमरे को प्रकाशित करती हों, तो वे सब एक हैं।

"जी हां महाराज" कूटदंतने कहा।

तदनन्तर बुद्धदेव बोले "अब ऐसी कल्पना करो कि एक मनुष्य है, जिसकी भावना, विचार तथा काम भी तुम्हारे समान हैं तो क्या वह मनुष्य तुम्हारे समान नहीं है?"

'तर्क का जो प्रमाण संसार की दूसरी वस्तुओं के लिए कामयाब होता है वही तुम्हारे लिए भी काम-याब है। क्या तिसपर भी तुम कबूल नहीं करते?'

कल्याणी धम्मो अ. ५३

दीप में तेल, बत्ती, बर्तन तथा अग्नि, इतनी वस्तुएं रहती हैं। सब दीपों में इतने ही पदार्थ रहते हैं, इसी लिए सब दीप समान हैं। उसी प्रकार मनुष्य में शरीर, मन, बुद्धि आदि रहते हैं; वे सब मनुष्यों के लिए समान ही रहते हैं, इसी लिए सब मनुष्य समान हैं। एक ही कमरे में दस दीप हों तो उन में से हर एक की जाति जिस प्रकार भिन्न नहीं होती उसी प्रकार जगत् रूप कमरे में सब मनुष्य दीप हैं। शरीर रूप वर्तन में मन रूप तेल छोड़कर उसमें बुद्धिरूप ज्योति सिलगाई है। इस लिए सब मनुष्यों को समान समझो।

"Now, suppose," added the Blessed One, "that a man should come hither to the bank of the river, and, having some business on the other side, should want to cross, do you suppose that if he were to invoke the other bank of the river to come over to him on his side, the bank would come on account of his praying?" (18)

Yet this is the way of the Brahmanas. They omit the practice of these qualities which really make a man a Brahman, and say, 'Indra, we call upon you, Soma, we call upon you; Varuna, we call upon you; Brahma, we call upon you.' Verily, it is not possible that these Brahmanas, on account of their invocations prayers and praises, should, after death, be united with Brahma"



( अब कल्पना करो कि एक मनुष्य नदी के किनारे गया। उसे किसी काम के लिए उस पार जाना है। तब वह यदि प्रार्थना करे कि, हे किनारा, तू मेरी ओर आ, तो क्या वह उस पार का किनारा उसकी प्रार्थना के कारण उसके पास आ जावेगा? बस, इसी प्रकार के ब्राह्मणों के मार्ग हैं। वे उन गुणों को नहीं अपनाते जिनके कारण मनुष्य ब्राह्मण बनता है। किन्तु वे कहते हैं, हे इन्द्र? मैं तेरी प्रार्थना करता हूँ; हे सोम? मैं तेरी प्रार्थना स्तुति करता हूँ; हे वरुण! मैं तुम्हें बुलाता हूँ; हे ब्रह्म। मैं तुम्हारे गुण गाता हूँ।' परन्तु यह कहना व्यर्थ है कि ऐसा करने से मरने के पश्चात् उन्हें ब्रह्म की प्राप्ति होगी, या वे ब्रह्म में लीन हो जावेंगे। )

कल्याणो धम्मो अ. ४९

उपर्युक्त वचन में कहा है कि वही मनुष्य ब्राह्मण बन सकता है जिसमें कोई खास गुण हो। इससे स्पष्ट विदित होगा कि भगवान् बुद्ध जन्मपर से ब्राह्मणत्व मानने के पक्षपाती नहीं थे। बरन् वे गुणतः ब्राह्मणत्व को मानते थे। पहले महा-भारतका एक वचन आ गया है जिस में कहा है कि किसी भी जाति का मनुष्य क्यों न हो उसमें यदि वे विशेष गुण विद्यमान हैं तो उसे ब्राह्मण समझना चाहिए। बराबर इसी अर्थ का यह भगवान् बुद्ध का वचन है। यह स्पष्ट है कि जो लोग गुण कर्मों से ऊँच नीच पहिचानते हैं वे किसी भी व्यक्ति को उसकी जाति के कारण अछूत न समझेंगे। और भी देखिए:—

आगे लिखे लेखांश से ज्ञात होगा कि भगवान् बुद्ध की अन्त्यज—बहिष्कृत जाति या बहिर्जाति ( Out-cast ) के विषय में क्या धारणा थी—

“When Bhagawant dwelt at Shravasti in the jetavana, he went out with his alms-bowl to beg for food and approached the house of a Brahman priest while the fire of an offering was blazing upon an altar. And the priest said-

Stay there, O Shovelings, stay there, O Wretched Shramana, thou art an outcast.”

The Blessed one replied: “Who is an out-cast. ? ” ( 2 )

“An out-cast is the man who is angry and bears hatred; the man who is wicked and hypocritical, he who embraces error and is full of deceit. (3)

Whosoever is a provoker and is avaricious, has sinful desires, is envious, wicked, shameless, and without fear to commit sins, let him be known, as an outcast. “Not by birth does one become an out-cast, not by birth does one become a Brahman; by deeds one becomes an out-cast.

( एक समय भगवान् बुद्धदेव जब कि वे श्रावस्ती में रहते थे, हाथ में भिक्षा-पात्र ले एक ब्राह्मण के घर भोज्य मांगने गए। उस समय ब्राह्मणकी घर की वेदीपर हाल ही में हवन हुआ था, इससे अग्नि जलती थी। भगवान् बुद्ध को देखकर ब्राह्मण बोला — ‘ऐ मुंड? ठहरो। ऐ भिखारी श्रमण? दूर खड़े रहो। तुम बहिष्कृत हो।’ यह सुनकर बुद्धदेव बोले: — बहिष्कृत कौन है? जो क्रोधी, द्वेष करने वाला, दुराचारी, ढोंग करनेवाला, प्रमादी, ठगने-वाला, दुःख देनेवाला, स्वार्थी, पातकी, निर्लज्ज, हो वही बहिष्कृत है। जन्मसे कोई भी बहिष्कृत नहीं रहता और जन्मसे कोई भी ब्राह्मण नहीं है। मनुष्य अपने आचरणहीसे बहिष्कृत होता है तथा अपने कर्मों से ब्राह्मण होता है। )

— कल्याणो धम्मो. अ० ७५

इसमें स्पष्ट रीतिसे कहा है कि जन्मतः कोई भी अछूत नहीं है। बहिष्कृत या अछूत जाति कोई है ही नहीं। प्रत्येक मनुष्य सदाचार ही से ऊँच और दुराचार ही से नीच बनता है। इससे स्पष्ट होता है कि बुद्धदेव को जाति भेद, अंत्यजों का बहिष्कार आदि धार्मिक अत्याचार पसंद न थे। इसी कारण



बुद्धजीने अपना धर्म संसार में फैलाने की चेष्टा की। ब्राह्मण के धर्म में जातिभेद और छूत अछूत है इस लिए उन्होंने अपना धर्म संसार में फैलाने की चेष्टा नहीं की, और जब तक यह दोष इस धर्म में रहेगा तब तक हिन्दू धर्म के लोग दूसरों को अपने में शामिल नहीं कर सकते। अस्तु। बुद्धदेव सदाचार को कैसा महत्व देते थे निम्न लिखित वचन से स्पष्ट होता है:—

“ If any man, whether he be learned or not, considers himself so great, as to despise other men, he is like a blind man holding a candle, blind himself, he illumines others.” ( धम्मपद अ० ३ )

“ To repeat a thousand words without understanding, what profit is there in this? But to understand one truth and hearing it to act accordingly, this is to find deliverance.” ( धम्मपद अ० १६ )

“ But the disease of all diseases, than which none is worse, is ignorance.”

( धम्मपद अ० २६ )

( खुद अज्ञानी रहते हुए जो दूसरों को तुच्छ समझता है और आप अपने को उच्च समझता है वह दिया लेकर चलनेवाले अंधे के समान है। अर्थात् खुद अंधा होते हुए भी दूसरों को रास्ता बतलाने की घमंड रखता है। सैकड़ों ग्रंथ मुख्यात्र हों तब भी उससे लाभ कुछ नहीं है। जितना सत्यज्ञान समझमें आवेगा उसके समान यदि आचरण हो तभी मुक्ति प्राप्त होगी। अज्ञान सब रोगोंमें बड़ा रोग है )

उपर्युक्त उद्गार उस समय के रटंत विद्या के पक्षपाती ब्राह्मणों के संबंध में कहे गए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि बुद्धदेव के विचार से उन नीच जाति के लोगों की योग्यता अधिक थी, जिनका ज्ञान ग्रन्थ रटनेवाले ब्राह्मणों से कम होने पर भी उसी ज्ञान के अनुसार उनका आचरण था। निम्न लिखित लेखांश से विदित होगा कि उनके श्रमण तथा भिक्षुओं के चुनाव का तत्त्व जाति नहीं था किन्तु

गुण - कर्म था। देखिए—

“ Who is Shramana? Not he who is Shaven per force, who speaks untruth, and covets possession, or who is slave of desire like the rest of men; but he who is able to put an end to every wicked desire, to silence every personal preference, to quiet his mind and to put an end to thought. This man is called a Shvamana. And who is called a Bhikshu? Not he who at stated times begs his food; not he who walks unrightously ( heretically ), but hopes to be considered a disciple, desiring to establish a character (as a religious person), and that is all; but he who gives up every cause ( karma ) of guilt and lives contently and purely, who by wisdom is able to crush every evil, this man is a true Bhikshu.”

“ जो सिर मुड़ाता है और दुराचार से रहता है, वह श्रमण नहीं, किन्तु श्रमण उनको समझना चाहिए जो मन की दुष्ट भावनाओं को तथा स्वार्थ की इच्छा को त्याग देता है और शुद्ध आचरण से रहता है। इसी प्रकार भिक्षु वह नहीं जो नियमित समय पर भीख मांगता है और सब प्रकार के दुष्ट कर्म करता है, किन्तु वह जो किसी भी प्रकार का बुरा कर्म नहीं करता। )

इससे साफ रीतिसे मालूम हो जाता है कि भगवान् गौतम बुद्ध को जाति के कारण मनुष्यों को अपना पसंद न था बल्कि गुणों के कारण अपनाना ही पसंद था। जिसके धर्म में जातिभेद ही नहीं है उसके धर्म में छूत अछूत हो ही नहीं सकती।

वर्तमान समय के बौद्ध धर्मावलम्बी लोग हिन्दुओं के सहवास के कारण जाति भेद के बंधनों को मानते हैं और किसी किसी को अछूत समझ कर दूर भी कर देते हैं परन्तु इस प्रकार का उपदेश भगवान् बुद्धने किसी भी स्थान में नहीं किया। भगवान् बुद्ध ने अपनी शुद्ध वाणी से समता का



ही उपदेश किया, और वह लोगोंने कुछ शताब्दियों तक माना भी। परन्तु आगे चलकर समयने पलटा खाया और पहले की प्रथाने अधिक जोर पकड़ा। इससे अंत्यज हमेशाके लिए अछूत समझे गए और आज कई शताब्दियों से उन्हें अछूत ही रहना आवश्यक हुआ है। भगवान् बुद्धने एक स्थान में कहा है "where there is much suffering there is also great bliss."

(जहां कहीं दुःख अधिक हो जाता है वहां सुख भी अधिक होता है।) उनकी इस दैवी वाणीके अनुसार अभ्यज आदि अछूत तथा बहिष्कृत जातियों ने जो हजारों सालों से दुःख भोगा है उसके बदले में उन्हें मिलनेवाला सुख जल्द मिले और उनके द्वारा सामाजिक उच्च कर्तव्य होवें। यह हमारी इच्छा है। यहां हम बौद्ध धर्म का विचार खतम करते हैं।

— ० —

## भारतीय समाज शास्त्र की आधार शिला।

वर्ण व्यवस्था के शास्त्रीय आदर्श।

२

(लेखक०—प्र० स्ना. धर्मदेव सिद्धांतालंकार विद्यावाचस्पति, आचार्य गुरुकुल, मुलतान.)

ब्राह्मणों के गुण कर्तव्य और अधिकार—

समाज की अधिक से अधिक बुराइयां स्वयं दूर हो जाय यदि लोग अधिकारों के पीछे न मरकर कर्तव्य पर विशेष दृष्टि रखें। जब से लोगों ने कर्तव्य की उपेक्षा करते हुए स्वार्थ बुद्धिसे प्रेरित होकर अधिकारों पर विशेष दृष्टि रखनी शुरू की तभी से जन्मसिद्ध जातिभेद की हानिकारक पद्धति की उत्पत्ति हुई और तभी से हमारे देश का अधःपात वेगसे प्रारंभ हुआ। इससे इन्कार नहीं हो सकता कि हमारे सभी धर्मग्रन्थों में ब्राह्मण का स्थान सबसे ऊंचा माना गया है और यहां तक कह दिया गया है कि—

“सर्वे स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चिद् जगती गतम्।”

संसार में जो कुछ भी है उसका मालिक ब्राह्मण ही है दूसरे सब लोग ब्राह्मण की दया से ही भोग करते हैं, इत्यादि किन्तु उस ब्राह्मण का जो कठिन आदर्श बताया गया है उसको दृष्टि में न रखते हुए लोग कह देते हैं। कि धर्म शास्त्रकारों

ने ब्राह्मणोंका अनुचित पक्षपात किया है। वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। मनु० १।९८, ९९ में लिखा है कि ब्राह्मण क्या है मानो धर्म की शाश्वती मूर्ति है। वह धर्म के लिये उत्पन्न हुआ है इस लिये धर्म का पालन करते हुए ही वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है ब्राह्मण मानो पैदा ही धर्मकोशकी रक्षा के लिये होता है इसी लिये वह सारे भूतोंका ईश्वर माना जाता है। इस प्रकार के श्लोकों से यह बात स्पष्ट प्रमाणित होती है कि मनु महाराज ऐसे धर्म मूर्ते, धर्मकोश के रक्षक पुण्यात्मा ब्राह्मणों की ही पूजा करने का आदेश करते हैं। जात्यभिमानी भोजनभट्टों की नहीं। मनु० १०।३ में ब्राह्मण सब वर्णोंमें श्रेष्ठ क्यों माना गया है इस बात की व्याख्या करते हुए कहा है कि,

“वैशेष्यात्प्रकृतिज्यैष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात्। संस्कारस्य विशेषाच्च, वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः॥” तात्पर्य यह कि ब्राह्मण के अन्दर अन्य वर्णोंकी अपेक्षा ज्ञानतप इत्यादि विशेष होते हैं उसकी प्रकृति वा स्वभाव के अन्दर अधिक सात्विकता रहती है,



वह वेदाध्ययन इत्यादि नियमों का तथा अग्निहोत्रादि का विशेष रूपसे धारण करता और अन्यो से कराता है । इसी लिये ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ है । जहां इन विशेषताओंका अभाव है वहां ब्राह्मणत्व भी नहीं रह सकता । इसलिये मनु ने कहा है । जो ब्राह्मण कुलके अन्दर उत्पन्न हो कर भी वेदमें विशेष परिश्रम नहीं करता और सन्ध्यादि नित्य नियमों का नियमपूर्वक अनुष्ठान नहीं करता वह शूद्र ही है ( देखो मनु० २ । १६८ और २ । १०३ ) । अब मनुस्मृति के ही आधार पर हम ब्राह्मणों के कठिन आदर्श का थोड़ा सा उल्लेख करेंगे । मनु० २ । ६२ में ब्राह्मण के विषय में लिखा है—

संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।

अमृतस्येव चाकांक्षेदवमानस्य सर्वदा ॥

अर्थात् सच्चे ब्राह्मणको चाहिये कि अपनी प्रतिष्ठा से विषकी तरह डरे और अप्रतिष्ठा वा तिरस्कार का अमृत की तरह स्वागत करे । सच्चे ब्राह्मणों की पूजा करना सारे समाज का मुख्य कर्तव्य है । किन्तु जिसको स्वयं इस बात की चिन्ता रहती है । कि लोग मेरा सम्मान करें वह ब्राह्मण के सच्चे आदर्श से अभी कोसों दूर हैं । ऐसा समझना चाहिये । आज कौन ब्राह्मणत्वाभिमानि इस आदर्श तक पहुँचने की चेष्टा तक करता है । ब्राह्मण के लिये सादगी का आदर्श रखते हुए मनुमहाराज ने ४।७ में यहां तक कह डाला है कि—

कुशूलधान्यको वा स्यात्कुम्भीधान्यक एव वा ।

ज्यैहिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव वा ॥

अर्थात् ब्राह्मण अपने पास ३ वर्ष के लिये पर्याप्त सामग्री रखे वा १२दिन की वा ३ दिन की अथवा सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मण तो वह है जो कलका भी भोजन का सामान अपने पास नहीं रखता ४।८ में स्पष्ट ही इन चारों प्रकारों में से एकसे दूसरा उच्च कोटिका है यह बतलाया है । तात्पर्य यह है कि ब्राह्मणको धन धान्य से ज्यादा सरोकार नहीं रखना । अपने जीवन निर्वाह के लिये जितना अत्यन्त आवश्यक हो उतना ही अपने पास रखना उससे अधिक नहीं । वेद भगवान् ने तो “ब्राह्मणोऽस्य मुखम्” कह कर ही

सारा आदर्श सामने रख दिया है । शेष केवल व्याख्यान है । मनु २ । १६१ में ब्राह्मण के कर्तव्य बताते हुए कहा है कि वह कितनी भी आपत्तिमें क्यों न हो उसे दूसरों के दिल के चुमने वाले अप्रिय वचनों का कभी प्रयोग नहीं करना चाहिये और दूसरों का द्रोह मन वा क्रिया द्वारा कभी न करना चाहिए ।

ब्राह्मणों की जिम्मेवारी पर भी इस प्रसङ्ग में विचार कर लेना चाहिए । मनुष्य समाजमें सच्चे ज्ञान का प्रसार करके शान्ति स्थापन करना यह ब्राह्मणोंका ही कर्तव्य है । न केवल आध्यात्मिक बल्कि व्यावहारिक ज्ञान के भंडार का अक्षय भी ब्राह्मण कोही होना चाहिए इसी लिए मनु ने अ० १०।२ में कहा है कि—

“सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद् वृत्त्युपायान् यथा विधि ।

प्रव्रयादितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत् ॥

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।

स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥

अर्थात् ब्राह्मण को चाहिए कि वह सब वर्णों के आजीविका के उपायों को जान कर उन्हें बतावे और आप अपने कर्तव्य में तत्पर रहें । मनु० १ । ८८ में ब्राह्मण के अपने कर्तव्य—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।

दानं प्रतिग्रहञ्चैवं ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥

इस श्लोक द्वारा बताये गये हैं जिन में पढ़ना, पढ़ाना, सुनना सुनाना, यज्ञ करना कराना, दान देना और आवश्यकता के अनुसार थोड़ा ग्रहण करना इन छः का उल्लेख है । यदि समाज में ज्ञान का क्षय और अज्ञान की वृद्धि हो धर्म का नाश और अधर्म का विस्तार हो तो इस सारे की उत्तरदायिता अधिकतर ब्राह्मणों के ही सिर पर पड़ती है । ब्राह्मणों की इस जिम्मेवारी को ही ध्यान में रखते हुए मनु महाराज ने अ. ८ । श्लो. ३३७, ३३८ में कहा है कि शूद्र को चोरी करने पर जहाँ ८ रु. दण्ड हो वहाँ वैश्य को १६ रु. क्षत्रिय को ३२ रु. ब्राह्मण को ६४, १०० वा १२८ रु. दण्ड देना चाहिए क्यों कि वह ज्ञानसम्पन्न होते हुए फिर इस पापकर्म में प्रवृत्त होता है ।



इस तरह के श्लोकों से यह बात साफ जाहिर होती है कि ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा सबसे अधिक होनी चाहिए ऐसा जहाँ धर्मशास्त्रकारों ने कहा है वहाँ उनका जीवन अत्यन्त सादा और कठिन तपोमय बताया है और साथ ही सबसे अधिक उत्तरदायिता उन की मानी गई है जिस को न समझने पर से न केवल वे अपनी उच्च पदवी से गिर जाते हैं बल्कि सब से अधिक पाप और दण्ड के भागी होते हैं जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है ।

अब ब्राह्मणोचित गुणों पर शास्त्रीय दृष्टिसे यहां थोड़ासा विचार करेंगे । शुक्रनीतिसार अ. १. श्लोक ४० में—

ज्ञानकर्मोपासनाभिर्देवताराधने रतः ॥

शान्तो दान्तो दयालुश्च ब्राह्मणश्च गुणैः कृतः ॥  
ऐसा कहा है जिस का तात्पर्य यह है कि जो पुरुष ज्ञान, कर्म और उपासना के द्वारा परमेश्वर और दूसरे ज्ञानियों की पूजा में तत्पर है जो शान्त संयमी और दयालु है वही शम दम इत्यादि गुणसम्पन्न पुरुष ही ब्राह्मण है । महाभारत शान्तिपर्व अ. १८९ में भारद्वाज के प्रश्नका उत्तर देते हुए भृगुने बताया है—

“ सत्यं दानमथाद्रोह आनृशंस्यं तथा घृणा ।

तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥

अर्थात् सत्य, दान, अद्रोह, अक्रूरता, उचित लज्जा, करुणा और तप ये गुण जहां दिखाई दें वही ब्राह्मण है । आगे जाकर यह भी स्पष्ट कह दिया है कि यदि शूद्र कुलोत्पन्न किसी पुरुषके अन्दर ये गुण पाये जाएं तो वह शूद्र नहीं बल्कि ब्राह्मण है । और जिस ब्राह्मणकुलोत्पन्न पुरुषके अन्दर इन गुणों का अभाव हो वह ब्राह्मण नहीं शूद्र ही है ।

महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ७९ में पुरोहित का जो लक्षण किया है वह भी इस विषय में खूब मनन करने योग्य है—

‘आनृशंस्यं’ सत्यवाक्यमहिंसा तप आर्जवम् ।

अद्रोहोऽनभिमानश्च हीस्तितिक्षा दमः शमः ॥

यस्मिन्नेतानि दृश्यन्ते, स पुरोहित उच्यते ॥४॥

जिसका अर्थ यह है कि जिस के अन्दर अक्रूरता, सत्यवादिता, अहिंसा, तप, सरलता, ईर्ष्या द्वेष

का अभाव, निरभिमानता, उचित लज्जा, सहनशीलता, मनःसंयम और शान्ति, ये गुण पाये जाएं उसी को पुरोहित कहते हैं अन्य किसी को नहीं । अब जिन्हें पुरोहित के नामसे कहा जाता है उनमें से क्या एक प्रतिशतक में भी यह लक्षण घट सकता है ? नहीं तो फिर उनकी पूजा करना शास्त्रानुकूल कैसे है स्वयं बुद्धिमान् विचार करें ।

शुक्रनीतिका पुरोहित के विषयमें लेख इससे भी अधिक स्पष्ट और शिक्षाप्रद है, उस का उल्लेख करना अत्यावश्यक जान पड़ता है—

मन्त्रानुष्ठानसम्पन्नः त्रैविध्यः कर्मतत्परः ।

जितेन्द्रियो जितक्रोधो लोभमोहविवर्जितः ॥७८॥

षडंगवित्साङ्गधनुर्वेदविच्चार्थधर्मवित्

यत्कोपभीत्या राजापि धर्मनीतिरतो भवेत् ॥७९॥

नीतिशास्त्रास्त्रव्यूहादिकुशलस्तु पुरोहितः ।

सैवाचार्यः पुरोधा यः शापानुग्रहयोः क्षमः ॥८०॥

इन श्लोकोंमें पुरोहित के पूर्ण ज्ञानी अर्थात् वेद वेदाङ्ग, धनुर्वेद, नीतिशास्त्र, अर्थ, धर्म, शास्त्र इत्यादि के पूर्ण पण्डित होने का जहां विधान है वहां साथ ही जितेन्द्रियत्व और लोभ, मोह, क्रोध इत्यादि से रहितत्व को भी आवश्यक माना गया है और उसके अन्दर इतनी आत्मिक शक्ति होनी चाहिये कि उस के नाराज होने के डरसे राजा सदा धर्म और नीतिके मार्गपर चलता रहे । ऐसा शुक्राचार्य ने वर्णन किया है । क्या समाज का यही आदर्श नहीं कि ऐसे महानुभावोंको सबसे ऊंचा स्थान दिया जाए, ऊंचा पद देनेसे तात्पर्य ५,१० हजार मासिकको नौकरियोंसे नहीं क्योंकि द्रव्य आवश्यकतासे अधिक अपने पास रखना तक वे सच्चे ब्राह्मण पाप समझते हैं, बल्कि मतलब यह है, कि ऐसे स्वार्थरहित ब्राह्मणों के न्यायविभाग के अधिकारी होने से कभी अन्याय न होगा, कभी प्रजा की उचित स्वतन्त्रता पर कुठाराघात करने वाले नियम न बन सकेंगे । बल्कि धर्मविरुद्ध आचरण करने वाले राजा को भी गद्दी पर से उतार कर फैंक देनेकी ताकत इन लोगोंके हाथ में रहेगी ॥



## वेदमें औषधि प्रकरण ।

### १ बला ( खरहटी )

अथर्व वेदके प्रथम काण्ड के प्रथम सूक्त का प्रथम ही मन्त्र है कि—

ये त्रिषप्ताः परियन्ति बिश्वारूपाणि विभ्रतः । वाच-  
स्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे । अथ० १।१।१॥  
जिसका अर्थ है कि—

“ वाणी की रक्षक बला उन २१ के विस्तारों को मुझमें आज ही धारण करावे जो २१ सब रूपों को भरण करते हुए सर्वतः व्याप रहे हैं । अर्थात् उन २१ का विस्तृत ज्ञान हमें करवा देवे अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति हम में उत्पन्न कर देवे । ”

इस अथर्व वेद के प्रथम ही मन्त्र में “ बला ” का वर्णन है । भाष्यकारोंने इसे “ बलाः ” मानकर इसका अर्थ “ बल ” दिया है यह उन की भारी भूल है कि यदि उन का अर्थ ग्राह्य होता तो बला के स्थान में “ बलाः ” पाठ होता जो न तो संहिता में है और नहीं पद पाठमें । इस कारण “ बला ” औषधि के स्थान में “ बल ” अर्थ करना उन की प्रथम भूल है । उन की द्वितीय भूल “ तन्वः ” का अर्थ शरीर का शरीरों का करने में हुई है क्योंकि यदि “ शरीर का वा शरीरों का ” अर्थ वेद को अभिमत होता तो तन्वः के स्थान में तनोः वा तन्वाः

पाठ होता जो भी पाठ न तो संहिता में ही है और नहीं पद पाठ में । उन के दोनों स्थान पर भूल करनेका कारण यह है कि वह नहीं जानते कि बला औषधि ही वाचस्पति देवता है कारण कि यह स्वर को ठीक करके स्वरभेद, वैस्वर्य को हटाती तथा स्मृति और मेधाको बढ़ाती है जैसे कि सुश्रुतसंहिता उत्तर तंत्र त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः में आया है कि—

“ अथातः स्वरभेदप्रतिषेधमध्यायं व्याख्या-  
स्यामः । हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः  
सः ॥ १ ॥ पित्तेन पीतवदनाक्षिपुरीषमूत्रा  
ब्रूयाद्गलेन च विदाहसमन्वितेन ॥ २ ॥ ...  
क्षीरानुपानं पित्ते तु पिबेत् ... ॥ ११ ॥  
लिह्यान्मधुर ... बला चूर्णमथापि वा ॥ १२ ॥

सुश्रुत० ७७६-७७८

जिसका अर्थ है कि—

“ इस के अनन्तर स्वरभेद प्रतिषेधनामक अध्याय का व्याख्यान करेंगे ... स्वर को नष्ट करते हैं वह स्वरभेद छः प्रकार का है ॥ १ ॥ ... पित्त से मुख, नेत्र, विष्टा, मूत्र ये सब पुरुषके पोले हो जाते हैं और जलन गले से वह फूटे हुए स्वरसे बोलता है ॥ २ ॥ ...



और पित्त में ( पित्तज स्वरभेद में ) दूध का अनुपान करें -- ॥ ११ ॥ ..... मधुर ( औषधों के चूर्णों को ) चाटे अथवा बला के चूर्ण को भी ( चाटे ) ॥ १२ ॥

इसी प्रकार चरक संहिता में भी बलावाले कई योग लिखे हैं जैसे कि —

“प्रपुण्डरीकं मधुकं पिप्पल्ययो बृहती बला । क्षीरं सर्पिश्च तत्सिद्धं स्वर्यं स्यान्नावनं परम् ॥”

अर्थात् पुंडरिया काठ, मुलहठी, पीपल ( मध ), बड़ी कटेरी, खिरैटी और दूध के साथ सिद्ध किये घृत को नस्य रूपेण प्रयोग करने से उत्कट स्वरक्षय भी नाश होता है ॥ ९० ॥

“बला विदारिगन्धाद्यैर्विदार्या मधुकेन वा ॥

सिद्धं सलवणं सर्पिर्नस्यं स्यात्स्वर्यमुत्तमम् ॥

अर्थात् खिरैटी, शालपर्ण्यादि गण, विदारीकंद और मुलहठी के साथ सिद्ध घृत लवणयुक्त कर के नस्यप्रयोग करने से स्वर भंगका नाश करे है यह उत्तम स्वर्य है ॥ ८९ ॥

“जीवन्ती मधुकं द्राक्षां फलानि कुटजस्य च ।

शटीं पुष्करमूलं च व्याघ्रीं गोक्षुरकम्बलाम् ॥

नीलां तपलं तामलकीं त्रायमाणां दुरालभाम् ।

पिप्पलीञ्च समं पिष्ट्वा घृतं वैद्यो विपाचयेत् ।

एतद्व्याधिसमूहस्य रोगेशस्य समुत्थितम् ।

रूपमेकादशविधं सर्पिरग्न्यं व्यपोहति ॥

११० - ११२ ॥

अर्थात् जीवन्ती (डीडी), मुलहठी, दाख, इन्द्र-जौ, कचूर, पुहकरमूल, कटेरी, गोखरू, खिरैटी नीला कमल, भूय आमला, त्रायमासा, थ्रमासा, पीपल (मध) ए सब समान भाग लेवे, कल्क करके इसके साथ घृतका पाक करे यह घृत सेवन करने से व्याधि समूह का समष्टिस्वरूप राजयक्ष्मा रोग के ग्याहर उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ ११०-११२ ॥

यहां कहे रूपमेकादशविधं का अर्थ श्लोक २१ तथा २२ में पहिले चरकाचार्य जी कर चुके हैं यथा-

प्रतिश्यायञ्च कासञ्च स्वरभेदमरोचकम् ।

पार्श्वशूलं शिरःशूलं ज्वरमंसावमर्दनम् ॥

अंगमर्दं मुहुच्छर्दिर्वचोभेदं त्रिलक्षणम् ।

रूपाण्यैकादशैतानि यक्ष्मा यैरुच्यते महाम् ॥

अर्थात् प्रतिश्याय ( सरेकमां जुकाम ), खांसी, स्वरभंग अरुचि, पसली का दर्द, मस्तक शूल, ज्वर, कंधोंमें पीडा अंगों का टूटना, बारबार, वमन और मलभेद ए ग्यारह त्रिदोष लक्षण उपद्रव महायक्ष्मा के लक्षण हैं ॥ २१ । २२ ॥

[ इन ग्यारहरूपों में तीसरा ही रूप स्वरभंग है अतः उपरोक्त बला अंगवाला जीवन्त्यादिघृत जो राजयक्ष्मा के ११ ही रूपों का नाश करता वह स्वरभंग का नाश अवश्यसिद्ध है । इसी प्रकार आगामी बलाघृत भी स्वर्य है यथा -- ]

“बलां स्थिरां पृश्निपर्णी बृहती सनिदिग्धिकाम् ।

साधयित्वा रसे तस्मिन्पयो गव्यं सनागरम् ॥ ११३ ॥

द्राक्षाखज्जूरसर्पिः पिप्पल्या च शृतं सह ।

सक्षौद्रं ज्वरकासघ्नं स्वर्यं चैतत्प्रयोजयेत् ॥ ११४ ॥

अर्थात् खिरैटी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, भटकटैया और कटेरी का क्वाथ, सोठ, दाख, खजूर और पीपल (मध) का कल्क, दूध और घी सबको एकत्र पाक करे ! यह बलाघृत सहत के साथ सेवन करने से ज्वर, खांसी और स्वरभंग नष्ट होते हैं ॥ ११३ -- ११४ ॥

चरक संहिता चिकित्सास्थान अध्याय ८

राजयक्ष्माचिकित्सितम् श्लोक २१, २२,

८९, ९०, ११०, ११२, ११३, ११४ ॥

इस प्रकार सुश्रुत संहिता और चरक संहिता दोनों से स्फुटतया सिद्ध है कि बला स्वरभेद नाशक, स्वर्य है अतः वाणी की रक्षक वाचस्पति है जो ही वेद ने ऊपर कहा है ॥ इसी प्रकार वाचस्पति का अर्थ अन्य की वाणी वचन जो हमने सुने हैं उन वचनों उस वाणी को हमारे अंदर सुरक्षित रखनेवाला उसे भूलने न देने वाला भी है अतः वाचस्पति का अर्थ स्मृतिवर्धक भी है । जब सुने वचन नहीं भूलते तो श्रोता का ज्ञान बढ़ता है मेधा बढ़ती है अतः वाचस्पति का अर्थ ज्ञान तथा मेधा बढ़ाने वाला भी है इस प्रकार वाचस्पतिः स्वर्य और स्मृति तथा मेधावर्धक है अब जब वेद बला का ही विशेषण वाचस्पति लिखता है तो बला अवश्य स्वर्यही नहीं



वरञ्च स्मृति तथा मेधावर्द्धक भी अवश्य होगी । इस बात को वेद स्वयं वाचस्पति बलासे ज्ञान तथा विस्मृति नाश की प्रार्थना करके दर्शाता है । ज्ञान की प्रार्थना तो ऊपर प्रथम मन्त्र में भी आ चुकी है परन्तु ज्ञान तथा स्मृति दोनों की प्रार्थना उसी प्रथम सूक्त के शेष तीनों मन्त्रों में की गई है यथा—

“ पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।

वसोष्पते निरमयमय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥ २ ॥

इहैवाभि वितनूमे आत्मी इव ज्यया ।

वाचस्पतिर्नियच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥ ३ ॥

उपहतो वाचस्पतिरूपास्मान् वाचस्पतिर्वर्हयताम् ।

संश्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि ॥ ४ ॥ ”

अथर्व. का. १ सू. १ मं. २-४ ॥

अर्थात् हे वाचस्पति बला औषधि ! हमें बारबार प्राप्त हो । हमें दिव्यमन से युक्त करा कर, हे निवास-योग्य उत्तम स्मृति मेधा सौस्वर्य गुणोंके रक्षक वसुपति बला ! तू हमें सदैव विद्यानन्दमें रमण करा जिस से कि वाचस्पति आचार्य आदि से सुना हुआ मेरा ज्ञान मुझमें ही स्थिर रहे मुझे कभी भी विस्मरण न हो जावे ॥ २ ॥

धनुष की डोर से जैसे धनुष के दोनों सिरे एक दूसरे के सम्मुख परस्पर विरुद्ध दिशा में भागने को कटिबद्ध हुए सर्वथा तने रहते हैं इसी प्रकार हे बला ! यहीं पर तू मेरे शरीर के अंदर ही रह कर विशेष प्रकारसे मेरे अंगों में फैल कर व्यापकर मेरे मन तथा इंद्रियों को दिव्य विद्युत्संपन्न ( Electrified ) करके तन दे और जैसे धनुषकी डोर धनुष के सिरे को तनी हुई ( Electrified ) अवस्था में ही रोक रखती है वैसे ही तू हे वाचस्पति बला औषधि ! मेरे मन तथा इंद्रियों को तनी हुई अवस्था ( Electrified condition ) में ही रोक रख जिस से कि मेरा सुना हुआ ज्ञान तथा गुरुपदेश मुझमें ही स्थिर रहे और मैं उसे भूल न जाऊं । अर्थात् बलासे मन तथा इंद्रियां विद्युत्सम्पन्न पुरुषार्थतत्पर तथा स्मृतिसम्पन्न होकर असीम ज्ञान तथा कर्म का साधन बन जाती हैं ॥ ३ ॥ सामीप्ये गृहिता, अर्थात् समीप ग्रहण की हुई वाचस्पति बला

हमें भी समीप ही ग्रहण करे ता कि हम श्रुत से संयोग करें और श्रुत से वियोग को न प्राप्त हों अर्थात् जब बला को मनुष्य अपने समीप करता है अर्थात् चूर्ण घृत आदि के रूप में खाता, तेलके रूप में शरीर पर मलता, अथवा नसवार के रूप में सूँघता है तो बला भी उस मनुष्य के समीप हो कर उसे ग्रहण करती है अर्थात् उस के अङ्ग प्रत्यङ्ग में रोम रोम में नाडीनस में सर्वथा पूर्ण-तया व्याप जाती है फैल जाती है तब उसकी इन्द्रियों तथा मन में दिव्य शक्तियां उत्पन्न हो जाती हैं तब वह श्रुत से संगत होता है अर्थात् बहुत गुरुओं के उपदेश वेदादि सुनता है और उनको ग्रहण करता है, धारण करता है और उससे वियुक्त नहीं होता अतः उसका ज्ञान बढ़ता है और वह अपना पढ़ा हुआ भूल नहीं जाता अर्थात् सेवन की हुई बला पुरुष के शरीर इन्द्रियों तथा मन में सर्वथा व्याप कर उन्हें दिव्य शक्ति सम्पन्न ( Electrified ) कर देती है जिससे उसे दिव्य वागादीन्द्रियशक्तियां तथा दिव्य मन प्राप्त हो कर उसे मेधास्मृति प्राप्त हो वेद ज्ञान श्रुति प्राप्त हो जाते हैं और सर्वथा उस के स्वाधीन हो रहते हैं उस से वियुक्त नहीं होते ॥ ४ ॥ इस प्रकार वेदने वाचस्पति बला औषधिके विषय में बतलाया कि इस से मन दिव्य ( Electrified ) हो जाता है और इंद्रियां भी ज्यायुक्त तनी हुई धनुषके तने हुए ( Electrified ) विद्युत् से भरपूर हुए सिरों की न्यायीं दिव्य ( Electrified ) हो जाती हैं तो उस पुरुष को दिव्य चक्षु श्रोत्र घ्राण त्वचा जिह्वा आदि के द्वारा वेदज्ञान प्राप्त हो उस के दिव्य मन द्वारा उस श्रुत का ग्रहण तथा धारण हो जाता है, मेधा प्राप्त हो जाती है और स्मृति बलवती हो गई होने के कारण उसे वह ज्ञान भूल नहीं जाता उसके पास ही रहता है उस से वियुक्त नहीं होता तो उस ज्ञान के बल से उस की दिव्य वाक् ओजस्विनी तथा सुस्वरा हो कर बार बार उसी श्रुत का उपदेश अन्यों को कर के उसे अपने तथा अपने शिष्यों में सुरक्षित रख कर उस से वियुक्त नहीं होती ।



बलावा यह वेदोक्त प्रभाव चरकाचार्य ने भी अपनी संहिता में वर्णन किया है जैसे कि—  
१ आंवले के घृत के वर्णन में लिखा है कि—

“आमलकानां अतःपरं चतुर्गुणेन पयसा वा बला-  
तिबलाकषायेण ॥ अस्य त्रिवर्ष प्रयोगाद् ...श्रुतमव-  
तिष्ठते ॥४॥ ... प्रशस्तपूजासुखचित्तभाक् च ...॥५॥  
...स्वरोघनोघस्तनितानुकारी... ॥ ६ ॥

अर्थात् आमले... ( लेकर ) तदनन्तर चौगुणे  
दूध वा बला अतिबला के कषाय के साथ सितावर  
का कल्क मिला कर सिद्ध करे इस तरह एक  
एक भ्रम ... करके इस का सौ वा सहस्र बार पाक  
करके ... पात्र में भर कर रख दे । ... इस औषध  
के तीन वर्ष तक सेवन करने से ..... सुनी हुई  
बात का विस्मरण नहीं होता ॥४॥...वह मनुष्य प्रशंसा,  
स्वस्थचित्त और सुख का भाजन होता है ॥ ५ ॥  
इनके सेवन करनेसे.....गम्भीर स्वर होता है ॥६॥’

चरक० चिकित्सित स्थान अध्या० १ पा० २  
खं० ४-६ ॥

२ नागबला रसायन प्रकरण में लिखा है कि -

“ धन्वनि कुशास्तीर्णे स्निग्धकृष्णमधुर मृत्तिके  
सुवर्णवर्णमृत्तिके वा व्यपगतविषश्वापद-  
पवनसलिलाग्निदोषे कर्षणवल्मीकश्मशान-  
चैत्योषररसवर्जिते देशे यथर्तुसुखपवनसाल-  
लादित्यसेविते जातामनिम्नेऽनुपहतामनध्यूढा-  
मबालामजीर्णा अधिगतवीर्यामशीर्णपुराण-  
पर्णामसञ्जातफलानि तपसि तपस्ये वा मासे  
शुचिः प्रयतः कृतदेवार्चनः स्वस्ति वाचयित्वा  
द्विजातीन् सुमुहूर्ते नागबलां मूलत उद्धरेत् ।  
तेषां सुप्रक्षालितानान्त्वक्पिण्डमात्रमात्रं अक्ष-  
मात्रं वा श्लक्ष्णापिष्टमालोह्य पयसा प्रातः  
प्रयोजयेत् चूर्णीकृतानि वा पिबेत् पयसा  
मधुसर्पिभ्यां वा संयोज्य भक्षयेत् । जीर्णे  
च क्षीरसर्पिभ्यां शालिषष्टिकमश्नीयात् ।  
संवत्सरप्रयोगादस्य वर्षशतमजरमायुस्तिष्ठती-  
तिसमानं पूर्वेणेति नागबलारसायनम् ॥ ११ ॥  
[ समानं पूर्वेणेति पूर्वयोगफलश्रुत्यैतदपि यक्त-  
मित्यर्थः ॥ ( सप्तमखण्डस्य चक्रपाणीदत्त-  
कृतटीकायामेतद्वर्तते ) ॥ ]

अर्थात् माघ वा फाल्गुन के महिने में स्नानादिसे  
पवित्र होकर देवताओं का पूजन कर के ब्राह्मणों  
से स्वस्ति वाचन कराय के शुभ मुहूर्त में  
ऐसी नाग बला को जडसे उखाड़ लावे जो धन्वन्  
( जांगल ) देश के ऐसे स्थान में उत्पन्न हुई हो जहां  
बहुतसी कुशा उत्पन्न हो जहां की मिट्टी चिकनी  
काली मधुर वा पीली हो जहां सेह जानवर न  
रहता हो जहां विषदोष, वातदोष, जलदोष वा  
अग्नि का उपद्रव न हो जहां खेती सांप की बांवी  
श्मशान चैत्य ( बलिभूमि ) और ऊपर भूमि न हो  
जहां प्रत्येक ऋतुमें सुखदायक हवा जल और धूप  
आती जाती हो जो निम्नस्थान में उत्पन्न हुई हो जो  
अनुपहृत हो अर्थात् किसी कीड़े ने न खाई हो, जो  
अनध्यूढा हो अर्थात् जिसपर और कोई पौदा आदि  
न उगा हो जो न नवीन और न पुरानी ही हो,  
जो पूर्ण वीर्य हो, जिसके पत्ते पुराने वा गले हुए  
न हों, जिस में फल न आया हो ऐसी नागबला की  
जडको खूब धोकर पीस डाले इसमें दो या चार तोले  
दूध मिला कर प्रातःकाल पान करे अथवा फंकी  
लेकर ऊपर से घी और शहत मिला हुआ दूध  
पान करे इस औषध के पचने पर दूध और  
घी के साथ शाली चावल वा साठी चावल का  
भात खाय एक बरस तक इस का सेवन करने  
से सौ वर्षकी आयु हो जाती है इसके शेष गुण  
पूर्वोक्त रसायन के सदृश हैं यह नागबला रसा-  
यन है ॥ ११ ॥

चाक० चिकित्सितस्थान अध्या० १ पा० २ खं ११ ॥

[ पूर्वोक्त रसायनके गुण ऊपर लिखे जा चुके  
उसके सेवन से मनुष्यप्रशंसा, स्वस्थचित्त और  
सुखका भाजन होता है उसे सुनी हुई बात का  
विस्मरण नहीं होता और उसका स्वर गम्भीर होता  
है अतः नाग बला रसायन के सेवन से भी स्वस्थ-  
चित्त, स्मृति गम्भीर स्वर प्राप्त होते हैं ॥ ]

“ बलातिबला ..... पुनर्नवान्ताश्चौ-

षधयो दश... तेषां स्वरसा नागबलावत्...॥१२॥

अर्थात् बला, अतिबला आदि पुनर्नवान्त दश  
औषधों का स्वरस नाग बला के सदृश पान करने



से नागबलाके समान गुणकारक होता है [ अर्थात् स्वस्थचित्त, स्मृति, गम्भीरस्वरकारक होता है ] ॥ १२ ॥ ”

“ चरक० चिकित्सितस्थान अध्या. १ पा. २ खं० १२ ॥

४ ब्राह्मरसायन में पांचों प्रकार के जो पंचमूल डाले जाते हैं उन में से पुनर्नवादि पञ्चमूल में खरैटी ( बला ) की जड़ भी आ जाती है नागबला का चूर्ण भी इस रसायन में डाला जाता है पश्चात् सिद्ध हुए इस योग को एक हजार नागबलों के रस की भावना देकर छाया में सुखाया जाता है। इस प्रकार इस ब्राह्म रसायन में भी बला, नागबला का बड़ा भाग है और इसके सेवनसे महात्मा मेधावी स्मृतिमान, श्रुतिधर ऋषियों के बलसे युक्त हो गये थे । ’

यह चरक० चिकित्सित अध्या. १ पा० १ के. ४०, ४२, ५७, तथा ५८ श्लोकों वा खंडों में लिखा है ॥

५ च्यवन प्राश में भी खरैटी ( बला ) डाली जाती है इस के सेवन से स्वरभंग बिलकुल जाता रहता है मेधा और स्मृति प्राप्त होती है यह उपरोक्त पाद १ के ६१, ७० तथा ७२ श्लोकों में लिखा है ।

६ हरीतकी रसायन में भी पांचों पंचमूलों का क्वाथ पड़ता है अतः ऊपर लिखे अनुसार इस में भी खरैटी ( बला ) पड़ती है और इससे इन्द्रियबल प्राप्त होता है यह खंड ७५ में लिखा है ॥

७ आमलकायस रसायन में जो बृंहणीय गणोक्त औषधियां पड़ती हैं उन में बला भी है इस से रोग नष्ट होते हैं और बुद्धिबल और इन्द्रियबल बढ़ता है ॥ यह उपरोक्त अध्या० १ के तृतीय पाद के खंड २ तथा श्लोक ४ और ७ में लिखा है ।

८ इन्द्रोक्त रसायन में इन्द्रायण आदि अनेक औषधों का ६ मास तक दूध के साथ सेवन किया जाता है उन्हीं में नागबला भी गिनी गई है इसके सेवन से स्वर सम्पद मेधा तथा स्मृति प्राप्त होते हैं यह अध्या० १ पाद ४ खंड ४ में लिखा है ॥

९ इन्द्रोक्त ब्राह्मरसायन में जो बल्य गणोक्त दश औषधें पड़ती हैं उनमें बला अतिबला दोनों आजाती हैं और उसमें जो बृंहणीय गणोक्त दश

औषधें पड़ती हैं उनमें भी बला आ जाती है । इन बला अतिबला के अतिरिक्त इस रसायन में नागबला भी डाली जाती है यह रसायन सम्पूर्ण रोगों का नाश करती है, सत्व, स्मृति, तथा बुद्धिवर्द्धक है स्वरवर्द्धक और वचन को सिद्ध करने वाला है यह उपरोक्त १ अध्याय के पाद ४ के १२, १४, २३, तथा २४ श्लोकों में लिखा है ॥

इस प्रकार चरकाचार्य ने ९ प्रयोग बला अतिबला नागबला के ऐसे दिये हैं जिनसे सिद्ध है कि जहां इनमें से कोई बला प्रयुक्त होती है वहीं पर उत्तमस्वर, मेधा, स्मृति, बुद्धि की प्राप्ति होती है ॥

इसी प्रकार सुश्रुतने भी इसे स्वरभेद की औषध लिखा था ॥

अतः सिद्ध हुआ कि हमारा वाचस्पति को बला का विशेषण बनाकर उस वाचस्पति बला द्वारा ज्ञान-स्मृति वाक् सिद्धि आदि की प्राप्ति लिखना सर्वथा ऋषि संमत है अर्थात् हमारा अथर्व वेद १ सूक्त को बला औषधि परक लगाना सर्वथा ऋषि संमत है ॥

हमारे इस भाष्य से एक और लाभ स्वतः ही हो गया है वह यह कि इससे अथर्व वेद का आरम्भ ही आयुर्वेद परक सिद्ध हो गया है और जो यह संशय हो सकता था कि जब दूसरा तीसरा सूक्त आयुर्वेद परक हैं और पहिला केवल विद्या-प्राप्ति निमित्त वाचस्पति से प्रार्थना है तो दोनों की संगति कैसे लग सकती है उस संशय का भी यहां निवारण स्वतः हो गया क्योंकि हमारे भाष्यसे तो पहिला सूक्त भी आयुर्वेद परक ही हो गया अतः वह संशय समूल नष्ट हो गया ॥

वाचस्पतिका अर्थ हम परमात्मा तथा वेदाचार्य भी लेते हैं क्योंकि बला औषधी को सेवन करण वाला ब्रह्मचारी शिष्य वाचस्पति परमात्मासे जप ज्ञान स्मृति वाक् सिद्धि आदिके लिये प्रार्थना करेगा और श्रद्धा भक्ति पूर्वक वेदपारग आचार्य के समीप पहुँच उसके चरण पकड़ उससे भी गृहीत होगा अर्थात् गुरु भी जब उस शिष्य को अपन समीप ग्रहण करेगा तभी उस शिष्यका बला सेवन



सफल होगा ।

यह सम्पूर्ण शिक्षा, कि बला औषधिके सेवन से, परमात्मा की उपासना से, तथा वेदपारग गुरु की श्रद्धापूर्वक सेवाकर उस का प्रेमपात्र बननेसे विद्यार्थि का ज्ञान बुद्धि मेधा स्मृति आदि बढ़कर उसकी वाणी ओजस्विनी तथा सिद्ध होती है अन्य प्रकार से नहीं, अथर्व वेदके इस प्रथम वाचस्पति सूक्त से मिलती है जो प्रत्येक विद्यार्थि को ग्रहण करनी चाहिये ॥

यह अथर्व वेदके पहिले सूक्त की व्याख्या पूर्ण हुई ॥

यह बला प्रकरण समाप्त हुआ ॥ १ ॥

## २ वच ।

अष्टम अध्याय में कृमि वर्णन सविस्तर किया गया है उनकी एक ही औषधि वच वहां पूर्णतया वर्णन की जा चुकी है अतः यह वच प्रकरण भी समाप्त हुआ ॥ २ ॥

## ३. ४. शर ( भद्रमुञ्ज ), मुञ्ज ।

अगले दो सूक्तों में मूत्रदोष निराकरण के लिये शर और मुञ्ज औषधों का कथन किया गया है बार बार यही बात दर्शायी गई है कि शरका अमुक पिता बहुत जल बरसानेवाला है इसी कारण इस शरसे मूत्रस्थ जलवृद्धि पाकर वेग से शब्द करता हुआ मूत्र साराही एक बारगी बाहर आजाता है और मूत्रबन्ध अर्थात् मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र आदि सब दूर हो जाते हैं वह अथर्व वेद काण्ड १ सूक्त २, ३, निम्न लिखित हैं यथा-

“ विद्वा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् ।

विन्नोष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्षसम् ॥ १ ॥

ज्याके परिणो नमादमानं तन्वं कृधि ।

वीडुर्बरीयोऽरातीरपद्रेषांस्या कृधि ॥ २ ॥

वृक्षं यद् गावः परिष्वजाना अनुस्फुरं शरमर्च  
न्त्युभुम् । शरुमस्मद् यावय दिद्युमिन्द्र ॥ ३ ॥

यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम् ।

एवा रोगं चास्त्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ॥ ४ ॥

[सूक्त २] विद्वा शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्णयम् ।

३

तेना ते तन्वे ३ शंकरं पृथिव्यां ते निषेचनं  
बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ १ ॥ विद्वा शरस्य  
पितरं मित्रं शतवृष्णयम् । तेना ते तन्वे ३  
शंकरं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु  
बालिति ॥ २ ॥ विद्वा शरस्य पितरं वरुणं  
शतवृष्णयम् । तेनाते ० ॥ ३ ॥ विद्वा शरस्य  
पितरं चंद्रं शतवृष्णयम् ० ॥ ४ ॥ विद्वा शरस्य  
पितरं सूर्यं शतवृष्णयम् ० ॥ ५ ॥ यदान्त्रेषु  
गवीन्योर्यदेवस्तावधि संश्रुतम् । एवा ते मूत्रं  
मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥ ६ ॥  
प्र ते भिनद्भि मेहनम् वत्र वेशन्त्या इव ।  
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥ ७ ॥  
विषितं ते बस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव ।  
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥ ८ ॥  
यथेषुका परापतदवसृष्टाधि धन्वनः । एवा ते  
मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥ ९ ॥ सूक्त ३ ॥”

इन मन्त्रों में से सूक्त २ के पहिले मंत्र और सूक्त ३ के पहिले पांच मन्त्रों के पूर्वार्थों का अर्थ है कि हम सुनहरी रंग वाली पीली रेतीली जमीन को तो शर (भद्रमुञ्ज) की जन्म दात्री उत्पादक माता समझते हैं क्योंकि उसी पीली रेतीली जमीन (भूमि) में ही यह भद्रमुञ्ज शर उगता है परन्तु इस के पिता हम पांच मानते हैं जिनमेंसे मुख्य पिता तो बहुत वनस्पति आदिकों का धारक पालक पोषक बहुत पानी को सैंकड़ों धाराओं में बरसाने वाला बादल है और गौण पिता सैंकड़ों जल धाराओं के वर्षाने वाले भिन्न उदान (Hydrogen) और वरुण प्राण (oxygen), सैंकड़ों पदार्थों पर शीतलता बरसाने वाला चंद्रमा और सैंकड़ों पदार्थों पर उष्णता, ज्योति आदि बरसाने वाला सूर्य हैं ॥ २ ॥ १ ॥ ३ ॥ १-५ ॥

इस प्रकार वेद ने शर की उत्पत्ति के ६ दैवी कारण वर्णन किये अर्थात् पीली रेतीली जमीन, बहुत पानी वाला बादल उदान (Hydrogen), प्राण (oxygen) चन्द्रमा और सूर्य । इन छः के बिना शर उत्पन्न नहीं हो सकता जहां यह कारण मिल जाय वही शर



उगता है। प्रश्न हो सकता है की शर की उत्पत्ति कथन में शर पुष्पके नर भाग को पिता और नारी भाग को माता क्यों नहीं कहा? उत्तर है कि यह स्वतः सिद्ध है इस के कथन की कोई आवश्यकता ही नहीं क्योंकि यह सब जानते हैं कि गेहूं से गेहूं, पुरुष से पुरुष, आम से आम ही पैदा होता है अतः यह कहने की आवश्यकता ही नहीं थी कि शर की बीज से वा पूर्व-भूत शरमूल से ही शर उगता है हां विज्ञान पुस्तक के आरम्भ में यह बतलाना अवश्य आवश्यक था कि देवी कौन कौन पदार्थ शरादिकी उत्पत्ति में भाग लेते हैं अतः वेदने यही बात इन सूक्तों में खोली है कि वनस्पति मात्र की उत्पत्ति पृथिवी बादल उदान प्राण चंद्र तथा सूर्य के अंश मिलने से होती है हां उस में शर की उत्पत्ति में विशेष यह है कि उसके लिये सुनहरी पीली रेतीली जमीन की आवश्यकता है अन्य अंश अन्य पतियों की न्यायीं इसे भी आवश्यक हैं इन्हीं अंशों में से किसी की न्यूनता तथा किसी के आधिक्य से विविध वनस्पतियां बनती हैं ॥

सूक्त ३ के उन्हीं ५ मन्त्रों के उत्तरार्थ सबके समान हैं और उनका अर्थ है कि उस शर के द्वारा तेरे शरीर के लिये नीरोगता करता हूं शान्ति ठण्ड पहुंचाता हूं ताकि निषेचन निःशेष मूत्र शब्द करता हुआ बड़े वेगपूर्वक तेरे शरीर से बाहर पृथिवी पर निकल पड़े ॥ ३।१-५ ॥

इसका तात्पर्य है कि शरमूल चूर्ण ठण्डे जल के साथ लेने से वा शरमूल को ठण्डे जल में घोट कर सरदाई बनाकर पीने से शरीर के अंदर इतनी ठण्ड पहुंचती है कि गरमी आदि के कारण रुका हुआ मूत्र सारेका सारा ही शरीर से एकबारगी बाहर निकल आता है और बड़े जोर से जमीन पर पड़ता है ॥

यदि कोई प्रश्न करे कि यही बात बार बार पांच मन्त्रों में क्यों दोहराई गई? तो उत्तर है कि मूत्र-रोग लोगों को बहुत अधिक होते हैं बहुत दुःख दायी होते हैं इस शरमूल की सरदाई से हट जाते हैं और यह शर साधारणतया बहुत आसानी से मिल जाता है और बहुत सस्ता होता है इस कारण लोगों को इन भयङ्कर रोगों की अत्यन्त सुप्राप्य औषधिका निश्चय करवाने के लिये ही वेदने

इसी बात को पांच बार दोहराया कि लोगों सुनो शरमूल से रुका हुआ मूत्र सब बाहर निकल आता है मुझमें निश्चय करो और मारे मारे न फिरो बल्कि अपने रोग की इस से दूर कर लो। इस प्रकार वेद ने शर की उत्पत्ति तथा इस का बद्ध-मूत्र को बहिर्निषेचन कार्य भी बड़े बलपूर्वक इन २।१ ॥ तथा ३।१-५ ॥ मन्त्रों में दर्शाया जिससे मूत्र रोगी सुख पावें ॥

सूक्त ३ के बाकी चार मन्त्रों ६-९ में वेद कोई दृष्टान्त देता है और बतलाता है कि मूत्र कहां कैसे रुक जाता है और वहां से कैसे उसे निकाला जाता है इन मन्त्रों का अर्थ है कि--

जैसे आन्तों में मल रुक जाता है उसी प्रकार दोनों मूत्रशिराओं (ureters) में तथा वस्ति (Urinary Bladder) में मूत्र झरझरकर एकत्र हो जाता है और जब बाहर नहीं निकलता तो उन्हीं मूत्र शिराओं तथा वस्ति में रुका रहता है वहीं से रोगीका सारा ही मूत्र (शरमूलद्वारा) बाहर छुड़वाना निकलवाना चाहिये ॥ ६ ॥ जैसे झील वा नहर के बन्ध को खोल कर उस में से पानी निकाल लिया जाता है उसी प्रकार बद्धमूत्र के रुके हुए वस्ति सम्बद्ध लिङ्गमूल अथवा लिंग नलिका वा छेद को वैद्य खोल देवे जिससे कि उसका साराही मूत्र वेगपूर्वक बाहर निकल आवे ॥ ७ ॥ जलधारक समुद्र के किनारे पर बन्ध छेद करने की न्यायीं लिङ्ग का वस्तिगत छिद्र खोल दिया जाता है जिससे कि सारा ही मूत्र बाहर निकल जाता है ॥ ८ ॥ धनुष से छूटा तीर जैसे दूर जा पड़ता है वैसे ही बद्धमूत्र रोगी का साराही मूत्र बड़े वेग से बंधी धारा के रूप में छूटकर पृथिवी पर पड़ते समय शब्द करे ॥ ९ ॥

३।६-९ ॥

इन मन्त्रों में दर्शाया गया है कि जैसे आन्तों में विष्टा रुक जाती है वैसे ही मूत्रशिराओं तथा वस्ति में मूत्र रुक जाता है कोमल शर को लिङ्ग में प्रवेश कराकर तथा शरमूल सरदाई पीने से लिङ्ग का वस्तिगत द्वार खुल जाता है जैसे समुद्र का बन्ध-वानदी नहर झील का बन्ध तोड़ डाला जाता है तब जैसे कमान से छूटा तीर बड़ी शीघ्रता से सीधा दूर



तक जाकर फिर नीचे गिरता है उसी प्रकार (बस्तिद्वार खुल जानेपर) सारे का सारा मूत्र बड़ी शीघ्रता से दूर तक सीधी लंबी धार के रूपमें जाकर पृथिवी पर बड़े शब्द के साथ गिरता है ।

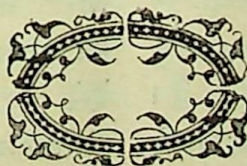
यह भी चारों मंत्र शरकी बद्धमूत्र रोगीका मूत्र निकाल ने की शक्ति का वर्णन करते हैं जिससे मूत्र-रोगी व्याकुल न होकर शरप्रयोग कर रोगमुक्त हो सुखी होवे ॥

अब सूक्त २ के २-४ मन्त्र शेष रहे जिन में से मन्त्र ४ कहता है कि जैसे तेजन, शर, भद्रमुञ्ज पृथिवी पर उगकर ऊपर द्यौः की ओर बढ़ता है और वहीं उनके बीच में स्थिरमूल होकर ठहरता है इसी प्रकार रोग और प्राप्ताव अर्थात् अन्दर किसी अंग का टूट वा फट जाना और उसमें से रुधिर, पीप ( राद Pus ) आदिका निकल बहना इन दोनों के मध्यमें मुञ्ज अथवा शर जा ठहरें ॥

इसका यह तात्पर्य है कि जैसे द्यौः के उपरोक्त छः पदार्थों से पिता के समान अंश ग्रहण करके और पृथिवी में जैसे माता में उस प्रकार, दोनों द्यौ पृथिवी को जोड़ता हुआ शर उनके अन्दर स्थित है उसी प्रकार लिङ्गनालिका आदि में कहीं जखम होने और उस से रुधिर (pus) पीप आदि का स्राव होने को उस स्थान पर पहुँच वहाँ अन्दर ही ठहर वहाँसे मूत्रद्वारा ही बाहर न निकल कर मुञ्ज तथा भद्रमुञ्ज ठोक कर देवे ॥ अर्थात् जैसे भद्रमुञ्ज बन्द मूत्रको बाहर निकाल देता है उसी प्रकार मुञ्ज भी और भद्रमुञ्ज भी लिङ्गगत जखम तथा रुधिर पीप (pus) का बहना बन्द करके लिङ्गको बस्तिको तथा मूत्रशिराओं को नीरोग कर देती हैं ॥

सूक्त २ के शिष्ट शिष्ट मंत्र धनुर्वेद संबंधि २।४॥ हैं वह यहाँ पर शर शब्द के द्वितीय अर्थ को दिखलाने के लिये इस शर सूक्त में रखे गये हैं और साथ ही एक ही सूक्त में आयुर्वेद तथा धनुर्वेदपरक मंत्रों को रख कर वेदने दरशाया है कि धनुर्वेद भी मनुष्य को आयुर्वेद के साथ ही अवश्य सीखना चाहिये दोनों में से प्रत्येक दूसरे से अधिक उपयोगी है अतः प्रत्येक व्यक्ति को यह दोनों उपवेद सीखने चाहिये अथर्ववेद में आगे भी यह दोनों उपवेद साथ साथ ही चलते हैं और प्रायः इन दोनोंमें सारा अथर्व समाप्त हो जाता है कारण कि यह सर्वतो-धिकोपयोगी हैं इसी कारण अपने आरम्भ में ही अथर्ववेद इन की ज्ञानप्राप्ति निमित्त स्मृति तथा मेधावर्द्धक उपाय प्रथम सूक्त में लिख झट पट अगले सूक्त अर्थात् सूक्त २ से ही इन का मिला जुला वर्णन करने लग गया । इसी प्रकार दर्भसूक्त, खदिरारूढाश्वत्थ सूक्त में आयुर्वेद तथा धनुर्वेद दोनों को मिलाकर वर्णन किया गया है । धनुर्वेद हमारा विषय नहीं है इस कारण इन दोनों मन्त्रों का अर्थ हम यहाँ नहीं करते ताकि हम अनधिकार चेष्टादोष से दूषित न हों परन्तु हम आशा करते हैं कि परमात्मदेव किसी धनुर्वेदज्ञ को हमारे मध्यमें उत्पन्न करेंगे जो हमारे इस आथर्वण आयुर्वेद की न्यायी आथर्वण धनुर्वेद भी लिख कर हमें अथर्व० सूक्त २ मं० २ वा. ३ सदृश अथर्व० के सभी धनुर्वेद शिक्षक मन्त्रों का वास्तविक अर्थ दरशायगा । परमात्मा हमारी यह आशा शीघ्र पूरी करें ॥

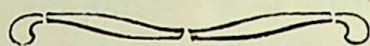
यह मुञ्ज तथा शरप्रकरण समाप्त हुआ ॥





धन्य आत्मा ।

## श्री० स्वा० श्रद्धानंदजी महाराज धर्मवेदी- पर बलिदान हुए !



श्री० स्वा० श्रद्धानंदजी महाराज देहली में कई दिनोंसे रोग शय्यापर पड़े थे। सब भारतवासी उनके आरोग्य के लिये ईशचिंतन कर रहे थे और भारतवासियोंकी हार्दिक इच्छानुसार स्वामिजीको बहुत कुछ आरोग्य भी प्राप्त हुआ था, परंतु वे पूर्ववत् पूर्ण रोगमुक्त नहीं हुए थे। इस प्रकार करीब रोगशय्यापर पड़े हुए श्री० स्वामि श्रद्धानंदजी को अब्दुल रशीद नामक एक मुसलमान ने गोली मार कर २३ दिसंबर १९२६ के दिन कतल कर दिया।

यह समाचार भारत में तथा विदेश में जब फैल गया तब सुनने वालों के हृदय दुःख तथा उद्वेग से फट गये। यह घटना इतनी हृदयविदारक है कि इसे सुन कर हर एक धर्मप्रेमी मनुष्य का हृदय विदीर्ण होने विना रह नहीं सकता।

जो वीर होते हैं उनको स्त्री बालक रोगी और वृद्ध ये पूज्य ही होते हैं। वीरपुरुष इनपर कभी शस्त्र नहीं चलाते। श्री० स्वामिजी ७१ वर्ष की आयुपर होनेके कारण वृद्ध थे और रोगी भी थे। इस लिये जिस क्रूर मुसलमानने ऐसी अवस्था में उनपर गोली चलाई उसमें शौर्य की तो क्या, परंतु मनुष्यत्व की भी कल्पना करना अशक्य बात है।

हिंदुधर्मका यह सौभाग्य है कि ऐसे भीरु पापी अत्याचारी इस वैदिक धर्ममें कभी उत्पन्न नहीं हुए

इस समयतकके हिंदुजातीके इतिहास में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है कि जिसकी तुलना अब्दुल रशीद के इस अमानुष अत्याचार के साथ की जाय। यह इस्लाम धर्मका ही दुर्भाग्य है कि उसमें इस प्रकारके अत्याचारी वारंवार उत्पन्न होते रहे हैं। मुसलमानों को उचित है कि वे अपने धर्म का इस समय परीक्षण करें और देखें कि इस प्रकारके सब सभ्य संसार की दृष्टिसे अत्यंत घृणित कार्य करनेवाले अमानुष गुंड उनमें ही क्यों उत्पन्न होते हैं।

यदि मुसलमानोंका यह ख्याल है कि इस प्रकार के अत्याचार करनेसे उनके धर्मका अधिक प्रचार होगा तो वह गलत ख्याल है। इस प्रकारके अत्याचारोंके कारणही इस्लामधर्मका गौरव मिटता जाता है और ये लोग जितने अधिक अत्याचार करेंगे, उतना ही उनके धर्मका गौरव कम होगा।

श्री० स्वा० श्रद्धानंदजी महाराज भारत वर्षमें प्रतिष्ठित थे और धर्मकार्य के लिये ही उन्होंने अपने आपको समर्पण किया था। उनकी मृत्युसे जो चारों ओर खिलबिली मची है उससे सिद्ध है कि उनके विषयमें जनतामें कितना बड़ा आदर है। ऐसे महान पुरुष की हत्या इस प्रकार अमानुष रीतिसे करना नीच से नीच अवस्थाका ही द्योतक है।



बहुत लोग बिस्तरेपर सड़के बीमारीसे मरते हैं और हर एक को मरना तो अवश्य ही है, परंतु धर्म वेदीपर बलिदान होकर मरना केवल स्वा० श्रद्धानंदजी जैसे पुण्यपुरुषों को ही महाभाग्य से प्राप्त हो सकता है। श्री० स्वामिजी बीमार तो थे ही, यदि बीमारीसे मृत्युको प्राप्त होते, तो वह मृत्यु उनके महत्त्व के लिये योग्य न होता। उनका जीवन जैसा उच्च था वैसा उनका मृत्यु भी जनताके लिये आदर्श ही हुआ है। धार्मिक पुरुषोंकी मृत्युभी पीछे चलनेवालों के लिये आदर्शरूप होती है। धर्मका कार्य करते हुए और धर्मका कार्य करते रहनेके कारण जो मृत्यु आती है उससे अधिक उत्तम मृत्यु दुनियामें कोई नहीं है। भारतीय हिंदु और विशेष कर आर्य जनता इस मृत्युसे बहुत बोध ले सकती है। यह मृत्यु भारत-वासियोंको उनका आगेका मार्ग बता रही है। और यदि भारतीय आर्य हिंदु इससे योग्य बोध लेंगे, तो भविष्यमें उनका निःसंदेह विजय होगा।

इस मृत्युका संदेशा कौनसा है ? हिंदुसंगठन करो, दलितोद्धार करो, अस्पृश्यता निवारण करो, शुद्धि के कार्यको जोरसे करो, और राष्ट्रीयशिक्षाके लिये गुरुकुलशिक्षा स्थानस्थानपर शुरू करो।

यही कार्य श्री० स्वामिजी कर रहे थे, ये ही उनके उद्देश्य थे, इन्हीं के कारण इनकी मृत्यु हुई और मृत्यु से भी यही संदेशा प्रकट हुआ है। पाठको ! यह मृत्युका संदेश देखो और स्वामिजीके शुरू किये हुए कार्य अधिक जोर से आगे बढ़ाओ और जगत् में सिद्ध करो कि एक सच्चे आर्य पुरुषके कतल होनेसे उसका कार्य अधूरा नहीं रह सकता, परंतु सौगुणा अधिक बढ़ सकता है। यदि हिंदु जाति अथवा आर्यजाति यह सिद्ध कर सकेगी तो ही उनका भविष्य में जीवित रहना संभव है।

मुसलमान लोग ईरान में गये और उन्होंने वहां के लोगोंको नामशेष किया। परंतु वे ही मुसलमान हिंदुस्थान में आकर हिंदुओंको नामशेष कर नहीं सके। हिंदुओंको असहाय्य स्थितिमें उनसे सातसौ वर्ष लड़ना पड़ा, और इस सात सौ वर्ष के युद्धसे हिंदुओं ने अपना जीवित रहने का अधिकार सुरक्षित

किया। हिंदु जाति का यह बल इस समयमें भी विद्यमान है, इसलिये हमें पूर्ण आशा है कि वे इस मृत्युकी घटनासे बोध लेंगे और अपने उद्धार का मार्ग धैर्य से आक्रमण करेंगे।

आर्योंका धैर्य सदासे प्रसिद्ध है। वह धैर्य श्री० स्वामिजी के जीवन चरित्र में पूर्णतासे दिखाई देता है। उनका संपूर्ण जीवन धार्मिक धैर्यका जीवित स्रोत ही है और इस कारण वह आर्य जनताका मार्ग दर्शक निःसंदेह बना रहेगा। पं० लेखरामजी की कतल से शुद्धिका और प्रचार का कार्य रुका नहीं, परंतु बढ़ गया। उससे सौ गुणा अधिक वेगसे इस मृत्युके कारण धर्म-प्रचार का कार्य चलेगा और यह मृत्यु स्वामिजी का यश अधिक उज्ज्वल बनावेगा।

परंतु मुसलमानों के ऊपर यह घातक अत्याचार बड़े कलंक रूपसे चिरकाल रहेगा। किसी भी प्रकार इस पापका परिमार्जन हो नहीं सकता जो समाज ऐसे अत्याचारी को उत्पन्न करता है और धारण करता है उसको अंतःशुद्धिका प्रायश्चित्त अवश्य ही करना उचित है। यह अत्याचार ऐसा नीच है और इतना घोर है कि इसका समर्थन कोई भी मुसलमान किसी सभ्य लोगों के सम्मुख कर ही नहीं सकता। इस लिये इस वधने मुसलमानोंका गौरव घटा दिया है और इस्लाम के प्रचार में चिरकाल रहनेवाली बड़ी भारी बाधा डाल दी है। यदि इस मृत्युसे मुसलमान बोध लेंगे और अपनी अंतःशुद्धि प्रायश्चित्त द्वारा स्वयं करेंगे, तो ही उनका यह कलंक धोया जाना संभव है।

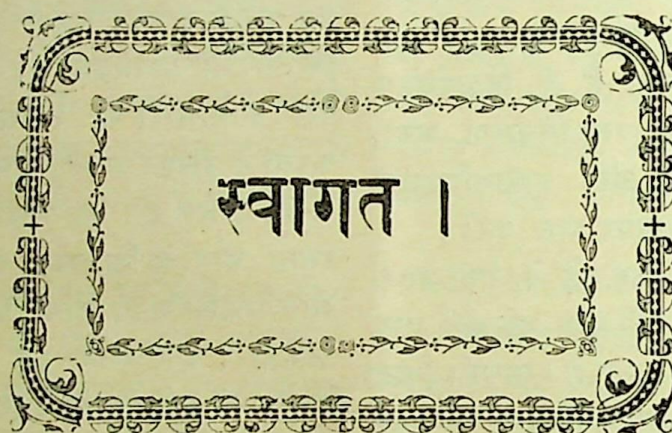
भारतवर्ष में हिंदुमुसलमानों का झगडा आज कई वर्षों से चल ही रहा है। इस में किसका अपराध कितना है इस विषय में यदि किसीको कोई शंका हो तो वह इस मृत्युको देख कर निश्चय कर सकता है कि अत्याचार का भाग किस जाति की ओर अधिक है। हमारा विश्वास है कि इस मृत्युका विचार करने के पश्चात् हिंदुओंके निर्दोष होने में किसी को भी शंका नहीं रह सकेगी।



पतितपरावर्तन, शुद्धि, संगठन, आदि करनेका हर एक जाती का अधिकार है। इस लिये यदि श्री० स्वामिजी ये कार्य कर रहे थे और इन मागोंसे हिंदुजातीकी वे रक्षा कर रहे थे, तो वह उनका कार्य किसी प्रकार भी दूषणीय हो ही नहीं सकता। क्या मुसलमान अपना संगठन नहीं कर रहे हैं? क्या वे दूसरों को अपने धर्म में अपनी रीतिसे शुद्ध करके संमिलित नहीं करते? फिर यह उनका आग्रह क्यों है कि हिंदु अपना संगठन और शुद्धि न करें? यदि अनेक जातियोंने एक देश में रहना है, तो समान अधिकारसे और परधर्म विषयक सहिष्णुतासे ही रहना चाहिये। मुसलमान हिंदुओं को अपने में लेते रहें और हिंदु उसको न रोकें

यह हो ही नहीं सकता। यह हिंदुओंका अधिकार था और वह अधिकार श्री० स्वा० श्रद्धानंदजी जैसे तेजस्वी महापुरुषने अपने बलिदान से हिंदुओं को सिखा दिया है, और ऐसा सिखा दिया है कि वे इस पाठको अब कभी भूल नहीं सकेंगे।

अन्य है श्री० स्वा० श्रद्धानंदजी महाराज की कि जिन्होंने अपने जीवनमें जनता को शिक्षा दी और अपने मृत्यु से भी चिरकाल शिक्षा देते रहेंगे। इस में क्या संदेह है कि इनका आत्मा उस उच्च स्थानमें सीधा पहुंच गया होगा कि जहां धर्मवीरों के लिये प्रशस्त स्थान होता है। परमेश्वर उनके आत्मा को शांति देवे।



१ गोस्वामी तुलसीदास कृत

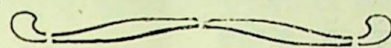
रामायण ।

४० चित्रोंके सहित शुद्ध गुजराती भाषान्तर "सस्त साहित्य वर्धक कार्यालय" भद्र अहमदाबाद तथा कालवादेवी मुंबई द्वारा प्रकाशित हुआ है। म० केवल ६) है। भाषांतर कर्ता-श्री. शास्त्री छोटालाल चंद्रशंकर मुंबई हैं। इनकी सरल तथा रसमयी गुजराती भाषासे यह ग्रंथ सुरम्य हुआ है। मूल

तुलसीरामायण का यह सरल अनुवाद है और केवल भाषान्तर पढ़नेसे भी मूलग्रंथका रस प्राप्त होता है इतना प्रसाद इस में है। यह पुस्तक गुजराती लोगोंके लिये अत्यंत लाभकारी होगा। आशा है कि गुजराती जाननेवाले इससे लाभ उठावें।



## स्वाध्याय मंडल का कार्य ।



### गुजराती भाषामें

१ “ वैदिक धर्म ” मासिक गुजरातीभाषा में प्रकाशित करनेका प्रबंध किया जा रहा है और यदि सब अनुकूलता हो गई तो थोड़े ही दिनों में गुजराती भाषा में वैदिक धर्म प्रकाशित होता रहेगा ।

गुजरातीभाषा में बालक धर्मशिक्षा आदि कई पुस्तक इससे पूर्व प्रकाशित हो चुके हैं । “सूर्य-भेदन व्यायाम ” अति शीघ्र प्रकाशित होगा और “ आसन ” प्रकाशित करनेका भी प्रबंध हो चुका है ।

वैदिक धर्म के कई लेख वारंवार गुजराती भाषाके पत्रों में प्रकाशित होते रहे हैं, इसी प्रकार गतांक का “ लंघन ” विषयक अनुभव का लेख गुजराती में उलथा होकर शीघ्र ही प्रकाशित होगा ।

### कनडी भाषामें

२ इसी प्रकार कनडी भाषा में सूर्य भेदन व्यायाम और आसन पुस्तकों का मुद्रण करनेका कार्य शुरू हुआ है, तथा बंगलूर ( म्हेसूर ) में स्वाध्याय मंडल के वैदिक ग्रंथ कनडी भाषा में प्रकाशित करनेवाली मंडली स्थापित होकर अब क्रमशः ये पुस्तक वहां प्रकाशित होते रहेंगे । और इस प्रकार उस प्रांत में वैदिक धर्म के प्रचार का बड़ा भारी साधन निर्माण हो जायगा ।

स्वाध्याय मंडल के पुस्तकोंका प्रचार इस प्रकार कई भाषा में हो रहा है यह देखकर उन दानी

महाशयों को संतोष होगा कि जिन्होंने इस मंडल को इतना कार्य करके दिखाने योग्य आर्थिक सहायता दी और जो इस समय भी सहायता दे रहे हैं । क्योंकि दानी महोदयोंकी उदार सहायता के बिना यह कार्य होना ही असंभव था ।

### यज्ञकी पुस्तक ।

“ यज्ञ ” की पुस्तक का द्वितीय भाग सब छप चुका है उसकी जिल्द बन रही है । दो सप्ताहके पश्चात् ग्राहकों के पास अवश्य रवाना होगा । पृष्ठ संख्या १६० से अधिक है और मूल्य केवल १ ) रु. रखा है ।

### आसनोंका चित्र पट ।

“ आसनोंके चित्र पट ” की बहुत ही मांग थी, क्योंकि आसनों का व्यायाम लेनेसे सहस्रों मनुष्योंका स्वास्थ्य सुधर चुका है, इस लिये आसन व्यायाम से स्वास्थ्य लाभ होनेके विषय में अब किसी को संदेह ही नहीं रहा है । अतः लोक सब आसनोंके एक ही कागजपर छपे हुए चित्र-पट बहुत दिनों से मांग रहे थे । मांग बहुत होने के कारण वैसे चित्र पट अब मुद्रित किये हैं और ग्राहकोंके पास रवाना भी हो गये हैं । २०×३० इंच कागज पर सब आसन दिखाई दिये हैं । यह चित्रपट कमरे में दिवार पर लगा कर उसके चित्रों को देखकर आसन करने की बहुत सुविधा अब होगई है ।

मूल्य केवल ३ ) तीन आने और डाक व्यय - ) एक आना है ।



## पोषक वर्ग

स्वाध्याय मंडलके पोषकवर्ग का चंदा केवल १०० ) सौ रु. है । जिन्होंने पहिलेही पोषक वर्गका चंदा दिया उनको इस समय तक ५६ ) रु. के पुस्तक मिल चुके हैं और इस वर्ष से करीब १६ ) रु. से अधिक मूल्यके पुस्तक प्रतिवर्ष मिलते जायंगे । अर्थात् पोषक वर्गका चंदा इकट्ठा सौ रु. एकवार देनेसे हर हालतमें पाठकों का लाभ है और दो तीन सालों में उनका रुपया पुस्तक रूपसे वसूल हो जायगा और आगे उनको पुस्तकें मिलती ही रहेगी ।

पोषक वर्गके विषय में पाठक पूछते हैं कि इस समय १०० ) रु. देनेसे पूर्व मुद्रित पुस्तकें मिल सकती हैं वा नहीं । इस प्रश्न के उत्तर में निवेदन है जिस दिन १०० ) रु. यहां जमा हो जायंगे उसके पश्चात् जो जो पुस्तक मुद्रित होंगे वे सब उनको प्राप्त हो जायंगे । जो पाठक पोषक वर्गका चंदा देकर पूर्ण ग्राहक बनेंगे, उनको पूर्व मुद्रित पुस्तकें फ्री सदी दस कमिशन काटकर दी जायगी और उनके लिये डाकव्यय माफ हो जायगा । जो पाठक पोषक वर्गमें अपना नाम दाखल करना चाहते हैं वे इस सहूलियत से अवश्य लाभ उठावें ।

इस समय महाभारत छप रहा है, इस एकही का ही अन्तिम मूल्य ६५ ) रु. है, वेद छपना प्रारंभ हुए हैं, रामायण आदि तथा मनुस्मृत्यादि ग्रंथ

छपने हैं, ये सब ग्रंथ पोषक वर्ग के सदस्योंको भेंटके रूपमें मिलेंगे । अर्थात् एकवार १०० ) रु. चंदा देनेसे चंदेकी अपेक्षा कई गुणा अधिक मूल्य के पुस्तक उनको मिल सकते हैं । पाठक इसका विचार अवश्य करें ।

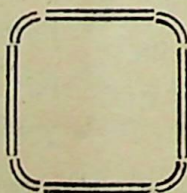
## महाभारतका चंदा ।

महाभारत के सहूलियत के ५० ) रु. चंदेका समय गत दिसंबर ३१ तारीखसे समाप्त हो चुका है । इस जनवरी मासमें यदि कोई ग्राहक पूर्णचंदा भेजना चाहे तो वह ५२ ) बावन रु. भेजदे । केवल ५० ।- रु. भेजनेसे पूर्ण चंदा समझा नहीं जायगा पीछेसे इस विषयमें कोई विवाद सुना नहीं जायगा । ५२ ) रु. भेजनेसे भी उनका कमसे कम १३ ) रु. का लाभ होगा । आशा है कि पाठक इस सहूलियत से लाभ उठावेंगे । इस जनवरीके पश्चात् यह सहूलियत भी रहेगी नहीं ।

## वी. पी. वापस ।

कई ग्राहक वी. पी. मंगवाते हैं और वापस कर देते हैं । इस कारण गतवर्षमें करीब तीन चार सौ रु. का डाक व्यय का नुकसान उठाना पड़ा है । इसलिये अगले वर्षसे वी. पी. से. पुस्तकें भेजना बंद करनेका विचार है । पाठक इसका अवश्य विचार करें ।

मंजी— स्वाध्याय मंडल ।





## पत्थर और सोम ।

पूर्व लेखकी बातका अधिक स्पष्टीकरण के लिये निम्न लिखित मंत्र देखिये—

यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां वाचं वदन् ।

ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनाऽऽनन्दं जनयन् ० ॥.

ऋ. ९।११३।३

“ ( यत्र ) जहां ( सोमेन आनन्दं जनयन् ) सोमके द्वारा आनंद उत्पन्न करनेवाला ( सोमे ) सोमके अंदर ( ग्राव्णा ) पत्थरसे योग करने वाला और छंदकी वाणी बोलनेवाला ( ब्रह्मा ) ज्ञानी ब्राह्मण ( महीयते ) महत्त्वको पहुंचाया जाता है । ” इसमें कहा है कि पत्थरसे ही सोमसे आनंद कारक रस निकाला जाता है । पत्थर शिष्य हैं और उसका घर्षण गुरु के साथ होकर एकसे एक बढ़कर विद्या रूपी रस बाहर आता है और वह आत्मिक आनंद उत्पन्न करता है, इसीके साथ इससे अगला निम्न लिखित मंत्र भी देखिये—

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिंल्लोके स्वर्हितम् ।

तास्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षितः ॥

ऋ. ९।११३।७

“ हे ( पवमान ) शुद्ध करनेवाले सोम ! जहां बहुत प्रकाश है और जिस लोकमें आनंद है, उस अमर लोकमें रहनेवाला तूं उसमें मुझे भी रखो । ”

यहां सोम मनुष्योंको अमर लोक में पहुंचाता है, यह वर्णन देखने योग्य है । अमर लोकमें पहुंचानेवाला सत्यरूपसे ज्ञान ही है । परमात्मा परात्पर गुरु है और हमारे ज्ञानी गुरु उससे नीचली पौडियोंपर हैं । ये सब गुरु ज्ञानवृद्धि द्वारा मनुष्यको अमृतके लोकमें ले जानेका यत्न करते हैं । जो मनुष्य स्वयं अपनी ज्ञानवृद्धि करने में परम पुरुषार्थ करते हैं, और इन गुरुओंके साथ एकचित्त करते हैं, उनका बेड़ा पार होता है, अन्य लोग भंवरमें पडकर गोते खाते रहते हैं । इस मंत्रसे पता लग सकता है कि, परात्पर गुरु परमात्मा गुरु होनेके कारण जिस कारण सोम है, उसी कारण हमारे ज्ञानदाता गुरु भी अंशरूपसे सोम हैं और उनके अंदर का ज्ञानरस ही इस ज्ञान यज्ञमें सोमरस है ।

सोम नाम सोमवल्लीका है और उसके रस का भी सोमही नाम है इन नामोंमें यह भेद नहीं है कि जो “ ज्ञानी और ज्ञान ” में होता है । गुण और गुणी एकही शब्दसे



पुकारे गये हैं, यही विशेषता अधिक सूक्ष्म दृष्टिसे पाठक देखें। ज्ञान और ज्ञानी, ज्ञान और ज्ञाता का भेद जिस अवस्थामें मिट जाता है, उस चतुर्थ अवस्था का बोध करानेके लिये एकही नाम दोनों के लिये यहां आया है। इतना विचार यहां मनमें अवश्य रखना चाहिये।

गुरु और उसका ज्ञान भिन्न है, या अभिन्न ? ज्ञान अलग किया तो गुरुका गुरुत्व रहना भी संभव नहीं है, इस लिये दोनोंकी एक रूपता माननी आवश्यक है। सोमके ज्ञानी होनेकी अवस्थामें उस का रस भी सोम ही होता है, इसका तात्पर्य इतना गूढ़ है। मनुष्य समाजमें ब्राह्मणोंका सोम होना इस प्रकार सिद्ध है। पाठक यहां ज्ञानियों का सोम होना इस प्रकार यदि समझ गये होंगे, तो क्षत्रियोंका शौर्यवीर्य, वैश्योंका धन ये सामाजिक सोम रस होनेमें उनको किसी प्रकार शंका नहीं हो सकती। तथा सामाजिक या राष्ट्रीय नरयशमें ये सोम रस किस प्रकार जनताद्वारा पीये जाते हैं यह भी समझमें आना कठिन नहीं है। क्षत्रिय वैश्योंकी बात तब समझमें आसकती है जब हम शूद्रोंके सोम होने और उनके सोमरस के पीनेकी कल्पना देख और अनुभव कर सकेंगे। पाठक आश्चर्य करेंगे कि शूद्र सोम किस प्रकार हो सकते हैं और उनसे निकला हुआ सोम रस किस प्रकार राष्ट्रीय महायशमें संपूर्ण जनता पीती रहती है ? इस गूढ़की उलझान निम्न प्रकार होती है -

### कलावान सोम ।

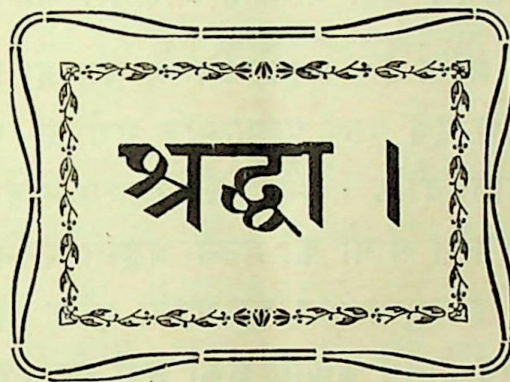
सोमका नाम कलावान, कलानिधि संस्कृतमें प्रसिद्ध है। सोमकी सोहल कलाएं हैं। प्रत्येक कलाके चार विभाग होकर कुल सोलह कलाकी ६४ कलाएं होती हैं। अर्थात् जो जो “कलावान्” किंवा हुनर से युक्त होता है वह कलावान होनेके कारण सोमही होता है और उसका सोमरस “कला ( हुनर )” ही है। कलाकौशलके कार्य सच्छूद्रोंके हैं, इस विषयमें स्मृतिकारोंकी अभिन्न संमति है। इस लिये कलावान होनेके कारण शूद्र भी “सोम” हैं और उनका कला रूपी रस अथवा उनके रसकी कलाओंका उपभोग हरएक मनुष्य करता है, यह प्रतिदिन का प्रत्यक्ष विषय है। हुनर की कलाके बिना मनुष्यका जीवनही रूखा बनेगा; इस लिये शूद्रोंकी सोम शक्तिका महत्त्व राष्ट्रीय दृष्टिसे बड़ा भारी है और सुखकी दृष्टिसे भी विशेषता उसमें है।

यह सोम देवताकी विभूति देखनेसे पता लग जायगा कि चातुर्वर्ण्य जनोंमें भी विभिन्न रूपोंसे सोम व्याप्त है। मनुष्यके अंदर सोमकी कला देखना ही सोमदेवताका



अध्यात्म जानना है । वैदिक अध्यात्म विद्या प्रत्येक वैदिक देवतासे इसी प्रकार जानी जायगी और उसीसे वैदिक ज्ञान का गौरव ज्ञात होगा । प्रत्येक मनुष्यके अंदर संरक्षक ज्ञान के रूपसे इस प्रकार सोम है । परमात्मा सर्वरस होनेके कारण पूर्ण सोम होनेमें शंकाही नहीं है । व्यष्टि और समाष्टिमें इस प्रकार सोमदेवताका स्वरूप है ।

संरक्षक ज्ञान रूप सोम ( स+ उमा ) मनुष्यकी अध्यात्म शक्तिरूप बनकर कैसा रहा है यह हमने पूर्व लेखमें देखा । आत्मा या जीवात्मा सत्स्वरूप, और चित्स्वरूप अर्थात् ज्ञानस्वरूप सुप्रसिद्ध है और वह वेदादि संपूर्ण शास्त्रोंमें वर्णित है । उसी ज्ञान स्वरूपका “ संरक्षक ज्ञान ” रूप सोम अपर पर्याय या द्वितीय नाम है, यह अब अधिक स्पष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं है । इसी अपनी ज्ञान शक्ति और अपनी सच्च-क्ति या सच्चशक्ति पर श्रद्धा चाहिये । इस लिये यहां वेदकी “ श्रद्धा ” देवी सन्मुख आती है —



“ श्रद्धा ” देवता के सूक्त और मंत्र वेदमें हैं । श्रद्धाका महत्त्व और श्रद्धासे लाभ श्रद्धावान लोग ही जान सकते हैं । मानवोंमें जो कुछ वैभव, शोभा, बल, पराक्रम, ऐश्वर्य अथवा संक्षेपसे कहा जाय तो विभूतिमत्, श्रीमत् और ऊर्जित सत्त्व है, वह श्रद्धा के कारण ही है । श्रद्धाहीन लोग प्राणहीन देहके समान हैं । जगत् में श्रद्धाहीन मनुष्य कुछ भी कार्य नहीं कर सकते । श्रद्धावानोंका ही जगत् है ।

श्रद्धा सबसे प्रथम अपनेपर चाहिये और पश्चात् अपनी शक्तिपर चाहिये । “ मैं हूं और मैं कार्य या पुरुषार्थ करके श्रेष्ठ बन सकता हूं ” इतनी श्रद्धा स्थिर होनेसे ही पश्चात् परमात्मा पर श्रद्धा रखने और उससे योग या संयोग करनेका विषय उत्पन्न होता है । जिसकी अपने पर तथा अपनी शक्तिपर श्रद्धा नहीं होती, उसकी उन्नति कहीं भी संभव नहीं है ।



अन्य देवताओंका अस्तित्व मनुष्यमें होता है, या नहीं इस विषयमें संदेह हो सकता है, उस प्रकार श्रद्धा का अस्तित्व मनुष्यमें होता है या नहीं, ऐसी शंका नहीं हो सकती, क्योंकि श्रद्धा देवी मानवी कार्य क्षेत्रके साथ ही संबद्ध है । हमने इससे पूर्व बताया है कि कई मनुष्य श्रद्धावान होते हैं और कई श्रद्धाहीन होते हैं । यह विषय थोड़ासा सूक्ष्म है इस लिये इसीको यहां अन्य रीतिसे कहना चाहिये ।

मान लीजिये कि हरएक मनुष्य श्रद्धावान ही होता है परन्तु कई लोक अपनी शक्ति मत्तापर सश्रद्ध होते हैं और कई लोक अपनी निर्बलतापर श्रद्धा रखते हैं!! इस लिये जो अपनी शक्ति मत्तापर श्रद्धा रखते हैं वे अपनी शक्तिको बढ़ाते हुए उन्नत होते चले जाते हैं; परन्तु जो अपनी निर्बलताकी ही उपासना करते हैं, वे उसी बातको बार-बार दुहराते हुए बढ़ाते चले जाते हैं । श्रद्धा तो दोनोंमें है, परन्तु एक बलपर श्रद्धा रखता है और उन्नत होता है, और दूसरा कमजोरीकी उपासना करता हुआ गिरता है । व्यवहारमें पहिलेको सश्रद्ध कहा जाता है और दूसरेको अश्रद्ध कहा जाता है ।

श्रद्धा एक बड़ी भारी शक्ति है । इसको जिसमें लगाओ वह कार्य द्विगुणित होता चला जायगा । इसी कारण पूर्ण पुरुष परमात्माके गुणोंका ध्यान श्रद्धापूर्वक करनेके लिये उपासना शास्त्रने आज्ञा दी है । क्यों कि परमात्मामें हरएक उच्च गुण की परम सीमा मानी गई है । इस परम सीमा का मनन श्रद्धासे करनेसे उपासक भी परम सीमा तक पहुंचता है । यदि कोई मनुष्य श्रद्धाकी अपनी शक्ति किसी व्यसनादि हीन कर्ममें लगावे, तो उसकी गिरावट होनेमें कुछभी शंका नहीं हो सकती । श्रद्धाका अपने अंदर अस्तित्व और उसका अध्यात्म शक्तिसे संबंध तथा उसका अपनी गिरावट या ऊंचावट के साथ संबंध इस प्रकार है, यह विचार की आंखसे देखनेसेही पता लग सकता है, कि श्रद्धा का महत्त्व कितना है । इसी लिये श्रद्धाके विषयमें वेदमें कहा है—

यथा देवा असुरेषु श्रद्धासुग्रेषु चक्रिरे ।

एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥ ३ ॥

ऋ. १० । १५१

“ जिस प्रकार देवोंने उग्र असुरोंपर श्रद्धा की थी, उसी प्रकार यज्ञ करने वालों पर हम श्रद्धा करते हैं, इस लिये हमारा उदय कर । ”

इसका तात्पर्य यह है कि, स्वयं देव दैवी शक्तिसे युक्त होते हुए भी असुर भावोंपर श्रद्धा रखनेके कारण गिर जाते अर्थात् अपने देवत्वसे पतित होते हैं । इस लिये अपने



आसुरी भावों पर श्रद्धा नहीं रखनी चाहिये, क्यों कि मनुष्योंकी गिरावट इसीसे होती है । हरएक को अपने यजनीय गुणोंपर अर्थात् दैवी गुणोंपर श्रद्धा रखनी चाहिये, क्यों कि इस प्रकार दैवी गुणोंपर श्रद्धा रखनाही उदय का हेतु हो सकता है । इस विषयमें हमने जो पहिले बताया है वह इस मंत्र में पाठक देख सकते हैं । एक ही श्रद्धा असुर भावोंपर रखना गिराईका हेतु और दैवी भावोंपर रखना भलाईका हेतु होता है । यह देवासुर संग्राम अपने अंदर है, अपने अंदर दिव्य और आसुरी गुण हैं । उनमेंसे आसुरी गुणोंको दैवी गुणोंके अनुकूल बनाकर श्रद्धासे दिव्य गुणोंको अधिकाधिक प्रभाव शाली बनाना चाहिये । यही भाव पूर्वोक्त मंत्रमें पाठक देख सकते हैं; और देखिये—

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते ।

श्रद्धां हृदययाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥ ४ ॥

“ ( वायुगोपाः ) प्राणवायुके बलसे रक्षित बने हुए देव और यजमान श्रद्धाकी उपासना करते हैं, यह श्रद्धा हृदयकी आंतरिक भावनासे की जाती है क्यों कि श्रद्धासे ही सब प्रकारका धन प्राप्त होता है । ”

प्राणके बलसे सुरक्षित होकर उन्नति चाहनेवाले पुरुष हृदयके अंदर से श्रद्धाकी धारणा करते हुए हरएक प्रकारका धन और यश प्राप्त करते हैं । यहां बनावटी श्रद्धाका निषेध और स्वाभाविक हृदयकी श्रद्धाका महत्त्व प्रदर्शित किया है । तथा श्रद्धाहीसे सब प्रकारका धन और यश प्राप्त होता है यह बात इस मंत्रमें स्पष्टही कही है । इस प्रकार श्रद्धाका महत्त्व ऋग्वेदमें कहा है और “ मेधा ” का महत्त्व अथर्ववेद ( कां. १६ । १०८ ) में कहा है । देखिये—

मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्ठताम् ।

प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ॥ २ ॥

यां मेधामृभवो विदुर्या मेधामसुरा विदुः ।

ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मर्यावेशयामसि ॥ ३ ॥

यां ऋषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः ।

तया मामद्य मेधयाऽग्रे मेधाविनं कुरु ॥ ४ ॥

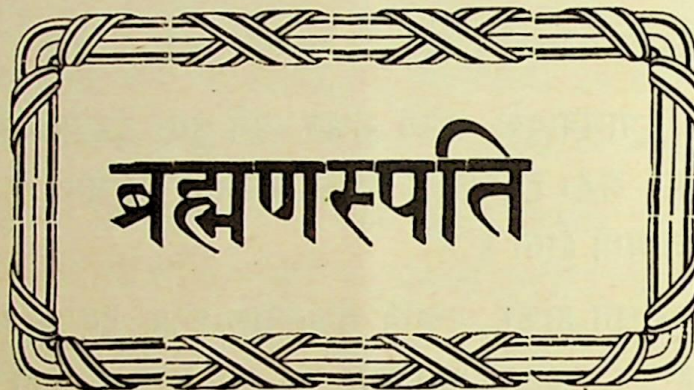
अथर्व. ६ । १०८

“ मैं ज्ञानसे युक्त, ज्ञानसे सेवित, ऋषियोंसे प्रशंसित, सबसे प्रथम उपास्य और ब्रह्मचारियों द्वारा सेवित मेधाबुद्धिका देवोंके संरक्षणके लिये स्वीकार करता हूं । जिस



मेधाबुद्धिकी उपासना ( ऋभवः ) कारीगर और ( असुराः ) असुर भी जानते हैं और जिस कल्याण कारिणी मेधाबुद्धिकी श्रेष्ठता ऋषि जानते हैं वह मेरे अंदर स्थापित करते हैं । बुद्धिमान ऋषि जिस मेधाबुद्धिको जानते हैं उससे मुझे बुद्धिमान करें । ”

इस सूक्त में मेधाबुद्धिका वर्णन है । श्रद्धा और मेधा ये दो देवताएं मनुष्य में रहकर मनुष्यकी उन्नतिका साधन करती हैं इस विषय में हरएक मनुष्य बहुत कुछ जानता है इस लिये इस विषयमें अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है । अतः यह विषय इसी स्थानपर समाप्त करके इसी श्रद्धासे उत्पन्न ज्ञान के साथ संबंध रखने वाली “ ब्रह्मणस्पति ” देवताका थोड़ासा विचार करेंगे—



ब्रह्मणस्पति और बृहस्पति ये देवताएं करीब समानार्थक ही हैं । इन में ब्रह्मका पति होनेका भाव है । यहां ब्रह्म शब्द ज्ञानवाचक है । अर्थात् ब्रह्मणस्पति का तात्पर्य ज्ञानपति या ज्ञानवान् अथवा ज्ञानी है । इस अर्थसे ही यह बात पाठकोंके मनमें उतर गई होगी कि यह शब्द भी परमात्माके समान जीवात्म परक भी हो सकता है, क्योंकि इसमें चित्स्वरूपता के कारण ज्ञानरूपता है । ब्रह्म शब्दके विषयमें जो इससे पूर्व लिखा गया है वह पाठक यहां फिर देखें, तो उसका निश्चय होगा । कि यह शब्द भी जीवात्मपरक हो सकता है ।

ब्रह्मणस्पतिका संबंध वाणीके साथ भी वेदमंत्रोंमें वर्णन किया है । वाणीका प्रेरक होनेके कारण यह मानव देहमें वाणीका प्रेरक आत्माही है । इस दृष्टिसे भी यह देवता आत्मरूप होनेमें शंका नहीं रहती । ऋग्वेदमें बृहस्पति ऋषि द्वारा देखे गये और वाणी या ज्ञानदेवताका एक सूक्त है, उसका प्रारंभ बृहस्पति शब्दसे होता है इसलिये उस सूक्तको “ बृहस्पति सूक्त ” कहते हैं । इस सूक्तमें ज्ञानका महत्त्व कहते हुए यह मंत्र आया है—



अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वासमा बभूवुः ॥

ऋ० १०।७१।७

“ आंखवाले और कानवाले सभी मनुष्य होते हैं। परंतु मनके वेगमें वे सब एक जैसे नहीं होते। ” यह सब बृहस्पति सूक्तका वर्णन मनुष्य परक ही है। इस संपूर्ण सूक्तमें मनुष्यके अंदर ज्ञानका महत्त्व कितना है, यही प्रारंभसे अंत तक बताया है। ज्ञानसे मनुष्य उन्नत होता है, ज्ञान न होनेसे अवनत होता है, विद्वानकी सर्वत्र पूजा होती है इत्यादि बातें सब मनुष्यमें ही घटनेवाली हैं, देखिये—

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।

अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि ॥

ऋ० १०।७१।२

“ छाननीसे आटा छाननेके समान ज्ञानी लोग मनसे शुद्ध वाणी ही बोलते हैं। यहां ज्ञानी ही ज्ञानके गुह्य जानते हैं। उनके भाषणमें कल्याण कारक लक्ष्मी रहती है। ”

यह ज्ञानी पुरुष का वर्णन विचार की दृष्टिसे देखने योग्य है। बृहस्पतिसूक्त का यह मंत्र स्पष्ट बता रहा है कि यह सूक्त ज्ञानी पुरुष तथा ज्ञानी पुरुष द्वारा प्रेरित हुई वाणी का वर्णन कर रहा है। इस पूर्वापर संबंध देखनेसे इस सूक्तका प्रारंभका बृहस्पति शब्द जीवात्मपर ही मानना पड़ता है, क्योंकि उसको संबोधित करके यह सूक्त कहा है ऐ-सा माननेसे ही उस शब्दकी सार्थकता विशेष रीतिसे होती है, देखिए वह प्रथम मंत्र—

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरयत नामधेयं दधानाः ।

यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥

ऋ० १०।७०।१

“ हे ( बृहस्पते ) वाणीके अथवा ज्ञानके प्रेरक आत्मन् ! नाम रखते हुए सबसे प्रथम जो वाणीकी प्रेरणा करते रहे, उनके ( गुहा ) हृदयमें जो श्रेष्ठ और ( अरिप्रं ) भला था वही ( आविः ) प्रकट हुआ अर्थात् उनकी वाणीसे प्रकाशित हुआ। ”

अर्थात् मनुष्य सबसे प्रथम जो अपनी वाणीको प्रेरित करता है, वह अपने अंदरके अच्छे भावोंको ही प्रकट करनेके हेतुसे प्रेरित करता है। वाणीकी पहिली प्रेरणाका यही कारण है। इस लिये “ हे जीवात्मन् ! तुम सदाही अपने हृदयकी अच्छी और भली भावनाको प्रेरित करनेके लिये ही अपनी वाणीको प्रेरित करो, ” यह उपदेश वेद इस मंत्रद्वारा हरएक जीवात्माको दे रहा है। यह उपदेश देनेका कारण यह है कि बालपन के पश्चात् जब मनुष्य बड़े होते जाते हैं तब अपनी वाणीका प्रयोग कपटपटुतासे करते



रहते हैं और इस कारण मानवसंघोंमें झगड़े और फिसाद होते जाते हैं । ये न होने पावें और मानव संघोंमें शांति रहे, इस लिये वाणीकी पहिली प्रेरणा किस प्रकार हुई इस विषयमें जीवात्माको ज्ञान देकर सूचित किया है कि, सदा ही उत्तम भावनासे अपनी वाणीकी प्रेरणा करनी चाहिये । इस भाव को लेकर इस मंत्रपर जितना विचार किया जाय उतना अधिक बोध मिलता है । इस लिये यहांका “ बृहस्पति ” शब्द विशेषकर जीवात्मा का सूचक ही है । अध्यात्म पक्षमें जीवात्माका बोध बृहस्पति शब्द सेभी इसी प्रकार होता है ।

## सरस्वती ।

ज्ञानपति, वाणीका प्रेरक जीवात्मा है इस विषयमें इससे पूर्व स्पष्ट कहाही है । वाणीका प्रेरक जीवात्मा है यह बात समझने के पश्चात् सरस्वती- ( वाणी )-का संबंध जीवात्माके साथ सिद्ध करनेके लिये अधिक प्रमाण ढूंढनेकी कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि वाणीका अधिष्ठान आत्माही है । आत्माका मूल प्रेरणा होनेपर ही शब्द उत्पन्न होता है । आत्मा वाक्स्रोत का मूल है, वहांहीसे धाराप्रवाह वक्तृत्व चलता रहता है, इस लिये “ सरस्वान् ” आत्माका ही नाम है, उसीका अन्य रूप स्त्रीलिंगमें “ सरस्वती ” है । “ सरस् ” का अर्थ है “ धाराप्रवाह । ” धाराप्रवाह वाला एक आत्माही है । उसका रस हरएक इंद्रियमें अनुभव किया जा सकता है और वाणी में उसका प्रवाह अधिक अनुभव में आता है । विचारी मनुष्य जब एकके पीछे दूसरा शब्द धाराप्रवाह के समान चलता हुआ देखता है, तब आत्माकी अद्भुत शक्तिके विषयमें आश्चर्य चकित होता है !!!

सरस्वती के मंत्र वेदमें अधिक संख्यामें नहीं हैं । क्योंकि इस विषयमें जो कुछ कहना है, वह वेदमंत्रोंने “ वाक् ” देवताके मंत्रोंमें कहा है । पूर्वोक्त ब्रह्मणस्पति प्रकरणमें बृहस्पति सूक्तके मंत्र उद्धृत करते हुए वाणीके विषयमें जो कहा है, वह यहां पुनः देखने योग्य है । सरस्वती वाणी है, इस विषय में किसीको शंका नहीं हो सकती, और वाणी मनुष्यकी अध्यात्म शक्ति ही है, इस लिये सरस्वती तथा वाक् आदि वैदिक देवताओंके विषय में यहां अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है ।



# अथर्ववेद के विषयमें

## स्मरणीय कथन ।

### १ अथर्व वेदका महत्त्व ।

अथर्ववेदका नाम “ब्रह्मवेद, अमृतवेद, आत्मवेद” आदि है, इससे यह आत्म-ज्ञानका वेद है, यह स्पष्ट है । इसी लिये कहा है कि—

श्रेष्ठो ह वेदस्तपसोऽधि जातो ब्रह्मज्ञानां हृदये संबभूव ॥

गोपथ ब्रा. १।९

एतद्वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वंगिरसः । येऽङ्गिरसः स रसः ।  
येऽथर्वाणस्तद्भेषजम् । यद्भेषजं तदमृतम् । यदमृतं तद्ब्रह्म ॥

गोपथ ब्रा. ३।४

चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः ॥

गोपथ ब्रा. २।१६

“( १ ) यह श्रेष्ठ वेद है, ब्रह्मज्ञानियोंके हृदयमें यह प्रसिद्ध रहता है । ( २ ) भृग्वंगिरस बड़ा ब्रह्म-ज्ञान है, जो अंगिरस है वही रस अर्थात् सत्व है, जो अथर्वा है वह भेषज ( दवा ) है, जो भेषज है वह अमृत है, वह ब्रह्म है । ( ३ ) ऋक यजु साम और ब्रह्म येही चार वेद हैं । ”

अथर्व वेदको इस वचनमें “भेषज” अर्थात् रोगदोष दूर करने वाली औषधि, “अमृत” अर्थात् मृत्युको दूर करनेका साधन तथा “ब्रह्म” बड़ा ज्ञान कहा है । ये तीन शब्द अथर्ववेदका महत्त्व स्पष्ट रीतिसे व्यक्त कर रहे हैं । और देखिये—

अथर्वमन्त्रसंप्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति ॥

अथर्वपरिशिष्ट २।५



“अथर्व वेद मंत्रकी संप्राप्ति होनेसे सब पुरुषार्थ सिद्ध होंगे ।” यह अथर्व मंत्रोंका महत्त्व है, इस वेदमें ( शांतिक कर्म ) शांति स्थापनके कर्म, ( पौष्टिक कर्म ) पुष्टि बलवृद्धि आदिकी सिद्धि के कर्म, ( राजकर्म ) राज्यशासन, समाजव्यवस्था आदि कर्म के आदेश होनेके कारण यह वेद प्रजाहित की दृष्टिसे विशेष महत्त्व रखता है । इस विषयमें देखिये—

यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वा शांतिपारगः ।

निवसत्यपि तद्राष्ट्रं वर्धते निरुपद्रवम् ॥

अथर्वपरिशिष्ट. ४।६

“जिस राजाके राज्यमें अथर्ववेद जाननेवाला विद्वान् शांति स्थापनके कर्मपर निरत रहता है, वह राष्ट्र उपद्रवरहित होकर बढ़ता जाता है ।”

## २ अथर्व शाखा ।

१ पैप्पलाद, २ तौद, ३ मौद, ४ शौनकीय, ५ जाजल, ६ जलद, ७ ब्रह्मवाद, ८ देवदर्श, ९ चारणवैद्य ये अथर्वके नौ शाखाभेद हैं । इनमें इस समय पिप्पलाद और शौनक ये दो संहितायें उपलब्ध हैं अन्य उपलब्ध नहीं हैं । इनमें थोडासा मंत्रपाठभेद और सूक्त क्रमभेद भी है, अन्य व्यवस्था प्रायः समान हैं ।

## ३ अथर्व के कर्म ।

१ स्थालीपाकः — अन्नसिद्धि ।

२ मेधाजननम् — बुद्धिकी वृद्धि करनेका उपाय ।

३ ब्रह्मचर्यम् — वीर्य रक्षण, ब्रह्मचर्यव्रत आदि ।

४ ग्राम-नगर-दुर्ग-राष्ट्र-वर्धनम् — ग्राम, नगर, क़ीले, राज्य आदि की प्राप्ति और उनका संवर्धन ।

५ पुत्रपशुधनधान्यप्रजास्त्रीकरितुरगरथान्दोलिकादिसंपत्साधकानि—

पुत्र, पशु, धन, धान्य, प्रजा, स्त्री, हाथी, घोड़े, रथ, पालकी आदि ऐश्वर्यके साधनोंकी सिद्धि करनेके उपाय ।

६ सांमनस्यम् — जनतामें ऐक्य, मिलाप, प्रेम, एकता आदिकी स्थापना के उपाय ।

७ राजकर्म — राजाके लिये करने योग्य कर्म ।

८ शत्रुत्रासनम् — शत्रुको कष्ट पहुंचानेका उपाय ।



- ९ संग्रामविजयः — युद्धमें विजय संपादन करना ।
- १० शस्त्रनिवारणम् — शत्रुओंके शस्त्रोंका निवारण करना ।
- ११ परसेनामोहनोद्वेजनस्तंभनोच्चाटनादीनि — शत्रुसेनामें मोह भ्रम उत्पन्न करना, उनमें उद्वेग-भय-उत्पन्न करना, उनकी हलचल को रोकना, उनको उखाड़ देना आदिका साधन ।
- १२ स्वसेनोत्साहपारिरक्षणाभयार्थानि — अपनी सेनाका उत्साह बढ़ाना, और उसको निर्भय करना ।
- १३ संग्रामे जयपराजयपरीक्षा — युद्धमें जय होगा या पराजय होगा इसका विचार ।
- १४ सेनापत्यादिप्रधानपुरुषजयकर्माणि -- सेनापति मंत्री आदि मुख्य ओहदेदारोंके विजयका उद्योग ।
- १५ परसेनासंचरणम् — शत्रुकी सेनामें संचार करके गुप्त रीतिसे सब ज्ञान प्राप्त करना और वहाँके अपने ऊपर आनेवाले अनिष्टोंको दूर करना ।
- १६ शत्रूत्सादितस्य राज्ञः पुनः स्वराष्ट्रप्रवेशनम् -- शत्रुद्वारा उखड़े गये अपने राजाको पुनः स्वराष्ट्रमें स्थापन करनेके उद्योग ।
- १७ पापक्षयकर्म — पतनके साधनोंको दूर करना
- १८ गोसमृद्धिकृषिपुष्टिकराणि — गौ बैल आदिकोंका संवर्धन और कृषिका पोषण करना ।
- १९ गृहसंपत्कराणि — घरकी शोभा बढ़ानेके कर्म ।
- २० भैषज्यानि — रोग निवारक औषधियां ।
- २१ गर्भादानादि कर्म — ( सब संस्कार )
- २२ सभाजयसाधनम् — सभामें जय, विवादमें जय और कलह शांत करनेके उपाय ।
- २३ वृष्टिसाधनम् — योग्य समयपर वृष्टि करानेका उपाय ।
- २४ उत्थानकर्म — शत्रुपर चढ़ाई करना ।
- २५ वाणिज्यलाभः — क्रय विक्रय आदिमें लाभ ।
- २६ ऋणविमोचनम् — ऋण उतारना ।
- २७ अभिचारनिवारणम् — अपना नाशसे बचाव करना ।
- २८ अभिचारः — शत्रुके नाशका उपाय ।



२९ स्वस्त्ययनम् — सुखसे देशदेशांतरमें भ्रमण ।

३० आयुष्यम् — दीर्घ आयुष्य की प्राप्ति ।

३१ यज्ञयाग आदि ।

इत्यादि अनेक विषय इस वेदमें आनेके कारण इसका अध्ययन विशेष सूक्ष्म दृष्टिसे करना आवश्यक है । ये सब उपाय और कर्म मनुष्यमात्रके अभ्युदय निःश्रेयसके साधक होनेके कारण मानव जातीके लिये लाभदायक हैं इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता । परन्तु यहां विचार इतनाही है कि, ये सब विषय अथर्ववेदके सूक्तोंसे हम किस रीतिसे जान और अनुभवमें ला सकते हैं । निःसंदेह यह महान् और गंभीर तथा कष्टसे ज्ञान होनेयोग्य विषय है । इस लिये यदि सुविज्ञ पाठक इसमें अपना सहयोग देंगे तोही इस गंभीर विषयका कुछ पता लग सकता है, और गुप्त विषय अधिक खुल सकता है । क्यों कि किसी एक मनुष्यके प्रयत्नसे इस कठिन विषयकी उलझान होना प्रायः अशक्य ही है ।

### ४ मनका संबंध ।

अथर्ववेद द्वारा जो कर्म किये जाते हैं वे मनकी एकाग्रतासे उत्पन्न हुए सामर्थ्यसे ही किये जाते हैं, क्यों कि आत्मा मन बुद्धि चित्त अहंकार आदि अंतःशक्तियोंसे ही अथर्ववेद का विशेष संबंध है, इस विषयमें देखिये—

मनसैव ब्रह्मा यज्ञस्यान्यतरं पक्षं संस्करोति ।

गोपथ ब्रा० ३ । २

तद्वाचा त्रय्या विद्ययैकं पक्षं संस्कुरुते । मनसैव ब्रह्मा संस्करोति॥

ऐतरेय ब्रा० ५ । ३३

अर्थात् “ ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद द्वारा वाणीपर संस्कार होकर एक भाग सुसंस्कृत होता है और अथर्ववेद द्वारा मनपर संस्कार होकर दूसरा भाग सुसंस्कृत होता है । ” मनुष्यमें वाणी और मन येही मुख्य दो पक्ष हैं । उन दोनों से ही मानवी उन्नतिके साधक अभ्युदय निःश्रेयस विषयक कर्म होते हैं ।

शरीरके रोग दूर करना हो अथवा राष्ट्रका विजय संपादन करना हो, तो ये सब कर्म मानसिक सामर्थ्यसे ही हो सकते हैं । इसी लिये अथर्ववेदने मनः शक्तिकी अभिवृद्धि द्वारा उक्त कर्म और विविध पुरुषार्थ सिद्ध करने के उपाय बताये हैं ।



## ५ शांतिकर्म के विभाग ।

समाज तथा राष्ट्रमें शांति स्थापन करना अथर्ववेद का मुख्य विषय है । वैमनस्य, शत्रुता, द्वेष आदि भावोंको दूर करके मित्रता, एक विचार, सुमनस्विता आदिकी वृद्धि करना अथर्ववेदका साध्य है । इसी कार्यकी सिद्धिके लिये अथर्ववेदका शांति प्रकरण है । इस प्रकरणमें कई प्रकारकी शांतियाँ हैं, जिनका थोड़ासा वर्णन यहां करना उचित है—

- १ भूचाल, विद्युत्पात आदिके भय निवारण करनेके लिये महाशान्ति ।
- २ आयुष्य प्राप्ति और वृद्धिके लिये वैश्वदेवी शांति ।
- ३ अग्न्यादि भयकी निवृत्तिके लिये आग्नेयी शांति ।
- ४ रोगादि निवृत्तिके लिये भार्गवी शान्ति ।
- ५ ब्रह्मवर्चस — ज्ञानका तेज-प्राप्त करनेके मार्गमें आनेवाने विघ्न दूर करनेके लिये ब्राह्मी शांति ।
- ६ राज्यलक्ष्मी और ब्रह्मवर्चस प्राप्त करनेके लिये अर्थात् क्षात्र और ब्राह्म तेज की वृद्धि करनेके लिये बार्हस्पत्य शान्ति ।
- ७ प्रजा क्षय न हो और प्रजा पशु अन्न आदिकी प्राप्ति हो इसलिये प्राजापत्या शान्ति ।
- ८ शुद्धि करनेके लिये सावित्री शान्ति ।
- ९ ज्ञान संपन्नताके लिये गायत्री शान्ति ।
- १० धनादि ऐश्वर्य प्राप्ति करने, शत्रुसे होनेवाला भय दूर करने और अपने शत्रुको उखाड़ देनेके लिये आंगिरसी शान्ति ।
- ११ परचक्र दूर हो और अपने राष्ट्रका विजय हो तथा अपना बल, अपनी पुष्टि और अपना ऐश्वर्य बढे इस लिये ऐन्द्री शान्ति ।
- १२ राज्यका विस्तार करनेके लिये माहेन्द्री शान्ति ।
- १३ अपने धनका नाश न हो और अपना ऐश्वर्य बढे इस लिये करनेकी कौबेरी शान्ति ।
- १४ विद्या तेज धन और आयु बढानेवाली आदित्या शान्ति ।
- १५ अन्नकी विपुलता करनेवाली वैष्णवी शान्ति ।



१६ वैभव प्राप्त करानेवाली तथा वास्तु संस्कार पूर्वक गृहादिकी शान्ति करनेवाली वास्तोष्पत्या शान्ति ।

१७ रोग और आपत्ति आदिके कष्टोंसे बचाने वाली रौद्री शान्ति ।

१८ विजय प्राप्त कराने वाली अपराजिता शान्ति ।

१९ मृत्युका भय दूर करनेवाली याम्या शान्ति ।

२० जलभय दूर करनेवाली वारुणी शान्ति ।

२१ वायुभय दूर करनेवाली वायव्या शान्ति ।

२२ कुलक्षय दूर करनेवाली और कुलवृद्धि करनेवाली संतती शान्ति ।

२३ वस्त्रादि भोग बढ़ानेवाली तथा कारीगरीकी वृद्धि करनेवाली त्वाष्ट्री शान्ति ।

२४ बालकोंको हृष्ट पुष्ट करके उनको अपमृत्युसे बचाने के लिये कौमारी शान्ति ।

२५ दुर्गतिसे बचानेके लिये नैर्ऋती शान्ति ।

२६ बलवृद्धि करनेवाली मारुद्गणी शान्ति ।

२६ घोड़ोंकी अभिवृद्धि करनेके लिये गांधर्वी शान्ति ।

२७ हाथियोंकी अभिवृद्धि करनेके लिये पारावती शान्ति ।

२८ भूमिके संबंधी कष्ट दूर करनेके लिये पार्थिवी शान्ति ।

२९ सब भय दूर करनेवाली अभया शान्ति ।

ये और इस प्रकारकी अनेक शान्तियां अथर्व वेदसे सिद्ध होती हैं । इनके नामोंका भी यदि विचार पाठक करेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि मनुष्य जीवन सुख-मय करनेके लिये ही इनका उपयोग निःसंदेह है । वेद मंत्रोंका मनन करके प्राचीन ऋषि मुनि अपनी उन्नति की विद्याएं किस रीतिसे सिद्ध करते थे, इसकी कल्पना इन शान्तियोंका विचार करनेसे हो सकती है । कई शान्तियोंके नामोंसे पता लग सकता है कि किस ऋषिकी खोजसे किस शांतिकर्मकी उत्पत्ति हुई । यदि वैदिक धर्म जीवित और जाग्रत रूपमें फिर अपने जीवन में डालना है तो पाठकोंको भी इसी दृष्टिसे विचार करना अत्यावश्यक है ।

विविध दृष्टियां, याग, क्रतु, मेध आदिकी जो योजना वैदिक धर्ममें है, वह उक्त बातकी सिद्धता करनेके लिये ही है । इन सबका विचार कैसा है और इनकी सिद्धि किस रीतिसे की जा सकती है इसका यथामति विचार आगे किया जायगा । परन्तु यहां निवेदन है कि पाठकभी अपनी बुद्धियोंको इस दृष्टिसे काममें लावें और जो खोज होगी वह



प्रकाशित करें । क्योंकि अनेक बुद्धियोंके एकाग्र होनेसे ही यह विद्या पुनः प्रकट हो सकती है अन्यथा इसके प्रकट होनेका कोई संभव नहीं है ।

## ६ मन्त्रोंके अनेक उद्देश्य ।

अथर्ववेदके थोड़ेसे मन्त्रोंसे इतने विविध कर्म किस प्रकार सिद्ध हो सकते हैं, यह शंका यहां उत्पन्न हो सकती है । इसके उत्तरमें निवेदन है, कि वेदके मन्त्र और सूक्त “अनेक मुख” होते हैं अर्थात् एकही सूक्त और एकही मंत्रसे अनेक उद्देश्योंकी सिद्धि होती है । मंत्रका उत्तानार्थ एक भाव बताता है, अंशका गूढ आशय कुछ विशेष उपदेश देता है, व्यंग्य अर्थ, श्लेषार्थ आदि अनेक रीतिसे अनेक उपदेश प्रकट होते हैं । इस कारण एकही मंत्र और एकही सूक्त अनेक विध उपदेश देते हैं, और इस ढंगसे अनेकानेक विद्याएं और अनेकानेक कर्म वेदसे प्रकट होते हैं और इन सबके द्वारा मनुष्यके ऐहिक और पारलौकिक सुखवृद्धिके साधन सिद्ध होजाते हैं ।

## ७ सूक्तोंके गण ।

अथर्व वेदके सूक्तों और मंत्रोंके कई गण हैं, जिनके नाम “अभय गण, अपराजित गण, सांग्रामिक गण ” इस प्रकार अनेक हैं । प्रथम कांडमें अपराजित गणके सूक्त निम्न लिखित हैं —

- १ विद्या शरस्य पितरं ० । ( १।२ )
- २ मा नो विदन् वि व्याधिनः । ० ( १।१९ )
- ३ अदारसृङ्गवतु देव ० । ( १।२० )
- ४ स्वास्तिदा विशां पतिः ० ( १।२१ )

इसके पश्चात् षष्ठ काण्डमें अपराजित गणके सूक्त निम्नलिखित हैं —

- ५ अवमन्युः ० ( ६।६५ )
- ६ निर्हस्तः शत्रुः ० ( ६।६६ )
- ७ परिवर्त्मानि ० ( ६।६७ )
- ८ अभिभूर्यज्ञः ० ( ६।९७ )
- ९ इंद्रो जयाति ० ( ६।९८ )
- १० अभि त्वेन्द्र ० ( ६।९९ )



कौनसा सूक्त किस गणमें है, यह समझनेसे उसका अर्थ करना, उसके अर्थका मनन करना और उससे बोध लेना, बड़ा सुगम हो सकता है । तथा गणोंके मंत्रोंके अंदर परस्पर संबंध देखना भी सुगम हो जाता है । इस लिये इस गणोंका विचार वेद पढ़ने के समय अवश्य ध्यानमें धरना चाहिये । हम आगे बतायेंगे कि कौनसा सूक्त किस गणमें आता है और उस का परस्पर संबंध किस पद्धतिसे देखना होता है ।

पूर्वोक्त शांतियोंमें जिन जिन शान्तियोंका संबंध राज्यव्यवस्थासे है, उन शांतिकर्मोंके साथ अपराजित गणके मंत्रोंका संबंध है, । इस एक बातसे पाठक बहुत कुछ बोध प्राप्त कर सकते हैं । एक एक गणके विषयमें हम स्वतंत्र निबंध लिखकर उसका अधिक विचार आगे करेंगे । उसका अनुसंधान पाठक करें इसीलिये यह बात यहां दर्शायी है ।

जब इन सब गणोंका विचार हो जायगा तब ही वेद की विद्या ज्ञात हो सकती है, अन्यथा नहीं । यहां यह भी स्पष्ट कहना आवश्यक है कि कई सूक्त किसी गणके साथ संबन्ध नहीं रखते अर्थात् वे स्वतंत्र हैं अथवा उनका संबंध गणसूक्तोंके समान किसी अन्य सूक्तोंसे नहीं है ।

“ स्वतंत्र सूक्त ” और “ गणसूक्त ” इनका विचार करनेके समय स्वतंत्र सूक्तके मंत्रोंका मनन स्वतंत्र रीतिसे करना चाहिये, और गणसूक्तोंके मंत्रोंका मनन संपूर्णगणों के संबंधका विचार करके ही करना चाहिये ।

## ८ अनुसंधान ।

पूर्व लेखमें “ मेधाजनन ” अर्थात् बुद्धिका संवर्धन करनेके मूलभूत नियम बताये हैं । गुरु, शिष्य तथा विद्यालय आदिका प्रबंध किस रीतिसे करना चाहिये, गुरु किस प्रकार पढ़ावे, शिष्य किस ढंगसे पढ़े और दोनों मिलकर राष्ट्रकी उन्नति किस रीतिसे करें इसका विचार पूर्व स्थलमें किया गया ।

इसके पश्चात् विद्याकी पढ़ाई शुरू होती है, जिसमें अपराजित गणका सूक्त “विद्या शरस्य पितरं” यह है । अथर्ववेदमें यह द्वितीय सूक्त है । तृतीय सूक्त भी इस वाक्यसे प्रारंभ होता है । इन दोनों सूक्तोंका विचार अब करेंगे । —



अंक ३२



[विराटपर्व]

# महाभारत।

( भाषा-भाष्य-समेत )

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवलेकर.

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

तैय्यार है ।

(१) आदिपर्व

पृष्ठ संख्या ११२५. मूल्य म. आ. से ६) रु.

और वी. पी. से ७ ) रु.

(२) सभापर्व ।

पृष्ठ संख्या ३५६ मूल्य म. आ. से २ )

और वी. पी. से २॥ )

(३) वनपर्व।

पृष्ठ संख्या १५४४ मूल्य ८) रु.

और वी. पी. से. ९ ) रु.

(४) महाभारत समालोचना

१ प्रथम भाग मू.॥) वी. पी. से ॥ (=) आने । २ द्वितीय भाग मू.॥) वी. पी. से ॥ (=) आने ।

[५] विराटपर्व ।

छप रहा है।

महाभारतके ग्राहकोंके लिये १२०० पृष्ठोंका ६ रु. मूल्य होगा ।

मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध, ( जि. सातारा )

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६ ) और वी. पी. से ७ ) निदेशके लिये ८ )



# ‘केन’ उपनिषद्।

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है—

- १ केन उपनिषद् का मनन,
- २ उपनिषद् ज्ञान का महत्त्व,
- ३ उपनिषद् का अर्थ,
- ४ सांप्रदायिक झगड़े,
- ५ “केन” शब्द का महत्त्व,
- ६ वेदान्त,
- ७ उपनिषदों में ज्ञान का विकास,
- ८ अग्नि शब्दका भाव,
- ९ उपनिषद् के अंग,
- १० शांतिमंत्रोंका विचार,
- ११ तीनों शांति मंत्रों में तत्त्व ज्ञान,
- १२ तीन शांतियोंका भाव,
- १३ ईश और केन उपनिषद्,
- १४ “यक्ष” कौन है ?
- १५ हैमवती उमा,
- १६ पार्वती कौन है ?

- १७ पर्वत, पार्वती, रुद्र, सप्तऋषि और अरुंधती
- १८ इंद्र कौन है ?
- १९ उपनिषद् का अर्थ और व्याख्या,
- २० अथर्ववेदीय केन सूक्तका अर्थ और व्याख्या
- २१ व्यष्टि समष्टी और परमेष्टी,
- २२ त्रिलोकी,
- २३ अथर्वाका सिर,
- २४ ब्रह्मज्ञानी की आयुष्य मर्यादा,
- २५ ब्रह्म नगरी, अयोध्या, आठ चक्र,
- २६ आत्मवान् यज्ञ,
- २७ अपनी राजधानीमें ब्रह्मका प्रवेश,
- २८ देवी भागवतमें देवी की कथा,
- २९ वेदका वागांभृणीसूक्त, इंद्र सूक्त, वैकुण्ठसूक्त  
अथर्व सूक्त
- ३० शाक्तमत, देव और देवताकी एकता,
- ३१ वैदिक ज्ञान की श्रेष्ठता।

इतने विषय इस पुस्तक में आगये हैं इस लिये उपनिषदों का विचार करने वालों के लिये यह पुस्तक अवश्य पढ़ने योग्य है।

मूल्य केवल १। ) रु. डाक व्यय २) है।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )



# अग्नि विद्या ।

इस पुस्तक में निम्न लिखित विषय हैं-

- १ अग्नि शब्दका भाव,
- २ अग्निके पर्याय शब्द,
- ३ पहिला मानव अग्नि,
- ४ वृषभ और धेनु,
- ५ अंगिरा ऋषि,
- ६ वैश्वानर अग्नि,
- ७ ब्राह्मण और क्षत्रिय,
- ८ जनता का केन्द्र,
- ९ सब धन संघका है,
- १० बुद्धिमें पहिला अग्नि,
- ११ मनुष्यमें अग्नि,
- १२ मर्त्योंमें अमर अग्नि,
- १३ वाणीमें अग्नि,
- १४ पुरोहित अग्नि,
- १५ शक्ति प्रदाता अग्नि,

- १६ हस्त-पाद-हीन गुह्य अग्नि
- १७ वृद्ध नागरिक,
- १८ मूकमें वाचाल,
- १९ अनेकों का प्रेरक एक देव,
- २० जीवनाग्नि,
- २१ अग्निकी दस बहिनें,
- २२ देवोंके साथ रहनेवाला अग्नि,
- २३ यज्ञका झंडा,
- २४ गुहा निवासी अग्नि,
- २५ सात संख्याका गुह्य तत्त्व,
- २६ तनूनपात् अग्नि,
- २७ यज्ञ पुरुष, यज्ञशाला, मंदिर ( चित्र ),
- २८ परमाग्नि
- २९ अग्नि सूक्त का अर्थ और व्याख्या ।

हर एक विषयको सिद्ध करने के लिये वेद के विपुल प्रमाण दिये हैं। इस पुस्तकके पढ़ने से अग्नि विद्या की वैदिक कल्पना ठीक प्रकार हो सकती है।

मूल्य १॥ ) रु. डाकव्यय ३ ) है

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध. ( जि. सातारा )



# संस्कृतपाठ माला ।

बारह पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ३ ) और वी. पीसे ४ )

प्रतिभाग का मूल्य १-) पांच आने और डा. व्य. —) एक आणा ।

अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति ।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

## १ प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाग ।

इन तीन भागोंमें संस्कृत भाषाके साथ  
साधारण परिचय करा दिया गया है ।

## २ चतुर्थ भाग ।

इस चतुर्थ भागमें संधिविचार बताया है ।

## ३ पंचम और षष्ठ भाग ।

इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष  
परिचय कराया गया है ।

## ४ सप्तम से दशम भाग ।

इन चार भागोंमें पुल्लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग और  
नपुंसक लिङ्गी नोमोंके रूप बनानेकी  
विधि बताई है ।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे उन को अल्प परिश्रमसे बड़ा लाभ हो सकता है ।

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

## ५ एकादश भाग

इस भागमें "सर्वनाम " के रूप बताये हैं ।

## ६ द्वादश भाग ।

इस भागमें समासों का विचार किया है ।

## ७ तेरहसे अठारहवें भागतकके ६ भाग ।

इन छः भागों में क्रियापद विचार की  
पाठविधि बताई है ।

## ८ उन्नीससे चौबीसवें भागतकके ६ भाग

इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय  
कराया है ।



# यज्ञकी पुस्तक

# वैदिक यज्ञ संस्था ।

मूल्य १ ) रु. डाकव्यय । )

इस पुस्तक में निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है—

## प्राचीन संस्कृत निबंध ।

- १ पिष्ट-पशु-मीमांसा । लेख १
- २ " " " " २
- ३ लघु पुरोडाश भीमांसा ।

## भाषाके लेख ।

- ४ दर्श और पौर्णमास (ले० श्री० पं० बुद्धदेवजी)
- ५ अद्भुत कुमार-संभव " "

- ६ बुद्ध के यज्ञ विषयक विचार (ले० श्री० पं० चंद्रमणिजी)
- ७ यज्ञका महत्त्व (संपादकीय)
- ८ यज्ञका क्षेत्र "
- ९ यज्ञका गूढ तत्त्व "
- १० औषधियों का महामख "
- ११ वैदिक यज्ञ और पशुहिंसा (ले० श्री० पं० धर्मदेवजी)
- १२ क्या वेदों में यज्ञों में पशुओंका बलि करना लिखा है ? (ले० श्री० पुरुषोत्तम लालजी)

यज्ञग्रंथ माला की यह प्रथम पुस्तक है । द्वितीय पुस्तक छपरही है ।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि० सातारा )

## वैदिक उपदेश माला ।

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिये बारह उपदेश हैं । इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो

सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी । मूल्य ॥ ) आठ आने । डाकव्यय- ) एक आना ।

मंत्री- स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि० सातारा )



# वैदिक धर्म के ग्रंथ ।

## १ आगम-निबंध माला ।

वेद अनंत विद्याओंका समुद्र है । इस वेद समुद्रका मंथन करनेसे अनेक " ज्ञान रत्न " प्राप्त होते हैं, उन रत्नों की यह माला है ।

- |                                     |   |
|-------------------------------------|---|
| १ वैदिक-राज्य पद्धति । मू. I- )     | १० वैदिक धर्मकी विशेषता मू. II )        |
| २ मानवी आयुष्य । मू. I )            | ११ तर्कसे वेदका अर्थ । मू. II )         |
| ३ वैदिक सभ्यता । मू. III )          | १२ वेदमें रोग जन्तु शास्त्र । मू. III ) |
| ४ वैदिक चिकित्सा शास्त्र । मू. I )  | १३ ब्रह्मचर्यका विघ्न । मू. II )        |
| ५ वैदिक स्वराज्यकी महिमा । मू. II ) | १४ वेदमें लोहेके कारखाने मू. I- )       |
| ६ वैदिक सर्पविद्या । मू. II )       | १५ वेदमें कृषिविद्या । मू. III )        |
| ७ मृत्युको दूर करनेका उपाय मू. II ) | १६ वैदिक जल विद्या मू. II )             |
| ८ वेदमें चरवा । मू. II )            | १७ आत्मशक्तिका विकास मू. I- )           |
| ९ शिवसंकल्पका विजय । मू. III )      | १८ वैदिक उपदेश माला मू. II )            |

## २ धर्म-शिक्षाके ग्रंथ

बालक और बालिकाओंकी पाठशालाओंमें " धर्म " की पढ़ाईके लिये तथा घरोंमें बाल-बच्चोंकी धार्मिक पढ़ाईके लिये ये ग्रंथ विशेष रीतिसे तैयार किये हैं ।

### ( १ ) बालकोंकी धर्म-शिक्षा.

प्रथम भाग । प्रथम श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये । मू.-)

### ( २ ) बालकोंकी धर्म-शिक्षा ।

द्वितीय भाग । द्वितीय श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये । मू.= ) दो आने ।

### ( ३ ) वैदिक-पाठमाला !

प्रथम पुस्तक । तृतीय श्रेणीकी धर्मशिक्षा के लिये । मू.= )



# ३ स्वयंशिक्षक-माला ।

## १ वेदका स्वयं-शिक्षक ॥

प्रथम भाग । मू. १॥ ) डेढ रु० ।

## २ वेदका स्वयं-शिक्षक

द्वितीय भाग । मू० १॥ ) डेढ रु० ।

# ४ योग साधन माला ।

“ योग साधन ” का अनुष्ठान करनेसे शारीरिक आरोग्य, इंद्रियोंकी स्वाधीनता, मानसिक शक्तिका उत्कर्ष, बुद्धिका विकास और आत्मिक बलकी प्राप्ति होना संभव है । इसलिये यह “ योग-साधन ” हर एक मनुष्यको करने योग्य है ।

## १ संध्योपासना ।

योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तक में लिखी है । मू० १॥ ) डेढ. रु०

## १ संध्याका अनुष्ठान ।

( यह पुस्तक पूर्वोक्त “ संध्योपासना ” में संमिलित है, इस लिये “ संध्योपासना ” लेनेवालों को इसके लेनेकी आवश्यकता नहीं है।) मू॥) आठ आने ।

## ३ वैदिक पाण विद्या ॥

प्राणायाम करनेके समय जिस प्रकार “ मनकी भावना ” रखनी चाहिये, उसका वर्णन इस पुस्तकमें है । मू. १ ) एक रु. ।

## ४ ब्रह्मचर्य ॥

इस पुस्तकमें “ अथर्व वेदीय ब्रह्मचर्य सूक्त ” का विवरण है । ब्रह्मचर्य साधनके योगासन तथा वीर्य रक्षण के अनुभव सिद्ध उपाय इस पुस्तक में दिये हैं । यह पुस्तक “ सचित्र ” है । इसमें लिखे नियमों के अनुसार आचरण करनेसे थोड़ेही दिनोंमें वीर्यस्थिर होनेका अनुभव निःसन्देह होता है । मू० १।) सवा रु.

## ५ योग साधन की तैयारी ॥

जो सज्जन योगाभ्याससे अपनी उन्नति करना चाहते हैं, उनको अपनी तैयारी किस प्रकार करनी चाहिये, इस विषयकी सब बातें इस पुस्तकमें लिखी हैं । मू. १ ) एक रु. ।

## ६ आसन ।

इसमें उपयोगी आसनों का वर्णन चित्रोंके समेत दिया है । मू. २ ) रु.

## ७ सूर्यभेदन व्यायाम ॥

( सचित्र ) बलवर्धक योगके व्यायाम । मू. ॥। )  
“ योग साधन के अन्य पुस्तक छप रहे हैं ।  
मुद्रित होतेही सूचना दी जायगी ।



# ५ यजुर्वेद का स्वाध्याय

१ यजुर्वेद अ० ३० की व्याख्या।

“नर-मेध” मनुष्योंकी उन्नति का सच्चा साधन।  
वैदिक नरमेध कितना उपयोगी है, इस विषयका ज्ञान  
इस पुस्तकके पढ़नेसे हो सकता है। मू०१) एक रुपया

२ यजुर्वेद अ. ३२ की व्याख्या

“सर्व-मेध” एक ईश्वर की उपासना। य. अ. ३२ में  
एक ईश्वरकी स्पष्ट कल्पना बताई है। मू. ॥)

३ यजुर्वेद अ. ३६ की व्याख्या

“शांति-करण”। सच्ची शान्तिका सच्चा उपाय  
व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और जगत्में सच्ची शांति कैसी  
स्थापन की जा सकती है, इस के वैदिक उपाय इस  
पुस्तक में देखिये। मूल्य ॥ )

## ६ उपनिषद् ग्रन्थ माला ।

तत्त्वज्ञान के भंडारमें “उपनिषद् ग्रंथ” अमूल्य  
ग्रंथ हैं। तत्त्वज्ञान की अंतिम सीमा इन ग्रंथोंमें  
पाठक अनुभव कर सकते हैं। जीवनके समय ये  
ग्रंथ उच्च तत्त्वज्ञान के द्वारा सदाचार की शिक्षा  
देते हैं और मृत्युके समय अमृतमय शांति प्रदान  
करते हैं। हर एक मनुष्यके लिये इन ग्रंथोंका पठन, मनन  
और अधिक विचार करनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

१ “केन” उपनिषद्

इस पुस्तकमें केन उपनिषद् का अर्थ और स्पष्टी-  
करण, अथर्ववेदीय केन सूक्त की व्याख्या और देवी  
भागवतकी कथाकी संगति बता दी है। उमा, यक्ष  
आदि शब्दोंके अर्थ वैदिक प्रमाणों से निश्चित करके  
बताया है, कि उनका स्थान आध्यात्मिक भूमिकामें  
कहां है और उसकी प्राप्ति का उपाय क्या है।  
मू. १। ) रु.

## ७ देवता-परिचय-ग्रन्थमाला ।

“वैदिक देवताओंका सूक्ष्मज्ञान” होनेके विना  
वेदका मनन होना असंभव है, इसलिये इस ग्रंथमाला  
में “देवताओंका परिचय” करानेका यत्न किया है  
पुस्तकोंके नामोंसेही पुस्तकों के विषयका बोध हो  
सकता है-

१ रुद्र देवताका परिचय मू. ॥ )

२ ऋग्वेदमें रुद्र देवता मू. ॥ = )

३ ३३ देवताओंका विचार मू० = )

४ देवता विचार मू० = )

५ वैदिक अग्निविद्या मू० १॥ )

“अन्य देवताओंका विचार और परिचय कराने  
वाले ग्रंथ तैयार हुए हैं, शीघ्रही मुद्रित होंगे।

## ८ ब्राह्मण बोध माला । शत-पथ-बोधामृत । मू० १। )

मुद्रक तथा प्रकाशक-श्रीपाद दामोदर सातबलेकर, स्वाध्याय मंडल भारत मुद्रणालय, औंध ( जि. सातारा )



# Employment for millions STUDENTS' OWN MAGZINE

A Monthly English Teacher--Careers for Young men a speciality.

ANNUAL SUBSCRIPTION WITH SUPPLEMENTS, Rs. 3.

GET YOUR COPY FOR MARCH NUMBER RESERVED FOR 6 ANNAS STAMPS.

SAMPLE COPY POSITIVELY NO.

APPLY TO-

CAPITAL INDUSTRIAL BUREAU, RAM GALLI, LAHORE.

## वैदिक उपदेश

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिए बारह उपदेश हैं। इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी। मूल्य ॥ ) आठ आने। डाकध्यय - ) एक आना।  
मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

देश देशान्तर का ज्ञान प्राप्त करने का  
अपूर्व साधन

विद्यार्थियों को परीक्षा पास करने का

सुगम उपाय

## भूगोल

भूगोल विषयक हिन्दी का एकमात्र सचित्र मासिकपत्र। पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बिहार उडोसा, मध्य प्रान्त और बरार के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत।

“भूगोल” में ज्योतिष, यात्रा, व्यवसाय, पशु वनस्पति अनुसंधान आदि भूगोल के सभी अंगों पर उच्च कोटि को मौलिक लेख प्रकाशित होते हैं। ( पिछले दो वर्षों के लेखों और लेखकों की सूची मुफ्त मंगाकर स्वयं देख लीजिये )।

वार्षिक मूल्य ३ )

मैनेजर “भूगोल” मेरठ।

## योगमीमांसा

त्रैमासिक पत्र

संपादक— श्रीमान् कुवल्यानंद जी  
महाराज।

कैवल्यधाम आश्रममें योग शास्त्र की खोज हो रही है जिस खोजका परिणाम आश्चर्यजनक सिद्धियोंमें हुआ है, उन आविष्कारोंका प्रकाशन इस त्रैमासिक द्वारा होगा। प्रत्येक अंकमें ८० पृष्ठ और १६ चित्र दिये जायेंगे।

वार्षिक चंदा ७ ) ; विदेशके लिये १२ शि०  
प्रत्येक अंक २ ) रु.

श्री. प्रबंधकर्ता-योगमीमांसा कार्यालय, कुंजवन.  
पोष्ट लोणावला, ( जि. पुणे )







# महाभारतकी समालोचना ।

अपूर्व  
ग्रंथ ।

प्रथम भाग ।

अवश्य  
पढ़िये

इस में निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है —

विद्वान् लोगोंके लिखे आदरणीय बड़ा ग्रंथ,  
महाभारतके पठनसे लाभ,  
महाभारतके विषयमें लोकमान्य तिलक और  
महात्मा गांधी जी का मत,  
महाभारत सब शास्त्रोंका सार ग्रंथ है,  
महाभारत की रचना करनेवाले भगवान् वेदव्यास,

महाभारत में मिलावट है वा नहीं ?  
महाभारतका महत्त्व, छः खंडियों वाला चक्र,  
विवाह के समय राष्ट्रीयता का विचार,  
बकासुर को लीला,  
एकताका पाठ,  
सम्राट्का बध ॥

मूल्य केवल ॥ ) डा. व्य० = ) बी. पी. से ॥ = )

द्वितीय भाग ।

इसमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है—

देवलोक, त्रिविष्टप, देवयोनी, भूतजाती, पिशाच  
जाती, गंधर्व जाती, यक्षजाती, गणदेव, गणोंकी  
गणिका, गणदेवोंके भेद, विवाह की पांच पद्धतियां,  
अप्सरा, असुर स्त्रियां, गणराज, नाग लोक, प्राचीन  
भारत वर्ष ( चित्र ), स्वर्गारोहण, स्वर्गधाम, प्राचीन

देशव्यवस्था ( चित्र ), यज्ञ, ऋतुभजी देव, यज्ञ  
विरोधी राक्षस, यज्ञोंमें देवोंको उपस्थिति, व्यवन  
ऋषि, यज्ञका पारितोषिक, देवभाषा, इंद्रका चुनाव, इंद्र  
और उपेन्द्र, नारायण, भूतनाथ, यज्ञभाग के लिये युद्ध,  
इंद्रका वज्र, देवोंके शस्त्रास्त्र, असुरोंकी कारीगरी ।

इत्यादि अनेक विषय इसमें होनेसे यह ग्रंथ महाभारतके इतिहासपर बड़ा प्रकाश डालता है ।

मूल्य केवल ॥ ) डा. व्य० = ) बी. पी. से ॥ = )

मंत्री-स्वाध्याय मंडल औंध, ( जि. सातारा )

मुद्रक तथा प्रकाशक— श्री. दा. सातवळेकर, भारतमुद्रणालय ।

स्वाध्याय मंडल औंध ( जि. सातारा )



वर्ष ८, अंक २ क्रमांक ८६ माघ संवत् १९८३, फरवरी सन् १९२७

# वैदिक धर्म

वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-सचिव-मासिक-पत्र

रूपकर तैयार है ।

## महाभारत की समालोचना

प्रथम भाग और द्वितीय  
भाग ।

प्रति भागका

मूल्य ॥ ) डाकव्यय ३ )

वी. पी. से ॥ २ )

पं. त्री. — स्वाध्यायमंडल औंध

( जि. सातारा )

संपादक-श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ।

स्वाध्यायमंडल, औंध ( जि. सातारा )

वार्षिकमूल्य — म० आ० से ४ ) वी. पी. से ५॥ ) विदेशके लिये ५ )



१ मातृभूमिसे सुखप्राप्ति	२५	६ चित्रपरिचय	४०
२ कृपया ध्यान दीजिये	२६	७ अथर्ववेदका स्वाध्याय	१७ — ४०
३ आयुष्मान्भव	२८	८ विजय सूक्त	१७
४ चतुर्विध पुरुषार्थका साधन	३०	९ आरोग्य सूक्त	२५
५ योग जिज्ञासाकी कहानी	३७	१० जल सूक्त	३३

## आसनों का चित्रपट !

“ आसनोंके चित्र पट ” की बहुत ही मांग थी, क्यों कि आसनों का व्यायाम लेनेसे सहस्रों मनुष्योंका स्वास्थ्य सुधर चुका है. इस लिये आसन व्यायाम से स्वास्थ्य लाभ होनेके विषयमें अब किसीको संदेह ही नहीं रहा है । अतः लोग सब आसनोंके एक ही कागज पर छपे हुए चित्रपट बहुत दिनों से मांग रहे थे । मांग बहुत होने के कारण वैसे चित्रपट अब मुद्रित किये हैं और ग्राहकों के पास खाना भी हो गये हैं । २०-३० इंच कागज पर सब आसन दिखाई दिये हैं । यह चित्रपट कमरे में दिवार पर लगाकर उसके चित्रोंको देख कर आसन करनेकी बहुत सुविधा अब होगई है ।

मूल्य केवल = ) तीन आने और डाक व्यय- ) एक आना है ।

स्वाध्याय मंडल

औध ( जि. सातारा )







वैदिकधर्म—



श्रीमंत सरदार त्र्यंबक गणेश उर्फ  
नाना साहेब आपटे. देवास.



वर्ष ८

अंक २

क्रमांक ८६



माघ

संवत् १९८३

फरवरी

सन १९२७

# वैदिकधर्म

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर ।

स्वाध्यायमंडल, औंध ( जि. सातारा )

मातृभूमिसे सुखप्राप्ति ।

भूमे मातर्निधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।

संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥ ६३ ॥

अथर्ववेद १२।१

अर्थ - हे ( मातः भूमे ) मातृभूमि ! ( मा ) मुझे ( भद्रया ) कल्याण अवस्थासे ( सु प्रतिष्ठितं ) युक्त ( निधेहि ) रख । हे ( कवे ) काव्यमयी मातृभूमि ! तू ( दिवा ) प्रकाशकेसाथ ( सं विदाना ) संबंध रखती हुई ( मा ) मुझे ( श्रियां ) संपत्ति और ( भूत्यां ) ऐश्वर्य में ( धेहि ) धारण कर ।

भावार्थ — जो मातृभूमिके भक्त कल्याणके मार्गसे उन्नतिका साधन करते हैं, वे ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित होकर संपत्ति और ऐश्वर्यसे परिपूर्ण होते हैं । इसलिये हरएक मनुष्य ज्ञान विज्ञान से युक्त हो कर मातृभूमिकी भक्ति करे और स्वयं-सेवक होकर मातृभूमिकी सेवा करें ।





# कृपया ध्यान दीजिये!

( १ )

## श्री० स्वा. श्रद्धानंद स्मारक निधि ।

श्री० स्वा० श्रद्धानंदजीका स्मारक ऐसा है कि जिसके लिये हर एक आर्य पुरुषको तथा वैदिक धर्मके हर एक ग्राहकको यथा शक्ति आर्थिक सहायता अवश्यही करना चाहिये। इस स्मारक के लिये धन देनेवाले महाशय अपना धन "श्री० मंत्री, श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्तभवन, लाहौर" के पास सीधा भेज दें।

( २ )

## वैदिक यज्ञ संस्था । द्वितीय भाग ।

वैदिक यज्ञ संस्था पुस्तक का द्वितीय भाग तैयार हुआ है और यह शास्त्रार्थ सहायता देने वाले ग्राहकोंके पास भेजा गया है। जो अन्य लोग चाहते हैं वे शीघ्र ही मंगा लें। मूल्य केवल १ ) रु. रखा है डाकव्यय, ०३ है। ग्राहक इस बातका ध्यान अवश्य रखें कि इस पुस्तक के मंगवाने के समय भाग पहिला या दूसरा लिखना अत्यंत आवश्यक है।

( ३ )

## छूत और अछूत ।

छूत और अछूत के विषयमें विस्तृत ग्रन्थ छपकर तैयार है। प्रथम भाग छप चुका है और द्वितीय भाग छप रहा है। इस पुस्तकमें छूत अछूत के विषयमें हर एक पहलूसे विचार किया है। श्रुतिस्मृति ब्राह्मण, इतिहास पुराण, तथा सूत्रग्रंथ आदि सभी ग्रंथोंके प्रमाणोंसे यह ग्रंथ सुभूषित है, इसलिये इस की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है।

छूत अछूतका प्रश्न इस समयके राष्ट्रीय महत्वका प्रश्न है। राष्ट्रीय सभामें तथा धर्म मंडली में इसकी

चर्चा हो रही है और सबके सन्मुख अछूत निवारण करनेका विचार बड़े जोरसे आ रहा है। इस लिये इस सामयिक महत्वके प्रश्नका परिपूर्ण विचार करने वाला यह ग्रंथ इस समय के लिये अत्यंत उपयोगी है और जबतक पूर्ण रीतिसे अछूतताका निवारण नहीं होता तबतक इसका अत्यंत महत्व है। "छूत अछूत" पुस्तकके प्रथम भागका मूल्य १ रु. ( १० व्य ३ ) है। शीघ्र मंगाइये। पुस्तक करीब १८० पृष्ठोंकी है और सेकड़ों प्रमाण वचनोंसे परिपूर्ण है।

## पोषक वर्ग ।

स्वाध्याय मंडल के पोषक वर्गका चंदा १०० ) रु. भेजने से फिर कोई चंदा भेजनेकी जरूरत नहीं और स्वाध्याय मंडल द्वारा मुद्रित हुआ पुस्तक उनको मिल सकता है। इस प्रकार जिन सज्जनोंने प्रारंभ में पोषक वर्गका चंदा दिया उनको इस मास तक करीब ६० ) रु. के पुस्तक पहुंच चुके हैं। इस लिये पोषक वर्गका चंदा एक बार देनेमें हर हालतमें ग्राहकोंका लाभ है। गत दो मासमें निम्नलिखित सज्जनोंने अपना नाम पोषक वर्गमें दाखल किया है-

श्री. कर्मदेवीजी, नानकाना साहेब १००)  
श्री. तापी बाईजी, मुंबई १००)  
श्री. प्रागजी प्राणजीवनजी, मुंबई १००)  
डा. साहब दयालजी, अमृतसर १००)  
मे. ढोढाराम चूडामणीजी, बेगमपुर १००)  
श्री. हरजीवनदास भगवानदास, सूरत १००)

कुल ६००

## किस्तोंसे पोषक वर्गका चंदा ।

कई लोगोंने किस्तोंमें पोषक वर्गका चंदा देनेका वचन दिया और उस प्रकार ये सज्जन मासिक



किश्तों द्वारा चंदा भेज रहे हैं इनका चंदा निम्न लिखित वसूल हुआ है—

म. बाबूरामजी, लाहौर	५० )
“ अ. वि. देशपांडे, राठोगांव	३० )
	कुल ८० )

जो इकट्ठा सौ रु. नहीं भेज सकते, यदि वे मासिक २५ ) भेजकर चार पांच मास में पोषक वर्गका चंदा पूर्ण करेंगे तो उनका चंदा सुगमतासे यहां पहुंच सकता है और जिस दिन उनका १०० ) चंदा पूर्ण होगा उस दिनसे उनका नाम पोषक वर्ग में दाखल किया जायगा। पाठक इस सहूलियतसे लाभ उठावें।

### स्थिर सहायक वर्ग ।

जो पूर्वोक्त प्रकार १०० ) रु. का दान नहीं दे सकते वे सौ रु. कर्जाके रूपमें दो वर्षोंके लिये दे सकते हैं और उनको प्रति वर्ष १० ) दस रु. के पुस्तक जो वे चाहेंगे मिल सकते हैं, इस वर्गमें निम्न लिखित चंदा वसूल हो चुका है—

म. गणपतरावजी गोरे, सक्कर	५०० )
“ बिहारीलालजी वासुदेव प्रसाद,	
जयपुर	१०० )
“ ठा. रामस्वरूप सिंहजी, रसडा	१०० )
“ बलभद्रजी विद्यार्थी, देहली	१०० )
	कुल ८०० )

### अन्य सहायता ।

इस मासतक निम्न लिखित सहायता प्राप्त हो चुकी है—

म. बलदेव नरोत्तमजी, सारंग	१० )
म. वी. एस्. मराठे, मुंबई (मासिक)	१० )
गुप्तदान	१ )

कुल २१

इस प्रकार चंदा इस समयतक प्राप्त हुआ है। इन महानुभावों का हार्दिक धन्यवाद है।

यदि पाठक पोषक वर्गके सौ ग्राहक बढ़ायेंगे तो स्वाध्याय मंडलका आर्थिक प्रश्न हमेशाके लिये हल हो जायगा। क्या पाठक इसका विचार करेंगे ?

### महाभारत का पूर्ण चंदा ।

फरवरी सन १९२७ के अंत तक महाभारत का पूर्णचंदा केवल ५२ ) रु. है, आगे बढ़ेगा। इसलिये जो पाठक इस सहूलियत से लाभ उठाना चाहते हैं वे लाभ उठावें। सहूलियतका चंदा किश्तोंसे नहीं लिया जाता, यह सब इकट्ठा ही यहां प्राप्त होना चाहिये।

निवेदक,

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर.  
स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

## आयुष्मान् भव ।

दीर्घायु बनो !

सब लोग जानते हैं कि बहुत प्राचीन समय से यह प्रथा चली आई है कि “ आयुष्मान् भव ” का आशीर्वाद दें। इस आशीर्वाद का अर्थ है कि “ दीर्घायु बनो ”। हम कह सकते हैं कि जिस काल से यह आशीर्वाद शुरू हुआ उसी समय से हमारे धर्म में यह दृढ़ विश्वास रूढ़ हुआ कि ‘ दीर्घायु बनना ’ मनुष्यों को प्रयत्नसाध्य है। जो काम कोई

कर नहीं सकता उसे वही काम करने को कहना उचित नहीं। सज्जन और बड़े लोग जब उपदेश करते हैं तब उस मनुष्य का ‘ अधिकार ’ देखकर ही उपदेश करते हैं। इसीसे ‘ दीर्घायु बनो वा बनने की कोशिश करो ’ यह आशीर्वाद अनादि काल से दिया जाता है। इसका भाव ही यह है कि दीर्घायु बनना वा न बनना मनुष्य के आधीन है। देखिए—



शतं वर्षाणि जीवतु ॥

साम मन्त्र ब्रा. १।२।१

शतं शरद् आयुषो जीवस्व ॥

कौशीतकी ब्रा. उ. २।११

शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः ॥

अथर्व वेद ३।१२।६

इन वचनों में एक ही बात भिन्न भिन्न प्रकार से बतलाई गई है। इन वचनों का भाव है कि “ इस मनुष्यलोक में आयु के सौ वर्ष पूर्ण होने तक जीना चाहिए ”। बड़े बड़े तत्त्वज्ञानी आचार्य इन वचनों द्वारा वर्तमान समय के लोगों को उपदेश करते हैं कि दीर्घायु बनो। साथही वे यह भी कहते हैं कि “ तुम्हारी आयु बढ़ाना वा न बढ़ाना तुम्हारे ही हात में है । ” यदि मनुष्य नियम से चले तो उनकी आयु अवश्य ही बढ़ेगी। यदि मन माना नियम - विरुद्ध बर्ताव करें तो आयु घटेगी। इस सत्य नियमको जानकर ही ऋषियों ने संसार को उपदेश किया कि “ आयु की वृद्धि करो ”। इस सम्बन्ध में अथर्व वेद की श्रुति ध्यान देने योग्य है—

आयुषायुष्कृतां जीवाऽऽयुष्मान् जीव मा मृथाः ॥

प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुद्गाद्वशम् ॥

अथर्व वेद १९।२७।८

( १ ) आयुको बढ़ाने वाले के सदृश आयु को बढ़ाकर जीवित रहो। ( २ ) उत्तम आयु से युक्त हो कर जीवित रहो। ( ३ ) मरो मत, अकाल मृत्यु से न मरो। ( ४ ) जो प्राणशक्ति आत्मशक्ति से युक्त है उससे जीवित रहो। ( ५ ) अकाल ही में मृत्यु के आधीन न हो जाओ।

यह मन्त्र स्पष्ट और सुबोध है। सनातन वैदिक सिद्धान्त है कि “ स्वतः के प्रयत्न से दीर्घायु बनना सम्भव है ”। यही सिद्धान्त उपरोक्त मन्त्र से सिद्ध होता है।

उपरोक्त मन्त्र का ‘ आयुष्कृत् ’ शब्द मनन करने योग्य है। आयु करनेवाले अर्थात् अपने प्रयत्न से अपनी आयु बढ़ाने वाले जो सज्जन होते हैं उन्हें ‘ आयुष्कृत् ’ कहते हैं। आयु को बढ़ाने वाले जिन

उत्तमोत्तम नियमों से अपनी आयु बढ़ाते हैं, उन्हीं नियमों पर चलकर दूसरे भी अपनी आयु बढ़ा लें। उपरोक्त मन्त्र का यही प्रथम उपदेश है और वह प्रथम ही कहा गया है।

उक्त मन्त्र का दूसरा उपदेश है अपनी आयु को उत्तम बनाकर जीवित रहना चाहिए। इसका आशय यह है कि केवल जीवित रहना इष्ट नहीं, आवश्यक है ‘ उच्च बनकर जीवित रहना । ’

तीसरा उपदेश है कि कोई भी अकाल में आने-वाली मृत्यु से न मरे। मनुष्य से जितना प्रयत्न हो सकता है उतना उसे करना चाहिए, आहार विहार आदि बातोंमें बहुत सावधानी रखना चाहिए और हर तरह की कोशिश कर अपमृत्यु के कब्जे में न जाना चाहिए। उपरोक्त मन्त्र में यही सावधान होने का उपदेश है।

चौथा उपदेश यह है कि जिस प्रकार आत्मशक्तियुक्त लोग आत्मबल से जीवित रहते हैं उसी तरह हर एक मनुष्य आत्मिक शक्ति प्रबल करने का प्रयत्न कर अपनी आयु बढ़ावे।

इसी प्रकार हर एक मनुष्य को चाहिए कि हर एक प्रयत्न कर अपनी आयु बढ़ावे और कोई भी अपमृत्यु का महमान न बने।

उपरोक्त मन्त्र का यह पूर्ण भाव जब हम देखते हैं तब हमें ज्ञात हो जाता है कि सनातन वैदिक धर्मका सिद्धान्त क्या है।

आजकल हमारे धार्मिक लोग भी इस विषयमें असमझ में पड़े हैं। यह प्रथा सी हो गई है कि यदि कोई अकाल में मर जाय तो लोग इसका दोष नसीब को देते हैं। किन्तु यह अधार्मिकता है। सच्चे धर्म का सिद्धान्त है कि ‘ मनुष्य अपने प्रयत्न से अपनी आयु बढ़ा सकता है । ’ ऋषि मुनि यही बात कहते आये हैं और उन्होंने स्वतः के प्रयत्नों से अपनी आयु बढ़ाई भी थी। वे जो कुछ बता रहे हैं वह उनका स्वतः का अनुभव है। यही अनुभव हम भी कर सकते हैं। हमारे सब व्यवहार, आहार, विहार आदि उचित रीतिसे चलते हों तो हमारी आयु बढ़ सकती है। जो बात प्रयत्नों से सिद्ध हो सकती



है उसमें नसीब का क्या संबंध? “ लोगों का प्रयत्न-वाद नष्ट हो जाने से दैववादित्व बढ़ता है ” इस नियम के अनुसार पहले के प्रयत्नवादि ऋषिमुनियों की संतान अब दैववादि बन गई है। निःसंदेह यह बड़े दुःख की बात है। प्रत्येक मनुष्य को स्मरण रखना चाहिए कि हमारे व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय न्हास की जड़ इसी बात में है। इसी संबंध का एक मंत्र और देखिए—

कस्ये मृजाना अतियंति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतरं  
नवीयः ॥ आप्यायमानाः प्रजया धनेनाथ स्याम  
सुरभयो गृहेषु ॥

अथर्ववेद १८ । ३ । १७

“ आत्मिक शक्ति के छत्रों से शुद्ध होकर, नया दीर्घ आयुष्य प्राप्त करते हुए वे अपनी कठिनाइयों को दूर करें। प्रजा और धनकी वृद्धि कर हम अपने अपने घरमें सुगंध बनें । ”

इस मन्त्र में भी प्रति दिन नवीन आयु प्राप्त करने की कल्पना है। यह बात इससे अधिक स्पष्ट कर कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रतिदिन आयु की वृद्धि के नियमों से चले तो हर रोज नवीन आयु प्राप्त होती है। जिस प्रकार प्रवीण व्यापारी उचित रीति से व्यापार कर हर रोज अपने धन की वृद्धि करता है, उसी तरह आयु रूप धन की वृद्धि भी की जा सकती है।

उक्त मन्त्र में चार उपाय बतलाए गए हैं जिनसे रोज आयु की वृद्धि हो सकती है। वाचक उनकी ओर ध्यान दें—

( १ ) आत्मिक शक्ति से अपनी शुद्धता करो अर्थात् कायिक, वाचिक तथा मानसिक पवित्रता रखो, ( २ ) प्रगति के मार्ग में जो रुकावटें आवें उन्हें दूर करो । ( ३ ) प्रजा तथा धन की वृद्धि करो । और ( ४ ) अपने मकान में सुगंध रूप बनकर आनन्दसे रहो ।

इन चार उपायों से मनुष्य की आयु तथा सुखकी वृद्धि होती है। शरीर, मन तथा वाचा की शुद्धि हो जावे तो आयु अवश्य ही बढ़ेगी। आत्मिक बल बढ़ जाने से भी मनुष्य की आयु बढ़ना स्वाभाविक है। बिल्कुल कमजोर मनुष्य भी आत्मिक बल

के कारण बलवान् मनुष्य से अधिक जीवित रहता है। प्रायः दुराचारी से धार्मिक मनुष्य दीर्घायुषी होता है। कुछ अपवादों को छोड़ दें तो उपरोक्त नियम सर्वत्र लागू होता है।

प्रगति के मार्ग में आने वाली रुकावटों को दूर करने से जो उन्नति होती है, उससे साधारणतः देश के लोगों का उत्साह बढ़ता है। उत्साह बढ़ने से आयु भी बढ़ती है। इसी लिए साधारणतः कह सकते हैं कि जिस स्वतंत्र देश के लोगों में पूर्ण उत्साह रहता है वहाँ के लोग पूर्णायुषी होते हैं। तथा जिस परतन्त्र देश के लोग निरुत्साही होते हैं, वा जिन लोगों को जरा भी उम्मोद नहीं होती उन गुलामी वृत्तिके लोगों में अल्प आयु मनुष्य उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार विचार करने से वाचकों पर प्रकट होगा कि व्यक्तिगत, सामाजिक, तथा राजकीय अडचनों के दूर करने का आयु की वृद्धिसे कैसा निकट सम्बन्ध है।

प्रजा अर्थात् संतति और धन की वृद्धि करना आयु बढ़ाने का तीसरा उपाय है। जिस घर में संतति और संपत्ति की कमी नहीं है उसमें ऐहिक सुख-साधन यथेच्छ हो सकते हैं। इस प्रश्न का विचार दूसरी तरह से भी हो सकता है। किन्तु यहाँ उसी कुटुम्ब का विचार कर्तव्य है जिसने निम्न लिखित तीन बातें साध ली हैं; अर्थात् ( १ ) शरीर, वाचा, और मन को पवित्र कर आत्मिक शक्ति बढ़ा ली है, ( २ ) वैयक्तिक, सामाजिक तथा राजनैतिक अडचनें दूर की हैं; और ( ३ ) संतति तथा संपत्ति बढ़ाई है। ऐसे ही लोग दीर्घ आयु प्राप्त कर सकते हैं। यदि वाचक उक्त मन्त्र से ध्वनित होने वाले अर्थ पर विचार करें तो उन्हें बहुत लाभ हो सकता है।

इसके एक और उपाय है। वह है “ अपने घर में सुगंध रूप होकर रहना ”। दुर्गंध रूप नहीं बनना। जहाँ कस्तूरी होती है वहाँ सब लोग आकर्षित होते हैं। इसी तरह जो मनुष्य सुगंध रूप बनता है, उसी की ओर सब लोग आकर्षित होते हैं। मनकी प्रसन्नता का यह उपाय है। जो मनुष्य ऐसा चतुर



( ३० )

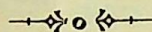
बनता है कि उसके पास सब लोग आते हैं और हर एक बात में उसकी सलाह ले अपना लाभ साधते हैं, उसी की प्रशंसा होती है। ऐसे चतुर मनुष्य का मन प्रसन्न रहता है और मनकी प्रसन्नता का परिणाम निःसंदेह दीर्घ आयुष्य प्राप्ति है।

कुछ अपवाद छोड़ दिये जाय तो उपरोक्त चारों उपाय निःसंदेह आयुष्यवर्धक हैं। जो मनुष्य ये चारों उपाय करेगा उसकी आयु निःसंदेह बढ़ेगी। यह भी देखना होगा कि आयु किन कारणों से घटती है। उक्त चार गुणों के विरुद्ध आचरण ही आयु का नाश करता है। देखिए—

(१) आत्मिक शक्ति का अभाव, काया, वाचा तथा मन की अपवित्रता, (२) मार्ग की अडचनों के कारण निराशा, (३) संपत्ति और संतति का नाश; (४) समाज में दुर्गंध रूप बनकर रहना, इन चार कारणों से आयु क्षीण होती है।

राजनैतिक दृष्टि से जो देश परतन्त्र हैं उनमें प्रायः ये चारों दुर्गुण पाये जाते हैं और स्वतन्त्र देश में उक्त चारों गुण दिख पड़ते हैं। इतिहास देखने से विदित होगा कि महाराष्ट्र में जब तक मराठों का स्वतन्त्र था राज्य तब तक वृद्ध मनुष्य दिखाई देते थे। किन्तु अब दिन ब दिन - अल्पायु लोग ही उत्पन्न होते जाते हैं। सम्पूर्ण इतिहास इसी बात को सिद्ध करेगा। तब भी पराधीन लोगों को निराश न होना चाहिए। क्यों कि यह भी तो एक रुकावट है इसे भी दूर करना आवश्यक है।

अब तक जो विवेचन हुआ उससे आप को विदित हुआ कि सनातन वैदिक धर्म की दृष्टि से दीर्घ आयु प्राप्त करने के सम्बन्ध में धर्म के वचन क्या हैं। आप लोगों को चाहिए कि उनपर विचार करें।



## चतुर्विध पुरुषार्थ का साधन ।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाध्नत ।

अथर्ववेद ।

### १ आर्योंका राज्य !

बहुत प्राचीन कालमें सम्पूर्ण भारतवर्ष में आर्यों काही साम्राज्य फैला हुआ था। थोड़े ही समय में इस प्रचण्ड साम्राज्य का एक एक हिस्सा गिरता गया और उसके स्थानमें अर्ध-चन्द्र को धारण करने वाली मुसलमानों की सत्ता का खेल दृष्टि पथ में आने लगा। तत्पश्चात् थोड़े ही समय में मुसलमानों के दबावसे सिर ऊँचा उठाने वाली मराठों की सत्ता

हमारे सामने आती है। फिर वह नष्ट होकर उसके अनेक टुकड़े देश में बिखरे हुए पड़े हैं। यह करुण दृश्य देखकर हृदय व्याकुल होता है। ऐसी व्याकुलता में जब हम किसी और रम्य एवं मनोहर दृश्य को देखने के लिये आशातीत आंखों से चित्रपट की ओर नजर डालते हैं, तब हमें 'समाप्त' अक्षर नजर आते हैं और हम निराश हो जाते हैं। इस प्रकार की निराशा का अनुभव कई लोग कर भी चुके हैं।



## २ वर्तमान अवस्था ।

किन्तु उसमें समाधान की बात केवल इतनीही है कि वह दृश्य हमें इस विचारसे मजबूर करता है कि पहले हमारी योग्यता क्या थी, हमारी वर्तमान स्थिति कैसी है, पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता के वर्तमान घोर संग्राम में हमारा हाल क्या होगा, वर्तमान समय में पाश्चिमात्य राष्ट्रवैभव के शिखरपर किस प्रकार पहुँच गये हैं और हम लोग उनकी ओर छोटासा मंह लिये किस प्रकार टकटकी लगाये हैं इत्यादि । इस जिज्ञासा का फल यह हुआ है कि लोग अपनी त्रुटियों को जानने का तथा उनका पूर्ति करनेका यत्न करनेकी तैयारी कर रहे हैं ।

## ३ आज कलके कार्य ।

लोगों को जगानेवाले अखबार चलाना, थोड़े खर्च में शिक्षा देनेवाले स्कूल और कालेज निकालना, छोटे, बड़े कारखाने खोलना, यूरप, अमरिका, जापान आदि देशोंमें विद्या सीखने के लिए विद्यार्थी भेजना, राष्ट्रीय सभा जैसी सभाओं का संचालन करना आदि काम इसी प्रवृत्ति के चिन्ह हैं । इस प्रकार हमारे देश के विचारशील और देशभक्त लोग देश-हित-साधन में मग्न हैं । परंतु खेद है कि उनका ध्यान एक महत्व की बात पर उतना नहीं है, जितना आवश्यक है । सोचो तो सहो कि अपने देशकी शिक्षित जनता निर्बल और अल्पायु क्यों है?

इस विषय पर ध्यान देते हुए कोई दिखाई नहीं देता । यह विषय है हम लोगों की, विशेषतः शिक्षित लोगों की शारीरिक सम्पत्ति का न्हास । हमारे देश के नेताओं के ध्यान में यह बात नहीं आई कि देश के सब तरह के आंदोलन सफलता पूर्वक पूरे करने में जिस शक्ति की आवश्यकता है, क्या वह शारीरिक शक्ति हम लोगों में है ? और अभी जो शक्ति हम लोगों में विद्यमान है, क्या वह कायम बनी रहेगी ? सच बात तो यह है कि स्वास्थ्य की बिल्कुल पर्वाह न कर देशहित की दूसरी बातों में लग जाना वैसा ही है जैसा जहाज की मजबूती की ओर ध्यान न देकर नाविकका, औजार, भोजन की सामग्री

आदि भरपूर लेकर जलयात्रा करना है । या यह काम उतनी ही मूर्खता का है जितना एक मालीका बड़े भारी बगीचे की तैयारी करना है, जब कि उसके कुएँ का पानी खतम हो रहा हो ।

## ४ आगे कैसा होगा

हम लोग जापान में जाकर आले दर्जे की औद्योगिक शिक्षा पाकर आए या इंग्लैण्ड में जाकर सिविल सर्विस में या कूपर्स हिल कालेज में पहिले नम्बर से पास हुए या हिन्दुस्थान में हमने बड़े बड़े कारखाने शुरु किये; किन्तु यदि हम लोगों का स्वास्थ्य ही ठीक न हो, हम लोगों के आयुष्य की रेखा ही मजबूत न हो, हम लोगों में उसाह की कमी हो, तो इन बातों से क्या लाभ होगा ? और हमारे कारखाने या दूसरी दूसरी संस्थाएँ कितने दिन जीवित रह सकेंगी ? हम लोग बड़े अभिमान से कहते हैं कि सौ साल पहले तक हमारे पुरखा ७५ वर्ष की अवस्था में भी हट्टे - कट्टे रहते थे । किन्तु वर्तमान समय के शिक्षित लोग ४० । ४५ साल में ही मर जाते हैं !! ।

पिछली पीढ़ी की ४० वर्ष की स्त्री में जो ताकत रहती थी वह वर्तमान समय में २५ वर्ष के नौजवान तरुणी में भी नहीं दिखाई देती ! १५।१६ साल की अवस्थावाले बालक ऐसे दिखते हैं जैसे १०।१२ सालके हों । २५ वर्ष के नौ जवान युवकों में कोई अग्निमांघ से पीडित दीखते हैं, कोई कफक्षय से । ऐसी दशा में हम इस ओर ध्यान न देकर नित्य के काम में ऐसे भिडे हैं जैसा टमटम का घोड़ा । यह कैसा भयानक व्यामोह है ? यूरोप के लोग शारीरिक स्वास्थ्य में हम लोगों से कितने श्रेष्ठ हैं ! हम लोगों की जो जवानी है वह उनका लडकपन है । हम लोगों की जो अघेड अवस्था है वह उनकी जवानी होती है और जिस समय हम लोग बूढ़े हो जाते हैं उस समय वे अघेड अवस्था में पहुँचते हैं । ५० वर्ष की अवस्थामें यहां मनुष्य बूढ़ा और नौकरी के लिये अयोग्य माना जाता है; किन्तु यूरोप में पचास वर्ष का मनुष्य मध्य उम्रका माना जाता है । उनका ध्यान व्यायाम की ओर हिन्दुस्थानियों



से अधिकरहते हुए भीस्वास्थ्य की दृष्टि से थोड़ी ही कमी दिखने पर उनके नेताओं ने एकदम चिल्लाना शुरू किया कि 'नई पीढ़ी नष्ट हो रही है' और इस प्रकार लोगों को सचेत करना आरम्भ कर दिया । खुद सैण्डोने कहा है कि 'The Youth of this country is dying' और लोगों को सावधान करने के लिये तथा लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित करने के लिए वह हमेशा उनसे इस बात की शिकायत करता रहा । एक लेखक ने इंग्लैण्ड को 'a nation of weak—ling' कहा है और गरीबों के स्वास्थ्य को सुधारने की चर्चा की है । इसी प्रकार एक समय इस बात की चर्चा हो पड़ी और वृत्त-पत्र तथा मासिक-पत्रों तथा पत्रिकाओं में बहस हुई और अन्त में इसकी जांच करने के लिये तथा उपाय बताने के लिए एक उपसभा नियुक्त कियी गयी । अब हिंदुस्थान में देखिये । यहाँ दिन प्रतिदिन अखाड़े बंद हो रहे हैं और मर्दानी खेल कम हो रहे हैं ब्रह्मचर्य पालनादिकेलिये लोगोंका उत्साह जैसा बढ़ना चाहिए वैसा बढ़ता नहीं है । शरीर का उत्साह शक्ति और आयुष्य कम हो रहा है । ये बातें स्पष्ट दिख रही हैं, तब भी हम कुछ नहीं करते । इसे क्या कहना चाहिये ?

शारीरिक शक्तियों का न्हास स्पष्ट रीति से देखते हुए अपन उसकी उपेक्षा करते हैं इससे मालूम होता है कि हम लोगों की बुद्धि पर कोई मोह का परदा पड़ा हुआ है जिसके कारण हम शारीरिक शक्ति की योग्यता नहीं समझते । यदि क्षणभर के लिये चारों ओर दृष्टि डालें तो विदित होगा कि हर समय में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की कहावत चरितार्थ होती है ।

### ५ उपनिषद् का उपदेश ।

बलं वाव विज्ञानाद्भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवन्तामे को बलवानाकंपयते । स यदा बली भवत्यथोत्थाता भवति...बोद्धा भवति कर्ता भवति बलेन वै पृथिवी तिष्ठति...बलेन देवमनुष्या...बलेन लोकस्तिष्ठति

बलमुपास्वेति ॥१॥ यो बलं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्-  
बलस्य गतं तत्रास्य यथा काम चारो भवति ॥२॥  
छांदोग्य उपनिषद् ७।८। १ - २

“बल निःसंदेह ज्ञान से अधिक श्रेष्ठ है, देखो, सौ ज्ञानी मनुष्योंको अकेला बलिष्ठ मनुष्य कंपा सकता है । जब बली होता है तब उठता है...जानता है, कार्य करता है ... बलसे पृथ्वी खड़ी है—बलसे देव मनुष्यकार्य करते हैं, ...बलसे सब लोग ठहरे हैं, इस लिये बल की उपासना कर ॥ १ ॥ जो बल को ब्रह्म मानकर उपासना करता है उसकी गति उसके बलके अनुसार हो जाती है ॥ २ ॥ ”

जिस ओर अधिक बल है फिर वह बल द्रव्य-बल होवे, बुद्धि-बल होवे या शरीर-बल होवे—उस ओर विजय है । तब स्पष्ट ही है कि व्यवहार में इस प्रकार का अनुभव प्राप्त करते हुए बल की उपेक्षा करना उचित नहीं । कोई कहेगा कि हम भारतवासियोंके पास शरीर बल नहीं है किन्तु बुद्धिबल है, इस लिए हमें फिकर करने की आवश्यकता नहीं । क्यों कि हम दूसरों को बुद्धिबल से जीत लेवेंगे । किन्तु यह उनकी भूल है । अपने बुद्धि-बल से मनुष्य ताकत और संख्या में अधिक रहने वालों को जीत सकता है सही, पर कब? जब दोनों दलों के बुद्धि-बल में महत् अन्तर हो । किन्तु, यदि बुद्धि में अन्तर नहीं है तो वही राष्ट्र दूसरों पर अधिकार चलाता है जिसमें शरीर बल है । हमें जिन राष्ट्रों से वर्तमान समय में स्पर्धा करनी है वे राष्ट्र बुद्धिमें हमसे कम नहीं प्रतीत होते । और यदि हों भी तो बहुत थोड़े अंश में । तब यदि हमारे शरीर में शक्ति नहीं है तो उन्हें बुद्धि, बल से जीतने की आशा करना फजूल है । साथही एक राष्ट्र दूसरे से शरीर बल में कमजोर रहते हुए भी जिस प्रकार के बुद्धि-बल से उसे जीतने की आशा करता है, उस प्रकार का बुद्धि-बल भी हम लोगों के पास अब नहीं है । क्यों कि यह बुद्धि-बल केवल न्याय, वैशेषिक वेदान्त सेही नहीं प्राप्त होता । इन शास्त्रों के अध्ययन से जो बुद्धि-बल प्राप्त होता है उससे राष्ट्रों के जीतने में सहायता नहीं होती



## ६ बुद्धिबलकी घमंड ।

“ रोम ने ग्रीस को तलवार के बलसे जीत लिया किन्तु ग्रीसने अपने बुद्धिबल से रोम को जीत लिया । इसी तरह यद्यपि इंग्लैण्डने हिन्दुस्थान के निवासियों के देह जीत लिये हैं तब भी आयों ने अपनी बुद्धिमत्ता से यूरोपीयनों की बुद्धिको जीत लिया है । ” इसी कारण हम लोगों को चाहिये कि हम न्याय, वेदान्त, वा भूगोल, इतिहास आदि विषयों का अध्ययन जारी रखें फिर शारीरिक बल भलेही घटता रहे ।

ऊपर लिखे वाक्य के आधार पर उपर्युक्त विचार का प्रचार करनेवाले को यह भी देखना होगा कि ऊपर के वाक्य में जो बुद्धि-जय बतलाया गया है उसके कारण प्राचीन कालमें ग्रीक ग्रंथोंकी रोम में कुछ अधिक विक्री होती होगी, या ग्रीक पण्डित का रोम में कुछ आदर होता होगा, पर इतनेहीसे ग्रीक प्रजा को रोमन लोगों के सन्मुख सिर झुकाना पड़ता था या उन्हें रोमन लोगों को जो कर देना पड़ता था वह तो कम न हुआ । वर्तमान समय में इंग्लैण्ड में या जर्मनी में कुछ संस्कृत ग्रंथों की विक्री होती है या भगवद्गीताका यूरोपमें आदर बढ़ गया है, वेदकी प्रशंसा वे करने लगे हैं या कविवर रवीन्द्रनाथ जी को देखने के लिये उन देशों में हजारों लोग इकट्ठे होते होंगे । किन्तु इससे यह मतलब नहीं कि भारतवासियों के प्रति यूरोप के निवासियों का आदर बढ़ा है । इतना ही नहीं सांप्रतमें भारतवासी हर जगह अपमानित किये जाते हैं । तब बतलाइये इस बुद्धिबल पर क्या अपन अवलम्बित रह सकते हैं ? हरगिज नहीं । हम लोगों को चाहिये कि भिन्न भिन्न प्रकार के बुद्धि-बलके भेदों को भी जान लें । शिवाजी, राणा प्रताप, रणजीतसिंग नेपोलियन, फ्रेड्रिक दीग्रेट, आदि पुरुष बुद्धिमान थे, उसी तरह जगन्नाथ पण्डित, सायनाचार्य, अरिस्टाटल, तथा अन्य कवि आदि पुरुष भी बुद्धिमान थे । किन्तु पहले प्रकार के बुद्धिमानों के स्थान में दूसरे प्रकार के बुद्धिमानों

को रख देने से क्या बनेगा ? क्यों कि दोनों प्रकार के पुरुषों की बुद्धिका सामर्थ्य भिन्न है ।

## ७ विजयका साधन ।

इस बुद्धि के बल को थोड़ी देर के लिये छोड़ दें और सामान्य रीतिसे देखें तो विदित होगा कि राष्ट्रों की स्पर्धा में ( दूसरी बातों में विशेष अन्तर न होने पर ) उसी राष्ट्र को जीत होती है जिसकी भुजाओं में बल है, जिसमें शस्त्रोंका बल अधिक है, जिसका सांघिकबल प्रबल है । यह बात नई नहीं है । आजतक जो जो राष्ट्रीय युद्ध हुए उनमें ( जैसे पानीपत, वाटर्लु आदि, में ) यही बात सिद्ध हुई है । लड़ाई में दौंव-पेंच रह जाते हैं और दो सिपाही एक दूसरे से लड़ने को भिड़ जाते हैं, तब ताकत ही काम देती है ।

यही तत्त्व ( दूसरी बातों में विशेष अन्तर न होने पर ) हर प्रकार के संग्राम में दिखाई देता है । शरीर--बल तथा पराक्रम का सम्बन्ध जानना हो तो आज दिनतक जो राष्ट्र शूरता के लिये प्रसिद्ध हैं या जिन्होंने शूरता से परदेशों को आधीन कर लिया है उनकी शारीरिक स्थिति देखना चाहिये सम्पत्तिमान् तथा शारीरिक-सामर्थ्यवान् राजपूत, रोमन, तथा ग्रीक लोगों का इतिहास इसी बात की गवाही देता है । इससे स्पष्ट होता है कि शरीर-बल बहुत ही अधिक महत्व की बात है । हमारे कहने का मतलब यह नहीं है कि अकेले शरीर-बल से सब बातें साध्य हो जावेंगी । किन्तु संसार में अपनी श्रेष्ठता कायम करने में जिन गुणों की आवश्यकता होती है वे अधिकतर शरीर-बल के अनुगामी होते हैं । इसीलिये शरीर-बल का महत्व अधिक है ।

## ८ शरीरका महत्व ।

शारीरिक सम्पत्तिको तुच्छ समझकर उसकी अवहेलना करनेवालों को स्मरण रखना चाहिये कि दुष्ट का सुष्ट, बेइमान से ईमानदार, दुर्व्यसनीसे निर्व्यसनी बनना बहुत अधिक अंशमें मनुष्यके



आधीन है; पर अंध को दृष्टि दिलाना, वृद्ध को तरुण बनाना, उस की ताकत के बाहर है। कोई असाधारण व्यक्ति पचीस वर्ष की अवधि में कायर तथा डरपोक मनुष्यों को शूर-वीर, तथा परवशता में फँसे हुए लोगों को स्वतन्त्र बना सकता है किन्तु जिन्होंने अपने शरीर की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया और इसीसे जिनके फेफड़े कमजोर होगये हैं या भगज सत्व-हीन हो गया है ऐसे लोगों को साक्षात् धन्वन्तरी भी सिक्ख या गुरूओं के सदृश बलवान तथा लडाक नहीं बना सकता ।

इस देश में धीवरसे वाल्मिकी ऋषि बन जाने के उदाहरण मिलते हैं, किन्तु ऐसे उदाहरण नहीं मिलते जिनमें, लोगों के फेफड़े जन्म से कम जोर हैं, जिनके मस्तिष्क में जन्मसे कोई दोष है, जिनके रक्ताशय आदि भीतरी अंग दुर्बल हो गये हैं, उनके वे दोष नष्ट होकर वे फिर से चंगे और तंदुरुस्त हो गये हों। अधूरे वेदान्ती मनुष्य को बुद्धि और आत्मा की तुलना में शरीर हीन भलेही मालूम होता हो, पर उन्हें स्मरण रखना होगा कि जो काम शरीर से होता है वह और किसी से नहीं हो सकता। इसीलिये कहा है कि 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।' शरीर ही सचमुच सच्चा धर्मका साधन है। दुष्ट कौरवों का संहार करने के लिये श्रीकृष्णचन्द्रजी को भी अर्जुन जैसे, अस्त्र-विद्या-विशारद देह की आवश्यकता हुई। इन बातों में जो गूढ़ तत्त्व भरे हैं उनपर विचार करने से विदित होगा कि सर्व गुण-सम्पन्न देह की योग्यता कितनी भारी है। जिस प्रकार गृहस्थ-आश्रम दूसरे आश्रमों से कम महत्व का मालूम होता है किन्तु जब विचार करनेपर पता चलता है कि शेष आश्रम गृहस्थ-आश्रम के सहारे से ही चलते हैं। तब ज्ञात होता है कि गृहस्थ आश्रम की योग्यता कितनी भारी है। मनुष्य के शरीर का हाल ऐसा ही है। नष्ट हुआ ज्ञान फिर प्राप्त कर सकते हैं, पर नष्ट हुआ स्वास्थ्य शायद ही कभी मिल सकता है। सृष्टिके नियम यदि न्याय अन्यायके सत्य-असत्य के सच्चे दर्शक हैं (और जिस प्रमाण में सृष्टिकी सजा कड़ी होगी उसी प्रमाण में अपराध

का महत्व यदि बड़ा होगा) तो माननाही होगा कि बुद्धि की उपेक्षा से शरीर की उपेक्षा अधिक दोषपूर्ण है। मनुष्य ज्ञान प्राप्त करने में कैसा भी लापरवाह क्यों न हो या, समय समय पर नीति के नियमों का उल्लंघन करनेवाला भी क्यों न हो, पर इन दोषों के कारण उसे ऐसी कड़ी सजा नहीं होती, जैसे, अकाल मृत्यु हो जाना या वंश क्षय होना ।

## ९ ईश्वरीय दण्ड ।

किन्तु यदि मनुष्य शरीरके साथ लापरवाहीसे पेश आता हो या स्वास्थ्य के नियमों के बिल्कुल विपरीत चलता हो, तो उसे सृष्टि के नियम के अनुसार देहदण्ड मृत्यु होगा। यही नहीं किन्तु वह निःसंतान हो जावेगा। यह बात सर्वत्र सिद्ध है कि जो पुरुष स्वास्थ्य की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देते और बहुत अधिक मानसिक कष्ट करते हैं, उनके सन्तान होती ही नहीं, यदि हुई भी तो वह निर्बल होती है; और आगे की थोड़ी ही पिढियों बाद, वह कुटुम्ब नष्ट हो जाता है। प्राचीन काल के बड़े बड़े बुद्धिमान लोग जिनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, तथा वर्तमान समय के प्रसिद्ध विद्वान इसी सिद्धान्त के उदाहरण हैं !!! पाठक इसका अनुभव अपने प्रांतमें कर सकते हैं ।

सारांश यह कि मनुष्य देह सब पराक्रमों एवं पुरुषार्थों का साधन है। किसी प्रसिद्ध योद्धा को पराक्रम दिखलाने का साधन उसका शस्त्र ही होता है, उसी प्रकार आत्मा का साधन देह है। इस कलहमय संसार में जिस किसी को विपक्षी पर विजय प्राप्त करनी हो, उसे इसशरीर रूपी साधनकी अत्यन्त आवश्यकता है। उसे चाहिए कि वह इस शरीररूप शस्त्र को साफ और तेज बनाए रखे। अपनी शरीर-सम्पत्तिपर आगामी पीढियों की शरीर-सम्पत्ति निर्भर है। यह देह रूपी पूंजी अपने पूर्वजों ने अपने हाथ में सौंप दी है। यह अनमोल पूंजी है। यदि इसे बड़ा न सकते हो तो हमें इतना अवश्य ही करना चाहिए कि वह जितनी है उतनी ही बनी रहे और अपना कर्तव्य है कि जिस दशामें अपने पूर्वजों ने उसे अपने को सौंपा है उसी दशा में अपन उसे अगली पीढी को दें। जो बालक दरिद्री होते हैं वे आग



चलकर धनवान हो जाते हैं, जो अज्ञानी होते हैं वे ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं; किन्तु जो बालक जन्मसे पंगु होते हैं, शरीरसे दुर्बल होते हैं वे बहुधा आगे भी वैसे ही रहते हैं। इसीसे अपने स्वास्थ्य की और इसीका परिणाम स्वरूप अपनी सन्तान के स्वास्थ्य की उपेक्षा करना महत् पाप है। वंशपरम्परा से चला आया हुआ गांव या जागीर यदि कोई मनुष्य खो देवे और अपनी सन्तान को भीख मांगना आवश्यक कर देवे, तो जिस प्रकार वह अपने आगामी वंशजों की गालियां खाता है, उसी प्रकार अपने स्वास्थ्य को लापवाही से गमाकर संसार में निर्बल तथा अल्पायुषी प्रजा उत्पन्न करनेवाला बाप अपनी सन्तान के शाप के तथा महत्पातकी नाम के योग्य होगा।

## १० ध्यान दीजिये ।

श्रेष्ठ जातियोंमें स्वास्थ्य का न्हास हो रहा है और हम लोग उसे चुप बैठे देख रहे हैं। यह अदूर-दर्शिता का लक्षण है। अनेकानेक राष्ट्र उस मौके की ताक में बैठे हैं। जब कि उन्हें इस देशपर झटपट मिलेगा। हम लोगों को ऐसे राष्ट्रों से मुकाबला करना है और हमारी सभ्यता का प्रचार उनमें करना है जो ज्ञान में तथा शरीर बल में हमसे इस समय श्रेष्ठ हैं। इस संग्राम में यदि जीते जी विजय प्राप्त करनी हो तो हम लोगों को फिकर करनी चाहिये कि हमारा स्वास्थ्य, हमारी शरीर-सम्पत्ति कायम रहे और बढ़े। विश्व विद्यालय की एम्. ए; एम्. डी; वा एल्. एल्. बी. की परीक्षाओं में प्रथम श्रेणीमें प्रथम आनेवाले किन्तु ३० वा ४० वर्ष की अवस्था में दम्मा या कलेजे की बीमारी से मर जानेवाले सैकड़ों जीवों से देश को कुछ भी लाभ नहीं है। देश को लाभ है उन लोगों से, उन पुरुषों से जो युनिवर्सिटी में तीसरे दर्जे में भले ही उत्तीर्ण हुए हों या युनिवर्सिटी का मुंह भी जिन लोगों ने देखा नहीं है किन्तु ऐसे उद्योग-धन्धों में लगे हों, या ऐसे कारखाने निकाल रहे हों जिनसे यूरोप के कारखानों से मुकाबिला कर सकें या ८०, ९० वर्ष तक जीवित रह

कर स्वदेश के हित-साधन में कमर कस कर लगे हों। क्या हम लोगों को उस शरीर-सम्पत्ति के सम्बन्ध में अत्यन्त उदासीन होना उचित है जिसके अभाव के कारण हमारे विद्वान तथा नेता पुरुष अल्पायुषी हो रहे हैं और जिस शरीर-संपत्ति के प्राप्त करने में यूरोपकी जातियां इतना समय और इतना पैसा खर्च कर रही हैं?

## ११ दूसरों की तैयारीयां

इंग्लैंड में मर्दानी खेलों के कितने ही अखाड़े हैं? वहाँ कसरत करने, खेल खेलने, तैरने, कुश्ती लड़ने आदि के कितने सुभीते हैं? कितने ही लॉग खेल देखने जाया करते हैं? और वे कैसी उत्सुकता से तथा कैसी दिलचस्पी से इन खेलों को देखते हैं? अब हमारे देश में देखिये। पहले के समान अब अखाड़े नहीं, पहले के समान कुश्तियां होती नहीं? हमारे युवक गण कुछ तो पढाई के बोझ से किन्तु अधिकतर व्यसनों के फंदे से तथा परीक्षा की वृथा फिकर से दुबले हो रहे हैं; हमारे देश का क्षत्रिय वर्ग पश्चिमी सुधारों के द्वारा सहज प्राप्त व्यसनों के आधीन होकर दुर्बल एवं स्वाभिमानरहित हो रहा है? लोगों को पट्टा बनरी तथा निशाणा मारना तो पसंद है ही नहीं, किन्तु घोड़े की सवारी भी उनकी शान के खिलाफ हो रही है !! इस दीन दशा पर दृष्टिपात न कर परिस्थिति का बिलकुल विचार न कर देशका दिन-ब-दिन दुर्बल तथा शक्ति-हीन होते चले जाना क्या हमारे लिए लांछन नहीं है।

देश की उन्नति के लिये औद्योगिक शालाएँ, औद्योगिक परिषदें, राष्ट्रीय सभाएं आदि अनेक संस्थाएँ बन रही हैं और उनमें लाखों रुपये खर्च हो रहे हैं। किन्तु कैसा आश्चर्य है कि देश के लिये अतीव आवश्यक एवं प्रथम श्रेणीकी बात पर हम लोगों का ध्यान ही नहीं है। नवीन कलाओं की उन्नति, कारखानों की वृद्धि, तथा राष्ट्रीय सभा के सदस्य सभाओं से भारतीयों में एकता होने की जितनी आवश्यकता देशको है, उतनीही या उससे कुछ मात्रा में अधिक ही आवश्यकता



इस बात की है कि देश में होनेवाला शरीर-सम्पत्ति का न्हास रोक दिया जाय, तथा भारतीय कारखानों के चालक तथा राष्ट्रीय सभाओं के अध्यक्ष तथा इन सभाओं में भिन्न भिन्न प्रस्ताव उपस्थित करनेवाले सज्जन जो दिनों दिन अल्पायुषी हो रहे हैं, दीर्घायुषी हों ।

## १२ भयानक अवस्था ।

आज कल किसीभी व्यक्ति को देखिये, चाहे वह ब्राह्मण होवे या अब्राह्मण, धनवान होवे या गरीब, शिक्षित होवे या अपढ़, वह लडके के स्वास्थ्य का जरा भी फिकर न करके इसी चिन्ता में पड़ा रहता है कि वह लडका थोड़े समय में अधिक कक्षाओंकी पढाई किस प्रकार पूरी करे, या अधिक परीक्षाएँ किस प्रकार पास कर लेवे । इस प्रकार विचार करने वालों में कई तो बेचारे इसमें होने वाले स्वास्थ्य के नाश को जानते ही नहीं और कई ऐसे मोह जाल में पड़े हैं कि स्वास्थ्य के नाश को जानकर भी उसका महत्व नहीं समझते । दूसरे जिनका अनुकरण करते हैं, उन्हीं युरपीय लोगों का उदाहरण इसी बात में हमलोग बिलकुल भूल जाते हैं । युरपीय लोग पूर्ण रीति से जानते हैं कि पराक्रम, शरीर-स्वास्थ्य और व्यायाम तथा मर्दों के खेलों का कार्य कारण सम्बन्ध क्या है । इसी लिये वे क्रिकेट, फुटबाल, आदि खेलों का महत्व बढ़ाते हैं तथा कोशिश करते हैं कि लोगोंकी चाह बढे ।

इस बात को ध्वनित करनेकेलिये कि उनकी शारीरिक सम्पत्ति एवं पराक्रम का कारण ये खेल ही हैं, वे हमेशा कहा करते हैं, “जिस दिन इंग्लैण्ड के लोगों की इन खेलों की प्रीति घट जायगी, उसी दिन से इंग्लैण्ड का न्हास शुरू हो जायगा ।” इसी तरह वे अच्छी तरह जानते हैं कि लडकों का रटारट कर किताबें याद करना और शरीर की खराबी करना मूर्खता है । यहां तक कि एक ग्रंथकर्ता ने बड़े अभिमान के साथ लिखा है, “इंग्लैण्ड में ऐसे स्कूल अबतक तो नहीं दिखाई देते जहां के शिक्षक उस बालक को

नमूना मानते हों जो व्यायाम की ओर ध्यान न दे कर छातीपर किताबें रखकर दिनरात रटा करता है ।” परन्तु बड़े दुःख की बात है कि हम भारत-वासियों का वर्तव्य इस उपदेश के बिलकुल विपरीत है । अंग्रेज लोग कहते हैं कि ‘हम लोगों का साम्राज्य तभी तक रहेगा, जब तक हम शरीर सम्पत्ति में श्रेष्ठ हैं ।’

किन्तु हम लोगों की शिक्षित समाज में शरीर-संपत्ति का न्हास होते देखकर भी हम लोग उस ओर ध्यान ही नहीं देते । क्या यह बात योग्य है ? देश के लिये यह बात नुकसान कारक है कि लोगों का स्वास्थ्य बिगड कर वे कायर तथा कमकुवत होवें । हमारे नेताओं का कर्तव्य है कि वे देखें कि लोग कमजोर तथा कायर तो नहीं हो रहे, और उपाय करें जिससे कि वे कमजोर न होवें । हमारे नेताओं ने इस कर्तव्य का पालन उचित रीतिसे नहीं किया है । यदि हमारे नेताओं को यह प्रश्न पूछा जाय कि “क्या आपके पास वह हिम्मत है जिसकी दो राष्ट्रों के बीच के झगडे में आवश्यकता होती है और जिसके बलपर अपना संरक्षण कर सकते हैं ? तथा इस हिम्मत की जड जो शरीर-संपत्ति है क्या वह आपके पास है ? जो शरीर-सामर्थ्य आपके पास कुछ समय पहले था, क्या उतना ही अब भी है ?” तो हम नहीं कह सकते उसका उत्तर वे उचित रीतिसे दे सकेंगे । जब तक इस प्रश्न का उत्तर वे योग्य रीतिसे नहीं दे सकते तब तक यह नहीं कह सकते कि नेताओं ने अपना कर्तव्य पूर्ण किया है । सुधारक तथा पुरानी लकीर के फकीर दोनों इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये उत्तरदायी हैं । हम आशा करते हैं वे दोनों इस प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश करेंगे ।

“गुरुकुल विद्या प्रणाली, ब्रह्मचर्य पालन और तपका जीवन ” इनका अपने बलके साथ जो संबंध है देखिये और विचारीये कि सांप्रतकी दुःस्थिति के साथ उसका क्या संबंध है ?

धार्मिक लोग इसका विचार करें ।



## योग जिज्ञासा की कहानी ।

( लेखक- श्री. पं. अभय देव. शर्माजी विद्या अलंकार )

( ८३ वे अंकसे )

### ५ लंबी बीमारी ।

यह तो कहने की आवश्यकता नहीं कि पीछे कहे हुए सब यत्नों के-पढाई छुड़ाना, नाना औषध पिलाना, भोजन बदलना, व्यायाम कराना आदि के-होने पर भी मैं दुबला ही रहा और मेरा रोग नहीं गया। कब्ज की यह दशा थी कि कई बार सात सात दिन तक शौच नहीं होता था और मैं प्रायः अनीमे द्वारा शौच किया करता था। अन्तिम दिनों में भूख इतनी मारी गयी थी कि सचमुच मुझे यह ज्ञान नहीं रहा था कि भूख क्या होती है, क्योंकि घंटी बजती थी और अन्य लोग भोजन खाने जाते थे इसी लिये मैं भी कुछ खा लेता था। ऐसी अवस्थामें सप्तम श्रेणी के अन्त में मेरी कोष्ठबद्धता का पूरी तरह इलाज करने के लिये मुझे शय्याशायी किया गया। कुछ महीने गुरुकुल में पड़ा रहा, फिर लाहौर में प्रसिद्ध डाक्टरों का इलाज होता रहा और अन्त में जब निराशा ही हो गयी तो मेरे पिताजी ( जो कि अब हमीरपुर जिले में थे ) मुझे हमीरपुर ले गये यह सब कथा वै. ध. के पाठक जानते हैं। वहां अन्त में एक यूनानी हकीम के इलाज से मैं इतना अच्छा हुवा कि मुझे प्रतिदिन एक बार स्वयं शौच होने लगा और मैं चारपाईसे उठ खड़ा हुवा। एवं लग भग ९ महीने बाद मैं आषाढ में गुरुकुल वापिस आया। किन्तु यहां आते ही मुझे फिर कब्ज हो गयी। यहां दो महीने की छुट्टियां भी होनेवाली थी अतः १०, १५ दिन बाद ही मुझे फिर हमीरपुर भेज दिया गया जहां से कि मैं फिर ४ महीने लगाकर आया। आ

कर अष्टम श्रेणी की परीक्षा उत्तीर्ण कर नवम श्रेणी में हो गया। अब यह मान लिया गया कि मेरे लिये गुरुकुल का जलवायु अच्छा नहीं है अतः अब से प्रतिवर्ष मुझे २, ३ महीने के लिये हमीरपुर भेज दिया जाने लगा। यह मेरा आठवे सालका संक्षिप्त इतिहास है। ये बीमारी के ११-१२ महीने कहां कैसे बीते, क्या क्या कठिनाइयां आयीं इत्यादि वर्णनों की यहां कुछ आवश्यकता नहीं दीखती। मैं इस बीमारी की केवल निम्न तीन बातों का उल्लेख आवश्यक समझता हूं जो कि मेरी मनःप्रवृत्ति को दिखलाने वाली हैं।

(१) बीमारी में मुझे जो कोई दवा दी जाती थी उसका गुण आदि जाने बिना मुझे चैन नहीं आती थी। गुरुकुल में तो एक सुयोग्य शिवराजजी कंपाउण्डर थे जो कि जब मेरी दवाई बदली जाती थी तो उसके गुण बतला देते थे और नया मिश्रण ( मिश्रण ) बनाते थे तो कभी कभी मेरे कहने पर मैंटिरिया मैडिका से पढ करभी उन औषधों का गुण सुना देते थे। डाक्टरसाहिब भी जब कभी मुझे देखने आते थे तो मेरे पास एक आध-सवाल पूछने के लिये तैयार रहता था, जैसे पेट में गुडगुड क्यों होती है? 'सुदे बनते क्यों हैं!'। हमीरपुर में प्रारंभ में एक दो महीने मेरे चिकित्सक वहां के सिविल सर्जन रहे थे जो कि एक विरक्त-स्वभाव बंगाली सज्जन थे। पिता जी जब उनसे मिलने जाते थे तो मेरी एक प्रश्नावली भी साथ लेते जाते थे जिसका कि वे कृपापूर्वक उत्तर दे देते थे। मैं अब समझता हूं कि वे सिविलसर्जन



कितने सज्जन होंगे जो कि मेरे प्रश्नों से तंग नहीं हो जाते थे और समझता हूँ कि वे मन में सोचते होंगे कि यह कैसा अजब मरीज है। यूनानी हकीमसाहिब तो रोज घर पर ही नब्ज देखने के लिये तशरीफ लाते थे उनसे तो उसी समय जी खोल कर बातें पूछ लेता था। चारपाई पर मेरे तकिये के पास एक नोटबुक और पेंसिल सदा रहती थी।

( २ ) संध्या जबसे सीखी थी ( प्रथमश्रेणी से ही ) तभी से मैंने संध्या में कभी नागा नहीं की। इस बीमारी में भी वैसे ही मैं दोनों समय चारपाई पर पड़े पड़े सदा संध्या करता रहा। कभी सिर दर्द या ऐसे ही किसी कष्ट के कारण उस समय न हो सके तो मध्यरात्रि ( या दोपहर ) अथवा अगले दिन तक भी उसे पूरा करता था। 'न होसके' इसलिये कहा है क्योंकि मेरी संध्या मंत्रोच्चारणमात्र नहीं थी। यह अर्थ विचाररूप होती थी और आज कल १-२ घंटे में पूरी होती थी। संध्या के अर्थ जब से बताये गये थे तभी से संध्या अर्थ विचार के कारण लंबी होने लगी थी। संध्या में मंत्रोच्चारण तो मैं कभी कभी भूल भी जाता था, किन्तु संध्या का अर्थ जो कि आजकल दो घंटे की एक विचार शृंखला के रूप में था उसमें से दिन में दो बार गुजर जाने पर मुझे बड़ी शान्ति और तृप्ति मिलती थी। डाक्टर लोग तो मेरी इस लंबी संध्यापर हंसा करते थे। कहते थे 'अच्छा, खाली पड़े यही करो' पर यह मैं ही जानता हूँ कि यह मेरे लिये कितने सुख का साधन थी और संध्या के बाद मेरे मन नया जीवन पाकर कैसा प्रफुल्लित होता था।

( ३ ) तीसरी बात यह है कि अब मैं देखता हूँ कि मेरा मन आत्मसंयमी होता जाता था। मुझे जो परहेज बताये जाते थे उन्हें बड़ी आसानी से कर लेता था। कब्ज होने के विचार से सब स्वादिष्ट वस्तुयें खाना छोड़ दीं थी। दूसरी तरफ पेलोपैथी की बुरे स्वाद की दवाइयाँ मजे से पीता था और शाकभाजी ( जो कि स्वभावतः मुझे बुरी लगती थी और कभी नहीं खाता था ) अब कटोरा भर

भर के खाने लगा था और विचार से ये अच्छी भी लगने लगी थी ( क्यों कि सुना था कि इन से कब्ज हटती है ) चिकित्सक का कहना पूरी तरह मानता था। डाक्टरों ने कहा की चवा कर खाओ तो खूब चवाने लगा, उन्होंने घूमने को या कुछ और करने को कहा तो ठीक वैसा ही करता था। एक बार मैं पिता जी के पास से चाचाजी के यहां इसी लिये गया कि वहां के प्रसिद्ध खरबूजे खाऊंगा ( उन खरबूजों की स्तुति मैं श्लोक भी बना डाले )। बड़ी प्रतीक्षा के बाद पहुंचे, किन्तु जब खास उन खेतों पर जाने को तैय्यार हुवे तो वहां के एक वैद्य ने यह कह कर 'ये खरबूजे न खांय हो अच्छा है, खाने से कुछ लाभ नहीं ' ( मेरी समझ में ) हलके तौर पर मना किया। मैंने खरबूजे खाने की इच्छा बिल्कुल त्याग दी। लोगों ने मुझे फुसलाया कि वैद्यजी ने 'हानि कुछ नहीं बतलायी है इत्यादि' और घोड़ेपर मुझे खेतों तक ले भी गये कि शायद वहां जाकर मेरी इच्छा हो आवेगी। किन्तु वहां सबने खूब आनन्द से खरबूजे खाये और मैं भी आनन्द से देखता और बातें करता रहा किन्तु खरबूजा जरा भी चखा तक नहीं। इसी प्रकार कई बार बड़े प्रलोभन होने पर भी मैंने स्वास्थ्य के नियम नहीं तोड़े थे। हमीरपुर में मुझे जीवहलाक के लिये ताश का खेल सिखाया गया था और लगभग सालभर तक नित्य नियमपूर्वक बड़े चावसे भोजन के बाद ताश खेला करता था। पर एक दिन जब जी में आया कि मुझे अब इस जीवहलाक की जरूरत नहीं है और यह व्यसन है तो उसी दिन से मैंने इस बड़े प्रिय विषय को छोड़ दिया और फिर इसकी कभी इच्छा भी नहीं होती थी। उस समय के आत्मसंयम के ऐसे छोटे छोटे उदाहरण और कई कह सकता हूँ। ये छोटे छोटे ही बड़ों के लिये मार्ग बनाते हैं।

पर मेरे दुर्बल मन में यह आत्मसंयम का बल कहां से प्रकट होने लगा ! यदि यह मुझसे पूछा



जाय तो मेरा असंदिग्ध उत्तर है कि यह नित्य संध्या करने से-उस विचारशृंखला में से नित्य गुजरने से- आता था और प्रतिदिन आता हुआ स्पष्ट दीखता था ।

( ६ )

## नवम दशम श्रेणी ।

बीमारी से उठ नवम श्रेणी में पहुँच कर अब मैं अपनेआप को जागता हुआ सा दीखता हूँ। ऐसा मालूम होता है कि अब से तीन साल तक ( विद्यालय के ये दो साल तथा महाविद्यालय का पहिला साल ) मैं दुनिया में आंख खोल कर रहा हूँ। अब मैं साथि ब्रह्मचारिओं से मिलता था, हँसता भी था। यद्यपि मन अब भी निराश और शंकित रहता था, चिडचिडा भी वैसा ही था तो भी अब मैं समाज में रहना आवश्यक समझने लगा था और इच्छापूर्वक अर्थात् कुछ यत्न से श्रेणी के विद्यार्थिओं में मिलता था, सब बातों में शरीक होता था। नवम दशम श्रेणी ( उच्च विद्यालय ) की साहित्य संजीविनी सभा का डेढ साल तक ( मध्यनवम से दशम के अन्त तक ) मैं ही मंत्री रहा। लज्जालु था, बोलता कम था तो भी मेरी मंत्रित्व में सभा का बड़ा शान-दार जन्मोत्सव मनाया गया। दशममें मैं एक अपना निजी दैनिक अखबार भी निकालता था। और अधिकारी परीक्षा में जब आठ दिन रह गये थे तब मैंने साहित्य संजीविनी की मासिक पत्रिका 'चन्द्रिका' के दो अंकों को संपादन कर समाप्त किया था। गंगा में तैरा करता था। दशम में एक गतका फरीके शिक्षक गुरुकुल में आये तो गतका आदि सीखने के लिये ( विद्यालय में ) सबसे पहिले मैंने ही अपना नाम लिखाया था। कुछ दिनों बाद अन्य भी कई सम्मिलित हुवे ।

श्रेणी के सब कामों में शरीक होता था। 'श्रेणी-भक्ति' जिसका मैं गत प्रकरण में वर्णन कर चुका हूँ मुझ में खूब थी। नवम श्रेणी भर 'श्रेणीभक्ति' के सब कार्य खूब उत्साह से किये। इसीलिये दशम के अन्त में मेरे इन गुरुकुलीय सार्वजनिक जीवन-

विषयक विचारों में परिवर्तन आया। एक साल की क्रियात्मक 'श्रेणी भक्ति' करके कई घटनाओं का अनुभवी होकर यह देखा कि असल में श्रेणी-भक्ति के स्थान पर 'कुलभक्ति' धर्म है, अथवा ( यों कहना चाहिये ) श्रेणीभक्ति गुरुकुलभक्ति के अनुसार होनी चाहिये। इसलिये दशम के दूसरे सत्र में अनुचित कार्यों में सहायता न देने का आत्मिक बल ( Moral Courage ) भी मुझमें आगया था। तब से आम श्रेणी में ( सामान्य बहुमत वालों में ) सदा मिले रहने की अपेक्षा अपने समान विचार वाले थोड़े से साथियों से अधिक मिलने जुलने लगा था। यह बात महाविद्यालयमें पहुँच कर और भी बढ गयी थी।

बाह्य सार्वजनिक जीवन विषय में भी विचार बदले। दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह का हाल सुना, इसका इतिहास ( भवानीदायाल रचित ) भी पीछे से पढा तो बम वालों की देशभक्ति की जगह पर सत्याग्रह की देशभक्ति अधिक अच्छी लगी। स्वा० सत्यदेव की अमेरिका संबन्धी पुस्तकें पढी। संसार के कई देशभक्तों ( मेजिनी आदि ) के जीवन-चरित्र तथा क्रान्ति के इतिहास पढे। अन्य साहित्य तथा पत्र पत्रिकाओं के बहुत लेख पढे। स्वा० विवेकानंद जी का 'कर्म योग' भी पढा जिसका कि मुझपर बहुत असर हुआ। इस प्रकार यह सब पढ लिखकर और सोच विचार कर इन दो वर्षों में मैंने अगले जीवन के विषय में यह निश्चय किया कि मैं देशसेवामें लगूंगा। यही जीवन का उद्देश्य बनाया। इसीलिये यद्यपि मुझे सबसे प्रिय विषय तो 'गणित' लगता था तो भी महाविद्यालय (College) में जाकर 'इतिहास अर्थ शास्त्र' विषय लेने का निश्चय किया। यह भी सोचा कि स्नातक होकर अपने गांव में रहकर खेती करूंगा और सार्वजनिक जीवन में भाग लूंगा। तब तक मैं यह बिलकुल ख्याल तक न करता था कि कभी मेरा विचार योग सीखने की तरफ भी हो सकेगा। अपना जीवनोद्देश्य ग्राम में कृषि करते हुवे देशसेवा करना स्थिर कर लिया था।



पढ़ाई के विषयों में से किस विषय में मन को रुची होती है इससे भी मनकी प्रवृत्ति पता लगती है । अतः यह बतला दूं कि मुझे गणित और साहित्य ये दो विषय बहुत प्रिय थे । बहुतों को इन दो विषयों का जोड़ विचित्र मालूम होगा, किन्तु मुझे गणित के प्रश्न हल करने में बड़ा ही आनन्द आता था और काव्य के रस का भी मैं कुछ रसिक था । इन विषयों को पढ़ाई बंद होने पर भी स्वयं देखा करता था । व्याकरण ( जो कि बहुतों को बड़ा कठिन लगता था ) मुझे आसान प्रतीत होता था, इसमें कभी परिश्रम नहीं किया । रटना तो कभी किसी चीजका नहीं किया । दूसरी तरफ आलेख्य, भूगोल और इतिहास कभी कभी कठिन लगते थे, प्रिय तो नहीं थे ।

नवम और दशम श्रेणी में भी मैं तीन तीन महीने के लिये हमीरपुर भेजा गया था । हमीरपुरसे जब मैं गुरुकुल आता था तो पिता जी के वियोगका दुःख होता था । और यह सोचकर और भी कष्ट होता था कि जब पिताजी का बिलकुल वियोग ( देहयात्राकी पूर्ति ) हो जायगी तो कितना दुःख होगा । मोह वश एक बार उनको 'आयुर्दाग्नेसि' आदि एक दो आयुर्वर्धक प्रार्थना के मंत्र लिखकर दे आया था कि आप ये प्रार्थना सदा किया करें । गुरुकुल आकर जब यह वियोग दुःख होता था तो मेरा मन चंचल हो इस विषयक मनन चिन्तन में सदा लगा रहता था । चिन्तन से जिन विचारों द्वारा मुझे कुछ शान्ति मिलती थी धीरे धीरे सोच कर ऐसे ७, ८ विचार मैंने एक कापी पर लिख लिये थे । तब प्रायः इन्हें पढ़ कर मन को संभाला

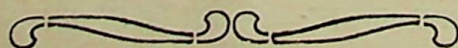
करता था । आगे भी मैं प्रतिवर्ष घर जाता रहा । आगे आगे यह दुःख कम कम ही होता गया ।

दशम में सब से पहिले स्वप्न दोष का अनुभव हुआ । शायद दो बार सोते हुये वीर्य स्राव हुआ । किन्तु दोनों बार कोई भी स्वप्न न आकर वैसेही विना जाने स्राव हुआ । दशम तक मुझे 'काम विचार' का कुछ भी पता न था । यह स्वप्न आकर हुवा करता है यह भी पीछे पता लगा । जब ऐसा दूसरी बार हुवा तो मैंने आचार्य जी ( प्रधान जी ) के पास जाकर बतलाया । उन्होंने बड़े वात्सल्य से सांत्वना दी और कृपा करके मसानेकी इस कमजोरी को हाटने की एक दो विधियाँ बत बलायीं ।

यहां विद्यालय का प्रकरण समाप्त करते हुवे मैं अपने मन का एक स्वभाव और वर्णन कर दूं जो कि आज कल प्रकट हुआ था और आगे योग क्रियों ओ के संबंध में काम आवेगा । मेरी यह आदत थी कि पढ़ते हुए मैं अपने हाथ पैर की स्थिति न जानते हुवे ( Unconsciously ) बदलता रहता था पर मेरा मन पढ़ाई में पूरी तरह होता था । हमारे एक बड़े ही सुयोग्य अध्यापक थे उन्होंने मुझे पीछे ( स्नातक होने पर ) बताया कि तुम जानते हो मैं किसी भी विद्यार्थी को ठीक बैठा न देखता था तो तुरंत उसे टोकता था—वैर बैच से नीचे उतरवाता था या हाथों के निश्चेष्ट रखने को कहता था किन्तु यद्यपि तुम भी अपने हाथ पैर ऊपर नीचे किया करते थे पर मैं यह जानता था कि तुम्हारा मन व्याख्यान सुनने में ही होता है अतः मैंने तुम्हे कभी नहीं कुछ कहा ।

## चित्र परिचय ।

श्रीमंत सरदार त्र्यंबकराव गणेश उर्फ नानासाहेब आपटे, देवास, जीका चित्र इस अंकमें दिया है। इनकी आयु ९६ वर्ष की होते हुए भी ये हिमालय की यात्रा करने का उत्साह रखते हैं। इसी प्रकार हर एक वैदिक धर्मीको पूर्ण आयु प्राप्त करके अपने में पूर्ण उत्साह धारण करना चाहिये । “ आयुष्मान् भव ”





( अथर्ववेदका स्वाध्याय )

# विजय सूक्त ।

“अपराजित गण” का यह प्रथम सूक्त है जिसका ऋषि-“अथर्वा” है और देवता “पर्जन्य” है ।

विद्वा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् ।

विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्षसम् ॥ १ ॥

ज्याके परि णो नमामानं तन्वं कृधि ।

वीडुर्वरीयोऽरातरिप द्वेषांस्या कृधि ॥ २ ॥

वृक्षं यद्गावः परिष्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चन्त्यृभुम् ।

शरुमस्मवावय दिद्युमिन्द्र ॥ ३ ॥

यथा वां च पृथिवीं चाऽन्तस्तिष्ठति तेजनम् ।

एवा रोगं चाऽऽस्त्रावं चाऽन्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ॥ ४ ॥

अर्थ — ( शरस्य ) शर का, बाणका पिता ( भूरि-धायसं पर्जन्यं ) बहुत प्रकारसे धारण पोषण करनेवाला पर्जन्य है यह ( विद्म ) हम जानते हैं । तथा ( अस्य ) इसकी माता ( भूरि-वर्षसं ) बहुत प्रकारकी कुशलताओंसे युक्त पृथिवी है, यह हमें ( सुविद्म ) उत्तम प्रकारसे पता है ॥ १ ॥ हे ( ज्याके ) माता ! ( नः ) हम सब पुत्रों को । ( परि नम ) परिणत कर अर्थात् हमारे ( तन्वं ) शरीरको ( अश्मानं ) पत्थर जैसा सुदृढ ( कृधि ) कर । ( वीडुः ) बलवान बनकर ( अ-रातीः ) अदान के भावोंको तथा ( द्वेषांसि ) द्वेषोंको अर्थात् सब शत्रुओंको ( वरीयः ) पूर्ण रीतिसे ( अप कृधि ) दूर कर ॥ २ ॥ ( यत् ) जिस प्रकार ( वृक्षं ) वृक्षके साथ ( परिष्वजानाः ) लिपटी हुई या बंधी हुई ( गावः ) गौएं अपने ( ऋभुं शरं ) तेजस्वी पुत्र शरको ( अनुस्फुरं ) फूतीके साथ ( अर्चन्ति ) चाहती हैं, उसी प्रकार हे इन्द्र ! ( अस्मत् ) हमसे ( दिद्युं



शरं ) तेज-पुत्र-बाणको ( यावय ) दूर बढा ॥ ३ ॥ जिस प्रकार ( घां ) द्युलोक और पृथ्वीके ( अन्तः ) बीचमें ( तेजनं ) तेज ( तिष्ठति ) होता है, ( एव ) इसी प्रकार यह ( मुञ्जः ) मुंज ( रोगं च आस्रावं च ) रोग और स्राव के ( अंतः ) बीचमें ( इत् तिष्ठतु ) निश्चयसे रहे ॥ ४ ॥

भावार्थ—धारण पोषण उत्तम प्रकारसे करनेवाला पिता पर्जन्य है, कुशलतासे अनेक कर्म करनेवाली माता पृथ्वी है, इन दोनोंसे शर-सरकंडा-पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १ ॥ माता पुत्रके शरीरपर ऐसा परिणाम करावे कि जिससे वह बलवान बन कर शत्रुओंको पूर्ण रीतिसे दूर करनेमें समर्थ हो सके ॥ २ ॥ जिस प्रकार वृक्षके साथ बंधी हुई गौवे अपने बछड़ेको वेगसे प्राप्त करना चाहती हैं, उसी प्रकार हे ईश्वर ! तेज शर हमसे आगे बढे ॥ ३ ॥ जिस प्रकार द्युलोक और पृथ्वीके बीचमें प्रकाश होता है, उसी प्रकार रोग और स्राव-घाव-के बीचमें शर ठहरे ॥ ४ ॥

यह भावार्थ भी परिपूर्ण नहीं है क्योंकि इन मंत्रोंके हरएक वाक्यका आगे पीछेका संबंध देखकर जो भाव व्यक्त होता है, वह जान कर ही मंत्रोंका सच्चा भावार्थ जानना चाहिये । वह भाव देखने के लिये आगेका स्पष्टीकरण देखिये—

## १ वैयक्तिक विजय ।

इस सूक्त में पहिला वैयक्तिक विजय प्राप्त करनेके उपदेश निम्न प्रकार बताये हैं—

- १ उत्तम मातापितासे जन्म प्राप्त हो, ( मंत्र १ )
- २ शरीर बलवान बनाया जावे, ( मंत्र २ )
- ३ रोगादि शत्रुओंको दूर रखा जावे, ( मंत्र २ )
- ४ शरीरमें फूर्ती लाई जावे, ( मंत्र ३ )
- ५ जगत् में अपना तेज फैलाने का यत्न किया जावे, ( मंत्र ४ )
- ६ शोधनों से रोगोंको दूर किया जावे, ( मंत्र ४ )

पाठक विचारकी दृष्टिसे मंत्रोंका विचार करेंगे, तो उनको उक्त छः भाव वैयक्तिक उन्नतिके साधक पूर्वोक्त चारों मंत्रोंके अन्दर गुप्तरूपसे दिखाई देंगे । इनका विशेष विचार होनेके लिये यहां मंत्रोंके शब्दार्थ और स्पष्टीकरण दिये जाते हैं—



## २ पिताके गुण-धर्म-कर्म ।

पूर्वोक्त मंत्रोंमें पिताके गुणधर्म बतानेवाले ये शब्द आये हैं—“पिता, पर्जन्य, भूरि-धायस्, वृक्ष, द्यौः ।” इनके अर्थों का बोध होने से पिताके गुण-धर्म- कर्मोंका बोध हो सकता है इसलिये इनका आशय देखिये—

१ पिता— (पाता) रक्षक, संभालने वाला ।

२ पर्जन्यः—(पूर्ति+जन्यः) पूर्ति करने वाला, पूर्णता करने वाला । न्यूनताको दूर करनेवाला ।

३ भूरिधायस्— (भूरि) बहुत प्रकारसे (धायस्) धारण पोषण करनेवाला, दाता, उदारचरित ।

४ वृक्षः—आधार, स्वयं धूप सह कर दूसरोंको छाया देनेवाला ।

५ द्यौः — प्रकाश देनेवाला, अंधकारका नाश करनेवाला ।

मुख्यतः ये पांच शब्द हैं जो उक्त मंत्रोंमें पिताके गुणधर्म कर्मोंका प्रकाश कर रहे हैं । इनका आशय यह है—“पिता ऐसा हो कि जो अपने पुत्रादिकोंका उत्तम पालन करे उनके अंदर जो जो न्यूनताएं हों उनकी पूर्णता करे अर्थात् अपनी संतानको पूर्ण उच्च गुणोंसे युक्त बनानेमें अपनी पराकाष्ठा करे, उनका हर प्रकारसे पोषण करे और उनको हृष्ट पुष्ट तथा बलिष्ठ बनावे, वह स्वयं कष्ट सहन करके भी अपनी संतान की उन्नति करे, तथा अपने पुत्रों और लड़कियोंको ज्ञान दे कर उन को उत्तम नागरिक बनावे ।”

## ३ माताके गुणधर्मकर्म ।

“माता, पृथिवी, भूरिवर्षस्, ज्याका, गौ” ये पांच शब्द पूर्वोक्त मंत्रोंमें माताके गुणधर्मकर्मोंको प्रकट कर रहे हैं । इनका अर्थ देखिये—

१ माता—बालकोंका हित करनेवाली,

२ पृथिवी — क्षमाशील, सहनशील, पुत्रोंकी उन्नतिके लिये आवश्यक कष्ट सहन करनेवाली ।

३ भूरिवर्षस्— (भूरि) बहुत (वर्षस्) कुशलतासे कर्म करनेमें समर्थ, कर्ममें अत्यंत कुशल, सदा कर्म करनेमें दक्ष, परिवारकी उन्नतिके लिये उत्तम कर्म करनेवाली ।

४ ज्या, ज्याका — (ज्या-जया) जयका साधन करनेवाली, माता, पृथिवी, रस्सी, बलशालिनी ।

५ गौ—प्रगतिशील, दुग्धादिद्वारा पुत्रोंकी पुष्टि करने वाली । किरण, स्वर्ग, रत्न, वाणी,



सरस्वती, माता, जल, नेत्र, आकाश, सूर्य आदिके शुभगुणोंसे युक्त ।

माता के गुणधर्म इन शब्दों द्वारा व्यक्त हो रहे हैं । अर्थात् — “बालबच्चोंका हित करनेवाली क्षमाशील, पुत्रोंकी उन्नतिके लिये करने योग्य कर्मोंमें सदा दक्ष रहने वाली, बहुतही कुशलतासे अपने कुटुंबकी उन्नति करनेमें समर्थ, बलशालिनी, गौके समान दुग्धादिद्वारा बालकों की पुष्टि करनेवाली, किरणोंके समान प्रकाश करनेवाली, स्वर्गके समान सुखदायिनी, रत्नके समान घरकी शोभा बढ़ानेवाली, शुभ भाषण करनेमें चतुर, विदुषी, जलके समान शांति बढ़ानेवाली, नेत्रके समान मार्ग दर्शानेवाली, आकाशके समान सबको आश्रय देनेवाली, सूर्यके समान अज्ञानान्धकार दूर करनेवाली, माता होनी चाहिये । ”

पिताके गुणधर्मकर्म पहिले बताये, और यहां माताके गुण धर्म बताये हैं । ये आदर्श माता पिता हैं, इनसे जो पुत्र पैदा होगा और पाला तथा बढ़ाया जायगा, वह भी सच्चा वीर पुत्रही होगा तथा पुत्रीभी उसी प्रकार वीरा बनेगी इसमें क्या संदेह है ?

#### ४ पुत्रके गुणधर्म कर्म ।

पूर्वोक्त मंत्रोंमें पुत्रके गुणधर्मकर्म बतानेवाले ये शब्द हैं — “शरः, अश्मा-तनुः, वीडुः, ऋभुः, शरुः, दिव्युः, तेजनं, मुञ्जः”; इनके अर्थ ये हैं -

१ शरः — (शृणाति) जो शत्रुका नाश कर सकता है ।

२ अश्मा-तनुः — पत्थरके समान सुदृढ शरीरवाला ।

३ वीडुः — बलिष्ठ, शूर ।

४ ऋभुः — बुद्धिमान्, कुशल, कारीगर, तेजस्वी ।

५ शरुः — शत्रुका नाश करनेवाला ।

६ दिव्युः — तेजस्वी ।

७ तेजनः — प्रकाशमान ।

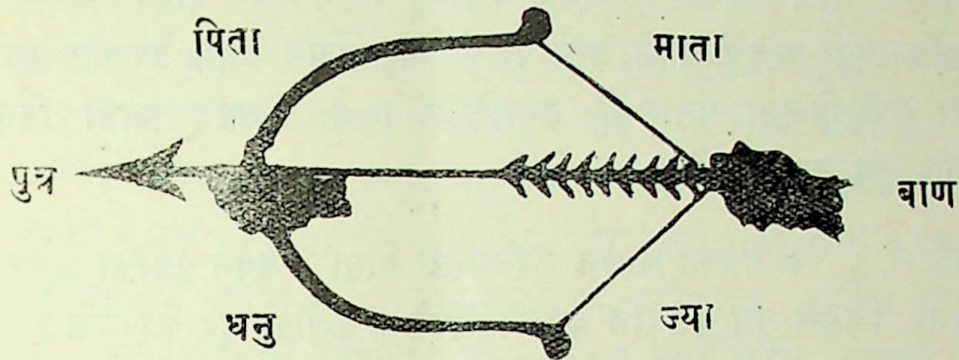
८ मुञ्जः — (मुंजति मार्जयति) शुद्धता और पवित्रता करनेवाला ।

पुत्र ऐसा हो कि जो — “शत्रुका नाश करनेमें समर्थ हो, सुदृढांगवाला हो, शूर, बुद्धिमान्, कुशल, कारीगर, तेजस्वी, यशस्वी, और पवित्र आचारवाला हो । ” माता पिता को उचित है, कि वे ऐसा यत्न करें कि पुत्रमें ये गुणधर्म और कर्म बढें और इन गुणोंके द्वारा कुलका यश फैले ।

यह बात स्पष्ट ही है कि पूर्वोक्त गुणधर्म कर्मोंसे युक्त मातापिता होंगे तो उनके पुत्रों और पुत्रियोंमें ये गुण धर्म आसकते हैं ।



## ५ एक अद्भुत अलंकार ।



इस सूक्तमें बाण, धनुष्य और डोरीके अलंकारसे एक महत्त्व पूर्ण बातका प्रकाश किया है । धनुष्यका सख्त भाग जिसपर डोरी चढ़ाई जाती है वह पुरुषरूप समझिये, डोरी मातारूप है और पुत्र बाण रूप है । पिताका बल और माताकी प्रेरणा इनसे युक्त होकर पुत्र संसार में फेंका जाता है । वह संसारमें जाकर अपने शत्रुओंका नाश करके यश का भागी होता है । इस अलंकारका विचार पाठक करेंगे तो उनको बड़ाही बोध प्राप्त हो सकता है । पुत्रकी उन्नतिमें माता पिताका कार्य कितना होता है इसकी ठीक कल्पना इस अलंकार से पाठकोंके मन में आ सकती है ।

डोरीके बिना केवल धनु जैसा शत्रुनाश करनेमें असमर्थ है उसी प्रकार स्त्रीके बिना पुरुष असमर्थ है । तथा जिस प्रकार धनुके बिना डोरी कार्य करनेमें असमर्थ है उसी रीतिसे पुरुषके बिना स्त्री असमर्थ है । माता पिता की योग्य प्रेरणा और योग्य शिक्षा द्वारा सिद्ध बना पुत्रही जगत्में यशस्वी होता है । यह अलंकार गृहस्थियोंको बड़ाही बोधप्रद हो सकता है ।

पिताके सूचक “ पर्जन्य, वृक्ष ” आदि शब्द तथा माताके सूचक “ पृथिवी ” आदि शब्द उनका ऋतुगामित्व होकर ब्रह्मचारी होनेकी सूचना कर रहे हैं । [ इस विषयमें स्वाध्याय मंडल द्वारा प्रकाशित “ ब्रह्मचर्य ” पुस्तकके अंदर अथर्ववेदीय ब्रह्मचर्य सूक्तकी व्याख्यामें पृथ्वी, पर्जन्य और वृक्षोंके ब्रह्मचर्यका प्रकरण अवश्य देखिये । ]

## ६ कुटुम्बका विजय ।

व्यक्तिकी उन्नति के विषयमें पहिले बतायाही है कि वैयक्तिक विजय की सूचनाएं इस सूक्तमें किस रूपमें हैं । कुटुंब या परिवार के विजय का संबंध पूर्वोक्त अलंकार तथा स्पष्टी करणके देखनेसे स्पष्ट हो सकता है । कुटुंबका विजय माता पिताके उत्तम



कर्तव्य पालन करने और सुप्रजा निर्माण करनेसे ही प्राप्त होना है ।

( मंत्र १ ) जिस प्रकार “ अनेक प्रकारसे पोषण करने वाला पर्जन्य पिता ऋतु-गामी होकर वर्षा ऋतुमें अपने जलरूपी वीर्यका सिंचन उत्तम उपजाऊ भूमिमें करता है और शर रूपी विजयी संतानकी उत्पत्ति करता है, ” तद्वत् माता पिता ऋतुगामी होकर वीर पुत्र उत्पन्न करें ।

( मंत्र २ ) “ हे जयका साधन करनेवाली माता ! अपने पुत्रोंका शरीर पत्थर जैसा सुदृढ बना, जिससे पुत्र बलवान बनकर अपने शत्रुओंको दूर कर सके । ”

( मंत्र ३ )— “ जिस प्रकार वृक्षके साथ बंधी हुई गौवें अपने तेज बल्लडेको चाहती हैं ” [ उसी प्रकार पिताके साथ रहती हुई माता भी अपने लिये तेजस्वी पुत्र उत्पन्न करनेकी ही इच्छा करे । ] अथवा — “ ( वृक्षं ) धनुष्यके साथ रहनेवाली डोरी तेजस्वी ( शरं ) बाण ही वेगसे छोड़ती है । ” [ उसी प्रकार पतिकी उपासना करनेवाली स्त्री वीर पुत्र उत्पन्न होनेकी ही अभिलाषा करे। ] “ हे ( इन्द्र ) परमात्मन् ! हमसे तेजस्वी ( शरः ) बाण के समान तेजस्वी पुत्र चले अर्थात् उत्पन्न हो । ” [ मातापिता परमात्माकी प्रार्थना ऐसी करें कि हे ईश्वर ! हमारा ऐसा पुत्र होवे कि जो दूर दूर जाकर जगत्में विजय प्राप्त करे । ]

( मंत्र ४ ) — “ जिस प्रकार [पिता] द्युलोक और[माता]पृथिवीके मध्यमें विद्युत् आदि तेजस्वी पदार्थ [ पुत्ररूपसे ] रहते हैं, ” [ उसी प्रकार माता पिता के मध्यमें तेजस्वी सुंदर बालक चमकता रहे । ] “ जैसा मुञ्ज शर रोग और स्त्रावक घाव के बीचमें रहता है ” अर्थात् उनको दूर करता है उसी प्रकार [ यह पवित्रता करनेवाला पुत्र रोग और घावके मध्यमें रहता हुआ भी स्वयं अपना बचाव करे और कुलका भी उद्धार करे । ]

यह भाव पहिलेकी अपेक्षा अधिक विस्तृत है और इसमें स्पष्टीकरणके लिये पूर्वापर संबंध रखनेवाले अधिक वाक्य जोड़ दिये हैं, जिससे पाठकों को पता लग जायगा, कि यह सूक्त कुटुंबके विजयका उपदेश किस ढंगसे दे रहा है । जातीके या राष्ट्रके विजयकी बुनियाद इस प्रकार कुटुंबकी सुस्थितिपर तथा सुप्रजानिर्माणपर ही अवलंबित है । जो लोग राष्ट्रकी उन्नति चाहते हैं, वे अपनी उन्नतिकी बुनियाद इस प्रकार कुटुंबमें रखें । आदर्श कुटुंब व्यवस्था ही सब विजयका मुख्य साधन है ।



## ७ पूर्वापर सम्बन्ध ।

पहिले सूक्त में विद्या पढाने का उपदेश दिया है । इस द्वितीय सूक्तसे पढाईका प्रारंभ हो रहा है । विद्याका प्रारंभ बिलकुल साधारण बातसे ही किया गया है । घास की उत्पत्ति का विषय हर एक स्थानके मनुष्य जानते हैं । “मेघसे पानी गिरता है और पृथ्वीसे घास उगता है इस लिये घासका पिता मेघ और माता भूमि है ।” इतना ही विषय इस सूक्तके प्रारंभमें बताया है ! इतनी साधारण घटना का उपदेश करते हुए “पिता-माता-पुत्र” रूपी कुटुंबकी उन्नतिकी शिक्षा किस ढंगसे वेदने बतायी है यह पाठक यहां देख चुके हैं ।

घास के अंदर मुज्ज या शर एक जातीका घास है । यह सरकंडा स्वयं शत्रुका वध करनेमें समर्थ नहीं होता । क्यों कि कोमल रहता है । परंतु जब उसके साथ कठिन लोहेका संयोग किया जाता है और पीछे पर लगाये जाते हैं, तब वही कोमल सरकंडा धनुष्यपर चढकर डोरीकी गति प्राप्त करके शत्रुका नाश करनेमें समर्थ होता है । इसी प्रकार कोमल बालक गुरु गृहकी कठिन तपस्या करता हुआ ब्रह्मचर्य पालन रूपी कठिन वज्रसे युक्त होकर उन्नतिके नियमोंके पालनसे अपनी गतिको एक मार्गमें रखता हुआ अपने, कुटुंबके, जातीके, तथा राष्ट्रके शत्रुओंको भगा देनेमें समर्थ होता है ।

पहिले सूक्तके तृतीय मंत्रमें धनुष्यकी उपमा देकर बताया है कि “गुरु शिष्यरूपी धनुष्यकी दो कोटियां विद्यारूपी डोरीसे तनी हैं ।” प्रथम सूक्तमें यह अलंकार भिन्न उपदेश दे रहा है और इस सूक्तका धनुष्यका दृष्टांत भिन्न उपदेश दे रहा है । दृष्टांतमें एकदेशी बात को ही देखना होता है, इस लिये एक ही दृष्टांतसे भिन्न उपदेश देना कोई दोष नहीं है । प्रथम सूक्तके दृष्टांत में भी दोरीका स्थान विद्या माता अर्थात् सरस्वती देवीको दिया है उसमें मातृत्वका सादृश्य है ।

जंगलमें वृक्षके साथ बंधी हुई गाय भी अपने बछड़े का स्मरण करती रहती है, गायका बछड़ेके ऊपर का प्रेम सबसे बढिया प्रेम है । इस प्रकारका प्रेम अपने बालक के विषयमें माताके हृदयमें होना चाहिये । अपना बालक अति तेजस्वी हो, अति यशस्वी हो, यही भावना माता मनमें धारण करे और इस भावना के साथ यदि माता अपने बालकको दूध पिलावेगी, तो उक्त गुण पुत्रमें निःसंदेह उतरेंगे । इस विषयमें तृतीय मंत्र मनन करनेके योग्य है ।



## ८ कुटुम्बका आदर्श ।

चतुर्थ मंत्रमें आदर्श कुटुम्बका नमूना सन्मुख रखा है । द्युलोक पिता, भूमि माता और इनके बीच का तेजस्वी गोलक इनका पुत्र है । अपने घरमें भी यही आदर्श होवे । आकाश और पृथ्वीमें जैसा सूर्य होता है उसी प्रकार पिता और माताके मध्यमें बालक चमकता रहे । कितना उच्च आदर्श है ! हरएक गृहस्थी इसका स्मरण रखे ।

## ९ औषधिप्रयोग ।

मुञ्ज घास अपने रस आदिसे अनेक रोगों और अनेक स्त्रियों को दूर करता है, क्यों कि मुञ्ज शोधक, शुद्धता तथा निर्मलता करने वाला है । इस लिये स्पष्ट है कि यदि शोधकता और पवित्रता का गुण अपने अंदर बढ़ाया जाय तो रोगादि दूर रह सकते हैं । हरएक के लिये यह सूचना अपनाने योग्य है ।

मुञ्ज या शर औषधिका प्रयोग करके स्त्रावके रोग तथा मूत्राघात आदि रोग दूर होते हैं । इस विषय का सूचक उपदेश इस सूक्त के अंत में है । वैद्य लोग इसका विचार करें । ( इस विषयमें वैदिकधर्मके गत अंक्रमें विस्तृत लेख छपचुका ही है । पाठक उसे देख लें । )

## १० राष्ट्रका विजय ।

व्यक्ति, कुटुम्ब, जाति, देश तथा राष्ट्रके विजय के अभ्युदय के नियमोंकी समानता है । पाठक इस बातको अच्छी प्रकार जानते ही हैं । व्यक्तिका कार्यक्षेत्र छोटा और राष्ट्रका विस्तृत है, छोटे पन और विस्तृतपन की बात को छोड़नेसे दोनों स्थानमें नियमों की एकरूपताका अनुभव आसकता है ।

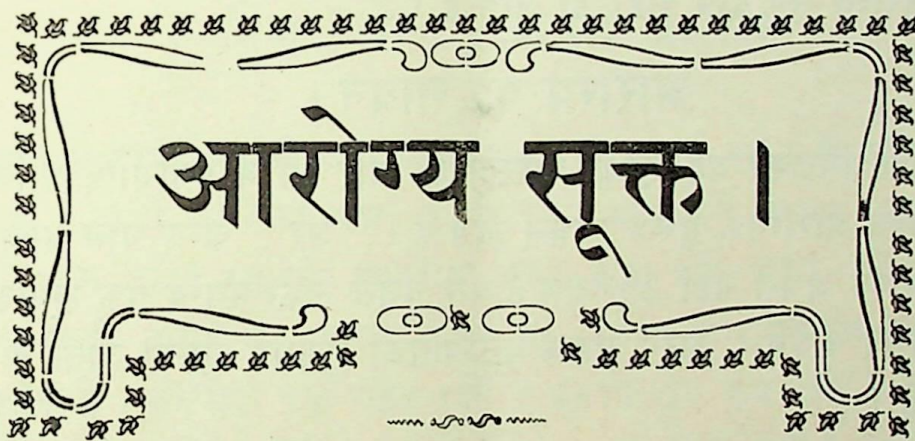
कुटुम्बका ही विस्तृत रूपसे राष्ट्र है ऐसा मान लें और पूर्व स्थानमें एक घर या एक परिवार के विषयमें जो उपदेश बताया है वही विस्तृत रूप से राष्ट्रमें देखेंगे तो पाठकों को राष्ट्रीय उन्नतिका विषय पूर्वोक्त रीतिसे ही ज्ञात हो जायगा ।

घरमें पिता शासक है, राष्ट्रमें राजा शासक है । घरमें माता प्रबंधकर्त्री है, राष्ट्रमें प्रजाद्वारा चुनी हुई राष्ट्रसभा प्रबंध करत्री है । घरमें पुत्र वीर बनाया जाता है और राष्ट्रमें बालचमुओंमें वीरता बढ़ाई जाती है । इत्यादि साम्य देख कर पाठक जान सकते हैं कि यह सूक्त राष्ट्रीय विजयका उपदेश किस ढंगसे देता है । पूर्वोक्त स्थानमें वर्णन किये हुए पिता — माता और पुत्रके गुणधर्मकर्म यहां राष्ट्रीय क्षेत्रमें अति-विस्तारसे देखनेसे इस क्षेत्रकी बात पाठकोंको अतिस्पष्ट हो जायगी । इस भावको ध्यानमें धारण करनेसे इस सूक्तका राष्ट्रीय भाव निम्न लिखित प्रकार होगा —



“प्रजाका उत्तम धारण पोषण और पूर्णता करनेवाला राजा ही शूरका सच्चा पिता । और उसकी माता बहुत कर्मोंकी प्रेरणा करनेवाली मातृभूमि ही है ॥ १ ॥ हे मातृभूमि ! हम सबके शरीर अति सुदृढ़ हों, जिससे हम सब उत्तम बलवान बनकर अपने शत्रुओंको भगा देंगे ॥ २ ॥ जिस प्रकार गौ अपने बछड़े का हित सदा चाहती है, उसी प्रकार हे ईश्वर ! मातृभूमिके प्रेमसे बड़े हुए वीर आगे बढ़ें ॥ ३ ॥ जिस प्रकार आकाश और भूमिके बीचमें तेजोगोलक होते हैं उसी प्रकार राजा और प्रजाके मध्यमें वीर चमकते रहें । तथा वे पवित्रता करते हुए रोगादि भयसे दूर हों ॥ ४ ॥ ”

साधारणतः यह आशय अतिसंक्षेपसे है । पाठक इस प्रकार विचार करें और वेदके आशय को समझनेका यत्न करें ।



पूर्व सूक्तका अभ्यास करनेसे यह ज्ञान हुआ कि पर्जन्य पिता है, पृथ्वी माता है और इनके पुत्र वृक्षवनस्पति आदि सब हैं । यहाँ शंका उत्पन्न होती है कि, क्या पर्जन्यके समान सूर्य, चंद्र, वायु आदि भी वृक्षवनस्पतियोंके लिये पितृस्थानीय हैं वा नहीं, क्या इनके न होते हुए, केवल अकेला एक ही पर्जन्य तृणादि की उत्पत्ति करनेमें समर्थ हो सकता है ? इसके उत्तरमें यह तृतीय सूक्त है —

[ ऋषि - अथर्वा । देवता - (मंत्रोंमें उक्त अनेक) देवताएँ ]

विद्या शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम् । तेना ते तन्वे  
शं करं पृथिव्यां ते निषेचनम्बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ १ ॥  
विद्या शरस्य पितरं मित्रं शतवृष्ण्यम् । तेना ते० ॥ २ ॥  
विद्या शरस्य पितरं वरुणं शतवृष्ण्यम् । तेना ते० ॥ ३ ॥



विद्या शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृष्ण्यम् । तेना ते० ॥४॥

विद्या शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम् । तेना ते० ॥ ५ ॥

अर्थ — ( विद्या ) हमें पता है कि शरके पिता ( शत-वृष्ण्यं ) सैंकड़ों बलोंसे युक्त पर्जन्य, ... मित्र, ... वरुण, ... चंद्र, ... सूर्य ... ( ये पांच ) हैं । ( तेन ) इन पांचोंके वीर्यसे ( ते तन्वे ) तेरे शरीरके लिये मैं ( शं करं ) आरोग्य करूं । ( पृथिव्यां ) पृथिवीके अंदर ( ते निषेचनम् ) तेरा सिंचन होवे और सब दोष ( ते ) तेरे शरीरसे ( बाल् इति ) शीघ्रही ( बहिः अस्तु ) बाहर हो जावें ।

भावार्थ— तृणादि मनुष्य पर्यंत सृष्टिकी माता भूमि है और पिता पर्जन्य, मित्र, वरुण, चंद्र, सूर्य ये पांच हैं । इनमें अनंत बल हैं । उनके बलोंका योग्य उपयोग करने से मनुष्यके शरीर में आरोग्य स्थिर रह सकता है, मनुष्यका जीवन दीर्घ हो सकता है और उसके शरीरसे सब दोष बाहर हो जाते हैं ।

### आरोग्य का साधन ।

पांच मंत्रोंका मिलकर यह एकही गणमंत्र है और इस में मनुष्यादि प्राणियों तथा वृक्षवनस्पतियोंके आरोग्यके मुख्य साधन दिये हैं । “ शर ” शब्द घास वाचक होता हुआ भी सामान्य अर्थसे यहां उपलक्षण है और तृणसे लेकर मनुष्य तक सृष्टिका आशय उसमें है । विशेष अर्थमें “ शर ” संज्ञक वनस्पतिका गुणधर्म बताया जाता है यह बात भी स्पष्ट ही है ।

इन मंत्रोंमें “ पांच पिता ” कहे हैं । “ पिता ” शब्द “ पाता ” अर्थात् रक्षा, संरक्षण करनेवाला इस अर्थमें यहां प्रयुक्त है । तृणादिसे लेकर मानव सृष्टि पर्यंत सब की सुरक्षा करनेका कार्य इनका ही है । ये पांचों सब सृष्टिकी रक्षा कर ही रहे हैं । देखिये ।

१ पर्जन्य वृष्टिद्वारा जलसिंचन करके सबका रक्षण करता है ।

२ मित्र प्राणवायु है और इस वायुसे ही सब जीवित रहते हैं ।

३ वरुण जलकी देवता है और वह जल सबका जीवन ही कहलाता है ।

४ चंद्र औषधीयोंका अधिराजा है और औषधियाँ खाकर ही मनुष्य पशुपक्षी जीवित रहते हैं ।

५ सूर्य सबका जीवन दाता प्रसिद्ध ही है । सूर्य न रहे तो सब जीवन नष्ट ही होगा ।

इन पांचोंकी विविध शक्तियाँ हमारे जीवनके लिये सहायक हो रहीं हैं, इसलिये ये पांचों हमारे संरक्षक हैं और संरक्षक होने से ही हमारे पितृस्थानीय हैं । इनसे आरोग्य



किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है ? यह प्रश्न बड़ा गहन और बड़ी अन्वेषणाकी अपेक्षा रखता है। परंतु संक्षेपसे यहां इस विधिकी सूचना की जाती है, पाठक विचार करें और लाभ उठावें -

### पर्जन्यसे आरोग्य ।

पर्जन्य का शुद्ध जल जो खाती आदि मध्य नक्षत्रोंसे प्राप्त किया जा सकता है वह बड़ा आरोग्यप्रद है। दिनके पूरे लंघन के समय यदि इसका पान किया जाय तो शरीरके संपूर्ण दोष दूर हो जाते हैं और पूर्ण नीरोगता प्राप्त हो सकती है। वृष्टि जलके स्नानसे शरीरके शुष्क खुजली आदिका निवारण होता है। अंतरिक्षमें शुद्ध प्राण विराजमान है वह वृष्टिके जलबिंदुओंके साथ भूमिपर आता है। इस लिये वृष्टिजलका स्नान आरोग्य वर्धक है।

### मित्र ( प्राण ) वायुसे आरोग्य ।

प्राणायाम से योग साधनमें आरोग्य रक्षणका जो उपाय वर्णन किया है वह यहां अनुसंधेय है। दोनों नासिका रंध्र सूत्रनेतिसे, भस्त्रिकासे अथवा जल की नेतिसे स्वच्छ और मल रहित रखनेसे प्राणवायु अंदर जाता और उत्तम पवित्रता स्थापित करता है। खुली वायुमें सब कपड़े उतार कर रहनेसे भी होनेवाला वायुस्नान बड़ा आरोग्य वर्धक है। जो सदा वस्त्र रहित रहते हैं उनको रोग कम होते हैं इसका यही कारण है। वस्त्रोंके बढनेसे भी रोग बढे हैं इसका कारण इतना ही है कि वस्त्रोंके कारण प्राणवायुका संबंध शरीरके साथ जैसा होना चाहिये वैसा नहीं होता और इस कारण आरोग्य न्यून होता है।

### वरुण ( जल ) देव से आरोग्य ।

वरुण मुख्यतः समुद्रका देव है। समुद्र के खारे पानीके स्नानसे संपूर्ण चर्म दोष दूर होते हैं, रुधिराभिसरण उत्तम होता है, पाचन शक्ति बढती है और अनेक प्रकारसे आरोग्य प्राप्त होता है। अन्य जल अर्थात् तालाव, कूप, नदी आदिकोंके जलके स्नान से, उनमें उत्तम प्रकार तैरनेसे भी कई दोष दूर हो जाते हैं। जल चिकित्साका यह विषय है वह पाठक यहां अनुसंधान करके देखें। यह बड़ा ही विस्तृत विषय है क्योंकि प्रायः सभी बीमारियां जलचिकित्सासे दूर हो सकती हैं।



## चन्द्र ( सोम ) देवसे आरोग्य ।

चंद्र औषधियोंका राजा है, इसका दूसरा नाम सोम है । सोमादि औषधियोंसे आरोग्य प्राप्त करनेका साधन चरकादि आचार्योंने अपने वैद्य ग्रंथोंमें लिखा ही है । इसी साधनका दूसरा नाम “वैद्यक” है ।

## सूर्य देवसे आरोग्य ।

सूर्य पवित्रता करनेवाला है । सूर्यकिरण से जीवनका तत्त्व सर्वत्र फैलता है । सूर्य किरणोंका स्नान नंगे शरीरसे करनेसे अर्थात् धूपमें अपना शरीर तपानेसे आरोग्य प्राप्त होता है । सूर्यकिरणोंसे चिकित्सा करनेका भी एक बड़ा भारी शास्त्र है ।

## पंचपाद पिता ।

ये पांच देव अनेक प्रकारसे मनुष्य, पशुपक्षी, वृक्ष, वनस्पति आदिकोंका आरोग्य साधन करते हैं । वृक्षवनस्पति और आरण्यक पशु उक्त पंचपाद पितरों अर्थात् पांचों देवोंके साथ - पांचों पिताओंके साथ- पांचों रक्षकोंके साथ नित्य रहते हैं इस लिये सदा आरोग्य संपन्न होते हैं । नागरिक पशुपक्षी मनुष्यके कृत्रिम- बनावटी जीवनसे संबंधित होने के कारण रोगोंसे अधिक ग्रस्त होते हैं । जंगली लोग प्रायः सीदे सादे रहने के कारण अधिक नीरोग होते हैं । परंतु नागरिक लोग कि जो सदा तंग मकानोंमें रहते हैं, सदा तंग वस्त्रोंसे वेष्टित होते हैं और जल वायु तथा सूर्य-प्रकाश आदिकोंसे अपने आपको दूर रखते हैं, अर्थात् जो अपने पंचपिताओंसे ही विमुख रहते हैं वेही अधिकसे अधिक रोगी होते हैं और प्रति दिन इन तंगीसे पीडित नागरिक लोगोंमें ही विविध रोग बढरहे हैं और अस्वास्थ्यसे ये ही सदा दुखी होते हैं ।

इस लिये वेद कहता है कि पर्जन्य, मित्र ( प्राण ) वायु, जलदेव वरुण, चंद्र, सूर्य देव इन पांच देवोंको अपना पिता अर्थात् अपना संरक्षक जानो और —

तेना ते तन्वे शं करम् ।

“ इन पांचों देवोंके विविध बलोंसे अपने शरीरका आरोग्य प्राप्त करो ” अथवा “ मैं उक्त देवोंकी शक्तियोंसे तेरे शरीर का आरोग्य करूं । ” आरोग्य इनसेही प्राप्त होना है । आरोग्यका मुख्य ज्ञान इस मंत्रमें स्पष्टतया आगया है । पाठक इनका विचार करें और इस निसर्गनियमोंका पालन करके अपना आरोग्य प्राप्त करें ।



## पृथ्वीमें जीवन ।

पृथ्वीमें प्राणिमात्रका सामान्यतः और मनुष्यका उच्च जीवन विशेषतः उक्त पांचों शक्तियोंपर ही निर्भर है । मंत्रका “ निषेचन ” शब्द “ जीवनरूप जल ” का सूचक है । इस लिये—

ते पृथिव्यां निषेचनम् ।

इस मंत्रभागका आशय “ तेरा पृथ्वी में जीवन ” पूर्वोक्त पांचों देवताओं के साथ संबंधित है यह स्पष्ट है । जो शरीर का आरोग्य, शरीरका कल्याण करनेवाले हैं वेही जीवन अथवा दीर्घ जीवन देने वाले निश्चयसे हैं । इनके द्वारा ही—

ते बाल् इति बहिः अस्तु ।

“ तेरे शरीरके दोष शीघ्र बाहर हो जाय । ” पूर्वोक्त पांचों देवोंके योग्य संबंधसे शरीरके सब दोष शरीरसे बाहर हो जाते हैं । देखिये ( १ ) वृष्टिजल पान पूर्वक लंघन करनेसे मूत्र द्वारा शरीर दोष बाहर हो जाते हैं, ( २ ) शुद्ध प्राणके अंदर जानेसे रक्त शुद्धि होती है और उच्छ्वास द्वारा दोष दूर होते हैं, ( ३ ) जल चिकित्सा द्वारा हर एक अवयवके दोष दूर किये जा सकते हैं, ( ४ ) सोम आदिक औषधियोंका ओषधि नाम इस लिये है कि वे शरीर के ( दोषधी ) दोषोंको धोती हैं, ( ५ ) सूर्य किरण पसीना लाने तथा अन्यान्य रीतियोंसे शरीरके रोग बीज दूर कर देते हैं । इस रीतिसे पाठक अनुभव करें कि ये पांच देव किस प्रकार शरीरका ( शं करं ) कल्याण करते हैं । आरोग्य देते हैं, ( निषेचनं ) जीवन बढ़ाते हैं, और ( बहिः ) दोषोंको बाहर निकाल देते हैं ।

“ शं ” शब्द “ शांति ” का सूचक है । शरीरमें “ शांति, समता, सुख ” आदि स्थापन करना आरोग्यका भाव बता रहा है । ये देव “ शं ” करनेवाले हैं, इसका तात्पर्य यही है कि, ये आरोग्य बढ़ानेवाले हैं । आरोग्य बढ़ानेके कारण जीवन बढ़ानेवाले अर्थात् दीर्घ जीवन करनेवाले हैं और सदा सर्वदा दोषोंको शीघ्र बाहर करनेवाले हैं । पाठक इस मंत्रके मननसे अपने आरोग्य के मुख्य सिद्धान्तका ज्ञान स्पष्टतया प्राप्त कर सकते हैं ।

इस प्रकार आरोग्य के मुख्य साधन का सामान्यतया उपदेश करके मूत्रदोष निवारण का विशेष उपाय बताते हैं—



## मूत्रदोष निवारण ।

यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद् वस्तावधि संश्रुतम् ।

एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥ ६ ॥

प्र ते भिनाग्नि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव । एवा ते० ॥ ७ ॥

विषितं ते वस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव । एवा ते० ॥ ८ ॥

यथेषुका परापतदवसृष्टाऽधि धन्वनः । एवा ते० ॥ ९ ॥

अर्थ— ( यत् ) जो ( आंत्रेषु ) आंतोंमें ( गवीन्योः ) मूत्र नाडियोंमें तथा जो ( वस्तौ ) मूत्राशयमें मूत्र ( संश्रुतं ) इकट्ठा हुआ है । वह तेरा मूत्र ( सर्वकं ) सबका सब एकदम बाहर ( मुच्यताम् ) निकल जावे ॥ ६ ॥ ( वेशन्त्याः ) झील के पानीके ( वर्त्रं ) बंध को ( इव ) जिस प्रकार खोल देते हैं तद्वत् तेरे ( मेहनं ) मूत्रद्वार को ( प्रभिनाग्नि ) मैं खोल देता हूं ॥ ७ ॥ समुद्रके अथवा ( उदधेः ) बड़े तालाब के जलके लिये मार्ग खुला करनेके समान तेरा ( वस्ति-बिलं ) मूत्राशयका बिल मैंने ( विषितं ) खोल दिया है ॥ ८ ॥ जिस प्रकार धनुष्यसे छुटा हुआ ( इषुका ) बाण ( परापतत् ) दूर जाता है, उस प्रकार तेरा सब मूत्र शीघ्र बाहर निकल जावे ॥ ९ ॥

भावार्थ— तालाब आदिसे जिस प्रकार नहर निकाल देते हैं जिससे तालाब का पानी सुख पूर्वक बाहर जाता है उसी प्रकार मूत्राशयसे मूत्र मूत्रनाडियों द्वारा मूत्रोद्विगसे बाहर निकल जावे ।

मूत्र खुली रीतिसे बाहर जाने से शरीरके बहुत दोष दूर हो जाते हैं । शरीरके सब विष मानो इस मूत्रमें इकट्ठे होते हैं और वे मूत्र बाहर जानेसे विषभी उसके साथ बाहर जाते हैं और आरोग्य प्राप्त होता है । इसीलिये किसी रोगी का मूत्र अंदर रुक जानेसे मूत्रके विष शरीरमें फैलते हैं और रोगी शीघ्रही मर जाता है । इस कारण आरोग्य के लिये मूत्रका उत्सर्ग नियम पूर्वक होना अत्यंत आवश्यक है । यदि वह मूत्र मूत्राशयमें रुक जाय तो मूत्र नलिका को खोल कर मूत्रका मार्ग खुला करना आवश्यक है । इस कार्य के लिये शर या मुञ्ज औषधि का प्रयोग बड़ा सहायक है । वैद्य लोग इसका उपयोग करें । इस पर दूसरा उपाय मूत्रद्वार खोलनेका है, इसके लिये लोह शलाका, वस्तिपत्र ( Catheter कैथेटर ) का प्रयोग करनेकी सूचना इन मंत्रों की उपमाओंसे मिलती है । यह मूत्राशय यंत्र सोनेका, चांदीका या लोहेका बनाया जाता है, यह बारीक नलिका आरंभमें गोल सी होती है । आजकल यह रबर आदि



अन्यान्य पदार्थोंका भी बनावनाया मिलता है । इस समय इसको हरएक डाक्टर के पास पाठक देख सकते हैं । यह मूत्र इंद्रियसे मूत्राशय में योग्य रीतिसे डाला जाता है । यह वहां पहुंचनेसे अंदर रुका हुआ मूत्र इसके अंदर की नलीसे बाहर हो जाता है ।

योगी लोग इसकी सहायतासे वज्रोली अमरोली आदि क्रियाएं साध्य करते हैं, मूत्र-द्वारसे कोसा दूध अथवा जल आदि अंदर मूत्राशयमें खींचने और उसके द्वारा मूत्राशयको शुद्ध करनेका सामर्थ्य अपनेमें बढ़ाते हैं । इसका अभ्यास बढ़ानेसे न केवल मूत्राशय पर प्रभुत्व प्राप्त होता है, परंतु संपूर्ण वीर्य नाडियोंके समेत संपूर्ण वीर्याशयपर भी प्रभुत्व प्राप्त होता है । ऊर्ध्वरेता होनेकी सिद्धि इसी के योग्य अभ्याससे प्राप्त होती है । योगी लोग इस अभ्यास को अतिगुप्त रखते हैं और योग्य परीक्षा होनेके पश्चात् ही यह अभ्यास शिष्यको सिखाया जाता है । पूर्ण ब्रह्मचर्य रहना इसी अभ्याससे साध्य होता है । गृहस्थ धर्म पालन करते हुए भी पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन होनेकी संभावना इस अभ्याससे हो सकती है ।

जिस प्रकार तालाब या कूपके अंदरसे पहिला जल निकालने से उसकी स्वच्छता हो सकती है, और शुद्ध नया जल उसमें आनेसे उसका अधिकसे अधिक लाभ हो सकता है, उसी प्रकार मूत्राशय का पूर्वोक्त प्रकार योगादि साधनसे बल बढ़ानेसे बड़ा ही आरोग्य प्राप्त हो सकता है ।

सामान्य मनुष्योंके लिये मुञ्ज औषधिके प्रयोगसे, अथवा मूत्राशयमें वस्ति यंत्रके प्रयोगसे लाभ होता है । योगियोंको वज्रोली आदि अभ्याससे मूत्रस्थानकी सब नस नाडी बलवती और शुद्ध करनेसे आरोग्य प्राप्त होता है ।

### पूर्वापर सम्बन्ध ।

द्वितीय सूक्त में आरोग्य साधनका विषय प्रारंभ किया था । उसी आरोग्य प्राप्तिका विस्तृत नियम इस तृतीय सूक्तके प्रथम पांच मंत्रोंके गणमें कहा है । सबके आरोग्य का मानो यह मूलमंत्र ही है । हरएक अवस्थामें सुगमतया आरोग्यसाधन करनेका उपाय इस मंत्रगणमें वर्णन किया है । इस तृतीय सूक्तके अंतिम चार मंत्रोंमें मूत्राशय दोष को दूर करनेका साधन बताया है ।

इस सूक्तका “शत-वृष्ण्यं” शब्द अत्यंत महत्व पूर्ण है । “वृष्ण्य” शब्द बल, वीर्य, उत्साह, प्रजननसामर्थ्य आदिका वाचक है । ये सैंकड़ों बल देनेवाले पूर्वोक्त पांचों देव हैं यह यहां इस सूक्त से स्पष्ट हुआ है । वीर्यवर्धक अन्य उपायोंका अवलंबन न करके पाठक



यदि इन पांचोंको ही योग्य रीतिसे वर्तते रहेंगे तो उनको अनुपम लाभ हो सकता है ।

द्वितीय सूक्तमें “ भूरि- धायस ” शब्द है जिसका अर्थ “ अनेक प्रकारसे धारण पोषण करनेवाला ” पूर्व स्थानमें दिया है । यह भी पर्जन्य के साहचर्य के कारण इस सूक्तमें अनुवृत्तिसे आता है और पांचों देवोंका विशेषण बनता है । पाठक इस शब्दको लेकर मंत्रोंका अर्थ देखें और बोध प्राप्त करें ।

“ भूरि-धायस ” शब्द का “ शत-वृण्य ” शब्दसे निकट संबंध है, मानो ये दोनों शब्द एक दूसरे के सहायक हैं । विशेष प्रकारसे धारण पोषण करनेवाला ही सेंकड़ों वीर्योंको देने वाला हो सकता है । क्योंकि पुष्टिके साथ ही बलका संबंध है । इस प्रकार पूर्व सूक्तसे इस सूक्तका संबंध देखिये ।

### शारीर शास्त्रका ज्ञान ।

इस सूक्तके मननसे पाठकोंने जान ही लिया होगा कि शारीर शास्त्र का ज्ञान अथर्वविद्या के यथावत् जाननेके लिये अत्यंत आवश्यक है । मूत्राशयमें शलाकाका प्रयोग विना वहांके अवयवोंके जाननेसे नहीं हो सकता । शारीरको न जाननेवाला मनुष्य योगसाधन भी नहीं कर सकता, तथा अथर्ववेदका ज्ञान भी यथा योग्य रीतिसे प्राप्त नहीं कर सकता ।

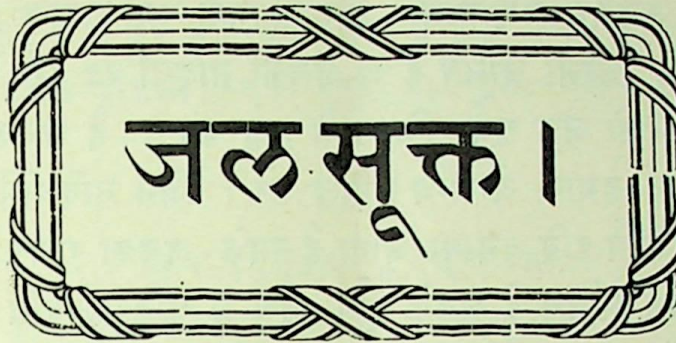
यह “ अंगिरस ” का विषय है, अर्थात् अंगोंके रसोंकाही यह अथर्व शास्त्र है । अर्थात् जिसने अंगोंका ज्ञान नहीं प्राप्त किया है, अंगोंके अंदरके जीवन रसोंका जिसको कुछभी ज्ञान नहीं है वह अथर्व विद्यासे बहुत लाभ प्राप्त नहीं कर सकता ।

डाक्टर लोग जिस प्रकार मुद्दोंकी चीर फाड़ करके शरीरांगोंका यथावत् ज्ञान प्राप्त करते हैं उसी प्रकार योगियों और अथर्वांगिरसविद्याके पढ़ने वालोंको करना उचित है ।

हमने यहां सोचा था कि इस सूक्तमें वर्णित शलाकाके प्रयोग के लिये आवश्यक अवयवोंका परिचय चित्रोंद्वारा किया जावे, परंतु इससे कई लोग अधिक भ्रममें भी पड़ सकते हैं और जो चित्रोंको ठीक प्रकार समझ नहीं सकते वे उलटाही प्रयोग करके दोष के भागी हो सकते हैं । इस भय को सामने देख कर इस बातको चित्रोंसे स्पष्ट करनेका विचार इस समय के लिये दूर कर दिया है । और हम यहां पाठकोंसे निवेदन करना चाहते हैं कि वे इस प्रयोग का ज्ञान सुविज्ञ डाक्टरोंसे ही प्राप्त करें तथा ऊपर दिये हुए योग प्रक्रियाका ज्ञान किसी उत्तम योगीके पास जाकर सीखें । क्योंकि अंगरस चिकित्सामें इन बातोंकी आवश्यकता है । इनके विना केवल मंत्रार्थ पढ़नेसे अथवा शाब्दिक ज्ञान समझने मात्रसे भी उपयोग नहीं हो सकता ।







पूर्व सूक्तमें आरोग्य साधक जलका संक्षेपसे वर्णन किया है इस लिये अब उसी जलका विशेष वर्णन क्रमसे आगेके तीन सूक्तोंमें करते हैं—

[ ४ ]

( ऋषिः— सिंधुद्वीपः । देवता — आपः । )

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् ।

पृश्नन्तीर्मधुना पयः ॥ १ ॥

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ।

ता नो हिन्वन्त्यध्वरम् ॥ २ ॥

आपो देवीरूप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः ।

सिन्धुभ्यः कर्त्तुं हविः ॥ ३ ॥

अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजम् । अपामुतप्रशस्तिभि-

रश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः ॥ ४ ॥

अर्थ— ( अध्वरीयतां ) यज्ञकर्ताओंके ( जामयः ) बहिनोंके समान और (अम्बयः) माताओंके समान जलकी नदियां ( अध्वभिः यन्ति ) अपने मार्गोंसे जाती हैं जो ( मधुना ) मधु-शहदके साथ ( पयः ) दूध या जल ( पृश्नन्तीः ) मिलाती हैं ॥ १ ॥ ( याः ) जो ( अमूः ) ये नदियां ( उप सूर्ये ) सूर्यके सम्मुख होती हैं अथवा (याभिः) जिनके साथ सूर्य होता है । वे हम सबका ( अध्वरं ) यज्ञ ( हिन्वन्ति ) सांग करती हैं ॥ २ ॥ ( यत्र ) जहां हमारी ( गावः ) गौवें पानी ( पिबन्ति ) पीती हैं उन ( देवीः आपः ) दिव्य जलोंकी ( उपह्वये ) मैं प्रशंसा कहता हूं; ( सिन्धुभ्यः ) नदियोंके लिये हवि करनेके कारण ॥ ३ ॥ ( अप्सु अन्तः ) जलमें अमृत है, ( अप्सु भेषजं ) जलमें दवाई है । ( उत ) और ( अपां प्रशस्तिभिः ) जलके प्रशंसनीय गुण धर्मोंसे ( अश्वाः वाजिनः ) घोड़े बलवान ( भवथ ) होते और गौवें बल युक्त होती है ॥ ४ ॥



भावार्थ— जल उनके लिये माता और बहिनके समान हित कारक होता है जो उनका उत्तम उपयोग करना जानते हैं । जलकी नदियां बह रही हैं, मानो वह दूधमें शहद मिला रही हैं । जो जल सूर्य किरण से शुद्ध बनता है अथवा जिसकी पवित्रता सूर्य करता है वह जल हमारा आरोग्य सिद्ध करे । जिन नदियोंमें हमारी गौवें जल पीती हैं और जिनके लिये हवि बनाया जाता है उनके जलका गुणगान करना चाहिये ॥ जलमें अमृत है, जलमें औषध है जलके शुभ गुण से घोड़े बलवान बनते हैं और गौवें भी बलवती बनती हैं ।

[ ५ ]

( ऋषिः— सिन्धुद्वीपः । देवता - आपः । )

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।

महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।

उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।

आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥

ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् ।

अपो याचामि भेषजम् ॥ ४ ॥

अर्थ— हे ( आपः ) जलो ! ( हि ) क्योंकि आप ( मयोभुवः ) सुख कारक ( स्थ ) हो इस लिये ( ताः ) सो तुम ( नः ऊर्जे ) हमारे बल के लिये तथा (महे रणाय चक्षसे) बड़ी रमणीयताके दर्शन के लिये हमें ( दधातन ) पुष्ट करो ॥ १ ॥ ( यः ) जो ( वः ) आपके अंदर ( शिवतमः रसः ) अत्यंत कल्याणकारी रस है ( तस्य ) उसका ( नः इह भाजयत ) हमें यहां भागी करो ( इव ) जैसी ( उशतीः मातरः ) इच्छा करनेवाली माताएं करती हैं ॥ २ ॥ हे जलो ! जिसके ( क्षयाय ) निवासके लिये आप (जिन्वथ) तृप्ति करते हो ( तस्मै ) उसके लिये हम ( वः अरं गमाम ) आपको पूर्णतया प्राप्त करेंगे । और आप ( नः ) हमें ( जनयथ ) बढ़ाओ ॥ ३ ॥ ( वार्याणां ) इच्छा करने योग्य सुखोंके ( ईशाना ) स्वामी इस लिये ( चर्षणीनां ) प्राणिमात्रके ( क्षयन्तीः ) निवासके हेतु ऐसे ( आपः ) जलों से ( भेषजं याचामि ) औषधकी याचना करता हूं ॥

भावार्थ— जल सुख कारक है, उससे बल बढ़ता है, रमणीयता प्राप्त होती है और पुष्टि भी होती है ॥ जिस प्रकार पुत्रको माताके दूधसे पुष्टिका भाग मिलता है, उसी



प्रकार जलके अंदरके उत्तम सुख वर्धक रस हमें प्राप्त हों । जिससे प्राणि मात्रकी स्थिति होती है, वह रस हमें प्राप्त हो और उससे हमारी वृद्धि होती रहे ॥ जलसे इष्ट सुख प्राप्त होते हैं और प्राणि मात्रकी स्थिति होती है, उस जलसे हमें औषधरस प्राप्त होता रहे ।

[ ६ ]

[ ऋषि-सिंधुद्वीपः । देवता-आपः ]

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।

शं योरभिस्रवन्तु नः ॥ १ ॥

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।

अग्निं च विश्वशंभुवम् ॥ २ ॥

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वेऽमम ।

ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥ ३ ॥

शं न आपो धन्वन्याः शमु सन्तवनूप्याः ।

शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः

शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ॥ ४ ॥

अर्थ- ( देवीः आपः ) दिव्य जल ( नः शं ) हमें सुख दे और ( अभिष्टये ) इष्ट प्राप्ति के लिये तथा ( पीतये ) पीनेके लिये हो और हमपर शान्तिका ( अभिस्रवन्तु ) स्रोत चलावे ॥ १ ॥ ( मे ) मुझे ( सोमः अब्रवीत् ) सोमने कहा कि ( अप्सु अन्तः ) जलमें ( विश्वानि भेषजा ) सब औषधियां हैं और अग्नि ( विश्व-शं-भुवं ) सब कल्याण करनेवाला है ॥ २ ॥ हे ( आपः ) जलो ! ( भेषजं पृणीत ) औषध दो और ( मम तन्वे ) मेरे शरीरके लिये ( वरूथं ) संरक्षण दे जिससे मैं सूर्यको ( ज्योक् दृशे ) दीर्घकाल तक देखूं ॥ ३ ॥ ( नः ) हमारे लिये ( धन्वन्याः आपः ) मरुदेशका जल ( शं ) सुख कारक हो ( अनूप्याः ) जलपूर्ण प्रदेशका जल सुख कारक हो; ( खनि-त्रिमाः ) खोदे हुए कूवे आदिका जल सुख दायक हो, ( कुंभे ) घड़े में भरा जल सुख-दायक हो, ( वार्षिकीः ) वृष्टिका जल सुखदायक होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ-दिव्य जल हमें पीनेके लिये मिले और वह हमारा सुख बढ़ावे ॥ जलमें सब औषध रहते हैं और अग्नि सुख बढ़ाने वाला है ॥ जलसे हमारी चिकित्सा होवे और शरीरका बचाव रोगोंसे होकर हमारा दीर्घ आयु बने ॥ मरुदेशका, जलमयदेशका, कूवेका, वृष्टिका तथा घड़ोंमें भराहुआ जल हमारा सुख बढ़ानेवाला होवे ॥



ये तीन सूक्त जलका वर्णन कर रहे हैं । तीनों सूक्त इकट्ठे हैं इस लिये तीनोंका विचार यहां इकट्ठाही करेंगे । —

## जल की भिन्नता ।

जल निम्न प्रकारका है यह बात पूर्व सूक्तोंमें कही है —

- १ देवीः ( दिव्याः ) आपः ( ४।३ ) — आकाशसे अर्थात् मेघोंसे प्राप्त होनेवाला जल, इसी का नाम “वार्षिकी” भी है ।
- २ वार्षिकीः आपः ( ६।४ ) — वृष्टिसे प्राप्त होनेवाला जल ।
- ३ सिंधुः ( ४।३ ) — नदी तथा समुद्रसे प्राप्त होनेवाला जल ।
- ४ अनूप्याः आपः ( ६।४ ) — जलमय प्रदेशमें प्राप्त होनेवाला जल ।
- ५ धन्वन्याः आपः ( ६।४ ) — मरुदेश, रेतीले देशमें, अथवा थोड़ी वृष्टि होनेवाले देशमें मिलने वाला जल ।
- ६ खनित्रिमाः आपः ( ६।४ ) — खोदकर बनाये हुए कूप बावलीसे प्राप्त होने वाला जल ।

वृष्टिसे प्राप्त होनेवाला जल भी रेतीले स्थान, कीचडकी मिट्टीके स्थान आदिमें गिरनेसे भिन्न गुण धर्मोंसे युक्त होता है । जिस स्थानमें सालों साल कीचड बना रहता है, उसमें पड़े हुए पानीकी अवस्था भिन्न होती है और रेतीमें से प्राप्त हुए पानीके गुण धर्म भिन्न हैं । इसी कारण ये सब जल विभिन्न गुणधर्मसे युक्त होता है । जलका उपयोग आरोग्यके लिये करना हो, तो प्रथम सब से उत्तम शुद्ध और पवित्र जल प्राप्त करना आवश्यक है ।

उक्त जल जो बाहर प्राप्त होता है वह घरमें लाकर घडों में रखने के कारण उसके गुणधर्ममें बदल होता है । अर्थात् कूपेका ताजा पानी जो गुणधर्म रखता है, वही घरमें लाकर ( कुंभे आभृताः ६।४ ) घडेमें कई दिन रखनेपर भिन्न गुणधर्मोंसे युक्त होना संभव है । तथा प्रवाही नदीका पानी और कूपेके स्थिर पानीके गुणधर्मभी भिन्न हो सकते हैं ।

इसी प्रकार एक ही जल विभिन्न स्थानमें और विभिन्न परिस्थितिमें रहनेसे विभिन्न गुणधर्मोंसे युक्त होता है । यह दर्शानेके लिये निम्न लिखित मंत्रमें कहा है —

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ( ४।२ )

“ वह जल जो सूर्यके सन्मुख रहता है, अथवा जिसके साथ सूर्य रहता है । ”



अर्थात् सूर्य किरणोंके साथ स्पर्श करनेवाला जल भिन्न गुणधर्म वाला बनता है और सदा अंधेरे में रहनेके कारण जिस पर सूर्य किरण नहीं गिरते उसके गुणधर्म भिन्न होते हैं। जिन कूर्वोंपर वृक्षादिकी हमेशा छाया होती है और जिनपर नहीं होती उनके जलोंके गुणधर्म भिन्न होते हैं। तथा—

अम्बयो यन्त्यध्वभिः । ( ४ । १ )

“ नदियां अपने मार्गसे चलती हैं। ” इसमें जलमें गतिका वर्णन है। यह गतिमान जल और स्थिर जल विभिन्न गुणधर्मोंसे युक्त होता है। स्थिर जलमें कृमिकीटक तथा सड़ावट होना संभव है उस प्रकार गतिवाले जलमें नहीं। इसी प्रकार गतिकी मंदता और तेजीके कारण भी जलके गुण धर्मोंमें भेद होते हैं। तथा—

पृश्नन्तीर्मधुना पयः । ( ४ । १ )

“ मधु अर्थात् पुष्प पराग आदि से जल में मिलावट होती है। ” इससे भी पानीके गुण धर्म बदलते हैं। नदी तालावके तटपर वृक्षादि होते हैं और उस जलमें वृक्षवनस्पतियोंसे फूल, फूलके पराग, पत्ते आदि गिरते हैं, जलमें सड़ते या मिलते हैं। यह कारण है कि जिससे जलके गुणधर्म बदलते हैं। तथा—

यत्र गावः पिबन्ति । ( ४ । ३ )

“ जिस जलाशय में गौवें पानी पीती हैं, ” जहां गौवें, भैंसे आदि पशु जाते हैं, जलपान करते हैं। उस पानीकी अवस्था भी बदल जाती है।

जल लेनेके समय इन बातोंका विचार करना चाहिये। जो जलकी अवस्थाएं वर्णन की हैं, उनमें सबसे उत्तम अवस्थावाला जल ही पीने आदि कार्य के लिये योग्य है। हरएक अवस्थामें प्राप्त होनेवाला जल लाभदायक नहीं होगा। वेद ने ये सब जलकी अवस्थाएं बताकर स्पष्ट कर दिया है कि जलमें भी उत्तम मध्यम अधम अवस्थाका जल हो सकता है और यदि उत्तम आरोग्य प्राप्त करना हो तो उत्तमसे उत्तम पवित्र जल ही लेना चाहिये। पाठक इन अवस्थाओंका उत्तम विचार करें।

जलमें औषध ।

जलका नाम ही “अमृत” है अर्थात् जीवन रूप रस ही जल है यही बात मंत्र कहता है—

अप्सु अमृतम् । ( ४ । ४ )

अप्सु भेषजम् । ( ४ । ४ )

“ जलमें अमृत है, जलमें औषध है। ” जल अमृतमय है और औषधिमय है।



मरनेसे बचानेवाला अमृत कहलाता है और शरीरके दोषोंको धोकर शरीरकी निर्दोषता सिद्ध करनेवाला भेषज कहलाता है। जल इन गुणोंसे युक्त है। इसी लिये जलको कहा है—  
शिवतमः रसः । ( ५ । २ )

“ जल अत्यंत कल्याण करनेवाला रस है । ” केवल “ शिवो रसः ” कहा नहीं है, परंतु “ शिवतमो रसः ” कहा है, इससे स्पष्ट है कि इससे अत्यंत कल्याण होना संभव है। यही बात अन्य शब्दोंसेभी वेद स्पष्ट कर रहा है—

आपः मयोभुवः । ( ५ । १ )

“ जल हित कारक है । ” यहांका “ मयस् ” शब्द “ सुख, आनंद, समाधान, तृप्ति ” आदि अर्थ का बोध कराता है। यदि जल पूर्ण आरोग्य साधक न होगा तो उससे आनंद बढ़ना असंभव है। इस लिये जल अमृतमय है यह स्पष्ट सिद्ध होता है इसी लिये कहा है।—

अप्सु विश्वानि भेषजा । ( ६ । २ )

“ जलमें सब दवाइयां हैं । ” जलमें केवल एकही रोग की औषधि नहीं प्रत्युत सब प्रकारकी औषधियां हैं। इसीलिये हर एक बीमारीका जलचिकित्सा से इलाज किया जा सकता है। योग्य वैद्य और पथ्यपालन करनेवाला रोगी होगा, तो आरोग्य निःसंदेह प्राप्त होगा। इसलिये कहा है —

आपः पृणीत भेषजम् । ( ६ । ३ )

अपो याचामि भेषजम् । ( ८५ । ४ )

“ जल औषध करता है। जलसे औषध मांगता हूं । ” अर्थात् जलसे चिकित्सा होती है। रोगों की निवृत्ति जलचिकित्सासे हो सकती है। रोगोंके कारण शरीरमें जो विषमता होती है उसे दूर करना और शरीरके सप्त धातुओंमें समता स्थापित करना जल चिकित्सासे संभवनीय है।

## समता और विषमता ।

शरीरकी समता आरोग्य है और विषमता रोग है। समता स्थापन करनेकी सूचना वेदके “ शं, शांति ” आदि शब्द करते हैं और विषमता दूर करनेका भाव “ योः ” शब्द वेदमें कर रहा है। दोनों मिल कर “ शं- योः ” शब्द बनता है। इसका संयुक्त तात्पर्य “ समताकी स्थापना और विषमताका दूर करना ” है। इसलिये कहा है—

शंयोरभि स्रवन्तु नः । ( ६ । १ )

“ समता की स्थापना और विषमता को दूर करना हमारे लिये जलकी धाराएं करें । ”



किंवा जलधाराएं उक्त दोनों बातोंका प्रवाह हमपर छोड़ें । जलसे उक्त दोनों बातोंकी सिद्धता होती है यह बात यहां सिद्ध ही है । तथा —

शं नो देवीरभिष्टय आपः भवन्तु । ( ६ । १ )

“दिव्य जल हमारे लिये शान्तिकारक हो” इसमें भी वही भाव है । ( सू. ६ मं. ४ ) यह मंत्र तो कई बार शान्ति या समता का उल्लेख करता है । समता की स्थापना और विषमताका दूर करना, ये दो कार्य होनेसे ही उत्तम रक्षा होती है, इसी लिये मंत्रमें कहा है—

वरूथं तन्वे मम ॥ ( ६ । ३ )

“ मेरे शरीरका रक्षण ” जल से हो । “ वरूथ ” का अर्थ “ संरक्षक कवच ” है । जलका वर्णन “ रक्षक कवच ” से किया है अर्थात् जल कवचके समान रक्षा करने वाला है । यह भाव स्पष्ट है ।

### बलकी वृद्धि ।

उक्त प्रकार आरोग्य प्राप्त होनेके पश्चात् शरीरका बल बढ़ानेका प्रश्न आता है । इस विषयमें मंत्र कहता है—

नः ऊर्जे दधातन । ( ५ । १ )

“ हमें बलके लिये पुष्ट करो । ” अर्थात् जलसे धारण पोषण होकर उत्तम प्रकार बल बढ़ना भी संभव है । विषमता दूर होकर समता स्थापना होगई तो बल बढ़ सकता है जलसे रमणीयता भी शरीरमें बढ़ती है कि—

महे रणाय चक्षसे । ( ५ । १ )

“ बड़ी ( रणाय ) रमणीयता के लिये ” जलका उपयोग होता है । जलसे शरीरकी रमणीयता बढ़जाती है । शरीरकी बाह्य शुद्धि होकर जैसी बाह्य सुंदरता बढ़ जाती है उसी प्रकार जल अंतःशुद्धि करता है इस लिये आरोग्य बढ़ाने द्वारा शरीरका सौंदर्य बढ़ानेमें सहायक होता है । आरोग्य के साथ सुंदरता का विशेष संबंध है । तात्पर्य यह जल मनुष्यकी यहां की सुस्थिति के लिये कारण होता है, इस लिये कहा है—

क्षयाय जिन्वथ । ( ५ । ३ ) क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । ( ५ । ४ )

“ निवास के लिये तृप्ति करते हो । प्राणियों के निवास का कारण है । ” इन मंत्रों का स्पष्ट कथन है कि जल मनुष्यादि प्राणियोंकी यहां सुस्थिति करनेका मुख्य हेतु है । इसी लिये कहते हैं— ईशाना वार्याणाम् । ( ५ । ४ )

“स्वीकारने योग्य गुणोंका अधिपति जल है ।” अर्थात् प्राणियोंको जिन जिन बातोंकी



आवश्यकता होती है उनका अस्तित्व जलमें है, इसी कारण जल निवासका हेतु बनता है।

### दीर्घ आयुष्यका साधन ।

मनुष्यादि प्राणियोंके दीर्घ आयुका साधक जल है यह बात इस मंत्र भागमें देखिये—

ज्योक्च सूर्य दृशे । ( ६ । ३ )

“बहुत दिन तक सूर्यका दर्शन करूं।” यह एक महावरा है। इसका अर्थ है कि “मैं बहुत दीर्घ आयुतक जीवित रहूं” अर्थात् जलके योग्य उपयोगसे दीर्घ आयु प्राप्त करना संभव है। “ज + ल” वह है कि जो जन्मसे लेकर लय पर्यंत उपयोगी है।

### प्रजनन शक्ति ।

जल का नाम वीर्य है। इसकी सूचना निम्न मंत्र भागसे मिलती है—

आपो जनयथा च नः । ( ५ । ३ )

“जल हमें उत्पन्न करता है।” अर्थात् इसके कारण हममें किंवा प्राणियोंमें प्रजनन शक्ति होती है। आरोग्य, बल, दीर्घ आयुष्य, धातुओंकी समता आदिका प्रजनन शक्ति के साथ निकट संबंध है, यह बात पाठक जान सकते हैं। इस लिये इस विषयमें यहाँ अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। इस प्रजनन शक्तिका नाम वाजीकरण है और इसका वर्णन मंत्रमें निम्न प्रकार हुआ है—

अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो

गावो भवथ वाजिनीः ॥ ( ४ । ४ )

“जल के प्रशस्त गुणोंसे अश्व ( पुरुष ) वाजी बनते हैं और गौवें ( स्त्रियों ) वाजिनी बनती हैं।” वाजी शब्द प्रजनन शक्तिसे युक्त होनेका भाव बता रहा है। अश्व और गौ शब्द यहाँ पुरुष और स्त्री जातीका बोध करते हैं। जलके प्रयोगसे वाजीकरण की सिद्धि इस प्रकार यहाँ कही है। तथा और देखिये—

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयोऽध्वरीयताम् । ( ४ । १ )

“यज्ञकर्ताओंकी माताएं और बहिनें अपने मार्गोंसे जाती हैं।” जो स्त्रियोंके लिये उचित मार्ग है उसीसे जाती हैं। अर्थात् नियमानुकूल वर्ताव करती हुई प्रगति करती हैं। स्त्री पुरुष अपने योग्य नियमोंसे चलेंगे तोही उत्तम प्रजनन होना संभव है, इस बातकी सूचना यहाँ मिलती है।

इस रीतिसे इन तीनों सूक्तोंमें जलविषयक महत्त्व पूर्ण ज्ञानका उपदेश दिया है।

[ अथर्ववेद प्रथम कांडमें प्रथम अनुवाक समाप्त । ]



# Employment for millions STUDENTS' OWN MAGAZINE

A Monthly English Teacher--careers for Young men a speciality.

ANNUAL SUBSCRIPTION WITH SUPPLEMENTS, Rs. 3.

GET YOUR COPY FOR MARCH NUMBER RESERVED FOR 6 ANNAS STAMPS.

SAMPLE COPY POSITIVELY NO.

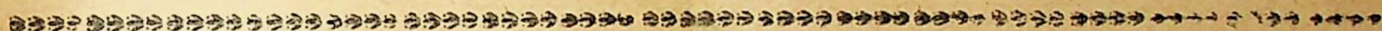
APPLY TO-

CAPITAL INDUSTRIAL BUREAU, RAM GALL, LAHORE.



## वैदिक उपदेश

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिए बारह उपदेश हैं। इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी। मूल्य ॥ ) आठ आने। डाकघर - ) एक आना।  
मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातागा )



देश देशान्तर का ज्ञान प्राप्त करने का  
अपूर्व साधन

विद्यार्थियों को परीक्षा पास करने का

**सुगम उपाय**

## भूगोल

भूगोल विषयक हिन्दी का एकमात्र सचित्र मासिकपत्र। पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बिहार उडोसा, मध्य प्रान्त और बरार के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत।

“भूगोल” में ज्योतिष, यात्रा, व्यवसाय, पशु धनस्पति अनुसंधान आदि भूगोल के सभी अंगों पर उच्च कोटि के मौलिक लेख प्रकाशित होते हैं। ( पिछले दो वर्षों के लेखों और लेखकों की सूची मुफ्त मंगाकर स्वयं देख लीजिये )।

वार्षिक मूल्य ३ )

मैनेजर “भूगोल” मंत्र।

## योगमीमांसा

त्रैमासिक पत्र

संपादक— श्रीमान कुवलयानंद जी  
महाराज।

कैवल्यधाम आश्रममें योग शास्त्र की खोज हो रही है जिस खोजका परिणाम आश्चर्यजनक सिद्धियोंमें हुआ है, उन आविष्कारोंका प्रकाशन इस त्रैमासिक द्वारा होगा। प्रत्येक अंकमें ८० पृष्ठ और १६ चित्र दिये जायेंगे।

वार्षिक चंदा ७ ) ; द्वादश्वे हं १२ शि०  
प्रत्येक अंक २ ) रु.

श्री. प्रबंधकर्ता-योगमीमांसा कार्यालय, कुंजवन;  
पोष्ट-लोणावला, ( जि. पुणे )





# छूत और अछूत ।

## [ प्रथम भाग ]

अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ! अत्यंत उपयोगी ?

- इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

- १ छूत अछूत के सामान्य कारण,
- २ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढी,
- ३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
- ४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
- ५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
- ६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
- ७ गुणकमानुसार वर्ण व्यवस्था,
- ८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
- ९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
- १० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
- ११ वैदिक कालकी उदारता,
- १२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,
- १३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था ।

इस पुस्तकमें हर एक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है । यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है ।

पृष्ठ संख्या १८० मूल्य केवल १रु. डाकव्यय । )

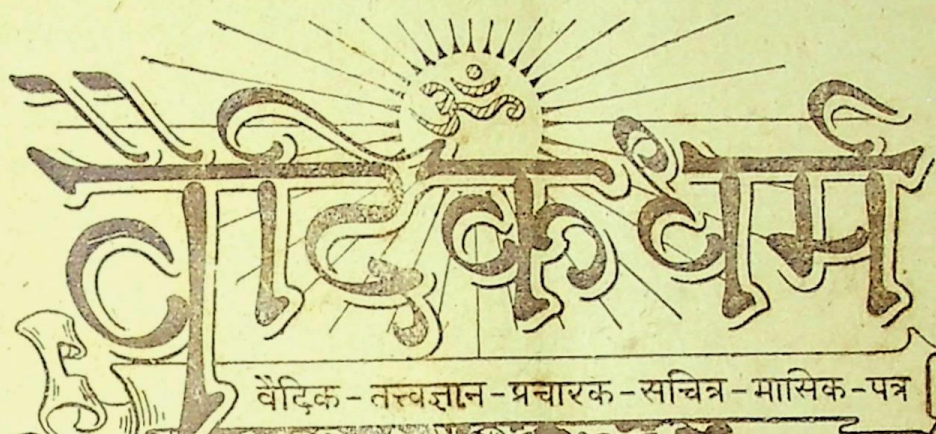
अतिशीघ्र मंगाइये ।

द्वितीय भाग छप रहा है अगले मासमें तैयार होगा ।

स्वाध्याय मंडल... अधि (जि. सातारा )



वर्ष ८ अंक ३ क्रमांक ८७ फाल्गुन संवत् १९८३ मार्च सन १९२७



छपकर तैयार है।

## महाभारत की समालोचना

प्रथम भाग और द्वितीय  
भाग।

प्रति भागका

मूल्य ॥) डाकव्यय=)

वी. पी. से ॥)=)

मंत्रा.— स्वाध्यायमंडल औंध

( जि. सातारा )

संपादक-श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।  
स्वाध्यायमंडल, औंध ( जि. सातारा )



१ मातृभूमिसे सुख प्राप्ति	४१	५ सुस्वागतम्—	५६
२ विशेष ध्यान दीजिये	४२	६ अथर्ववेद का स्वाध्याय	४१-४४
३ शुभमनोवृत्तियोंसे स्वास्थ्यप्राप्ति	४३	धर्म प्रचार सूक्त	४१
४ योग जिज्ञासा की कहानी	५०	वर्च- प्राप्ति सूक्त	५७

# आसनों का चित्रपट !

“आसनोंके चित्र पट” की बहुत ही मांग थी, क्योंकि आसनों का व्यायाम लेनेसे सहस्रों मनुष्योंका स्वास्थ्य सुधर चुका है, इस लिये आसन व्यायाम से स्वास्थ्य लाभ होनेके विषयमें अब किसीको संदेह ही नहीं रहा है। अतः लोग सब आसनोंके एक ही कागज पर छपे हुए चित्रपट बहुत दिनोंसे मांग रहे थे। मांग बहुत होने के कारण वैसे चित्रपट अब मुद्रित किये हैं और ग्राहकोंके पास खाना भी हो गये हैं। २०-३०इंच कागज पर सब आसन दिखाई दिये हैं। यह चित्र पट कमरे में दिवार पर लगाकर उसके चित्रोंको देख कर आसन करनेकी बहुत सुविधा अब हो गई है।

मूल्य केवल = ) तीन आणे और डाक व्यय- ) एक आना है।

स्वाध्याय मंडल

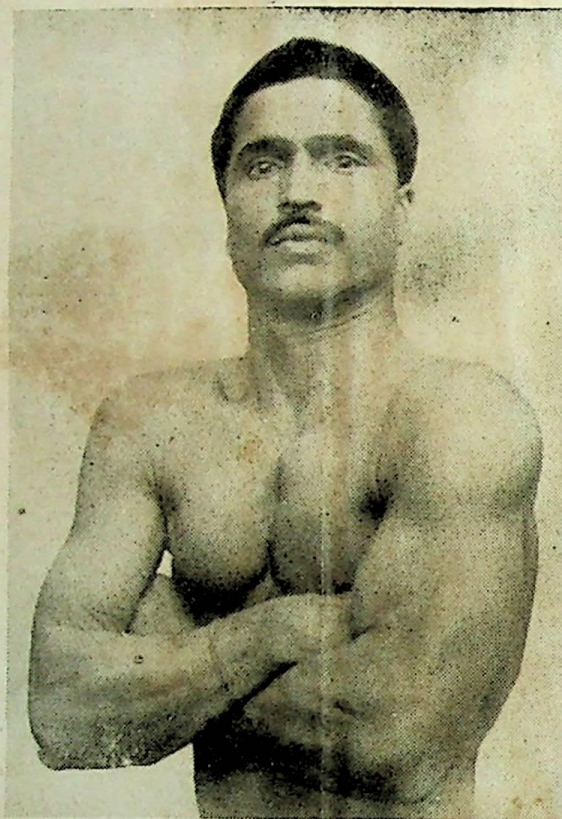
औध ( जि. सातारा )







श्री. म. विश्वनाथ रावजी लिमये.  
सांगली.



[ एक घण्टा और बीस मिनिट के समयमें बारहसौं चार  
सूर्यभेदन व्यायाम करनेवाले धीर ]

( ब्लाक “ चित्रशाला पूता ” की कृपासे प्राप्त )

भा. सु. औंध



वर्ष ८

अंक ३

क्रमांक ८७



फाल्गुन

संवत् १९८३

मार्च

सन १९२७

# वैदिकधर्म

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवलेकर .

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

मातृभूमिसे सुखप्राप्ति ।

स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी ।

यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥

क्र. १ । २२ । १५

हे ( पृथिवि ) मातृभूमि! हमारे लिये तू ( स्योना ) सुख बढ़ानेवाली, ( अन् ऋक्षरा ) कंटकरहित तथा ( निवेशनी ) हमारा निवास कराने वाली ( भव ) हो । और ( सप्रथः ) कीर्तिके साथ ( शर्म ) सुख हम सबको ( यच्छ ) दो ।

मातृभूमि अपने पुत्रोंको सुख देनेवाली, कंटकरहित स्थानसे युक्त अर्थात् उत्तम उग-जाऊ भूमिसे फली और फूली, तथा हम सब पुत्रोंके निवासके लिये पर्याप्त और विस्तृत स्थान देनेवाली, तथा कीर्तिको बढ़ाकर सुख देनेवाली होवे ।





# विशेष ध्यान दीजिये ।

## १ गुरुकुल की रजत जयन्ती ।

गुरुकुल कांगड़ी आयोंका राष्ट्रीय विद्यापीठ है और यही श्री० स्वा० श्रद्धानंदजी का जीवित और जाग्रत स्मारक है । जिस परिश्रमसे और दिव्य प्रेम से श्री० स्वा० श्रद्धानंदजीने इस विद्यापीठका पालन पोषण किया है वह सब आर्य जानते ही हैं । इस विद्यापीठ की रजत जयन्ती इस मासमें गुरुकुल भूमिमें होगी । हरएक वैदिक धर्मीका आवश्यक कर्तव्य है कि वह अपने उत्साह से इस को सफल और सुफल बनानेका यत्न करे, क्योंकि यह उनकी ही रजत जयन्ती है ।

## २ श्रद्धानंद स्मारक निधि ।

इस निधिमें हरएक आर्य भाई और आर्य बहिन को अपने धनका भाग अवश्य अर्पण करना चाहिये । इस निधिमें धनके अर्पण करने के लिये अपील करनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि श्री० स्वामिजीकी मृत्यु ही एक इतनी जोरकी चेतावनी है कि उस से अधिक प्रभावशाली अपील हो नहीं सकता । अतः वैदिक धर्म के सब प्रेमियोंसे सूचना है कि वे अपना भाग अतिशीघ्र “श्रीमती आर्य प्र० सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, लाहौर” के ना. भेज दें ।

## ३ वैदिक यज्ञ संस्था ।

इस पुस्तक का दूसरा भाग यज्ञ की सहायता देने वाले महाशयोंके नाम पूर्व पतेपर गत मास में ही भेजा था । परंतु कई पुस्तक पता ठीक न होनेसे वापस आगये हैं । जिनका पहिला पता बदला है वे कृपया अपने नये पतेसे सूचित करें । (मूल्य १) डा. व्य. =)

## ४ छत और अछत ।

इस पुस्तक की मांग बढ़ रही है और द्वितीय भाग भी ग्राहक पढ़ना चाहते हैं । सूचनार्थ निवेदन है कि द्वितीय भाग छपना प्रारंभ हुआ है, प्रायः दो मासोंमें छप जायगा । द्वितीय भाग इतना ही बड़ा होगा ।

## ५ पोषक वर्ग ।

स्वाध्याय मंडल के पोषक वर्ग का चंदा इकट्ठा १००) सौ रु. देनेसे ग्राहकों का अत्यंत लाभ है, यह बात सब लोग जानते ही हैं, इस लिये इस वर्गका चंदा आने लगा है । गत मासमें यह चंदा प्राप्त हुआ है -

१ म. प्रभुदास दलाभाई, करमसद	१०० )
२ " विष्णुचंद्र सहगल, लौली	९७ )
३ " प्रभुदयालजी	७५ )
४ " छत्र सिंहजी, मियागांव	२५ )
५ " बानु रामजी, लाहौर	२५ )

३२२

छोटे हिस्सोंमें पोषक वर्ग का चंदा भेजनेवाले प्रतिमास २५ ) रु. के हिसाब से भेज रहे हैं ।

## ६ स्थिर सहायक वर्ग ।

स्थिर सहायक वर्गमें इस मास में निम्न लिखित चंदा प्राप्त हुआ है—

चरोतर प्रदेश आर्य समाज आनंद १३० )

इन सब दाताओंका हार्दिक धन्यवाद है । यदि पोषक वर्ग के ग्राहक सौ हो जाय तो कर्जासे स्वाध्याय मंडल की मुक्तता हो सकती है । तथा ग्राहकों को भी प्रतिवर्ष कमसे कम १६) रु. के पुस्तक मिल सकते हैं । आशा है कि पाठक इस का विचार करेंगे ।



# शुभ मनोवृत्तियोंसे स्वास्थ्यप्राप्ति

“ यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते । तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

यजु. अ. ३४।३

संसार में जितनी क्रान्तियाँ होती हैं, उनका मूल कारण मनोवृत्ति में दीख पड़ता है-

“ मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । ”

मन ही मनुष्यके बन्धन या मुक्तिका कारण है । जिस मनुष्य की वृत्ति जितनी अधिक प्रबल होगी, उतना ही अधिक पुरुषार्थ वह करेगा । जिन मनुष्यों की मनोवृत्तियाँ निर्बल हैं, वे बड़े बड़े पराक्रम कर ही नहीं सकते। राम, कृष्ण अर्जुन, राणाप्रताप, शिवाजी आदिकी भावनाएँ तीव्रतम न होती-उनमें प्रबलतर श्रेष्ठ आकांक्षा न होती-तो कदापि सम्भव न था कि वे ऐसी भारी क्रान्तियाँ कर डालते । परशुरामजीने २१ बार पृथ्वी पर विजय प्राप्त किया, या दुःशासन की छाती फोड़कर उसके हृदय का खून पीने की प्रतिज्ञा भीम ने की, इतना ही नहीं घोर संग्राम कर उस प्रतिज्ञा को पूर्ण किया । ये बातें प्रबल भावनाओंके ही परिणाम हैं। इनके स्थान में धर्मराज होते, या संसार से उदासीन रहनेवाला कोई आधुनिक उदासी होता तो ऊपर लिखी घटनाएँ न होतीं ।

सीझर के विषय में एक किंवदन्ति है कि जब उसने सिकन्दर की मूर्ति देखी तब उसके मन में यह विचार आया कि इस पुरुष ने मेरे से छोटी उम्रमें ही कैसे कैसे भारी पराक्रम किये? यह सोच सीझर का गला भर आया । इस किस्सा मैं जो गूढ़ है वह भी तीव्र मनोवृत्ति को बतलाता है । इससे यह स्पष्ट है कि भीम, अर्जुन, शिवाजी आदिकों के

पराक्रमों को सुनकर जिसका हृदय फूल उठेगा, उसीसे उसका अनुकरण होगा ।

इस संसार में ऐसे कई लोग नजर आते हैं जो बुद्धि रहते भी दुर्बल मनोवृत्ति के कारण पीछे पड़े हैं । ऐसे लोग वे ही हैं जिनमें महत्वाकांक्षा, स्पर्धा, आवेश आदि वृत्तियों का अभाव है । मनोवृत्ति एन्जिन की भाँफ के समान है । एन्जिन कितना ही अच्छा क्यों न हो, उसमें यदि भरपूर भाँफ नहीं है, तो वह अधिक काम कर नहीं सकता । यही हाल दुर्बल मनोवृत्ति के मनुष्यका है । जिन जिन लोगों ने आज तक राष्ट्र को जगाकर उससे बड़े बड़े कार्य कराये हैं, वे कार्य जनता की मनोवृत्ति के बलपरही हुए हैं। श्री शिवाजी, राणाप्रताप, रणजीतसिंग, गुरुगोविंदसिंग आदिके सदृश शूर वीरोंके शब्दोंमें वह अद्भुत शक्ति थी जिससे हजारों-लाखों-मनुष्यों के मन में एक ही समय एक साथ एक ही-प्रेरणा उत्पन्न होती थी। यह क्यों? यह इसी लिये होता था कि इन विभूतियों में वह मानसिक बल था जो लोगों की मनोवृत्तियों को क्षुब्ध कर देता था । इन पुरुष सिंहों में यदि मनोवृत्ति का जोर कम होता, तो उनकी वक्तृता का असर उनके समय के लोगों पर दसवें हिस्से में भी न हुआ होता । मनोवृत्ति की महिमा ऐसी भारी है । इसलिये वेदमें कहा है-

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत ऋतुम् ॥

ऋ. १०।२५।१

“ हमारा मन शुभ भावनामय होवे क्यों कि वह ( दक्ष ) बलवान और ( ऋतु ) पुरुषार्थ करनेवाला, है । सब पुरुषार्थ इसीपर निर्भर हैं ।



धर्म का मुख्य उपयोग यही है कि उससे मनुष्य की श्रेष्ठ मनोवृत्तियों का पोषण हो। उसी के द्वारा लोगों की मनोवृत्तियाँ जागृत की जा सकती हैं। जिस धर्म से लोगों की मनोवृत्तियाँ जागृत एवं विकसित नहीं होतीं, उस धर्म से राष्ट्र का उत्कर्ष होना कठिन है। यह अनुभव की बात है कि जब धर्म के पुनर्जीवन से लोगों की मनोवृत्तियाँ जागृत होती हैं, तभी उनसे कुछ विलक्षण पराक्रम होता है वा क्रान्ति होती है।

फ्रान्स की राज्यक्रान्ति, अमेरिका का स्वातन्त्र्य, यूरोप की धर्मक्रान्ति, हिन्दुस्थान में मराठों और सिक्खों का उदय आदि बातों का इतिहास यही बताता है कि कोई भी बड़ी क्रान्ति या कोई भी बड़ा कार्य तब तक नहीं होता जबतक लोगों की मनोवृत्तियाँ क्षुब्ध नहीं होतीं।

ऊपर के विवेचन से कोई भी जान सकता है कि प्रबल मनोवृत्ति ही सब प्रकारके पराक्रम का आवश्यक कारण है। मनोवृत्तियों का मूल-स्थान मस्तिष्क है। बलवान मस्तिष्क बलवान शरीर ही में साधारणतः पाया जाता है। इससे सिद्ध होता है कि प्रबल मनोवृत्तियाँ ऐसे ही लोगों में पाई जा सकती हैं जिनके शरीर प्रबल हैं— अर्थात् जिनका स्वास्थ्य प्रथम श्रेणी का है।

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।

“शरीर ही मुख्य धर्म अर्थात् चतुर्विध पुरुषार्थका साधन है।” इस से स्पष्टतया यही अनुमान कर सकते हैं कि जिनकी यह इच्छा हो कि संसार में अपना अधिकार रहे तथा अपन बड़े बड़े पराक्रम करें, उन्हें चाहिये कि अपना स्वास्थ्य प्रथम श्रेणी का बनावें और योगादि साधन से आलेदजें की शरीर संपत्ति प्राप्त करें।

यदि यह देखना हो कि शरीर का उत्साह और मनोवृत्तियों के बल का क्या सम्बन्ध है तो मालूम हो सकता है, कि जिस समय उत्साह अधिक होता है, तभी ( अर्थात् युवावस्था में ) मनोवृत्तियाँ प्रबल रहती हैं। जैसे जैसे बुढ़ापा आने लगता है वैसे ही वैसे शरीर का उत्साह कम होता जाता है और

मनोवृत्तियों का बल भी घटता जाता है। इस बात का पता, व्यवहार के उदाहरणों के देखनेसे, सरलता पूर्वक चल सकता है। जब शरीर बलवान होता है, तभी मनोवृत्तियाँ भी बल पकड़े रहती हैं, इतना ही नहीं उस समय वे उच्च श्रेणी की रहती हैं। उदारता, सरल मनस्कता, स्वाभिमान आदि गुण जितनी अधिक मात्रा में युवावस्थामें नजर आते हैं, उतनी अधिक मात्रा में वे आगे चलकर नजर नहीं आते। मित्र के लिये हर प्रकार के कष्ट सहने की तैयारी यहां तक की मौका पड़ने पर प्राण भी जोखिम में डालने की तैयारी विपत्ति में फंसे मनुष्य को अपने पास जो कुछ हो दे देने की तैयारी, अपने सम्मान के आगे सब बातें तुच्छ समझना आदि बातें २०वर्ष से ३०वर्ष की अवस्था तक नजर आती हैं। उसके आगे वे इतनी तीव्रतासे नहीं नजर आतीं।

विचार के कारण या संसार के कटु अनुभव के कारण अच्छे स्वभाव का मनुष्य उतरती उमर में अधिक अच्छा होगा, पर ऐसे उदाहरण अपवाद स्वरूप हैं। सामान्य नियम यही है कि जवानी की अपेक्षा बुढ़ापे में मनुष्य अधिक अधिक स्वार्थी बनता जाता है। जवानी में मित्र, देश आदिके प्रति जो प्रेम रहता है वह बुढ़ापे में खुद-ब-खुद स्त्री पुत्रादिकों पर स्थिर हो जाता है। जो लोग बेशरमी से रिश्वत लेते हैं, क्षुद्र लाभके लिये खूनकर डालते हैं, स्व-देश-द्रोह, स्व-धर्म-द्रोह आदि नीचा-तिनीच मनोवृत्ति में भँसकर पापकर्म करते हैं, उन्हें चुन कर अलग निकाला जावे तो उसमें नव-युवक बहुत कम मिलेंगे। इससे हमारा यह मतलब नहीं कि नवयुवकों के हृदयमें बुरे भाव रहते ही नहीं। वे येही नहीं इससे भी अधिक ढिठाई और साहस के काम मौके पर कर देंगे; किन्तु वे काम नीच हेतु से न किये जावेंगे, किसी उद्देश की पूर्ति के लिये या अविचार के कारण वे काम होंगे।

पातकों तथा अन्यायों में भी क्षुद्र तथा अक्षुद्र भेद हैं। मनुष्य क्षुद्र पातक जवानी की अपेक्षा बुढ़ापे में अधिक करता है। जवान मनुष्य किसी के



घर में डाका डालेगा, दिन दहाड़े भरी सड़क पर किसी का खून कर डालेगा; किन्तु बालक को मिठाई के बहाने फुसलाकर ले जाना और उसके सिर में पत्थर पटककर उसे मार डालना, जूतियों की ठोकरी खाते हुए भी हँसकर अपने मालिक को खुष करना, किसी मनुष्य को भाई कहना किन्तु उसका बिलकुल चौपट कर डालना आदि काम युवक से सहसा न बनेंगे ।

ऊपर लिखी बात का अनुभव तभी हो सकता है जब कि इस बातपर विचार किया जाय कि लोगों का ध्यान स्व-देश-हित वा परमार्थ को हलचल में किस अवस्थामें अधिक लगता है और धन-दौलत-ऊपरी मान-सन्मान आदि बातों में कब लगता है । प्रसिद्ध लेखक डीक्विन्सेने एक स्थान में कहा है Youth is the age of mobile impulses अर्थात् जवानी ही उच्च भावनाओं की उत्पत्ति का समय है ।

“ संसार के वीर पुरुषों का इतिहास क्या है नव युवकों का वर्णन है । संसार की प्रायः प्रत्येक बड़ी बात नव युवकों द्वारा ही बनी है । आज दिन तक जो जो प्रसिद्ध एवं बड़े बड़े लोग इस संसार में हुए हैं उनका इतिहास पढ़ने से यही ऊपर लिखी बात सिद्ध होगी महान् पुरुष जो परोपकार के काम कर दिखाते हैं उनकी जड़ तथा उनका निश्चय युवावस्था में ही हुआ करता है । यह यौवनकी महिमा है ।

जिस समय स्वास्थ्य अच्छेसे अच्छा रहता है उसी समय ऊंची से ऊंची मनोवृत्तियाँ उत्पन्न हुआ करती हैं । इतना ही नहीं किन्तु ज्यों ज्यों मनुष्य की अवस्था अधिक होती जाती है त्यों त्यों उदारता, स्वाभिमान, स्वार्थत्याग आदि श्रेष्ठ मनोवृत्तियों की मात्रा घटती जाती है । यदि यह देखना हो कि मनोवृत्ति की प्रखरता जागृत रहने के लिये दृष्ट पुष्ट देह की तथा अच्छे से अच्छे स्वास्थ्य की कैसी आवश्यकता होती है, तो किसी मस्त सांड की, भैंसे की या पुष्ट घोड़े की मनोवृत्ति से अधमरे जानवर की मनोवृत्ति की तुलना की जावे । मालिकका प्यारका शब्द सुनते ही कान खड़े कर देना, क्रोध का वचन सुन-

ही बुरा लगना, लड़ाई के समय या दूसरे किसी घोर समय में आवेश से तथा ईर्ष्या से काम करना आदि कई गुण जो दृष्ट, पुष्ट तथा नीरोग घोड़े में दिखाई देते हैं, वे सब दिन भरमें ढाई कोस चलने वाले आधमरे टट्ट में नहीं दिखेंगे । इसी तरह जो ऐंठ, जो आवेश, जो तेजी मस्त भैंसे में या दृष्ट पुष्ट सांडमें नजर आती है, वह तेजी तथा ऐंठ बूढ़े बैल या भैंसे में नहीं रहती । वेदादी शास्त्रोंमें पुरुषके विशेषण “वृषभ, वाजी” आते हैं इसका यही कारण है । इन बातों पर विचार करने से भी यही प्रतीत होता है कि यद्यपि मनोवृत्तियों का प्रत्यक्ष शरीर से सम्बन्ध नहीं है, तब भी उनके पूर्ण विकास के लिये तथा उन्हें पूर्णतया जागृत रखने के लिये शरीर स्वास्थ्यकी परम आवश्यकता होती है ।

इंद्रिय - विज्ञान - शास्त्र के आधार पर भी यही सिद्ध होता है कि मनोवृत्ति तथा स्वास्थ्य का निकट सम्बन्ध है । इस शास्त्रने सिद्ध कर दिया है कि शरीर और मस्तिष्क का निकटतम सम्बन्ध है और इन में एक की वृद्धि और पोषण उचित रीति से होने ही से दूसरे की वृद्धि और पोषण हो सकता है । “ तन चंगा तो मन चंगा ” की प्रसिद्ध कहावत बहुतेरे लोग जानते हैं । सब लोग इस बात को मानते हैं कि स्नायु की वृद्धि होने से मन और मस्तिष्क नीरोग तथा तेज रहते हैं और मस्तिष्क मनोवृत्तियों का अधिष्ठान है । तब यह बात सिद्ध ही है कि मनोवृत्तियों के प्रबल एवं तेज रहने के लिये शरीर-स्वास्थ्य की अत्यन्त आवश्यकता है ।

मनोवृत्तियों के सम्बन्ध में इतने विस्तार से विवेचन करने का कारण यह कि आज तक हम लोगों ने मनोवृत्तियों की महत्ता को पहिचाना नहीं था । प्रबल मनोवृत्ति मनुष्य को आपत्ति में डाल देती है यह देख कई लोगों ने समझ लिया था कि प्रबल मनोवृत्ति घातक है । इसीसे उन्होंने इन मनोवृत्तियों को निर्बल करने के उपायों पर खूब विचार किया था । हमारे आधुनिक वेदान्त के निवृत्ति मार्ग का अन्तिम उद्देश जो कुछ हो, पर उसका प्रत्यक्ष परिणाम यही होता है कि मनोवृत्तियाँ निर्बल कर दी



जाती हैं। संसार से भाग कर दूर चले जाना और वहां ( जहां मन की परीक्षा के मौके कम होते हैं ) उपवास करके तथा शरीर को कष्ट देकर मनोविकार तथा मस्तिष्क को निर्बल करके मनको अपने वश में करने का उपदेश वैसा ही कायरता का तथा नामर्दीका है, जैसे सिंह, व्याघ्र आदि को भूखों रखकर मृतप्राय करके उन्हें अपने वश में कर लेना ! इसका परिणाम श्रीकृष्णचंद्रजीके शब्दोंसे सुनिये-

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।  
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥

गीता ३।६

“ कर्मेन्द्रियोंको दबाकर विषयोंका मनसे स्मरण करता हुआ जो रहता है वह मिथ्याचार पापी है।” वह अयोगतिको जाता है-  
तथा-

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।  
दंभाहंकार संयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥५॥  
कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।  
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्॥६॥

गीता १७

“ अशास्त्रीय मार्ग से जो घोर तप करते हैं, दंभ और घमंडसे युक्त होकर कामादिसे युक्त होते हैं, जो मूर्ख शरीरके सब अवयवोंको तथा आत्माको भी कष्ट देते हैं वे असुर बुद्धिके हैं।” ये सदा अवनत ही होते रहेंगे। सच्ची उन्नतिका यह मार्ग नहीं। अशक्तता, नामर्दी, बुजदिली यह उन्नतिका रास्ता नहीं है।

यह तो हमारी निवृत्ति मार्ग के अवलम्बन की जादती ही थी जिसके कारण स्वयं श्रीकृष्ण भगवानको अवतार ले अर्जुन को गीता रूप उच्च कोटि के प्रवृत्ति-मार्ग का अर्थात् सच्चे वैदिक कर्मयोग का उपदेश करना पड़ा। तिसपर भी हम लोगों में से दुर्बल निवृत्तिमार्ग नष्ट न हो पाया ॥ अब भी हमारे परमार्थ के अधिकांश उपदेशक शरीर एवं मनोवृत्ति को निर्बल बनाने के ही प्रयत्न में हैं। ऐसी दशा में हम लोगों द्वारा शरीर की तथा मनोवृत्तियों की उपेक्षा न होगी तो और क्या होगा ? यदि हम

श्रीकृष्णजीका ही आदर्श अपने सम्मुख रखेंगे तोभी अच्छा होगा, परंतु कौन वैसा कर रहा है ?

हमारी मनोवृत्तियाँ निर्बल रहनेका तथा जीवन-संग्राम में हम लोगों की सामर्थ्य-हीनता का एक और कारण है। यह कारण नया नहीं है, बहुत प्राचीन काल से चला आया है। यह कारण है हमारी अधूरी शिक्षा प्रणाली। यह ऐसी शिक्षा है जिस में बुद्धि का विकास अच्छी तरह होता है किन्तु दूसरी शक्तियों का विकास नहीं होने पाता। मस्तिष्क और शरीर के सम्बन्ध में यह नियम है कि एक जन्ममें दोनों के विकासकी परम सीमा निश्चित रहती है। उनमें से एक भाग की विशेष ( अर्थात् योग्य प्रमाण से अधिक ) वृद्धि हो तो दूसरे भाग की वृद्धि में कमी होती है। जिस प्रकार किसी मनुष्य के खर्च के भिन्न भिन्न बातों में से किसी एक में अंदाज से अधिक या कम खर्च हो जावे तो दूसरों में खर्च कम-बढ़ होना स्वाभाविक है।

यही हाल प्राणियों का है। जो मनुष्य केवल विद्या पढ़नेमें लगा रहता है उसकी बुद्धि विशाल होती है किन्तु उसका शरीर निर्बल रहता है, जो मनुष्य केवल शारीरिक व्यायाम में ही लगा रहता है उसका शरीर तैयार हो जाता है पर बुद्धि का विकास नहीं होने पाता। जिसकी स्मरणशक्ति अति उत्तम रहती है, उसमें विचारशक्ति कम रहती है। जिसकी विचार-शक्ति तेज होती है, उसकी स्मरण-शक्ति साधारणतः मही रहती है। जो अंध है, उसकी स्पर्श-इन्द्रिय तीक्ष्ण होती है। जो पंगु है उसके शरीरका ऊपरी भाग साधारणतः अधिक पुष्ट रहता है। जिस वृक्षमें पत्ती अधिक आती है उसमें फल सामान्यतः कम आते हैं।

इस प्रकार के कई उदाहरणों से तथा कई प्रत्यक्ष दीखने वाले प्रमाणों से हमारा कथन सिद्ध होता है। यही सिद्धान्त शरीर तथा मस्तिष्क की वृद्धि के बारे में लागू है। जब मस्तिष्क के सब भागों की वृद्धि उचित प्रमाण में होती है तब मस्तिष्क के गुण बढ़ते हैं, परन्तु जब मस्तिष्क के किसी एक भाग पर



हीविशेष बल पडता है तब उस भाग की अनावश्यक वृद्धि होती है तथा दूसरे भाग निर्बल होते हैं। व्यवहार का अनुभव है कि जिसकी बुद्धिपर अधिक बल पड़े उसके मनो-विकार एवं उसकी मनोवृत्तियां कमजोर होंगी।

मस्तिष्क के दो भाग होते हैं एक मनोवृत्ति-मूलक और दूसरा बुद्धि-मूलक। इनमें से एक की अधिक वृद्धि होने से दूसरा निर्बल हो जाता है। अर्थात् मस्तिष्क की शक्ति का व्यय बुद्धि के विकास में जितना वाजिनसे अधिक होगा, उतना ही मनोवृत्ति और मनोविकार का जोर कम हो जावेगा।

ब्राह्मणजातीके इतिहास से विदित होता है कि वे ऐसे व्यवसाय नहीं करते थे जिनसे विशेष उग्र मनोवृत्तियां-जागृत एवं विकसित हों और शरीर सुदृढ एवं बलवान बने। वे अधिकांश समय मीमांसा, न्याय, व्याकरण आदि केवल बुद्धिकी वृद्धि करने-वाले विषयोंके अध्ययनमें बिताते थे। इससे उनमें ऐसे गुणों की वृद्धि न हुई जिनकी सहायतासे मनुष्य दूसरों को हराकर उनका स्वामी हो जाता है। इस का परिणाम यह हुआ कि यद्यपि ब्राह्मण जाति बुद्धिमें और जातियों से बड़ी चढ़ी है तब भी उसमें वे मनोवृत्तियां जिनके कारण संसार में अधिकार प्राप्त होता है, कम मात्रा में हैं।

दूसरी कई बातों से भी यही बात सिद्ध होती है। हमारे साहित्य में मनोवृत्ति के विकास की पुस्तकों की अपेक्षा बुद्धि के वृद्धि की पुस्तकों अधिक हैं।

अंग्रेज गल्प लेखकों की पुस्तकों में प्रबल मनोवृत्तिका जैसा चित्र खिंचा रहता है वैसा भारतीय लेखकों की पुस्तकों में नहीं रहता। इसी प्रकार यदि अपने देश के वक्ताओं को भी देखें तो मालूम होगा कि वे मनकी भावनाओं को उत्तेजित करने-वाले नहीं प्रतीत होते ! अंग्रेज सरकार का जबसे राज हुआ है तब से जो वक्ता भारत में हुए हैं उनमें ग्राइट, ब्राडला आदि के समान सनसनी पैदा करने वाले वक्ता भी थोड़े ही हैं। तब पिट, बर्क आदिको वे कहाँ तक पा सकेंगे? ऐसे ही वक्ता अपने देश में अधिक हुए हैं जिनकी वक्तृताका प्रवाह रबर टायर

वाले तांगे के सदृश बिना धक्के के या बिना दचके के चलता है। हम लोगों में ऐसे वक्ताओं की बड़ी भारी कमी है जिनकी वक्तृता से यह पता चले कि वक्ता के हृदय की खलबली तथा सनसनी भाषण के रूपमें बाहर निकल रही हो। ऊपर दी हुई बातों से तथा और भी कई बातों से यह विदित हो जाता है कि हम लोगों की मनोवृत्तियां उतनी तीव्र नहीं हैं जितनी विजयके लिये चाहिये।

आरंभ हीमें हम बता चुके हैं कि संसारमें राज-क्रान्ति तथा उसके समान बड़े बड़े परिवर्तन गदा-धर शास्त्री, अरिस्टाटल या न्यूटन जैसे बुद्धि-प्रधान लोगों द्वारा नहीं होते, वे उन्हीं लोगों द्वारा होते हैं जिनकी बुद्धिको बलवान मनोवृत्तियों की सहायता हो, जैसे शिवाजी, नेपोलियन आदि। आज दिन तक जो बड़े बड़े पुरुष हो गये हैं उनके यदि दो वर्ग करें, एक बुद्धिमान् (जैसे पाणिनी) और दूसरा कर्तृत्ववान् (जैसे शिवाजी) तो विदित होगा कि जिनकी मनोवृत्तियां प्रबल हैं और जिनके पास उत्तम से उत्तम शरीर सम्पत्ति रहती है वेही लोग बड़े कर्तृत्वशाली पुरुष होते हैं। परंतु जिनके पास बुद्धि है किन्तु बलवान मनोवृत्ति तथा बलवान शरीर नहीं है वे कर्तृत्वशील मनुष्यों की सहायताके बिना बड़े बड़े परिवर्तन नहीं कर सकते। रामदासस्वामी जी को छत्रपति शिवाजी महाराज जैसे बड़ी कर्तृत्व वाले पुरुष की सहायता न होनी तो देश के उद्धार में या धर्म के उद्धार में इनके उपदेशों का अधिक उपयोग न होता। बुद्धि केवल रास्ता बतलाने का काम करती है किन्तु सम्पूर्ण क्रियाओं की प्रेरणा का स्थान मन है। नाना फडनवीस के समान बुद्धिमान मनुष्य दूसरे को अपनी बुद्धि की करामात से अचम्भित भलेही कर देगा पर लोगोंको अपने वश में कर लेना, अपने शब्दमात्र से जनता को झूलाना, सब लोगों के दिल में अभिमान, ईर्ष्या आदि उत्पन्न कराकर सबको एकता से कोई काम करने में लगा देना आदि काम उनसे या उनके समान केवल बुद्धि प्रधान मनुष्यों से नहीं बन सकते। उसके लिये श्री शिवाजी, गुरुगोविंद सिंह आदिके सदृश तेजस्वी,



हिम्मतवार, तथा जोशीले लोगों की आवश्यकता होती है। “आज अमुक काम करना है, जिस किसीको आना हो मेरे साथ चले।” इतना कहते ही जिसके साथ हजारों मनुष्य ऐसे दौड़ते हैं, जैसे चुम्बक से लोहे के कण खिंचते हों, ऐसे पुरुष सिंह शिवाजी तथा नेपोलियन ही हैं। वे दादाजी कौंड-देव (शिवाजी के शिक्षक एवं शाहजी के कारिंदाह) या नाना फडनवीस नहीं हैं। यह शक्ति प्रबल तथा जागृत मनोवृत्ति और अति उत्तम शरीर के बल की अनुगामी है। जिन लोगोंने अपनी मानसिक शक्ति से जन-समूहों में खलबली मचा दी है, या उन्हें कोई विशेष मार्ग पर चलना आवश्यक कर दिया है, ऐसे पुरुषों में शायद ही कोई हो जिसने अध्ययन कर के या और दूसरे किसी कारण से अपने आप को कमजोर बना लिया है जिसकी आंखों में चमत्ता लगा है जिसकी पीठ में कूबड निकला है, आंखें और गाल भीतर घुस गये हैं। आजकलभी जिन लोगोंने अपनी मानसिक शक्ति से या अपनी कर्तूत से भारतवासियों के चित्त को कोई खास मार्ग दिखला दिया है या जिनका लोगों पर बड़ा भारी प्रभाव है ऐसे लोगोंको देखें तो विदित होगा कि उनमें स्वाभिमान, ठाढ़स, कडा मनोनिग्रह, आदि गुण अधिक हैं।

इस प्रकार यदि मनुष्यों के बुद्धिमान और क्रियावान ऐसे दो भेद मान लिये जावें और इस कसौटी-पर ब्राह्मणों को तथा ऐसे लोगों को जिन्होंने अपनी शक्तियां केवल बुद्धि के विकास में फजूल खर्च नहीं कीं, तो विदित होगा कि ब्राह्मणों ने केवल उपदेश करने ही में अधिक नाम कमाया है। और ब्राह्मणों को छोड़कर दूसरे लोगोंने ऐसी क्रियाओं में नाम कमाया है जिनका संसार के जीवन संग्राम में विचार की अपेक्षा कहीं अधिक उपयोग होता है। मंत्री, सचिव आदि केवल बुद्धि के काम करने-वालों में ब्राह्मण ही अधिक रहे हैं। परन्तु विचार की अपेक्षा क्रिया की आवश्यकता अधिक रहने पर (जैसे राज्य कमाना, राजकाज चलाना, सेना का नेता बनना, व्यापार करना आदि) ब्राह्मणों की अपेक्षा दूसरे लोगों नेही अधिक नाम कमाया है।

यह हुआ पहले समय का हाल। वर्तमान समय को देखें तब भी यही बात नजर आती है। अब भी यही दीखता है कि ब्राह्मणों ने शरीर की ओर बिल्कुल ध्यान न देकर केवल बुद्धिको ही अधिक कष्ट दिया है। इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ है कि जहाँ अंकों की उलझन हो, जहाँ परीक्षा में अधिक से अधिक गुण लेकर ऊपर नंबर आना हो, वहाँ ब्राह्मणों की संख्या अंग्रेज, पारसी या मुसलमानों से अधिक होगी। इससे आगे चलकर वकालत, डाक्टरी, इंजीनीअरी, ठेकेदारी, व्यापार, या किसी संस्था का संचालन आदि कामों में जहाँ अपना काम स्थिरता से, उत्साहसे, ईर्ष्या से करने की आवश्यकता है, वहाँ ब्राह्मणों की कमी नजर आवेगी; क्योंकि इनमें जिस शक्ति की आवश्यकता है उसका ब्राह्मणों में अभाव है। ये कारण दिन प्रति दिन बढ़ते जाते हैं इससे ऊपर दिया हुआ परिणाम पिछली पीढ़ी की अपेक्षा आगामी पीढ़ी में अधिक तीव्रतासे नजर आता है। पिछली पीढ़ी के शिक्षित लोगों में जो उत्साह तथा परिश्रम दिखाई देता था वह वर्तमान पीढ़ीमें नहीं दीखता। किसी प्रकार की झंझट न हो, झगडा न हो शांतता से घरमें या दफ्तर में बैठ कर काम करें इसी प्रकार की इच्छा वर्तमान समय के शिक्षित समाज में— विशेषतः ब्राह्मणों में बढ़ती जाती है। यह बात शिक्षित समाज की मानसिक एवं शारीरिक दुर्बलता का लक्षण है। शांतता से दिन बिताने की इच्छा होना बुरा नहीं है किन्तु इसकी भी कुछ सीमा है। जिस प्रकार की शांतता अब शिक्षित लोग चाहते हैं उसी प्रकार की शांतता यदि संपूर्ण जनता को प्यारी लगती तो श्री शिवाजी राणाप्रताप जैसे पुरुष उत्पन्न होना असंभव था। इससे यह मतलब नहीं कि जिस किसी के मन में आवे दूसरे की गर्दनपर छुरी चलावे। हमारे कहने का मतलब यही है कि हम में इतनी शक्ति तथा योग्यता अवश्य ही होनी चाहिये जिससे हम वर्तमान जीवन संग्राम में विजय प्राप्त कर सकें। दुःख की बात यही है कि हममें उस योग्यता का अभाव है। वर्तमान समय के शिक्षित जनों का वैराग्य तथा



उनकी कमजोरी देखकर मन को कष्ट होता है। इसका क्या कारण है? मनुष्य की बुद्धि के सिवा दूसरी शक्तियों की वृद्धि न होने देने का यह परिणाम है।

इस कलह-पूर्ण संसार में हम लोगों को जितनी बुद्धि की आवश्यकता है उससे भी अधिक आवश्यकता प्रबल मनोवृत्ति की है। बुद्धि का काम मार्ग दिखलाने या सलाह देने का है। किन्तु मनुष्य से कार्य कराने का काम उसकी मनोवृत्तियां करती हैं। जब बात ऐसी है तब यही निश्चित है कि प्रबल मनोवृत्तिवाले ही अधिक क्रियाशील होते हैं और वे ही जीवन संग्राम में दृढ़ता से लड़ेंगे। हम पहले ही कह चुके हैं कि मनोवृत्ति तथा बुद्धि का स्थान मस्तिष्क है, इनमें से किसी भी एक की वृद्धि प्रमाण से अधिक होने पर दूसरी कमजोर हो जाती है। इसी तरह मस्तिष्क के बलवान होने के लिये पुष्ट और बलवान शरीर की आवश्यकता है। तब स्पष्ट ही है कि मनोवृत्तियां जागृत तथा प्रबल रहने के लिये शरीरसंपत्ति की आवश्यकता है। अर्थात् जीवनसंग्राम में पीछे न पड़े रहकर विजय प्राप्त करना ही हो तो हम अपने स्वास्थ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते।

वर्तमान समय में भिन्न भिन्न राष्ट्रों में प्रबल स्पर्धा जारी है और विजय उन्हीं लोगों की होती है जो केवल बुद्धि में ही नहीं प्रत्युत कार्य करने में भी औरों से अधिक बलवान् है। इसके विपरीत जो लोग शरीर तथा मन से दुर्बल हैं वे हार रहे हैं और पीछे पड़ रहे हैं। आज हमें जिनसे - यूरोपवासियोंसे-

संग्राम करना है वे हमारे अन्य प्रतिपक्षियों से अधिक बलवान हैं। हमारा इतिहास हमें बतलाता है कि हम लोगों में उन गुणों की कमी जो विपक्ष से श्रेष्ठ बनाते हैं। तो बतलाइये क्या अब भी हम लोग आंखें बंद कर चुपचाप बैठे रहें? हमारी वर्तमान स्थिति जिन कारणों से हुई है उनमें से अपनी शारीरिक दुर्बलता एक भारी कारण है। यदि यह बात जँचती हो तो हमारे नेताओं को चाहिये कि वे जनता का ध्यान शरीरकी उन्नति के लिये आकर्षित करें और उन्हे शरीर की उन्नति में लगा दें।

यहां हमारे प्राचीन इतिहासका यदि हम निरीक्षण करेंगे तो हमें पता लग जायगा कि वेदसे महा-भारत तक जो "अमर्षण वृत्ति" अर्थात् अपमान सहन न करने की वृत्ति दिखाई देती है वह महा-भारतके पश्चात् के पुस्तकों में नहीं दिखाई देती। इसका परिणाम यह हुआ कि जो विजय आयोंको महाभारत काल तक प्राप्त हुआ वह आगे नहीं हुआ। इसी लिये ऋषि दयानंदने आयोंको महाभारतसे पूर्वकाल में जानेका उपदेश किया, यही उनका "ऋषित्व" अर्थात् द्रष्टा होनेका सबूत है। जिस समय लोग यूरोपको रोशनीसे चकित हो चुके थे उस समय इस "द्रष्टा" ने कहा कि महाभारत के पूर्वकाल में चलो! उन्होंने आयोंकी वृत्तिमें परिवर्तन करना चाहा था। जो इस बात को जानेंगे उनको ही उनके उपदेशका महत्व समझेगा।

आशा है कि आयोंके वंशज इस उपदेशका महत्त्व समझकर अपनी मनोवृत्तिमें ही परिवर्तन उत्पन्न करेंगे और विजयके भागी होंगे।



# योग जिज्ञासा की कहानी ।

लेखक— श्री० पं० अभयदेव शर्माजी (विद्यालंकार)

## जिज्ञासाका उदय ।

अब मैं महाविद्यालय का ब्रह्मचारी हो गया । गणित के बंगाली उपाध्यायजी के आग्रह होने पर भी मैं ने गणित विषय न लिया और मैं ' इतिहास अर्थशास्त्र ' का विद्यार्थी बना । यद्यपि इस वर्ष गुरुकुलीय अखबार निकालना और सभायें चलाना तो मैं ने बिलकुल नहीं किया ( क्योंकि इसका शौक मैं पूरा कर चुका था और इसकी अपनेलिये कुछ आवश्यकता नहीं है यह जान चुका था ) मैं किसी भी सभा का सभासद तक नहीं बना; किन्तु अन्य सब प्रकार से पिछले दो वर्षों की अपेक्षा भी इस एकादश श्रेणी में अधिक जागता रहा । गुरुकुलीय सार्वजनिक जीवन के सब कार्य जोशसे करता रहा । छोटे बड़े सब से खूब परिचय प्राप्त करके रहा । गंगा में बहुत तैरा । गंगा के पार जाना तो तैरने के दिनों से नित्य कर्म था; कभी कभी ऊपर एक दो मील से भी मैं एक मंडली में आता था । आस पास के जंगलों और पहाड़ों पर खूब फिरा । गुरुकुलीय जीवन जानने वालों को यह सुनकर अश्चर्य होगा कि मैं दशम श्रेणी तक कभी चंडी पहाड़ पर भी नहीं गया था । पर इस साल सब कसर निकाल ली, शायद ५, ६ बार चंडी पर गया । प्रति सप्ताह घूमने जाता था । डाक्टरजीके कथनसे कुस्ती लडने का व्यायाम भी करता था, दूसरी तरह अपनेको 'अपट्टु डेट' अखबार पढ़ने वाला बनाया । शाम को हस्पताल के रोगियों में या घूमते हुवे बड़े चावसे रोज के समाचार सुनाया करता था । लोकसेवा में आयुर्वेद काम आवेगा अतः आयुर्वेद पढ़ना भी ( डा. संगतराम जी से ) शुरू किया। एवं अन्य धुंधल उधर की व्यावहारिक बातें जानने में भी

मन लगाता रहा, परंतु अपनी महाविद्यालय की पढाई पर कुछभी ध्यान न दिया । इस वर्ष महाविद्यालय में आने का आनन्द लेता रहा । इसी लिये वार्षिक परीक्षा में मुझे अंग्रेजी में दो कृपांक दिये गये । यह सुन ने की बड़ी भारी लज्जा उठानी पड़ी ( अपने लिये अनुत्तीर्ण होना इतना भी मैं असंभव समझता था । )

इस वर्ष के दूसरे सत्र से विद्यार्थीपन की एक मैत्रीका भी अनुभव कया । विद्यालय की नवम श्रेणी के एक विद्यार्थी मैं मेरा इतना अनुराग होगया था कि वह छुट्टी के दिन या किसी समय मिलता था तो प्रसन्नता होती थी, नहीं मिलता था तो चिन्ता होती थी । मैं बहुत बार उसके स्मरण और प्रतीक्षा में रहता था । अगले वर्ष जब मैं छुट्टियों में हमीर-पूर गया तो उसे चिट्ठी लिखने और उसका पत्र पाने में बड़ी प्रसन्नता रहती थी । इस मैत्री का प्रारंभ ऐसे हुवा था कि एक प्रतिष्ठित स्नातकजीने मुझे विद्यालय के तीन चार उन्नतिशील विद्यार्थियों के नाम बताये थे और आग्रह किया था कि इन्हें सहायता देते रहना । उन्हीं विद्यार्थियों में यह एक था । और उन दिनों विशेष प्रिय लगा था। यह विशेष अनुराग मुझे विचार द्वारा कुछ ज्ञान देता हुआ दूसरे वर्ष ( द्वादश ) के अंत तक समाप्त होगया था और तब से यह विद्यार्थी मेरे लिये अन्यो की तरह अतीव सामान्य रह गया था । मैं समझता हूं कि इसीसे मैंने शायद यह अनुभव प्राप्त कर लिया है कि संसार में अनुराग या प्रेमासक्ति क्या वस्तु है और पहले अवश्य जान लिया है कि परमात्मा ने प्रत्येक प्राणी में प्रेम किस पवित्र प्रयोजन के लिये किस उच्च उद्देश्य के लिये रखा है ।

द्वादश श्रेणी में पहुँच कर मेरा तैरना, घूमना,



नित्य अखबार पढ़ना आदि बंद होगया। इनसे भी मैं एक साल में ही तृप्त होगया। नित्य अखबार पढ़ने से कुछ लाभ न देखा; आवश्यक समाचार मुझे पता लग जाते थे फिर जो कुछ स्वयं पढ़ने योग्य होता था ऐसा ही कोई लेख आदि मैं स्वयं पढ़ लेता था। अब मेरा मन गंभीर साहित्य पढ़ने की तरफ और अपनी पढ़ाई की तरफ फिर। अकेले बैठ कर विचार पूर्वक खूब पढ़ना तथा लिखना यह मेरी द्वादश श्रेणी की विशेषता रही।

आश्रम के शोर से पृथक् पढ़ने के लिये अब जो एक एकान्त स्थानकी इच्छा हुई तो मेरी नजर प्रधान जी के बंगले के पास के एक पंचकुटी नामक स्थान की तरफ गयी ( जो कि खाली था ) और मैंने सोचा कि इन पांच कुटियों में से एक कुटी में पढ़ने के लिये रहने की आज्ञा मैं प्रधानजी से प्राप्त करूंगा। किन्तु एक विद्यार्थी से सुना था कि प्रधानजी 'एकान्त में रहनेके खिलाफ हैं। उसने सुनाया था प्रधानजी ने एक एकान्त स्थान चाहने वाले को उत्तर दिया था 'क्या तुम चाहते हो कि काम, क्रोध, लोभ आदि ही तुम्हारे साथी रह जाय?'। इस लिये प्रधानजी से एकान्त कुटी में रहनेकी आज्ञा मांगते हुवे मैं डरा। किन्तु मन न माना और मैंने प्रधान जी से जा ही पूछा। उन्होंने भी तुरंत आज्ञा बल्कि लिखित आज्ञा—प्रदान कर दी। न जाने उस विद्यार्थी का कहना कहां तक सच था, किन्तु प्रधान जी ने मुझे यह नहीं कहा कि एकान्त रहने द्वारा क्या तुम कामक्रोध आदि औ कोही अपना साथी रहने देना चाहते हो। बल्कि कुछ समय तक मुझे 'एकान्तसेवी' नाम से पुकारते रहे। 'कहो एकान्त सेवी? क्या हाल है?' इस तरह मुझे देखकर कहा करते। उस समय मुझे सचमुच यह समझ नहीं आता था कि अकेले में कामक्रोध आदि ही कैसे साथी हो सकते हैं ( 'उदासी' या 'आलस्य' साथी हो सकते हैं यह तो समझता था ), यद्यपि अब ३० वर्ष की आयु में मैं इसका मतलब जान सकता हूं। इसलिये प्रधानजी ने ठीक ही मुझे एकान्तसेवन का अधिकारी समझा, यदि किसी

और को न भी समझा हो। अस्तु।

मैं दिनभर इस कुटी में रहता था और पढ़ता था। जेम्स ऐलन की पुस्तकें बड़ी अच्छी लगीं। रवीन्द्र ठाकुर की गीताञ्जली, साधना तथा स्वदेश आदि पुस्तकें बड़े ध्यान से पढ़ता था। इसी तरह मैंने सायंकाल के ( हाकी, फुटबाल आदि ) खेल से भी छुट्टी प्राप्त कर ली थी, क्योंकि मैं स्वयं अपना व्यायाम सदा नियमपूर्वक शाम को भी कर लिया करता था। जाडों में सायंकाल मैं कुछ पहिले बड़ी गंगा पर एकान्त में जहां व्यायाम आदि करता था वहां रामतीर्थ जी की पुस्तकें तथा वर्ड्सवर्थ की कुछ कवितायें भी मननपूर्वक पढ़ा करता था और आनन्दित होता था।

इस प्रकार पाठक देखेंगे कि द्वादश श्रेणी में मुझ में परिवर्तन आ रहा था। असल में मेरा फिर सोनेका समय आने वाला था - नवम दशम और एकादश यह तीन साल मेरे संसार के लिये जागते रहने के बाद फिर त्रयोदश श्रेणी से मुझ पर एक लंबी रात्रि आने वाली थी जिसमें कि मैं संसार के लिये सोऊंगा और यह द्वादश श्रेणी का वर्ष इस दिन और रात को मिलाने वाला संध्यकाल था। इस बार का सोना बेशक बालकपनके ( अष्टम श्रेणी तक के ) सोने से स्पष्टतया भिन्न प्रकार का सोना था। यह जानते हुवे सोना था। इस आंख मींचने का प्रारंभ इस प्रकार हुवा कि इस वर्ष के शायद अन्तिम दिनों में प्रतिदिन सबेरे उठने पर मन घबराता था। मन में यह प्रश्न उठते थे कि मैं क्या हूं? संसार में क्यों आया हूं? संसार क्या है? मैं यह सब काम क्यों करता हूं? इसका उद्देश्य क्या है?। कुछ समय तक तो ऐसा रहा कि प्रतिदिन दिनमें गुरुकुल के नित्य के कर्तव्यचक्रमें (Routine में) पड़ कर तो ये प्रश्न मैं भूल जाता था। पर अगले दिन सोकर उठने पर फिर मेरा ऐसा ही हाल होता था और इन प्रश्नों के मारे कुछ समझ नहीं पड़ता था कि मैं क्या करूं। किन्तु आगे धीरे धीरे ये प्रश्न दिन में भी याद रहने लगे और मुझे दिन भर तंग करने लगे।



यह जो अब मुझ में जिज्ञासा का उदय हुआ इस के प्रारंभक कारण अब तक लिखे गये इस मन के इतिहास में विचारक पाठक ढूँढ सकते हैं। पीछे की सब बातें प्रायः इसी लिये लिखी हैं। जिज्ञासा का क्षेत्र धीरे धीरे तैयार हुआ था। और शायद इसका उत्तेजक कारण द्वादश श्रेणी का गंभीर अध्ययन और विचार हुआ। कई लोग जो यह समझते हैं कि ऐसे प्रश्न निर्वलता और रोगी होने के कारण उठा करते हैं ( संसार में जो लोग खूब खाते पीते और आनन्द करते हैं उनके पास ये फजूल के प्रश्न फटकने तक नहीं पाते ), वहाँ मैं इतना कह दूँ कि अब मेरा मन पहिले से निःसंदेह बलवान था और कज्ज का भी अब कष्ट नहीं था। एकादश में और द्वादश में भी मैं दुनिया में बड़े आनन्दसे रहा हूँ। एकादश में एक दिन कुछ ज्वर हो जाने के अतिरिक्त मैं इन दोनों वर्ष मुझे कुछ रोग तक भी नहीं हुआ।

C

## लाला मुरारी लालजी .

जब इस प्रकार मेरा मन इन रहस्य विषयक प्रश्नों की उलझन में विचारग्रस्त और चिन्तामग्न रहने लगा तो स्वभावतः मैंने हर एक बातको प्रारंभ से-मूलसे - विचारना शुरू किया। इस जीवन का उद्देश्य क्या है इस प्रश्न को यह उत्तर देकर शान्त किया कि ' मनुष्य जीवन का उद्देश्य पता लगाना ' ही अभी मेरा उद्देश्य है। हर एक बातको प्रारंभ से विचारना शुरू करने पर अपने और जगत् के संबन्ध में सोचते हुवे संस्कारवश ' परमात्मा ' का ध्यान बार बार आता था, अतः मैंने परमात्मा के विचारको भी एक बार दिलसे निकाल दिया- एकदिन शाम को पंचकुटी के उसी कमरे में खड़े होकर कहा ' जब परमात्मा अनुभव नहीं होता तो उसे मैं क्यों योही माने हुवे हूँ '। एवं उस सायंकाल से लेकर लगभग १,२ दिन तक मैं नास्तिक भी रहा। पर इससे अधिक देर तक मैं ' परमात्मा ' को नहीं निकाले रख सका। न जाने क्या हुआ कि एक प्रबल आवेश की तरह कुछ ऐसा विचार जोर

से आया ' और सब कुछ चाहें न हो पर परमात्मा तो सब के जड में है, सब का प्राण है उसे ' नहीं ' नहीं किया जा सकता '। इस प्रकार मेरे मन में बड़ी बड़ी उलट पलट होने लगी। मैं कई श्रद्धेय उपाध्यों की शरण भी पहुँचा। एकादश द्वादश श्रेणी में वेद पढ़ कर वेदों के ईश्वरीय होने में बिलकुल श्रद्धा नहीं रही थी और मैं वेद के घंटे को बिलकुल व्यर्थ समझने लगा था। इस वेद विषय में तथा सत्यज्ञान कैसे प्राप्त होवे इत्यादि विषयों पर मैंने दो मान्य उपाध्यायों से भी गहराई में बात चीत की उन्होंने भी गंभीरता से कई बातें समझाई किन्तु मुझे कुछ विशेष संतोष नहीं हुआ। अन्त में कई महीने की हार्दिक उथल पुथल और अशान्ति के बाद जिस व्यक्ति द्वारा मुझे शान्ति मिली और मेरी व्याकुलता हटी वह थे गुरुकुल के कार्यालय ( दफ्तर ) के अध्यक्ष लाला मुरारी लालजी।

यह एक विचित्र पुरुष थे। साधारणतया ये लोगों में बदनाम थे। इन से आम लोग डरते थे। परन्तु इनका यह रौद्र रूप ही ( जो कि दफ्तर में तथा प्रबन्ध संबन्धी अन्य कार्यों में प्रकट होता था ) प्रायः लोगों को दीखता था। इन का सौम्य रूप बहुत कम लोगों को विदित था। इनका जीवन बड़ा ही नियमित था। वैसे तो गुरुकुल के कार्यालयाध्यक्ष का कार्य ही बड़े झंझट और झमेले का है चित्त को २४ घंटे विक्षिप्त रखने को पर्याप्त है। किन्तु लाला जी एक दो वर्ष तक तो क्रियात्मक, तौर पर गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता का भी सब कार्य ' क्लर्क की कुरसी ' पर बैठकर ही करते रहे थे। पर उत्तरदातृत्व के, व्यग्रता और चिन्ता के इस सब कार्य को ठीक निबाहते हुवे भी उनकी प्रातः काल की स्थिर आसन से बैठकर एक घंटा संध्या तथा इसके उपरान्त एक दो घंटा स्वाध्याय, एवं सायंकाल भी पढ़ना पढ़ाना, घूमना और नौ बजे तक सोजाना किसी ने टलते नहीं देखा। केवल इतना ही नहीं था। जहाँ वे गुरुकुल के बाह्य संचालन के स्तंभ थे, वैसे ही वे गुरुकुल की आन्तरिक उन्नति के भी स्तंभ थे, क्यों कि चुपके चुपके ब्रह्मचर्य और सदाचार का जितना दृढ़ प्रचार ये विद्यार्थि



ओं में करते थे उतना गुल्कुल में किसी और ने नहीं किया है। इनका विद्यार्थियों से मिलने का समय चार बजे दफ्तर की समाप्ति के बाद से आठ बजे तक के बीचमें प्रायः होता था। उनसे मिलने वाले लोग ही उनके उस बड़े सौम्य रूप को जानते थे जो कोई उनसे समीपतासे मिलता था वह बिना प्रभावित हुवे नहीं रहता था। मि. पीयर्सन और मि. फेल्स ये दो योरोपियन उनके बड़े भक्त हो गये थे। इनका अध्ययन बहुत था। पाश्चात्य विद्वानोंके ग्रंथ इन्होंने बहुत पढ़े थे ही किन्तु संस्कृत न जानते हुवे भी उन्होंने अपने सब शास्त्रादिक भी ( बहुत कुछ अंग्रेजी द्वारा ) खूब भनन किये थे। यह सब कुछ पढ़कर उन्होंने एक सत्य ज्ञान वास्तव में उपलब्ध किया था। इस 'ज्ञान' का मैं उन्हें ऋषि कह सकता हूँ। उन्हें सर्वत्र यही दिखलायी देता था। आशा है उनके जीवन का यह संक्षिप्त वर्णन पाठकों को लाभदायक हो सकेगा। इसी २४ घंटेके परिमित समयमें इतना अधिक कार्य करनेका उनका सामर्थ्य जिसका कि मूलमंत्र उनकी जीवन की नियमितता थी हमारे लिये ग्रहण करने को यही वस्तु बहुत है। कम से कम मेरे लिये बहुत है। मैं इसे अभी तक नहीं प्राप्त कर सका हूँ। अस्तु।

मेरी उनके पास पहुंच कैसे हुई इसकी, कथा इस प्रकार है। लखनऊ की प्रसिद्ध कांग्रेस के आशाजनक समाचार सुनने के बाद मेरी इसी कुटी में बैठे हुवे कई साथियों में से एक ने यह प्रस्ताव किया कि हमें मिलकर देशसेवा के लिये तैयारी करनी चाहिये। बात चलते चलते यह विचार पक्का होगया और हमने एक समिति बनायी जिसमें कि हम ६, ७ विद्यार्थी थे। हम में से तीन लाला मुरारी लालजी के शिष्य थे ( जैसा कि मुझे पीछे पता लगा )। इस समिति में हमने एक तरफतो १०, १२ तपस्या के नियम बनाये जिनका उल्लंघन होने पर एक निश्चित प्रायश्चित्त करना होता था जो कि छुट्टी के दिन शामको ( उस समय हम भोजन नहीं करते थे ) समिति की बैठक में बतलाना होता था और दूसरी तरफ एक विचार समितियें हम देश-

सेवा की विधि के विषय में विचार विनिमय किया करते थे। इन तपस्या के नियमों से यद्यपि मुझे कोई विशेष लाभ नहीं हुवा ( क्योंकि मैं इन्हें पहिले से पालता था और जैसा आगे लिखूंगा दिनचर्या भी लिखा करता था ), तो भी अन्य साथियों को बड़ा लाभ हुवा बल्कि सब महाविद्यालय को लाभ हुवा और यह समिति देर तक चलती रही। किन्तु जो यह विचारविनिमय की समिति थी इसमें हम प्रायः किसी भी निर्णय पर नहीं पहुंच सकते थे, इसका कारण यह था कि ये जो तीन लालाजी के शिष्य थे इनके विचार अन्यो से मौलिक रूपमें भिन्न होते थे। अतः यह समिति शीघ्र बन्द हो गयी। पर मेरा यह एक लाभ कर गयो। मेरी प्रवृत्ति देख कर इन लालाजीके शिष्यों को इच्छा हुई कि मुझे लालाजी से परिचित करना चाहिये। ये लोग (विशेषतया एक मेरे पास की कुटी में रहने वाला विद्यार्थी ) मुझसे लाला जी के विषय में बातें भी करने लगे। श्वर मुझमें तो यह संसार रहस्य जानने की जिज्ञासा प्रबल हो चुकी थी जो मुझे चिन्तित रखती थी। अतः मेरी भी इच्छा हुई कि किसी तरह उनसे मिलूं और उनके विचारों से लाभ उठाऊं। इतने में जब मैं द्वादश से त्रयोदश में हुवा उसवर्ष जो नयी श्रेणी विद्यालय से आयी उसमें के एक विद्यार्थी को लाला जी ने महाविद्यालय में जाने से पूर्व कुछ व्याख्यान देकर भेजा है यह मुझे कहीं से पता चला। मैं उस छोटे विद्यार्थी से ही उन व्याख्यानों को सुनने को उद्यत होगया। यह पता लगने पर लालाजी ने स्वयं कहला भेजा कि मैं ही देव-शर्मा को वह बातें बतला दूंगा वह आज ४ बजे मेरे पास आवे। मैं उस दिन बड़े आनन्द से चार बजे उपस्थित हुवा। पहिले दिन उन्होंने उपयोगितावाद (Utility) पर व्याख्यान दिया। ऐसे दस दिन तक दस व्याख्यान दिये। मैं प्रतिदिन के व्याख्यान आकर लिख लेता था। वे वहां नोट नहीं करने देते थे, केवल स्वयं कोई कोई शब्द पेंसिल से लिखकर समझाते जाते थे। मैं इन शब्दों से ही सोच कर पूरा व्याख्यान लिख लेता था। मेरी इस दत्तचित्तता



( ५४ )

और लगन को देखकर भी लालाजी प्रसन्न हुवे । इन सब व्याख्यानों से अन्त में परिणाम यह निकला कि एक विद्या ( Science ) है-अध्यात्मविद्या या योगविद्या, या यह Spiritualism जिसको कि जानना चाहिये, जिसके बिना जाने ( हम चाहे कितने यत्न कर लें ) शान्ति, निश्चिन्तता और सफलता नहीं मिल सकती । वह विद्या कहां से मिले ? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने एक दो दिन बाद जो कुछ प्राणविद्या का एक रहस्य वे जानते थे वह मुझे बतलाने की कृपा की और कहा कि अभी इसे करो इस प्रकार योग की दिशा में वे मेरे पहिले गुरु हुवे उनके व्याख्यानों से मेरे बहुत से विचारों में परिवर्तन हुआ । सब से बड़ा परिवर्तन यह हुआ कि मुझे अपने प्राचीन शास्त्रों में श्रद्धा होगयी । वेद में भी श्रद्धा हुई । यह मैंने समझ लिया कि इस समय जो हमने वेद के अर्थ पढ़े हैं इनसे अतिरिक्त इनके असली अर्थ कुछ और हैं और यह भी संकल्प हुआ कि आगे बड़ा होकर जब मैं इस अध्यात्म विद्या को जान लूंगा तो कभी मैं स्वयं वेद पढ़ूंगा और ठीक अर्थ जानूंगा । लाला जी के सत्संग से ब्रह्मचर्य के विषयमें भी बड़े पक्के विचार हो गये । लालाजी से मिलने वाले प्रत्येक विद्यार्थी में प्रायः संपूर्ण आयु ब्रह्मचारी रहने का संकल्प अवश्य हुआ करता था ।

९

## योगकी जिज्ञासा और गुरुकुल छोड़ने की इच्छा ।

इस प्रकार मेरी यह जिज्ञासा लालाजी की कृपा से योगजिज्ञासा के रूप में परिणत हो गयी । मेरे ये सब संशय योगद्वारा मिटेंगे और योग द्वारा मुझमें सत्य-ज्ञान का उदय होगा इसलिये योग ही सीखना चाहिये यह निश्चय किया और इसतरह इस संसार में और बातों से पहिले सब यत्नों और सब साधनों से अपने को योगी बनाने में लगने का निश्चय करके मेरा मन शान्त और स्वस्थ हुआ । देशोद्धार और देश

सेवाका विचार अब दूर चला गया । जब तक मैं स्वयं न सुधर जाऊं, अपना उद्धार न कर लूं तब तक देशका उद्धार करनेमें मैं कैसे साधन हो सकता हूं इस प्रकार मैं विचारने लगा और जब तक मैं स्वयं अपनी सेवा करके समर्थ नहीं हो जाता, योग्य नहीं हो जाता तब तक के लिये ( अर्थात् न जाने कितने समय तक के लिये ) वह मेरा देशसेवा या समाजसेवा का विचार स्थगित होगया ।

लाला जी ने जो मुझे एक प्राण का अभ्यास बतलाया था वह मैंने तभी प्रारंभ कर दिया था । किन्तु इसके करने से दो चार दिन में ही मुझे पता लगा कि मेरे शरीर में वामप्राण की तरफ बड़ी वृद्धि है । इसलिये अब मैं दिनरात इसे सुधारने में ही लग गया । त्रयोदश श्रेणी का पहिला सत्र इसी यत्न में शीघ्रता से गुजर गया और दो महीने की छुट्टियां आगयी । हमीरपुर में रहता हुआ इन दो महीने भी मैं इसी प्राण सुधारने में बड़े यत्न से लगा रहा । किन्तु कुछ सफलता नहीं हुई इसलिये गुरुकुल आकर के भी सात दिन के लिये पढाईसे छुट्टी ली पर जब देखा कि किसी तरह मेरा प्राण ही ठीक नहीं होता है तो मैंने सोचा कि अब पढाई छोड़कर किसी योगी के पास चले जाना चाहिये इसीमें कल्याण है । मैं योग की विद्या के सामने अब इस किताबी पढाई को सचमुच कुछ नहीं समझता था । अतः गुरुकुल की व्यर्थ पढाई छोड़ कर सर्वथा योग साधन में लग जाने को मैं सोचने लगा । गुरुकुल के अधिकारियों से तो कहा ही, किन्तु पिताजी की आज्ञा लेनी आवश्यक है यह सोच कर पिता जी को भी लिख दिया " आप 'डिग्री' का मोह न करें । यदि स्नातक की डिग्री से मैं वंचित रहूंगा तो इसमें कुछ भी हर्जा नहीं है । वास्तविक चीज तो योग्यता है और असली योग्यता पाने के लिये ही मैं गुरुकुल छोड़ता हूं । यहां व्यर्थ दो साल और क्यों खोजूं " । परन्तु पिताजीने आज्ञा नहीं दी । उन्होंने ने लिखा कि 'जो कार्य शुरु किया है उसे पूरा कर लेना चाहिये । डेढ़ साल बाद स्नातक होकर फिर यह कार्य भी करना ।' उस समय तो मुझे यह पिताजी का उत्तर ठीक नहीं लगा था ।



अंक ३ ।

और मैं दुःखी हुवा था । किन्तु अब सोचता हूँ कि अच्छा ही हुवा कि मैंने गुरुकुल नहीं छोड़ा । छोड़ने से कुछ भी अधिक लाभ नहीं होना था । जो कुछ हो सकता था वह प्रायः गुरुकुल में भी मुझे मिल सकता था और वह मिला । औरों और लालाजी ने भी मुझे यही समझाया था कि गुरुकुल छोड़ने की आवश्यकता नहीं है । लालाजी ने तो पिताजी का पत्र आनेपर मुझे कहा कि ' पिताजी ने तुम्हें बहुत ठीक उत्तर दिया है ' और डेढ़ साल बाद जिस दिन कि हम स्नातक परीक्षा का अन्तिम पर्चा देकर आये उसीसमय सायंकाल पंचकुटी में मेरे स्थानपर आकर कहा " आज मेरे लिये बड़े आनन्द का दिन है । मुझे आजतक डर लगा रहता था कि कहीं देवशर्मा भाग न जाय । आज निश्चित हुआ हूँ । और भागजाने पर मेरा नाम तो लगना ही था कि मैंने इसे भगा दिया है " । वास्तव में सब पूज्यपुरुषों के मना करने से ही मैंने समझा था कि शायद जाने से मेरा भला नहीं होगा, नहीं तो बहुत संभव था कि मैं गुरुकुल से भाग ही जाता । अस्तु ।

इसके बाद मेरी इच्छा यह हुई कि मेरा ऐच्छिक विषय ' इतिहास अर्थ शास्त्र ' ऐसा है कि इसमें पढ़ना बहुत पड़ता है अतः यदि अब भी इसे बदलने की आज्ञा मिल सके तो मैं कम से कम इसके स्थान पर कोई बहुत आसान विषय ले लूँ जिससे कि कम पढ़ना पड़े और मुझे अभ्यास के लिये बहुत समय मिल सके । कहां तो अभी एकादश द्वादश श्रेणी में मुझे वेद ब्राह्मण आदि ही व्यर्थ से लगते थे और इस अपने ' इतिहास अर्थ शास्त्र ' विषय को तो मैं बड़ा आवश्यक समझता था, पर अब सभी विषय मेरे लिये एक जैसे निरर्थक हो गये थे ( बल्कि वेद पढ़ने की तो बड़े होकर कभी इच्छा भी थी । ) सभी पढ़ने को मैं एक सिरे से अपना समय खाना समझता था । अतः जिस विषय को मैंने इतने शौक से ( कईओं की विमति होनेपर भी ) लिया था उसे भी बदलने का मैंने प्रार्थना पत्र लिखा । यह स्वीकृत तो क्या होना था । प्रो० बालकृष्णजीने ( जो उन दिनों कुछ समय के लिये आचार्य

भी थे ) समझा बुझा दिया और कहा कि तुम बेशक इसमें बहुत कम समय दो और आश्रम में पढ़ने लिखने का जो वे कभी कभी कार्य दिया करते थे उसे भी मुझे न करने की अनुमति दे दी । मैंने भी देख लिया कि अब डेढ़ साल शेष रह जाने पर एक नया विषय लेने से वास्तव में कुछ भी लाभ नहीं है ।

इस प्रकार मैं गुरुकुल में ही रहा और ' इतिहास राजनीतिका ही विद्यार्थी रहा किन्तु क्रियात्मक तौर पर मेरा पढ़ना लिखना सब बन्द हो गया । मुझे जब देखो मैं कोठरी बन्द किये पड़ा होता था । एकादश में तो मैंने महाविद्यालय का आनन्द लेने के लिये कम पढ़ा था, पर द्वादश में खूब पढ़ने के बाद अब फिर मेरा पढ़ना छूट गया । अब मेरा अभ्यास के लिये पढ़ना छूटा । इन अन्तिम दो साल मैंने पढ़ाई के घंटों के अतिरिक्त तो पढ़ाई संबंधी कुछ पढ़ाई नहीं, किन्तु घंटा भो जब कभी कोई खाली होता था तो बड़ा आनन्द होता था और मैं उठकर चुपचाप अपनी कोठरी ही में बन्द हो जाता था । पीछे से मैंने सुना था कि कईओंने मेरी इस कोठरी का नाम ' गुफा ' रखा हुआ था । परीक्षा में जब लगभग एक महीना रह जाता था तब मैं पढ़ाई की पुस्तकें खोलता था और थोड़ा थोड़ा अपने अभ्यास में विघ्न न करते हुवे पढ़ता था । रात्रि को तो मैं अपना आखों की स्वस्थता के लिये पहिले ही यथा शक्त कम पढ़ता था अर्थात् परीक्षा प्रारंभ होनेसे एक ही या दो दिन पहिले रात्रि को भी पढ़ना शुरू करता था । त्रयोदश श्रेणी में तो मैंने सोचा था कि सब विषयों की इकट्ठी तैयारी के बोझ के कारण मेरे अभ्यास में विघ्न कुछ भी न पड़े इस लिये दो बड़े बड़े विषयों की परीक्षा सत्रपरीक्षा में न दूंगा और इनमें अनुत्तीर्ण समझा जाकर धीरे धीरे बहुत थोड़ा समय देते हुवे इन्हे तैयार करके इनकी परीक्षा उपसत्र परीक्षा में दूंगा ऐसा करने से मुझे उन दो विषयों में केवल ३३ ०/० अंक ही मिलेंगे इसकी मुझे जरा भी परवाह न थी । परन्तु इन दो विषयों के उपध्यायों के समझाने पर मुझे अपना यह विचार छोड़ना पड़ा । इसी तरह परीक्षा परिणाम सुनने की इच्छा मुझे बिल्कुल नहीं होती थी, द्वादश का



तथा त्रयोदश चतुर्दश का परिणाम मैं सुनने नहीं गया, न कभी पता लगाया। पढाई के घंटों मैं पढना और भोजनादि आवश्यक कार्य करने के अतिरिक्त मैं सदा कोठरी में ही रहता था। आवश्यक बात चीत करने या अन्य आवश्यक आपडे कार्य करने के लिये मेरे पास भोजन के पश्चात् का एक आद्य घंटा होता था। क्यों कि इस समय मैं अभ्यास नहीं कर सकता था। नहीं तो अन्य समय पर मुझे बात चीत के लिये भी फुरसत नहीं थी। अन्य समय मैं यदि मुझे कभी कोई ऐसा बाह्य काम करना पडता था तो मैं अन्दर अन्दर बड़ा दुःखी होता रहता कि मेरा समय नष्ट हो रहा है। यदि कभी था सभा आदि में बैठना पडता था तो मैं अन्दर अन्दर दुःखी होता हुवा यत्न यह करता था कि मन को सभा की कार्यवाही से हटाकर उस समय को उस स्थान पर किये जाने योग्य किसी अपने अन्तरीय कार्य में लगा रखूं। यहां तक कि स्नान दांतन आदि में भी मुझे समय व्यर्थ जाता प्रतीत होता था। पीछले वर्षों में खूब तैरने वाला मैं अब गर्मियों में भी एक बार ( वह भी कम से कम समय लगाकर ) से अधिक तो कभी भी स्नान नहीं करता था। कभी कभी एकबार भी नहीं करता था। क्योंकि मैं अपने

लिये इसकी आवश्यकता नहीं अनुभव करता था। स्नान के लिये बिलकुल मन ही नहीं होता था। योग की पुस्तकों में भी ऐसा ही पढा था। दांतन करना तो प्रायः छोड ही दिया था। ( दांत ठीक रखना कितना आवश्यक है यह अब पता लगा है )। यद्यपि हठयोग में दांतधावन का विधान है, पर उस समय उस पर ध्यान नहीं गया। इस प्रकार कुटियां में बंद हो अपनी संध्या आदि करने के अतिरिक्त यदि मैं कुछ स्वेच्छासे करता था तो वह शौच जाना, व्यायाम करना, भोजन खाना और नींद लेना केवल इन चार कार्यों को ही आवश्यक समझ कर करता था। नहीं तो मैं अन्दर अपने अभ्यास, संध्या आदि अन्तरीय कार्य ही दिनभर लगा रहता था। आजकल यह 'शंनो देवी' वाली संध्या ही मैं चार चार घंटे तक करता रहता था। रात्रिको स्वप्न भी ऐसे ही आते थे। या तो अपनी कोठरी में वही प्राण का अभ्यास करने का सुपना आता था या आज इतनी संध्या रह गयी है यह सुपना आता था और मैं संध्या करने लगता था। ऐसा बहुत बार हुवा है कि मैंने स्वप्न में पूरी पूरी संध्या की है। इस प्रकार गुरुकुल के अन्तिम दो वर्ष का जीवन मेरा उस कोठरी में ही बीता।

## सुस्वागतम् ।

१ संध्याप्रदीप ।

( ले०-म. नत्थनलाल, गवर्नमेंट है, स्कूल शिमला। मू. १ ) पुस्तक में वैदिक संध्याके मंत्रोंकी उत्तम व्याख्या है। पुस्तक अतिबोधप्रद है।

२ पितृकर्म मीमांसा ।

( ले० श्री० पं० हरिशंकर दीक्षित, नगीना, बिज. नौर यू. पी. मू. १ = ) पितृकर्म विषयक संपूर्ण शास्त्र प्रमाणों से मंडित होनेके कारण यह पुस्तक विशेष मनन करने योग्य है।

3 A COMMENTARY ON THE  
ISHOPANISHAT.

( श्री० नारायण स्वामीजी महाराज के हिंदी ईशोपनिषद् भाष्यका आंग्रेजी अनुवाद। मू. १ ) मल

पुस्तकमें श्री० स्वामिजी महाराजने अपना अद्वितीय आध्यात्मिक रसास्वाद ओतप्रोत भरा था, वही रस इससे अंग्रेजी पाठकों को मिल सकता है।

४ श्रीमद्विरजानंददर्शन ।

( ले०— श्री. सन्तलाल दाधिमथ वैद्यराज । प्र. सरस्वती सदन, लुधियाना और नारनौल. ) श्री. विरजानंद के विचारोंका दर्शन इसमें पाठक ले सकते हैं। मू. ॥ = )

५ कलीधुगी महन्ता प्र. दुर्गा साहित्यमंदिर, कनखल. मू.- )

६ Arya Samaj बनारस हिंदु युनिवर्सिटी पुस्तक अंग्रेजी में है और आर्य समाज के विषयमें पढ़ने योग्य बातें इसमें हैं।



अथर्ववेदकाः स्वाध्याय ।  
**धर्म प्रचार सूक्त ।**

( ऋषिः— चातनः । देवता— इन्द्राग्नी )

( ७ )

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् ।  
त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ ॥ १ ॥  
आज्यस्य परमेष्ठिञ्जातवेदस्तनूवशिन् ।  
अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय ॥ २ ॥  
वि लपन्तु यातुधाना अत्रिणो ये किमीदिनः  
अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ॥ ३ ॥  
अग्निः पूर्वं आरभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान् ।  
ब्रवीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्येत्य ॥ ४ ॥  
पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानान्नृचक्षः ।  
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात् आयन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम् ॥ ५ ॥  
आरभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे ।  
दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ॥ ६ ॥  
त्वमग्ने यातुधानानुपवद्धा इहा वह ।  
अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ॥ ७ ॥

अर्थ—हे अग्ने ! ( स्तुवानं ) स्तुति करनेवाले ( यातुधानं किमीदिनं ) घातक शत्रुओंको भी ( आ वह ) यहां लेआ । ( हि ) क्योंकि हे देव ! ( वन्दितः त्वं ) नमनको प्राप्त हुआ तू ( दस्योः ) डाकूका ( हन्ता ) हनन या प्राप्ति करने वाला ( बभूविथ ) होता है ॥ १ ॥ हे ( परमेष्ठिन् ) श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले ( जातवेदः ) ज्ञानको प्राप्त करनेवाले और ( तनू-वशिन् ) शरीरका संयम करनेवाले अग्ने ! तू ( तौलस्य आज्यस्य )



तोले हुए घी आदि का ( प्राशान ) भोजन कर और ( यातुधानान् ) दुष्टोंको ( विलापय ) विलाप करा ॥ २ ॥ ( ये ) जो ( यातुधानाः ) दुष्ट ( अत्रिणः ) भटकनेवाले और ( किमीदिनः ) घातक हैं, वे ( विलपन्तु ) विलाप करें । ( अथ ) और अब, हे अग्ने ! ( इदं हविः ) यह हवि तू और ( इन्द्रः च ) इन्द्र ( प्रतिहर्यतम् ) स्वीकार करो ॥ ३ ॥ ( पूर्वः अग्निः आरभतां ) पहिला अग्नि आरंभ करे, तथा पश्चात् ( बाहुमान् इन्द्रः प्र नुदतु ) बाहुबलवाला इन्द्र विशेष प्रेरणा करे, जिसे ( सर्वः यातुमान् ) सब दुष्ट लोग ( एत्य ) आकर ( ब्रवीतु ) बोलें, कि ( अयं अस्मि इति ) यह मैं हूँ ॥ ४ ॥ हे ( जातवेदः ) ज्ञानी ! ( ते वीर्यं पश्याम ) तेरा पराक्रम हम देखें । हे ( नृ-चक्षः ) मनुष्योंके मार्ग दर्शक ! ( यातुधानान् ) दुष्टोंको ( नः ) हमारा आदेश ( प्र ब्रूहि ) विशेष रूपसे कह दे । ( त्वया ) तुझसे ( पुरस्तात् ) पहिले ( परि तप्ताः ) तपे हुए ( ते सर्वे ) वे सब ( इदं ब्रुवाणाः ) यह कहते हुए ( उप आयन्तु ) हमारे पास आजावें ॥ ५ ॥ हे ( जातवेदः ) ज्ञानी ! ( आरभस्व ) आरंभ कर ( अस्माक+अर्थाय ) हमारे प्रयोजनके लिये तू ( जज्ञिषे ) उत्पन्न हुआ है । हे अग्ने ! तू हमारा दूत बनकर यातुधानोंको विलाप करा ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तू ( यातुधानान् ) दुष्टोंको ( उपबद्धान् ) बांधे हुए अर्थात् बांधकर ( इह आ वह ) यहाँ लेआ । ( अथ ) और इन्द्र अपने वज्रसे ( एषां शीर्षाणि ) इनके मस्तक ( वृश्चतु ) काट डाले ॥ ७ ॥

इसका भावार्थ हम सबसे पछि लिखेंगे, क्योंकि इस सूक्तके कई शब्दोंके अर्थोंका विचार पहिले करना चाहिये । इस सूक्तके कई शब्द भ्रम उत्पन्न करनेवाले हैं, और जबतक उनका निश्चित ठीक अर्थ ध्यानमें न आवेगा, तब तक इस सूक्तका उपदेश समझमें नहीं आसकता । सबसे प्रथम “ अग्नि ” कौन है इसका निश्चय करना चाहिये—

## अग्नि कौन है ?

इस सूक्तमें अग्निपद से किसका ग्रहण करना चाहिये, इसका निश्चय कराने वाले ये शब्द इस सूक्तमें हैं— “जातवेदः, परमेष्ठिन्, तनूवशिन्, नृचक्षः, वन्दितः, दूतः, देवः, अग्निः ।” इन शब्दोंका अर्थ देखकर अग्निका स्वरूप सबसे प्रथम हम देखेंगे—

१ जातवेदः— ( जातं वेत्ति ) जो बनी हुई सृष्टिको ठीक ठीक जानता है । ( ज्ञात-वेदः ) जिसने ज्ञान प्राप्त किया है । अर्थात् ज्ञानी सृष्टिविद्या और आत्मविद्या का यथावत् जाननेवाला ।



*[Handwritten signature]*

२ परमेष्ठिन्— ( परमे पदे स्थाता ) परमपद में ठहरनेवाला अर्थात् समाधिकी अंतिम अवस्थाको जो प्राप्त है, आत्मानुभव जिसने प्राप्त किया है, तुर्या-चतुर्थ अवस्थाका अनुभव करनेवाला ।

३ तनूवशिन् — ( तनू-वशिन् ) अपने शरीर और इन्द्रियोंको स्वाधीन करने वाला, इन्द्रिय संयम और मनोनिग्रह करनेवाला । आसनादि योगाभ्याससे जिसने अपनी कायासिद्धि की है । यही मनुष्य “ परमे-ष्ठिन् ” होना संभव है ।

४ नृ-चक्षः— “ चक्षस् ” शब्द स्पष्ट शब्दोंद्वारा उपदेश देने का भाव बता रहा है । मनुष्योंको जो योग्य धर्म मार्गका उपदेश देता है ।

### ज्ञानी उपदेशक ।

ये चार शब्द अधिके गुण धर्म बता रहे हैं । ये शब्द देखनेसे स्पष्ट होता है, कि यहांका अग्नि “ धर्मोपदेशक पण्डित ” ही है । सृष्टि विद्या जाननेवाला, अध्यात्म शास्त्रमें प्रवीण, योगाभ्याससे शरीर, इन्द्रिय और मनको वशमें रखने वाला, समाधि की सिद्धि जिसको प्राप्त है, वह ही ब्राह्मण पण्डित “ नृ-चक्षः ” अर्थात् लोगोंको धर्मोपदेश करनेके लिये योग्य है । उपदेशक बननेके पूर्व उपदेशककी तैयारी कैसी होनी चाहिये, इसका बोध यहां प्राप्त हो सकता है । ऐसे उपदेशक हों, तो ही धर्मका ठीक प्रचार होना संभव है ।

५ वन्दितः— इस प्रकारके उपदेशकको ही सब लोग वन्दन कर सकते हैं ।

६ दूतः— जो सन्देश पहुंचाता है वह दूत होता है । यह उपदेशक पण्डित धर्मका सन्देश सब जनतातक पहुंचाता है इस लिये यह “ धर्मका दूत ” है । दूत शब्दका दूसरा अर्थ “ नौकर, भृत्य ” है वह अर्थ यहां नहीं है । धर्मका सन्देश स्थान स्थानपर पहुंचाने वाला यह दूत धर्मका उपदेशक ही है ।

७ देवः— प्रकाशमान, तेजस्वी ।

८ अग्निः— प्रकाश देकर अन्धकारका नाश करनेवाला, ज्ञानकी रोशनी बढ़ाकर अज्ञानान्धकार का नाश करनेवाला । उष्णता ( गर्मी ) उत्पन्न करके हलचल करने वाला ।

ये सब शब्द योग्य उपदेशक का ही वर्णन कर रहे हैं । इस प्रकार वेदमें “ अग्नि ” शब्द ज्ञानी उपदेशक ब्राह्मणका वाचक है । तथा “ इन्द्र ” शब्द क्षत्रियका वाचक है ।



## ब्रह्म क्षत्रिय ।

“ ब्रह्म क्षत्रिय ” शब्द ब्राह्मण और क्षत्रिय का बोध करता है । वेदमें ये दो शब्द इकट्ठे कई स्थानपर आगये हैं । यही भाव “ अग्नि-इन्द्र ” ये दो शब्द वेदमें कई स्थानोंपर व्यक्त कर रहे हैं । अग्नि शब्द ब्राह्मणका और इन्द्र शब्द क्षत्रियका वाचक है । अग्नि शब्दका ब्राह्मण अर्थ हमने देखा, अब इन्द्र शब्दका अर्थ देखेंगे—

## इन्द्र कौन है ?

स्वयं इन्द्र शब्द क्षत्रिय वाचक है, क्यों कि इसका अर्थ ही शत्रु नाशक है —

१ इन्द्रः— ( इन् + द्रः ) शत्रुओंको छिन्न भिन्न करने वाला ।

२ बाहुमान्— बाहुवाला, भुजावाला, अर्थात् बाहुबलके लिये सुप्रसिद्ध । हरएक मनुष्य भुजावाला होता ही है, परन्तु क्षत्रियको ही “ बाहुमान् ” इस लिये कहा है, कि उसका कार्य ही बाहुबल का होता है ।

३ इन्द्रः वज्रेण शीर्षाणि वृश्चतु=क्षत्रिय तलवारसे शत्रुओंके सिर काटे । यह क्षत्रिय का कार्य इस सूक्तके अंतिम मंत्रमें वर्णन किया है । युद्धमें शत्रुओंके सिर काटनेका कार्य तथा दुष्टोंके सिर काटनेका कार्य क्षत्रियोंकाही प्रसिद्ध है ।

इससे सिद्ध है, कि इस सूक्तमें “ इन्द्र ” शब्द क्षत्रिय का भाव सूचित करता है । अग्नि शब्दसे ब्राह्मण उपदेशक और इन्द्र शब्दसे शासन का कार्य करनेवाले क्षत्रियका बोध लेकर इस सूक्तका अर्थ देखना चाहिये ।

## धर्मोपदेशका क्षेत्र ।

पाठक यह न समझें, कि साप्ताहिक या वार्षिक जलसोंमें व्याख्यान देना ही धर्मोपदेशक का कार्य क्षेत्र है । वहां तो धार्मिक लोग ही आते हैं । पहिलेसे जिनकी प्रवृत्ति धर्ममें होती है, वे ही धार्मिक लोग जलसोंमें आते हैं; इस लिये ऐसे धार्मिकोंको धर्मोपदेश देना धोये हुए कपडे को फिर धोनेके समान ही है । वास्तव में मलिन कपडे को ही धोकर स्वच्छ करना चाहिये, इसी तरह अधार्मिक वृत्तिके लोगों को ही धर्मोपदेश द्वारा सुधारना चाहिये, यही सच्चा धर्म प्रचार है, यह बतानेके लिये इस सूक्तमें धर्म प्रचार करने योग्य लोगोंका वर्णन निम्न लिखित शब्दोंसे किया है — “ यातुधान, किमीदिन्, दस्यु, अत्रिन् । ” अब इनका आशय देखिये —



१ यातु— “यातु” भटकनेवाले का नाम है। जिसको घरदार कुछभी नहीं है और जो वन्य पशुके समान इधर उधर भटकता रहता है उसका नाम “यातु” है। भटकनेका अर्थ बतानेवाला “या” धातु इसमें है।

२ यातुमान् - यातुमान्, यातुवान्, यातुमत्, शब्दका भाव “यातुवाला” है अर्थात् जिसके पास बहुतसे यातु ( भटकनेवाले ) लोग होते हैं। अर्थात् भटकने वालों के जमाव का मुखिया।

३ यातुमावान्- बहुतसे यातुमानों को अपने काबूमें रखनेवाला।

४ यातुधानः- यातुओंका धारण पोषण करनेवाला, अर्थात् भटकनेवालोंको अपने पास रखकर उनका पोषण करनेवाला। “यातु धान्य” भी इसी भावका वाचक है।

पाठकोंने जान लिया होगा, कि ये शब्द विशेष बातको व्यक्त कर रहे हैं। जिसको घरदार स्त्रीपुत्र आदि होते हैं, और जो कुटुंबमें रहता है, वह उतना उपद्रव देनेवाला नहीं होता; जितना कि जिसका घरदार कुछभी न हो, और जो भटकने वाला होता है। यह सदा भूखा रहता है, किसी प्रकारका मनका समाधान उसको नहीं होता, इस लिये हरएक प्रकारका उपद्रव देनेके लिये वह तैयार होता है; इसी कारण “यातु” शब्द “बुरी वृत्ति वाला” इस अर्थमें प्रवृत्त होत है। दुष्ट, डाकु, चोर, लुटेरे, बटमार आदि इसी शब्दके अर्थ आगे जाकर बने हैं। ये चोर डाकु जबतक अकेले अकेले रहते हैं, तब तक उनका नाम “यातु” है, ऐसे दोचार डाकुओंको अपने वशमें रखकर डाका डालनेवाला “यातु-मान्, यातु-वान्, यातुमत्” अर्थात् यातुवाला किंवा डाकुवाला कहा जाता है। पहिले की अपेक्षा इससे समाजको अधिक कष्ट पहुंचते हैं। इस प्रकारके छोटे डाकुओंके अनेक संघोंको अपने आधीन रखने वाला “यातु-मा-वान्” अर्थात् डाकुओंकी कई जमातोंको अपने आधीन रखनेवाला। यह पूर्वकी अपेक्षा अधिक कष्ट ग्रामों और प्रांतोंको भी पहुंचा सकता है। इसीके नाम “यातु-धान, यातु-धान्य” हैं। पाठक इससे जान सकते हैं, कि ये वैदिक शब्द जो कि वेदमें कई स्थानोंमें आते हैं, हीन और दुष्ट लोगोंके वाचक हैं। अब और देखिये —

५ अत्रिन् - अत्री ( अतति ) सतत भटकता रहता है। यह शब्द भी पूर्व शब्द का ही भाव बताता है। इसका दूसरा भाव ( अत्ति ) खानेवाला, सदा अपने भोगके लिये दूसरोंका गला काटनेवाला। जो थोड़ेसे धनके लिये खून करते हैं, इस प्रकारके दुष्ट लोगोंका वाचक यह शब्द है।



६ किमीदिन् - ( किं इदानीं ) अब क्या खांय, इस प्रकार की वृत्तिवाले भूखे किंवा पेटके लिये ही दूसरोंका घात पात करनेवाले दुष्ट लोग ।

७ दस्यु — ( दस्- उपक्षये ) घातपात करनेवाले, दूसरोंका नाश करनेवाले हर प्रकारके दुष्ट लोग ।

ये सब लोग समाजके सुखका नाश करते हैं, इनके कारण समाजके लोगोंको कष्ट होते हैं। ये ग्राममें आगये, तो ग्राममें चोरी, डकैती, खून, लूटमार होती है, स्त्री विषयक अत्याचार होते हैं, सज्जनोंको अनेक प्रकारके कष्ट होते हैं। इसलिये इन लोगोंको धर्मोपदेश द्वारा सुधारना चाहिये, यह इस सूक्तका आदेश है। जो घरदारसे हीन हैं, जो जंगलों और वनों में रहते हैं, जो चोरी डकैती आदि दुष्ट कर्म करते हैं, उनको धर्मोपदेश द्वारा सुधारना चाहिये। अर्थात् जो नागरिक हैं, जो पहिलेसे ही धर्मके प्रेमी हैं, उनमें धर्म की जागृति करनी योग्य है; परंतु जिनके पास धर्म की आवाज नहीं पहुंची और जिनका जीवन क्रम ही धर्मबाह्य मार्गसे सदा चलता रहता है, उनका सुधार करके ही उनको उत्तम नागरिक बनाना चाहिये। धर्मोपदेशक यह अपना कार्य क्षेत्र देखें।

धर्मोपदेशक के गुण, शासन कार्य में नियुक्त क्षत्रिय के गुण, और जिन लोगोंमें धर्म प्रचारकी अत्यंत आवश्यकता है उनके गुणकर्म हमने इस सूक्तके आधारसे देखे। अब इन शब्दार्थोंके प्रकाश में यह सूक्त देखना है—

### दुष्टोंका सुधार ।

प्रथम मंत्र— “ हे धर्मोपदेशक ! तुम्हारी प्रशंसा करनेवाले दुष्ट डकैतों को यहां ले आ, क्यों कि तू वंदना प्राप्त करनेपर दस्युओंका नाशक होता है” ॥ १ ॥

इस पहिले मंत्रमें दो विधान हैं— ( १ ) स्तुति करनेवाले डाकुको यहां ले आ, और ( २ ) उनका नमस्कार प्राप्त करके उनका नाशक हो। इसका तात्पर्य यह है— “धर्मोपदेशक ऐसे दुष्ट डाकु बटमार आदिकों में धर्मोपदेश करनेके लिये जावे, उनको सत्य धर्मका उपदेश करे, चोरी आदि पाप कर्म हैं यह उनको ठीक प्रकार समझा दे, उन दुष्ट कर्मोंसे उनको वह निवृत्त करे, जब वे ठीक प्रकार जानेंगे कि चोरी आदि उनके व्यवसाय बुरे हैं, और मानवोंकी रक्षा करने वाला सत्य धर्म भिन्न है और वह सत्य धर्म



इस धर्मोपदेशकसे प्राप्त हो सकता है, तब वे इसके पास श्रद्धा भक्तिसे आवेंगे, इसकी प्रशंसा करेंगे और इसके सामने सिर झुकायेंगे अर्थात् इनको प्रणाम करेंगे । जब उनमें इतनी श्रद्धाभक्ति बढ़ेगी, तब उनका डाकूपनका नाश या हनन स्वयं ही हो जायगा । इस लिये मंत्र कहता है कि “धर्मोपदेशक दुष्ट मनुष्योंको अपने उपदेशद्वारा अपनी प्रशंसा करनेवाले बनाकर अर्थात् अपने अनुगामी बनाकर, अपने समाजमें ले आवे, और उनसे नमस्कार प्राप्त करके उनका घातक बने ।”

“जिनसे नमस्कार प्राप्त करना उनकाही घात करना” प्रथम विचित्र सा प्रतीति होता है, परन्तु अधार्मिक दुष्ट मनुष्यों के सुधार करनेवालेसे ऐसाही बनता है । जब दुष्ट मनुष्य धार्मिक बन जाता है, उस समय वह पहिले धर्मोपदेशक के सामने अपना सिर झुकाता है और सिर झुकाते ही दुष्ट मनुष्य के रूपसे मर कर धार्मिक नवजीवन प्राप्त करने द्वारा वह मानो नया ही मनुष्य बनता है । यदि एक डाकु धर्मोपदेश सुनकर धार्मिक बन गया, तो उसका सामाजिक दृष्टिसे सत्य अर्थ यही है कि एक डाकू मर गया और एक सच्चा धार्मिक मनुष्य नया पैदा हुआ । अब दूसरा मंत्र देखिये—

### मित भोजन करो ।

द्वितीय मंत्र— “हे परम श्रेष्ठ अवस्थामें रहनेवाले, शरीर वशमें रखने वाले ज्ञानी धर्मोपदेशक ! घी आदि पदार्थ तोल कर अर्थात् प्रमाणसे भक्षण कर । और दुष्टोंको रुलादो ” ॥ १२ ॥

इस द्वितीय मंत्रमें दो आदेश हैं—( १ ) तोल कर घी आदि भोजन खा और ( २ ) दुष्टोंको रुला । धर्मोपदेशकोंको ये दोनों बातें ध्यानमें धरनी चाहिये । धर्मोपदेशक जिस समय बाहर प्रचार के लिये जाते हैं उस समय भगत लोग उनको मेवा, मिठाई, घी, मक्खन, दूध आदि पदार्थ आवश्यकतासे भी अधिक देते हैं । तथा जो नये धर्ममें प्रविष्ट होते हैं, उनकी भक्तिकी तीव्रता अत्यधिक होने के कारण वे ऐसे उपदेशकों का अधिक ही आदर करते हैं । इस समय बहुत संभव है कि जिह्वाकी लालचमें आकर उपदेशक अधिक खाये, और जीगर की बिगाडके कारण बीमार पड़े । इस लिये वेद ने उपदेश दिया, कि धर्मोपदेशकोंको तोलकर ही खाना चाहिये । ये उपदेशक सदा भ्रमण में रहने के कारण तथा जलवायुके सदा परिवर्तन होनेसे इनकी पाचक शक्तिमें बिगाड



होना संभव है; अतः जितनी पाचक शक्ति होती है, उससे भी कम ही खाना इनके लिये योग्य है। इस कारण वेद कहता है, कि “ उपदेशक तोलकर ही घी आदि पदार्थ खावें ” कभी अधिक न खावें ।

मंत्रमें दूसरी बात “ दुष्टोंको रूलाने ” की है । यदि उपदेशक प्रभाव शाली होगा, और यदि उसके उपदेशसे श्रोताओंको अपने दुराचार का पता लगा तथा उनके अंतःकरण में धर्म भावना जागृत हो गई तो उनके रो पड़नेमें तथा अपने पूर्व दुराचार-मय जीवन के विषयमें पूर्ण पश्चात्ताप होनेमें कोई सन्देहही नहीं है । इस प्रकार द्वितीय मंत्रका भाव देखनेके पश्चात् अब तीसरा मंत्र देखिये—

### दुष्टजीवनका पश्चात्ताप ।

तृतीय मंत्र—“ दुष्ट लोग रो पड़ें, और हे धर्मोपदेशक ! तेरे लिये यह हमारा दान है, क्षत्रिय भी इसका स्वीकार करे । ” ॥ ३ ॥

सच्चे धर्मोपदेशक के धर्मोपदेश सुनकर दुष्ट लोगोंको अपने दुराचारका पश्चात्ताप होवे और वे रो पड़ें । तथा जनता ऐसे धर्मोपदेशकोंको तथा उनके सहायक क्षत्रियोंको भी यथा शक्ति दान देती रहे । जनताकी धनादिकी सहायतासे ही धर्मोपदेशका कार्य चलता रहे । अब चतुर्थ मंत्र देखिये—

### धर्मोपदेशक कार्य चलावे ।

चतुर्थ मन्त्र—“ पहिले धर्मोपदेशक अपना कार्य प्रारंभ करे । पीछेसे क्षत्रिय उसकी सहायता करे । इसका परिणाम ऐसा हो कि सब दुष्ट आकर ‘ मैं यहां हूं ’ ऐसा कहें । ” ॥ ४ ॥

धर्मोपदेशक देशदेशान्तरमें, जहां जहां वे पहुंच सकें, वहां निडर होकर जाकर, अपना धर्मप्रचार का कार्य जोरसे करते जाय । कठिन से कठिन परिस्थितिमें भी न डरते हुए वे अपना कार्य जोरसे चलावें । पीछेसे क्षत्रिय उनकी उचित सहायता करे । परन्तु ऐसा कभी न होवे कि धर्मोपदेशक पहिले ही क्षत्रियोंकी सहायता प्राप्त करके क्षात्रबलके जोरपर धर्मप्रचार का कार्य चलावें, यह ठीक नहीं । इस लिये वेदका कहना है कि धर्मोपदेशक ब्राह्मण क्षात्र बल के भरोसेसे अपना धर्म प्रचारका कार्य न करें, प्रत्युत धर्मप्रचारको अपना



आवश्यक कर्तव्य समझ कर ही अपना कर्तव्य करता रहे । इस धर्म प्रचारका परिणाम ऐसा हो, कि सब दुष्ट दुराचारी मनुष्य अपना आचरण सुधारलें और खुले दिलसे उपदेशकोंके पास आकर कहें कि “ हम अब आपकी शरण आगये हैं । ” यही धर्म प्रचारका साध्य है । धर्म प्रचारसे दुराचारी डाकु सुधार जाय और अच्छे धार्मिक बनें, वे अपने पूर्व दुराचारका पश्चात्ताप करें, तथा जब पूर्व दुराचारका उनको स्मरण आवे उस समय उनको रोना आवे । क्षत्रियके बल की अपेक्षा न करते हुए केवल ब्राह्मण ही अपनी धार्मिक और आत्मिक शक्तिसे यह कार्य करें । पीछेसे क्षत्रिय उनको मदत पहुंचावे । क्षत्रिय के जोरसे जो धर्म प्रचार होता है, वह सत्य नहीं है, परन्तु ब्राह्मण अपने सात्विक वृत्तिसे जो हृदय पलटा देता है, वही सच्चा धर्मपरिवर्तन है । इस प्रकार चतुर्थ मंत्रका आशय देखने के पश्चात् अब अगला मंत्र देखिये—

### दुष्टोंकी पश्चात्तापसे शुद्धि ।

पंचम मंत्र— “ हे ज्ञानी उपदेशक ! हम तुम्हारा पराक्रम देखेंगे । हे मनुष्योंको सन्मार्ग बतानेवाले ! तुम दुष्टोंको हमारे धर्म का उपदेश करो । तुम्हारे प्रयत्नसे पश्चात्ताप को प्राप्त हुए सब दुष्ट लोग हमारे पास आवें और वैसाही कहें । ” ॥ ५ ॥

पूर्वोक्त प्रकारका सच्चा धर्मोपदेशक जिस समय धर्मोपदेश के लिये चलने लगता है, उस समय उसका गौरव कहते हुये लोग कहते हैं कि “ हे उपदेशक ! अब तू उपदेश करनेके लिये जा रहा है, हम देखेंगे कि तुम अपने परिशुद्ध सदुपदेशसे कितने लोगोंके हृदयमें पलटा उत्पन्न करते हो और कितनों को सत्य धर्मकी दीक्षा देते हो । इसीसे तुम्हारे पराक्रम का हमें पता लग जायगा । तुम जाओ, हम तुम्हारा गौरव करते हैं । सत्यधर्मका संदेशा सब जनता तक पहुंचाओ । तेरे उपदेश की ज्ञानाग्निसे तपे हुए और पश्चात्तापको प्राप्त हुए लोग हमारे अंदर आवें और कहें कि हमने अब धर्माभूत पीया है । और अब हम आपके बने हैं । ”

“ तप्त, संतप्त, परितप्त ” ये शब्द पश्चात्ताप के सूचक हैं । तप शब्द तपकर शुद्ध होनेका सूचक है । अग्नि तपाकर सोना चांदी, तांबा आदि धातुओंको शुद्ध करता है अर्थात् उन मलोंको दूर करता है । इसी प्रकार यहांका अग्नि-जो ज्ञानी धर्मोपदेशक है-वह अपनी ज्ञानाग्निमें सब दुष्टोंको तपाता है और अच्छी प्रकार उनके मलोंको दूर



करता है। शुद्धिकी यही विधि है। भोगके जीवनको छोड़कर तपके जीवनमें आना ही धार्मिक बनना है। इस दृष्टीसे इस मंत्रका “परि-तप्ताः” शब्द बड़े भावका सूचक है। अब छठे मंत्रका भावार्थ देखिये—

### धर्मका दूत ।

षष्ठ मंत्र—“हे ज्ञानी पुरुष ! अपना कार्य आरंभ कर। हमारे कार्य के लिये ही तुम्हें आगे किया है। हे उपदेशक ! तू हमारा धार्मिक संदेश पहुंचाने वाला दूत बन कर दुष्टोंको पश्चात्तापसे रुला दे ” ॥ ६ ॥

धर्म प्रचारके लिये बाहर जानेवाले उपदेशकको लोग कहते हैं कि —“अब तू अपना धर्म प्रचारका कार्य आरंभ करदो। बिना डर देशदेशांतरमें जा और वहां सत्य धर्मका प्रचार कर। यही हमारा कार्य है और इसी कार्य के लिये तुम्हें आगे भेजा जाता है, अथवा आगे रखा जाता है। हमारा धार्मिक संदेश जगतमें फैलाना है, इस संदेशको स्थान स्थानमें पहुंचानेवाला दूतही तू है। अब जा और धार्मिक संदेशको चारों दिशाओंमें फैला दो और इस समय तक जो लोग अधार्मिक वृत्तिसे रहते हैं, उनको अपने सदुपदेशद्वारा शुद्ध करो और उनको अपने पूर्व दुराचारका पूर्ण पश्चात्ताप होने दो। उनके दिलोंको ऐसा पलटा दो कि जिससे वे अपने पूर्वाचरण का स्मरण करके रोने लगें। इस प्रकार जगत् का सुधार करनेके लिये धर्मोपदेशकोंको भेजा जाता है।”

### डाकुओंको दण्ड ।

इतना धर्मोपदेश होकर भी जो सुधरेंगे नहीं और अपना दुराचार जारी रखेंगे, अथवा पूर्वोक्त प्रकारके श्रेष्ठ धर्मोपदेशकोंके पराकाष्ठाके प्रयत्न करनेपर भी जो अपना दुष्ट आचरण नहीं छोड़ते और जनताको चोरी डकैती आदिसे अत्यंत कष्ट देते ही रहेंगे, उनको योग्य दण्ड देना ब्राह्मण का कार्य नहीं, वह कार्य क्षत्रियका है यह आशय अगले मंत्रमें कहा है—

सप्तम मन्त्र—“हे धर्मोपदेशक ! तुम्हारे प्रयत्न करनेपर भी दुष्ट डाकु आदि अपने दुराचार छोड़ते नहीं उनको बांध कर यहां ला और पश्चात् क्षत्रिय उनके सिर तलवारसे काटदे ” ॥ ७ ॥

श्रेष्ठ धर्मोपदेशक अपना धर्मोपदेशका प्रयत्न करे और दुष्टोंको पवित्र धार्मिक बनाने-



का यत्न करे । जो सदाचारी बनेंगे वे अपनेमें संमिलित हो जायंगे । परन्तु जो बारंवार प्रयत्न करनेपर भी अपना दुष्ट आचार जारी रखेंगे उनको दण्ड देना आवश्यक ही है । क्योंकि सब शासन संस्था समाज की शांतिके लिये ही हैं । परन्तु दुष्टोंको भी सुधारनेका पूरा अवसर देना चाहिये । जब बारंवार प्रयत्न करनेपर भी वे सुधरेंगे नहीं, तो क्षत्रिय आगे बढ़े और अपना कठोर दण्ड आगे करे । क्षत्रिय उन अत्याचारी दुष्टोंको बांधकर उनके सिर ही काटदे, इससे अन्योको भी यह उपदेश मिल सकता है, कि हम भी धार्मिक बननेसे बच सकते हैं, नहीं तो हमारी भी यही अवस्था बनेगी ।

### ब्राह्मण और क्षत्रियोंके प्रयत्नका प्रमाण ।

इस सूक्तमें ब्राह्मणके प्रयत्न के लिये छः मंत्र हैं और एकही मंत्रमें क्षत्रियका कठोर दण्ड आगे करनेको सूचित किया है । इससे स्पष्ट है कि कमसे कम छः गुणा प्रयत्न ब्राह्मण अपने सदुपदेशसे करे, इतने प्रयत्न करनेपरभी यदि वे न सुधरे, कमसे कम छः बार प्रयत्न करनेपर भी न सुधरे, छवार अवसर देनेपर भी जो लोग दुष्टता नहीं छोड़ते, उनपर ही क्षत्रियका वज्र प्रहार होना योग्य है । क्योंकि जिनको जन्मसे ही दुष्टता करने का अभ्यास होगा वे एक बारके उपदेशसे पलट जायंगे अथवा सुधरेंगे यह कठिन अथवा अशक्य है । इस लिये भिन्न भिन्न उपायोंसे उनको अधिक अवसर देने चाहिये । इतना करने पर भी जो नहीं सुधरते उनको या तो बंधन में डालना या शिरच्छेद करना चाहिये ।

ब्राह्मण भी हनन करता है और क्षत्रियभी करता है परन्तु; दोनोंके हननों में बड़ा भारी भेद है । पहिले मन्त्र में ब्राह्मण की रीति बताई है और सप्तम मन्त्रमें क्षत्रिय की पद्धति बतादी है । क्षत्रिय की रीति यही है कि तलवार लेकर दुष्टका गला काट डालना, अथवा दुष्टोंको कारागृहमें बान्धकर रखना । ब्राह्मण की रीति इससे भिन्न है; ब्राह्मण उपदेश करता है, उपदेश द्वारा श्रोताओंके दिलोंको पलटा देता है, उनको अनुगामी बना देता है, उनके मनकी दुष्टता का नाश करता है । दोनोंका उद्देश्य दुष्टोंकी संख्या कम करने का ही होता है, परन्तु ब्राह्मण दुष्टोंको सुधारनेका प्रयत्न करता है, हृदय शुद्ध बनाता है और दुष्टोंकी संख्या घटाता है । और क्षत्रिय उनकी कतल करके उनकी संख्या घटाता है । इसी लिये ब्राह्मण के प्रयत्न श्रेष्ठ और क्षत्रियके दूसरे दर्जेके हैं ।

वेदमें जहां “ हनन, दहन, परिताप, विलाप ” आदि शब्द आते हैं वहां सर्वत्र



एकसाही अर्थ लेना उचित नहीं । वे शब्द ब्राह्मण के लिये प्रयुक्त हुए हैं वा क्षत्रिय के लिये हुए हैं यह देखना चाहिये । हनन से शत्रुकी संख्या घटती है, ब्राह्मण, क्षत्रिय दोनों अपने अपने शस्त्रसे हनन करते हैं, परन्तु ऊपर बतायाही है, कि ब्राह्मण विचार परिवर्तन द्वारा शत्रुका नाश करता है और क्षत्रिय शिरच्छेदादि द्वारा शत्रुको घटाता है । इसी प्रकार “ विलाप ” भी दो प्रकार का है । क्षत्रिय शत्रुकी कतल करता है उस समय भी शत्रुके लोग विलाप करते हैं और रोते पीटते ही हैं । उसी प्रकार ब्राह्मण धर्मोपदेश द्वारा जिस समय श्रोताओंके हृदयमें भक्तिभाव और धर्मप्रेम उत्पन्न करने द्वारा कृत दुराचारका पश्चात्ताप उत्पन्न करता है उस समय भी वे लोग रोते हैं और आसूँ बहाते हैं । इन दोनों आसूँ बहाने में बड़ा भारी भेद है । जो इष्ट परिवर्तन ब्राह्मण कर सकता है वह क्षत्रिय कदापि नहीं कर सकता । यही बात “ परिताप, सन्ताप ” आदिके विषयमें समझनी चाहिये ।

इस सूक्तका अर्थ करनेवाले विद्वानोंने इस ब्रह्मक्षत्रिय प्रणालीके भेदको न समझने के कारण इन शब्दोंके अर्थोंका बड़ा अनर्थ किया है । इस लिये पाठक इस भेदको पहिले समझें और पश्चात् मन्त्रोंके उपदेश जाननेका यत्न करें । यह बात एकवार ठीक प्रकार समझमें आगई, तो मन्त्रोंका आशय समझनेमें कोई कठिनता नहीं होती, परन्तु ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके क्रमशः कोमल और तीक्ष्ण मार्गोंका भेद यदि ठीक प्रकार समझमें नहीं आया, तो अर्थका अनर्थ प्रतीत होगा । इस लिये दुष्टोंकी संख्या ब्राह्मण किस प्रकार घटाता है और क्षत्रिय किस प्रकार घटाता है, इसी प्रकार ये दोनों शत्रुओंको किस रीतिसे रुलाते हैं, तपाते हैं और जलाते हैं, यह पाठक अपने विचार से और यहां बताये मार्गसे ठीक समझें और ऐसे सूक्तोंका तात्पर्य जानें ।



( ८ )

( ऋषिः— चातनः । देवता — अग्निः, बृहस्पतिः )

इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनामिवा वहत् ।

य इदं स्त्री पुमानकरिह स स्तुवतां जनः ॥ १ ॥

अयं स्तुवान आगमदिमं स्म प्रति हर्यन ।

बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमा वि विध्यतम् ॥ २ ॥



यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च ।

नि स्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम् ॥ ३ ॥

यत्रैषामग्रे जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्रिणां जातवेदः ।

तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येषां शततर्हमग्रे ॥ ४ ॥

अर्थ— (नदी फेनं इव) नदी फेन को जैसी लाती है उस प्रकार (इदं हविः) यह दान (यातुधानान् आवहत्) दुष्टोंको यहां लावे । (यः पुमान्) जो पुरुष अथवा जो स्त्री (इदं अकः) यह पाप करती रही है । (सः जनः) वह मनुष्य तेरी (स्तुवतां) प्रशंसा करे ॥ १ ॥ (स्तुवानः अयं) प्रशंसा करनेवाला यह डाकु (आगमत्) आया है, (इमं) इसका (स्व प्रति हर्यत) अवश्य स्वागत करो । हे (बृहस्पते) ज्ञानी उपदेशक ! इसको (वशे लब्ध्वा) वशमें रखकर, हे (अग्निषोमौ) अग्नि और सोम ! (वि विध्यतं) इसका विशेष निरीक्षण करो ॥ २ ॥ हे (सोमप) सोमपान करनेवाले ! (यातुधानस्य प्रजां) दुष्टकी सन्तान के प्रति (जहि) जा, पहुंच और (च नयस्व) उन्हें लेजा अर्थात् सन्मार्गसे चला । तथा (स्तुवानस्य) प्रशंसा करनेवालेका (परं उत अवरं) श्रेष्ठ और कनिष्ठ (अक्षि) आंखें । (नि पातय) नीचे कर दो ॥ ३ ॥ हे (अग्ने जातवेदः) तेजस्वी ज्ञानी पुरुष ! (यत्र गुहा) जहां कहां गुफामें (एषां) इन (अत्रिणां सतां) भटकनेवाले सज्जनों के (जनिमानि) कुलों और संतानों को (वेत्थ) नू जानता है (तान् ब्रह्मणा वावृधानः) उनको ज्ञानसे बढाता हुआ (एषां शततर्ह जहि) इनके सैकड़ों कष्टोंका नाश कर ॥ ४ ॥

यह सूक्त भी पूर्व सूक्त का ही उपदेश विशेष रीतिसे बताता है । दुष्ट लोगोंको किस रीतिसे सुधारना योग्य है इसका विचार इस सूक्तमें देखने योग्य है । इस सूक्तमें ब्राह्मण उपदेशक का एक और विशेषण आगया है वह “बृहस्पतिः” है । इसका अर्थ ज्ञान-पति प्रसिद्ध है, बृहस्पति देवोंका गुरु ब्राह्मण ही है; इस लिये इस विषयमें शंका ही नहीं है । “सोम” शब्द इसीका वाचक इस सूक्त में है । “सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा ।” ब्राह्मणोंका मुखिया सोम है, उसी प्रकार बृहस्पति भी श्रेष्ठ ज्ञानी ब्राह्मण ही है । पाठक इन शब्दोंको पूर्वोक्त सूक्तके ब्राह्मण वाचक शब्दोंके साथ मिलकर देखें और सबका मिलकर मनन करें, तो उनको पता लग जायगा कि धर्मोपदेशक ब्राह्मण किन गुणोंसे युक्त होना चाहिये । अब क्रमशः मन्त्रोंका आशय देखिये—



## धर्मोपदेशका परिणाम ।

प्रथम मन्त्र— जिस प्रकार नदी फेन को लाती है, उस प्रकार यह दान दुष्टोंको यहां ले आवे । उनमें से स्त्री या पुरुष जो कोई इस प्रकारका पाप करता है वही आदमी स्तुति करनेवाला बने । ” ॥ १ ॥

वृष्टिजलसे भरी हुई नदी जिस प्रकार अपने साथ फेनको लाती है उसी प्रकार धर्म प्रचार के लिये अर्पण किया हुआ यह हमारा दान दुष्ट लोगोंको यहां शीघ्र लावे । अर्थात् इस दानका विनियोग धर्मप्रचारमें हो कर उस धर्मप्रचारसे इतना प्रचारका कार्य होवे, कि जिससे सब दुष्टलोग अपनी दुष्टता छोडकर उत्तम नागरिक बननेके लिये हमारे पास आजावें । उनमें स्त्रियां हों या पुरुष हों, जो कोई उनमें पापाचरण करनेवाला हो, वह उपदेश सुनते ही धर्म भावसे प्रेरित होकर तथा धर्ममें आनेके लिये उत्सुक होकर, धर्मकी प्रशंसा करे और अधर्माचरण की निंदा करे । पाठक ध्यान रखें, कि हृदयके भाव परिवर्तित होनेका यह पहिला लक्षण है । धर्ममें प्रविष्ट होनेके पश्चात् धर्मसंघके लोग उससे किस प्रकार आचरण करें इस विषयका उपदेश द्वितीय मंत्रमें देखिये—

## नवप्रविष्टका आदर ।

द्वितीय मंत्र — “यह स्तुति करता हुआ आगया है, इसका स्वागत करो । हे ज्ञानी पुरुष ! उसको अपने वशमें रख कर, ब्राह्मण और उनका मुखिया ये उस पर ध्यान रखें ॥ २ ॥ ”

उपदेश श्रवण करके धर्मकी ओर आकर्षित होकर धर्मकी प्रशंसा करता हुआ यह आया है । अर्थात् जो पहिले अधार्मिक दुराचारी डाकु था उसका मन धर्मकी ओर झुका है और वह खुले दिलसे कहता है कि धर्म मार्गसे जाना ही उत्तम है । धर्मकी श्रेष्ठता वह जानने लगा है और अधर्माचरणसे मनुष्यकी जो गिरावट होती है वह उसके मनमें अब अच्छी प्रकार आ गई है । उस गिरावटसे बचनेके कारण वह अब धर्मसंघमें प्रविष्ट होना चाहता है और उसी उद्देशसे वह धार्मिक लोगोंके पास आगया है । इस समय धार्मिक लोगोंको चाहिये कि वे उसका स्वागत करें, उसका स्वीकार आदर पूर्वक करें अर्थात् उसको अपनायें । बृहस्पति अर्थात् जो ज्ञानी ब्राह्मण हो उसके पास वह रहे, वह उनके कहे नियमोंके अनुसार चले, तथा अन्य समय उनपर निरीक्षण उपदेशक और ब्राह्मणोंका मुखिया करते रहें, और बारंवार उनको धर्मपथका बोध कराते



रहें । इस प्रकार उसकी योग्यता बढ़ाई जाय और उसके धार्मिक भावका पोषण किया जाय । नहीं तो धर्मसंघमें प्रविष्ट हुआ नव मानव सत्संगियोंकी उदासीनताके कारण उदासीन होकर चला जायगा और अधिक विरोधी बनेगा; इस लिये नवीन प्रविष्ट हुए मनुष्यको अपनानेके विषयमें सत्संगियोंपर यह बड़ा भारी बोझ है । इस विषयमें वेदके चार आदेश ध्यानमें धरने योग्य हैं— (१) यह नवीन प्रविष्ट हुआ है, (२) इसका गौरव करो, (३) प्रविष्ट होते ही ज्ञानी इसे नियममें चलानेकी शिक्षा दे और (४) अन्य विद्वान् उसका निरीक्षण करें ।

इस मंत्रमें “विध्यतं” शब्द है, उसका प्रसिद्ध अर्थ निशाना मारना है, निशाना मारनेका तात्पर्य उसपर वेधक दृष्टि रखना, उसकी विशेष निग्राणी करना है । उसका विशेष ख्याल रखना, उसका सदा भला करनेका यत्न करना । अस्तु । अब तीसरा मंत्र देखिये—

### दुष्टोंकी संतानका सुधार ।

तृतीय मंत्र— “हे सोमपान करनेवाले ! दुष्ट लोगोंकी प्रजाको अर्थात् उनके बालबच्चोंको प्राप्त करो और उनको उत्तम मार्गसे चलाओ । जो तुम्हारी प्रशंसा करेगा उसकी दोनों आंखें नीचे करो ॥ ३ ॥ ”

सोम पान करनेवाला अर्थात् यज्ञकर्ता ब्राह्मण यज्ञद्वारा धर्म प्रचारका बड़ा कार्य करता है । दुष्टोंका सुधार करनेके महत्व पूर्ण कार्यमें विशेष महत्त्वकी बात यह है कि, धर्मके प्रचारक आयुसे बड़े वृद्ध आदमियोंकी अपेक्षा नवयुवकोंके सुधारका अधिक यत्न करें । नवयुवकोंके संघ बनावें, उनका आचार सुधारें, उनकी रुचि सदाचार की ओर करें अर्थात् हरएक रीतिमें उनको धार्मिक बनानेका सबसे पहिले उद्योग करें । क्योंकि आयुसे बड़े लोग अपने दुराचार में ही मस्त रहते हैं अथवा उनको वही आचार प्रिय और लाभदायक प्रतीत होता है, अतः उस को पलटाना कठिन कार्य है । परंतु नवयुवकोंके कोमल मन होते हैं, उनमें उतने दृढ़ कुसंस्कार नहीं होते, इस लिये नव युवकोंका सुधार अति शीघ्र हो सकता है । इसके अतिरिक्त यदि नव युवक सुधर गये, तो उनका आगेका वंशही एकदम सुधर जाता है । इसलिये नवयुवकोंको सुधारनेका प्रयत्न विशेष रीतिसे करना चाहिये । दुष्टोंके बालकोंको जमा करके उनको धर्मनीति अर्थात् धार्मिक आचार की शिक्षा देना चाहिये । उनमें जो तुम्हारे धर्मकी प्रशंसा करेगा



उसकी आंखें पहिले नीचे करो, अर्थात् उनकी जो आंखें ऊंची होती हैं वह नीची हो जाय । इसका आशय यह है कि उनकी घमंडी दृष्टि दूर करके उनमें नम्र भाव युक्त दृष्टि स्थापित करो । अधार्मिक दुष्ट लोगोंकी आंखें लाल और मदोन्मत्त होती हैं, भौहें टेढ़ी और चढ़ी हुई होती हैं, दूसरे मनुष्यकी जान लेना उसको एक सहज बात होती है, यह टेढ़ी दृष्टिका भाव है । नीची दृष्टिका आशय चालचलनकी नम्रता, श्रद्धा, भक्ति, आत्मपरीक्षा, आत्मसुधार आदि है । (अश्वि निपातय) आंख नीचे करना, यह दृष्टिमें भेद है । साधारण मनुष्यकी दृष्टि और प्रकार की होती है, चोरकी दृष्टि और होती है, साधुकी दृष्टि और होती है तथा डाकूकी दृष्टि भी और होती है । बालककी दृष्टि, तरुण और वृद्धोंकी दृष्टि में भेद है । इस लिये वेदमें कहा कि उनकी दृष्टि नम्र करदो धार्मिक आचार जीवन में ढाले गये तो ही यह दृष्टि बनती है अन्यथा नहीं । अस्तु इस प्रकार तृतीय मंत्रका भाव देखनेके पश्चात् चतुर्थ मंत्र का आशय अब देखिये—

### घरोंमें प्रचार ।

चतुर्थ मंत्र—“हे ज्ञानी उपदेशक ! जहां कहां गुफाओंमें इन भटकने वालोंमेंसे किंचित् भले पुरुषोंके कुल या संतान होंगे, वहां पहुंच कर ज्ञान की उनमें वृद्धि करते हुए, उनसे होनेवाले सैंकड़ों कष्टोंको दूर करदो ॥ ४ ॥”

चोर डाकू आदिओंके सुधारका विचार करते समय उनको संघोंमें उपदेश करना यह साधारण ही बात है, इससे अधिक परिणाम कारक बात यह है कि उनके परिवारोंमें जाकर वहां उनको धर्मोपदेश करना चाहिये । ऐसा करनेके समय उन दुष्ट लोगोंमें जो कुछ भी भले आदमी (सतां अत्रिणां) होंगे, उनके घरोंमें पहिले जाना चाहिये, क्योंकि उनके दिल किंचित नरमसे होनेके कारण उनपर शीघ्र परिणाम होना संभव है । इनके घरोंमें जाकर उनको, उनकी स्त्रियोंको तथा उनके बाल बच्चोंको योग्य उपदेश देना चाहिये । उनकी उन्नति (ब्रह्मणा वावृधानः) ज्ञान द्वारा करनेका यत्न करना चाहिये, अर्थात् उनको ज्ञान देना चाहिये । सच्चा धर्मज्ञान देनेसे ही इनका उद्धार हो सकता है । एकवार धर्मज्ञान में इनकी रुची बढ गयी, तो इनसे होने वाले सैंकड़ों कष्ट दूर हो जायेंगे और इनका भी कल्याण होगा ।

इस प्रकार इन दो सूक्तोंका उपदेश विशेष मनन करने योग्य है । धर्म प्रचार करने वाले उपदेशक तथा उपदेशकोंको नियुक्त करनेवाले सज्जन इन वैदिक आदेशोंका मनन करें और उचित बोध लेकर अपने आचरणमें लानेका यत्न करें ।



# वर्चःप्राप्ति सूक्त ।

यह सूक्त “वर्चस्य गण” का प्रथम सूक्त है। वर्चस्य गण के सूक्तोंमें “तेज संवर्धन, बलवर्धन, धनकी प्राप्ति, शरीरकी पुष्टि, समाज या राष्ट्रमें संमान प्राप्ति” आदि अनेक विषय होते हैं। वर्चस्यगणमें कई सूक्त हैं, उनका निर्देश आगे उसी उसी स्थानपर किया जायगा—

( ९ )

( ऋषि—अथर्वा । देवता—वस्वादयो नानादेवताः )

अस्मिन्वसु वसवो धारयन्तिवन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः ।  
 इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिञ्ज्योतिषि धारयन्तु ॥ १ ॥  
 अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अग्निरुत वा हिरण्यम् ।  
 सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधिरोहयेमम् ॥ २ ॥  
 येनेन्द्राय समभरः पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः ।  
 तेन त्वमग्न इह वर्धयेमं सजातानां श्रैष्ठ्य आधेह्येनम् ॥ ३ ॥  
 एषां यज्ञमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोषमुत चित्तान्यग्रे ।  
 सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४ ॥

अर्थ— ( अस्मिन् ) इस पुरुषमें ( वसवः ) वसु देवता तथा इन्द्र, पूषा, वरुण, मित्र, अग्नि ये देव ( वसु ) धनको ( धारयन्तु ) धारण करें। आदित्य और विश्व देव ( इमं ) इस पुरुषको ( उत्तरस्मिन् ज्योतिषि ) अति उत्तम तेजमें धारण करें ॥ १ ॥ हे ( देवाः ) देवो ! ( अस्य ) इस पुरुषके ( प्रदिशि ) आदेशमें ज्योति, सूर्य, अग्नि और हिरण्य ( अस्तु ) होवे। ( सपत्नाः ) शत्रु ( अस्मत् अधरे ) हमारे नीचे ( भवन्तु ) हों और ( इमं ) इसको ( उत्तमं नाकं ) उत्तम सुखमें ( अधि रोहय ) तुम चढ़ाओ ॥ २ ॥ हे ( जातवेदः ) ज्ञानी उपदेशक ! ( येन उत्तमेन ब्रह्मणा ) जिस उत्तम ज्ञानसे इन्द्र के लिये ( पयांसि ) समभर ! दुग्धादि रस दिये जाते हैं ( तेन ) उस उत्तम ज्ञानसे, हे ( अग्रे ) तेजस्वी पुरुष !



(इमं) इसको (इह) यहां (वर्धय) बढाओ और (एनं) इसको (सजातानां श्रेष्ठये) अपनी जातीमें श्रेष्ठ स्थानमें (आधेहि) स्थापित कर ॥ ३ ॥ हे (अग्ने) तेजस्वी पुरुष ! (एषां) इनके यज्ञ, (वर्चः) तेज, (रायः पोषं) धनकी वृद्धि और चित्त आदिको (अहं आददे) मैं प्राप्त करता हूं। (सपत्नाः) शत्रु हमारे नीचेके स्थानमें रहें और ( इमं ) इस मनुष्यको उत्तम सुखमें ( अधिरोहय ) पहुँचा दो ॥ ४ ॥

इस सूक्तका भावार्थ देखनेके पूर्व सूक्तके कई बातोंका स्पष्टीकरण करनेकी आवश्यकता है, अन्यथा सूक्तका भावार्थ समझमें ही नहीं आवेगा। सबसे प्रथम सूक्तमें वर्णित देवताओंका मनुष्यसे क्या संबंध है इसका ठीक ठीक ज्ञान होना आवश्यक है, इस लिये उसका विचार सबसे प्रथम करेंगे—

### देवताओंका सम्बन्ध ।

जो ब्रह्माण्डमें है वह पिण्डमें है, तथा जो पिण्डमें है वह ब्रह्माण्डमें है अर्थात् जो विश्वमें है, उसका सब सत्त्व एक व्यक्तिमें है और जो व्यक्तिमें है उसका विस्तार सब विश्वमें है, इसका विशेष ज्ञान निम्नलिखित कोष्टकसे हो सकता है ।

व्यक्तिमें देवतांश  
निवासक शक्तियां

स्थूलशरीर

रक्तादि धातु

शरीरका तेज

प्राण

कान

अन्नपान

प्रकाश

इन्द्रिय गण

ज्ञान

क्षात्रतेज

पुष्टि

समाजमें देवता

समाज स्थितिकी आठ शक्तियां

मातृभूमि

जल नदी नद आदि

अग्नि विद्युत् आदि

शुद्ध वायु

स्थान

औषधि, वनस्पति धान्यादि

प्रकाश

साधारण जनता

ब्राह्मण, ज्ञानी मनुष्य

क्षत्रिय वीर

राष्ट्रपोषक अधिकारी

विश्वमें देवता.

वसवः ( अष्ट )

पृथ्वी

आप्

तेजः ज्योतिः

वायुः

आकाशः

सोमः

अहः

नक्षत्राणि, देवाः

ब्रह्मन्

इन्द्रः

पूषा



शान्तभाव	जलाधिकारी	वरुणः
मित्रभाव	मित्र जन	मित्रः
वाणी	ज्ञानी उपदेशक	अग्निः
स्वातंत्र्य	स्वतंत्र विचारके लोग	आदित्याः
नेत्र, दर्शन शक्ति	दार्शनिक विद्वान्	सूर्यः
सब दिव्य गुण	सब विद्वान, कारीगर	विश्वे देवाः
तेज	धन	हिरण्यं
दुष्ट विचार	शत्रु	सपत्नाः
आनंद	स्वाधीनता	नाक ( स्वर्ग )
तेजी	"	उत्तमं ज्योतिः
सुख	"	मध्यमं "
		अधमं "

“ब्रह्मचर्य” पुस्तकमें अंशावतार का वैदिक भाव वर्णन किया है वह इस समय अवश्य पढ़िये ।

इस कोष्टकसे पाठकोंको पता लगजायगा कि सूत्रोक्त देवता शरीरमें किस रूपमें हैं, राष्ट्रमें किस रूपमें हैं और जगत् में किस रूपमें हैं । सूर्यदेव जगत्में कहाँ है यह सब जानते हैं, वही अंशरूपसे शरीरमें है जिसको नेत्र या दर्शनशक्ति कहते हैं, राष्ट्रमें भी जो पुरुष विशेष विचार से राष्ट्रकी अवस्थाका विचार करते हैं वे दार्शनिक पुरुष राष्ट्रके सूर्य हैं क्योंकि उनके दर्शने मार्गसे जाता हुआ राष्ट्र उत्तम अवस्थामें पहुँच सकता है । इसी प्रकार अन्यान्य देवताओंके विषयमें देखना योग्य है ।

इस सूक्तमें प्रारंभमें ही “अस्मिन्” पद है इसका अर्थ “ इस मनुष्यमें ” ऐसा है । प्रश्न होता है कि किस मनुष्य के उद्देश्यसे यह शब्द यहां आया है ? पूर्व सूक्तके साथ इस सूक्तका संबंध देखनेसे स्पष्टता पूर्वक पता लगता है कि इस शब्दका संबंध पूर्व सूक्तमें वर्णित “ नवप्रविष्ट शुद्ध हुए ” मनुष्यके साथ ही है । जो मनुष्य मनकी वृत्ति बदलनेके कारण अपने धर्ममें प्रविष्ट हुआ है, उसकी सबसे अधिक उन्नति करनेकी इच्छा करना प्रत्येक मनुष्यका आवश्यक कर्तव्य ही है । अपने धर्ममें जो श्रेष्ठसे श्रेष्ठ प्राप्तव्य है, वह उसको शीघ्र प्राप्त हो, इस विषयकी इच्छा मनमें धारण करनी चाहिये, अर्थात् उसको विशेष तेज प्राप्त हो ऐसी इच्छा धरनी चाहिये । यद्यपि इस सूक्तका



पूर्वापर संबंध देखनेसे यह सूक्त नव प्रविष्ट की तेजवृद्धिके लिये है ऐसा प्रतीत होता है; तथापि हर एक मनुष्यकी तेज वृद्धिके सामान्य निर्देश भी इसमें हैं और इस दृष्टिसे यह सामान्य सूक्त सब मनुष्योंके उपयोगी भी है । पाठक इसका दोनों प्रकारसे विचार करें।

अब यहां पूर्वोक्त मंत्रोंका भावार्थ दिया जाता है और वह भावार्थ देनेके समय व्यक्तिमें जो देवतांश हैं उनको लेकर ही दिया जाता है । पाठक इसकी तुलना पूर्वोक्त कोष्टकसे करें—

### उन्नतिका मूलमन्त्र ।

प्रथम मंत्र- “ इस मनुष्यमें जो निवासक शक्तियां हैं तथा क्षात्र बल, पुष्टि, शांति, मित्रता तथा वाणी आदिकी शक्तियां हैं, ये सब शक्तियां इसमें धन्यता स्थापित करें । इसके स्वतंत्र विचार और इसकी सब इंद्रियां इसको उत्तम तेजमें धारण करें ॥ १ ॥ ”

मनुष्यमें अथवा जगत्के हर एक पदार्थमें कुछ निवासक ( वसु ) शक्तियां हैं जिसके कारण वह पदार्थ या प्राणी अपनी अवस्था में रहते हैं । जिस समय निवासक वसु शक्तियां बढ़ती रहती हैं, उस समय षोषण होता है और घटती जाती हैं, उस समय क्षीणता होती है; तथा निवासक शक्तियोंके नाश होनेपर मृत्यु निश्चित है । इसी प्रकार अन्यान्य शक्तियोंके बढ़ने घटनेसे वे वे गुण बढ़ते या घटते हैं । मनुष्यमें वसुशक्तियां आठ हैं और अन्य देवताओंसे प्राप्त अन्य शक्तियां भी हैं । इन शक्तियोंके विकसित रूपमें प्रकाशित होने से ही मनुष्य वसु अर्थात् धन प्राप्त करता है और अपने आपको धन्य कर सकता है । सारांश रूपसे उन्नतिका यही मूल मंत्र है । ( १ ) अपनी निवासक वसु शक्तियोंका विकास करना, तथा ( २ ) अपने अंदर क्षात्रतेजकी वृद्धि करना, ( ३ ) अपना पुष्टि करना, ( ४ ) अपने अंदर समता शांति रखना, ( ५ ) मनमें मित्रभाव बढ़ाना और हिंसक भाव कम करना, तथा ( ६ ) वाणीकी शक्ति विकसित करना । इन छः शक्तियोंके बढ़ जानेसे मनुष्य हर एक प्रकार का धन प्राप्त कर सकता है और उससे अपने आपको धन्य बना सकता है । यहां का “वसु” शब्द धन वाचक है परंतु यह धन पैसाही केवल नहीं, परंतु यह वह धन है, कि जिससे मनुष्य अपने आपको श्रेष्ठ पुरुषोंमें धन्य मान सकता है । इस वसुमें सब निवासक शक्तियोंके विकाससे प्राप्त होनेवाली धन्यता आजाती है । ( १ ) “ निवासक शक्ति, ( २ ) क्षात्रतेज, ( ३ ) पुष्टि,



( ४ ) समता, ( ५ ) मित्रभाव ( ६ ) वक्तृत्व” इन छः गुणोंकी वृद्धि करनेकी सूचना इस प्रकार प्रथम मंत्रके प्रथमार्ध में दी है और दूसरे अर्ध में कहा है कि ( ७ ) इसके स्वतंत्र विचार और ( ८ ) इसकी इंद्रिय शक्तियां इसको उत्तमोत्तम तेजस्वी स्थानमें पहुंचायें । मनुष्यके स्वतंत्र विचार ही मनुष्यको उठाते या गिराते हैं, उसी प्रकार इंद्रियां स्वाधीन रहें तो ही वह संयमी मनुष्य श्रेष्ठ बनता है अन्यथा इंद्रियोंके आधीन बनकर दुर्व्यसनी बनाहुआ मनुष्य प्रतिदिन हीन होता जाता है । मनुष्यकी निःसंदेह उन्नति करनेका यह अष्टविध साधन प्रथम मंत्रने दिया है । वह हरएक मनुष्यको देखने योग्य है । अब दूसरा मंत्र देखिये—

### विजयके लिये संयम ।

द्वितीय मंत्र—“दे देवो ! इस मनुष्यकी आज्ञामें तेजी, नेत्र, वाणी और धन रहे । हमारे शत्रु नीचे हो जाय और इसको सुखकी उत्तम अवस्था प्राप्त हो ॥ २ ॥ ”

इस मंत्रमें “ ( अस्य प्रदिशि सूर्यः अस्तु ) इसकी आज्ञामें सूर्य रहे” यह वाक्य है । पाठक जान सकते हैं कि किसी भी मनुष्यकी आज्ञामें सूर्य रह ही नहीं सकता, क्योंकि वह मनुष्यकी शक्तिसे बाहर है; परन्तु सूर्यका अंश जो शरीरमें नेत्र स्थानमें रहा है और जिसको नेत्र इन्द्रिय कहते हैं वह तो संयमी पुरुषके आधीन रह सकता है । इससे पूर्व कोष्टकी बात सिद्ध होती है कि व्यक्तिके विषयमें विचार करनेके समय देवताओंके शरीर स्थानीय अंशही लेने चाहियें जैसा कि पहले मंत्र में किया है और इस मंत्रमें भी करना है ।

मनुष्यके अंदर बाह्य ज्योती का अंश तेजी, सूर्य का अंश नेत्र, अग्निका अंश वाणीके रूपमें रहा है । इसी प्रकार अन्यान्य देवोंके अंश यहां रहे हैं, वे ही इंद्रिय शक्तियां हैं । मनुष्यकी फूर्ती, आंख और वाणी तथा उपलक्षणसे अन्य इंद्रियां भी मनुष्यकी आज्ञामें रहें, अर्थात् इंद्रियां स्वतंत्र न बनें । तात्पर्य मनुष्य इंद्रिय-संयम और मनोनिग्रह करके अपनी शक्तियोंको अपने आधीन रखे । अपने इंद्रियोंको अपने आधीन रखना आत्मविजय प्राप्त करना है । इस प्रकारका आत्मविजयी मनुष्य ही शत्रुओंको दबा सकता और उत्तम सुख प्राप्त कर सकता है । यदि जगत्में विजय पाना है, शत्रुओंको दबाना है, तथा उत्तम सुख कमाना है, तो अपनी शक्तियोंको सबसे प्रथम स्वाधीन



करना चाहिये, यह महत्त्वपूर्ण उपदेश यहां मिलता है। अब तृतीय मंत्र देखिये—

## ज्ञानसे जातिमें श्रेष्ठताकी प्राप्ति ।

तृतीय मंत्र— “जिस उत्तम ज्ञानसे क्षत्रियको उत्तमोत्तम रस प्राप्त होते हैं, हे धर्मोपदेशक ! उसी उत्तम ज्ञानसे यहां इस मनुष्य की वृद्धि कर और अपनी जातिमें इसे श्रेष्ठता प्राप्त हो ॥ ३ ॥”

क्षत्रियको, इन्द्रको अथवा राजाको जिस ज्ञानसे उत्तम भोग प्राप्त होते हैं और जिस ज्ञानसे वह सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है, वह ज्ञान इस मनुष्यको प्राप्त हो और यह मनुष्य भी वैसाही अपनी जातिमें अथवा अपने राष्ट्रमें श्रेष्ठ बने। राष्ट्रके हरएक पुरुषको श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करनेके सब साधन खुले रहने चाहियें। वह मनुष्य नूतन प्रविष्ट हो वा उसी जातिमें उत्पन्न हुआ हो। तथा हरएक मनुष्यमें यह महत्त्वाकांक्षा होनी चाहिये कि मैं भी उस ज्ञानको प्राप्त करके वैसाही श्रेष्ठ बनूंगा, मैं अपनी जातिका नेता बनूंगा और अपने देशमें श्रेष्ठता प्राप्त करूंगा। यह मंत्रका आशय हरएकको नित्य स्मरणमें रखना उचित है। अब अगला मंत्र देखिये—

## जनताकी भलाई करना ।

चतुर्थ मंत्र— “इन सबके चित्त मैं अपनी ओर खींचता हूं, और इनके धनकी वृद्धि मैं करूंगा, तथा इनके सत्कर्म मैं फैलाऊंगा। हमारे शत्रु नीचे दब जाय और इसको उत्तम सुखका स्थान प्राप्त हो ॥ ४ ॥”

(१) पहिले मंत्रके उपदेशानुसार आचरण करनेसे अपनी शक्तियोंकी उन्नति की, (२) दूसरे मंत्रके उपदेशानुसार अपने इंद्रिय संयम द्वारा आत्मविजय प्राप्त किया, (३) तीसरे मंत्रके उपदेशानुसार अपने ज्ञानवृद्धि द्वारा प्रशस्त कर्म करके अपनी जातिमें बहुमान प्राप्त किया, तब (४) इस चतुर्थ मंत्रमें वर्णित जनताकी भलाई करनेके उत्तमोत्तम कर्म करने और कराने का योग्य अवसर प्राप्त होता है। पाठक यहां चार मंत्रोंमें वर्णित यह चार सीढ़ियां देखें और विचारें, तो पता लग जायगा कि यहां इस सूक्तमें वेदने थोड़े शब्दोंमें मानवी उन्नतिका अत्यंत उत्तम उपदेश दिया है, जिसका पाठक



जितना विचार करें उतना थोड़ा ही है । देखिये—

## उन्नतिकी चार सीढ़ियां ।

प्रथम मन्त्र— शरीरकी धारक शक्तियों, इन्द्रियों और अवयवों की सब शक्तियों, तथा मनकी विचार शक्तियों का उत्तम विकास करो ॥  
‘ अपनी शक्तियोंका विकास ॥ ’

द्वितीय मन्त्र— अपने आधीन अपनी सब शक्तियां रखो, संयम द्वारा आत्मविजय प्राप्त करके शत्रुको दूर करो और सुखी हो जाओ ॥ “ शक्तियोंका संयम ॥ ”

तृतीय मन्त्र— ज्ञानकी वृद्धिद्वारा विविध रस प्राप्त करो, और अपनी वृद्धिद्वारा स्वजातीमें श्रेष्ठ बनो । “ ज्ञानवृद्धिद्वारा स्वजातिमें संमान ॥ ”

चतुर्थ मन्त्र— लोगोंके चित्त अपनी ओर आकर्षित करो, लोगोंके धनों की वृद्धि करो और उनके प्रशस्त कर्मोंको फैला दो । इससे शत्रुओंको दूर करके सुखके स्थानमें विराजो ॥ “ जनताकी उन्नति के लिये प्रयत्न ॥ ”

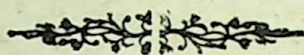
ये चार मन्त्र चार महत्व पूर्ण आदेश दे रहे हैं ( १ ) स्वशक्ति-संवर्धन, ( २ ) आत्म-संयम, ( ३ ) ज्ञान के कारण स्वजातीमें श्रेष्ठत्व और ( ४ ) जनताकी भलाई के लिये प्रयत्न, ये संक्षेपसे चार आदेश हैं । इन चार मन्त्रोंपर चार विस्तृत व्याख्यान हो सकते हैं इतना इनके उपदेशों का विस्तार और महत्व है ।

चतुर्थ मन्त्रमें “ एषां ” शब्द है, यह “ इन सब लोगोंका ” यह भाव बता रहा है । इन सब लोगोंके चित्त मैं अपनी ओर खींचता हूं, इनके धनोंकी वृद्धि करनेके उपाय मैं करता हूं, इनके प्रशस्त कर्मोंको बढ़ाता हूं, और इनके सब शत्रुओंको नीचे दबाकर इन सबका सुख बढ़ानेका प्रयत्न करता हूं । यह इस चतुर्थ मन्त्रका भाव अति स्पष्ट और सुगम है । पाठक इसका मनन करें और इस सूक्तको अपने आचरण में ढाल दें ।



वर्चस्य गण के सूक्तके उत्तम उपदेशका अनुभव पाठकोंको यहां आया ही होगा । इसी प्रकार आगे भी कई सूक्त इस गणके आवेंगे । उस समय सूचना दी जायगी । पाठक गणोंके अनुसार सूक्तोंका विचार करें और लाभ उठावें ।

## इन सूक्तोंका स्मरणीय उपदेश ।



- १ तौलस्य प्राशान - तोलकर खाओ । मित भोजन करो ।
- २ प्रजां नयस्व - सन्तानको ठीक मार्ग बताओ ।
- ३ ब्रह्मणा वावृधानः - ज्ञानसे ( बढ़ने वाला तथा दूसरोंको ) बढ़ाने वाला ( बनो )
- ४ उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु - अधिक श्रेष्ठ तेजमें ( इसकी ) धारणा करें ।
- ५ अस्य प्रदिशि ज्योतिः सूर्यः अग्निः उत्त हिरण्यं अस्तु - इसकी आज्ञामें तेज सूर्य अग्नि और धन रहे, ( अर्थात् ) इस ( मनुष्य ) की आज्ञामें जगत् के पदार्थ रहें और कभी मनुष्य उनकी आज्ञामें जाकर पराधीन न बने ।
- ६ सपत्ना अस्मदधरे भवन्तु - शत्रु हमारे नीचे रहें ।
- ७ उत्तमं नाकमधि रोहयैनम् - इसे उत्तम स्थानमें चढ़ाओ ।
- ८ सजातानां श्रेष्ठय आधेद्येनम् - इसको अपनी जातीमें श्रेष्ठ बनाओ ।





# Employment for millions STUDENTS' OWN MAGAZINE

A Monthly English Teacher--Careers for Young men a speciality.

ANNUAL SUBSCRIPTION WITH SUPPLEMENTS, Rs. 3.

GET YOUR COPY FOR MARCH NUMBER RESERVED FOR 6 ANNAS STAMPS.

SAMPLE COPY POSITIVELY No.

APPLY TO--

CAPITAL INDUSTRIAL BUREAU, RAM GALL, LAHORE.

## वैदिक उपदेश

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिए बारह उपदेश हैं। इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी। मूल्य ॥ ) आठ आने। डाकव्यय - ) एक आना।  
मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

देश देशान्तर का ज्ञान प्राप्त करने का  
अपूर्व साधन  
विद्यार्थियों को परीक्षा पास करने का  
सुगम उपाय

## भूगोल

भूगोल विषयक हिन्दी का एकमात्र सचित्र मासिकपत्र। पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बिहार उड़ीसा, मध्य प्रान्त और बरार के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत।

“भूगोल” में ज्योतिष, यात्रा, व्यवसाय, पशु वनस्पति अनुसंधान आदि भूगोल के सभी अंगों पर उच्च कोटि के मौलिक लेख प्रकाशित होते हैं। ( पिछले दो वर्षों के लेखों और लेखकों की सूची मुफ्त मंगाकर स्वयं देख लीजिये )।

वार्षिक मूल्य ३ )

मैनेजर “भूगोल” मेरठ।

## योगमीमांसा

त्रैमासिक पत्र

संपादक— श्रीमान कुवलयानंद जी  
महाराज।

कैवल्यधाम आश्रममें योग शास्त्र की खोज हो रही है जिस खोजका परिणाम आश्चर्यजनक सिद्धियोंमें हुआ है, उन आविष्कारोंका प्रकाशन इस त्रैमासिक द्वारा होगा। प्रत्येक अंकमें ८० पृष्ठ और १६ चित्र दिये जायेंगे।

वार्षिक चंदा ७ ) ; विदेशके लिये १२ शि०  
प्रत्येक अंक २ ) रु.

श्री. प्रबंधकर्ता-योगमीमांसा कार्यालय, कुंजवन;  
पोष्ट-लोणावला, ( जि. पुणे )





# छूत और अछूत ।

## [ प्रथम भाग ]

अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ! अत्यंत उपयोगी !

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

- १ छूत अछूत के सामान्य कारण,
- २ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढ़ी,
- ३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
- ४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
- ५ वेदमें बताए हुए उद्योग भ्रंदे,
- ६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
- ७ गुणकमानुसार वर्ण व्यवस्था,
- ८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
- ९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
- १० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
- ११ वैदिक कालकी उदारता,
- १२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,
- १३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था ।

इस पुस्तकमें हर एक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है । यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है ।

पृष्ठ संख्या १८० मूल्य केवल १ रु. डाकव्यय ।

**अतिशीघ्र भंगवाइये ।**

द्वितीय भाग छप रहा है अगले मासमें तैयार होगा ।



वर्ष ८ अंक ४ क्रमांक ८८ चैत्र संवत् १९८४ एप्रैल सन १९२७

# वैदिक धर्म

वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-सचित्र-मासिक-पत्र

छपकर तैयार है ।

## महाभारत की समालोचना

प्रथम भाग और द्वितीय  
भाग ।

प्रति भागका

मूल्य ॥) डाकव्यय=)

घी. पी. से ॥=)

मंत्री.— स्वाध्यायमंडल औंध  
( जि. सातारा )

संपादक-श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।  
स्वाध्यायमंडल, औंध ( जि. सातारा )



१ उत्तमवीर	५७	५ गुरुकुल कांगड़ी-रजतजयन्ती का महोत्सव	७५
२ योग जिज्ञासाकी कहानी	५८	६ अथर्व वेदका स्वाध्याय	
३ शारीरिक बलकेसाथ सद्गुणोंका विकास	६५	असत्यभाषणादि पापों से छुटकारा—	६५
४ तप	७१	सुख प्रसूति सूक्त	७०

श्वासादि रोग निवारण सूक्त--

७४

# आसनों का चित्रपट !

"आसनोंके चित्र पट" की बहुत ही मांग थी, क्योंकि आसनों का व्यायाम लेनेसे सहस्रों मनुष्योंका स्वास्थ्य सुधर चुका है, इस लिये आसन व्यायामसे स्वास्थ्य लाभ होनेके विषयमें अब किसीको संदेह ही नहीं रहा है। अतः लोग सब आसनोंके एक ही कागज पर छपे हुए चित्रपट बहुत दिनोंसे मांग रहे थे। मांग बहुत होने के कारण वैसे चित्रपट अब मुद्रित किये हैं और ग्राहकोंके पास रखाना भी हो गये हैं। २०-३० इंच कागज पर सब आसन दिखाई दिये हैं यह चित्रपट कमरे में दिवार पर लगाकर उसके चित्रोंको देख कर आसन करनेकी बहुत सुविधा अब हो गई है।

मूल्य केवल = ) तीन आणे और डाक व्यय = ) एक आना है ।

स्वाध्याय मंडल

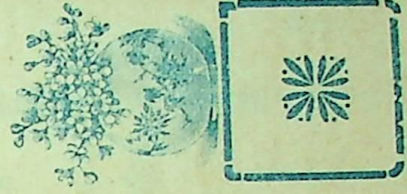
औध ( जि. सातारा )





# वान्वं वदत भद्रया ।

अथर्व वेद ३।३०।३



मदा कल्याण कारिणी वाणी बोलो ।









वर्ष ८

अंक ४

क्रमांक ८८



चैत्र

संवत् १९८३

एप्रिल

सन १९२७

# वैदिक धर्म

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ।

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

उत्तम वीर ।

नयसीद्विति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः ।

नृभिः सुवीर उच्यसे ॥

ऋ० ६ । ४५ । ६

“ तू ( द्विषः ) द्वेष करने वालोंको ( इत् उ ) निश्चयसे ( अतिनयसि ) दूर करता है और सब को ( उक्थ-शंसिनः ) प्रशंसा करनेवाले ( कृणोषि ) बनाता है, इस लिये ( नृभिः ) सब मनुष्य तुझे ( सुवीरः ) उत्तम वीर ( उच्यसे ) कहते हैं । ”

उत्तम वीर वह है कि जो शत्रुओंको दूर भगाता है । अपनी जाती में शांति स्थिर रखता है, अपने देशको निर्भय करता है और सब जनताको उत्तम भावोंसे युक्त करता है । सब लोगोंको उचित है कि वे उत्तम वीरोंकी ही प्रशंसा करें, उनका सत्कार करें और उनके अनुगामी बनें ।



## योग जिज्ञासा की कहानी ।

( ले० - श्री. पं० अभय देवशर्माजी विद्यालंकार )

### १० मनन ।

पाठक यह जानना चाहेंगे कि इतने समय तक कोठरी के अन्दर पड़ा पड़ा मैं क्या किया करता था और संध्या में ४, ४ घंटे कैसे लग जाते थे। मैं जो कुछ यह अन्तरीय कार्य करता था उसे मैं एक शब्द में 'मनन' या 'एकान्त विचार' या 'आत्मविचार' कहा करता हूँ। समझाने के लिये मैं इस मनन व विचार को दो भागों में बांट सकता हूँ। एक तो मैं अपनी त्रुटियों को दूर करने ( अथवा गुण धारण करने ) के विषय में मनन व विचार करता था और दूसरा ज्ञानप्राप्ति के लिये मनन व विचार करता था। मैं क्रमशः इन्हें स्पष्ट करता हूँ।

( १ ) अपनी त्रुटियाँ दूर करने विषयक मननों में से ( क ) सबसे अधिक समय तो मैं उसी अपने प्राण की खराबी के निवारणार्थ प्राण की गति पर ध्यान लगाने में व्यय करता था। इतनी देर तक प्राण पर मन को एकाग्र तो नहीं कर सकता था किन्तु मैंने विचारते विचारते कुछ भावनायें बना लीं थीं उन्हीं भावनाओं में रहते हुवे प्राण पर ध्यान रखता था; ( ख ) कुछ समय ब्रह्मचर्य पर तथा अपने शरीर की स्वस्थता पर भी ( भावना द्वारा ही ) ध्यान किया करता था; ( ग ) एवं अपने अन्दर की ( स्वभावकी ) जो त्रुटियाँ ( दोष ) जान लेता था उन्हें भी दूर करने के लिये अपनी दिनचर्या पुस्तक ( दिनचर्या लिखने के विषय में मैं आगे इसी प्रकरण में कुछ विस्तार से लिखूंगा ) में लिख लेता था और इनकी जांच पड़ताल संध्या में ही करता था कि ये त्रुटियाँ कहां तक हट रही हैं।

जिस दिन इन त्रुटियों के कारण कुछ ( दोष ) घटित हो जाता था उसदिन की संध्या में तो यह विचार ( मनन ) बहुत समय ले लेता था; ( घ ) एक अपना यह नियम कर रखा था कि दिन भर में मैं यदि किसी को भी पीड़ित या दुःखग्रस्त देखता था या किसी के बड़े रोगादि कष्ट में होने की बात सुनता था तो संध्यामें एक स्थान था जब कि मैं इनके लिये दोनों समय प्रार्थना करता था। यह भी मैं आत्मविशुद्धि के लिये करता था और इसमें भी दोनों समय १०, १० या १५, १५ मिनट लग जाते थे।

एवं यह मनन ४ प्रकार का होगया। इस अपनी त्रुटियों के दूरीकरणार्थ ( या गुण धारणार्थ ) किये जाने वाले मनन के संबन्ध में मैं पाठकों का ध्यान इस बातकी तरफ खींचना चाहता हूँ कि इसमें मुझे भावनात्मक मनन से बड़ा लाभ होता था। उदाहरणार्थ, ब्रह्मचर्य के लिये मैं दीपक की भावना करता था कि " वीर्यरूपी तैल सब ऊपर मस्तिष्क में चढ़ रहा है और ज्ञानरूपी प्रकाश बन रहा है, " या शिवकी भावना कि " तीसरा नेत्र खोलते ही 'काम' भस्म होगया है। " [ ' तब शिव तीसर नयन उधारा, देखत काम भयेड जलि छारा ' या ' तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार । ' यह बोलते हुवे । ] " मैं प्रेम का सूर्य हूँ चारों तरफ सब लोगों में मेरी प्रेम की किरणें फैल रही हैं - कोई शत्रु नहीं " ऐसी भावना करना। विराट् पुरुष की भावना करना। शरीर को " सर्वथा रोगरहित, पूर्ण स्वस्थ " भावना करना। ऐसा भावित करना ' मैं आनन्दमय, आनन्द से पूर्ण भरा हुवा, इतना



परिपूर्ण कि जो मेरे समीप मैं आवे उसका भी दुःख ताप मिटने लगे। मेरा अनुभव है कि ऐसी भावनायें यदि क्षणभर भी किन्तु पूरी तीव्रता से अर्थात् अपने को कल्पना में वही चित्रित करके, बिल्कुल वही बनकर को जा सकें तो भी बड़ा लाभ होता है। एकवार भी संस्कार पड़ जाने पर फिर वह भावना जल्दी और आसानी से होने लगती है। अपनी प्राणगति संबन्धी तथा अपने जीवनोद्देश्य संबन्धी और भी कई बड़ी अच्छी भावनायें मैं करता था जिनके कि उल्लेखन की ( अन्यो के लिये अनुपयोगी होने से ) आवश्यकता नहीं। आशा है पाठक उपरि लिखित 'भावना' शब्द का भाव तो समझ गये होंगे। इस कथन का उद्देश्य यह है कि जिन लोगों के मनो में कल्पना शक्ति है उन्हें इसे व्यर्थ नहीं खोना चाहिये वे भावनाओं द्वारा अपना बड़ा लाभ कर सकते हैं। अस्तु।

( २ ) दूसरा ज्ञानप्राप्ति के लिये किया जाने वाला मेरा मनन प्रायः सब संध्या में होता था। वे जो संसार का रहस्य जानने विषयक प्रश्न मुझमें उठे थे उनका विचार स्वभावतः संध्यामें ( जब कि मैं परमात्मा से अपना संबन्ध जोड़ने या देखने बैठता था ) होने लगता था। चित्त में जो संशय आते थे उन्हें विचार द्वारा दूर करता हुवा और इस नये विचार से जो और उलझने पैदा होती थी उन्हें भी सुलझाता जाता हुवा मैं अपनी संध्या पूरी करता था। इसीलिये मुझे संध्या में कभी कभी चार घंटे तक हो जाते थे। तीन घंटे तो सामान्य बात थी। संध्या में जहां अपने, जगत् और परमात्मा के संबन्ध में जो शंका उठती थी मैं वहीं उसे विचारने लग जाता था और जब तक चित्त संतुष्ट नहीं होता था तब तक आगे नहीं चलता था। मेरा मन गड़बड़ी में, संशय में जरा भी रहना नहीं अड़गी-कार करता था, बेचैन हो मनन करता चला जाता था। मतलब यह कि बुद्धि को - दृष्टि को - साफ निर्मल रखना, बुद्धि के सामने जो ( क्लेश या अज्ञान आदि की ) रुकावट या पर्दा आवे उसे विचार कर, - बार बार चिन्तन करके हटाना यही

मेरा मनन था। इसीलिये संध्या के बाद मैं नित्य बड़ा ही आनन्दित होकर ( बिल्कुल निश्चिन्त निर्बाध होकर ) उठता था। शंकायें रोज नये नये रूप में उठती थी और रोज उनको हल कर लेने द्वारा मुझे संध्याका अवर्णनीय आनन्द मिलता था। मुझे सचमुच भोजन की तरह नित्य नया ज्ञान व प्रकाश मिलता अनुभव होता था और ( जैसा कि मैं अभी लिखूंगा ) कभी कभी विशेष ज्ञान देखकर संध्या के बाद मैं इसे अपनी एक 'दिनचर्या पुस्तक' में लिखभी लिया करता था। 'मनन' इस शब्द को मुख्यतया मैं संध्या को इस मनन के लिये ही प्रयुक्त करता हूं। (ख) एक मेरा यह भी नियम था कि दिन में मुझे जो कोई कष्ट या दुःख होता था तो उसे लेकर मैं अपने इसी एकान्त विचार के समय में उसके कारण को खूब सोचा करता था। इतना सोचता था कि तत्त्व जान लेने पर यह कष्ट फिर कभी मुझे दुःखित न कर सके।

एवं यह दूसरा मनन द्विविध था। यही दोनों प्रकार का ( त्रुटि दूर करने के लिये तथा ज्ञानप्राप्ति के लिये ) मनन व विचारही मेरा आजकल का सब योगाभ्यास था। दोनों मिलाकर ये ही छे मनन, भावनायें व विचार मेरे 'अन्तरीय कार्य' थे जिन्हें कि मैं दिनभर उस कोठरी में करता रहता था और मग्न रहता था। इनसे मुझे बड़ा ही लाभ हुवा है। मैं तो चाहता कि इसी तरह प्रत्येक पाठक इस मननविधि को स्वीकार कर बड़ा सुख पासके। अस्तु।

प्रकरण को समाप्त करते हुवे मैं एक और बात बतलाना उपयोगी समझता हूं। दोनों प्रकार के मनन में मुझे दिनचर्या लिखने से बड़ा लाभ हुवा है। जब से आचार्य जी के उपदेश में दिनचर्या की बात सुनी थी तभी से मैं अपनी समझ के अनुसार दिनचर्या लिखने लगा था। इसमें धीरे धीरे विकास होता गया। विद्यालय में मैं केवल त्रुटियां सुधारने की दिनचर्या लिखता था। दशम में मैंने धारणे के लिये १० गुण दिनचर्या में लिखे हुवे थे। उनमें से ( १ ) सीधा कमर



न श्रुकाकर ) बैठना ( २ ) सबको नमस्ते ( अभिवादन ) करने का अभ्यास करना ( ३ ) दूसरे क्या कहेंगे इस डरसे ठीक कार्य करनेसे न डरना, ये तीन स्मरण भी हैं। इनमें से तीसरी बात तो बहुत देर तक चलती रही थी। एकादश में आकर दिनचर्या में अपने विचार भी लिखने लगा था। यह वर्ष सन १९१५ के कुंभसे प्रारंभ हुआ था। इस दिनचर्या में ( १ ) प्रारंभ में ४, ५ खाने त्रुटिओं की हाजिरी के बनाकर (आजकल की त्रुटियाँ ठीक स्मरण नहीं आती। सदा प्रसन्न रहना और संकोच न करना ये दो बातें उनमें शायद थीं ) ( २ ) इसके नीचे उस दिन की कोई घटनायें या दृश्य देखकर जो विचार मन में डढ़ते थे उन्हें लिखता था तथा ( ३ ) कभी यदि किसी और का या किसी पुस्तक आदि का भी कोई अच्छा विचार सुना या प्राप्त किया होता था तो उसे भी वहीं लिख लेता था। द्वादश में विचार गंभीर होने लगे थे और मैं इन्हें विस्तार से लिखा करता था। किन्तु अब त्रयोदश में आकर इन तीनों कार्यों के लिये जुदा दिनचर्या पुस्तकें बना लीं थी। ( १ ) त्रुटि सुधारने ( या गुण धारण करने ) की कापी मैं मैंने त्रयोदशके प्रारंभ में निम्न पांच बातें लिख रखीं थी ( क ) निर्भयता नि-धडकता ( ख ) सत्य और निर्मलमस्तिष्कता ( ग ) एकाग्रता ( घ ) आत्मस्वरूप और परमात्मा को यथाशक्ति दिन भर स्मरण रखना ( ङ ) परार्थ में अपने को मलजाना या निस्वार्थता। इनमें आगे कुछ परिवर्तन भी हुवे थे। चतुर्दश में आकर तो मैं यमों और नियमों को ही अपने जीवन में लाने का यत्न किया करता था। इस के लिये नित्य एक एक यम नियम पर संध्या में देर तक विचार किया करता था। यहां यह स्मरण आये बिना नहीं रहता कि इन वर्षों में गुरुकुल के एक श्रद्धेय उपाध्याय श्रीमान्पं० सेवारामजी हमें गुणी और उच्च चरित्र-वान बननेके लिए सदा प्रेरणा करते थे और इसके लिये सामग्री उपस्थित करते रहते थे। मुझे तो उनके वचनों से, उन की बतलायीं बातों से बड़ा लाभ हुआ था। अस्तु। उधर हमारी उस समिति

से निर्धारित जो तपस्या के नियम थे उनका पालन लिखने के लिये एक जुदा ही दिनचर्या थी। ( २ ) दूसरी दिनचर्या अर्थात् अपने विचार लिखने की दिनचर्या इस समय मेरे लिये बड़ी मूल्यवान् वस्तु थी, क्यों कि इसमें मैं आजकल की संध्या के मनन से निकलनेवाले विचार लिखा करता था। एकादश द्वादश में तो बाह्य घटनाओं द्वारा उठे अपने विचार लिखता था किन्तु अब के ये विचार वे 'ज्ञान' विचार थे जो कि मुझे अन्दर से प्रकाश की तरह मिलते थे। मैं इन्हें इतना कीमती समझता था कि कहा करता था कि यदि कहीं मेरे स्थान पर आग लग जाय तो मैं सब से पहिले अपनी इस कापी को बचाने का यत्न करूंगा और वेशक मेरा सब कुछ जल जाय। द्वादश श्रेणी की दिनचर्या भी मैंने अन्य सब पुरानी दिनचर्याओं की तरह प्रायः थोड़ेसे पृष्ठ कामके समझ रख छोड़े हैं, फाड़ डाली है, किन्तु यह अब तक संभाल कर रखी है। इसमें स्नातक होने के दो साल बाद तक के विचार छिखे हुवे हैं। ये विचार पढ़कर मुझे आज भी बड़ा चैतन्य और जीवन मिलता है। ( ३ ) इसी तरह अच्छे अच्छे व्याख्यानों के 'नोट' करने तथा अच्छी पुस्तकों का सारांश लिखने की लेख पुस्तकें (नोट-बुकें, अब जुदा हो गयीं थीं। एकवार स्फूर्तिदायक और उठानेवाले Inspiring वाक्यों के लिये तथा ऐसे ही अपने प्रिय भजनों के लिये भी एक कापी बनायी थी। इस सब लिखने का अभिप्राय यह है कि पाठक भी यदि ऐसी तीनों प्रकार की ( या स्वभावतः जितने प्रकार की दिनचर्याओं की उन्हें आवश्यकता हो ) दिनचर्यापुस्तकों को लिखा करेंगे तो उन्हें ( १ ) आत्मनिरीक्षण करने में ( २ ) अपने मनन को स्थिर तथा पुष्ट करने में और ( ३ ) बाहर से ज्ञान संग्रह करने में बड़ी सहायता मिलेगी ।

## ११ इस समय के कुछ अनुभव

यहां मैं अपने इन मनन के दिनों के तीन अनुभव भी अवश्य लेखबद्ध करना चाहता हूं। ये तीनों परस्पर संबद्ध हैं, इन्हें एक भी कहा जा सकता है; किन्तु



में सुगमता के लिये इन्हें तीन करके ही लिखूंगा ।

( १ ) ज्ञान को प्रकट करने में वाणी असमर्थ है- एक तो मैंने यह अनुभव किया कि मन के ( बुद्धिके ) संवेदन को, ज्ञान को ( अनुभव को ) वाणी ( भाषा ) प्रकट करने में कितनी असमर्थ है । निम्नलिखित प्रकार की बात इन मननके दिनों में मैंने कई बार देखी । मान लीजिये कि आज मुझे संध्या में कोई अनुभव हुआ और वह मैंने लिख लिया । कई अनुभव होकर हृदय से उतर भी जाया करते थे और कुछ देर बाद फिर होते थे । यह उपर्युक्त अनुभव भी ऐसे ही उतर गया और कुछ दिनों बाद फिर आया । इसे कागज पर लिख कर जब मैं यह देखने लगता था कि यह तो पहिले भी अनुभव हो चुका है देखूं इसे कहीं कापी में लिख तो नहीं चुका हूं, तो यह प्रायः उन्हीं शब्दों में मुझे लिखा मिलता था किन्तु इन पहिले लिखे शब्दों को पढ़ कर मैं इन बीच के दिनों में इस वास्तविक अनुभव को नहीं प्राप्त किया करता ( कर सकता ) था यह बात उस दुबारा अनुभव प्राप्ति के दिन मैं स्पष्ट देखता था । आशा है मैं अपना भाव स्पष्ट कर सका हूं ।

( २ ) सब ज्ञान अपने अन्दर से मिलता है- ज्ञान कहीं बाहर से नहीं आता, सब ज्ञान अपने अन्दर ही है, सब के हृदय में सब ज्ञान देते हुवे ज्ञानस्वरूप ( परमात्मा ) बस रहे हैं यह बात इन दिनों में मैंने पूरी तरह अनुभव की । 'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेना न वच्छेदात्' इस योगसूत्रके इस आशयको कि हृदयस्थ परमात्मा ही अत्रु में प्रत्येक का गुरु है मैंने पूरी तरह प्रत्यक्ष कर लिया । मुझे जो कुछ मिला है वह सब अपने ही विचार से, मननसे अर्थात् अपने ही अन्दर से मिला है । अपनी जिज्ञासा दूसरों को बतला कर पूछने से मुझे कुछ प्राप्त नहीं हुआ, उनकी बतलायी पुस्तकें पढ़ने से भी मेरे प्रश्न हल नहीं हुवे; किन्तु अन्त में स्वयं सोचते सोचते ही कभी एकदम प्रश्न हल हो जाते गये । 'योगः स्वयमेव गुरुः' यह वाक्य मैंने सर्वथा सत्य देखा । इस वाक्य के अर्थ का उस समय मैंने जहां तक अनुभव किया था उसमें तो इस वाक्य के 'योग' शब्द का

अर्थ 'मनन, विचार' इतना ही पर्याप्त रहा । मैंने देखा कि विचार करते चले जाओ, एक विचारही उससे अगले विचार तक हमें पहुंचाता जाता है, अगला मार्ग दिखलाता जाता है बाहर जानेकी कहीं जरूरत नहीं ।

बिना आत्मानुभव हुवे दूसरे के देने से ही ज्ञान कैसे मिल सकता है यह मैं अब समझ ही नहीं सकता । अनुभव प्राप्त होने पर मैं अपने अनुभव ज्ञान को वेशक उन्हीं शब्दों में प्रकट करूं जो कि पुस्तक में लिखे थे या कोई व्याख्याता बोलते थे किन्तु पुस्तक और व्याख्याता के उन्ही शब्दों से मुझे वह ज्ञान पहिले न होता था । यह क्यों ? । उदाहरणार्थ 'सदा सत्य बोलना चाहिये' यह बड़ा प्रसिद्ध वाक्य है, सैकड़ों पुस्तकों में लिखा है और सदा बोला जाता है, किन्तु इसी बातको- इस सत्य को, इस ज्ञान को- मैंने कभी कभी ऐसा साक्षात् अनुभव किया है कि उसे मैं कुछ वर्णन नहीं कर सकता था, केवल यह देखता था और कह सकता था कि मुझे आज एक नया ज्ञान साक्षात् हुवा है कि सदा सत्य ही बोलना चाहिये । इस स्वात्मानुभव को कोई बाहर से कैसे करा सकता है, यह तो जब अन्दर से हृदय तैयार होगा तभी स्वयं होगा । किसीने कितना सुन्दर और सत्य वचन कहा है कि-

पानी पियावत क्या फिरे, घर घर घर सायर वारि ।  
तृषावंत जो होयगा पीवेगा झक मारि ॥

जिसे जिज्ञासा लगी है- ज्ञानतृषा लगी है उसकी तृषाशान्ति के लिये अन्दर सब प्रबन्ध हुवा रखा है । बल्कि अन्दर ही है, बाहर उसकी प्यास कोई नहीं बुझा सकता । बाहर के लोग जो प्यास बुझाते दीखते हैं वे तो केवल ठीक समय आजाने के कारण हमारे अन्दर के ही पानी को दिखलाने के साधन हो जाते हैं । इसलिये इसका यह मतलब नहीं कि उपदेश नहीं देने चाहिये या उपदेश नहीं सुनने चाहिये । उपदेश देना इसलिये चाहिये कि किसी पात्र में ( जिज्ञासा में ) बीज अंकुरित हो जाय, किन्तु वह अन्दर का बीज अंकुरित होवेगा वहीं जहां कि उस बीज के लिये हृदय क्षेत्र तैयार किया



होगा। एवं उपदेश सुनने इसलिये चाहिये कि इन से पडने वाले संस्कारों की चोट से कभी हृदय कपाट खुल जाय, किन्तु हृदयकपाट खुलेंगे उसी क्षण जब कि कपाटों के सामने की अन्तिम बाधा वह निकाल चुका होगा। सब बात अंदर की तैयारी की है। तैयारी न होने से हमारे सैंकड़ा ९९ उपदेश सुनने (और सुनाने) व्यर्थ जाते हैं। हृदय जब एक ज्ञान के लिये पूरा परिपक्व होजाता है तब तो किसी गंवार के एक शब्द से या पुस्तक के एक वाक्य से, जरा से इशारे से वह स्वयमेव फूट जाता है और अन्दर से ज्ञान-फल निकल आता है। यह एक बड़ा भारी सत्य है कि सब ज्ञान अन्दर ही है और यह हमारी अन्तःकरण की स्थिति के (जिज्ञासा के) अनुसार अन्दर से निकलता आता है। सब ज्ञान स्वात्मानुभव से मिलता है और यह स्वात्मानुभव अन्दर से ही होता है।

(३) अगला ज्ञान हृदय की अवस्थानुसार भिन्न भिन्न मिलता है- तीसरी बात यह देखी कि मेरी एक जिज्ञासा जिस ज्ञान से शान्त हुई दूसरे पुरुष की वही जिज्ञासा उस ज्ञान से (उस उत्तर से) नहीं मिटी। इस का कारण है मनुष्यों की हृदय की अवस्था का भिन्न भिन्न स्थान तक पहुंचा होना। केवल दो पुरुषों की हृदयावस्था भिन्न नहीं होती, किन्तु एक ही पुरुष की हृदयावस्था आगे आगे भिन्न होती जाती है बदलती जाती है। इसलिये मैंने यह भी खूब देखा कि आज मेरा एक प्रश्न एक उत्तर पाकर हल हो जाता है किन्तु उस उत्तर के होते हुवे भी वह प्रश्न कुछ समय बाद फिर उठता है और तब वह एक और उत्तर पाकर शान्त होता है। वास्तव में जिज्ञासा के प्रश्न तो थोड़े से ही हैं, संसार क्या है, मैं क्या हूँ, संसार में दुःख क्यों है इत्यादि। किन्तु येही प्रश्न ज़बतक कि वास्तव में पूर्णता नहीं मिलजाती तब तक नानारूपों में हमारे सामने आते जाते हैं। मनुष्य बीच बीच में बहुत बार समझता है कि मुझे कुछ संशय नहीं रहा, मेरे सब प्रश्न हल होगये; किन्तु उसे अगला और उच्च ज्ञान देनेके लिये किसी

समय उस के सम्मुख इन्ही प्रश्नों में से कोई प्रश्न फिर एक भिन्नरूप में आखड़ा होता है। इन्हीं अनुभवों के कारण मुझे से जब कोई रहस्य का प्रश्न पूछता है तो मैं उसे यही कहता हूँ कि स्वयं सोचो, खूब सोचो, घबराओ नहीं, तुम्हारे अपने सोचने से ही तुम्हें ठीक उत्तर मिलेगा। अपने अनुभव से कुछ उत्तर देता भी हूँ तो यह आशा कदापि नहीं करता कि मेरे उत्तर से अवश्य उसे शान्ति होगी। अवश्य शान्ति देने वाला पूरा ठीक उत्तर तो वही दे सकता है जो कि उसकी उस समय की हृदयावस्था को पूरी तरह जानता है और वह तो अन्त में हृदयान्तर्यामी परमात्मा ही है अर्थात् अपने सोचने से ही शान्ति मिलती है। इसी कारण से मुझे यह बतलाने से भी कुछ लाभ नहीं दीखता कि मेरी एक जिज्ञासा का मुझे क्या उत्तर मिला।

वेद में जो बहुत जगह केवल प्रश्न ही किये हैं और उनका कुछ उत्तर नहीं दिया गया है इसका कारण मुझे यही समझ में आता है कि सब की हृदयावस्था भिन्न होने से उस प्रश्न का सब के लिये एक उत्तर नहीं दिया जा सकता। उसका एक उत्तर यही समझना चाहिये कि 'इस प्रश्न को हल करो,' स्वयं उत्तर जानो। वास्तव में जिज्ञासा ही मुख्य वस्तु है, जब जिज्ञासा पैदा हो गयी फिर ज्ञान तो अंदर तैयार ही है। इस लिये केवल प्रश्न ही करके जिज्ञासा उत्पन्न कर दी जाती है, सामने एक प्रश्न रख दिया जाता है कि इसे स्वयं हल करो इसी की आवश्यकता है।

(१२)

## मनन का फल

इस मनन के अभ्यास द्वारा धीरे धीरे मेरे मन और शरीर का अब तक कितना भारी परिवर्तन-कायापलट-होगया था और होता जा रहा था तथा मेरा आत्मा कितना निर्मल निकलता आता था इसका कुछ दिग्दर्शन कराने का अब अवसर आगया है। सचमुच पहिले की अपेक्षा अब मैं बिलकुल दल गया था, मानो मेरा काया कल्प होगया था



या मैं दूसरी योनि में पहुँच गया था । अपने परिवर्तित मन, शरीर और आत्मा का मैं नीचे क्रमशः कुछ वर्णन करता हूँ ।

( १ ) मेरा मन अब निराश की जगह अत्यधिक आशावादी हो गया था । किसी भी घटना से अन्दर निराशा नहीं होती थी । सब काम ठीक हो जायेंगे ऐसी आशा बड़ी जल्दी हो जाती थी । इन दिनों मैं आशापूर्णता में अति करता था ( यह मुझे आगे पता लगेगा ) । संसार में जो कुछ होता है और होगा वह सब कल्याण के लिये ही है इस बात में मेरी दिनों दिनों श्रद्धा बढ़ती जाती थी । संसार आनन्दमय की रचना दीखता था । सब लोगों में आत्मा दिखायी देता था अतएव सब अच्छे लगते थे । लोगों से मैं বেশक अब भी जुदा पहिले से भी अधिक जुदा— रहता था, पर यह लोगों से डर कर या घृणा करके नहीं किन्तु यह सोचता हुआ कि मैं इस तरह अपने को संसार में काम आने के योग्य बना रहा हूँ, अपने आपको जुदा रखता था । सेवा का ध्यान मुझे रहता था । मन का चिड़चिड़ापन न जाने कहां चला गया था । दूसरे से खिजना दूसरे से मन में क्रुद्ध होना स्वभाव के विपरीत हो गया था । मेरी शंकाशीलता जिज्ञासुता में बदल गयी और तीव्र अनुभव करने के स्वभावने मुझे भावुक ( भावनाप्रधान प्रकृतिवाला ) बना दिया । मनन करते करते मेरा मन इन दो तीन वर्षों में इतना पलट गया । मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ उसे पूरी तरह तो वही समझ सकता है जिसने मेरे अंतःकरण में घुस कर इसकी ये दोनों अवस्थाएँ देखी हों, पर यहां तो समझाने के लिये मैं केवल लिख ही सकता हूँ । अस्तु ।

( २ ) मेरा शरीर भी परिवर्तित हुआ था । मन के परिवर्तन के साथ यह स्वभाविक था । कब्ज का कष्ट तो एकादश द्वादश में ही जाता रहा था, पर कब्ज जाती रही नहीं कहीं जा सकती थी । किन्तु चतुर्दश में पहुँच कर आसन और प्राणायाम से तथा अन्य प्राकृतिक साधनों से शौच का भी सवाल हल हो गया था । महाविद्यालय के चारों

सालों में पहिले साल एक दिन ज्वर हुआ था तथा फिर चौथे साल श्लेष्मज्वर ( इन्फ्लूएन्जा ) की बमारी के दिनों में रोगियों की सेवा करते हुवे भी ( अपने शारीरिक और मानसिक नियमों के छूट जाने से ) कुछ ज्वर हो गया था, इसके अतिरिक्त इन चारों सालों में कोई रोग नहीं हुआ । शायद सिर का दर्द भी कभी नहीं हुआ । अब मैं ' डाक्टर जी का विद्यार्थी ' न रह कर प्राकृतिक चिकित्सा का पक्षपाती हो गया था और औषध जरा भी प्रयोग नहीं करता था । चार साल पहिले मैं इतनी दवा खानेवाला था कि एक समय मुझे भोजन से १५ मिनट पहिले सोडा वाई कार्ब. भोजन खाते खाते मध्य में एक दवा और भोजन के अन्त में एक खट्टी खट्टी दवा पिलाई जाती थी, पर अब औषध से यहां तक घृणा हो गयी थी कि मलेरिया के दिनों में जो सब को कुनीन की गोलियां खिलायी जाती थी उनके खाने में भी मुझे ऐतराज था । द्वादश या त्रयोदश में एकवार डाक्टर साहिबने यह भी कह डाला कि यदि तू कुनीन नहीं खाओगे तो जरूर बुखार आजायगा, तो भी मैंने नहीं खायी । बुखार आना कोई जरूरी तो था ही नहीं, नहीं आया । प्राकृतचिकित्सामें एक बार मैंने ६ महीने तक जलचिकित्सा की और उनके सिद्धान्तानुसार घी नमक मसाला से सर्वथा रहित सादा भोजन खाता रहा । ' उपवास चिकित्सा ' पुस्तक पढ़कर एकवार ७ दिन का उपवास भी किया । दो या चार दिन का उपवास तो कई बार किया था । इन दोनों चिकित्साओं से भी कुछ समय के लिये काफी बड़ा लाभ हुआ । परन्तु पूरा और स्थिर लाभ तो आसनों और प्राणायाम से हुआ जिसका कि प्रसंग अगले प्रकरण में आवेगा । इस प्रकार मेरे पुराने सब शारीरिक कष्ट अब हट गये थे । अब केवल एक तो वीर्यरक्षा की चिन्ता रहती थी, क्योंकि स्वप्नदोष होते थे । महाविद्यालय में आकर कामविचार क्या हाता है इस का एक अनुभव हुआ था और इन चार सालों में तीन या चार बार एक स्वप्न आकर [ बालों का सजाना



संबन्धी विचार का ही अब तक मुझे पर कामजनक प्रभाव होता था । चारों वार ऐसा ही स्वप्न आया ।] भी स्राव हुआ, नहीं तो अब भी सदा विना किसी स्वप्नके ही ( कभी उस समय पता लग जाता था और कभी कभी प्रातः जाग कर ही पता लगता था ) स्वप्नदोष होता था । इस वीर्यरक्षाके साथ तथा उस प्राण की श्रुति को सुधारने के साथ अंदर की लड़ाई के बेशक अब भी लगी रही किन्तु शरीर में किसी रोग ( जिसे संसार ' रोग ' कहता है ) का कष्ट नहीं हुआ और ये दो बातें भी विना औषध के मनन से, विचार से, इच्छाशक्ति से ठीक हो जायगी यह आशा समायी रहती थी अतः सदा उत्साह ही रहता था ।

( ३ ) मेरे आत्मा पर मनन का जो प्रभाव हुआ उसे वर्णन करना असंभव है । इस मनन से कभी अन्दर इतना सुख होता था कि वास्तव में मैं उसे सह नहीं सकता था । एक दो बार मैं आनन्द में रुदनोन्मुख भी हुआ हूँ कि ' हे भगवन् तूने मुझे इतना आनन्द क्यों दिया है, यह आनन्द औरों को भी दे दे... '। बस इस विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है ।

इस प्रकार जिज्ञासा द्वारा मैंने तो ' मनन ' नामक ही एक अनमोल वस्तु प्राप्त की है जिसने मेरा उद्धार किया है । इसी के कारण मैं समझता हूँ— अभिमान रखता हूँ कि मेरे पास कुछ चीज है । इस लिये और भी जो कोई अपना स्वभाव तक बदलना चाहता है उसे मेरा यही कहना है कि ' खूब मनन करो,

विचारो । ' इस योग से ही स्वभाव बदल सकता है । मनुष्य में जैसी वृत्तियाँ उठती हैं वह वैसा ही कर्म करता है, उससे वैसा ही संस्कार पड़ता है और वह फिर और अधिक वैसी ही वृत्ति को पैदा करता है । इस प्रकार इस चक्र में जो जिधर बह रहा है वह उधर ही दूर दूर जाता जा रहा है और उस स्वभाव में और पक्का होता जाता है । स्वभाव को दूसरी तरफ प्रवृत्त कराने के लिये वृत्तिधारा को दूसरी तरफ बहाना आवश्यक है और इसके लिये एक तरफ चित्तवृत्ति का निरोध ( अर्थात् योग ) करके ही दूसरी तरफ धारा बहायी जा सकती है । इसलिये मैं कहता हूँ कि योग ही स्वभाव बदलने का एकमात्र उपाय है । इसे ही मैं ' मनन ' कहता हूँ— मनन में एक तरफ से रोकना और दूसरी तरफ बहाना ये दोनों कार्य होते हैं । इसलिये मैंने यह योगजिज्ञासा की कहानी सुनाते हुवे गुरुकुल के अपने ब्रह्मचारिओं को कहा था कि यदि मैं इतनी सेवा करने में सफल हो सकूँ कि तुम में से १० ब्रह्मचारिओं को ही मननशील बना सकूँ, तो मैं समझूँगा कि मैंने १० हजार छात्रों को पढ़ाने जितना काम किया है और मुझे इतने कार्य का ही पुण्य होगा । मनन इतनी ही महत्व की वस्तु है । मननशील बनाने का अर्थ है ' मनुष्य बनाना ; क्यों कि मननमें ही मनुष्य का मनुष्यत्व है । इसलिये मननशील बनाने का अर्थ है ' मनुष्य ' बनाना ॥

— ० —

**स्वाध्यायान्मा प्रमदः ।**

**स्वाध्याय करनेमें प्रमाद न कर ।**



चतुर्विध पुरुषार्थ का साधन ।

# शारीरिक बलके साथ सद्गुणोंका विकास ।

( ३ )

बलं बलवतामस्मि । भ. गीता. ७।११

आत्मनो बलम् । छां. उ. ७।२६।१

बलंसत्यादोगीयः । वृ. उ. ५।४।१४

जैसा कि पहले लेख में बतलाया है, बलवान शरीरका प्रबल मनोवृत्तियों के साथ निकट सम्बन्ध है, इतना ही नहीं कई उत्तमोत्तम गुणों का और बलवान शरीर का भी निकट सम्बन्ध है ।

## १ पौरुष.

पहले हम यह बतला देना चाहते हैं कि स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखनेवाला सामान्य गुण कौन है? इस गुण को हम पुरुषत्व कहेंगे । मान के लिये, सत्य के लिये वा धर्म के लिये कठिन कष्ट सहने पड़े, या प्राणों पर भी बीती तब भी इन बातों की पर्वाह न करना, इच्छित वस्तु के प्राप्त करने में आपत्तियों की पर्वाह न कर प्रयत्न में लगे रहना, अपने स्वामित्व, श्रेष्ठत्व, अथवा स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिये प्राण भी त्यागने को तत्पर रहना, इत्यादि गुण पुरुषत्व में आते हैं । यह पौरुष मनुष्यमें स्वाभाविक है इसलिये कहा है—

पौरुषं नृषु ॥ भ. गीता. ७।८

मनुष्य में पौरुष या पुरुषत्व है । पुरुषत्व है इसी लिये इसको पुरुष कहते हैं । पुरुषत्व से हीन मनुष्य पुरुष कहने योग्य नहीं है ।

ऊपर दिये हुए गुण शरीर में तभी रह सकते हैं जब उसमें कष्ट सहने की ताकत हो और कष्ट सहने की ताकत तभी आसकती है जब स्वास्थ्य अच्छा हो और शरीर बलवान हो । इससे यह प्रतीत होता है कि पुरुषत्व सुदृढ शरीर का अनुगामी है । जो स्नायु कसे हुए न होने के कारण कष्ट नहीं सह सकते वे अपकार का प्रतिकार करने का मौका आनेपर

स्फुरण कैसे पावेंगे? इसका प्रत्यक्ष उदाहरण देखना हो तो रजपूत, मराठे, पुरविये या पंजाबियोंसे बनियों की तुलना करो । धर्म का अभिमान, कुल का अभिमान, मानी पन तथा श्रेष्ठ मनोवृत्ति पहले वर्ग के लोगों में अधिक दिखाई देती है । साधारणतः हम कह सकते हैं कि शौर्य, साहस, स्वाभिमान आदि गुणों के लिये जो लोग प्रसिद्ध हैं वे ही औरों की अपेक्षा शरीर-बल में श्रेष्ठ हैं । तीव्र जिज्ञासा से प्रेरणा पाकर उत्तर ध्रुव के हिममय प्रदेश में, या जहां परदेशी मनुष्य को कष्ट देकर मार डालते हैं ऐसे तिब्बतादि देशों में जाने का साहस करना, नाइल नदीका उद्गमस्थान ढूँढ निकालने के हेतु आफ्रिका के पहाड़ों में यात्रा करना, मुसलमानों के भेषमें मक्का देख आना आदि साहस के काम करनेवाले लोग भारत की अपेक्षा इस समय यूरप में अधिक मिलते हैं ।

## २ ऋषियोंका साहस ।

परंतु प्राचीन समय में देखिये ऋषिलोग हिमालय की चोटियों की खोजमें कैसे साहस करते थे तथा दक्षिण भारत में सबसे पूर्व आश्रम स्थापन करनेवाला अगस्त्य ऋषिही था । तिब्बत की उत्तर सरहद तक ऋषियों के आश्रम थे और भारत वर्ष में कोई ऐसा सुंदर स्थान खाली नहीं है कि जिसके साथ ऋषियोंका संबंध न हुआ हो । भयानक गुहाएं, उच्चतम दुर्गम गिरिशिखर, महान अरण्य, आदि कठिन स्थानों में अपने आश्रम स्थापन करके वहां से दिव्य ज्ञान का प्रवाह चलाना ऋषियों के दिव्य पुरुषार्थ से ही होता था । इसका एक मात्र कारण यह था कि वे अपना स्वास्थ्य योगादि साधनों से सिद्ध करके परम पुरुषार्थी बनते थे ।



जिनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, जिन्हे यह इच्छा ही नहीं होती कि कोई भी काम करना चाहिये, उन मनुष्यों से ऐसे साहस के तथा पुरुषत्व के काम नहीं बन सकते । अफजुलखां से मिलते समय, शाहस्ता खां के महल में प्रवेश करते समय, शिवाजी महाराजने जो साहस प्रकट किया उसे निर्बल मनुष्य कदापि न बता सकता । यदि इसमें किसी को शक हो, यदि कोई समझता हो कि ऐसा साहस एक निर्बल मनुष्य भी कर सकता है, तो उसे चाहिये कि वह उन लोगों की तुलना जिन लोगोंने रटन्त विद्या में अपने स्वास्थ्य की आहुति दे दी हो अन्यान्य लोगों से करें । तब ऊपर के कथन की प्रतीति होगी । इसी लिये कहा है कि—

### ३ बल ।

बलं वाव विज्ञानाद्भूयः ।

छां. उ. ७।८।१

विज्ञानसे बल बढ़कर है । यह बात अनुभव की भी है, । जिन राष्ट्रों की दिन प्रति दिन उन्नति हो रही है उनसे उन राष्ट्रों की तुलना जिनकी अवनति हो रही है करें, तो यही बात सिद्ध होगी । यूरोपकी जातियां आज सारे संसार में फैली हुई हैं । उनका प्रभाव समस्त जगत् पर है । उनके उत्कर्ष का एक बलवान कारण है उनका सुदृढ शरीर और उसका अनुगामी पुरुषत्व । हम लोगों और उनमें आज महत् अंतर दिखता है । इसका कारण भी ऊपर की बात में मिलेगा । उनका तो यह हाल है कि अपने उद्योग की वृद्धि के लिये वे आज अमेरिका, कल आस्ट्रेलिया, परसों चीन इस प्रकार नये नये देश पर कब्जा कर रहे हैं; और हमारा हाल यह है कि हमारा देश बहुत बड़ा है इससे हम लोग सैकड़ों वर्षों से मुसलमान, फ्रेंच, पोर्तुगीज, अंग्रेज आदि लोगों को बुला रहे हैं; इंग्लैण्ड के प्यरिटन सम्प्रदायी स्वतन्त्रता के लिये चार, पांच हजार मील दूर अमेरिका में चले गये । अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिये कुटुम्बियों के साथ परदेश को जाने-वाले या हथेलीपर प्राण ले लड़ाई लड़ने वाले बीअर

लोगों में और अकाल के कारण प्राण निकलने लगने पर भी अपने घरमें ही प्राणत्याग करनेवाले हम हिन्दुओं में भारी अन्तर है । क्यों कि हमारे शरीर में कष्ट सहनेकी शक्ति ही नहीं है । इसी लिये श्री० स्वामिजी महाराजने कहा था कि तप का जीवन व्यतीत करना चाहिये । तपसे ही कष्ट सहनेकी शक्ति आ सकती है । उपनिषद् में कहा है—

### ४ तपका महत्व ।

तपसा सप्तान्प्रणुदामारातीः ।

महानारा० उप० २२।१

बलेन तपः । महाना० उ० २३।१

“तपसे शत्रुओंका पराजय किया जाता है । बल से तप हो सकता है ।” तात्पर्य बल से तप और तपसे शत्रुनाश होकर विजय और यश प्राप्त होता है । अर्थात् जो बलहीन है वह किसी प्रकार भी उन्नत नहीं हो सकता है ।

स्वास्थ्य से जिस दूसरे गुण का पोषण होता है वह है धीरज । जिनकी मनोवृत्तियां उथली नहीं रहती, वान्चल नहीं पर गहरी रहती हैं उन्हीं में यह गुण रहता है । वायु की झकोर से पत्तियां छोटी छोटी डगालें या छोटे छोटे पौधे हिल जाते हैं परन्तु बड़े वृक्ष की पींड नहीं हिलती । इसी प्रकार क्षुद्र कारण से निर्बल मनुष्य की मनोवृत्ति क्षुब्ध होती है सबल की नहीं, जिनकी मनोवृत्तियां यथार्थ में गहरी हैं और प्रबल हैं उनकी वृत्तियां क्षुद्र कारण से क्षुब्ध नहीं होतीं । जिनको जरा जरासी बात में क्रोध आ जाता है उनका क्रोध गहरा नहीं रहता, वह तुरन्त ही निकल जाता है । इसके विपरीत जिन लोगों को विशेष कारण से ही क्रोध आता है उनका क्रोध जल्द शान्त नहीं होता । पहले बतलाया ही गया है कि मनोवृत्ति प्रबल होने के लिये बलवान शरीर की आवश्यकता होती है । तब यह सिद्ध ही है कि जिसका शरीर बलवान तथा सुदृढ है उसी में साधारण बातों से फिर वे चाहे प्रतिकूल हों वा अनुकूल, मनोवृत्ति में फरक न होना, संकट आने पर विना



घबराहट के प्रयत्न करते रहना, फल प्राप्त होने के लिये अति उत्सुक न होकर धीरज से तथा शांतता से कोशिश करना आदि बातें पाई जावेंगी और जिनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है, जिनका शरीर निर्बल है उनमें इसके विपरीत गुण दिखेंगे अर्थात् किसी बात का स्वीकार एकदम कर लेना, एकबार स्वीकृत की हुई बात को तुरंत ही छोड़ देना, जरासी बात में क्रोधित होना या हँस देना, क्षुद्र लाभ से या क्षुद्र हानि में सफलता प्राप्त होने से फूल जाना, थोड़े से नुकसान से या जरासी असफलता से धीरज छूट जाना, किसी बात की धुन सवार होनेपर उसके पीछे अधिक आवश्यक बातों को भूल जाना आदि । अब हम लोगों की ओर देखिए—

## ५ अंध अनुकरण ।

अंग्रेजों का राज हो कर पूरे सौ वर्ष भी न हुए इतने में हम लोगों ने उनका कितना अनुकरण किया है? यही अनुकरण विचार से किया जाता तो कुछ कहना ही न पड़ता; किन्तु रंज इसी लिये होता है कि हमारा यह अंध अनुकरण हम लोगों की मानसिक दुर्बलता को जाहिर करता है । किसी बात को उड़ा उल्हास से शुरू करना और थोड़े ही समय पश्चात् उसमें शिथिल हो जाना; क्रिकेट के खेल के समय अपने पक्ष के खिलाड़ी ने एकाद गेंद ऊँची उड़ाई तो उसके लिये ऐसी जोर से तालियाँ बजाना कि कान के पर्दे फट जावें और विपक्ष के खिलाड़ी ने जरासी गलती की तो उसके लिये उसकी हँसी उड़ाना, सार्वजनिक काम में प्रारंभ में बड़ा उत्साह दिखलाना किन्तु थोड़े ही समय में उदासीन होना आदि हमारे कार्यों से हम लोगों के मन की दुर्बलता सिद्ध होती है । अन्न, कपड़ा व्यायाम उद्योग आदि नित्यकी बातों में भी जो नियमितता तथा स्थिरता आवश्यक है उसका सोवां अंश भी हम लोगों में नहीं है । हम लोगों में देखें तो कोईकोई उपोषण में इतनी अधिकता करते हैं कि तबियत बिगड़ जाती है और कोई कोई आधसेर घी एकही दिन में खाकर उसे हजम करने के लिये गुडसी को गोदमें ले बैठते

हैं। दूसरी दूसरी बातों में भी यही बात नजर आती है। विद्यार्थियों में कोई केवल पढ़ाई में मशगुल हैं; कोई केवल खेल में मस्त हैं; अन्य लोग भी कोई केवल रुपया कमाने में भिड़े हैं और कोई केवल चैन उड़ाने में लगे हैं; कोई संसार के कीड़े ही हो गये हैं और कोई संसार को विषतुल्य मान कर बदन में बभूत लगाकर साधू बन गये हैं! यहां गीताका उपदेश देखिये—

## ६ नियम पालन ।

नात्यश्रतस्तु योगो ऽस्ति न चैकान्तमनश्चतः ।  
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥  
भ. गीता.

“अधिक खाने वाले, बिल्कुल न खानेवाले, अति सोनेवाले या बिल्कुल जागनेवाले उद्योगमें सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकते।” यह हमारे धर्मकी शिक्षा है, परंतु उसके विरुद्ध आचरण ही सब कर रहे हैं।

इस प्रकार हम लोगों में एक छोर तक दौड़ने की बुरी आदत रोम रोम में घुस गई है। हम लोगों में व्यायाम, खान पान, चैन आदि बातें उचित प्रमाण में नहीं हैं, यूरोपीयनों में इन बातों को उचित प्रमाण में रखने का बड़ा गुण है। पुरखाओंसे चली आई प्रथा इसका एक कारण है किन्तु उथली तथा दुर्बल मनोवृत्तियाँ ( जो दुर्बल शरीर से उत्पन्न होने वाले दोष हैं ) इसका दूसरा और बलवान कारण है। स्थिरता तथा नियमितता बलवान तथा सुदृढ शरीर के साथ चलाने वाले गुण हैं। यदि इसमें आशंका हो तो नीरोग तथा बलवान मनुष्य की स्थिति पर विचार किया जाय। उससे विदित होगा कि जरासी बात पर से चिड़ जाना, क्रोधित हो जाना, या ऐसे खाना जैसे आठ दिनका भूखा हो, या किसी भी बात में एकाएक एक छोर से दूसरे छोर को जाना आदि बातें उस मनुष्य से कदापि न होंगी। मौका बड़ने पर शक्तिवान मनुष्य भी रात रात भर जागता है और इसके बाद चौबीस घण्टे सोता है, या किसी दिन उपासे रहकर भी काम करता रहता है और कोई होड़ लगावे तो बहुतसी मिठाई खा जाता है; किन्तु इन बातों से नियमितता के ऊपर के



कथन को झूट कहना ठीक न होगा। क्यों कि नीरोग और बलवान मनुष्य ये बातें मौका आनेपर ही करता है और वह उन्हें सह सकता है। इस प्रकार बताव करने का उसका स्वभाव नहीं है। यदि यह देखा जाय कि कमजोर मनुष्य नियमों का उल्लंघन कितना करता है और बलवान कितना करता है, तो विदित होगा कि कमजोर मनुष्य अधिक उल्लंघन करता है। जो लोग बिल्कुल ही कम जोर होते हैं उनमें अनियमितता विशेष रहती है। नीरोग बालकों की अपेक्षा रोगी बालक अधिक चिड चिडा उतावला तथा अधीर रहता है। इससे भी ऊपर लिखी बात समझमें आजावेगी।

हिंदुओं को कोई चिढावे तो उन्हें क्रोध आता है पर वह तुरन्त ही शान्त हो जाता है। देशी कपडा, गोरक्षा, धर्म- जागृति, इतिहास संशोधन आदि बड़े बड़े और सदा के महत्व के कार्य हों, क्रिकेट आदि खेल हों, जलसा, वार्षिकोत्सव आदि कार्य हों, दुर्बल लोगों का चित्त यदि प्रयत्न से उस ओर खींचा हो तो उनकी मनोवृत्तियां उमड उठती हैं, परन्तु जितने जल्द ऐसी संस्थाओं की वृद्धि होती है उतने ही जल्द वे नष्ट हो जाती हैं। यह चंचलता मानसिक दुर्बलता से होती है और यह मानसिक दुर्बलता शरीर की दुर्बलता का फल है। वीर लोगों का हाल इसके विपरीत है। वे धीमे और मनकी बात को जाहिर न करने वाले होते हैं। इस की जड है दृढ निश्चय, मन की स्थिरता, आदि अनमोल गुण। इसी लिये उनमें यदि कोई हलचल शुरू हो जावे तो वह जल्द शांत नहीं होती। वे कोई भी नई बात करने को जल्द तैयार नहीं होते। पर एकबार आरंभ कर देनेपर उसे प्राण जाने तक नहीं छोड़ते।

## संस्थाओंकी आयु।

यही कारण है कि यूरोप में छोटे से छोटे क्लबसे लगाकर पार्लियामेंट तक जो छोटी बड़ी संस्थाएँ हैं वे सब बड़ी धूमधाम से लगातार कई वर्षों तक चली हैं। किन्तु अपने देशमें सौ दोसौ वर्षोंकी बात तो बहुत दूर है, पचास वर्ष तक अच्छी तरह से चली

हुई संस्थाएँ भी बहुत ही कम मिलेंगी। ऐसी संस्थाएँ यदि हों भी तो उनके विषयमें यही दिखेगा कि उनके आरंभ में जो उत्साह तथा उन्नति दिखाई देती थी वह २०।२५ वर्ष तक ही रह सकी। जिस प्रकार हमारा शरीर दुर्बल है और जिस प्रकार हमारी जिन्दगी थोड़ी है, उसी प्रकार हमारी संस्थाएँ कमजोर और अल्पायु होती हैं। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। क्योंकि आयुष्य स्वास्थ्यपर निर्भर है। इसी लिये जो लोग चिरकाल तक जीते हैं और जिनका स्वास्थ्य उत्तम से उत्तम रहता है उनकी चलाई हुई संस्थाएँ भी उन्नति-शील तथा चिरंजीवी होंगी। किसी मनुष्यने एक अखबार चलाया या एक कम्पनी शुरू की और वह ४०।४५ वर्ष की उमर में ही इस संसार से चल बसा तो उसे अपने चलाये हुए उद्योग की उन्नति करने के लिये समय कितना मिलेगा? परन्तु जो लोग ८०।९० वर्ष तक जीवित रहते हैं। उनके प्रारम्भ के २५ वर्ष लडकपन और जवानी में बीत जाते हैं इससे उन वर्षों को छोड़ भी दें तो भी उन्हें उद्योग करने में जो समय मिलता है वह हम लोगों से दुगना तो अवश्य ही रहता है। ऐसी हालत में उनकी संस्थाओंका चिरंजीव होना योग्यही है। इस प्रकार मनुष्य की आयुसे और उसकी चलाई संस्थाओं की आयुसे कुछ सम्बन्ध अवश्य ही जान पड़ता है।

## ८ आनंदी स्वभाव।

स्वास्थ्य पर निर्भर रहनेवाले दूसरे गुण हैं खुश मिजाज और क्षुद्र मत्सर का अभाव। इसके विपरीत गुण हैं बिगडा-दिल, मत्सर, और क्षुद्र तथा अमुख्य बातोंमें मन लगाना। ध्यान पूर्वक देखने से विदित होगा ये विपरीत गुण उन्हीं लोगों में अधिक मात्रामें पाये जाते हैं जिनका शरीर निर्बल है। यदि शरीर नीरोग तथा बलवान न होगा तो मन आनन्दित और उदार रहने की सम्भावना नहीं है। जिसके बदन में ताकत कम है उसमें निःस्पृहता, निडरपन, धीरज, साहस आदि गुण कमही रहेंगे। क्यों कि इस कमजोर मनुष्य को बलवान से अपनी रक्षा करने के लिये झूट, चापलूसी, आदि उपायोंसे



काम लेना आवश्यक हो जाता है। इस बात के लिये स्त्रियों का उदाहरण बिल्कुल ठीक होगा। स्त्रियां स्वभावही से पुरुषों की अपेक्षा निर्बल होती हैं। इससे उनमें पुरुषों के बराबर क्रजुता, मत्सर का अभाव आदि बातें होना सम्भव नहीं है। प्रत्यक्ष पुरुषों में भी जो निर्बल हैं उनमें सबल की अपेक्षा चापलूसी, मत्सर, कुटिलता आदि अवगुण अधिक रहते हैं; तब स्त्रियों की बात ही क्या? संस्थाएँ भी न चलने का कारण उनके संचालकों के मत्सर, कुटिलता, उत्साहका अभाव आदि मानसिक दोष हैं और इन दोषों का होना संचालकों के निर्बल शरीर का परिणाम है। नोरोग, तथा हठे-कट्टे मनुष्य साधारणतः आनन्दी वृत्तिके, मत्सर-रहित तथा उत्साही रहते हैं। उनके मन में क्षुद्र विचार शायद ही कभी आते हैं। जरासी बात में वे बिगड़ते नहीं, आपत्ति आने पर वे किंकर्तव्यमूढ़ भी नहीं होते। अशक्त मनुष्य की स्थिति इसके बिल्कुल विरुद्ध होती है। बहुधा वह खुश-मिजाज नहीं रहता। उसका मन सर्वदा दूसरों के विषयमें शंकित रहता है। उसके पहिचान का कोई व्यक्ति यदि सहज ही में उससे न बोला तो उसे लगता है कि 'इसके मनमें मेरे विषयमें कुछ बुरा भाव उत्पन्न हुआ तभी तो वह मुझसे नहीं बोला'। उसकी स्त्री से यदि कोई जरा अधिक दिल खोलकर बोला तो उसके दिलमें अनेकानेक तरंग उठे ही। उसे लोगों के प्रति मत्सर भी मालूम होता है।

## ९ धंधे की उन्नति ।

मालूम होता है कि धन्धे की उन्नति और स्वास्थ्य का भी कुछ सम्बन्ध अवश्य है। जिस धन्धे में हिम्मत तथा पराक्रम की आवश्यकता होती है उस स्वतन्त्र व्यवसायमें, जैसे बकालत, डाक्टरी, व्यापार, ठेकेदारी आदि, सन्धी लोगों की उन्नति होती है जो शरीर से बलवान हैं। इन व्यवसायों में उन्नति करनेवाले लोगों में ऐसे शायद ही मिलेंगे जिनका मस्तिष्क बलवान नहीं है या जिनके मज्जातन्तु बिगड़ गये हैं। कमरे में बैठकर किताबों के पत्रे

टरकाना और छपे हुए खानों को पूरा करना इस काम को छोड़कर दूसरे किसी भी काम में विना शरीर बल के मनुष्य की बढ़ती नहीं हो सकती। यदि हम हर एक व्यवसाय का प्रसिद्ध व्यक्ति देखें तो इस कथन की सत्यता प्रतीत होगी। सब प्रसिद्ध व्यापारी, वकील, डाक्टर, ठेकेदार गवई आदि लोगों को देखें तो विदित होगा कि वे सामान्य मनुष्य से अधिक तन्दुरुस्त हैं। शरीर में बल न होने से जिनमें उत्साह, धीरज, साहस आदि गुण नहीं हैं, या कम हैं, ऐसे लोगों को देखना हो तो आजकल के बी. ए. तथा एल्. एल्. बी. को देखिये। यदि व्यवसाय में असफल हुए लोगों को देखें तब भी उनमें अधिकांश लोग निर्बल ही मिलेंगे। यदि इस दृष्टि से न देखें कि बलवान शरीर से किन किन गुणों का पोषण होता है और केवल साधारण दृष्टिसे इस विषय को सोचें तो भी विदित होगा कि बलवान शरीर और कर्तृत्व-शक्ति में कुछ सम्बन्ध अवश्य है। आजतक संसार में जो बड़े कर्तृत्ववान लोग हुए हैं उनकी शरीर-स्थिति का हाल इसी बात को बतलावेगा। प्राचीन काल के उदाहरणों को छोड़ दें और केवल वर्तमान समय के कर्मवीरों के उदाहरण लें तब भी यही सिद्ध होगा। श्रीदादाभाई नौरोजी, न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानडे, श्री. विष्णू शास्त्री चिपलूनकर, सर फिरोज शाह मेहता और लोकमान्य तिलक, भो. स्वा० श्रद्धानंदजी, ला. लाजपतराय आदि लोग देशभक्त और कर्मवीरों के नाते प्रसिद्ध हैं। इन सबका स्वास्थ्य साधारण मनुष्यसे श्रेष्ठ दर्जे का था।

## १० विजय और स्वास्थ्य ।

तात्पर्य संसार में विजय प्राप्त करने का प्रथम मुख्य साधन श्रेष्ठ देर्जे का स्वास्थ्य है। यह नहीं कि युद्ध में ही विजय होना या हार जाना शरीर के बलपर निर्भर है, किन्तु भिन्न भिन्न देशों के व्यापारी और कारखाने वालों के झगड़ों में भी हार जीत इसी बात पर निर्भर है।



शरीर का स्वास्थ्य और कई अच्छे अच्छे गुणों का सम्बन्ध ऊपर बताया गया है। वह केवल अनुमान-गम्य ही नहीं किन्तु उसे प्रत्यक्ष अनुभव का भी आधार है। मर्दानी खेलों का जिन्हे विशेष शौक है उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है; उन्हीं में बुद्धि, चतुराई, लोकप्रियता आदि गुणों की मात्रा बढ़ी चढ़ी रहती है। कड़े परिश्रम के खेलों का शौक और ऊपर बतलाये हुए गुणों का ऐसा निकट सम्बन्ध है कि यदि वे नीरोग बालक जिन्हे ऐसे खेलों का शौक नहीं है और ऐसे बालक जिन्हे खेलों का शौक है और जो नीरोग हैं, इन दोनों की तुलना करें तो विदित होगा कि ऊपर लिखे गुण दूसरे प्रकार के बालकों में अधिक प्रमाण में नजर आवेंगे।

यदि हम चाहते हैं कि लोगों पर हमारा प्रभाव हो, और लोग हमारी बात मानें, तो हमारा शरीर भव्य होना चाहिये। हर एक मनुष्य अपने निजी अनुभव से जान सकता है कि दुबले पतले शरीरवाले मनुष्य के प्रति एकाएक आदर उत्पन्न नहीं होता। कभी कभी साहब हिन्दु का अपमान करते हैं इसका कारण कुछ अंशमें यह भी है कि हमारा शरीर दुबला पतला है और हमारी आकृति छोटी है। ऐसा कभी नहीं सुना जाता कि पठान या राजपूतों को साहबने ठोकर मार दी। यदि कोई कहे कि पठान लोग हिन्दुस्थान में बहुत थोड़े हैं और जो हैं वे बहुधा साहबकी नौकरी ही नहीं करते। इसी लिये उन्हें ठोकर मारने के उदाहरण कम मिलते हैं। किन्तु यह कथन यथार्थ नहीं है। मानो कि ये लोग थोड़े हैं। परन्तु जिस प्रकार हम हजारों बार सुनते हैं कि सोल्जर लोग गांव में घुसे और गांव वालों से उन्होंने मारपीट की उसी प्रकार रोहिलों या पठानों की टिल्ल उड़ाने का एक भी उदाहरण हमें क्यों नहीं सुनाई देता? वाचक अपनेही मनमें विचार करें कि ठिनगा चीनी या ब्रह्मी मनुष्य मिले तो उसके प्रति कितना आदर उत्पन्न होता है और ऊंचा पूरा, दृष्ट पुष्ट मनुष्य मिले तो उसके प्रति कैसा भाव उठता है। भव्य शरीर के ताकतवर मनुष्य का अपमान करने की, वा एकाएक उसकी हँसी उड़ाने

की किसी की हिम्मत नहीं होती। रोजीना व्यवहार में इसके कई उदाहरण मिल सकते हैं।

हम लोगों को याद रखना चाहिये कि राजकीय हक केवल मुह की बकबक से, अखबारों में लम्बे लम्बे लेख लिखने से, लम्बी और नटसदृश अभि नवयुक्त वक्तृता से नहीं मिलते। संसार का नियम है कि यदि किसी वस्तु पर एक मनुष्य का कब्जा है और दूसरा उसे लेना चाहता है। यदि दूसरे मनुष्य में उस वस्तु को पाने के लिये लड़ने भिड़ने की ताकत न होगी तो उसे वस्तु कभी मिल नहीं सकती। हमें चाहिये कि हम सरकार को सिद्ध करके बतला दें कि जो हक हम मांग रहे हैं उनके मांगने तथा उनकी रक्षा के लिये हम योग्य हैं। जिन लोगों की यह सामर्थ्य नहीं कि दिये हुए हकों का अच्छा उपयोग करें उन्हें हक देनेसे कुछ भी लाभ नहीं है। यही अंग्रेज सरकार तथा अन्यान्य राष्ट्रों का सिद्धान्त है। इसी लिये हम लोगों को चाहिये कि हम लोग अपने को सुदृढ बना लें और पुरुषार्थ प्राप्त करें जिससे कि हम हक मांगने के लिये योग्य हो जायं।

“ राज्य प्राप्त कर उसका रक्षण करने में जिन गुणों की आवश्यकता है वे मर्दोंके गुण हैं। जो लोग अपना मत बन्दूक या संगीनों के बल भी मौका पड़ने पर सिद्ध कर सकते हैं वे ही यथार्थ में राजकीय हक पाने के योग्य हैं। ”

## ११ योग साधनसे व्रजदेह ।

तात्पर्य शारीरिक बलके साथ राष्ट्रीय सद्गुणों का निवास होता है। इसलिये वैयक्तिक और राष्ट्रीय उन्नति चाहनेवाले लोग अपने बलकी उन्नति करने का यत्न अवश्य करें। योग दर्शन पाठक खोलकर देखेंगे तो उनको ये सूत्र दिखाई देंगे—

बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ २४ ॥

रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वादीनि

कायसंपत् ॥ ३६ ॥

योगदर्शन वि. पा.



“बलोंमें हाथीका बल, सूरूप, लावण्य, बल, वज्र देह आदि शरीर संपत्ति है।” यह सब योगसे प्राप्त होता है। अगस्ति ऋषिने आतापीवातापी राक्षसका नाश किया था वह शारीरिक बलसे ही किया था और वह बल उसने योगाभ्याससे ही प्राप्त किया था।

यदि पाठक आसनोंसे स्वास्थ्य तथा सूर्यभेदन से बल प्राप्त करेंगे और प्रबल पुरुषार्थके भागी होंगे

तोही वैदिक धर्म उनमें प्रकाशित हो सकता है। क्यों कि वैदिक धर्म महावीरोंका धर्म है, भीरुओंके लिये यह नहीं है। इसीलिये धर्मके दश लक्षणों में “धैर्य” की गिनती हुई है।

इसलिये पाठक बलमें धर्मका आविर्भाव देखें और अपना बल बढ़ानेका यत्न करके पूर्ण यशके भागी बनें।

## तप ।

( ले०-श्री० उदयभानुजी )

“शरद् ऋतु में चन्द्र-ग्रहण का दिवस था। हजारों यात्री देश के कोने कोने से हरिद्वार में गङ्गा के तट पर स्नान करने आये थे। जन-संघ की विशालता, उनका उत्कट धैर्य, अद्भ्य साहस को देखकर दर्शक लोग दङ्ग हो जाते थे परन्तु लोटने पर पुनः वही पुरानी प्रथा देखकर मुख से सहसा निकल पड़ता था ‘मानों लोग जीवन और बुद्धि को गंगा में बहा आये हैं’।

मैं एक ओर खड़ा हुआ भारत-जननी का ध्यान कर रहा था कि मुझे एक परिचित आवाज यह कहते हुवे सुनाई दी कि ‘तप करो’ ‘तप करो’। थोड़ी देर हुई ही थी कि वह अविवेक-अबोध-विनाशक ऋषि दयानन्द यह सन्देश सुनाता हुआ दिखाई दिया।

ऋषि पर मेरी श्रद्धा थी और भक्ति भी; किन्तु मैं यह श्रवण कर बड़े असमंजस में पड़ गया। मैंने विनीत भाव से उस वैदिक साहित्य के चलते फिरते विश्व-कोषके चरण कमलों में अपना मस्तक नमाया और कातर स्वर से पूछने लगा कि ‘हे भगवन् ! हमारे तप से, हमारे दान से उस चन्द्रमा का ग्रहण कैसे दूर हो सकता है। मैं आपके इन मार्मिक वचनों के गूढ़ रहस्य को नहीं समझ सकता।

ऋषि-वर मुस्कराये और कहने लगे “हे वत्स ! मर्ख मन्थ्य देखते हुवे भी नहीं देखते, सुनते हुवे भी नहीं सुनते। आज चन्द्रमा पर ग्रहण है; वह तो क्षणभर रहेगा और नष्ट हो जायगा पर तुम्हारी आत्मा और तुम्हारी माता पर जो अज्ञान और दासता का ग्रहण (क्रमशः) हजारों वर्षों से लग रहा है उसको दूर करो। उसके लिए प्रयत्न करो, ‘तप करो, तप करो’।

महा-शिव-रात्रि का शुभागमन हो चुका है। हम वैदिक धर्मियों के लिए वह उपदेश की रात्रि है, वह बोध की रात्रि है, वह तप की रात्रि है। ऋषिने उस रात्रि ‘बाध’ को प्राप्त किया और न केवल अपने ही जीवन को उन्नत बनाया किन्तु सारे भारतवर्ष के जीवन को पलट दिया। अतएव हम सब लोगों का यह परम कर्तव्य है कि हम ऋषि के जीवन से कुछ शिक्षा ग्रहण करें, उसका मनन करें और उसे क्रिया रूप में परिणत कर अपने भावी जीवन को उन्नत बनावें।

ऋषि का यथार्थ गौरव तपस्वी के रूपमें है, उन्होंने ने अपने कर्तव्य के लिए वेदों के प्रचार के लिए-अपने आदर्श के लिए, सदैव दुःख का आलिङ्गन किया, सदैव तप का अनुसरण किया। भारत की



मृतप्राय जातियों में जीवन का संचार करनेवाला यदि कोई संजीवन है—ऋषि के जीवनमें प्रत्येक समय झलकनेवाला यदि कोई सिद्धान्त है तो वह यही गुरुमंत्र है 'तप' ।

हमारे प्रत्येक ग्रन्थ में इस तप की महिमा गाई गई है; पद पद पर इस का उपदेश दिया गया है । देखिए महर्षि व्यास क्या कहते हैं—

'नास्तप्ततपसो लोके प्राप्नुवन्ति महा सुखम् ।  
हे युधिष्ठिर ! इस लोक में तप न करनेवाले मनुष्य महा-सुख को नहीं प्राप्त करते ।

'तपसो हि परं नास्ति तपसा विन्दते महत् ।

नाश्साध्यं तपसः किञ्चिदिति बुध्यस्व भारत ॥

( महा. भारत. वन पर्व )

हे भारत! तप से श्रेष्ठ इस संसार में कुछ भी नहीं है, तपसे महान् फल प्राप्त होता है ।

हे युधिष्ठिर तप से सब कुछ साध्य हो जाता है, तप करनेवाले को कठिन कुछ भी नहीं रहता ऐसा तू जान!

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः ।

यो. द. २. १.

पातंजलि-मुनि कहते हैं कि कर्म-योग का मुख्य और प्रथम अंग तप है ।

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठावेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥

के. उ. ४. ८.

उस ब्रह्म की प्राप्ति के लिए तप, दम और कर्म मुख्य साधन हैं. इन्हीं तीनों में चारों वेद और छहों अङ्गों के मूल की भी प्रतिष्ठा है'

'तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति'

क. उ. २. १५.

तप भी उसी ब्रह्मका कथन करते हैं ।

सुकेशा, सत्यकाम आदि ऋषि-पुत्र वेद वेदाङ्गों को पढ़कर जिज्ञासु भावसे अपनी आध्यात्मिक प्यास बुझाने के लिए भगवान् पिप्पलाद ऋषि के पास जाते हैं । उन जिज्ञासुओं से वह ऋषि स्पष्ट कहता है "भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सवत्सरं संवत्स्यथ," कि तुम ब्रह्मचर्य और श्रद्धासे तप करते हुये

एक वर्ष मेरे पास रहो, उसके उपरान्त यदि तुम को योग्य समझूंगा तो सब स्पष्ट ले वर्णन कर दूंगा ।

आगे चलकर वही ऋषि कहते हैं 'प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत' ( प्र०उ० ) प्रजाकी कामना वाला वह प्रजापति प्रथम तप करता है ( और उस तप के पश्चात् इस सृष्टि की उत्पत्ति हुई है ) । भगवान् कृष्ण चन्द्र ने गीता में कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

संसार में बहुतसे लोग ऐसे हैं जो स्वयं कुछ विचार नहीं करते किन्तु श्रेष्ठ पुरुषों का अनुकरणही करते हैं ।

दर्शन और वेदों में प्रायः आत्मा और परमात्मा के नाम एक ही हैं परन्तु उनमें परमात्मा की शक्ति अधिक मानी गई है । अतः सिद्ध है कि आत्मा भी परमात्मा का ही अनुकरण करेगा क्योंकि वह परमात्मा आत्मा से श्रेष्ठ है । इसी कारण भगवान् पिप्पलाद ऋषि ने यह सिद्धान्त स्पष्ट कर दिया है कि प्रत्येक मनुष्य को सफलता के लिए तप करना चाहिए और यही कारण था कि उन्होंने उन ऋषि-पुत्रों को प्रथम तप का ही उपदेश किया । इसी सिद्धान्त को आगे चलकर मुण्डकोपनिषद् में बतलाया है कि 'तपसा चीयते ब्रह्म' तप के द्वारा ब्रह्म नाम आत्मा बढ़ती है उसकी शक्तियों का विकास होता है । फिर वही मुण्डकोपनिषद् कहता है—

'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा ।'

३. १. ५.

निश्चयसे वह ब्रह्म सत्य से और तपसे प्राप्त होने योग्य है ।

'प्रजापतिरकामयत प्रजायेय भूयान्स्यामिति स ततोऽतप्यत ।

ऐतरेय ब्राह्मण ५. ५. ३२.

अर्थात् प्रजापति परमात्माने कामना की कि मैं प्रजा उत्पन्न कर बहुरूप, अनेक और प्रसिद्ध हो जाऊँ । इस कारण उसने तप किया । उद्धृत वाक्य के अन्तिम शब्द तैत्तिरीयोपनिषद् में भी आये हैं— शतपथ में लिखा है कि—



‘प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीत् । एक एव सोऽका-  
मयत् स्यां प्रजायेयेति सोऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत ।

११. ५. २. १.

प्रारंभ में प्रजापति अकेला था, उसने कामना की कि मैं प्रजा उत्पन्न करूं। इस कारण उसने तप किया - श्रम किया।

गोपथ ब्राह्मण—

‘तदभ्यश्राम्यत्तदभ्यतपत् समतपत् ।’

प्रजाकी कामना करनेवाले उस ब्रह्मने श्रम किया, अच्छे प्रकार तप किया।

तप करना आवश्यक है, उसी से हमारी उन्नति हो सकती है इस सिद्धान्त की पुष्टि में इतने प्रमाण पर्याप्त हैं। अब तपका फल देखिए—

भगवान् कृष्णजी कहते हैं कि—

यज्ञ दान तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥

गीता. १८. ५.

यज्ञ, ज्ञान और तपका त्याग कभी नहीं करना चाहिए, इनसे मनुष्य ( के चित्त और आत्मा ) की शक्ति होती है।

तस्यास्तपसा पारमीक्षितव्यम् ।

निरुक्त १३. १३.

इस पर भाष्य करते हुवे श्री. प्रो. चन्द्रमणिजी स्वकीय ‘वेदार्थ दीपक’ में लिखते हैं—

“ऊह के प्रसंग से आचार्य ने ‘सेयं विद्या’ आदि में तर्क का वर्णन किया है कि यह तर्क विद्या बहुश्रुतता, मनन और बुद्धि इन तीनों से ज्ञातव्य है। और तपके द्वारा उस तर्क-विद्याका पार पाने की इच्छा रखनी चाहिए। विना तपके उपर्युक्त तीनों साधनों के होने पर भी यह तर्क-विद्या हमें अभीष्ट स्थानपर नहीं पहुंचा सकती। इसलिए अपनी यत्किंचित आयु चाहनेवाले अतपस्वी मनुष्य को इस तर्क-शास्त्र का अभ्यास कभी नहीं करना चाहिए। यदि अतपस्वी मनुष्य इस तर्क-शास्त्र से काम लेगा तो उलटा वह अनेक दुःखों का भागी बनकर शीघ्र मृत्यु का ग्रास हो जावेगा। इस लिए श्रुति, मति और बुद्धि, इन तीनों साधनों से

३

युक्त तपस्वी विद्वान को चाहिए कि वह तर्क-शास्त्र से सहायता लेता हुआ मन्त्रों में मंत्रशेषों और सूक्तशेषों आदियों को प्रकरण ज्ञान के लिए देखे।” प्रोफेसर महोदय के तप विषयक विचार हम आर्यों के लिए विशेष मननीय हैं। मैं आशा करता हूं कि प्रत्येक भद्र पुरुष आपके इन वचनों को अपनाने का प्रयत्न करे।

महर्षि पातञ्जलि लिखते हैं—

‘कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः’

यो. द. २-४३

‘तपसे अशुद्धि ( मन और आत्मा की मलीनता) दूर होकर शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि होती है।’ इसी भाव को प्रदर्शित करते हुवे उसी दर्शन में अन्यत्र भी कहा हुआ है ‘...तपस् समाधिजाः सिद्धयः,’ कि तप से सिद्धि प्राप्त होती है।

अब प्रश्न यह हो सकता है कि वह तप क्या है और उसे क्रियात्मक रूप में कैसे परिणत किया जा सकता है। निःसंदेह यह प्रश्न विशेष कठिन है। किसी भी धर्मग्रन्थ में इस का पूर्ण स्वरूप प्रकट नहीं है। मैं नहीं कह सकता इस विषयके वर्णन कर ने में मुझे कहां सफलता मिलेगी। किन्तु जहां तक मुझ से हो सका है मैंने आर्ष ग्रन्थों के आधार पर ही इसकी व्याख्या की है। मैं चाहता हूं कि वैदिक-धर्म के विद्वान इस विषय में खोज करें और जनता के सम्मुख तप की विस्तृत और यथार्थ व्याख्या रखें।

सफलता प्राप्त करना मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। जिन साधनों द्वारा मनुष्य इस योग्य बनता है उसे तप कहते हैं। भिन्न भिन्न मनुष्यों के आदर्श भिन्न भिन्न होते हैं। (यद्यपि यह कोई सर्वतंत्र सिद्धान्त नहीं है) अतः उनके साधन भी भिन्न भिन्न होंगे। इसी कारण सब मनुष्यों के तप भी एक नहीं हो सकते। क्यों कि यह कहा जा चुका है कि तप एक साधन है। यही कारण है कि भिन्न भिन्न ऋषियों ने भिन्न भिन्न तप बताये हैं। यथा—

न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम् ।

ऊर्ध्वरेता भवेद्यस्तु स देवो न तु मानुषः ॥

म. भा. अनु. प.



‘तप, तप ऐसा मत कहो, ब्रह्मचर्य ही श्रेष्ठ तप है। जो ऊर्ध्वरेता होता है वह निश्चय से देव है, मनुष्य नहीं।’

यहां ब्रह्मचर्य को ही श्रेष्ठतम बताया है। इसी तप का वर्णन करते हुवे वेद कहता है—

‘ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाध्नत’

अथर्व.

ब्रह्मचर्य रूपी तप से देवता लोग मृत्यु को जीतते हैं।

आगे चलकर वही वेद कहता है

‘श्रमेण लोकांस्तपसा पिपति’

ब्रह्मचारी परिश्रमरूपी तप से लोगों को सन्तुष्ट करता है।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति ।

आचार्यों ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥

अ. ११-५-१७.

ब्रह्मचर्यरूपी तपसे राजा राष्ट्र की रक्षा करता है। और ब्रह्मचर्यरूपी तप से ही आचार्य ब्रह्मचारि की इच्छा करता है।

मन्वादिक ऋषियों ने भी ब्रह्मचर्यको ही श्रेष्ठ तप बताया है।

प्रत्येक कार्य की सफलता कर्मपर निर्भर है और कर्म मनुष्य की शक्ति पर निर्भर है। जो मनुष्य शक्ति से हीन है वे कुछ भी कर्म नहीं कर सकते। वह शक्ति ब्रह्मचर्य द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। इसी कारण कहा है—

‘नाश्वमात्मा बलहीनेन लभ्यः’

मु. उ. ३-२-४

बलहीन पुरुष उस आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकते। नवीन वेदान्त की असफलता का मुख्य कारण यही है कि उसमें ब्रह्मचर्यादि तप का विधान नहीं है। अतः सिद्ध होता है कि सब तपों में ब्रह्मचर्य ही श्रेष्ठ है।

पाठक गण यह न समझलें कि ब्रह्मचर्य ही केवल तप है क्योंकि तप की व्याख्या जो की जा चुकी है वह यह है कि तप मनुष्य को सफलता के योग्य बनाता है। ब्रह्मचर्य से मनुष्य की शक्ति बढ़ सकती

है किन्तु शक्ति के सद-व्यय के लिए ज्ञानकी बड़ी भारी आवश्यकता है; अतएव जिन साधनों द्वारा मनुष्यको ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है वह भी तप ही है। यथा—

ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दमस्तपः शमस्तपो दानं तपो यज्ञस्तपो भूर्भुवः सुवर्ध्नैतदुपास्वैतत्तपः ॥ तै. आ. १०-८.

( ऋतं ) अटल नियमों का पालना, ( सत्य ) मन, वचन और कर्मकी एकता केवली कामना, ( श्रुतं ) स्वाध्याय, ( शान्तं ) चित्त की प्रसन्नता, ( दमः ) मनकी वृत्तियों का निरोध, एकाग्रता; ( शमः ) इन्द्रियों को नियमित करना; ( दानं ) दीनों को सहायता ( यज्ञ ) आत्म-कल्याण के कर्म, ( भूः ) स्वाभिमान, ( भुवः ) मनन करना, ( सुवः ) मन को प्रसन्न और शिव संकल्प युक्त बनाना ( ब्रह्म ) अपनी आत्मा के समीप बैठकर शक्ति प्राप्त करना तथा श्रेष्ठ ब्रह्म को उपासना करना ये सब तप हैं।

‘तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च

तै. आ. ७।९

स्वाध्याय और उपदेश ये सब तप हैं।

भगवान् कृष्णचन्द्रजी इसी तप का वर्णन करते हुवे लिखते हैं—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शोचमार्जवम् ।

ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥

देव अर्थात् विद्वान्, द्विज, गुरु जनों की पूजा, मन और शरीर की पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा इसे शारीरिक तप कहते हैं।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् स्वाध्यायाभ्यासनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ।

किसी भी मनुष्यको कष्ट नहीं देना, हितकारक, प्रिय और सत्य भाषण और स्वाध्याय ये वाचिक तप कहाते हैं।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।

भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥

चित्तकी प्रसन्नता, सौम्यता, मनन, विषयों से विरक्तता, और भावों की शुद्धता - मानसिक तप कहाता है।

—अपूर्ण



# गुरुकुलकांगड़ी-रजतजयन्ती का महोत्सव !!!

## गुरुकुलकी स्थापना ।

जिस समय महात्मा गांधीजीके असहकार का जन्म भी नहीं हुआ था, उस समय महात्मा मुन्शी-रामजी के द्वारा कांगड़ी गुरुकुल की स्थापना हो कर सरकारी शिक्षणालयों के साथ असहकार करनेका क्रियात्मक प्रारंभ हो चुका था। गुरुकुल द्वारा राष्ट्रीय शिक्षाका पवित्र जीवन स्रोत जबसे चलना प्रारंभ हुआ तबसे भारतराष्ट्रके सब नेताओंका ध्यान राष्ट्रीय शिक्षाकी ओर विशेष रीतिसे आकर्षित हुआ। इस प्रकार सच्ची राष्ट्रीय शिक्षाका क्रियात्मक प्रारंभ करनेवाले पूर्वाश्रमके महात्मा मुन्शीरामजी अथवा उत्तर आश्रमके श्री० स्वा० श्रद्धानंदजी भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा प्रणालीके आद्य प्रवर्तक किंवा सच्चे आचार्य माने गये और सब देशमें राष्ट्रीय शिक्षाके सब प्रवर्तकोंने इन्हीं का न्यूनाधिक अनुकरण किया यह बात सब लोग जानते ही हैं।

## गुरुकुल का यश ।

कांगड़ी गुरुकुल शुक्ल पक्ष के चंद्रमा के समान दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा और गत पच्चीस वर्षों में जो राष्ट्रीय शिक्षाप्रदानका कार्य उन्होंने किया, उस कारण विपक्षी भी उसकी प्रशंसा खुले दि० से करने लगे। यहांतक इसकी प्रतिष्ठा बढ़ गई की शिक्षा का विचार करनेवाले सज्जन इस गुरुकुल को देखना और इस पद्धतिका विचार करना अत्यावश्यक समझने लगे और इस हेतुसे स्वदेशी और विदेशी शिक्षाविभागके अध्यक्ष इस संस्थाका दर्शन करने के लिये आने लगे और इसकी मुक्तकंठसे प्रशंसा करने लगे।

मनुष्यकृत संस्थाओंमें दोष रहना स्वाभाविक ही है, उस नियमानुसार इस संस्थामें कोई दोष रहे होंगे, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। परंतु दोषों के रहते हुए भी इस गुरुकुलकी गुणोंकी अधिकताके कारण सर्वत्र इसकी प्रशंसा हुई और इन पच्चीस

सालों में इस संस्थाने प्रशंसायोग्य कार्य करके दिखाया भी है। इस लिये हम कह सकते हैं कि इसकी बुनियाद इस समय आयोंके हृदयोंमें इतनी गहरी होगई है, कि यह संस्था अब निःसंदेह चिर-स्थायी होकर रहेगी और अपनी हस्तीसे श्री० स्वा० श्रद्धानंदजीका जीवित और जाग्रत स्मारक बनकर इस देशमें अपने आदर्शको पूर्ण करेगी।

इस वर्ष इस गुरुकुल संस्थाको २५ वर्ष होने के कारण उसका रजत जयन्ती महोत्सव हुआ और सब आयोंने इसमें संमिलित हो कर इस महोत्सव को सफल और सुफल बनाया यह बहुत ही हर्ष की बात है। हम चाहते हैं कि इसी प्रकार यह आदर्श संस्था दिन प्रतिदिन अधिकाधिक लोकप्रिय बन कर उन्नतिको प्राप्त हो और उसके "सुवर्ण जयन्ती" तथा "रत्नजयन्ती" महोत्सव करनेके अवसर योग्य समयमें आजाय और उस समय यह संस्था अपनी विविध शाखाओंको पूर्ण रीतिसे सफल बना सके और इसकी वृद्धिके योगसे श्री० स्वा० श्रद्धानंदजीका यश उज्ज्वल बन कर चारों दिशाओंमें फैल जाय। परमेश्वर हमारी हार्दिक आशाको पूर्ण करे और संपूर्ण आर्यजनता अपने तन मन धनसे तथा अपने पारस्परिक विद्वेषरहित सहयोगसे इस संस्था को परिपूर्ण बनानेकी पराकाष्ठा करें।

## उत्सव की सफलता

इस उत्सव में श्री० महात्मा गांधी, पं० मदन मोहन मालवीय, डा० मुंजे, श्री० राजेन्द्रप्रसादजी, साधु वास्वानी, प्रि० ध्रुव, राष्ट्रमहासभाके सभापति श्री० श्रीनिवास आर्यगार आदि सुप्रसिद्ध और सुयोग्य विद्वान नेतागण उपस्थित थे; इस लिये यह उत्सव अधिक चित्ताकर्षक हुआ और साथ साथ भी यह बात सिद्ध हुई की, अनेक राष्ट्रदलोंके नेता एक दूसरेके साथ पूर्ण विरोध करते हुए भी इस संस्था की वेदीपर आकर अपने अपने मतभेदोंको भूलकर



एक दिलसे कार्य कर सकते हैं। अर्थात् राष्ट्रीय शिक्षाके विषय में सबका ऐकमत्य ही है। यदि गुरु कुल अपनी ब्रुटियोंको दूर करके, अपने आपको पूर्ण बनाकर थोड़ेही समयमें देशके सब नेतागणोंको अपनी ओर अधिक खींच सके, तो राष्ट्रीय एकता प्रस्थापित करने में भी इस संस्थासे बहुत ऊंचे दर्जे का कार्य होना संभवनीय है।

व्याख्यानों और संमेलनोंका वर्णन पाठकोंने वृत्त-पत्रों में पढ़ाही होगा इस लिये उसको यहां दुहराना उचित नहीं है। सब दृष्टिसे यह उत्सव सफलतापूर्वक समाप्त हुआ इस लिये हम प्रबंधकर्ताओंको धन्यवाद देते हैं। इस वर्षके उत्सव में हाजरी अपेक्षा से भी अधिक हो गई थी और जितने लोग आये थे उनके लिये पर्याप्त स्थान भी नहीं था। तथापि आयोंके दिल बड़े होनेके कारण बाह्य स्थान की न्यूनता की पूर्ती हृदयों की विशालता से दूर होगई और सब महोत्सव बड़े आनंदसे पूर्ण हो गया।

## ब्रुटियोंका प्रदर्शन.

उत्सव के प्रबंधकर्ताओंने अपनी पूरी परा-काष्ठा करके प्रबंध किया था, उत्सवका महामंडप, छोटा मंडप आदि सब स्थान उत्तम बने थे, परंतु श्रोताओंने जो अपनी ब्रुटियों का प्रदर्शन किया था वह क्षमा करने योग्य न था। वृत्तपत्रों में उत्सवकी सफलता ही वर्णन की जाती है और उन वर्णनों में ब्रुटियोंको बताया नहां जाता। इसका कारण यही है कि जनता अपनी ब्रुटियोंको सुनना पसंद नहीं करती और अपने सद्गुणोंकी प्रशंसाही सुनना चाहती है। यदि किसीने दोष बतानेका यत्न किया तो उसपर जनताका क्रोध भी होता है। आर्य समाजके वार्षिकोत्सव आज पचास वर्ष हो रहे हैं, गुरुकुलों के उत्सव पचीस वर्ष हो रहे हैं ये सब उत्सव बड़े समारोहके साथ होते हैं, तथापि इस समयतक किसी वृत्तपत्रमें जनताका चित्त ब्रुटियोंकी ओर आकर्षित नहीं किया परंतु हर वर्ष गुणप्रशंसाही गाई जाती है। इसलिये संभव है कि जनताभी अपने दोषोंको

जानती नहीं होगी। इस कारण जिन दोषोंका प्रदर्शन हरएक जलसेमें होता है और जिनका प्रदर्शन इस जलसे में भी हुआ, उनका प्रकाशन यहां करने की बड़ी आवश्यकता है। और हमें आशा है कि पाठक भी इस लेखका योग्य विचार करेंगे।

## सभ्यता ।

वेदमें "सभ्यो भवति य एवं वेद।" ( जो यह जानता है वह सभ्य होता है ) ऐसे आदेश अनेक स्थानोंपर आगये हैं। अर्थात् वेद के आदेशानुसार सभ्य बननेके पूर्व कुछ विशेष ज्ञान की आवश्यकता है। "सभ्य" शब्द का अर्थ "सभा में बैठने योग्य" है। अर्थात् सभामें बैठने योग्य बननेके लिये मनुष्य को कुछ विशेष शिक्षा प्राप्त करना वेद की दृष्टिसे अत्यावश्यक है। सभाके कुछ नियम होते हैं, उनका जो पालन कर सकता है उसी को सभा में प्रविष्ट होने का अधिकार वैदिक धर्मके अनुसार प्राप्त हो सकता है। अर्थात् हरएक मनुष्य सभामें बैठने योग्य नहीं है, परंतु सभा में वही मनुष्य जा सकता है कि जो सभाके नियम पालन करने में तत्पर हो।

सभाके योग्य मनुष्यही सभ्य होते हैं, सभ्योंकी आचारपद्धति सभ्यता कही जाती है। जो वैदिक सभ्यताके दावेदार हों उन को उचित है कि, वे अपने आपको सबसे पूर्व सभाके योग्य बनानेका उपाय करें और पश्चात् सभ्यताका प्रचार करने का भार अपने ऊपर लें।

"सभा" वह होती है कि जो "सब मिलकर प्रकाशित होती हो।" सब उपस्थित पुरुषोंका प्रकाश अधिकसे अधिक जिससे प्रकाशित होता हो। पाठक विचार करें की क्या ये वैदिक शब्दों के अर्थ हमारी सभाओं में ठीक संगत होते हैं? सभा, सभ्य और सभ्यता के वैदिक भाव हमारी सभाओंमें संगत होते हैं वा नहीं यही पाठकोंको देखना चाहिये और पूर्ण विचार करके निश्चय करना चाहिये कि कौनसा दोष हम में है और उसको दूर किस प्रकार किया जा सकता है।



## शोर ।

हमने गुरुकुल के बीससे अधिक जलसे देखे हैं और लाहौर आर्य समाजके दस जलसे देखे हैं। जिन जलसोंमें पांच हजार से पंद्रह हजार तक उपस्थिति होती थी ऐसे ही जलसे ये थे। इनको देखनेसे हमारा निश्चय हुआ कि आर्यजनता सभामें बैठने योग्य अभीतक बनी नहीं। आर्य समाज पचास वर्ष कार्य कर रहा है और जनता का अधिक से अधिक आकर्षण करनेकी शक्ति वह रखता है। परंतु उसके प्रयत्नसे भी मनुष्योंको वह शिक्षा इस समयतक नहीं मिली कि जिससे मनुष्य सभामें बैठने योग्य बन सकें !!!

इन महोत्सवोंकी सभाओंमें कई प्रतिष्ठित पुरुष वेदीपर बैठते हैं, साधारण जनता सभास्थानके एक भागमें बैठती है और दूसरे विभागमें स्त्रियां बैठती हैं। शोर मचाने में स्त्रियोंका प्रयत्न सबसे अधिक है, तथापि वेदीपर बैठे हुए प्रतिष्ठित पुरुष तथा अन्य श्रोतागणोंका भाग शोरमें भी कोई कम नहीं है। यूरोप अमेरिकाकी विशाल सभाओं में जहां इस प्रकार की साधारण जनता भी उपस्थित होती है वहां जो शांति रहती है उसका सौवां हिस्सा भी शांति भारतीयों की सभा में नहीं होती !!! वैदिक धर्मियों के लिये तो यह शोर बड़ा भारी लांछन है। प्राचीन ग्रंथोंमें महापरिषदोंका वर्णन है परंतु वहां शोर होनेका कोई वर्णन नहीं है। साधारण वक्ता भी अपनी आवाज पचास हजार सभ्य मनुष्यों तक पहुंचा सकता है, परंतु इन सभाओं में पांच हजार तक भी बड़ी आवाज का वक्ता अपना गला पूरा फाड़ देनेके विना नहीं पहुंचा सकता!! वक्ता को सदा अपने आवाज में ही बोलना चाहिये। अपनी आवाज से ऊंचे स्वरमें वक्ता को बोलने की आवश्यकता उत्पन्न होना श्रोताओं की असभ्यता की निशानी है। निश्चयसे भारतीय प्राचीन आर्यसभ्यता सभामें शोर मचाने की आज्ञा नहीं देती है।

अन्य छोटे वक्ताओं की कथा तो छोड़ दें, परंतु महात्मा गांधी और पं० मदन मोहन मालवीय जैसे सुप्रतिष्ठित वक्ता वेदीपर आनेपर भी जब जनता चुप नहीं रहती तो पाठक ही विचार कर सकते हैं कि वैदिक धर्मियों के लिये इससे अधिक लांछन तो क्या हो सकता है? गत उत्सवमें राष्ट्रीय शिक्षासंमेलन के सभापति महात्मा गांधीजी थे। सभाका प्रारंभ होते ही शोर शांत करने की प्रार्थना महात्माजी को चालीस सेभी अधिक बार करनी पड़ी। महात्माजी बार बार कह रहे थे कि "आपको शांत होना चाहिये" और श्रोतागण अधिकाधिक शोर मचा रहे थे। यह दृश्य स्पष्टतासे सिद्ध कर रहा है कि हमारी जनता अभीतक सभामें बैठने के योग्य भी नहीं बनी !!!

जो लोक केवल शोर मचानेके लिये हि सभास्थान में आते हैं और वक्ता के शब्द सुननेकी इच्छा नहीं रखते, अथवा जो चाहते हैं कि वक्ताका गला बबर के समान पुकारनेसे शीघ्र ही फट जाय, क्या उनकी उन्नति की कभी संभावना है? पचास साल व्यतीत हुए, आधी शताब्दी चली गयी, तो भी सभा में बैठने की शिक्षा लोगोंने प्राप्त नहीं की, क्या यदि इसी प्रमाण से उन्नति होनी है तो यह मामला लाखों वर्षों का ही बनेगा। पाठक विचार करें और सोचें कि यह अवस्था आशाजनक है वा निराशा बढ़ाने वाली है।

यूरोप अमेरिकाके लोग शांतिसे सभामें बैठना जानते हैं इस लिये वे सभासे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करते हैं। परंतु हमारे देशभाई शोर मचाना ही अपना कर्तव्य समझते हैं, इस लिये ज्ञानसागर में डुबकी लगानेपर भी कोरे के कोरे ही रह जाते हैं !!! इसी कारण सेकड़ों सभाएं होनेपर भी जनता जहां की वहां ही है। शोरके संबंध में तो हम कह सकते हैं कि हमारी जनता पचास वर्षके पूर्व जहां थी वहीं आज है। नेताओं को भी इसका विचार करना चाहिये।

वेदीपर बैठे प्रतिष्ठित पुरुष वक्ता के भाषण पर भाष्य वहां के वहां ही करना अपना अधिकार सम-



ज्ञते हैं, स्त्रियां आपसमें बातें करना परम आवश्यक समझती हैं, अन्य जनता भी अपने घरकी बातें करनेका यह अवसर है ऐसा मानती है। इस लिये वक्ता भी समझता है कि सुनना तो किसीने नहीं है, इस लिये सोच विचार करके अपना मजमून तैयार करने की आवश्यकता क्या है? चलो अपना समय किसी न किसी प्रकार काटेंगे ही! वक्ता और श्रोता इस ढंगसे जहां मिलते हैं वहां क्या हो सकता है? सोचिये तो सही।

इस लिये हर एक वैदिक धर्मी सज्जनसे हमारी हार्दिक प्रार्थना है कि वह सभाके योग्य बनकर सभामें जाय, और अपने कारण कोई आवाज या शोर होने न दें। सभामें शांति रखना उन्नतिके लिये अत्यावश्यक है अन्यथा सभा करनेके परिश्रम वैसेही व्यर्थ जायंगे जैसे इस समय तक व्यर्थ हुए हैं।

वक्ता का व्याख्यान चलता है, स्त्रियां अपनेसे हो सकता है उतना अधिकसे अधिक शोर मचाती हैं, छोटे बालक चिल्लाने में अपनी माताओंके साथ स्पर्धा करते हैं और सभा में शोर मचाने की शिक्षा अपनी माताओंसे ठीक प्रकार पाते हैं, अन्य श्रोता गण "चुप रहो" की आवाजसे अथवा "जय" को आवाजसे शोर को बढ़ाते हैं, वेदीके प्रतिष्ठित पुरुष वक्तृत्वपर भाष्य करते हैं, और साथ ही साथ कोई भद्र पुरुष आगया तो उसके स्वागत के लिये अभ्युत्थान देने, कुशल प्रश्न पूछने आदि से शोर बढ़ाते हैं, सभाके प्रबंध कर्ता उसको प्रमुख स्थान में बिठलाना चाहते हैं और वह विनयसे प्राप्त स्थानमें बैठना ही पर्याप्त समझता है, इस प्रकार विनय भी शोर का कारण बनता है!! इतने में प्रबंध कार्य में दक्ष स्वयं सेवक आते जाते रहते हैं, घोषणाएं दी जाती हैं, गुम हुए बालकोंकी रोती हुई शकलों का प्रदर्शन किया जाता है, और भी ऐसे कई प्रकार हैं कि जो सिद्ध करते हैं कि हम न तो सभा के योग्य बने हैं, न सभा चलाना जानते हैं और न सभा से अधिक से अधिक लाभ उठानेकी अकल रखते हैं। परंतु बड़ी बड़ी सभा करनेका केवल शौक हुआ है। यदि शिक्षित और सभ्य जगत् के साथ अपना संबंध

जोड़ना अभीष्ट है तो आर्य जनताको उचित है कि वे सभामें शांतिसे बैठना सबसे पहिले सीखें और सभा करने के कष्टों से पूरा लाभ उठानेका यत्न करें।

## बोलनेका शौक ।

जनताके अनेक दोषोंमें से शोर मचानेका एक दोष हमने ऊपर बताया है, यदि इसमें कुछ सुधार हुआ तो आगे इसी प्रकार के अन्यान्य दोष भी बताये जायंगे। अब यहां वक्ताओं का एक दोष बतानेकी इच्छा है। बहुतसे वक्ता अपना व्याख्यान तैयार करने के विना ही वेदीपर खड़े होते हैं। इसलिये विना सोचे विचारे जितना बोल सकते हैं उतना बोलते हैं। हमारा यह विचार है कि वक्ता केवल बोलने की ओर अपना विशेष ध्यान देने की अपेक्षा, यदि अपना विषय सोच विचार करके पहिले से तैयार करके आजाय और थोड़े शब्दोंमें अपना संदेश सुनावे तो जनता का लाभ अधिक होगा। वक्तृत्व केवल समय बितानेके लिये नहीं होना चाहिये, परंतु कुछ विशेष संदेश सुनाने के लिये ही होना चाहिये। यदि कोई सुनाने योग्य संदेश न हो तो न बोला जाय। विना अंतःस्फूर्तिके बोलना व्यर्थ होता है।

समय काटने वाले वक्ता जनताके सुधार करने में हमेशा ही असमर्थ होते हैं। स्फूर्तिके दस वाक्य जो कार्य कर सकते हैं वह कार्य दो घंटे के वक्तृत्व से भी नहीं हो सकते। परंतु शोक की बात यह है कि इस प्रकार का समय काटनेका वक्तृत्व घण्टा डेढ़ घंटा करने के पश्चात्, वारंवार घड़ी दिखाई जानेके नंतर, लोग सुननेको तैयार नहीं है यह स्पष्ट जाहिर होने के बाद भी जब ये वक्ता कहते रहते हैं कि "यदि मुझे और समय मिलता तो मैं यह बात आपको सिद्ध करके बता सकता" इ० तब बड़ा आश्चर्य प्रतीत होता है। वास्तवमें उत्तम वक्ताके लिये आध घंटे का समय अपना तात्पर्य श्रोताओंको समझाने के लिये पर्याप्त है। जो वक्ता अधिक समय लेनेपर भी अपना विषय अधूरा छोड़ते हैं, तथा "मेरा



विषय कभी पूर्ण नहीं होता " ऐसा कहने के शौकी हैं वे इस समय के लिये योग्य नहीं हैं ।

इसलिये वक्ताओंको अपना विषय पहिले से तैयार करके वेदीपर आना चाहिये और अपने समय के पूर्व पांच मिनिट समाप्त करना चाहिये । इससे श्रोताओंका असमाधान कम होगा और उपदेशका कुछ असर होगा ।

समय काटनेका वक्तृत्व करते रहनेकी अपेक्षा सभा बंद रखना लाभदायक है । पाठक देख सकते हैं कि महात्मा गांधीजी पंद्रह मिनिटोंमें या आध घंटेमें ही अपना महत्वपूर्ण वक्तृत्व समाप्त करते हैं । उनका हरएक वाक्य पूर्ण मननीय विचार से भरा हुआ रहता है, कभी कोई शब्द व्यर्थ प्रयुक्त नहीं होता । इस भावपूर्ण वक्तृत्वके साथ खोकले वक्तृत्वकी यदि तुलना की जाय तो पता लग सकता है कि समय काटनेवाले खोकले वक्तृत्व कितनी हानि करते हैं ।

हृदयमें संदेश न होते हुए ही कईयोंको सभाके सम्मुख खड़ा होकर बोलनेका शौक होता है । सभापतिने पांच मिनिट समय देनेपर आधा घंटा बोलने की महत्वाकांक्षा जो वक्ता रखते हैं वे सबसे पहिले सभापतिका अपमान करके जनताको नियम तोड़ने की शिक्षा अपने आचरणसे देते हैं । इसलिये ऐसे वक्तृत्वसे लाभकी अपेक्षा हानि बहुत होती है ।

वक्तृत्व की परीक्षा जनता करती है और सुनने योग्य वक्ता का वक्तृत्व सुनती है । खोकला वक्तृत्व शुरू होनेपर अपनी नापसंती दर्शाती है । इसलिये वक्ताको उचित है कि अपना वक्तृत्व सभाको पसंद न होनेपर वह शांतिसे बैठ जाय और अपना उपदेश श्रोताओंके कानोंमें जबरदस्तीसे ठोसनेका यत्न न करे ।

## कार्यवाही की लंबाई ।

संपूर्ण जगत् में उत्तर भारत के लोग ही कार्यवाही की इतनी लंबाई सह सकते हैं । चीन में भी लंबी कार्यवाही इसी प्रकार होती है अथवा इससे भी लंबी होती है, परंतु उसमें आनेजानेकी सुविधाका ख्याल और शांतिका ख्याल रखते हैं इस लिये चार दिनों-

की निरंतर कार्यवाही होनेपर भी हरएक मनुष्य दोचार घंटे ही आरामसे और शांतिसे बैठता है और जानेवाला गडबड न करते हुए शांतिसे चले जाता है । वह बात भी भारत में नहीं है । यहां हरएक मनुष्य सब कार्यवाही में बैठना चाहता है । परंतु शांतिसे बैठना जानता ही नहीं अतः अतिदीर्घ कार्यवाही होनेके कारण बैठे बैठे थक जाता है; तथापि उठ कर चुपचाप बाहर जाना पसंद नहीं करता । वहां ही बैठा रहता है, थक जानेके कारण उसका ध्यान सुनने में तो होता ही नहीं, परंतु बैठना तो है, इस लिये अपने साथियोंके साथ घरके व्यवहारकी बातें करता रहता है । उनको इस बात का पता तक नहीं रहता कि मेरे इस अनुचित व्यवहारसे अन्य श्रोताओंको कष्ट होंगे ।

लंबी कार्यवाहीसे यह होना अत्यंत स्वाभाविक है । सबेरे चार घंटे, दोपहरको चार घंटे और रात्रीके समय तीन घंटे, इस प्रकार दस ग्यारह घंटे उपदेशश्रवण करना बड़ी थकावट का कार्य है । बड़ा ध्याननिष्ठ योगी भी दस घंटे चित्तकी एकाग्रता कर नहीं सकता । फिर साधारण मनुष्य क्या कर सकते हैं ? विचारे श्रोतागण थक जाते हैं और अंतमें गडबड मचाते हैं और बताते हैं कि जिस प्रकार अतिभोजन बदनहमी करता है उसी प्रकार अतिउपदेशभी मानसिक अपचन का रोग पैदा करता है । इसीलिये उपदेशका परिणाम किसीकेभी आचरणमें दिखाई नहीं देता ।

वास्तविक देखा जाय तो सबेरे डेढ़ घंटा, दोपहरको दो घंटा और रात्रीके समय डेढ़ घंटे की कार्यवाही पर्याप्त है । यदि कार्यवाही थोड़ी छोटी की जाय तो श्रोता त्रस्त नहीं होंगे और संभवतः शांतिसे सुननेकी ओर झुक सकेंगे ।

अधिक लंबी कार्यवाही रखना भी सभाके उद्देश्य को घटानेवाला हो रहा है । किसी भी अन्य देशमें ऐसी बड़ी कार्यवाहियां नहीं होतीं, इसलिये जो होती है वह परिणामकारक होती है, क्योंकि श्रोताओं में ऐसी थकावट नहीं आती और वे दिल-चस्वीके साथ वक्तृत्व सुनकर लाभ उठा सकते हैं ।



## विदेशियोंकी साक्षियाँ ॥

चार पांच वर्षोंके पूर्व एक जापानी सज्जन गुरुकुल कांगड़ी में संस्कृत पढ़नेके लिये आये थे। जलसेके समय वे उपस्थित थे। हमारे पूछनेपर उन्होंने यही कहा था कि जो ऊपर के लेखमें वर्णन किया है। उन का कहना था कि जापानमें सभाओंमें अत्यधिक शांति होती है और ऐसी अशांति और शोर कभी नहीं होता।

एक युरोपीयन तत्त्ववेत्ता जो कि इस समय हिमालयमें ध्यानका अभ्यास कर रहे हैं एक समय गुरुकुल जलसेमें आयेथे, उनसे भी हमने यह बात पूछी तो उन्होंने इस अशांतिको बुरीतरहसे अनुभव किया, यह बात उनके कहनेसे विदित हुई।

इस समय भी एक डच देशके चित्रकार गुरुकुल में संस्कृत पढ़नेके लिये रहे हैं वे भी यही बात कहते हैं।

तात्पर्य कोई भी विदेशी सभ्य मनुष्य इस शार का गौरव नहीं करता है और सभी एक मतसे इस का तिरस्कार ही करते हैं। इसलिये पाठकोंसे सानु-रोध प्रार्थना है कि वे इन घुटियोंका विचार करें और उनको अतिशीघ्र दूर करनेका पुरुषार्थ करें।

## प्रशंसनीय सद्गुण।

आर्य समाजके जलसोंमें आयोंके कई प्रशंसनीय सद्गुणभी दिखाई देते हैं। स्वावलंबन यह मुख्य गुण इनमें बढ रहा है। जहां लाख पचास हजार यात्रा जमा होती है वहांका सब इंतजाम स्वयंसेवकों-द्वारा अति उत्तम रीतिसे किया जाता है। यह एक बात ही आयोंका स्वावलंबन सिद्ध करनेके लिये पर्याप्त है। यही स्वावलंबन आगे जाकर स्वराज्य के अनमोलगुणमें परिणत होगा, इसलिये हम इसकी प्रशंसा खुले दिलसे करते हैं।

जलसे में स्त्री पुरुष बालबच्चे प्रायः खुले स्थान में रहते हैं, परंतु कुदृष्टिसे देखादेखी नहीं होती और प्रायः परस्पर का व्यवहार अति धर्म-भावसे होता है। इसके अतिरिक्त जेवर, रुपये,

नोटें, सोनेकी घड़ियां आदि पदार्थ उत्सव स्थानमें कहीं भी गिर जाय तो उनकी कभी चोरी नहीं होती। जिसको मिलते हैं वह सीधा प्रबंध कर्ताके दफ्तर में उन चीजोंको पहुंचा देता है। यह अस्तेय वृत्ति बड़ी उच्च है और वह आयों में गत पचास वर्षोंमें स्थिर रही है यह निःसंदेह प्रशंसा की बात है।

दानभाव भी आयों में बढ रहा है और आयोंके दानसे जितनी संस्थाएं चल रहीं हैं उतनी किसी अन्य जातीने नहीं चलाई। यह गुण भी प्रशंसनीय है।

इसके अतिरिक्त कई अन्य गुण हैं जो वर्णन करने योग्य हैं। उन सबका वर्णन यहां करने की आवश्यकता नहीं है। यहां इतनाही बताना है कि वे सद्गुण उस समय अधिक प्रकाशित होंगे और अधिक लाभ दायक सिद्ध होंगे, जब हम अपनी सब कार्यवाहियां अधिक शांतिके साथ निभा सकेंगे।

यदि पाठक इन बातोंका योग्य विचार करेंगे, तो उनको अपना मार्ग निःसंदेह दिखाई देगा। भारत वर्षमें इस समयमें भी महा पुरुष बहुत हैं, परंतु भारतीय जनता उनसे लाभ उठाना जानती ही नहीं। महात्मा गांधी जैसे जगत् के मार्गदर्शक भारत में अवतीर्ण हुए हैं। भारतीय जनता उनकी " जय " करना जानती है, उनका दर्शन करना चाहती है, परंतु उनके उपदेशके अनुकूल आचरण करना नहीं चाहती। यही हमारी दशा रहेगी तो क्या होगा? हमें एक प्रसंगका स्मरण है कि दर्शन के लिये उत्सुक जनताकी भीड़ में महात्मा गांधीजी एक समय दब गये थे और बड़ी मुष्कीलसे उनके अनुयायियोंने उनकी रक्षा की!! क्या यह हमारा प्रेम है? या इसको भक्ति कहें या मूर्खता कहें? गत उत्सव में भी दर्शकोंने महात्माजीके दर्शन करनेके लिये गुरुकुल बागकी बाड़ तोड़कर बड़ा नुकसान किया था। " दर्शन " के सामने नुकसान की पर्वाह जनताको नहीं है! यह मूढ़ भक्ति है, यह तमो गुण है, यह घातक फूर्ति है। इस लिये स्पष्ट शब्दों में सच्ची बात पाठकोंके सन्मुख रखी है, जो योग्य विचार करेंगे और अपने दोषोंको दूर करेंगे वे लाभ के भागी होंगे। अन्यो के लिये यह लेख नहीं है।



अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

## असत्यभाषणादि पापोंसे छुटकारा ।

( १० )

( ऋषिः—अथर्वा । देवता—असुरो वरुणः । )

अयं देवानामसुरो विराजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः ।

ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि ॥ १ ॥

नमस्ते राजन्वरुणास्तु मन्यवे विश्वं ह्युग्र निचिकेषि द्रुग्धम् ।

सहस्रमन्यान्प्रसुवामि साकं शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥ २ ॥

यदुवक्थानृतं जिह्या वृजिनं बहु ।

राज्ञस्त्वा सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम् ॥ ३ ॥

मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादर्णवान्महतस्परि ।

सजातानुग्रहा वद ब्रह्म चापचिकीहि नः ॥ ४ ॥

अर्थ— ( अयं ) यह ( देवानां असु-रः ) देवोंकोभी जीवन देनेवाला ईश्वर ( विरा-जति ) प्रकाशता है । ( हि ) क्यों कि ( राज्ञः वरुणस्य ) राजा वरुण देव अर्थात् ईश्वर की ( वशा ) इच्छा ( सत्या ) सत्य है । ( ततः परि ) इतना होनेपर भी ( ब्रह्मणा ) ज्ञानसे ( शाशदानः ) तक्षिण बना हुआ मैं ( उग्रस्य मन्योः ) प्रचंड ईश्वरके क्रोधसे ( इमं ) इस मनुष्यको ( उत्-नयामि ) ऊपर उठाता हूं ॥ १ ॥ हे ( वरुण राजन् ) ईश्वर ! ( ते मन्यवे ) तेरे क्रोधको ( नमः अस्तु ) नमस्कार होवे । हे ( उग्र ) प्रचंड ईश्वर ! तू ( विश्वं द्रुग्धं ) सब द्रोहादि पापोंको ( निचिकेषि ) ठीक प्रकार जानता है । ( सहस्रं अन्यान् ) हजारों अन्योको ( साकं ) साथ साथ मैं ( प्रसुवामि ) प्रेरणा करता हूं । ( अयं ) यह मनुष्य ( तव ) तेरा बन कर ही ( शतं शरदः ) सौ वर्ष ( जीवाति ) जीता रह सकता है ॥ २ ॥ हे मनुष्य ! ( यत् ) जो ( अनृतं वृजिनं ) असत्य और पाप वचन



( जिह्वया ) जिह्वासे ( बहु उवक्थ ) बहुतसा तू बोला है, उससे तथा ( सत्यधर्मा ) सच्चे न्यायी ( राज्ञः वरुणात् ) राजा वरुण देव ईश्वर से ( अहं ) मैं ( त्वा ) तुझको ( मुंचामि ) छुड़ाता हूं ॥ ३ ॥ हे मनुष्य ! त्वा तुझको ( महतः वैश्वानरात् अर्णवात् ) बड़े समुद्रके समान गंभीर विश्वनायक देवसे—( परि मुंचामि ) छुड़ाता हूं । हे ( उग्र ) वीर ! ( इह ) यहां ( सजातान् ) अपनी जातिवालोंको ( आ वद ) सब कह दे और ( नः ) हमारा ( ब्रह्म ) ज्ञान ( अप चिकीहि ) तू जान ॥ ४ ॥

### सूक्तका संबंध ।

पूर्व नवम सूक्तमें “ शुद्ध हुए नवप्रविष्ट ” मनुष्यकी उन्नतिकी उपाय योजना बतायी है, इस दशम सूक्तमें उसी नव प्रविष्ट मनुष्यको असत्यादि पापोंसे छुड़ानेकी विधिका उपदेश है । यद्यपि पूर्वापर संबंधसे यह सूक्त नवप्रविष्टकी पापसे मुक्तता करने के विषयका प्रदिपादन करता है तथापि मनुष्य मात्र को पाप मोचन के विषयमें उपदेश देनेका कार्य भी यही सूक्त साथ साथ कर रहा है यह बात भी इस सूक्तमें पाठक देख सकते हैं । यह सूक्त अति सरल है इस लिये इसके समझनेके लिये विशेष स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है, इसका सरल भावार्थ ही सब बातोंको स्पष्ट कर देगा, देखिये इसका आशय—

भावार्थ—यह सूर्यादि देवताओंको शक्ति प्रदान करने वाला प्रभु ईश्वर सब जगत्पर विराजता है, सबका सर्वोपरि शासक वही है, इसलिये उसकी इच्छा ही सर्वदा सत्य होती है । अर्थात् उसकी इच्छाके प्रतिकूल कोई भी जा नहीं सकता । तथापि ज्ञानसे सत्यमार्गोंको जानने वाला मैं इस पापी मनुष्यको निम्नलिखित मार्गसे उस ईश्वरके क्रोधसे छुड़ाता हूं ॥ १ ॥ हे ईश्वर ! तेरे क्रोधके सामने हम नम्र होते हैं, तेरे सामने सिर झुकाते हैं । क्योंकि तू हम सबोंके पापोंको यथावत् जानता है । इसलिये हम अपने पापोंको तेरे सामने छिपा नहीं सकते । हे प्रभो ! यह बात मैंने हजारों मनुष्यों की सभाओंमें घोषित की है । यह संदेह रहित बात है कि यदि यह मनुष्य तेरा भक्त बनेगा तो ही सौ वर्ष जीवित रह सकेगा, अन्यथा इसको कौन बचा सकता है ? ॥ २ ॥ हे पापी मनुष्य ! तू अपनी जवानसे बहुत असत्य और बहुत पाप वचन बोलता



है । इस पापसे दूसरा कोई तुझे बचा नहीं सकता । मैं तुम्हें उसकी शरण में ले जाता हूँ और उसकी कृपासे तेरा बचाव कर सकता हूँ ॥ ३ ॥ हे पापी मनुष्य ! तुझको विश्वेश्वर के क्रोधसे इसप्रकार छुड़ाता हूँ । हे वीर ! तू अपनी जातिमें सब बातें कह और हमारे ज्ञानको जान कर अपना-ओ ॥ ४ ॥

### पापसे छुटकारा पानेका मार्ग ।

यद्यपि यह सूक्त अति सरल है तथापि पाठकोंके विशेष सरल बोधके लिये यहां थोड़ासा स्पष्टीकरण किया जाता है ।

इस सूक्तमें पापसे छुटकारा पानेका जो मार्ग बताया है वह निम्न लिखित है—

### एक शासक ईश्वर ।

( १ ) “ देवानां असुरो विराजति ” — सूर्यचंद्रादि देवोंको विविध शक्ति देनेवाला एक प्रभु ईश्वरही सब जगत् का परम शासक है । इससे अधिक शक्ति शाली दूसरा कोई नहीं है । ( मंत्र १ )

( २ ) “ राज्ञो वरुणस्य वशा हि सत्या ” — उस प्रभु ईश्वरका सत्य शासन है । उसी की इच्छा सर्वोपरि है । उसके अपूर्व शासन का कोई उल्लंघन कर नहीं सकता । ( मंत्र १ )

( ३ ) “ विश्वं ह्युग्र निचिकेषि दुग्धम् ” — हे प्रभु ईश्वर ! तू हम सबके पापोंको यथावत् जानता है । अर्थात् कोई मनुष्य अपने पाप उससे छिपा नहीं सकता । क्यों कि वह सर्वज्ञ है इसलिये हम सबके बुरे भले कर्म वह यथावत् उसी समय जानता है । ( मंत्र २ )

ईश्वर को सर्वोपरि मानना, सबसे सामर्थ्य शाली वह है यह स्मरण रखना और उससे छिपाकर कोई मनुष्य कुछ कर नहीं सकता, यह निश्चित रीतिसे समझना, पापसे बचनेके लिये आवश्यक है । पापसे बचाने वाले ये तीन महत्त्व पूर्ण विश्वास इस सूक्तमें कहे हैं, पाठक इनका मनन करें और इनको अपने अंदर स्थिर करें । येही तीन भाव मनुष्यका पापसे बचाव कर सकते हैं ।



## ज्ञान और भक्ति ।

मनुष्यको पापसे बचानेवाले ज्ञान और भक्ति ये दो ही हैं। इनका वर्णन इस सूक्तमें निम्न लिखित रीतिसे किया है—

( १ ) “ ब्रह्मणा शाशदानः । ” ज्ञानसे तीक्ष्ण बना हुआ मनुष्य पापसे बच जाता है और दूसरोंको भी बचाता है। सृष्टिके तथा आत्माके यथार्थ विज्ञान को “ ब्रह्म ” कहते हैं। यह ब्रह्म अर्थात् सृष्टिविद्या और आत्मविद्या का उत्तम ज्ञान मनुष्यको तीक्ष्ण बनाता है। अर्थात् तेज बनाता है। जिस प्रकार तेज शस्त्र शत्रु का नाश करता है उसी प्रकार ज्ञानका तेज शस्त्रभी अज्ञान पाप आदि शत्रुओंका नाश करता है। मनुष्यकी सच्ची उन्नति का यही साधन है। ( मंत्र १ )

( २ ) “ नमस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे । ” — हे ईश्वर ! तेरे क्रोध के सामने हम नमन करते हैं, तेरे शासन के सामने हम अपना सिर झुकाते हैं। अर्थात् हम तेरी शरणमें आकर रहते हैं, हम अपने आपको तेरी इच्छामें समर्पित करते हैं। तू ही हमारा तारने वाला है। तेरे बिना हम किसी अन्यको शरण जाने योग्य समझते नहीं। ( मंत्र २ )

( ३ ) “ शतं जीवाति शरदस्तवाऽयम् । ” — सौ वर्ष जीवित रहेगा जो तेरा बनेगा। जो परमेश्वर का भक्त बन कर रहेगा उसका नाश कौन कर सकता है ? ( मंत्र २ )

पाठक इन तीन मंत्र भागोंमें ज्ञान और ईश भक्तिसे पापमोचन की संभावना देख सकते हैं। सृष्टिविद्याके नियमोंको जानकर तदनुकूल आचरण करना, आत्मविद्याको जानकर परमात्माको सार्वभौम सत्ताधारी मानना, भक्तिसे ईश्वरके सन्मुख नम्र बनना और ईश्वरका भक्त बनकर आनन्दसे उसका होकर रहना यही पापमोचनका सीधा और निश्चित मार्ग है। पाठक इस सूक्तमें यह मार्ग देखें। इस सूक्तमें जिस मार्गसे पापमोचन की संभावना कही है वह यही मार्ग है और यही निश्चित और सीधा मार्ग है।

## प्रायश्चित्त ।

पापसे बचनेके लिये प्रायश्चित्त भी यहां कहा है और वह यहां देखने योग्य है —

( १ ) “ ब्रह्म अपचिकीहि । ” = पूर्वोक्त ज्ञान जानकर अपनाओ। उत्तम ज्ञान प्राप्त करना, तथा संक्षेपसे जो नियम ऊपर बताये हैं उनको जानना यह उन्नतिका निश्चित साधन है। जब इस ज्ञानसे अपने अवगुणोंका पता लगेगा, अपने दुराचारका ज्ञान होगा तब पश्चात्तापसे शुद्धि करनेका मार्ग है, वह इसप्रकार है — ( मंत्र. ४ )



( २ ) “ सजातानुग्रेहा वद । ” = हे वीर! तू अपनी जातीके पुरुषोंके सामने अपने सब अपराध कह दे । यही प्रायश्चित्त है । अपनी जातीके स्त्री पुरुषोंके सम्मुख अपने अपराधोंको न छिपाते हुए कहना, यह बड़ा भारी प्रायश्चित्त है और इससे मनुष्य के मनकी शुद्धि होती है । ( मंत्र ४ )

ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् या जिस समय पश्चात्ताप हो उस समय अपने सब अपराध अपनी जातीके सम्मुख कहना बड़ा धैर्यका तथा मनकी पवित्रताका ही कार्य है । हर एक मनुष्य इसप्रकार प्रायश्चित्त नहीं कर सकता । प्रायः मनुष्य अपने अपराधोंको छिपानेका ही यत्न करते हैं । परंतु जो लोग अपने दोषोंको जनताके सम्मुख कह देते हैं वे शुद्ध बन कर शीघ्रही बड़े महात्मा बन जाते हैं ।

इस सूक्तमें “वरुण” आदि शब्दों द्वारा परमात्माका वर्णन हुआ है, “मुंचामि” आदि शब्दोंसे पापियोंको पापसे छुड़ानेवाले महोपदेशक का वर्णन है और “इमं” आदि शब्दोंसे पापी मनुष्योंका भी वर्णन हुआ है । धर्मोपदेशक पापियोंको पापसे बचानेका उपदेश परमेश्वर भक्ति का मार्ग बता कर कर रहा है, यह बात इस सूक्तके शब्दोंसे स्पष्ट होती है । अर्थात् धर्मोपदेशक इसी मार्गसे स्वयं पापसे बचे और दूसरोंको पापसे बचावे ।

## पापी मनुष्य ।

पापी मनुष्य सहस्रों प्रकारके पाप करता है, परंतु इस सूक्तमें कुछ मुख्य पापोंकाही उल्लेख किया है, वह भी यहां देखने योग्य है --

( १ ) “ विश्वं द्रुग्धं । ” = सब द्रोह अर्थात् सब प्रकारका धोखा । धोखा देना, काया वाचा मनसे विश्वासघात करना, बड़ा पाप है । इसमें बहुतसे पाप आजाते हैं । ( मं० २ )

( २ ) यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु । “ = जिह्वासे असत्य तथा पाप भावसे युक्त वचन बोलना भी बड़ा पाप का कर्म है । ( मं० ३ )

द्रोह करना और असत्य बोलना, इन दोनोंमें प्रायः सब पाप समाजाते हैं । इन पापी मनुष्योंका सुधार पूर्वोक्त रीतिसे ही होना संभव है । धर्मोपदेशक तथा साधारण जन यदि इस सूक्तका विचार करेंगे तो उनको पापमोचन के विषयमें बहुतही योग्य बोध मिल सकता है ।

यह पापमोचन प्रकरण समाप्त ।



## सुख प्रसूति सूक्त ।

११

( ऋषिः— अथर्वा । देवता — पूषा )

वषट् ते पूषन्नस्मिन्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः ।

सिस्ततां नार्युतप्रजाता वि पर्वणि जिहतां सूतवा उ ॥ १ ॥

चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उत ।

देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णुवन्तु सूतवे ॥ २ ॥

सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि ।

अथया सूषणे त्वमव त्वं बिष्कले सृज ॥ ३ ॥

नेव मांसे न पीवसि नेव मज्जस्वाहतम् ।

अवैतु पृश्नि शेवलं शुने जराय्वत्तवेऽव जरायु पद्यताम् ॥ ४ ॥

वि ते भिनद्धि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके ।

वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम् ॥ ५ ॥

यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः ।

एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पताव जरायु पद्यताम् ॥ ६ ॥

अर्थ— हे ( पूषन् ) पोषक ईश्वर ! ( ते वषट् ) तेरे लिये हम अपना अर्पण करते हैं। ( अस्मिन् सूतौ ) इस प्रसूतिके कार्यमें ( अर्यमा होता वेधाः ) आर्य मन वाला दाता विधाता ईश्वर सहायता ( कृणोतु ) करे। ( ऋत-प्रजाता ) नियम पूर्वक बालकोंको जन्म देनेवाली ( नारी ) स्त्री ( सिस्ततां ) दक्षतासे रहे। तथा अपने ( पर्वणि ) अंगोंको ( सूतवै उ ) सुख प्रसूतिके लिये ( वि जिहतां ) ढील करें ॥ १ ॥ ( दिवः ) आकाशकी ( उत ) तथा ( भूम्याः ) भूमिकी ( चतस्रः प्रदिशः ) चारों दिशाओंमें रहनेवाले ( देवाः ) देवोंने ( गर्भं समैरयन् ) गर्भ को बनाया, इस लिये वेही ( सूतवे ) उसकी सुखप्रसूति के लिये ( तं वि ऊर्णुवन्तु ) उसको प्रकट करें, उसको बाहर खुला करें ॥ २ ॥ ( सूषा ) उत्तम संतान उत्पन्न करनेवाली माता ( व्यूर्णोतु )



अपने अंगोंको खुला करे । हम ( योनिं ) योनिको ( विहापयामसि ) खोलते हैं । हे ( स्रुषणे ) प्रसूत होनेवाली स्त्री ! ( त्वं ) तू भी ( श्रथय ) अंदरसे प्रेरणा कर । और हे ( विष्कले ) वीर स्त्री ! ( त्वं ) तू ( अवसृज ) बालक को उत्पन्न कर ॥ ३ ॥ ( न इव मांसं ) नहीं तो मांसमें, ( न पीवसि ) न चर्बीमें, और ( न इव मज्जसु ) न तो मज्जामें वह ( आहतं ) लिपटा है । ( पृश्नि शेवलं ) नरम सेवार के समान ( जरायु ) जेली ( शुने अत्तवे ) कुत्तेके लिये खानेको ( अवैतु ) नीचे आवे, ( जरायु ) जेली ( अवपद्यताम् ) नीचे गिरजावे ॥ ४ ॥ ( ते मेहनं ) तेरे गर्भके मार्गको, ( योनिं ) योनिको तथा ( गवीनिके ) दोनों नाडियोंको ( वि वि वि भिनन्नि ) विशेष रीतिसे खुला करता हूं । ( मातरं पुत्रं च ) माता और पुत्रको ( वि ) अलग करता हूं तथा ( कुमारं जरायुणा वि ) बच्चे को जेरीसे अलग करता हूं । ( जरायु ) जेरी ( अव पद्यताम् ) नीचे गिर जावे ॥ ५ ॥ जैसे वायु, जैसे मन, और जैसे पक्षी ( पतन्ति ) चलते हैं ( एव ) इसी प्रकार हे ( दशमास्य ) दश महिनेवाले गर्भ ! तू ( जरायुणा साकं ) जेरीके साथ ( पत ) नीचे आ तथा ( जरायु अव पद्यताम् ) जेरी नीचे गिरजावे ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे सबके पोषण करनेवाले जगदीश ! तेरे लिये हम अपना अर्पण करते हैं । इस प्रसूति के समय सब जगत्का निर्माता तूही हमारा सहायक बन । यह स्त्री भी दक्षतासे रहे । और इस समय अपने अंगोंको ढीला करें ॥ १ ॥ आकाश और भूमिकी चारों दिशाओंमें रहनेवाले सूर्यादि सम्पूर्ण देवोंने इस गर्भको बनाया है और वेही इस समय अपनी सहायतासे इसको सुख पूर्वक गर्भस्थानसे बाहर लावें ॥ २ ॥ स्त्री अब अपने अंग खुले करें, सहाय करने वाली धाई योनिको खोलें । हे स्त्री ! तूही मनसे अंदरसे प्रेरणा कर और सुखसे बालक को उत्पन्न कर ॥ ३ ॥ यह गर्भ मांस, चर्बी या मज्जामें चिपका नहीं होता है । वह पानीमें पत्थरोंपर बनने वाले नरम सेवार के समान अति कोमल थैलीमें लिपटा हुआ होता है, वह सब थैलीकी थैली एक दम बाहर आवे और वह नालके साथ जेली कुत्तोंको खानेके लिये दी जावे ॥ ४ ॥ योनि, गर्भस्थान और पिछली नाडियोंको ढीला किया जावे, प्रसूती होते ही मातासे बच्चा अलग किया जावे और बच्चेसे जेली नाल समेत अलग की जावे । नाल समेत सब जेली पूर्णतासे बाहर निकल आवे ॥ ५ ॥ जिस प्रकार मन वेगसे विषयोंमें गिरता है,



जैसे वायु और पक्षी वेगसे आकाशमें चलते हैं उसी प्रकार दसवें महिने में गर्भ जेरीके साथ गर्भ स्थानसे बाहर आवे और जेरी आदि सब नीचे गिरजावे अर्थात् माताके गर्भस्थानमें उसका कुछ भाग अवशिष्ट न रहे ॥ ६ ॥

## प्रसूति प्रकरण ।

इस सूक्तसे नया प्रकरण प्रारंभ हुआ है । यह प्रकरण विशेषतः स्त्रियोंके लिये और सामान्यतः सबके लिये विशेष लाभकारी है । स्त्रियोंको प्रसूतिके जितने कष्ट सहने पड़ते हैं उनका दुःख स्त्रियां ही जानती हैं । प्रसूतिके समय न्यून कष्ट होना प्रयत्नसे साध्य है । गर्भ धारणासे लेकर प्रसूतिके समयतक अथवा गर्भ धारणासे भी पूर्व समयमें भी जो नियम पालन करने योग्य होते हैं, उनका योग्य रीतिसे पालन करनेसे प्रसूतिके कष्ट बहुतसे दूर होना संभव है । इस विषयमें आगे बहुत उपदेश आनेवाला है । यहाँ इस सूक्तमें जितना विषय आया है, उसको अब यहाँ देखिये —

## ईशभक्ति ।

परमेश्वरकी भक्ति ही मनुष्यको दुःखोंसे पार कर सकती है । गृहस्थी स्त्रीपुरुष यदि परमेश्वरके उत्तम भक्त होंगे, तो उस परिवार के स्त्रियोंको प्रसूतिके कष्ट न होंगे; यह बतानेके लिये इस सूक्तके प्रथम मंत्रके पूर्वार्ध में ही सबसे पहिले ईश्वरकी मानस पूजाका वर्णन किया है ।

“ वषट् ” शब्द “ स्वाहा ” के अर्थमें अर्थात् “ आत्मसमर्पण ” के अर्थमें प्रयुक्त होता है । ( हे पूषन् ! ते वषट् ) हे ईश्वर ! तेरे लिये हम अपने आपको समर्पण कर रहे हैं । तू ही ( अर्य-मा ) श्रेष्ठ सज्जनोंका मान्य करनेवाला अर्थात् हितकर्ता है, तू ही ( वेधाः ) सब जगत् का रचयिता और निर्माता है और तू ही ( होता ) सब सुखोंका दाता है । इसलिये हम तेरे आश्रयसे रहते हैं और तेरे लिये ही पूर्णतया समर्पित होते हैं ।

यहाँ पूर्व सूक्तमें वर्णन किये ईश्वरके गुण अनुसंधानसे देखने योग्य हैं । “ सब सूर्यादि देवताओंको शक्ति देनेवाला एक ईश्वर है और उसका शासनही सर्वोपरि है । ” इत्यादि भाव जो पूर्व सूक्तमें कहे हैं, यहाँ देखिये । “ सबसे समर्थ प्रभु ईश्वर मेरा सहायकारी है, और मैं उसकी गोदमें हूँ ” इत्यादि भक्तिके भाव जिसके हृदयमें अकृत्रिम प्रेमके साथ रहते हैं, वह मनुष्य विशेष शक्तिसे और आरोग्यसे युक्त होता है और प्रायः ऐसा मनुष्य सदा आनन्दमें रहता है ।



काम विकारका संयम करनेके लिये परमेश्वर भक्तिही एक दिव्य औषधि है । काम-विकारका नियमन हुआ तो स्त्रियोंके प्रसूतिके दुःख सौमें नौवे कम होंगे, क्योंकि कामकी अति होनेसे ही स्त्रियां अशक्त बनती हैं और अशक्तताके कारण प्रसूतिके कष्ट अधिक होते हैं तथा प्रसूतिके पश्चात् के क्षयादि रोग भी कष्ट देते हैं । इस लिये कामभोगका नियमन परमेश्वर भक्तिसे करनेका उपदेश हरएक स्त्रीपुरुषको यहां अवश्य ध्यानमें धरना चाहिये ।

### देवोंका गर्भमें निवास ।

सूर्यादि देवताएं अपना अपना अंश गर्भमें रखती हैं, सब देवताओं का अंशावतार गर्भमें होनेके पश्चात् आत्मा उसमें आता है । इत्यादि विषय वेदमें स्थान स्थानपर आया है । [ इस विषयमें स्वाध्यायमंडल द्वारा प्रकाशित " ब्रह्मचर्य " पुस्तक में देवोंका अंशावतार " शीर्षक विस्तृत लेख अवश्य पढ़िये । वहां विविध वेदमंत्रोंद्वारा यह विषय स्पष्ट कर दिया है । ] तात्पर्य गर्भमें अंशरूपसे अनेक देवताएं रहती हैं और उनका संबंध बाह्य देवताओं के साथ है । भूमि और आकाशके चारों दिशाओं में रहनेवाली सब देवताएं अपने गर्भमें अंशरूपसे आ गई हैं, मानो उन का संमेलन ( समैस्यन् ) ही गर्भमें हुआ है और उनका अधिष्ठाता आत्मा भी उसी गर्भमें है । यह दृढविश्वास गर्भ धारण करने वाली माता का होना चाहिये । अर्थात् जो गर्भ अपने अंदर है वह अपने केवल कामोपभोग का ही फल नहीं है, परंतु उसमें और विशेष महत्त्वपूर्ण आत्मशक्तिका और दैवी शक्ति का संबंध है । ऐसा भाव गर्भवती स्त्रीमें स्थिर रहनेसे गर्भवतीका स्वास्थ्य तथा गर्भका पोषण भी उत्तम होता है । गर्भाधान के समय में भी देवताओंका आह्वान किया जाता है । उस समय के मंत्र इस दृष्टिसे पाठक देखेंगे तो उनको पता लगेगा कि गर्भाधान कामविकार के पोषणके लिये नहीं है परंतु उच्च शक्तियोंकी धारणा के लिये ही है । अस्तु । गर्भिणी स्त्री अपने गर्भके विषयमें इतना उच्च भाव मनमें धारण करे और समझे कि जिन देवताओंके अंश गर्भमें इकट्ठे हुए हैं वेही देवताएं गर्भ का पोषण और सुख प्रसूतिमें अवश्य सहायता देंगी । अर्थात् इसप्रकार देवताओंकी सहायता और परमात्मा का आधार मुझे है इसलिये मुझे कोई कष्ट नहीं होंगे । पाठक इस दृष्टिसे इस सूक्तका द्वितीय मंत्र पढ़ें ।

### गर्भवती स्त्री ।

पूर्वोक्त भाव गर्भवती अपने अंदर दृढतासे धारण करें । अब गर्भवती स्त्री अथवा गृहस्थाश्रममें रहने वाली स्त्री निम्न बातोंका विचार करें -



१ नारी— जो धर्मनीतिसे ( नृणाति) चलती है अर्थात् धर्म नियमोंसे अपना आचरण करती है, तथा (नर) पुरुष के साथ रहती है, वह नारी कहलाती है । अर्थात् विशेष गृहस्थधर्मके नियमोंका पालन करनेका भाव इस शब्दसे सूचित होता है । ( मंत्र १ )

२ ऋत+प्रजाता — ( ऋत) सत्यनियमानुकूल ( प्रजाता ) प्रजनन कर्मसे युक्त । अर्थात् गर्भ धारण, गर्भ पोषण और प्रसूति आदि सब कर्म जिसके सत्य धर्म नियमोंके अनुकूल होते हैं । ऋतुगामी होना, गर्भ धारण के पश्चात् तीन वर्ष के उपरान्त अथवा बालक दूधपीना छोड़ दे तत्पश्चात् ऋतुगामी होना, इत्यादि सब नियमोंका पालन करनेवाली स्त्री सुखसे प्रसूत होती है । ( मंत्र १ )

३ सूषा, सूषणा — जिस स्त्रीको प्रसूतिके कष्ट नहीं होते, अर्थात् जो सुखसे प्रसूत होती है । स्त्रियोंको योग्य नियमोंके पालन द्वारा यह गुण अपनेमें लाना चाहिये । ( मंत्र ३ )

४ विष्कला—वीर स्त्री अर्थात् धैर्यवती स्त्री । स्त्रियोंको अपने अंदर धैर्य बढ़ाना आवश्यक है । थोड़ेसे कष्ट होने लगे तो घबराना नहीं चाहिये । धैर्यसे उनको सहना चाहिये । ( मंत्र ३ )

गर्भवती स्त्रियोंको इन शब्दों द्वारा प्राप्त होनेवाला बोध अपने अंदर धारण करना उचित है, क्योंकि सुखप्रसूतिके लिये इन गुणोंकी आवश्यकता है ।

## गर्भ ।

इस सूक्तमें गर्भ का नाम “-दश-मास्य ” आया है । इसका अर्थ “दस मास की आयुवाला ” ऐसा है । यह शब्द परिपूर्ण गर्भ का समय बता रहा है । दसवें महिनेमें प्रसूतिका ठीक समय है । दसवें महिनेसे पूर्व जो प्रसूति होती है, वह गर्भकी अपक्व अवस्थामें होनेके कारण माताके कष्ट बढ़ाती है । योग्य समयके पूर्व होनेवाले गर्भपात और गर्भस्राव ये सब माताके कष्ट बढ़ानेवाले हैं और ये सब दुःख गृहस्थाश्रमी स्त्रीपुरुषोंके नियम रहित वर्तावसे ही होते हैं । जो गृहस्थाश्रमी स्त्रीपुरुष योग्य नियमोंका पालन करते हैं, उनकी स्त्रियोंकी सुखसे प्रसूति होती है ।

## सुख प्रसूतिके लिये आदेश ।

१ स्त्री परमेश्वरकी भक्ति करे । ( मंत्र १ )

२ अपने गर्भमें देवता ओंका अंशावतार हुआ है ऐसा भाव मनमें धारण करे । ( मंत्र २ )

३ ( सिस्रतां ) दक्षतासे अपना व्यवहार करे । ( मंत्र १ )

४ प्रसूतिके समय ( पर्वणि विजिहतां ) अपने अंगोंको ढीला करे । ( मंत्र १ )



५ ( सूषा व्यूर्णोतु ) सुख प्रसूति चाहनेवाली स्त्री अपने अंगोंको ढीला अथवा खुला करे अर्थात् सखत न बनावे । ( मंत्र ३ )

६ ( सूषणे ! त्वं श्रथय ) सुख प्रसूति चाहनेवाली स्त्री मन की इच्छा शक्तिसे भी अंदर से प्रेरणा करे, तथा मनसे प्रसूतिके अंगोंको प्रेरित करे । यह प्रेरणा स्वयं उस स्त्री को ही अंदर से करनी चाहिये । ( मंत्र ३ )

### धाईकी सहायता ।

१ प्रसूतिके समय धाई की सहायता आवश्यक होती है । यह धाईभी प्रसूत होने वाली स्त्रीको उक्त सूचनाएं देती रहे और धीरज देती रहे । “ परमेश्वर तेरा सहायक है और सब देव ही तुम्हारे गर्भ में हैं अतः उनकी भी सहायता तुम्हें है ” इत्यादि वाक्योंसे उसका धीरज बढ़ावे ।

२ आवश्यकता होनेपर यांनिस्थान उचित रीतिसे खुला करे । ( मंत्र ३ )

३ जेरी के अंदर गर्भ होता है । गर्भके साथ जेरी नाल आदि सब बाहर आजाय और कोई उसका पदार्थ माता के गर्भाशयमें न रह जाय इस विषयमें धाई दक्षतासे अपना कार्य करे । वह पदार्थ अंदर रहनेसे बहुत ही दुःख होना संभव है । ( मंत्र ४ )

४ प्रसूतिके समय गर्भ मार्ग, योनि और पिछले अवयव खुले करने चाहिये । उनको यथा योग्य रीतिसे खुले करे, ताकि प्रसूति सुखसे होवे । ( मंत्र ५ )

५ प्रसूति होते ही माताके पाससे पुत्रको अलग करके उसपरका जेरी का वेष्टण हटा कर जो आवश्यक कार्य करना हो वह सब योग्य रीतिसे करे । ( मंत्र ५ )

### सूचना ।

यह विषय शारीर शास्त्रका है, केवल पांडित्यका नहीं है । इस सूक्तके शब्दोंका अर्थ भी शारीर शास्त्रके प्रसूति प्रकरण के अनुकूल ही समझना उचित है । इसलिये जो वैद्य या डाक्टर हैं, जिन्होंने सुख प्रसूति शास्त्र का विचार किया है, तथा जिन स्त्रियोंको इस शास्त्र के ज्ञानके साथ साथ अनुभव भी है, उनको इस सूक्तका अधिक विचार करना चाहिये । वेही इस सूक्तके “ सिस्त्रतां, विजिहतां, व्यूर्णोतु ” आदि शब्दोंको ठीक प्रकार समझ सकते हैं और वेही इस सूक्तकी ठीक व्याख्या कर सकते हैं ।

आशा है कि प्रसूति शास्त्र के अभ्यासी इसका अभ्यास करेंगे और अधिक निर्दोष व्याख्या करेंगे ।

[ इति द्वितीय अनुवाक समाप्त । ]



## श्वामादि-रोग-निवारण-सूक्त ।

( १२ )

( ऋषिः—भृग्वंगिराः । देवता—यक्ष्मनाशनम् )

जरायुजः प्रथम उस्त्रियो वृषा वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्ट्या ।

स नो मृडाति तन्व ऋजुगो रुजन् य एकमोजस्त्रेधा त्रिचक्रमे ॥ १ ॥

अङ्गे अङ्गे शोचिषा शिश्रियाणं नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम ।

अङ्कान्तसमङ्कान् हविषा विधेम यो अग्रभीत्पर्वास्या ग्रभीता ॥ २ ॥

मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं परुष्परुराविवेशा यो अस्य ।

यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्तसचतां पर्वतांश्च ॥ ३ ॥

शं मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे ।

शं मे चतुर्भ्यो अङ्गेभ्यः शमस्तु तन्वे ३ मम

॥ ४ ॥

अर्थ—(वात+भ्र+जाः) वायु और मेघसे उत्पन्न होकर (प्रथमः जरायु+जः) पहिला जेरीसे उत्पन्न होनेवाला (उस्त्रियः वृषा) तेजस्वी बलवान् सूर्य (वृष्ट्या स्तनयन्) वृष्टिके साथ गरजता हुआ (एति) चलता है । (स ऋजुगः) वह सीधा चलनेवाला और (रुजन्) दोष दूर करनेवाला (नः तन्वे) हमारे शरीरको (मृडाति) सुख देता है । (यः) जो (एकं ओजः) एक सामर्थ्यको (त्रेधा) तीन प्रकारसे (त्रिचक्रमे) प्रकाशित करता है ॥ १ ॥ (अंगे अंगे) प्रत्येक अवयवमें (शोचिषा शिश्रियाणं) अपने तेजसे आश्रय करनेवाले (त्वा) तुझको (नमस्यन्तः) नमन करते हुए (हविषा विधेम) अर्पण द्वारा पूजा करते हैं । (यः) जो (ग्रभीता) ग्रहण करनेवाला (अस्य पर्व) इसके जोड़ को (अग्रभीत्) ग्रहण करता है उसके (अङ्कान् समङ्कान्) चिन्होंको और मिले हुए चिन्होंको (हविषा विधेम) हवनके अर्पणसे पूजे ॥ २ ॥ (शीर्षक्त्याः) सिरदर्दसे (उत) और (यः कासः) सो खांसी है उससे (एनं मुञ्च) इसको छुड़ा । तथा (अस्य) इसके (परुः परुः) जोड़ जोड़में जो रोग (आविवेश) घुसगया है उससे भी छुड़ा । (यः अभ्रजाः) जो मेघोंकी वृष्टिसे उत्पन्न हुआ है अथवा जो (वात+जाः) वायुसे उत्पन्न हुआ है तथा जो (शुष्मः) उष्णताके कारण



उत्पन्न हुआ है, उसके दूर करनेके लिये (वनस्पतीन् पर्वतान् च) वृक्ष वनस्पति और पर्वतोंके साथ (सचतां) संबंध करें ॥ ३ ॥ (मे परस्मै गात्राय शं) मेरे श्रेष्ठ अवयवोंका कल्याण हो । (मे अवराय शं अस्तु) मेरे साधारण अवयवोंके लिये कल्याण हो । (मे चतुर्भ्यः अंगेभ्यः शं) मेरे चारों अंगोंके लिये आरोग्य प्राप्त हो । (मम तन्वे शं अस्तु) मेरे शरीरके लिये सुख होवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—वायु और मेघसे प्रकट होकर मेघोंके आवरणसे प्रथम बाहर निकला हुआ तेजस्वी सूर्य वृष्टि और मेघगर्जना के साथ आ रहा है । वह अपनी सीधी गतिसे दोषों अथवा रोगोंको दूर करता हुआ हमारे शरीरों की निरोगता बढ़ाता है और हमें सुख देता है । वह सूर्यका एक ही तेज तीन प्रकारसे कार्य करता है ॥ १ ॥ वह शरीरके प्रत्येक अंगमें अपने तेज के अंशसे रहता है, उसका महत्त्व जान कर, हम हवन द्वारा उसका सत्कार करते हैं । जो मनुष्यके हरएक जोड़ में रहता है उसके प्रत्येक चिन्हका भी हवन द्वारा हम सत्कार करते हैं ॥ २ ॥ इसकी सहायतासे सिरदर्द हटाओ, खांसी हटाओ, जोड़के अंदरकी पीड़ा को हटाओ । जो रोग मेघोंकी वृष्टिसे अर्थात् कफसे, वायुके प्रकोपसे अर्थात् वातसे और गर्मीके कारण अर्थात् पित्तसे होते हैं उनको भी हटाओ । इसके लिये वनस्पतियों और पर्वतोंका सेवन करो ॥ ३ ॥ इससे मेरे उत्तम अंग साधारण अंग तथा मेरे चारों अंग अर्थात् मेरा सब शरीर निरोग होवे ॥ ४ ॥

यह भावार्थ मंत्रोंके अर्थोंके अनुसंधानसे पाठक पढ़ेंगे तो उनके ध्यानमें सूक्तका तात्पर्य आजायगा, क्यों कि यह सूक्त सरल और सुगमही है । तथापि पाठकोंके विशेष बोधके लिये यहां विशेष बातोंका स्पष्टीकरण किया जाता है । यह “ तक्मनाशन गण ” का सूक्त है अर्थात् रोगविनाशक भाव इसमें है ।

### महत्त्वपूर्ण रूपक !

सबसे पहले प्रथम मंत्रमें वर्णित महत्त्वपूर्ण रूपक विचार करने योग्य है । पूर्वसूक्तमें “ ( जरायुजः दशमास्यः पुत्रः ) जेरीसे वेष्टित उत्पन्न होने वाले दशमासतक गर्भमें रहनेवाले पुत्र ” का वर्णन है । उस के साथ इस सूक्तका संबंध बतानेके लिये इस सूक्तके प्रारंभमें ही “ जरायुजः प्रथमः ” ये शब्द आगये हैं । यहां सुपुत्रका वर्णन बड़े महत्त्व पूर्ण रूपकसे किया है । इस रूपकमें सूर्यही “ पुत्र ” है । सूर्यके पुत्र होनेका



वर्णन वेदमें अनेक स्थानमें आगया है । यहांका यह वर्णन समझमें आनेके लिये कुछ निसर्गकी ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता है ।

बर्सातके दिनोंमें जब कई दिन आकाश मेघोंसे आच्छादित होता है और सूर्य दर्शन नहीं होता, वृष्टि होती है, वायु चलता है, बिजुली चमकती है तब कभी कभी ऐसा होता है कि थोड़ा वायु चलनेसे बीचका आकाश मेघ रहित हो जाता है और स्वच्छ सूर्यमंडल दिखाई देता है । मानो यही पुत्र दर्शन है । पुत्रजन्मके समय में भी प्रसूति होते ही गर्भ के ऊपर जेरी आदि का वेष्टन होता है, जलादि प्रवाह प्रसूतिके समय होते हैं, यह सब मानो सूर्यपर वेष्टित मेघ और उनकी वृष्टि । इस प्रकार इस उपमामें साम्य देख सकते हैं ।

बहुत दिनोंतक मेघाच्छादित आकाशके पश्चात् जब सूर्य दर्शन होता है, हवा साफ हो जाती है तब मनुष्योंको अत्यंत आनंद होता है, मनुष्य प्रसन्न चित्तसे उत्सव मनाते हैं । इसी प्रकार जब गर्भिणी स्त्रीको पुत्र प्रसव होता है, उस परकी जेली अलग की जाती है, उसको स्वच्छ किया जाता है, तब उसका मुख रूपी सूर्य देखकर जो आनंद माताके हृदय में चमक उठता है उसका वर्णन क्या कभी शब्दोंसे होना संभव है ? माताका आनंद इन्हीं शब्दों से व्यक्त हो सकता है कि “ यह पुत्र घरका सूर्य है, यह माताके हृदय की ज्योती है, यही माताकी आंखोंका प्रकाश है । जिस प्रकार सूर्य अंधेरा हटाता है उसी प्रकार पुत्र घरको, कुलको और जातीको उज्ज्वल बनाता है । ” इस प्रकार बालक के मुखकी रोशनीका वर्णन माता अपने शब्द रहित भावोंसे ही कर सकती है । पाठक अपना काव्यमय आंख खोलकर ही इस को पढ़ कर समझनेका यत्न करें ।

परंतु यहां नूतनोत्पन्न बालकका वर्णनही करना नहीं है, किंतु जीवनदाता सूर्यकाही वर्णन अर्थात् सूर्यके जीवन पोषक रश्मि रसायन का वर्णन करना है । वह करनेका प्रस्ताव इस प्रकार इस सूक्त के प्रारंभमें किया है । और इस प्रस्तावसे पूर्व सूक्त के साथ इस सूक्तका संबंध जोड़ दिया है ।

प्रायः प्रसूतिके समय तथा पश्चात् स्त्रियोंमें अशक्तता आजाती है और नाना रोगोंकी संभावना उत्पन्न होती है । इस लिये इस कष्टको दूर करना सुगमतासे किस रीतिसे साध्य होता है, यही बताना इस सूक्तका मुख्यतया विषय है । मानो इस मिषसे आरोग्यका विषय इस सूक्तमें प्रदर्शित किया है ।

### आरोग्य का दाता ।

सूर्य ही आरोग्य का दाता है यह बात इस सूक्तके प्रथममंत्रके उत्तरार्धमें स्पष्ट कही है—

स नो मृडाति तन्वे ऋजुगो रुजन् । ( मंत्र १ )



“ वह ( सूर्य ) हमारे शरीरोंको आरोग्य देता है, सीधा जाने वाला दोषोंको नाश करके, ” इस मंत्र भागका स्पष्ट आशय यह है कि वह सूर्य दोषोंको दूर करता है और आरोग्य बढ़ाता है । यदि यह सत्य है तो यह भी सत्य है कि सूर्य प्रकाश जहाँ नहीं पहुँचता वहाँ ठीक आरोग्य रहना संभव ही नहीं है । इस आरोग्यके वैदिक नियम को ध्यानमें रख कर आप अपने घरोंका और प्रसूतिके कमरेका विचार कीजिये । आरोग्य दाता सूर्य प्रकाश हमारे कमरों में कितना आता है ? प्रसूतिके स्थानमें भी विपुल प्रकाश आना चाहिये, तभी माता और नूतन उत्पन्न बालक का उत्तम स्वास्थ्य रह सकता है । घरके कमरोंमें विपुल प्रकाश आता रहेगा तो घरवालोंका स्वास्थ्य ठीक रहेगा । इस प्रकार वेद कहता है कि सूर्य प्रकाश सबके स्वास्थ्यके लिये आवश्यक है । पाठक अपने अपने व्यवहारमें इस ज्ञानका उपयोग करें ।

प्रथम मंत्रका अंतिम कथन है कि ( एकमोजस्रेधा विचक्रमे ) अर्थात् एकही शक्ति तीन प्रकारसे प्रकाशित हो रही है । यह बात कई स्थानोंमें सत्य है । सूर्य का ही तेज द्युलोकमें सूर्य प्रकाशसे, अंतरिक्षमें विद्युत् रूपसे और भूलोकमें अग्निके रूपमें प्रकाशित हो रहा है । यही बात शरीरमें देखिये—मस्तिष्कमें मज्जारूपमें, हृदयमें पाचन शक्तिके रूपमें और सब शरीरमें उष्णताके रूपमें सूर्यका तेज प्रकाशता है और विविध कार्य करता है । आरोग्यका विचार करनेके समय इस बातका अवश्य विचार करना चाहिये । सूर्य प्रकाशसे इन तीनों शारीरिक स्थानोंमें योग्य परिणाम होकर शरीरका आरोग्य होता है, बुद्धीका तेज बढ़ता है और सुखकी वृद्धि होती है । यह है संक्षेपसे सूर्यका हमारे आरोग्यसे संबंध । पाठक विचार करें और अधिक ज्ञान प्राप्त करें ।

इस रीतिसे प्रथम मंत्रमें आरोग्यका मूलमंत्र बताया है और उपमासे यह भी कहा है कि जिस प्रकार घरमें बालक रूपी सूर्यका उदय होता है उसी प्रकार विश्वमें दिव-स्पुत्र सूर्यका उदय होता है । घर छोटा विश्व है तथा विश्वही बड़ा घर है । इस लिये इस घरके सूर्यका और विश्वके सूर्यका संबंध देखना चाहिये । आरोग्यके लिये तो इस घरके सूर्यका विश्वके सूर्यके साथ संबंध करना चाहिये अर्थात् जहाँतक हो सके वहाँ तक बालक को घरमें बंद न रखते हुए विश्वसूर्यके खुले प्रकाशमें शनैः शनैः लानेका यत्न करना चाहिये, जिससे घरका सूर्यभी नीरोग और बलवान बन सके ।

### सूर्य किरणोंसे चिकित्सा ।

आगे द्वितीय मंत्रमें कहा है कि ( अंगे अंगे शोचिषा शिश्रियाणं ) शरीरके प्रत्येक अंगमें तेजके अंशसे यह सूर्य रहता है, उसको ( नमस्यन्तः ) नमन करना चाहिये, अ-



र्थात् उसका आदर करना चाहिये, सूर्यके तेजसे अपने तेजको बढ़ाना चाहिये । ज लोग घरके अंधेरे कमरे में अपने आपको बंद रखते हैं वे निस्तेज होते हैं, परंतु जो खुली हवामें घूमते हुए सूर्य प्रकाशसे अपना तेज बढ़ाते हैं वे तेजस्वी होते जाते हैं ।

शरीरके प्रत्येक ( पर्व ) जोड़में यह अंश रहता है, इस सूर्यके अंशने इस स्थानपर ( ग्रभीता ) अपना अधिकार जमाया है । हर एक अवयवमें इसके ( अंकान् ) चिन्होंको पहचानना चाहिये और ( समंकान् ) मिले जुले जिन्होंकोभी पहचानना चाहिये । जैसा आंखमें तेजरूपसे सूर्यका निवास है, अन्य स्थानोंमें अन्य अंशोंसे है । यह सब जानना चाहिये । और जिस स्थानमें अनारोग्य या बीमारी हुई हो उस स्थानका आरोग्य सूर्य प्रकाशका उचित रीतिसे प्रयोग करके प्राप्त करना चाहिये । सवेरके मंद सूर्यके प्रकाशमें खुली आंखसे सूर्य बिंब देखते रहनेसे प्रायः नेत्ररोग दूर होजाते हैं । विशेष नेत्ररोगोंके लिये विशेष युक्तिसे सूर्य प्रकाशका प्रयोग करना चाहिये । विशेष अंगके लिये भी विशेष युक्तिसे ही सूर्य किरणका प्रयोग करना होता है । साधारण आरोग्यके लिये वह विशेष अवयव सूर्य किरणोंमें तपानेसे भी बहुतसा कार्य हो जाता है । इस युक्तिसे केवल सूर्य किरणचिकित्सासे बहुतसे रोग दूर करना संभव है । यदि सहन हो सके इतने उष्ण सूर्य प्रकाशमें नंगा शरीर कुछ देर तक तपायाजाय तोभी सर्व साधारण शरीर की नीरोगता बढती है । शीतकाल में यह करना उत्तम है, परंतु गर्मीके दिनों और उष्ण देशोंमें विचार से और युक्तिसे ही इसका प्रयोग करना चाहिये । नहीं तो आरोग्य के स्थानपर अनारोग्य भी होगा । इस लिये यह सब अभ्यास युक्तिसे ही बढ़ाना चाहिये ।

तृतीय मंत्रमें (शीर्षक्त्याः) सिरदर्द, ( कासः ) खांसी, ( परुः ) संधिस्थानके रोग उक्त प्रकार हटानेकी सूचना दी है । (वातजाः) वात (शुष्मः) पित्त (अभ्रजाः) कफके प्रकोप के कारण उत्पन्न हुए ये तथा अन्य रोग भी उसी युक्तिसे दूर करनेकी सूचना तृतीय मंत्रमें है । (पर्वतान् सचतां) तथा पर्वतों पर रहकर (वनस्पतीन् सचतां) उचित वनौषधियोंका सेवन करनेका भी उपदेश इसी मंत्रमें है । वनौषधियोंका सेवन दो प्रकारसे होता है, एक वृक्षादिकोंके नीचे रहना और दूसरा योग्य औषधियोंके रसादिका उपयोग करना । पर्वतोंके उच्च शिखरोंपर निवास और वृक्षोंके नीचे बैठना उठना बड़ा आरोग्य-दायक है, यह बातें हमने कई रोगियोंपर युक्तिसे अजमाई हैं और हमारे अनुभवसे बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई हैं । पाठक भी इससे लाभ उठावें ।

चतुर्थ मंत्रमें सिर आदि उत्तमांग तथा पांव आदि अधरांग तात्पर्य सब शरीरका स्वास्थ्य पूर्वोक्त रीतिसे प्राप्त करनेकी सूचना प्रार्थना मंत्र द्वारा दी है ।



# Employment for millions STUDENTS' OWN MAGAZINE

A Monthly English Teacher—Careers for Young men a speciality.

ANNUAL SUBSCRIPTION WITH SUPPLEMENTS, Rs. 3.

GET YOUR COPY FOR MARCH NUMBER RESERVED FOR 6 ANNAS STAMPS.

SAMPLE COPY POSITIVELY NO.

APPLY TO—

CAPITAL INDUSTRIAL BUREAU, RAM GALL, LAHORE.

## वैदिक उपदेश

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिए बारह उपदेश हैं। इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी। मूल्य ॥ ) आठ आने। डाकव्यय - ) एक आना।  
मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औध ( जि. सातारा )

देश देशान्तर का ज्ञान प्राप्त करने का  
अपूर्व साधन

विद्यार्थियों को परीक्षा पास करने का

सुगम उपाय

## भूगोल

भूगोल विषयक हिन्दी का एकमात्र सचित्र मासिकपत्र। पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बिहार उडोसा, मध्य प्रान्त और बरार के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत।

“भूगोल” में ज्योतिष, यात्रा, व्यवसाय, पशु धनस्पति अनुसंधान आदि भूगोल के सभी अंगों पर उच्च कोटि के मौलिक लेख प्रकाशित होते हैं। ( पिछले दो वर्षों के लेखों और लेखकों की सूची मुफ्त मंगाकर स्वयं देख लीजिये )।

वार्षिक मूल्य ३ )

मैनेजर “भूगोल” मंत्र।

## योगमीमांसा

त्रैमासिक पत्र

संपादक— श्रीमान् कुबलयानंद जी  
महाराज।

कैवल्यधाम आश्रममें योग शास्त्र की खोज हो रहा है जिस खोजका परिणाम आश्चर्यजनक सिद्धियोंमें हुआ है, उन आविष्कारोंका प्रकाशन इस त्रैमासिक द्वारा होगा। प्रत्येक अंकमें ८० पृष्ठ और १६ चित्र दिये जायेंगे।

वार्षिक चंदा ७ ) ; विदेशके लिये १२ शि०  
प्रत्येक अंक २ ) रु.

श्री. प्रबंधकर्ता-योगमीमांसा कार्यालय, कुंजघन;  
पोष्ट-लोणावला, ( जि. पुणे )





# छूत और अछूत ।

## [ प्रथम भाग ]

अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ! अत्यंत उपयोगी ?

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

- १ छूत अछूत के सामान्य कारण,
- २ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढ़ी,
- ३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
- ४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
- ५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
- ६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
- ७ गुणकर्मोंनुसार वर्ण व्यवस्था,
- ८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
- ९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
- १० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
- ११ वैदिक कालकी उदारता,
- १२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,
- १३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था ।

इस पुस्तकमें हर एक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है । यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है ।

पृष्ठ संख्या १८० मूल्य केवल १ रु. डाकव्यय ।

**अतिशीघ्र मंगवाईये ।**

द्वितीय भाग छप रहा है अगले मासमें तैयार होगा ।



वर्ष ८ अंक ५ क्रमांक ८९ वैशाख संवत् १९८४ मई सन १९२७



वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-सचित्र-मासिक-पत्र

छपकर तैयार है।

## महाभारत की समालोचना

प्रथम भाग और द्वितीय  
भाग।

प्रति भागका

मूल्य ॥) डाकव्यय=)

बी. पी. से ॥=)

मंत्री- स्वाध्यायमंडल औंध  
( जि. सातारा )

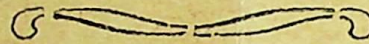
संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।  
स्वाध्यायमंडल, औंध ( जि. सातारा )

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ४) बी. पी. से ५॥) विदेशके लिये ५)



१ दिव्य मनुष्य	८१	७ अथर्व वेद का स्वाध्याय	८१—१०४
२ स्वाध्याय मंडलका कार्य	८२	अंतर्यामी ईश्वरको नमन	८१
३ हरद्वारका कुंभ—	८३	कुलवधू सूक्त—	८६
४ हमारी शारीरिक शक्तके न्हास के कारण	८४	संगठन महायज्ञ सूक्त	९४
५ योग जिज्ञासाकी कहानी	९१	चोर नाशन सूक्त—	९९
६ ग्रंथ और ग्रंथकारोंका स्वागत	९६	रक्त स्त्राव बंद करता	१०२

# आसनों का चित्रपट !

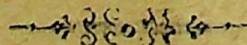


आसनों का व्यायाम लेनेसे सहस्रों मनुष्योंका स्वास्थ्य सुधर चुका है, इस लिये आसन व्यायामसे स्वास्थ्य लाभ होनेके विषयमें अब किसी को संदेह ही नहीं रहा है । अतः लोग सब आसनोंके एक ही कागज पर छपे हुए चित्रपट बहुत दिनोंसे भांग रहे थे । वैसे चित्रपट अब मुद्रित किये हैं । २०-३० इंच कागज पर सब आसन दिखाई दिये हैं । यह चित्रपट कमरे में दिवार पर लगाकर उसके चित्रोंको देख कर आसन करनेकी बहुत सुविधा अब हो गई है ।

मूल्य केवल ३ ) तीन आने और डाक व्यय— ) एक आना है ।

स्वाध्याय मंडल

औध ( जि. सातारा )





वर्ष ८

अंक ५

क्रमांक ८९



वैशाख

संवत् १९८४

मई

सन १९२७

# वैदिकधर्म

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ।

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

दिव्य मनुष्य ।

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽ मध्यमासो  
महसा वि वावृधुः । सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो  
दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥

ऋग्वेद ५ । ५९ । ६

“ ( ते ) वे सब ( अ-ज्येष्ठाः ) बड़े नहीं हैं, ( अ-कनिष्ठासः ) कनिष्ठ नहीं हैं, ( अ-मध्यमासः ) मध्यम भी नहीं हैं, परंतु वे सब के सब ( उद्भिदः ) उदय को प्राप्त करने वाले हैं, इसलिये ( महसा ) उत्साहसे ( वि वावृधुः ) विशेष रीतिसे बढ़ने का यत्न करते हैं । ( जनुषा ) जन्मसे वे ( सुजातासः ) उत्तम कुलीन हैं और ( पृश्निमातरः ) भूमि को माता माननेवाले अर्थात् मातृभूमिके उपासक हैं, इसलिये ये ( दिवः मर्याः ) दिव्य मनुष्य ( नः अच्छा ) हमारे पास अच्छों प्रकार ( आजिगातन ) आ जावें । ”

सब मनुष्य समान हैं । जन्मसे उच्च नीच यह भेद असत्य है । इस लिये सब अपने आपको इस प्रकार समझ कर मातृभूमिकी सेवा करनेकी पराकाष्ठा करें और सबकी उन्नति करने में अपना सामर्थ्य खर्च करें ।

—o—



## स्वाध्याय मंडल का कार्य ।

### १ यजुर्वेद की छपाई ।

यजुर्वेद की छपाई वेगसे चल रही है। १२ अध्याय छप चुके हैं और आगे छपाई चल रही है। प्रत्येक मंत्र स्वतंत्र और स्पष्ट अक्षरोंमें पदच्छेदपूर्वक दिया है। पुस्तक अति शुद्ध छपने का यत्न किया जा रहा है। यूरोपमें छपे पुस्तक, प्राचीन हस्तलिखित अनेक पुस्तकें, भारत वर्षमें मुद्रित पुस्तकें इनकी सहायताके अतिरिक्त यजुर्वेद कण्ठस्थ रखनेवाले पंडितों की भी पूर्ण सहायता से यह पुस्तक मुद्रित हो रहा है। तथा पाठ निश्चित करने में बड़ा प्रयत्न किया जा रहा है।

उदाहरणार्थ यजु. अ. ११। ८० मंत्रका अंतिम भाग जर्मन, अजमेर तथा मुंबई मुद्रित पुस्तकों में " भस्मसा कुरु " ऐसा छपा है। वास्तव में " भस्मसा कुरु " ऐसा पाठ शुद्ध है। इस प्रकार बहुत-सी बातोंका विचार होकर अतिशुद्ध पाठ मुद्रित किया जा रहा है। पाठक शीघ्रता कर रहे हैं, परंतु इसप्रकार छपाई करनेके लिये श्रम और समय अधिक ही लगेगा और यह कार्य अति शीघ्र होना असंभव है। इसलिये देरीकी क्षमा पाठक करेंगे ही। संपूर्ण यजुर्वेद और दो मासमें पूर्ण छप जायगा। नित्य पाठके लिये यह पुस्तक अत्यंत लाभदायक होगा। इस पुस्तक के साथ सर्वानुक्रम, मंत्रपाद सूची, ऋषि सूची, देवता सूची आदि सब

देनेका विचार किया है। इसके पश्चात् अथर्ववेद छप जायगा।

### २ छूत अछूत ।

छूत अछूत पुस्तक के द्वितीय भाग का मुद्रण शुरू है। करीब आधा छप चुका है और आगे छप रहा है। अगले मासमें संपूर्ण छपकर तैयार होगा। छूत अछूत के विषय में अर्थात् अछूतताके निवारण के लिये जो प्रयत्न कर रहे हैं उनके लिये यह पुस्तक विशेष सहूलियतसे दी जायगी। यह पुस्तक प्रचारार्थ ही छपी है। यदि पाठक इसका प्रचार करेंगे तो उनको पूर्ण सहूलियत दी जायगी।

### ३ अथर्ववेद स्वाध्याय ।

पाठक अथर्ववेद स्वाध्याय शीघ्र छापने के लिये प्रेरणा दे रहे हैं। " वैदिक धर्म " में हम प्रतिवार २४ पृष्ठ छाप रहे हैं। हमारा विचार है, यदि ग्राहक बढ जायेंगे तो इतने ही मूल्य में हम आठ पृष्ठ और अधिक दे सकेंगे अर्थात् अथर्व वेद स्वाध्याय के ३२ पृष्ठ प्रतिवार दे सकेंगे। इसके अतिरिक्त १६ पृष्ठ अन्य रहेंगे ही। अर्थात् यदि ग्राहक संख्या बढ गई तो हम वैदिक धर्म मासिक ४८ पृष्ठोंका करनेका विचार कर रहे हैं। परंतु यह हमारी इच्छा पाठकों की सहायता पर ही निर्भर है। आशा है कि पाठक इसका विचार करेंगे और ग्राहक बढाने में योग्य मदत देंगे।



## हरद्वारका कुंभ ।

हरद्वार में कुंभ मेला बड़ी धूम धामसे चल रहा है। पं० मदनमोहन मालवीय जी साधु-संगठन में लगे हैं और बहुत आशा हो रही है कि इन साधुओंकी शक्ति राष्ट्रकार्य में परिवर्तित हो जायगी। साधुसंत करीब एक करोड़से अधिक इस भारत वर्ष में हैं। उनके खानपान के लिये भारत वर्ष का कई करोड़ रुपया खर्च हो रहा है। परंतु शोक इस बातका है, कि इन एक करोड़ आदमियों को देश का अथवा समाज का एक अंशमात्र भी ख्याल नहीं है। इस कारण यह करोड़ों रुपयों का व्यय व्यर्थ ही हो रहा है। यदि ये साधुसंत, अच्छूत-उद्धार, पतितपरावर्तन, शुद्धि, संगठन, बालशिक्षा, स्त्रीशिक्षा, निरक्षरों को साक्षर बनाना आदि कामों में लग जायेंगे तो देश का बहुत लाभ हो सकता है। परंतु साधुसंत जिस रीतिसे इस समय तक पाले गये हैं और खिलाये जा रहे हैं, उस रीतिके होते हुए कोई सुधार होना संभवनीय नहीं दिखाई देता है।

इस लिये उनके लिये होने वाले दान का व्यय करनेवाली एक मंडली होनी चाहिये और जो साधु, वैरागी या उदासी संन्यासी उस मंडली के आधीन कार्य करे उसी को दान देना चाहिये। अन्योको कोई दान न दिया जावे। यदि इस प्रकार दान पर कुछ नियंत्रणा हो जायगी तो ही उदासियों का सुधार संभवनीय है अन्यथा कोई सुधार नहीं होगा। क्यों कि भोले हिंदु लोग भगवे कपडे देखकर दान देते ही जायेंगे और जब कार्य न करते हुए पालना होती रहेगी तब

कार्य करेगा कौन? अतः कुंभमेलों पर व्याख्यान करने की अपेक्षा "साधु सुधार समिती" की स्थापना होनी चाहिये और उसकी शाखाएं स्थान स्थानपर दक्षतासे कार्य करने के लिये नियुक्त होनी चाहिये।

साधु और संन्यासियोंकी अव्यवस्था हृद दर्जेकी है। अखबारों द्वारा प्रसिद्ध हुआ है कि इन उदासियों की हुल्लडसे हरद्वारके मेले में करीब चालीस आदमी मर गये और करीब उतनेही दब गये। अर्थात् इन साधुओंको इतनी धुंद चढी हुई है और उनको दूसरों की जानकी भी इतनी पर्वाह नहीं है कि इनके मेलेके एक ही दिन में चालीस पचास आदमी केवल घसीटा घसीटी से ही मर सकते हैं !! इन के अमानुष बदइत-जामीका कोई और सबूत देनेकी आवश्यकता नहीं है। हम पहिले स्नान करेंगे और दूसरे पीछे से करेंगे, इसी विवादसे इतने आदमी पीसे गये। वैरागी और उदासी जो इतनी लापर्वाहीसे बर्ताव कर सकते हैं वे जनता का सुधार क्या कर सकते हैं?

भीड़में किस प्रकार चलना चाहिये यह बात हिंदुस्थानियों को अभी सीखनी है। स्टेशनपर निकट लेने के समय, स्टेशन के दरवाजेमें से अंदर घुसने या बाहर आने के समय, रेल के द्वार से अंदर घुसने के समय तथा इसी प्रकार के अन्यान्य प्रसंगोंमें हिंदी लोग जो बर्ताव करते हैं वैसा बर्ताव किसीभी सभ्य देशमें नहीं किया जाता, इतनाही नहीं परंतु यदि यूरोप में कोई ऐसा बर्ताव करेगा तो उसी समय दंड का भागी होगा।



परंतु यहां कोई उसका ख्याल करताही नहीं। कतार बांध कर ये कार्य करने से किसी को कष्ट नहीं होंगे और सब का कार्य शांतिसे होगा। तिकिट घर के छोटे सुराखसे जब दस हाथ तिकिट के लिये अंदर घुसेड देते हैं तब उनको पशुवृत्ति में फंसे द्विपाद प्राणी समझना कोई अत्युक्ति नहीं। भारत वर्षमें यही वृत्ति सब जगह है। वैरागियों में यह सबसे अधिक है, इसी लिये ही हरद्वार में उनकी भीड में चालीस आदमी दब गये और सीधे स्वर्गधामको पहुंच गये।

वास्तवमें व्यवस्था, इंतजाम, शांतिसे कार्य करने आदि सभ्यताके श्रेष्ठ गुणों में उन्नति करने का ही यह समय है। अव्यवस्था, बढ इंतजामी, अशांति आदि के कारण हमारा इतना नुकसान

हो रहा है कि उसका हिसाब लगानाही अशक्य है। परंतु वृत्तपत्रकार इन राष्ट्रीय आवश्यक गुणोंकी उन्नति करनेके लिये लेख लिखना पसंदही नहीं करते !! सभाओं में गडबड, रेलमें गडबड, यात्रा और मेलों में गडबड के कारण हमारे देश की इतनी हानि हो रही है कि जो कार्य हम करते हैं वे हमारे लिये लाभदायक होने के स्थानपर हानिकारक हो रहे हैं!!! कुंभ मेला धार्मिक मेला है। भारत वर्ष धर्म के लिये प्रसिद्ध है। ऐसी अवस्था में धार्मिक देशके धार्मिक मेले में संमिलित होने वालों की बढ इंतजामीसे चालीस आदमी दबकर मर जाते हैं, यह इस देशकी धार्मिकताके लिये लांछन है। धार्मिक लोग इस का विचार करें और अपने स्थानपर इस विषयमें जो हो सकता है करें।

=====

## हमारी शारीरिक शक्ति के न्हासके कारण ।

पिछले भागों में बतया गया है की हमारे शरीर का न्हास किस प्रकार हो रहा है और शरीर के बल का क्या महत्व है ? अब हमें विचार करना है कि इस न्हास को किस प्रकार रोक सकते हैं और शरीर के बल को किस प्रकार सुधार सकते हैं ? इसके पहले हमें एक बात और करनी चाहिये। वह बात यह है कि हम लोग विचार करें कि किन किन कारणों से हमारे शरीर का न्हास हुआ। किसी रोग का कारण मालूम हो जाने पर जिस प्रकार उसकी चिकित्सा करना सरल हो जाता है उसी प्रकार इस न्हास के कारण मालूम हो जाने से यह भी मालूम हो जावेगा कि उसे किस प्रकार रोकें। इसी लिये पहले अपन यह देखें कि अपने शरीर के न्हास के क्या कारण हैं ?

### ( १ ) शत्रु कार्यक्षेत्रका अभाव ।

यह बात सिद्ध ही है कि हमारा दुर्भाग्य और हमारे समाज का जीर्णत्व इस -न्हास के अपरिहार्य कारण हैं। यह प्रथा है कि किसी बात के काल, आकाश आदि नित्य कारणों को छोड देते हैं और उसके विशेष कारण देखे जाते हैं। उस प्रथा के अनुसार इस न्हास के विशेष कारण देखें तो उनमें से मुख्य कारण यह दिखता है कि फौजी मुहकमे में बडे बडे ओहदे हिन्दुओं को न देने की सरकार की नीति है। इस देश पर अंग्रेजों के शासनके इस काल में एक अत्यंत दुःखदायक बात हुई है वह यह कि लोगों में संग्राम-पराङ्मुखता और भीरुता की वाजिब से बहत अधिक वृद्धि हुई है।



व्यक्ति के समान राष्ट्र को भी व्यायाम की आवश्यकता होती है। लोगों के धैर्य, साहस, कर्तृत्व-शक्ति आदि गुण प्रगट होकर उनका विकास होने के लिये देशपर कुछ संकट आने चाहियें और उन संकटों का लोगों के द्वारा ही निवारण होना चाहिये। एक कहावत है कि “वे संकट जो मनुष्य को बिल्कुल कुचल नहीं डालते, मनुष्य के गुरु और उपकार कर्ता हैं।” हम लोग इस कहावत को यथार्थ मानते हैं। तब वह देश के लिये भी कामयाब क्यों न होगी? यदि कोई यह कह कर हमारा सांत्वन करना चाहें कि हमारे देशवासी पलटनमें भरती हुई हैं और वे लडाइयां भी लड़ते हैं इसलिये यह कहना व्यर्थ है कि हम लोगों की नामर्दी का कारण अवास्तव शांतता है। किन्तु इस प्रकार समझना व्यर्थ है। क्यों कि इस कथन का तब तक कुछ मतलब ही नहीं है जब तक जिस किसी की इच्छा हो उसे फौज में भरती होने की गुंजायश नहीं है और भरती होनेपर उसकी लियाकत के अनुसार उसे उत्तरदाई ओहदा नहीं मिलता। इतने ही से यदि बहादुरी की शिक्षा मिलती तो ताजमहल बनाने वाले कारीगर भी अभिमान से कह सकते हैं कि वे पत्थर काटने वाले या चूने की टोकनी ढोने वाले मजदूर को शिल्प-कला की शिक्षा देते हैं! प्रत्यक्ष अंग्रेजों को हमारा यह सवाल है कि, “यदि फ्रान्स तुम्हारी सब लडाइयां लड़ने का ठेका सौ साल के लिये ले लेवे, तो तुम उस कितनी खुशी से मंजूर करोगे? और इसके लिये तुम फ्रान्स के कितने उपकार मानोगे?” निश्चय जानो कि अंग्रेज इस बात को कभी न मोनेंगे। तब क्या इस बात का दोष सरकार के मत्थे नहीं है कि भारतवासि को शांतता देकर वे नामर्द बना दिये गये?

## (२) लडकों की कमजोरी ।

लडके को मकान से बाहर न निकल ने दें, उसे घर में ही निठले बिठालकर उसे डरपोक, नजाकती तथा निरुपयोगी बना दें और उसे कहें कि ‘हमने तुम्हें गर्मी तथा सर्दी से कुछभी कष्ट न होने दिया।’ तो वह लडका अपने पालक के प्रति कृतज्ञ कैसे हो सकता

है? या वह पालक कृतज्ञता के लिये कितना योग्य हो सकता है? बस हमारी कृतज्ञता के लिये हमारी सरकार इतनी ही योग्य है। हिन्दुस्थान की बेबन्दशाही को नष्ट करना बहुत ही आवश्यक था। किन्तु फजूल और बे मतलब के लड़कने वाले माता पिता का प्रेम जिस प्रकार लडकों को नुकसानदायक होता है उसी प्रकार सरकार की अवास्तव शांतता प्रदान की नीति का फल जनताकी नामर्दगी हुआ है।

## ३ सुराज्यसे स्वराज्य अच्छा ।

“परकीयों के अच्छे सुराज्यसे अपना स्वराज्य हजार गुणा अच्छा है, यह श्री स्वामिजीने अपने सत्यार्थ प्रकाशमें कहा है, इसकी सत्यता पाठक इस विचारसे देख सकते हैं कि इस विदेशी शासन के कारण हमारा क्षात्रतेज प्रतिदिन न्यून होने लगा है।

परकीयों का राज कितना ही अच्छा क्यों न हो, उसके अधिकार में रहने वाले लोगों को लडाई के तथा अपने खुद के पराक्रम से शत्रु से अपना रक्षण करने के मौके न मिलें तो देश के लोगों को कैसी भारी हानि होती है? जिस समय रोमन लोगोंने ब्रिटनको जीता, उस समय लोगों की रक्षा की जबाबदेही रोमन लोगों ने खुदपर हो ले ली। इससे ब्रिटिश लोगों को जो हानियां हुई उनमें सबसे बड़ी हानि यह हुई कि ब्रिटिशों को लडाई के मौके न मिले। इससे वे नामर्द बन गये और आत्मरक्षा के लिये भी अयोग्य एवं असमर्थ बन गये। परिणाम यह हुआ कि ज्यूट्स, सेक्सन आदि लोगों ने उन्हें सहज ही में जीत लिया। यह मनगढत नहीं है अंग्रेज इतिहास लेखक भी इसे मानते हैं। यदि हम कहें कि अंग्रेज इस बात को जानते हुए भी हम लोगों को स्वतन्त्र रीति से लडाई लड़ने का मौका नहीं देते और इसी लिये हम लोगों में नामर्दी आ गई है तो उसमें गलती ही क्या है?

मराठों के राजत्वकाल में या मुसलमानों के समय जिस प्रकार सैधिया-हुलकर सदृश लोग साधारण सिपाही की नौकरी से सेनापति के ओहदे तक चढ़



सकते थे, उसी प्रकार जब तक हमारी सरकार हमारी सेना के लोगों को मौका नहीं देती और जब तक हमलोगों को निश्चय नहीं हो जाता कि साधारण मनुष्य भी अपनी योग्यता के बल पर कमान्डर-इन-चीफ बन सकता है, जैसा कि इंग्लैण्ड में होता है, तब तक ऊंची जाति के तथा ऊंचे दर्जे के लोग फौजी नौकरी के विषय में उदासीन ही रहेंगे। साथ ही जब तक फौजी नौकरी में लोगों को उत्तेजना नहीं मिलती तबतक लोग ऐसे व्यवसायों में ध्यान न देंगे जो मनुष्य को मर्द बनाते हैं। इसका परिणाम शरीर के लिये अवश्य ही विपरीत एवं हानिकारक होगा। जिस प्रकार बुद्धि को तेज रखने के लिये वाचन, वादविवाद आदि की आवश्यकता होती है उसी तरह शरीर की शक्ति और शौर्य कायम रखने के लिये द्रुत यद्ध लड़ाई, शर्त बांधकर खेल खेलना आदि बातों की अत्यंत आवश्यकता है। जब लोगों को विदित हो जाता है कि अपना बल, अश्वारोहण-पटुत्व, शूरता आदि के अजमाने के मौके कभी भी न आवेंगे तब इन बातों को ओर से चित्त हट जाना और इन व्यवसायों की जड़ जो स्वास्थ्य उसके विषयमें लापरवाह रहना स्वाभाविक ही है। फौजी मुहकमों के अनुसार ही अन्यान्य मुहकमों में भी सरकार की नीति है कि हिन्दुस्थानियों को जवाबदेही एवं महत्वपूर्ण कार्य न दिये जावें। इसीसे हम लोगों को अपनी योग्यता तथा पराक्रम दिखलाने के लिये समय नहीं मिलता और हम नामर्द हो चले हैं।

## [ ४ ] क्षत्रधर्म का नाश ।

इस प्रकार चातुर्वर्ण्य में से हमारे क्षात्र धर्मका इस समय करीब करीब नाशसा हुआ है। पाठक विचार करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि इस समय हम अपने क्षात्रधर्म के पालन में किस प्रकार असमर्थ हैं अर्थात् देशकी पराधीनतामें हम अपने धर्मको भी पूर्णतासे पालन नहीं कर सकते।

शरीर के स्वास्थ्य के न्हास का दूसरा कारण यह है कि भारतीयों में आजकल की शान्तता के कारण चैनवाजी और विषयासक्तता बहुत बढ़

गई है। पहले अधिकांश जवानों का चित्त शरीरको कमाने में लगा रहता था क्योंकि उन्हें लड़ाईमें नाम कमाने की बड़ी आकांक्षा रहा करती थी। इस प्रकार युवक स्वभावही से ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करते थे और इसीसे उनका चित्त विषयासक्त नहीं रहता था। जब जब वे मुहीम पर रहते तब तो ब्रह्मचर्य भंग होता ही नहीं था। किन्तु यह स्थिति अब बदल गई है। छुटपन में मर्दानगी खेलों की आवश्यकता अब प्रतीत नहीं होती इससे लोगों का उत्साह शयनागार की ओर ही झुकता है। इस प्रकार के उत्साह से लोगों ने जो काम किया सो क्या है? उन लोगोंने कर्तूत कर ब्रह्मदेव के संतति-निर्माण काम में मदद दी और भारत की आवादी बीस करोड़ से तीस करोड़ बना दी! लोगों के इस कार्य में अकाल तथा प्लेगने भारतीय प्रजा का बलि लेकर बहुत विघ्न किया इसे लोग बेचारे क्या करें? हिंदुस्थान के बाहर रहनेवाले मुसलमान जब भारत में आये तब उन्हें यहां अमित धन और शांति मिली। परिणाम यह हुआ कि वे अपनी वीरता, परिश्रम आदि गुण खो बैठे और ऐषआरामी एवं नामर्द बन गये। बस वही हाल हम लोगों का हुआ। रंज केवल इसी का है कि मुसलमान राज्य कमाकर उसका ऐश्वर्य भोगने से नामर्द हुए किन्तु हम लोगोंने न तो राज्य ही कमाया और न धन दौलत कमाई, तिस पर भी ऐष आरामी तथा विषयासक्त बनकर हम लोगों ने अपने को नामर्द बना लिया। शिकार खेलना, घोड़े को सवारी करना आदि बात तो दूर रहीं, अखाड़ा खेलना और कुश्ती लड़ना तक लोगों को पसंद नहीं है।

## ( ५ ) विषयासक्तिसे कमजोरी ।

इस प्रकार के शरीर को स्थावरनेवाले व्यवसाय छूट जाने पर लोगों में जो कुछ ताकत बची उसका उपयोग सिवा विषयासक्तिके और किस बात में हो सकता है? स्वास्थ्य तथा शरीर की हानि उन लोगों में इतनी तीव्रतासे नहीं दिखाई देती जो दिनभर खेतों में परिश्रम करते रहते हैं। दिनभर लगातार परिश्रम करके थक जाने पर जब वह मनुष्य सोता



है तब उसे गहरी नींद एकदम घेर लेती है। उसे दूसरे ढंग कहां से सूझ सकते हैं? किन्तु नौकरी करने वाले बाबू-लोगों का हाल भिन्न है। उन्हें शारीरिक परिश्रम के काम कम रहते हैं और कामदेव को उत्तेजना देनेवाले बहुत साधन रहते हैं। तब वे अपनी शांतता का उपयोग विषयासक्ति में न करें तो और क्या करें?

हम लोगों के शरीर की अवनति का कारण मर्दानी उद्योगोंका अभाव और बहुत अधिक विषयासक्ति है। यह पढ़कर कई लोग प्रश्न करेंगे कि हमारे नाना और हमारे पिता के समय लोगों का आचरण करीब करीब एकसा था। तब हमारे ही समय में इतना भारी फरक क्यों हुआ? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि कई बातें ऐसी होती हैं जिन का परिणाम तुरंत नहीं दिखाई देता। वह कुछ समय के उपरान्त दीख पड़ता है। जब हम लोग परहेज की चीजें नहीं खाते तब हमारे शरीर में रोग होने की तैयारी शुरू हो जाती है किन्तु रोग प्रत्यक्ष रूप से जब तक बाहर नहीं आता तब तक हमें उसका पताही नहीं रहता। उदाहरण के लिये फेफड़े बिगड़ना शुरू हो जाने पर भी बहुत दिन बाद कमजोरी आदि बातें मालूम होती हैं और तब हम जानते हैं कि क्षय हुआ। जब फेफड़े बिगड़ने लगे थे तभी नहीं मालूम हुआ। यही हाल मनुष्य की शारीरिक अवनतिका भी है। विषयों में अतिरेक करने से या व्यायाम न करने से जो दुष्ट परिणाम होता है वह दोषी चाल चलन वाले मनुष्यपर कभी कभी नहीं दिखाई देता, किंतु उसकी संतानपर होता है। कभी कभी तो यह घातक परिणाम दोषी आचरणवाले मनुष्य में नहीं दिखाई देता उसके लड़के में भी नहीं दिखाई देता किन्तु उसके नाती में दिखाई देता है।

### ( ६ ) दरिद्रता ।

इसमें कोई शंका नहीं है कि वर्तमान पीढ़ी के लोगों में दिखनेवाली कमजोरीका कारण दिन-ब-दिन बढ़ने वाली दरिद्रता तथा वर्तमान शिक्षा है। किन्तु इन दो बातों का जो परिणाम पहले की पीढ़ी पर हुआ उसमें और वर्तमान पीढ़ीपर होने वाले

परिणाम में कुछ अंतर है। इससे वर्तमान पीढ़ीके शरीर पर जो बुरा परिणाम दिखना चाहिये उसके कहीं अधिक बुरा परिणाम नजर आता है। इसका कारण उपर्युक्त बातमें है।

### ( ७ ) ब्रह्मचर्यका अभाव ।

ऐसा आराम और विषयासक्ति के साथही और एक बात शरीर के बिगाड़ने में हाथ बँटती है। वह है जवान लड़कों में ब्रह्मचर्य का अभाव। आजकल के बालक आवश्यक व्यायाम तो करते नहीं और उन्हें शिक्षा के हेतु काव्य, नाटक, उपन्यास आदि पढ़ना आवश्यक है। इसका परिणाम यह होता है कि लड़कों में ब्रह्मचर्य घटता जा रहा है। परन्तु इसका दोष कुछ अंश में अपने समाज के प्रौढ़ स्त्रीपुरुष के मध्ये मढ़ना चाहिये; क्योंकि उनसे एक अक्षम्य अपराध प्रायः होता है। माता पिता अपने पुत्र तथा बहूका मीलन कराने एवं उसका कौतुक देखने के बड़े इच्छुक होते हैं। पहले की पीढ़ी में ऋतुस्नात होने के पूर्व पति से पति का मिलना सख्त मना था। इतनाही नहीं शय्यागृह का प्रवेश यदि दूसरा को मालूम हुआ तो वह अक्षम्य अमर्यादा समझी जाती थी। प्रौढावस्था में भी शय्यागृह से उठकर जाना किसी को विदित न हो इसके लिए हर तरह की फिक्र की जाती थी। किन्तु अब समयने पलटा खाया है। आज कल कमजोरी के कारण लड़कियों को रजोदर्शन भी जल्दी होता है और रजोदर्शन होते ही पति-पत्नि को मनमाना बर्ताव करने की स्वतन्त्रता रहती है। कई अविचारी लोग रजोदर्शन के पूर्व ही पतिपत्नि की भेंट कराने का अविचार करते हैं। परिणाम यह होता है कि व्यायाम और अन्य खेल खूद आदि की ओर ध्यान रहने से नव-युवकों की शक्ति बेफायदे के काम में खर्च होती है। शरीर और मस्तिष्क की पूर्ण वृद्धि में जो शक्ति खर्च होनी थी वह विपरीत काम में खर्च हो जाने से मनुष्य निःसत्व हो जाता है यदि युवकने शाकुंतल, मालती माधव, कादंबरी आदि ग्रन्थ पढ़े हों तो उसका मन अकाल-परिपक्व रहता है और मस्तिष्क तथा मज्जामंडल अल्प कारण से उद्दीपित



हो जाते हैं। ऐसी दशामें स्त्री संग करने से शक्ति का अवास्तव व्यय विषयासक्ति में होता है। यदि इसी समय वह युवक स्कूल या कालेज में पढ़ता हो तो पढ़ाई, परीक्षाकी फिकर और स्त्रीसेवन इन तीन बातों में उसकी शक्ति का व्यय होता है इससे उसके शरीर को तथा मज्जामण्डल को हानि होती है। इस प्रकार उसके वीर्य का अकाल ही में न्हास होकर वह निर्वल, निःसत्त्व तथा अकाल वृद्ध होता है।

इससे पाठकों को पता लगेगा कि “ गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ” कितनी लाभदायक है। कम से कम इस समय की विपरीत परिस्थिति की हानि कम करने के लिये गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ही एक उत्तम साधन हो सकता है।

## ८ अन्नका दुर्भिक्ष्य ।

हमारी शारीरिक कमजोरीका एक और कारण है। यह खानेपीने के पदार्थोंकी न्यूनता है। प्रति-दिन यह न्यूनता बढ़ रही। जहां रुपये को दो तीन सेर घी मिलता था वहां आज आधा सेर भी मुष्कीलसे मिलता है। इसी प्रकार अन्यान्य पदार्थ बहुत महंगे हो रहे हैं। गौएँ आदि कट जाने के कारण दूध की कमी हो रही है। यह सबाल हरएक के सामने है। स्वराज्य स्थापना के सिवाय इसका कोई दूसरा इलाज नहीं है।

## ९ आजकी शिक्षा ।

सांप्रतकी दुरवस्था आने का कारण है अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त युवक की महत्ता। पहले जमाने में जब कि अंग्रेजोंका राज न था तब नौकरी मिलना या न मिलना परीक्षा पर निर्भर न था। उस समय जवान मनुष्य को ऊँचा ओहदा शायद ही कभी मिलता था। प्रायः हरएक को छोटी नौकरी से ही जीवनसंग्राम में पदार्पण करना पड़ता था और जब तक ऊँचा ओहदा नहीं मिलता था तब तक किसी भी युवक का महत्व अवास्तव रीतिसे नहीं बढ़ता था। किन्तु अंग्रेजी राज में नौकरी प्रायः परीक्षा पर अवलम्बित है। इससे परीक्षा पास होते ही युवक की योग्यता

का दर्जा निश्चित हो जाता है और उसे महत्व प्राप्त होता है। इसके साथ ही पिता का अधिकार घट जाता है। ऐसे युवक पर बुजुर्गों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता और वह स्वच्छंद से बर्ताव करने लगता है। कई बार यह भी होता है कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त युवक अपने पितासे अधिक ज्ञान रखता है। ( वास्तव में अधिक ज्ञान न होनेपर भी परीक्षाएँ अधिक पास कर चुकने से उसे यह भ्रम हो जाता है )। ऐसी दशा में उसपर उसके पिता का अधिकार नहीं रहता। इसके साथ जवानी, शृंगार रस प्रधान पुस्तकों का पढ़ना, मानसिक श्रम अधिक हो जाने के कारण जरासी बात से उत्तेजित होने वाला मन, जवान स्त्री, चाह, काफी, आदि कितनी ही उत्तेजना देनेवाली बातों की सहायता रहने पर वह नौजवान-तुरन्त ही “ जन्टल मैन ” बन जाता है। उसे शरीर कमाने के कामोंसे घृणा होती है। और वह अपनी उमर का वह समय, जो शरीर कमाने में बिताना चाहिये था, विषय के उपभोग में तथा मानसिक श्रम में बिता देता है। इससे उसकी शक्तियाँ अकालही में खर्च हो कर उसे असमय में वृद्धावस्था प्राप्त होती है।

## १० घरकी कुशिक्षा ।

शरीर के बल में घाटा पड़ने का एक छोटासा कारण अपनी वर्तमान गृहशिक्षा भी है। मालूम होता है बहुतेरे मा-बाप इस बात को नहीं जानते कि बालकों में कष्ट सहने की ताकत जितनी अधिक हो उतना ही अच्छा है। वे बालकों के प्रति अपना यही कर्तव्य समझते हैं कि जितना बन सके अधिक से अधिक कपड़े छूटपन में बालक को पहिनाना चाहिये, उसके कल्याण के हेतु जितनी जल्द बन सके उसे स्कूल में भरती कर देना चाहिये और उसे जरा भी ऊधम न करने देना चाहिये जिससे उसे जरा भी चोट आने का डर न रहे। वर्तमान समय में माता पिता का यह प्रमाण वचनही हो गया है कि ‘ बालकों को चाहिये कि वे देवता के समान बैठे रहें ’। बेचारे मा-बाप



यह नहीं जानते कि उनकी इन समस्याओं के ही कारण बालकों में कमजोरी, कमकूबत आदि दोष आजाते हैं। जिन लोगों के पास खानेपीने की कमी नहीं है ऐसे धनवानों में भी यह इच्छा नहीं दोखती कि उनके बालक दृष्ट-पुष्ट होवें, उनका बदन लाल लाल रहे, वे कुश्ती में विजय प्राप्त करें, वे दण्ड, बैठक और अखाड़े का शौक रखें। घरमें बालक ने जरा भी गडबड न की तो माता खूश रहती है ! रात के दस ग्यारह बजे तक जगकर बालक जब खूब रटता है और अपनी कक्षा में ऊँचा नम्बर प्राप्त करता है तब पिता की इच्छा पूर्ण होती है और वह संतुष्ट रहता है !! पिता कभी भी इस बात की पर्वाह नहीं करता कि बालक अपने से कमजोर क्यों है और उसकी भलाई बलवान बनने में है या एक दो कक्षाएं अधिक पढ़ने में है ? ऐसा पिता क्वचित ही नजर आता है जिसे यह फिकर हो कि लडका १५।१६ सालका हो जाने पर १२।१४ सालके लडकों के समान कमजोर क्यों दिखता है ? गरीब तथा धनवान सभी में यह इच्छा दिखाई देती है कि उनके लडके अगली कक्षामें जितने जल्द जा सकें उतनाही अच्छा होगा। किंतु लडकों के स्वास्थ्य की ओर उनका बिल्कुल ध्यान नहीं रहता। तब वे लडकों को साहस के और वीरता के काम करनेमें उत्तेजना क्यों कर दे सकते हैं ? पहले समयमें यह दशा कदापि नहीं थी। पहले समय में वे माताएँ थीं जिन्होंने श्री शिवाजी महाराज को अफजलखांसे अकेले मिलने की इजाजत दी थी, वे माता पिता थे जिन्होंने विश्वासराव की उमर सोलह साल की रहने पर भी उसे लडाई में भेजने की आना कानी न की। तभी तो लडके शूर और साहसी होते थे। किन्तु आज मा-बाप ही छरपोंक बन गये हैं, तब वे अपने लडकों को शूरता और साहस के कामों में उत्तेजना कैसे दे सकते हैं ?

## ११ व्यसनोंकी वृद्धि ।

हमारे राजकर्ता के सहवास के कारण हम लोगों में जो सुधार हो रहा है वह सुधार और मदिरा आदि व्यसन भी हमारे शरीर को बिगाड रहे हैं।

जब कभी देश में सुधार होता है तब जीवन-संग्राम में बड़ी झटापटी और तीव्रता आती है। इस तीव्रता के कारण शरीर को कष्ट होना स्वाभाविक है। इसी लिये सुधार के साथ जो श्रमाधिक्य होता है उससे ( यदि उचित उपाय न किया जाय तो ) शरीर का बिगाड अवश्य ही होगा। इस कथन की सत्यता प्रतीत न होती हो तो गांव-खेडों की रहन सहन की तुलना किसी बड़े शहर की रहन सहन से की जावे या किसी भी बड़े शहर के लोगों की तुलना बम्बई या कलकत्ते के लोगों से की जावे। इस तुलना से विदित होगा कि जितना सुधार अधिक उतना ही मनुष्य का उद्योग अधिक होता है और इस उद्योग के पीछे दौड धूप भी बढ़ जाती है। दूसरा उदाहरण-पचास वर्ष पहले के किसी सद्गृहस्थ या व्यापारी की तुलना आज के व्यापारी से कीजिए।

गांव का २५ वर्ष की उमरवाला नौ जवान और बम्बई में नौकरी करनेवाला उसी उम्र का मनुष्य इन दोनों की तुलना कीजिए। आपको पता चलेगा कि दूसरे प्रकार के मनुष्य को पहले की अपेक्षा दुगना परिश्रम करना पड़ता है। पहले प्रकार का मनुष्य प्रातःकाल को मुंहहाथ धोकर आराम से खेत में जावेगा या किसी से गप-शप करने में या अपना काम करने में लग जावेगा। वह स्नान-ध्यान, पूजा-पाठ आदि में घंटों तक बैठ जावेगा। तदुपरान्त पूरा आध घण्टा उसे भोजन करने में लग जावेगा। भोजन कर चुकने पर सम्भवतः कुछ देर आराम करेगा, लेंटेगा या सोवेगा। इसके बाद दो-तीन घण्टे फिर काम करेगा। सायंकाल के समय किसी अड्डे पर जाकर या किसी मंदिर में जाकर या अपने घरही में आंगन में बैठकर अपने मित्रों से गप्पे मारते हुए या इधर उधर का वार्तालाप करने में अपना समय बितावेगा। इसके बाद भोजन कर के अपने कुटुम्बियों से, अपने बाल-बच्चों से बातें करेगा। इसके बाद वह तुलसीदास जीकी रामायण उठाकर चार छह दोहे पढ़ेगा और फिर निश्चिन्त होकर सोवेगा।



अब दूसरे प्रकार के मनुष्य का दिन-क्रम देखिये । सवेरा होते ही वह जल्दीसे बजार जाकर कुछ भाजी लावेगा, घर आकर जल्दी जल्दी अन्यान्य काम करते हुए जब देखेगा कि नौ-साढ़े नौ बज गया तब जल्दी जल्दी थोड़ा अन्न खाकर दफ्तर की ओर दौड़ेगा । दफ्तर में पांच घंटे से लेकर सात आठ घंटों तक आसन जमाकर काम करेगा । धर लौटने पर जरा इधर उधर की गपशप करेगा और फिर चिट्ठी लिखना या कुछ पढ़ना-लिखना आदि काम करते करते नींद आने पर सो जावेगा । यह तो प्रौढ पुरुषों का हाल हुआ ।

बालकों का हाल भी इससे बहुत भिन्न नहीं है । पहले समय के बालक और आजकल के बालकों में भी इसी प्रकार का अन्तर है । पहले बालकों को पाठ-शाला में जल्दी नहीं भेजते थे । इससे उन्हें बहुत दिन तक पाठशाला की फिकर नहीं करनी पड़ती थी । स्कूल में जाने पर भी पढ़ाई अधिक न होने के कारण कुछ तकलीफ नहीं थी । अब तो यह हाल है कि विना परीक्षा के पास किये पेट नहीं पलता । इस से स्कूल में छः सात घंटे और कालेज में आठ नौ घण्टे मानसिक श्रम करना आवश्यक हो गया है । शास्त्र का नियम है कि विना घिसे श्रम होना असम्भव है । तब पढ़ाई न करनेवाले बालकों की अपेक्षा पढ़ाई करनेवाले बालकों की शक्ति कितनी ही अधिक खर्च होगी?

आयुष्य की दीर्घता केवल दिनों की संख्यासे न गिनकर यदि श्रमों से गिनी जावे तो ज्ञात होगा कि मेट्रिक पास होनेवाला विद्यार्थी यद्यपि उमर में अठारा वर्ष का ही है तब भी उसका परिश्रम (घड़ीभर उस परिश्रम से लाभ है या नहीं यह बात छोड़ देंगे ।) अपढ मनुष्य के पचीस तीस वर्ष में किये हुए परिश्रम से अधिक निकलेंगे । इससे मेट्रिक पास करने में उसकी आयु के २५।३० वर्ष बीत चुकते हैं । इसी तरह सवेरे से संध्यातक एक सरीखा उद्योग न लगा हुआ मनुष्य और नित्य का व्यवसाय करने के बाद पुस्तकके चालीस पचास से लेकर सौ दो सौ पन्ने पढ़ने वाला शिक्षक,

प्रोफेसर या और कोई रुजगारी इनके उद्योगों को देखें तो विदित होगा कि इन लोगों के मस्तिष्क को तीस, चालीस वर्षों में इतना परिश्रम होता है जितना अपढ मनुष्य के मस्तिष्क को पचास, साठ साल में भी नहीं होता । तब इस प्रकार के मनुष्य का शरीर दुर्बल होना अथवा उसकी आयु कम होना उचित ही है । सुधार के साथ शरीर कैसे अधिक अधिक घटता जाता है इसके जानने के लिये बैल-गाड़ी और घोड़ा-गाड़ी का दृष्टान्त लें । बैलगाड़ी दिन-भर में अधिक से अधिक दस घण्टे चलती है । इतने समय में वह केवल बीस मील की यात्रा करती है । किन्तु घोड़ा गाड़ी उतने ही समय में पचास, साठ मील का अन्तर तय करती है । यदि दो एकसी मजबूत गाड़ियाँ लें और एक में बैल जोतें और दूसरे में घोड़े, तो अधिक काम पड़ने के कारण घोड़े की गाड़ी उतने ही समय में अधिक कमजोर हो जावेगी । यही हाल उन लोगों का है जिनकी रहन सहन सुधरे हुए देशवासीयों के समान हैं । शिक्षा, उद्योगधंधों की ईर्ष्या आदि के साथ मद्य और दूसरे दूसरे उत्तेजक पेयपदार्थ भी शरीर को हानि पहुंचाते हैं । उत्तेजक पेय-पदार्थों से रक्ताशय तथा मस्तिष्क की क्रिया तेजी से चलती है । इन पदार्थों के सेवन के बाद जो फुर्ती आती है वह खतम हो जाने पर भारी थकावट आती है । इससे स्पष्ट होगा कि इन पदार्थों के सेवन से देहरूपी रथ को कृत्रिम वेग किस प्रकार मिलता है और इस वेग के कारण शरीर के पुर्जे किस प्रकार घिस जाते हैं । इस प्रकार शिक्षा, उद्योग-धंधों की ईर्ष्या, अंग्रेजी राज में चाय, काफी, आदि किंचित उत्तेजक पेय पदार्थों से लगाकर मद्य जैसे अत्यंत उत्तेजक पेय पदार्थ का प्रचार आदि सब बातों से शरीर तथा मस्तिष्क में ४० या ५० वर्ष में ही वह परिवर्तन हो जाता है जो इन कारणों की अभावावस्थामें ७० या ८० में होता । इसका परिणाम (प्रतिकार के उपयोगका अवलम्बन न करने पर) शरीर के न्हास में और आयु क्षीण होने में ही होगा ।



## (१२) धार्मिक क्षेत्रका संकोच ।

बहुतसे लोग समझते हैं कि इस समय हम अपने धार्मिक क्षेत्रमें बड़े आजाद हैं, परंतु यह उनका भ्रम है। संध्या, अग्निहोत्र आदि करनेमें हम बेशक आजाद हैं, परंतु चातुर्वर्ण्य और चार आश्रमों के धर्मपालन करनेमें हम इस समय स्वतंत्र नहीं हैं, यह बात पाठक ठीक स्मरण रखें। इस लेख में हमने स्पष्ट रूपसे बताया है कि इस समय हमारे क्षात्रधर्म की उन्नति नहीं हो सकती, इतनाही नहीं, परंतु हम अपने क्षात्र धर्म का पालन भी नहीं कर सकते हैं। धनुर्वेदादी के प्रयोग करना, तथा वेद के युद्ध प्रसंग के मंत्रों का प्रत्यक्ष करना, इस समय सर्वथा अशक्य है।

हमारा धर्म चार वर्णोंके कर्तव्योंके संघरूप है। यदि एक वर्ण के कार्यक्षेत्रसे पूर्णतया वंचित हम हो गये तो समझना चाहिये एक चौथाई धर्मसे हम वंचित हो गये। यह कार्य क्षेत्रका संकोच केवल यहां तक ही नहीं है, आगे जा कर पाठक जान

सकते हैं कि वैश्य धर्म के क्षेत्रमें भी हम मर्यादासे बाहर कूद नहीं सकते हैं। यह सब जानते हैं। क्षत्रिय और वैश्य ये दो ही वर्ण बड़े और प्रबल वर्ण हैं। छाती से लेकर जंघाओं तक शरीर का भाग देखिये। यदि यह भाग अत्यंत क्षीण हुआ तो अन्य शरीर की गति क्या होगी? यही अवस्था हमारी हो गई है।

हमारा बुरा भला जो कुछ स्वराज्य था उस समय हमारे कार्यक्षेत्रका संकोच इतना नहीं हुआ था। बाहरके कार्यक्षेत्र के संकोचसे ही शारीरिक न्हास हो जाता है। और जब तक बाहर का कार्यक्षेत्र बढ़ेगा नहीं तबतक यह न्हास कम होना भी अशक्य सा है। इससे पाठक जान सकते हैं कि सांप्रतकी हमारी राजनैतिक अवस्था धर्मपालन के लिये भी विपरीत है। इसलिये हर एक धार्मिक मनुष्यको स्वराज्य सिद्धिके लिये अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। जिससे हम अपने धर्म का पालन पूर्ण रीतिसे कर सकें और पूर्ण उन्नत हो सकें।

# योगजिज्ञासाकी कहानी ।

( ले०- श्री० पं० अभय देवशर्माजी, विद्यालंकार )

## १३ योगसंबन्धी ज्ञान ।

जब से मेरी जिज्ञासा योगजिज्ञासा में परिणत हुई थी और मैंने 'योगी बनना' अपना लक्ष्य बनाया था उसके बाद से ही मैं यह स्पष्ट अनुभव करता चलने लगा कि मुझे योग की तरफ ले जाने वाली सामग्री तथा साधन स्वयमेव जुड़ते चले जा रहे हैं। प्रारंभ में दो चार जगह ऐसी बातें सुनने को मिली जिन से कि मेरा योग की तरह जाने का इरादा पक्का हो गया, मैंने समझ लिया कि यही एकमात्र मार्ग है। फिर अचानक कहीं कहीं से मुझे योग संबन्धी पुस्तकें पढ़ने को मिलती गयीं। इसी तरह आगे मुझे संपूर्ण आसन गुरुकुल में ही

सीखने का सुयोग मिल गया। फिर कहीं कहीं से विशेष आसन और प्राणायाम की विधियां पता लगी और धीरे धीरे योग की उत्तमोत्तम क्रियायें परमात्मा की परम कृपा से बड़े अच्छे अच्छे पूज्य महात्माओं से मिलती चली गयी। यह सब कथा तो आगे क्रमशः आवेगी, किन्तु यहां इस प्रकरण में इतना ही कहना है कि गुरुकुल वास के अन्त तक ( अर्थात् इन दो वर्षों में ) मुझे योग संबन्धी क्या क्या ज्ञान कहां कहां से प्राप्त हुआ।

इन वर्षों में भिन्न भिन्न समय में जो मैंने योग-संबन्धी पुस्तकें पढ़ी उनकी सूची मैं इकट्ठी यहीं नीचे देता हूं। योग संबन्ध में छोटी मोटी पुस्तक तक जो



कुछ मैंने पढ़ा उसकी यह परिपूर्ण सूची हैं। ये पुस्तकें भोजन के बाद या सफर में या अन्य ऐसे ही ( जब कि मैं अभ्यास नहीं कर सकता था ) अवसरों पर पढ़ी गयी हैं ।

( क ) हिन्दी की पुस्तकें ।

( १ ) योग सोपान-यह एक बहुत छोटी सी पुस्तक है ( २ ) धर्म निर्णय-इसमें योगियों की कहा-नियां हैं ( ३ ) योगसमाचार संग्रह-योगसंबंधी बातों का यह अच्छा संग्रह है ( ४ ) एकाग्रता व दिव्य शक्ति यह 'ओ इण्डु हारा' की एक पुस्तक का अनुवाद है ( ५ ) चरणदास के 'भक्तिसागर', पुस्तक के एक दो योगसंबंधी प्रकरण भी पढ़े हैं । यह कविता में है ।

( ख ) संस्कृत पुस्तकें ।

( १ ) शिवस्वरोदय-इसमें नासिका के स्वरों का वर्णन है ( २ ) घेरंडसंहिता और ( ३ ) हठयोगप्रदी-पिका-ये दोनों हठयोग की बड़ी उत्तम पुस्तकें हैं । घेरंडसंहिता संक्षिप्त और अधिक कमबद्ध है ( ४ ) शिवसंहिता यह भी हठयोग की पुस्तक है । पर इसमें विस्तार अधिक है और इसमें मुझे अत्युक्ति भी अधिक दीखती है ।

( ग ) अंग्रेजी की पुस्तकें ।

( १ ) How to be a yogi ( २ ) Mystery of Breath ( ३ ) अये टिकन 'रामचरककी' Hath Yoga ( ४ ) और Science of Breath ये चारों छोटी छोटी पुस्तकें मुझे लालाजी से मिली थी ।

( ५ ) Nature's finer forces का केवल अन्तिम भाग पढ़ा है । ( ६ ) एनि वीसेंट की 'Thought Power' तथा लेड वीटर की ( ७ ) Clairvoyance तथा ( ८ ) Dream भी पढ़ डाली है ।

इन सब पुस्तकोंमें से संस्कृत की चारों पुस्तकोंसे हठयोगसंबंधी बहुत परिचय प्राप्त हुआ और बहुतसा ज्ञान होना अभी शेष है तथा श्वाससंबंधी दोनों अंग्रेजी पुस्तकों से कुछ प्राण की व्यायामें मैंने सीखी हैं । शेष सब पुस्तकों से तो साधारणतया मुझे योग में बढ़ने की प्रबल प्रेरणा ही मिली है ।

पातंजल योगदर्शन तो मैंने द्वादश में अपनी पढ़ाई में ही पढ़ा था । अब उससे लाभ उठाने का भी विचार किया और उसके साधन पाद में लिखे योग के आठ अंगों में से प्रारंभिक दो अंगों को अर्थात् यम और नियमों को अपने जीवन में लानेका खूब यत्न करने लगा । इसके लिये यह नियम किया हुआ था कि एक यम और एक नियम को लेकर उन पर तीन दिन तक विशेषतया ध्यान रखता था और तीन दिन तक संध्या में इन्हीं दोनों पर विचार किया करता था इस प्रकार एक पक्ष में पांचों यमों और नियमों पर एकवार विशेष अमल और विचार पूरा हो जाता था । इन दिनों मैं इन का पालन बड़ी सचिन्तता से करता था, दूर तक देखता था कि मेरे किसी कर्म से कहीं कोई हिंसा, स्तेय या असत्य तो नहीं होता है । इन दिनों यम नियमों पर मेरा विचार भी काफी गहरा होगया था ।

हठयोग की संस्कृत पुस्तकें देखने पर और विशेषतया उनमें 'चन्द्र' का ( जिसका कि वाम-प्राण से संबन्ध है ) बड़ा महात्म्य वर्णित देखकर मुझे खास तौर पर चिन्ता हुई कि सबसे पहिले अपने प्राण की यह त्रुटि दूर करनी चाहिये । यह तो मैंने समझ ही लिया था कि मेरी शारीरिक कमजोरी या कब्ज आदि का असली कारण यही प्राण की त्रुटि है । इस त्रुटि के कारण आयु कम होती है ( बल्कि एक कथन के अनुसार तो 'छे मास में मृत्यु होजाती है' ) यह भी मैंने कई जगह पढ़ा था । अतः इस त्रुटि की तरफ मेरा बहुत ध्यान था । यद्यपि इन पुस्तकों में मुझे कुछ ऐसी क्रियायें भी दीखती थी जिनसे कि मुझे आशा थी कि मेरा प्राण सुधर सकता है, किन्तु इन्हे विना गुरु के करना मैं भयावह समझता था । अतः प्रबल इच्छा किसी प्राणविद्या जानने वाले गुरु के पाने की थी और उनके विना मिले मैं अभी तक कोई भी हठयोग की क्रिया नहीं करता था । तो भी दो आसन ( जिन्हें कि कईओं को व्यायाम के तौर पर करते देखा था और सुना था कि इनसे कब्ज हटती है ) मैंने सीखे थे और कभी कभी



किया कर करता था । इतने में यह हुवा कि वार्षिकोत्सव पर श्री० पं. श्री. दा. सातवलेकर जो गुरुकुल में आये हुवे थे और एक दिन जब कि मैं उनके पास से गुजर रहा था अचानक उन्होंने मेरा दुबला शरीर देखकर मुझसे वाचचीत छेडदी पंडित जी ने भी शायद तब नये नये ही आसन सीखे थे। उन्होंने आसनों का परीक्षण कर देखने को कहा और हम १८ विद्यार्थी औ ने चार दिन लगा कर उनसे सब आसन खसी लिये । अभी तक तो इन पुस्तकों के संस्कृत श्लोकों में लिखे आसनों का वर्णन पढ़ कर इनकी विधि कुछ समझ नहीं पड़ती थी । किन्तु अब एकवार क्रियात्मक तौर पर करके देख लेने पर मैं आसनों के प्रकरणों को बहुत कुछ समझने लगा । इन आसनों से भी मेरे शरीर में पर्याप्त लाभ दिखायी दिया । इस प्रकार यमनियमों के बाद आसनों से भी मेरा परिचय होगया ।

आगे एक दिन 'धर्मनिर्णय' पुस्तक पढ़ते हुवे वहां एक प्राणायाम लिखा देखा । यह कुम्भक प्राणायाम था और वहां विस्तार से स्पष्ट स्पष्ट लिखा हुवा था । मैंने सोचा कि इसे स्वयं करने में क्या हर्ज है । और मैं ने करना शुरू कर दिया । इसके करने से मैंने देखा कि मुझे स्वयं अच्छी तरह शौच आ जाता है । इस तरह इस प्राणायाम द्वारा मेरी कब्ज की चिन्ता का सर्वथा ही अन्त हो गया ।

किन्तु मेरी मुख्य चिन्ता तो आजकल अन्दर के उस प्राण संबन्धी त्रुटि की थी और इसके लिये मुझे किसी प्राणाभ्यासी योगी की तलाश रहती थी । पर गुरुकुल में रहते हुवे मैं योगियों की तलाश में कैसे फिर सकता था अतः यह सोचा था कि कम से कम अपनी दो मास की छुट्टियां तो इसी काम में लगाऊं । एक महात्मा का पता, जो कि इटावे में रहते थे लाला मुरारी लालजी ने मुझे बताया और कहा कि उनके दर्शन करके ही देख लो । इतने में जब की चतुर्दश श्रेणी की हमारी दो मास की छुट्टियां प्रारंभ होने में थोड़े ही दिन रह गये थे तो दफ्तर के एक नये चपडासी से एक विचित्र प्रकार से ऐसी बात छिड़ जाने से उस चपडासी ने लालाजी को बतलाया

कि यहां पास हो नागल ग्राम में एक योगी रहते हैं । यह समाचार सुन कर तो मुझे विशेष खुशी हुई कि वे स्वर योगी हैं । मैंने निश्चय कर लिया कि इन छुट्टियों में मैं नागल और इटावे तो अवश्य होकर आऊंगा और अभ्यास के लिये यदि कहीं रहना पड़े तो दो महीने वहीं बिताऊंगा ।

## ( १४ ) योगियों की तलाश ।

छुट्टियां प्रारंभ होते ही मैं अकेला अपना विस्तर उठाकर चुपचाप नागल ग्राम में पहुंचा और वहांसे 'भूरिया स्रोत' के इन सन्त के आश्रमका पता लगाया । ये स्वरयोगी साधु केवल लंगोट पहिनते थे, शरीर लंबा चौड़ा सर्वथा सुडोल और स्वस्थ था । पर उन्होंने मेरे पहुंचने से एकही दिन पहिले से पौन धारण कर लिया था । तोभी उन्होंने मुझे एक निर-भिमान जिज्ञासु देखकर सायंकाल इशारे से मेरा आगमन प्रयोजन प्छा। मैंने अपना हाल सुनाया, तो उन्होंने स्वयं करके मुझे एक आसन बतलाने की कृपा की जिससे कि मेरा प्राण ठीक हो सके । अगले दिन प्रातः उन्होंने गंगा की रेत पर लिखकर मुझे यह संदेश पहुंचाया 'अभी उन्हें यहां कष्ट होगा, वे देर तक रहना चाहते हैं तो वे फिर कभी आवें' । अतः मैं वहां दो दिन ही रहकर उन्हें प्रणाम कर और आशीर्वाद लेकर चला आया ।

यहां से मैं हमीरपुर गया और पिता जी के एक परिचित इटावे निवासी महाशय की चिट्ठी इटावे में एक वैश्य सज्जन के यहां ठहरने के लिये लेकर इटावा पहुंच गया । पहिले दिन ही सायंकाल ४ बजे मैं यमुना तट पर इन संन्यासी जी की तलाश में गया । स्वामीजी एक विद्वान् महात्मा थे, एक गद्दी के अधीश थे। रेलपर यात्रा नहीं करते थे। वहां इनकी बहुत स्तुति सुनी, पर मैंने देखा मेरे लिये यहां सफलता की आशा नहीं है क्यों कि मैंने उस आश्रम के बाहर के दर्वाजेपर इस आशय का तख्ता लगा हुवा देखा कि स्वामीजीसे प्रश्न आदि पुंछना मना है । और लोगों की बात चीतसे भी इस बात की पुष्टि हुई । खैर, बड़ी प्रतीक्ष के बाद ८ बजेके लगभग



पता लगा कि अब उनके दर्शन हो सकते हैं। वे बहुत से लोगों से घिरे बैठे थे उन पर पंखा हो रहा था। इन सबके पीछे मैं भी प्रणाम कर के बैठ गया, पर वहां तक तो वे जो कुछ कहते थे वह भी नहीं सुनायी देता था। कुछ देर बाद उन्होंने चुटकी बजायी जिसका कि यह मतलब था कि अब सब चले जायें। केवल दर्शन पाकर मैं भी सबके साथ उठ आया। उस समय वहां यह भी पता लगा कि कल स्वामीजी नाव द्वारा कहीं बाहर चले जायेंगे और बहुत दिनों में लौटेंगे। मैं सोचता सोचता नौ दस बजे शहर में अपने ठिकाने पर पहुंचा। “एक तो स्वामी जी से प्रश्न आदि करना मना है, फिर वे लोगों से घिरे रहते हैं तो उन तक पहुंचना कठिन है और यदि कसी तरह कुछ दिनों में मेरी उन तक पहुंच हो भी सके तो वे कल ही कहीं बाहर चले जायेंगे; अतः यहां किस प्रयोजन से और ठहरूँ” इस प्रकार सोच कर मैंने निश्चय किया कि प्रातः की ही गाड़ी से मैं चला जाऊँ और यह अपना अभिप्राय उन वैश्य सज्जन जी को कह दिया। उन्होंने कहा ‘आप तो एक महीना तक ठहरने का इरादा करके आये थे, एक ही दिन में चल दिये’। मैंने सब हाल कह सुनाया। और प्रातः ४ बजे की रेल से रवाना होने के लिये स्टेशन पर भी प्रातः ही पहुंच गया। पर वहां उस दिन मुसाफिरों की टिकट नहीं दिये गये। खबर सुनी कि गाड़ी बहुत भरी है और इसमें फौज जा रही है, अतः आज कोई मुसाफिर नहीं जा सकेगा। गाड़ी आयी और चली गयी। मैं क्या करता? हमीर पुर पहुंचने के लिये तो वही एक मात्र ठीक गाड़ी थी। अतः यह सोचकर कि अब कल इसी गाड़ी से जाऊंगा मैं शहर लौट आया। दिन भर काटा। सायंकाल इच्छा हुई कि ‘चलूँ आज फिर यमुना तट पर घूम आऊँ—स्वामी जी तो वहां नहीं होंगे पर आश्रम के अन्य लोगों से परिचय प्राप्त करूंगा’। आश्रम के समीप मैं ज्यों ही पहुंचा तो मैंने आश्चर्य से देखा कि सामने स्वामी जी अकेले आश्रम की तरफ चले आ रहे हैं। मैंने प्रणाम किया और उनके पीछे पीछे मकान के ऊपर

चल दिया। एक और आदमी दौड़ा आया और उसने स्वामीजी के विराज जाने पर उन्हें पंखा करना प्रारंभ किया। मैं भी स्वामी जी की आज्ञा से सामने बैठ गया। पता लगा कि स्वामीजी कहीं होकर अभी लौटे आ रहे हैं! जहां बहुत दिनों के लिये जाना था वहां नहीं जा सके। स्वामी जी ने मेरा हाथ चाल पूछा। इतने में स्वामी जी का अंगोछा उड़ कर नीचे जा गिरा। वह पंखा करनेवाला सेवक अंगोछा उठाने और उसे धोकर लाने के लिये नीचे चल गया। पंखा मेरे हाथ लगा और मैं खड़ा हो कर उनके और समीप आकर पंखा करने लगा। एक अन्य आदमी के समीप होने का जो संकोच था वह भी हट गया और मैं अकेला ही स्वामी के पास रह गया। अब मैंने खूब खुल कर स्वामी जी से बातें कीं। वाम प्राण को ठीक करने के संबन्ध में (जो कि मेरी मुख्य जिज्ञासा थी) तो स्वामीजी ने बड़ी सरलता से कह दिया कि यह विषय मेरा अनुभूत नहीं है, केवल शास्त्रों में पढ़ा हुआ है अतः कुछ नहीं बतला सकता। आगे समाधि क्या है, कुंडलिनी क्या है इत्यादि विषय पर बातें होती रहीं; जिन से कि बड़ा संतोष मिला। इनमें से एक बात यहां भी लिखने योग्य है। कुंडलिनी के प्रकरण में स्वामीजी ने कहा कि “उपनयन संस्कार में जो -

मम व्रते ते हृदयं दधामि

मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु ।

मम वाचमेकमना जुषस्व

बृहस्पतिष्टुवा नियुनक्तु मह्यम् ॥

यह मंत्र बोला जाता है यह केवल बोलने का

मंत्र नहीं है किन्तु किसी समय सच्चे आचार्य इस मंत्र के साथ सचमुच एकचित्तता द्वारा ब्रह्मचारी के अन्दर प्रविष्ट होते थे और उसके कुंडलिनी के मार्ग को साफ कर देते थे। इस क्रिया से ही आचार्य और ब्रह्मचारी का संबन्ध जुड़ता था और ब्रह्मचारी वास्तव में उपनीत (पास लाया गया) होता था। पर आजकल तो ऐसा कोई नहीं दिखलायी देता”। यह मैंने स्वामी जी के भाव को अपनी भाषा में जरा स्पष्ट करके लिख दिया है। अस्तु ।



इस प्रकार अपनी सब बातें पूछ कर और अंत में उनका आशीर्वाद लेकर और प्रणाम करके बड़ी प्रसन्नता से वापिस लौटा । स्वामीजी की कृपालुता का मुझे अभी तक स्मरण बना हुआ है ।

यह घटना मेरे जीवन की उन कुछ घटनाओं में से एक है जिनने कि इस बातमें मेरी श्रद्धा दृढ़ की है कि कल्याणस्वरूप परमात्मा बड़े अद्भुत तरीकों से हमारी इच्छायें पूरी करते हैं या हमें लाभ पहुंचाते हैं । मेरी गाड़ी छूट जाना, फिर यमुनातट पर जाने की मेरी इच्छा होना, स्वामीजी के आते ही अकेले मिल जाना और उनका अंगोच्छा नीचे गिर जानेसे सर्वथा एकान्त हो जाना ये सब बातें मेरे लिये होती चली गयी और मैं जो कि पिछले दिन सर्वथा निराश हो लौट जानेवाला था अब बड़ा आनन्दित होकर लौटा ।

इससे मैं सीधा महोवा गया । यह हमीरपुर के जिले में ही है । सुना था कि वहां एक योगी ठहरे हुवे हैं । वहां उनके भी दर्शन किये । उनकी बातों ने मेरी इस श्रद्धा को और पक्का किया कि योगियों की तालाश में भटकनसे भी कोई नहीं मिलता और जब समय आता है तो घर बैठे गुरु मिल जाते हैं । अपनी इस श्रद्धा के कारण वास्तव में मैं आजकल भी अपने प्रयोजन के कोई योगी न मिलने से कुछ भी दुःखी या व्याकुल न था । जिस से जो कुछ मिलता था उसे ही बहुत और अपने बड़े कल्याण की वस्तु समझता था ।

इसी वर्ष मेरी सगी बहिन का विवाह होकर चुका था और उसे एक सुयोग्य और साधु स्वभाव पति मिले थे । जब मैं ज्वालापूर महा-विद्यालय में पहिली बार ही बहिन को मिलने गया था और इन अपने भगिनीपति पं. रामावतार जी शास्त्री ( जो ज्वालापूर महा विद्यालय के स्नातक हैं और तब वहीं अध्यापक थे ) से पहिली बार ही परिचय हुवा था, ये तभी समझ गये थे कि मुझे योग की तरफ रुचि है । अतः इन्होंने मुझे यह कहा 'यदि आपने योगमार्ग में ही जाना है तो आप एक बार पं. दौलतरामजी से अवश्य मिलिये । वे पहिले अनूपश-

हर के पास रहा करते थे । एकबार मैं भी विरक्त होकर यहां से भागकर उनके पास गया था और वहां दमहीने तक रहा था...' । रामावतारजी ने मुझे वह क्रिया भी बतलायी थी जो पं. दौलतरामजी ने उन्हें प्रारंभ में उपदेश की थी और वे अब मेरे कहने पर पंडितजी का ठीक ठीक पता अनूपशहर पत्र लिखकर मालूम कर रहे थे । इस प्रकार मेरी बहिन के विवाह ने भी मुझे एक योगी का पता बतलाया । अस्तु । जब तक मैं छुट्टियों से लौटा तब तक उनका पता भी रामावतारजी ने मालूम कर लिया था । इस लिये अब आगे के सब से पहिले अवसर पर ही अर्थात् स्नातक परीक्षा देनेके बाद गुरुकुलोत्सव तक जो नये स्नातकों को घर जाने के लिये लगभग एक मास का अवकाश मिलता था उसमें हमें घरे न जाकर अनूपशहर जाने का निश्चय किया और गया ।

इस प्रकार अब मैं योगियों की तलाश में रहने वाला अर्थात् लोगों को भी दिखायी देने वाला 'योग जज्ञासु' बन गया । असल में तो योग के जिज्ञासु का ही पद बहुत ऊंचा है, भगवद्गीतामें कहा है—

“जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ।” मैं यह तो नहीं कह सकता कि मैं ऐसा योगजिज्ञासु हो गया था कि 'शब्द ब्रह्म को अति वर्तन कर गया था, ' अर्थात् मेरी बुद्धि वाणी के प्रपंच में (पुस्तकों शास्त्रों वचनों के शब्द जाल में) बिलकुल न फंस कर पीछे रखे हुवे तत्त्व को सीधा देखने लगी थी, किन्तु मैं अपने को योगका जिज्ञासु अवश्य अनुभव करता था और ( यद्यपि गीता के इस वाक्य का तो उस समय पता न था ) अन्दर ही अन्दर ऐसा ( उचित या अनुचित ) अभिमान भी रखता था कि मुझे कोई वस्तु मिल गयी है—मुझे कोई 'पद' प्राप्त हो गया है । अस्तु ।

मेरी यह योग की जिज्ञासा पूरी हुई या नहीं । पूरी हुई तो कैसे ? इत्यादि आगे की कथा पाठक अग्रिम भागोंमें देख सकते हैं ।

प्रथम खण्ड संपूर्ण ।





# ग्रंथ और ग्रंथकारों का स्वागत ।

## सामवेद संहिता ।

भाषाभाष्य

[ भाष्यकार— श्री. पं. जयदेवजी शर्मा, विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ । प्रकाशक — आर्य साहित्य मंडल, अजमेर । मू. ३ ) रु. ]

सामवेद संहिता संपूर्ण का भाषा भाष्य आर्य जनताके सम्मुख रखने के कारण हम श्री. पं. जयदेवजी शर्मा, विद्यालंकार का हार्दिक धन्यवाद करते हैं। इस पुस्तक में प्रारंभमें विस्तृत भूमिका दी है, जिसमें सामवेदके शाखा भेद, साम ब्राह्मण, सामगान, छंदस्, देवता, आदिके विषयमें उत्तम अनुसंधान किया है। पश्चात् सामवेदका पूर्ण भाष्य दिया है, नंतर कुछ शब्दोंके अर्थ दिये हैं। पं. जयदेवजी की अर्थ लेखन शैली ऐसी सुबोध है कि प्रायः सर्वत्र भावार्थ न लिखते हुए ही केवल अर्थ द्वारा ही स्पष्ट भावार्थ प्रदर्शित होता है। हमारा ख्याल है कि इसी प्रकार यदि वेदका सरल अर्थ लिखा जावे तो अत्यंत उत्तम होगा। हमें खुषी होती है कि श्री० पं० जयदेव शर्माजीने यह कार्य हाथमें लिया है और वे क्रमशः चारों वेद इसी प्रकार अक्षरार्थ से सुशोभित प्रकाशित करना चाहते हैं। इस लिये हम आर्यजनतासे सानुरोध प्रार्थना करते हैं कि हर एक आर्य इस अत्युपयोगी और अत्यंत प्रशंसनीय पुस्तक द्वारा अपने घरकी शोभा बढ़ावें और पंडित जीका उत्साह द्विगुणित करें, पंडित जीका यह भाष्य देख कर हमारा निश्चय हुआ है कि वे इस कार्य के लिये योग्य हैं। हमारा यह भी निश्चय है कि आर्य जनता ऐसे सुयोग्य विद्वान का उनके ग्रंथ अपनाने द्वारा उत्तम स्वागत करेगी। ग्रंथ की योग्यता की दृष्टिसे तथा आकार की दृष्टिसे मूल्य अति अल्प है। इसलिये हर एक मनुष्य इसको खरीद सकता है।

## २ अक्षर तत्त्व

( श्री. पं. गौरी शंकर भट्टा मसवानपुर, कानपुर मू. ॥ ) पं. गौरी शंकर भट्टजी के अक्षर पाठ

संपूर्ण भारतवर्ष में प्रसिद्ध हैं। इस पुस्तक में उन्होंने जिस ढंगसे सुलेख अक्षर तत्त्व बताया है वह अति लाभदायी है। जिनके मनमें बालकोंके अक्षर सुझौल हों ऐसी भावना है वे इस पुस्तकका सहारा अवश्य लें।

३ अथर्व वेद और जादूटोना ।

[ श्री. पं. जयदेव शर्मा, विद्यालंकार । प्र. महेश पुस्तकालय अजमेर । मू. ॥ ] [ पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी है ।

4 Our Duty Towards Our Depressed Brethren, 5 What is Arya Samaj.

६ वैदिक यज्ञ,

ये तीनों पुस्तक श्री० पं. शंकर नाथ जी प्रधान आर्य प्र० सभा बंगाल बिहार ने लिखकर प्रकाशित किये हैं। आर्य समाज के विषयमें जो लोग कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं वे उक्त अंग्रेजी पुस्तकें पढ़ें। “वैदिक यज्ञ” पुस्तक में पंडित जीने यज्ञके अहिंसात्मक होनेके विषयमें बहुत भावपूर्ण लेख लिखा है वह पुस्तक हर एक को पढ़ने योग्य है।

## ७ स्वास्थ्य साधन ।

( ले०—श्री० पं० रामचंद्रजी, गुरुकुल, होशंगाबाद ' मू० । ) ईशभक्तिसे शारीरिक शक्ति प्राप्त करनेके उपाय इस पुस्तकमें लिखे हैं वे उत्तम हैं।

## ८ शुद्धिसमाचार ।

इस पत्रिका का यह उदयांक बहुत ही प्रेक्षणीय है श्री. स्वा. चिदानंद सन्यासी श्रद्धानंद बाजार, दिल्ली । के संपादकत्वमें शुद्धिसमाचार प्रकाशित होता है। मू० १ ) है। अवश्य संग्राह्य है।

## ९ सार्व देशिक

( सं०—श्री० नारायण स्वामिजी, सार्वदेशिक भवन एस्प्लेनेड रोड देहली । ( वा० मू० २ ) आर्य समाजके सार्वदेशिक मिशन की उत्तम बातें तथा उत्तम वैदिक उपदेश इसमें पाठक देख सकते हैं।





अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

## अंतर्यामी ईश्वर को नमन ।

( १३ )

[ ऋषिः— भृग्वंगिराः । देवता — विद्युत् ]

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयितनवे ।

नमस्ते अस्त्यश्मने येना दूडाशे अस्यसि ॥ १ ॥

नमस्ते प्रवतो नपायतस्तपः समूहसि ।

मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥ २ ॥

प्रवतो नपात्रम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये तपुषे च कृणमः ।

विद्म ते धाम परमं गुहा यत्समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ॥ ३ ॥

यां त्वा देवा असृजन्त विश्व इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम् ।

सा नो मृड विदधे गृणाना तस्यै ते नमोऽस्तु देवि ॥ ४ ॥

अर्थ— ( विद्युते ते ) विशेष प्रकाशमान तुझको ( नमः ) नमस्कार ( अस्तु ) होवे ।  
( स्तनयितनवे ते नमः ) गडगडानेवाले तुझको नमस्कार होवे । ( अश्मने ते नमः अस्तु )  
ओले रूप तुझको नमस्कार होवे । ( येन ) जिससे तू ( दूडाशे अस्यसि ) दुःखदायी  
को दूर फेंकता है ॥ १ ॥ हे ( प्रवतः नपात् ) उच्चताको न गिरानेवाले ! ( ते नमः )  
तेरे लिये नमस्कार होवे । ( यतः ) क्योंकि तू ( तपः समूहसि ) तपको इकट्ठा करता है ।  
( नः तनूभ्यः मृडय ) हमारे शरीरोंको सुख दे और ( तोकेभ्यः मयः कृधि ) बच्चोंके  
लिये सुख प्रदान कर ॥ २ ॥ हे ( प्रवतः नपात् ) उच्चतासे न गिरानेवाले ! ( तुभ्यं  
एव नमः अस्तु ) तुम्हारे लिये ही नमस्कार होवे । ( ते हेतये तपुषे च नमः कृणमः )  
तेरे वज्र और तेजके लिये नमस्कार करते हैं । ( यत् ते धाम ) जो तेरा स्थान ( परमं  
गुहा ) परम गुहा अर्थात् हृदयरूपी गुहामें है वह हम ( विद्म ) जानते हैं । उस  
( समुद्रे अंतः ) समुद्रके अंदर ( नाभिः निहिता असि ) तू नाभिरूप रहा है ॥ ३ ॥ हे  
( देवि ) देवी ! ( असनाय ) शत्रुपर फेंकनेके लिये ( धृष्णुं इषुं कृण्वानाः ) बलवान



सुदृढ बाण करने वाले ( विश्वे देवाः ) सब देव ( यां त्वा ) जिस तुझको ( असृजन्त ) प्रकट करते हैं, ( तस्यै ते नमः अस्तु ) उस तेरे लिये नमस्कार होवे । ( सा ) वह तू ( विदथे गृणाना ) युद्धमें प्रशंसित होने वाली ( नः मृड ) हमें सुख दे ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे देवि ! ईश्वरी ! तू बिजुली आदि में अपना तेज प्रकट करती है, मेघोंमें गर्जना कराती है और अपनी शक्तिसे ओले भी बरसाती है, इन सब बातोंसे तू हमारे सब दुःखोंको दूर करती है, इस लिये तुझे हम सब प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥ हे उच्चतासे न गिरानेवाली देवी ईश्वरी ! तू तपोमय जीवन को हमारे अंदर इकट्ठा करती है अर्थात् हमारे में तपः शक्ति बढ़ाती है, उस तपसे हमें तथा हमारे संतानोंको सुखी कर, तेरे लिये हम प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥ हे उच्चतासे न गिरानेवाली देवी ईश्वरी ! हम जानते हैं, कि तेरा स्थान हृदय रूपी श्रेष्ठ गुफामें है, वहाँके समुद्रके अंदर तू मध्य आधार रूप होकर रहती है, इस लिये तेरा तेज और तेरे दुष्ट विघातक शस्त्रास्त्र अर्थात् तेरी शक्तिके सन्मुख हम सिर झुकाते हैं ॥ ३ ॥ हे देवी ईश्वरी ! शत्रुको दूर करनेके लिये शस्त्रास्त्र बनानेवाले सब विजयेच्छु लोग सदा तेरी भक्ति करते हैं, इस कारण युद्धोंमें प्रशंसित होनेवाली तू हमें सुख दे । हम सब तुझे प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥

### सूक्तकी देवता ।

इस सूक्तकी देवता “ विद्युत् ” है । यद्यपि विद्युत्का अर्थ बिजुली है, और इस सूक्तका प्रारंभ मेघस्थानीय विद्युत् के वर्णन से ही हुआ है, तथापि विद्युत् का वर्णन करना मुख्य उद्देश इस सूक्तमें नहीं है । जिस प्रकार अन्यान्य सूक्तों में अग्नि आदि देवताओंके मिषसे परमात्माका वर्णन होता है, उसी प्रकार विद्युत् रूप स्त्री देवता के मिषसे ईश्वरका, जगन्माता, आदिमाता देवीके रूपमें, परमात्माकाही वर्णन यहां हुआ है, इस बातको स्पष्ट व्यक्त करनेवाले इसी सूक्तके निम्न मंत्र भाग यहां देखने योग्य हैं—

१ “ प्रवतः न-पात् ” — “ प्रवत् ” शब्दका अर्थ उच्च स्थान है । उच्च अवस्था, उच्चता आदि भाव इस शब्दसे प्रकट होते हैं । उच्चता से न गिराने वाला यह “ प्रवतो न-पात् ” का भावार्थ है । परमात्माही मनुष्यमात्रको उच्च अवस्थामें रखनेवाला और वहाँसे न गिरानेवाला है । ( मंत्र २-३ )

२ “ ते परमं धाम गुहा ” — तेरा परम धाम हृदय की गुफामें है । हृदयमें



आत्माका निवास है, वही उसका परम पवित्र निवास-स्थान है, यह उपनिषदादिमें अनेक बार आगया है ।

३ “ समुद्रे अन्तः नाभिः निहिताऽसि । ” — उसी समुद्रमें मध्यभाग तू है । हृदय गुफामें मानस सरोवर है, समुद्र है, विचारोंका अथवा भावनाओंका महासागर है । उसकी नाभी उसका आधार स्थान, वही आत्मा है । क्योंकि इस समुद्रकी सब लहरें उसकी ही प्रेरणासे अथवा शक्तिसे उठती हैं और उसीकी भक्तिसे इस समुद्रमें शांति स्थापित होती है ।

४ “ यां त्वा देवा असृजन्त विश्वे । ” — जिस तुझको सब देव प्रकट करते हैं । आत्माका देवोंद्वारा प्रकाशित होना वेदमें अनंत स्थानोंमें स्पष्ट हुआ है । शरीरमें नेत्रादि सब इंद्रियोंद्वारा आत्माका प्रकाशन हो रहा है । यदि नेत्रादि इंद्रियें न हों, तो आत्माका अस्तित्व भी ज्ञात नहीं हो सकता । इस प्रकार सब इंद्रियादि देव शरीरमें आत्माको प्रकट करते हैं । विश्वमें सूर्यचंद्रादि देव परमात्माकी महिमा प्रकट कर रहे हैं । मनुष्य समाजमें सब विद्वान परमेश्वरकी प्रशंसा कह रहे हैं । इस प्रकार सर्वत्र देवोंद्वारा आत्मा प्रकाशित होता है ।

५ “ चिदथे गृणाना । ” — युद्धके समय इसकी भक्ति की जाती है । मनुष्य संकटमें पड़नेपर उसकी सहायताके लिये प्रार्थना करता है । थोड़े सज्जनोंको छोड़ दिया जाय तो प्रायः साधारण मनुष्य संकट समयमें ही ईश्वरकी भक्ति करने लगते हैं । मनुष्यपर संकट न आजाय, तो वह ईश्वरकी पर्वाह भी नहीं करेगा । युद्धमें सच्ची भक्ति होती है । मुख्य युद्ध जीवनयुद्ध है । मनुष्य युद्ध करके ही जीवित रहता है । विरोधीशक्तिसे सामना करना युद्ध है ।

इन सब मंत्र भागोंका वर्णन देखनेसे पता लगता है, कि इस सूक्तको परमात्माकी तैजस शक्तिकाही मुख्यतया वर्णन करना है । और वह वर्णन स्त्रीरूप देवीके वर्णन द्वारा यहां किया है ।

जिस प्रकार मनुष्यका नेत्र देखता है, परंतु अपनी शक्तिसे वह देख नहीं सकता, किंतु हृदयस्थानीय आत्माकी शक्तिसे ही देख सकता है; इसी प्रकार अन्यान्य इंद्रियें आत्माकी शक्तिसे प्रेरित होकर ही अपना अपना कार्य करती हैं । जैसी यह बात शरीर में है, उसी प्रकार जगत् की सूर्यादि देवतायें तेज फैलाना आदि कार्य अपनी शक्तिसे नहीं कर सकतीं । विश्वव्यापी परमात्माकी शक्ति लेकर ही सूर्य प्रकाशता, विद्युत् चमकती और वायु बहती है । इसलिये सूर्य प्रकाशसे, विद्युत्की चमकाहटसे अथवा वायुके



वेगसे न केवल इन देवताओंकी शक्तियां प्रकट हो रही हैं, परंतु परमात्माकी ही विविध शक्तियां प्रकट हो रही हैं। यह भाव ध्यानमें रखकर यदि पाठक इस सूक्तका विचार करेंगे, तो उनको इस सूक्तमें विद्युत् की चमकाहट से परमात्माका तेज फैल रहा है यही भाव विदित होगा। इसी रीतिसे इस सूक्तका विचार करना चाहिये।

प्रथम मंत्रमें विद्युत् की चमकाहट, मेघोंकी प्रचंड गर्जना, मेघोंसे बर्फ की वृष्टि अथवा जलकी वृष्टि आदि द्वारा परमात्माका प्रचंड कार्य देखना उचित है। इसीसे परमात्मा प्राणिमात्रके दुःख दूर करता है। वृष्टिसे अन्न और जल प्राप्त होनेके कारण प्राणियोंके अनंत क्लेश दूर हो रहे हैं। यही परमात्माकी कृपा है।

### तप का महत्त्व ।

द्वितीय मंत्रमें तपका महत्त्व वर्णन किया है। तप अपने हरएक शक्तिसे किया जाता है, वाणीका तप, मनका तप, शरीरका तप, ब्रह्मचर्यका तप, हरएक इन्द्रियका तप आदि अनेक तप मनुष्यको करने चाहियें। इन सब तपोंका जितना बड़ा ( तपः समूहसि ) समूह होगा, उतना उच्च स्थान उस मनुष्यको प्राप्त होगा। अर्थात् तपके जीवनपर मनुष्यका महत्त्व अवलंबित है।

जिस कारण तपके प्रभावसे मनुष्य उच्च होता है, उसी कारण तपके प्रभावसे ही मनुष्य नहीं गिरता। इसीलिये इस द्वितीय मंत्रमें उच्चतासे न गिरनेका हेतु तपका प्रभाव ( प्रवतः न-पात्, यतः तपः समूहसि ) कहा है। यहां पाठक इनका परस्पर संबंध देखें और गिरावटसे बचनेका कारण जान अपने आपको गिरावटसे बचावें। जो स्वयं अपने आपको गिरावट से बचा सकता है, वह दूसरों को सुखी कर सकता है।

### परमधाम ।

तृतीय मंत्रमें परमेश्वर के परम धामका पता दिया है। परमेश्वरका परम धाम हरएक के हृदयमें है, विशेषतः भक्तके हृदयमें ही है। परमेश्वरके भक्त ही उस धामको जानते हैं और वर्णन करते हैं। कौन दूसरा उसको जान सकता है और वर्णन कर सकता है ? यही स्थान जानना और इसीका अनुभव लेना मनुष्यका साध्य है।

मनुष्य समुद्रके अंदर गिर पड़ा है, इस समुद्र की लहरें बड़ी भारी लहरा रही हैं, प्रचंड वायु चल रहा है, धूवां धार मेघ बरस रहे हैं, बिजालियें चकमका रही हैं, और यह मनुष्य ऐसे प्रक्षुब्ध समुद्रमें सहायताके लिये पुकार रहा है। उसका ख्याल है, कि सहायता बाहरसे आनेवाली है। यही मनुष्यका भ्रम है, यही अज्ञान है और यही कमजोरी है।



यह तृतीय मंत्र स्पष्ट शब्दोंसे कह रहा है, कि उस प्रक्षुब्ध समुद्र का केन्द्र वही परमात्मा है और वह भक्तके हृदयमें विराजता है। हे भक्त ! यदि तू सचमुच उसकी सहायताके लिये पुकार रहा है तो अपने हृदयमें ही उसे ढूँढनेका यत्न कर, वहाँही उसका परम धाम है। और वहाँ ही वह अपने वैभवसे प्रकाश रहा है।

पाठको ! आप यह ध्यानमें रखिये कि आपमेंसे हरएक के हृदयमें वह आत्मज्योति है। वही सब उन्नति की सहायक शक्ति है। आप उसे पकड़ लीजिये, तो आपकी उन्नति निःसंदेह हो जायगी। सब जगत् अंदरसे बढ रहा है, बाहरसे नहीं। आपकी उन्नतिका भी यही नियम है।

### युद्धमें सहायता ।

युद्धके समय, शत्रुका हमला होनेके प्रसंगमें, डरके समयमें इस परमात्माकी सहायता सब चाहते हैं। मरण, दुःख आदिके कारण मनुष्य परमात्माकी खोज करते हैं। इसीलिये बड़े सत्पुरुष दुःख को स्वीकारते हैं और अन्योको सुख देते हैं। यही दुःखका महत्त्व है।

चतुर्थ मंत्रमें कहा है, कि “सब देव उसको प्रगट करते हैं।” इसका स्पष्टीकरण इससे पूर्व किया जा चुका है। “युद्धमें उसकी प्रशंसा या स्तुति प्रार्थना होती है” इसका भी कारण स्पष्टता पूर्वक हमने देखा है। यह सब इसलिये करते हैं कि “शत्रुको दूर भगानेके लिये प्रबल शक्ति प्राप्त हो।” जो परमात्मा के सच्चे भक्त होते हैं, या तो उनके सन्मुख कोई शत्रु नहीं ठहर सकता, अथवा जो उनकी शत्रुता करता है, वह स्वयं नष्ट हो जाता है। अर्थात् परमेश्वर भक्ति ही एक बड़ी भारी शक्ती है, जो संपूर्ण शत्रुओंका नाश कर सकती है।

### नमन ।

इस चार मंत्रोंके सूक्तमें परमेश्वरको सात बार नमन किया है, अर्थात् यहाँका अनेक बारका नमन सिद्ध कर रहा है, कि परमेश्वर की सार्वभौम सत्ताके सामने सिर झुकाना, उसको सर्वत्र उपस्थित समझना, उसीको सर्वतोपरि समझना मनुष्यकी उन्नतिके लिये अत्यावश्यक है। उसको छोड़ कर किसी दूसरेको नमन न करनेके संबंधमें “तुभ्यं एव नमोऽस्तु” ( मंत्र . ३ ) यह मंत्रभाग देखने योग्य है। “मैं तुझे ही नमन करता हूँ।” तेरेसे भिन्न किसी अन्यकी उपासना मैं नहीं करता, हे ईश्वर ! तेरे सामने ही मैं सिर झुकाता हूँ। मुझे अनुगृहीत कर और कृतार्थ कर। इस सूक्तमें सर्वोत्कृष्ट उपासना कही है पाठक इसका उपयोग उपासनाके समय कर सकते हैं।



# कुलवधू सूक्त ।

[ ऋषिः- भृग्वंगिराः । देवता- यमः ]

( १४ )

भगमस्या वर्च आदिष्यधि वृक्षादिव स्रजम् ।  
 महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम् ॥ १ ॥  
 एषा ते राजन्कन्या वधूर्निधूयतां यम ।  
 सा मातुर्वध्यतां गृहस्थो भ्रातुरथो पितुः ॥ २ ॥  
 एषा ते कुलपा राजन्तामु ते परि दद्यासि ।  
 ज्योक् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात् ॥ ३ ॥  
 असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च ।  
 अन्तः कोशमिव जामयोऽपि न ह्यामि ते भगम् ॥ ४ ॥

अर्थ— ( वृक्षात् अधि स्रजं इव ) वृक्षसे जिस प्रकार फूलोंकी माला लेते हैं, उस प्रकार ( अस्याः भगं वर्चः आदिषि ) इस कन्याका ऐश्वर्य और तेज मैं स्वीकारता हूं । ( महाबुध्नः पर्वतः इव ) बड़े जड वाले पर्वत के समान स्थिरतासे यह कन्या ( पितृषु ज्योक् आस्तां ) मातापिताके घर बहुत समय तक रहे ॥ १ ॥ हे ( यम राजन् ) नियमपालन करनेवाले स्वामिन् ! ( एषा कन्या ) यह कन्या ( ते वधूः ) तेरी वधू होकर ( निधूयतां ) व्यवहार करे । ( अथो ) अथवा ( सा ) वह माताके, भाईके ( अथो ) किंवा पिताके ( गृहे वध्यताम् ) घरमें रहे ॥ २ ॥ हे ( राजन् ) हे स्वामिन् ! ( एषा ) यह कन्या ( ते कुल-पा ) तेरे कुल का पालन करनेवाली है । ( तां ) उसको ( उ ते परि दद्यासि ) तेरे लिये देते हैं । यह ( ज्योक् ) उस समयतक ( पितृषु आसातै )



मातापिता के घरमें निवास करे ( आ शीर्ष्णः समोप्यात् ) जब तक सिर न सजाया जावे ॥ ३ ॥ ( असितस्य ) बंधन रहित, ( कश्यपस्य ) द्रष्टा ( च ) और ( गयस्य ) प्राण साधन करनेवाले ( ते ) तेरे ( ब्रह्मणा ) ज्ञान के साथ मैं ( ते भगं अपि नयामि ) तेरे ऐश्वर्यको बांधता हूं ( जामयः अंतः कोशं इव ) स्त्रियें अपनी पिटांरे को जैसी बांधती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ — [ १ ] वृक्षसे फूल और पत्ते निकाल कर जैसी माला बनाकर लोग पहनते हैं, उसी प्रकार इस कन्याका सौंदर्य और तेज मैं स्वीकारता हूं और उससे अपने आपको सजाना चाहता हूं । जिस प्रकार बड़ी जड़ वाला पर्वत अपनेही आधार पर स्थिर रहता है, उस प्रकार कन्याभी अपने मातापिताओंके घरमें निडर होकर देरतक सुरक्षित रहे ॥ १ ॥ [ २ ] हे नियमपालक पति ! यह हमारी कन्या तेरी बधू होकर नियम पूर्वक व्यवहार करे । जिस समय वह आपके घर न रहेगी उस समय वह पिता-माता अथवा भाईके घर रहे, परंतु किसी अन्यके घर जाकर न रहे ॥ २ ॥ हे पति ! यह हमारी कन्या तेरे कुल का पालन करनेवाली है, इसको तेरे लिये हम समर्पण करते हैं । जब तक इसका सिर सजाने का समय न आवे तबतक यह मातापिताके घरमें रहे ॥ ३ ॥ बंधन रहित, द्रष्टा और प्राणोंको स्वाधीन करनेवाले तेरे ज्ञानके साथ इस कन्याके भाग्यका संबंध मैं करता हूं । जिस प्रकार स्त्रियें अपने जेवर संदूकमें बंद रखती हैं, उस प्रकार इसका भाग्य सुरक्षित रहे ॥ ४ ॥

## पहिला प्रस्ताव ।

इस सूक्तमें चार मंत्र हैं । पहिले मंत्रमें भावी पतिका प्रस्तावरूप भाषण है । पति कन्याके रूपको और तेजको पसंद करता है और उस तेजका स्वीकार करना चाहता है । इस विषयमें मंत्रका रूपक अतिस्पष्ट है—

वृक्षवनस्पतियोंसे पत्ते फूल और मंजरियां लेकर लोक माला बनाते हैं, और उस माला को गलेमें धारण करते हैं । इस प्रकार यह कन्या सुगंधित फूलोंवाली चली है, इसके फूल और पत्ते ( मुख कमल और हस्तपल्लव )



अथवा इसका सौंदर्य और तेज मैं लेता हूँ और उससे मैं सुशोभित होना चाहता हूँ । अर्थात् मैं इस कन्याके साथ गृहस्थाश्रम करनेकी इच्छा करता हूँ । जैसा पर्वत अपने विशाल आधारपर रहता है, उस प्रकार यह कन्या अपने मातापिताओंके सुदृढ आधार पर रहे । अर्थात् मातापिताओंसे सुशिक्षा पाकर यह कन्या सुयोग्य बने और पश्चात् मेरे ( पतिके ) घर आजावे । ”

यह भाव प्रथम मंत्रका है । इसमें भावी पतिका प्रथम प्रस्ताव है । भावी पति कन्याका सौंदर्य और तेज पसंद करता है और उसके साथ विवाह करनेकी इच्छा प्रकट करता है । अर्थात् भावी पति कन्याकी प्रार्थना उसके माता पिताके पास करता है । और साथ यह भी कहता है कि, कन्या कुछ समय तक माता पिताके घर ही रहे अर्थात् योग्य समय आनेतक कन्या मातापिताके घर रहे, पश्चात् पतिके घर आवे ॥ योग्य समय की मर्यादा आगे तृतीय मंत्रमें आजायगी ।

इस मंत्रके विचारसे पता लगता है कि, पुरुष अपनी सहधर्मचारिणी को पसंद करता है । पुरुष अपनी पसंदी के अनुसार कन्याको चुनता है और अपना मानस कन्याके मातापिताओंसे निवेदन करता है । कन्याके मातापिता इस प्रस्ताव का विचार करते हैं और भावी पतिको योग्य उत्तर देते हैं ।

इस सूक्तसे यह स्पष्ट नहीं होता है, कि कन्याको भी अपने पतिके विषयमें पसंदी नापसंदीका विचार प्रदर्शित करनेका अधिकार है वा नहीं । प्रस्ताव होनेपर भी कन्याका मातापिताके घरमें देरतक वास्तव्य ( पितृषु कन्या ज्योक् आस्तां ) बता रहा है कि, यह प्रस्ताव कन्याके रजोदर्शन के पूर्व ही, अथवा उपवर होनेके पूर्व ही होना है । आजकल जिसको “ मंगनी ” कहते हैं, उसके समानही यह बात दीखती है । इस सूक्तमें कन्याका एक भी वचन नहीं है, परंतु भावी पति और कन्याके मातापिता या पालकों का ही भाषण है । इससे अनुमान होता है कि, कन्याको उतना अधिकार नहीं है, कि जितना पतिको है ।

तीसरे मंत्रमें कन्याके पालक कहते हैं कि, हम ( ते तां परि दत्त्रसि ) “ तेरेलिये इस कन्याको समर्पण करते हैं । ” यह मंत्र भाग स्पष्ट बता रहा है कि, कन्या इस विषयमें परतंत्र है । मंत्रमें दो बार आया है कि “ कन्या पिता माता अथवा भाई के घरमें रहे ”



अथवा आगे जाकर हम कह सकते हैं कि, विवाह होने पर वह पतिके घर रहे । परन्तु वह कभी स्वतन्त्रतासे न रहे ।

जिसप्रकार वृक्षका आधार उसकी जड़ें हैं, अथवा पर्वतका आधार उसकी अति विस्तृत बुनियाद है, उसी प्रकार कन्याका पहिला आधार मातापिता अथवा भाई है, और पश्चात्का आधार पति ही है । इससे भिन्न किसी अन्यका आधार स्त्रीको लेना उचित नहीं है ।

### प्रस्ताव का अनुमोदन ।

प्रथम मंत्रमें कहा भावी पतिका प्रस्ताव सुननेके पश्चात् कन्याके माता पिता विचार करके भावी पतिसे कहते हैं, कि —

“ हे नियमसे चलनेवाले स्वामिन् ! यह कन्या तेरे साथ नियमपूर्वक व्यवहार करे । तबतक यह माता पिता अथवा भाईके घरमें रहे ॥ हे स्वामिन् ! यह कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली है, इसलिये हम तेरे लिये इसका प्रदान करते हैं । यह तब तक मातापिता के घर रहे, जब तक इसके सिर सजानेका समय आजाय ॥ तू बंधनरहित, द्रष्टा और प्राणशक्तिसे युक्त है, इसलिये तेरे ज्ञान के साथ इस कन्याके भाग्यका सम्बन्ध हम जोड़ देते हैं । जैसी स्त्रियां अपने जेवरसंदूकमें बंद करती हैं उसप्रकार इसके साथ तेरा भाग्य सुरक्षित रखता हूं । ”

यह तीनों मंत्रोंका तात्पर्य है, यह बहुतही विचार करने योग्य है । पाठक इसका बहुत विचार करें । यहां उनकी सुविधाके लिये कुछ विचार किया जाता है —

### वर की परीक्षा ।

इस सूक्तमें पतिके गुण धर्म बताये हैं वे यहां देखने योग्य हैं —

१ यमः= यम नियमोंका पालन करनेवाला, धर्मनियमोंके अनुकूल अपना आचरण रखनेवाला ।

२ राजन्= राजा ( रञ्जयति ) । अपनी धर्मपत्नीका रंजन करनेवाला । ( यहां पत्नी के विषयका अर्थ होनेसे राजन् शब्दका अर्थ यह लेना योग्य है । ) राजा शब्दका अर्थ “ प्रकृति का रंजन करनेवाला । ” गृहस्थधर्ममें धर्मपत्नी पुरुष की प्रकृति ही है । उस धर्मपत्नीका संतोष बढ़ानेवाला ।



३ असितः= ( अ-सितः अवद्धः ) बंधन रहित । अर्थात् जिसका मन स्वतंत्रताका चाहनेवाला है । गुलामीके भाव जिसके मनमें नहीं हैं ।

४ कश्यपः- ( पश्यकः ) देखनेवाला । अपनी परिस्थितिको उत्तम रीतिसे जाननेवाला और अपने कर्तव्यको ठीक प्रकार समझनेवाला ।

५ गयः- ( प्राणबलयुक्तः ) प्राणायामादि योगसाधन द्वारा जिसने अपने प्राणोंका बल बढ़ाया है ।

६ ब्रह्मणा युक्तः- ज्ञानसे युक्त । ज्ञानी ।

ये छः शब्द इस सूक्तमें पतिके गुणधर्म बता रहे हैं ।

### पतिके गुणधर्म ।

धर्मनियमोंके अनुकूल आचरण करना, धर्मपत्नीको संतुष्ट रखना, स्वाधीनता के लिये यत्न करना, अपनी परिस्थितिको ठीक प्रकार जानना, योगादि साधन द्वारा अपनी दीर्घ आयु नीरोगता तथा सुदृढताका संपादन करना, ये गुण पतिकी योग्यता प्रदर्शित कर रहे हैं ।

यहां स्त्रीको संतुष्ट रखना धर्मानुकूल चलनेसे जितना हो सकता है उतनाही कहा है, क्योंकि “ यम राजन् ” ये दो शब्द इकट्ठे प्रयुक्त हुए हैं ।

अपनी कन्या के लिये वर ढूंढना हो तो उक्त छः गुणोंकी कसौटीसे ही ढूंढना तथा पसंद करना चाहिये । जिसका आचरण धर्मानुकूल हो, जो धर्मपत्नीके साथ प्रेमपूर्ण वर्ताव करनेवाला हो, जो स्वाधीनताके लिये प्रयत्नशील हो, जो अपनी अवस्थाको जाननेवाला और तदनुकूल कार्य व्यवहार करनेवाला हो, जो बलवान तथा नीरोग हो और स्वास्थ्य रक्षा कर सकता हो, तो उस वरको अपनी कन्या प्रदान करना योग्य है ।

तथा जो धर्मानुकूल आचरण नहीं करता, जो किसी के साथ प्रेममय आचरण नहीं करता, जो परार्धीनतामें रहता है, जो अपनी अवस्थाके प्रतिकूल आचरण करता है, तथा जो निर्बल और रोगी हो उसको किसी भी अवस्थामें अपनी कन्याके लिये वर रूपमें पसंद नहीं करना चाहिये ।



पाठक वर परीक्षाके विषयमें इन बातोंका ध्यान रखें । अब वधू परीक्षा करनेके नियम देखिये —

### वधू परीक्षा ।

इस सूक्तमें वधूपरीक्षा के निम्न लिखित मंत्र भाग हैं —

१ कन्या — ( कमनीया ) कन्या ऐसी हो, कि जिसको देखनेसे मनमें प्रेम उत्पन्न हो । रूप, तेज, अवयवोंकी सुंदरता, स्वच्छता, ज्ञान आदि सब बातें, जिससे देखनेवालेके मनमें प्रेम उत्पन्न होता हो, इस शब्दसे ज्ञात हो जाती हैं ।

२ वधू — ( उद्यते पतिगृहं ) जो पतिके घर जा कर रहना पसंद करती है । जो पतिके घरकोही अपना सच्चा घर मानती है ।

३ कुलपा — कुलका पालन करनेवाली । पिताके तथा पतिके कुलोंकी मर्यादाओंका पालन करनेवाली । जो अपने सदाचारसे दोनों कुलोंका यश बढ़ाती है ।

४ ते ( पत्युः ) भगम् — धर्म पत्नी ऐसी होनी चाहिये, कि जो पतिका भाग्य बढ़ावे । जिससे पतीको धन्यता अनुभव हो ।

५ पितृषु आस्ताम् — विवाहके पूर्व अथवा आपत्कालमें माता पिता अथवा भाई इनके घरमें रहनेवाली और विवाहके पश्चात् पतिके घर रहनेवाली । किसी अन्यके घर जाकर रहनेकी इच्छा न करनेवाली कन्या होनी चाहिये ।

६ वृक्षात् स्रक् — वृक्षसे पुष्पमालाके समान कन्या हो, पिताके कुल रूपी वृक्षको पुष्पमाला रूप कन्या सुगंधित करे ।

ये छः मंत्र भाग कन्याकी परीक्षा करनेके नियम बता रहे हैं । पाठक इनका उत्तम विचार करें और इन उपदेशोंके अनुकूल कन्याकी परीक्षा करें ।

### कन्याके गुणधर्म ।

कन्या सुरूप तथा तेजस्विनी हो, पतिके घर प्रेमपूर्वक रहनेवाली हो, दोनों कुलोंका यश अपने सदाचरणसे बढ़ाने वाली हो, पतिका भाग्य बढ़ानेवाली, यौवनके पूर्व पिताके घरमें तथा यौवन प्राप्त होनेके पश्चात् पतिके घर रहनेवाली, तथा पुष्पमालाके समान अपने कुलकी शोभा बढ़ाने वाली हो । इस प्रकारकी जो सुलक्षणी कन्या हो उसकोही पसंद करना योग्य है ।



परंतु जो फीकी, निस्तेज, दुर्मुखी, पतिके घर जानेकी इच्छा न करनेवाली, दुरा-  
चारिणी, पतिके भाग्यको घटानेवाली, तथा दोषयुक्त हो, वह कन्या विवाह के लिये  
योग्य नहीं है ।

### मंगनीका समय ।

इस सूक्तसे विवाहके समयका ठीक ज्ञान नहीं होता, क्योंकि उसका ज्ञापक कोई  
प्रमाण यहां नहीं है ॥ “ कन्या सिर सजानेके समय के पूर्व माताके घर देरतक रहे ”  
इस तृतीय मंत्रके कथनसे मंगनीका समय ऋतुप्राप्त होनेके पूर्व कुछ वर्ष — अधिकसे  
अधिक एक दो वर्ष — होना संभव है । तथापि वधूपरीक्षाके जो छः लक्षण ऊपर बताये  
हैं, वे लक्षण स्पष्टतया व्यक्त होने के लिये प्रौढदशाकी प्राप्तिकी अत्यंत आवश्यकता है ।  
“ पतिके घर जानेकी कल्पना ” जिस अवस्थामें कन्याके मनमें आती है वह अवस्था  
मंगनी की प्रतीत होती है । ये छः शब्द अच्छी प्रौढ प्रबुद्ध, करीब उपवर, कन्याकी  
अवस्था बता रहे हैं । पाठक सब शब्दोंका विचार अच्छी प्रकार करेंगे, तो उनको कन्या  
की किस आयुमें मंगनी होनी चाहिये इस विषयका निश्चय हो सकता है ।

भावी पति मंगनी करे और कन्याके माता पिता पूर्वोक्त लक्षणोंका खूब विचार करके  
भावीपतिके प्रस्तावका स्वीकार या अस्वीकार करें । इस सूक्तमें वरके मातापिता को  
तथा कन्याको अपना मत देनेका अधिकार है ऐसा माननेके लिये एकभी प्रमाण नहीं  
है । यह बात यदि किसी अन्य सूक्तमें आगे मिल जायगी, तो उस समय कही जायगी ।

### सिरकी सजावट ।

तृतीय मंत्रमें कहा है “ज्योक् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात् ।” (देरतक  
माता पिताके घरमें कन्या रहे, जबतक सिर सजानेका समय आजावे । ) यहां एक बात  
कहना आवश्यक है, कि जिस समय स्त्री ऋतुमती होती है, उस समय उसको “पुष्पवती”  
कहते हैं । पुष्पवती का अर्थ फूलोंसे युक्त, फूलोंसे अपने आपको सजाने योग्य । प्रथम रजो-  
दर्शन, प्रथम ऋतुप्राप्ति अथवा प्रथम पुष्पवती होते ही उसको फूलोंद्वारा सजानेकी प्रथा,  
विशेषतः उसका सिर फूलोंसे सजानेकी प्रथा भारतवर्षमें इस समय में भी है । म्हासूर  
और मद्रासकी ओर तो पहले गर्भाधानके प्रसंग के लिये सेकड़ों रूपयोंके फूल इस  
पुष्पवती स्त्रीकी सजावट के लिये लाये जाते हैं । मुंबई मेंभी कई जातियोंमें यह प्रथा है ।  
अन्य जातियोंमें कम है, परंतु सिरमें फूल पहननेका रिवाज इस ऋतुप्राप्तिके समय के



लिये विशेष है । यह रिवाज प्रतिदिन कम हो रहा है । एक धनाभाव के कारण और दूसरा उत्साहके अभाव के कारण यह रिवाज न्यून हो रहा है । धनी लोग इस प्रसंगके लिये सोने और रत्नोंके भी फूल बनाते हैं और पुष्पवती स्त्रीके चतुर्थ दिनमें उसका सिर बहुत सजाते हैं । जिन प्रांतोंमें घुंगट निकालनेका रिवाज है, उन प्रांतोंमें यह रिवाज कम है ऐसा हमारा ख्याल है, परंतु सच्ची बात वहां के लोग ही जान सकते हैं । इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि घुंगटकी प्रथा अवैदिक कारणोंसे हमारे समाजमें घुसगई है ।

### मंगनीके पश्चात् विवाह ।

इस सूक्तके देखनेसे प्रतीत ऐसा होता है कि, मंगनीके पश्चात् विवाह का समय बहुत दूर का नहीं है । प्रथम मंत्रमें वरसे पहिला प्रस्ताव अर्थात् मंगनीका प्रस्ताव हुआ है । और द्वितीय तथा तृतीय मंत्रमें ही कन्याके अर्पण का विषय आगया है । देखिये—

१ एषा कन्या ते वधूः निधूयताम् = यह हमारी कन्या तेरी पत्नी बन कर निःशेष व्यवहार करे । तथा—

२ एषा ( कन्या ) ते कुलपा, तां उ ते परिदद्यासि । = यह हमारी कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली है, इसलिये उसको तेरे लिये हम प्रदान करते हैं ।

३ ते भगं अपिनह्यामि = तेरा भाग्य [ इस कन्या के साथ ] बांधता हूं, अर्थात् इससे तू अलग न हो ।

ये मंत्र भाग स्पष्ट बता रहे हैं कि मंगनीका स्वीकार होनेके पश्चात् शीघ्रही विवाहका समय होता है । यद्यपि इसमें समय का साक्षात् उल्लेख नहीं है, तथापि, ( १ ) मंगनी, ( २ ) कन्यादान की संमति, ( ३ ) सिर सजानेके समयतक अर्थात् पुष्पवती होनेतक कन्याके पितृघरमें निवास का विधान स्पष्ट बता रहा है, कि मंगनी के पश्चात् विवाह होनेके बात ऋतुमनी और पुष्पवती होनेके नंतर कन्याका पतिके घर निवास होनेका क्रम दिखाई देता है । पाठक इस विषयमें अधिक विचार करें । यह विषय अन्यान्य सूक्तोंके साथ संबंधित है, इस लिये इस विवाह प्रकरणके सूक्त जहां जहां आवेंगे, वहां वहां इसके साथ संबंध देख करही सब बातोंका निर्णय होगा । पाठक भी इस विषयमें अपने विचारों की सहायता देंगे, तो निश्चय अधिक निर्दोष होना संभव है ।



## संगठन महायज्ञ सूक्त ।

[ ऋषिः— अथर्वा । देवता— सिंधुः ]

( १५ )

सं सं स्रवन्तु सिंधवः सं सं वाताः सं पतत्रिणः ।  
इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां संस्त्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ १ ॥

इहैव हवमायात म इह संस्त्रावणा उतेमं वर्धयता गिरः ।  
इहैतु सर्वो यः पशुरस्मिन् तिष्ठतु या रयिः ॥ २ ॥

ये नदीनां संस्रवन्त्युत्सासः सदमक्षिताः ।  
तेभिर्मे सर्वैः संस्त्रावैर्धनं सं स्त्रावयामसि ॥ ३ ॥

ये सर्पिणः संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च ।  
तेभिर्मे सर्वैः संस्त्रावैर्धनं सं स्त्रावयामसि ॥ ४ ॥

अर्थ — ( सिंधवः ) नदियां ( सं सं स्रवन्तु ) उत्तम रीतिसे मिलकर बहती रहें,  
( वाताः सं ) वायु उत्तम रीतिसे मिलकर बहते रहें, ( पतत्रिणः सं ) पक्षी-भी उत्तम  
गतिसे मिलकर उड़ते रहें । इसीप्रकार ( प्र दिवः ) उत्तम दिव्य जन ( मे इमं यज्ञं )  
मेरे इस यज्ञको ( जुषन्तां ) सेवन करें, क्योंकि मैं ( संस्त्राव्येण हविषा ) संगठन के  
अर्पणसे ( जुहोमि ) दान कर रहा हूं ॥ १ ॥ ( इह एव ) यहां ही ( मे हवं ) मेरे यज्ञ-  
के प्रति ( आयात ) आओ ( उत ) और हे ( संस्त्रावणाः ) संगठन करनेवाले ( गिरः )  
वक्ताओ ! ( इमं वर्धयत ) इस संगठनको बढ़ाओ । ( यः सर्वः पशुः ) जो सब पशुभाव



है वह ( इह एतु ) यहाँ आवे और ( अस्मिन् ) इसमें ( या रयिः ) जो संपत्ति है, वह ( तिष्ठतु ) रहे ॥ २ ॥ ( नदीनां ) नदियोंके जो ( अक्षिताः उत्सासः ) अक्षय स्रोत इस ( सदं ) संगठन स्थानमें ( संस्रवन्ति ) बह रहे हैं, ( तेभिः मे सबैः संस्रावैः ) उन मेरे सब स्रोतोंसे हम सब ( धनं ) धन ( संस्रावयामसि ) इकट्ठा करते हैं ॥ ३ ॥ ( ये ) जो ( सर्पिषः ) घीकी ( क्षीरस्य ) दूधकी और ( च उदकस्य ) जलकी धाराएं ( संस्रवन्ति ) बह रही हैं, ( तेभिः मे सबैः संस्रावैः ) उन सब धाराओंसे हम ( धनं संस्रावयामसि ) धन इकट्ठा करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ - नदियां मिलकर बहती हैं, वायु मिलकर बहते हैं, पक्षी भी मिलकर उड़ते हैं, उस प्रकार दिव्य जन भी इस मेरे यज्ञमें मिल जुल कर संमिलित हों, क्योंकि मैं संगठनके बढानेवाले अर्पण से ही यह संगठनका महा यज्ञ कर रहा हूँ ॥ १ ॥ सीधे मेरे इस संगठनके महायज्ञमें आजाओ और हे संगठनके साधक वक्ता लोगो ! तुम अपने उत्तम संगठन बढानेवाले वक्तृत्वोंसे इस संगठन महा यज्ञको फैला दो । जो हम सबमें पशुभाव हो, वह यहाँ इस यज्ञ में आवे और हम सबमें धन्यताका भाव चिरकालतक निवास करे ॥ २ ॥ जो नदियोंके अक्षय स्रोत इस संगठन महायज्ञमें बह रहे हैं उन सब स्रोतोंसे हम अपना धन संगठन द्वारा बढाते हैं ॥ ३ ॥ क्या घी, क्या दूध और क्या जलकी धाराएं हमारे पास बह रहीं हैं, उन सब धाराओंसे हम अपना धन इस संगठन द्वारा बढाते हैं ॥ ४ ॥

### संगठनसे शक्तिकी वृद्धि ।

यह संगठन महायज्ञका सूक्त है । इसके प्रथम मंत्रमें संगठन से शक्ति बढनेका वर्णन है, वह संगठन करनेवालोंको देखना और उसपर खूब विचार करना चाहिये । देखिये —

१ सिंधवः — नदियां । जो जल बहता है उसको स्रोत कहते हैं । इस प्रकारके सैकड़ों और हजारों स्रोत जब इकट्ठे होते हैं और अपना भेदभाव छोडकर एकरूप हो-



कर बहते हैं, तब उसका नाम “नदी” होता है । नदी भी जिस समय महापूरसे बहती है, उस समय विविध छोटे स्रोतोंके एक रूप होकर बहनेके कारण जो महाशक्ति प्रकट होती है, वह अपूर्व ही शक्ति है । यह नदी इस समय बड़े बड़े वृक्षोंको उखाड़ देती है; जो उसके सामने आजाते हैं उनको भी अपने साथ बहा देती है । बड़े वृक्ष, बड़े मकान, बड़े पहाड़ भी महानदीके वेगके सामने तुच्छ हो जाते हैं । यह वेग कहाँसे आता है ?

पाठक विचार करेंगे तो पता लग जायगा कि, यह वेग छोटे स्रोतमें नहीं होता, परंतु जब अनंत छोटे स्रोत एक रूप होकर और अपना भेद भाव नष्ट कर एकरूपसे बहने लगते हैं; अर्थात् अनंत छोटे स्रोत अपना संगठन करते हैं, तभी उनमें यह अश्रुतपूर्व शक्ति उत्पन्न होती है । इस प्रकार नदियां मनुष्योंको “ संगठन द्वारा अपनी शक्ति बढानेका उपदेश ” दे रहीं हैं ।

२ वातः—वायु भी इसी प्रकार मनुष्यों को संगठन का उपदेश दे रहे हैं । छोटे छोटे वायु जिस समय बहते हैं उस समय वृक्षके पत्ते भी नहीं हिलते, परंतु वेही सब एक होकर प्रचंड वेगसे जब बहने लगते हैं तब महावृक्ष टूट जाते हैं और मनुष्य भी डर जाते हैं । पाठक इन झंझा वातोंसे भी संगठन के बलका उपदेश ले सकते हैं । इस प्रकार वायु भी संगठन का उपदेश मनुष्यों को दे रहा है ।

३ पक्षी—पक्षी भी संगठन करते हैं । जब एकएक पक्षी होता है तो उसको दूसरा कोई भी मार सकता है, परंतु जब सैंकड़ों और हजारों चिड़ियां एक कलापमें रहकर अपना संगठन करती हैं, तब उनकी शक्ति बड़ी भारी होती है । इस प्रकारके पक्षियोंके कलाप बड़े बड़े खेतोंका धान अल्प समयमें प्राप्त करके खा जाते हैं । यह संगठन का सामर्थ्य पाठक देखें और अपना संघ बना कर अपना ऐश्वर्य बढावें । पक्षी यह उपदेश मनुष्योंको अपने आचरण से दे रहे हैं ।

इस प्रकार पहिले मंत्रने ये तीन उदाहरण मनुष्योंके संमुख रखकर संगठन का महत्त्व बताया है । यदि पाठक इन उदाहरणोंका उत्तम मनन करेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि अपना संगठन किस प्रकार किया जाय ।



## यज्ञमें संगतिकरण ।

यज्ञ में संगठन होता ही है । कोई यज्ञ ऐसा नहीं है कि जिसमें संगतिकरण न हो । यज्ञका मुख्य अर्थ संगठन ही है । प्रथम मंत्रके द्वितीयार्ध में इसीलिये कहा है, कि नदियोंमें, वायुओंमें और पक्षियोंमें संगठन की शक्ति अनुभव करके उसप्रकार अपने संगठन बनानेके उद्देश्यसे हमारे समाज के अथवा हमारे देश, जाती या राष्ट्रके लोग, इस संगठन महायज्ञमें संमिलित हों । एक स्थानपर जमा होना पहिली सीढ़ी है । इसके पश्चात् परस्पर समर्पण करने से संगठनकी शक्ति बढ़ने लगती है । हवनमें सात प्रकारकी समिधाएं एकत्रित होती हैं और अग्नि द्वारा प्रकाश करती हैं । यदि एक एक समिधा अलग होगी तो अग्नि बुझ जायगा । इसीप्रकार जातीके सब लोग संगठित होनेसे उस जातीका यश चारों दिशाओंमें फैलता है, परंतु जिस जातीमें एकता नहीं होती, उसकी दिन प्रति दिन गिरावट होती जाती है । इससे यहां स्पष्ट हुआ कि संगठन करनेवाले लोगोंमें परस्पर के लिये आत्मसमर्पण का भाव अवश्य चाहिये ।

इस प्रकार प्रथम मंत्रने संगठन करनेके मूल सिद्धान्तोंका उत्तम उपदेश दिया है ।

## संगठन का प्रचार ।

“सब लोग यहां आजाय, उनकी एक परिषद बने और संगठन बढ़ानेवाले उत्तम वक्ता अपने ऐक्यभाव बढ़ानेवाले वक्तृत्व से इस संगठन महायज्ञ का फैलाव करें ।” यह द्वितीय मंत्रके पूर्वार्धका भाव है ।

सभा, परिषद, महासभा आदि द्वारा जातियोंका संगठन करनेकी रीति इस मंत्रार्धमें कही है । सब लोग इसका महत्व जानते ही हैं । आगे जाकर इसी द्वितीय मंत्रमें एक महत्त्व पूर्ण बात कही है वह अवश्य ध्यानसे देखने योग्य है—

## पशुभाव का यज्ञ ।

“ जो सब पशुभाव हम सबमें हों वह इस यज्ञमें आजायें, और यहां ही रहें अर्थात् फिर हमारे साथ वह पशुभाव न रहें । ” पशुभाव की प्रधानता जिन मनुष्योंमें होती है, उनमें ही आपसके झगडे होते हैं । यदि पशुभाव संगठन के लिये दूर किया जाय और मनुष्यत्व का भाव बढ़ायाजाय, तो आपस के झगडे नहीं होंगे । इस लिये पशुभाव



की यज्ञमें समाप्ति करनेकी सूचना इस द्वितीय मंत्रके तृतीय चरणमें दी है और संगठन के लिये वह अत्यंत आवश्यक है । इसके बिना कोई संगठन हो ही नहीं सकता ।

## पशुभाव छोड़नेका फल ।

पशुभाव छोड़ने और मनुष्यत्वका विकास करनेसे तथा संगठनसे अपनी शक्ति बढ़ानेसे जो फल होता है उसका वर्णन द्वितीय मंत्रके चतुर्थ चरणमें किया है—

“ जो धन है वह इस हमारे समाजमें स्थिर रहे । ” संगठन का यही परिणाम होना है । जिससे मनुष्य धन्य होता है उसका नाम धन है । मनुष्यको धन्य बनानेवाले सब यज्ञ मनुष्यको अपने संगठन करनेके पश्चात् ही प्राप्त हो सकते हैं । इस द्वितीय मंत्रमें संगठनके नियम बताये हैं, वे ये हैं—

१ एक स्थानपर संमिलित होना, सभा करना;

२ उत्तम वक्ता संगठन का महत्त्व जनताको समझा देवे;

३ अपने अंदरका पशुभाव छोड़ कर. पशुभावसे मुक्त होकर लोग वापस जाय, सब लोग मनुष्य बन कर बर्ताव करें ।

इन बातोंके करनेसे संगठन होना संभवनीय है । इस प्रकार जो लोग संगठन करेंगे, वे जगत् में धन्य हो जायेंगे ।

तृतीय और चतुर्थ मंत्रमें फिर नदियोंके और जलोंके स्रोतों का वर्णन आया है, जो पूर्वोक्त रीतिसे एकताका उपदेश पुनः पुनः कर रहा है । संगठन करनेवालोंको धी, दूध, दही आदि पदार्थ भरपूर मिल सकते हैं, मानों उनमें इन पदार्थोंकी नदियांही बहेंगी । इस लिये संगठन करना मनुष्योंकी उन्नतिका एक मात्र प्रधान साधन है ।

इस कारण तृतीय और चतुर्थ मंत्रोंके उत्तरार्धमें कहा है, कि “ इन संघटित प्रयत्नोंसे हम अपना धन बढ़ाते हैं । ” संघटित प्रयत्नोंसे ही यश धन और नाम बढ़ता है ।

आशा है कि पाठक इस सूक्तका अधिक विचार करेंगे और संगठन द्वारा अपनी पुरुषार्थ शक्ति बढ़ाकर अपना यश चारों दिशाओंमें फैलायेंगे ।



# चोर - नाशन - सूक्त ।

[ ऋषिः — चातनः । देवताः — अग्निः, इन्द्रः, वरुणः ]

( १६ )

येऽमावास्यां रात्रिमुदस्थुर्ब्राजमात्रिणः ।  
 अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्यमाधिब्रवत् ॥ १ ॥  
 सीसायाध्याह वरुणः सीसायाग्निरुपावति ।  
 सीसं मे इन्द्रः प्रायच्छत्तदङ्ग यातुचातनम् ॥ २ ॥  
 इदं विष्कंधं सहत इदं बाधते अत्रिणः ।  
 अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः ॥ ३ ॥  
 यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम् ।  
 तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥ ४ ॥

अर्थ — ( ये अत्रिणः ) जो डाकू चोर ( अमावास्यां रात्रीं ) अमावसीकी रात्रीके समय हमारे ( ब्राजं ) समूहपर ( उदस्थुः ) हमला करते हैं, उस विषयमें ( यातुहा सः तुरीयः अग्निः ) चोरों का नाशक वह चतुर्थ अग्नि ( अस्मभ्यं ) हमें (अधि ब्रवत्) सूचना दें ॥ १ ॥ वरुण ने सीसेके विषयमें ( अध्याह ) कहा है । अग्नि सीसेको ( उपावति ) रक्षक कहता है । इन्द्रने तो ( मे ) मुझे सीसा ( प्रायच्छत् ) दिया है । हे ( अंग ) प्रिय ! ( तत् यातुचातनम् ) वह डाकू हटाने वाला है ॥ २ ॥ ( इदं ) यह सीसा ( विष्कंधं ) रुकावट करने वालोंको ( सहते ) हटाता है । यह सीसा ( अत्रिणः ) डाकूओंको ( बाधते ) पीडा देता है । ( अनेन ) इससे ( पिशाच्या या विश्वा जातानि ) पिशाचोंकी जो सब जातियां हैं, उनको ( ससहे ) मैं हटाता हूं ॥ ३ ॥ ( यदि नः गां हंसि ) यदि हमारी गायको तू मारता है, ( यदि अश्वं ) यदि घोड़ेको और ( यदि पूरुषं ) यदि मनुष्यको मारता है ( तं त्वा ) तो उस तुझको (सीसेन विध्यामः) सीसेसे हम वेधते हैं, ( यथा ) जिससे तू ( नः अवीर-हा असः ) हमारे वीरोंका नाश करनेवाला न होवे ॥ ४ ॥



भावार्थ— अमावास्या की अंधेरी रात्रीके समय जो डाकू हमारे संघ-पर हमला चढ़ाते हैं, उस विषयमें हमें ज्ञानसे उपदेश मिला है ॥ १ ॥ जलका रक्षक तथा उपदेशक सीसेकी गोली का प्रयोग करनेको प्रेरणा देते हैं । शूर वीरने तो सीसेकी गोली हमें देरखी है । हे बंधुओ ! यह डाकुओं को हटानेवाली है ॥ २ ॥ यह सीसेकी गोली डाकुओंको हटाती है और प्रतिबंध करनेवालोंको दूर करती है । इससे खून पीने वाली सब जातियोंको दूर भगाया जाता है ॥ ३ ॥ हे चोर ! यदि तू हमारी गाय, हमारा घोड़ा अथवा मनुष्यका वध करेगा, तो तुझपर हम गोली चलावेंगे, जिससे तू हमारा नाश करने के लिये फिर जीवित न रह सकेगा ॥ ४ ॥

### सीसेकी गोली ।

इस सूक्तमें सीसेकी गोलीका प्रयोग डाकुओंपर करनेको कहा है । सूक्तमें केवल “सीस” शब्द है, गोली का वाचक शब्द नहीं है । तथापि “सीसेन विध्यामः” (सी-सेके द्वारा वेध करेंगे) इस प्रयोगसे सीस शब्दसे सीसेकी गोली का भाव समझना उचित है । केवल सीसका उपयोग डाकुओंके नाशमें किसी अन्य प्रकार संभवनीय नहीं दीखता है । (विध्यामः) वेध करनेका भाव दूरसे चांदमारीके समान निशाना मारना है । आज कल सीसेकी गोली बंदूककी नलीमें रखकर दूरसे शत्रुको वेधते हैं । बाणभी मनुष्यपरसे दूरसेही निशाने पर फेंका जाता है । तात्पर्य इन मंत्रोंके शब्द बता रहे हैं कि सीसेकी गोलीसे दूरसेही डाकुओंका वेध करना चाहिये । लाठी सोटीके समान यह पाससे नहीं प्रयोग होता है इतना ही यहां बताना है ।

### शत्रु ।

“अत्रिन्, यातु” आदि शब्दोंके अर्थ सप्तम सूक्तके विवरणमें किये हैं, पाठक वहां ही देखें । ये सब शब्द डाकु चोर लुटेरे अर्थात् समाजके शत्रुओंके वाचक हैं । इनसे भिन्न जिन शब्दोंका विचार इससे पूर्व नहीं हुआ उनका यहां करते हैं—

( १ ) विष्कंभ = प्रतिबंध करनेवाला, रुकावटें उत्पन्न करनेवाला, हरएक बातमें विघ्न डालने वाला ।

( २ ) पिशाच, पिशाची = रक्त पीनेवाले और कच्चा मांस खानेवाले क्रूर लोग, जो मनुष्यका मांस भी खाते हैं ।



ये सब तथा ( अग्निः ) भूखे डाकू, ( यातुः ) चोर ये सब समाज के शत्रु हैं। इनको उपदेशद्वारा सुधारनेका विषय पूर्व आये हुए ( कां० १ सू० ७, ८ ) धर्मप्रचारके सूक्तोंमें आचुका है। जो नहीं सुधरते उनको दंडके लिये क्षत्रियोंके आधीन करनेकी आज्ञा भी सप्तम सूक्तके अंतमें दी है। उपदेश और दण्ड इन दो उपायोंसे जो नहीं सुधरते उनपर सीसेकी गोलीका प्रयोग करनेका विधान इस सूक्तमें आया है। अपने संगठन करनेका उपदेश पूर्व सूक्तमें करनेके पश्चात् इस सूक्तमें शत्रुपर गोली चलानेकी आज्ञा है यह विशेष ध्यानसे देखना चाहिये। जिनका आपसमें उत्तम संगठन नहीं है यदि ऐसे लोग शत्रुपर हमला करेंगे, तो संभव है कि वे स्वयं ही नष्टभ्रष्ट होजायेंगे। इसलिये “ प्रथम अपना संगठन और पश्चात् शत्रुपर चढाई ” यह नियम ध्यानमें रखना चाहिये।

### आर्य वीर ।

अग्नि, इन्द्र आदिके विषयमें सूक्त सातके प्रसंगमें वर्णन आया ही है। ( अग्निः ) ज्ञानी उपदेशक, ( इन्द्रः ) शूरवीर ये आर्यवीर हैं यह पहिले बताया है। इन दो शब्दोंसे ब्राह्मण और क्षत्रियोंका बोध होता है यह बात पहिले बतायी जाचुकी है।

इस सूक्तमें “ वरुण ” शब्द आया है। वरुण समुद्र अथवा जलका अधिपति वेदमें तथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है। जलस्थान, नदी आदि, तथा समुद्र परसे जो शत्रुओंके हमले होते हैं उनसे रक्षा करनेका यह ओहदेदार है। जिस प्रकार “ अग्नि ” शब्द ब्राह्मणत्ववाचक, “ इन्द्र ” शब्द क्षात्रधर्मका बोधक है उसी प्रकार “ वरुण ” शब्द जलमार्गसे आने जानेवाले और देशांतरोंमें व्यापार करनेवाले वैश्योंका अथवा वैश्यत्वका सूचक यहां प्रतीत होता है। इस लिये गोली चलाने के विषयमें ( अग्नि ) ब्राह्मण, ( इन्द्र ) क्षत्रिय और ( वरुण ) वैश्यने भी संमति दी है और ( इन्द्र ) क्षत्रियने तो सीसेकी गोलियां हमारेपास दे रखी हैं, इत्यादि द्वितीय मंत्रका भाव इस प्रकार स्पष्ट होजाता है। सप्तम सूक्त में दिये उपदेशानुसार ब्राह्मण प्रचारकोंने प्रयत्न किया और उन्होंने कहा कि ये डाकू सुधरते नहीं हैं, क्षत्रियोंने भी कहा कि अनेक बार देह-दंड देने पर भी इन दुष्टोंका सुधार नहीं हुआ, वैश्य तो लूटे जानेके कारण कहते ही रहे, इस प्रकार तीनों वर्णोंकी परिषदने जब गोली चलानेकी आज्ञा दी, तब इस सूक्तके आधारपर गोली चलायी जा सकती है। पाठक यह पूर्वापर संबंध अवश्य ध्यानमें रखें।

सूक्तकी शेष बातें स्पष्ट हैं। इस लिये अधिक विवरण की आवश्यकता नहीं है।

( यहां तृतीय अनुवाक और पहिला प्रपाठक भी समाप्त हुआ । )



## रक्त स्राव बंद करना ।

[ ऋषिः - ब्रह्मा । देवता - योषित् ]

( १७ )

अमूर्या यन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः ।

अभ्रातर इव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः ॥ १ ॥

तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे ।

कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिद्धमनिर्मही ॥ २ ॥

शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम् ।

अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत ॥ ३ ॥

परि वः सिकतावती धनूर्बृहत्यक्रमीत् ।

तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ४ ॥

अर्थ - ( अमूः याः ) यह जो ( लोहित - वाससः ) रक्त-लाल - कपडे पहनी हुई ( योषितः ) स्त्रियें हैं अर्थात् लाल रंगका खून लेजानेवाली ( हिराः ) धमनियें शरीरमें हैं वह ( तिष्ठन्तु ) ठहर जाय अर्थात् अपना चलना बंद करें, ( इव ) जिसप्रकार ( अ - भ्रातरः ) विना भाईके ( हत - वर्चसः ) निस्तेज बनी ( जामयः ) बहिर्नें ठहर जाती हैं ॥ १ ॥ ( अवरे तिष्ठ ) हे नीचेकी नाडी ! तू ठहर । ( परे तिष्ठ ) हे ऊपरवाली नाडी ! तू ठहर । ( उत मध्यमे ) और बीच वाली ( त्वं तिष्ठ ) तू भी ठहर । ( कनिष्ठिका च तिष्ठति ) छोटी नाडी भी ठहरती है तथा ( मही धमनिः इत् तिष्ठात् ) बड़ी नाडी भी ठहर जावे ॥ २ ॥ ( धमनीनां शतस्य ) सैकड़ों धमनियोंके और ( हिराणां सहस्रस्य ) हजारों नाडियों के बीचमें ( इमाः मध्यमाः अस्थुः ) यह मध्यम नाडियां ठहर गई हैं । ( साकं ) साथ साथ ( अन्ताः ) अंत भाग भी ( अरंसत ) ठीक हुए हैं ॥ ३ ॥ ( बृहती धनूः ) बड़े धनुष्यने ( वः परि अक्रमीत् ) तुम पर हमला किया



है, अतः ( सिकतावतीः तिष्ठत ) रेतवाली अथवा शर्करा वाली बनकर ठहर जाओ, जिससे ( कं ) सुख ( सु इलयत ) प्राप्त करोगे ॥ ४ ॥

भावार्थ— शरीरमें लाल रंग का रक्त शरीरभर पहुंचानेवाली धमनियां हैं। जब घाव लग जावे तब उनकी गति रोकनी चाहिये, जिस प्रकार दुर्भाग्य को प्राप्त हुई भाई रहित बहिनोंकी गति रुक जाती है ॥ १ ॥ नीचेवाली, ऊपरवाली, तथा बीचवाली छोटी और बड़ी सब नाडियोंको बन्द करना चाहिये ॥ २ ॥ सैकड़ों और हजारों नाडियोंमें से आवश्यक नाडियांही बन्द की जावें अर्थात् उनके फटे हुए अंतिम भाग ठीक किये जावें ॥ ३ ॥ बड़े धनुष्यके बड़े बाणोंसे धमनियोंपर हमला होकर नाडियां फट गई हैं, उन का शर्कराके साथ संबंध करनेसे शीघ्र आरोग्य प्राप्त हो सकता है ॥ ४ ॥

## घाव और रक्तस्राव ।

शरीरमें शस्त्रादिसे घाव होनेपर घावके ऊपरली और नीचेकी नाडियोंको बंधसे बांधनेसे रक्तका स्राव बन्द होजाता है। घाव देख कर ही निश्चय करना चाहिये, कि कौन से भागपर बंध लगाना चाहिये। यदि रक्त स्राव इस प्रकार बन्द किया जाय तो ही रोगीको शीघ्र आरोग्य प्राप्त हो सकता है, अन्यथा रक्तके बहुत स्राव होनेके कारण ही मनुष्य मर सकता है। इस लिये इस विषयमें सावधानता रखनी चाहिये।

इससे पूर्व सूक्तमें शत्रुको गोलीसे मारनेकी सूचना दी है। इस लड़ाईमें शरीरपर घाव होना संभव है, इस लिये इस रक्तस्राव बन्द करनेके विषयमें इस सूक्तमें उपदेश दिया है। “ सिकतावती ” अर्थात् रेतवाली अथवा शर्करावाली धमनी करनेसे रक्तस्राव बन्द होता है। बारीक मिश्रीका बारीक चूर्ण लगानेसे स्राव बन्द होता है, यह कथन विचार करने योग्य है।

## दुर्भाग्यकी स्त्री ।

( हत- वर्चसः जामयः ) जिनका तेज नष्ट हुआ है ऐसी स्त्रियों, दुर्भाग्य को प्राप्त हुई स्त्रियों अर्थात् पति मरनेके कारण जिनकी भाग्यहीन अवस्था हुई है ऐसी स्त्रियों पिता,



माता अथवा भाईके घर जाकर रहें, किसी अन्य स्थानपर न जावें यह उपदेश पूर्व आये चतुर्दश सूक्त ( कां. १ सू. १४ ) में कहा है । परंतु यदि वही स्त्रियें ( अ-भ्रातरः ) भ्रातासे हीन हों अर्थात् उनको भाई न हो तो उनकी गति रुक जाती है, अर्थात् ऐसी स्त्रियें कहीं भी जा नहीं सकतीं । जिस प्रकार पति जीवित रहने पर स्त्रियें बड़े बड़े समारंभोंमें और उत्सवों में जा सकती हैं, उस प्रकार पति मर जानेके पश्चात् वे जा नहीं सकती अर्थात् उनकी गति रुक जाती है । पहले उनकी गति होती थी, परंतु दुर्भाग्य वश होनेके पश्चात् उनका भ्रमण नहीं हो सकता ।

यहां स्त्री विषयक एक वैदिक मर्यादा का पता लगता है, कि पति मरने के पश्चात् स्त्री उस प्रकार नहीं घूम सकती कि जैसी पतिके होनेके समय घूम सकती है । घरमें रहना, उत्सवोंके आनंद प्रसंगोंमें न जाना, मंगलोत्सवोंमें भाग न लेना इत्यादि मृतपति स्त्रीके व्यवहार की रीति यहां प्रतीत होती है ।

मृतपतिक स्त्री भाई होनेपर भाईके घर जा सकती है, भाई न रहनेपर किंवा पिता माता न रहने पर उनको दुःखमें ही रहना होता है । इस समय वह दुर्भाग्यवती स्त्री परमेश्वर भक्तिसे अपना समय गुजारे और परोपकार का कार्य करे ॥

### विधवाके वस्त्र ।

“हतवर्चसः जामयः लोहितवाससः योषितः ।” ये शब्द विधवा स्त्रीके कपड़ोंका लाल रंग होना बता रहे हैं । “निस्तेज दुर्भाग्यमय वहिर्ने लालवस्त्र पहनेवाली स्त्रियें” ये शब्द दुर्भाग्य मय स्त्रियोंके लाल रंगके कपड़े होनेकी सूचना दे रहे हैं । दक्षिण भारतमें इस समय भी यह वैदिक प्रथा जारी है, इस लिये विधवा स्त्रियें यहां केवल लाल रंगके कपड़े पहनती हैं । पतियुक्त स्त्रियें केवल लाल रंग का कपड़ा नहीं पहनतीं, परंतु अन्य रंगोंकी लकीरोंसे युक्त कपड़े अर्थात् लालके साथ अन्यान्य रंग मिले जुले हों तो वैसे सब रंगके कपड़े पहनती हैं । केवल श्वेत वस्त्र भी विधवा स्त्रियां पहनती हैं, यह श्वेत वस्त्रका रिवाज संपूर्ण भारत वर्षमें एक ऐसा है ।

पाठक इस विषयमें अधिक विचार करें, क्योंकि इस विषयका निश्चय होनेके लिये कई अन्य प्रमाणोंकी आवश्यकता है ।

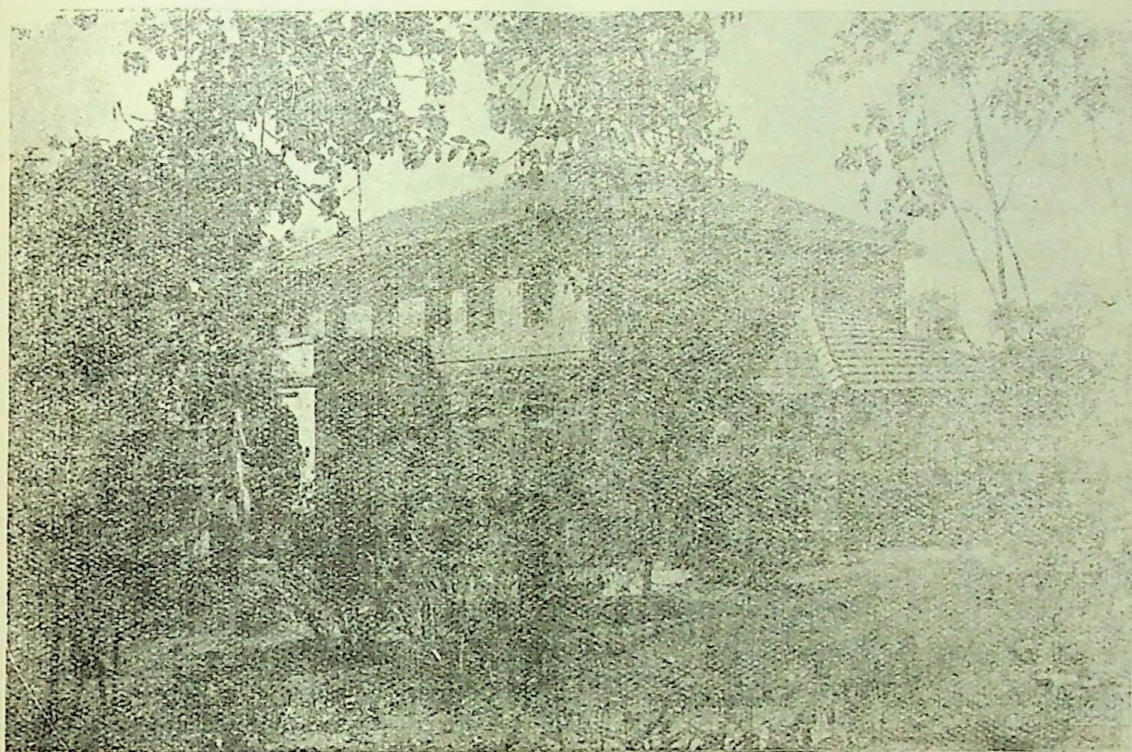


नवम वर्षका

ॐ

इतिवृत्त ।

# स्वाध्याय मंडल.



स्वाध्यायमंडल आश्रम ।

द्वारा

प्रकाशित

## पुस्तकों का सूचीपत्र.

मंत्री- स्वाध्याय मंडल. औंध ( जि. सातारा )



# स्वाध्याय मंडल ।

औंध ( जि. सातारा )



स्वाध्याय मंडलके कर्मचारी गण ।

## स्वाध्याय मंडल का उद्देश्य ।

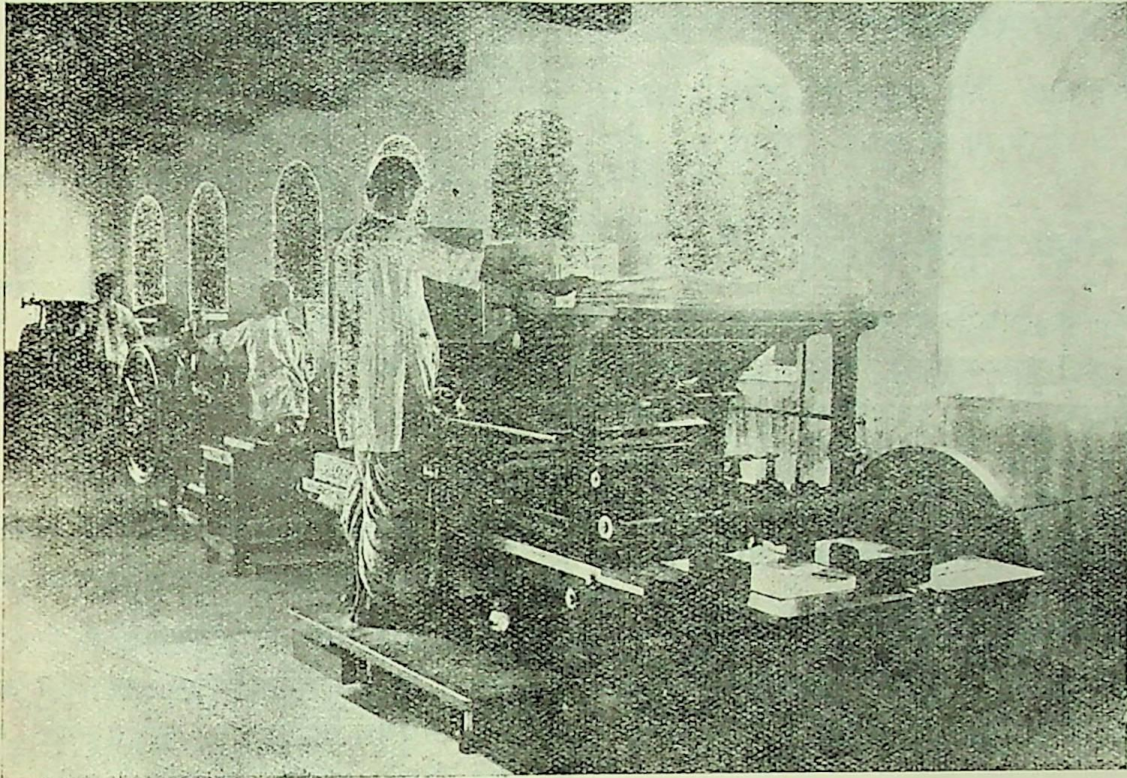
( १ ) वेदोंका स्वाध्याय करना और कराना।

- |   |   |
|---|---|
| ( १ ) वैदिक शब्दों के मूल अर्थ की खोज करना।           | ( १० ) प्रतिपक्षियोंके आक्षेपोंका सप्रमाण उत्तर देना। |
| ( २ ) मूल वेदोंका अर्थ मूल वेदोंके आधारसे करना।       | ये स्वाध्याय मंडल के उद्देश्य हैं और इसी दृष्टिसे     |
| ( ४ ) लोगों में वैदिक धर्म की जागृति करना ।           | आज नौ वर्ष इस मंडलका कार्य चल रहा है,                 |
| ( ५ ) वैदिक धर्म के सुबोध ग्रंथ प्रसिद्ध करना।        | जिसका वृत्त इस लेखद्वारा प्रसिद्ध किया जाता है।       |
| ( ६ ) वैदिक धर्मके साथ अन्य धर्मग्रंथोंकी तुलना करना। | आशा है कि वैदिक धर्मके प्रेमी इस कार्यको बढ़ानेके     |
| ( ७ ) वैदिक धर्मके साथ अन्यमत ग्रंथोंकी तुलना करना।   | लिये सहायता देंगे।                                    |
| ( ८ ) वैदिक दृष्टिसे गाथाओंका अर्थ निश्चित करना।      | औंध ( जि. सातारा ) श्रीपाद दामोदर सातवलेकर.           |
| ( ९ ) प्रचलित युरोपीयन मतकी समालोचना करना।            | १ जनवरी १९२७ स्वाध्याय मंडल, औंध                      |



# स्वाध्याय मंडल।

“ वेदका पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना, सब आयोंका परम धर्म है । ”



भारत मुद्रणालय का छपाई कार्यालय ।

## नाम

(( १ ) नाम-इस संस्थाका नाम ' स्वाध्याय मंडल ' है।

## उद्देश ।

(( २ ) उद्देश— ( पूर्व स्थानमें दिये हैं । )

## कार्यक्षेत्र ।

(( ३ ) कार्यक्षेत्र- उक्त उद्देशोंके अनुसार वैदिक तत्त्वज्ञान और वैदिक धर्मके सुबोध ग्रंथ प्रचलित अनेक भाषाओंमें प्रसिद्ध करना तथा वेदके पठन पाठनके लिये उचित सहायता और उत्तेजना देना ।

## स्वाध्याय मंडलका व्यय ।

(( ४ ) स्वाध्याय-मंडल का व्यय-पुस्तक प्रकाशन

में लाभकी आशा न करनेके कारण, स्वाध्याय मंडल के व्यय आदिके लिये, उदारचित्त ' दानी महाशयों की उदारता ' परही विश्वास रखा है । आशा है कि धनिक लोक स्वयं द्रव्यकी सहायता करेंगे और दूसरे लोक सहायता करवायेंगे ।

=o=

## सहायक आदिके नियम ।

### प्रतिपालक वर्ग ।

(( ५ ) स्वा० मंडलके प्रतिपालक — जो धनिक पांच सौ रु० अथवा अधिक धनराशी स्वा० मंडलको दान देंगे, वे स्वा० मंडलके 'प्रतिपालक' हो सकते हैं। इनको " स्वाध्याय-मण्डल " के सब पुस्तक मिलेंगे



## पोषकवर्ग ।

( ६ ) स्वाध्याय मंडलके पोषक-जो धनिक सौ ५० अथवा अधिक धनराशी स्वाध्याय मंडलको दान देंगे वे स्वाध्याय मंडल के 'पोषक' हो सकते हैं। इनको वह पुस्तक मिलेंगे कि जो इनकी रकम आने के पश्चात् मुद्रित होंगे।

## सहायकवर्ग ।

( ७ ) सहायक— जो यथाशक्ति द्रव्यकी सहायता करेंगे वे स्वाध्याय मंडलके 'सहायक' हो सकते हैं।

## स्थिर सहायक वर्ग ।

( ८ ) स्थिर-सहायक— जो २५, ५०, १००, अथवा अधिक रु. स्वाध्याय मंडलके पास अनामत रखेंगे वे 'स्थिर सहायक' होंगे। (दो वर्षके पश्चात् जिस समय चाहे उस समय इनका धन वापस हो सकता है) इनको क्रमशः १०, ४॥ और २ रु. के पुस्तक (डाकव्यय समेत) प्रतिवर्ष भेंट किये जायेंगे।

## मासिक सहायता ।

( ९ ) मासिक-सहायक-जो प्रतिमास यथाशक्ति सहायता करेंगे वे 'मासिक-सहायक' होंगे।

## सूचना ।

सूचना—सहायक, स्थिर सहायक, तथा मासिक-सहायक आदिको उनकी रकम प्राप्त होनेके अनुसार स्वा० मं० के पुस्तक मिलेंगे।

सबको उचित है कि वे स्वा० मंडलके पुस्तक स्वयं पठन करें, इन पुस्तकोंका प्रचार करनेमें सहायता करें और उक्त प्रकारके पालक, पोषक, सहायक आदिकोंकी संख्या बढ़ानेमें सहायता दें। क्योंकि आर्थिक सहायताके विना 'स्वाध्याय-मंडल' का कार्य चल नहीं सकता।

## वार्षिकवृत्त

( १० ) वार्षिकवृत्त—स्वाध्याय मंडलका वार्षिक वृत्त प्रतिवर्ष प्रसिद्ध होगा जिसमें स्वाध्याय मंडल के सब कार्य का विवरण आदि प्रकाशित होगा।

## प्राप्तिपत्र ।

( ११ ) प्राप्ति पत्र—प्रत्येक दानका प्राप्तिपत्र स्वाध्याय मंडलसे दानी महाशयके पास पहुंचेगा। तथा वार्षिक—वृत्तमें उसका उल्लेख रहेगा।

## पुस्तक विक्रीके नियम ।

( २२ ) उधार पुस्तक देना बंद किया है। सब पुस्तक वी. पी. द्वारा ही भेजे जाते हैं अथवा पेशगी मूल्य आनेपर भेजे जाते हैं।

कमिशन ।

( १३ ) कमिशन-व्यौपारियों के लिये निम्न प्रकार कमिशन दिया जाता है—

१०० रु. पुस्तकोंपर	२० फी सेंकडा
५० " "	१५ " "
२५ " "	१० " "
१० " "	५ " "

बदलेमें पुस्तक ।

( १४ ) बदलेमें पुस्तक नहीं दिये जाते, क्यों कि उनकी विक्री करनेका साधन यहां नहीं है।

पेशगी मूल्य ।

( १५ ) पेशगी मूल्य भेजने से लाभ-जो लोग ५) पांच अथवा अधिक रु. की पुस्तकें, पुस्तकों का सब मूल्य पेशगी म. आ. द्वारा भेजकर मंगवायेंगे, उनको उक्त कमिशनके अतिरिक्त पांच फी सेंकडा कमिशन अधिक मिलेगा और डाक व्यय माफ होगा। वी. पी. से पुस्तकें मंगवाने वालोंको यह लाभ नहीं होगा। पुस्तकें मंगवाने के समय ग्राहक इस बातका विचार अवश्य करें।

## नियम परिवर्तन ।

उक्त नियमोंमें परिवर्तन करनेका अधिकार स्थानिक कार्यकारी मंडलको होगा। परंतु, स्वा० मंडलकी उन्नतिके लिये सब सभासद अपनी सूचनाएं मंडलके पास भेज सकते हैं, जिनका निःपक्षपातसे विचार कर के योग्य सूचनाका अवश्य स्वीकार किया जायगा।

औध, जि. सातारा { श्रीपाद दामोदर सातवलेकर  
१ जनवरी १९२७ } स्वाध्याय मंडल, औध.



[ स्वाध्याय मंडल द्वारा प्रकाशित ]

## वैदिक धर्मके ग्रंथ

### १ आगम निबंध माला ।

वेद अनंत विद्याओंका समुद्र है। इस वेद समुद्र-का मंथन करनेसे अनेक “ ज्ञान रत्न ” प्राप्त होते हैं, उन रत्नों की यह माला है।

- ( १ ) वैदिक-राज्य पद्धति । मू. । - )
- ( २ ) मानवी आयुष्य । मू. । )
- ( ३ ) वैदिक सभ्यता । मू. ।। )
- ( ४ ) वैदिक चिकित्सा शास्त्र । मू. । )
- ( ५ ) वैदिक स्वराज्यकी महिमा । मू. ।। )
- ( ६ ) वैदिक सर्पविद्या । मू. ।। )
- ( ७ ) मृत्युको दूर करनेका उपाय। मू. ।। )
- ( ८ ) वेदमें चर्वा । मू. ।। )

- ( ९ ) शिवसंकल्पका विजय । मू. ।। )
- ( १० ) वैदिक धर्मकी विशेषता । मू. ।। )
- ( ११ ) तर्कसे वेदका अर्थ । मू. ।। )
- ( १२ ) वेदमें रोग जंतु शास्त्र । मू. ।। )
- ( १३ ) ब्रह्मचर्यका विघ्न । मू. ।। )
- ( १४ ) वेदमें लोहके कारखाने । मू. ।। )
- ( १५ ) वेदमें कृषिविद्या । मू. ।। )
- ( १६ ) वैदिक जल विद्या । मू. ।। )
- ( १७ ) आत्मशक्तिका विकास । मू. ।। )
- ( १८ ) वैदिक उपदेश माला । मू. ।। )

### २ धर्म शिक्षा के ग्रंथ

बालक और बालिकाओंकी पाठशालाओंमें “ धर्म शिक्षा ” की पढाईके लिये तथा घरोंमें बालबच्चोंकी धार्मिक बढाईके लिये ये ग्रंथ विशेष रीतिसे तैयार किये हैं।

#### ( १ ) बालकोंकी धर्म-शिक्षा

प्रथमभाग प्रथम श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये ।  
म. - )

#### ( २ ) बालकों की धर्म-शिक्षा

द्वितीय भाग । द्वितीय श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये । मू. = ) दो आने ।

#### ( ३ ) वैदिक पाठमाला

प्रथम पुस्तक । तृतीय श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये । मू. = )

अन्य श्रेणीयोंके लिये पुस्तक तैयार हो रहे हैं ।



## [ ३ ] योगसाधन माला ।

“योग साधन” का अनुष्ठान करने से शारीरिक आरोग्य, इंद्रियोंकी स्वाधीनता, मानसिक शक्तिका उत्कर्ष, बुद्धिका विकास और आत्मिक बलकी प्राप्ति होना संभव है। इसलिये यह “योग-साधन” हर एक मनुष्यको करने योग्य है।

### १ संध्यापासना.

योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तक में लिखी है। मू० १॥ ) डेढ. रु०

### २ संध्याका अनुष्ठान ।

( यह पुस्तक पूर्वोक्त “संध्यापासना” में संमिलित है, इस लिये “संध्यापासना” लेनेवालों को इसके लेनेकी आवश्यकता नहीं है। ) मू० ॥ ) आठ आने ।

### ३ वैदिक प्राण विद्या ।

प्राणायाम करनेके समय जिस प्रकार “मनकी भावना” रखनी चाहिये, उसका वर्णन इस पुस्तकमें है। मू० १ ) एक रु० ।

### ४ ब्रह्मचर्य

इस पुस्तकमें “अथर्व वेदीय ब्रह्मचर्य सूक्त का

विवरण है। ब्रह्मचर्य साधनके योगासन तथा वीर्य-रक्षण के अनुभव सिद्ध उपाय इस पुस्तक में दिये हैं। यह पुस्तक “सचित्र” है। इसमें लिखे नियमों के अनुसार आचरण करनेसे थोड़ेही दिनोंमें वीर्य स्थिर होनेका अनुभव निःसन्देह होता है। मू० १।) सवा रु.

### ५ योग साधन की तैयारी

जो सज्जन योगाभ्याससे अपनी उन्नति करना चाहते हैं, उनको अपनी तैयारी किस प्रकार करनी चाहिये इस विषयकी सब बातें इस पुस्तकमें लिखी हैं। मू० १ ) एक रु० ।

### ६ आसन ।

इसमें उपयोगी आसनों का वर्णन चित्रोंके समेत दिया है। मू० २ ) रु०.

### ७ सूर्यभेदन व्यायाम

( सचित्र ) बलवर्धक योगके व्यायाम । मू० ॥। )

“योग साधन” के अन्य पुस्तक छप रहे हैं मुद्रित होतेही सूचना दी जायगी।

## [ ४ ] यजुर्वेदका स्वाध्याय ।

### १ यजुर्वेद अ० ३० की व्याख्या

“नर-मेध” मनुष्योंकी उन्नति का सच्चा साधन। वैदिक नरमेध कितना उपयोगी है, इस विषयका ज्ञान इस पुस्तकके पढ़नेसे हो सकता है। मू० १) एक रुपया

### २ यजुर्वेद अ. ३२ की व्याख्या ।

“सर्व-मेध” एक ईश्वर की उपासना। य. अ. ३२में एक

ईश्वरकी स्पष्ट कल्पना बताई है। मू० ॥ )

### ३ यजुर्वेद ३६ की व्याख्या

“शांति-करण” । सच्ची शांति का सच्चा उपाय । व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और जगत् में सच्ची शांति कैसी स्थापन की जा सकती है, इस के वैदिक उपाय इस पुस्तक में देखिये। मूल्य ॥ )



## ५ उपनिषद् ग्रंथ माला ।

तत्त्वज्ञान के भंडारमें “ उपनिषद् ग्रंथ ” अमूल्य ग्रंथ हैं। तत्त्वज्ञान की अंतिम सीमा इन ग्रंथोंमें पाठक अनुभव कर सकते हैं। जीवनके समय ये ग्रंथ उच्च तत्त्वज्ञान के द्वारा सदाचार की शिक्षा देते हैं। और मृत्युके समय अमृतमय शांति प्रदान करते हैं। हर एक मनुष्यके लिये इन ग्रंथोंका पठन, मनन और अधिक विचार करनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

### १ ईश उपनिषद् ।

इस पुस्तक में ईश उपनिषद्की व्याख्या है। मू. ॥=

### २ केन उपनिषद्

इस पुस्तकमें केन उपनिषद् का अर्थ और स्पष्टीकरण अथर्ववेदीय केन सूक्त की व्याख्या और देवी भागवतकी कथाकी संगति बता दी है। उमा, यक्ष, आदि शब्दोंके अर्थ वैदिक प्रमाणों से निश्चित करके बताया है, कि उनका स्थान आध्यात्मिक भूमिकामें कहां है और उसकी प्राप्ति का उपाय क्या है।

मू. १।) रु.

## ६ देवता-परिचय ग्रंथ-माला ।

“ वैदिक देवता ” ओंका सूक्ष्मज्ञान होनेके विना वेदका मनन होना असंभव है, इसलिये इस ग्रंथमाला में “ देवता ओंका परिचय ” करानेका यत्न किया है। पुस्तकोंके नामोंसेही पुस्तकोंके विषयका बोध हो सकता है--

### १ रुद्र देवताका परिचय । मू. ॥ )

२ ऋग्वेदमें रुद्र देवता । मू. ॥= )

३ ३३ देवताओंका विचार । मू. ≡ )

४ देवता विचार । मू. ≡ )

५ वैदिक अग्निविद्या । मू. १॥ )

“अन्य” देवताओंका विचार और परिचय कराने वाले ग्रंथ तैयार हुए हैं, शीघ्रही मुद्रित होंगे।

## ७ ब्राह्मण बोध माला ।

### १ शत-पथ-बोधामृत । मू।)

### [ ८ ] स्वयं-शिक्षक-माला ।

### १ वेदका स्वयं शिक्षक ।

प्रथम भाग । मू. १॥ ) डेढ रु०

### २ वेदका स्वयं शिक्षक।

द्वितीय भाग मू. १॥ ) डेढ रु० ।



# अग्नि विद्या ।

इस पुस्तक में निम्न लिखित विषय हैं ।

- १ अग्नि शब्दका भाव,
- २ अग्निके पर्याय शब्द,
- ३ पहिला मानव अग्नि,
- ४ वृषभ और धेनु,
- ५ अंगिरा ऋषि,
- ६ वैश्वानर अग्नि,
- ७ ब्राह्मण और क्षत्रिय,
- ८ जनता का केन्द्र,
- ९ सब धन संघका है,
- १० बुद्धिमें पहिला अग्नि,
- ११ मनुष्यमें अग्नि,
- १२ मर्त्योंमें अमर अग्नि,
- १३ वाणीमें अग्नि,
- १४ पुरोहित अग्नि,
- १५ शक्ति प्रदाता अग्नि,

- १६ हस्त-पाद-हीन गुह्य अग्नि,
- १७ वृद्ध नागरिक,
- १८ मूकमें वाचाल,
- १९ अनेकों का प्रेरक एक देव,
- २० जीवनाग्नि,
- २१ अग्निकी दस बहिर्ने,
- २२ देवोंके साथ रहनेवाला अग्नि,
- २३ यज्ञका झंडा.
- २४ गुहा निवासी अग्नि,
- २५ सात संख्याका गुह्य तत्त्व,
- २६ तनूनपात् अग्नि,
- २७ यज्ञ पुरुष, यज्ञशाला, मंदिर ( चित्र ),
- २८ परमाग्नि,
- २९ अग्नि सूक्त का अर्थ और व्याख्या ।

हर एक विषयको सिद्ध करने के लिये वेद के विपुल प्रमाण दिये हैं । इस पुस्तकके पढ़ने से अग्नि विद्या की वैदिक कल्पना ठीक प्रकार ज्ञात हो सकती है ।

मूल्य १॥ ) रु. डाकव्यय = ) है  
मंत्रा-स्वाध्याय मंडल, औंध. ( जि सातारा )

## वै दिक ध र्म ।

मासिक पत्र ।

वैदिक तत्त्वज्ञान का विचार और प्रचार करने-  
वाला यह एक उत्तम मासिक पत्र इस भारतभूमि  
में है । इस मासिक पत्रमें “वैदिक धर्म” के ओजस्वी  
विचार, तेजस्वी मंत्र और स्फूर्तिदायक उपदेश  
प्रसिद्ध होते हैं । इस समय अष्टम वर्ष चल रहा है ।  
इसका वार्षिक मूल्य म. आ. से ४ चार रु. है ।  
और बी. पी. से ४॥ ) है ।  
और विदेश के लिये ५ ) है ।



# संस्कृत- पाठ-माला ।

[ स्वयं संस्कृत सीखने का अत्यंत सुगम उपाय । ]



हर एक आर्यका कर्तव्य है कि वह संस्कृत भाषा सीखे और वेद तथा आर्ष शास्त्र स्वयं पढ़े, उसका मनन करे और प्रचार करे ।

यह कर्तव्य तबतक ठीक रीतिसे पालन नहीं हो सकता, जबतक संस्कृत सीखनेके सुगम साधन निर्माण नहीं हुए हों । इस कठिनता का हम गत दस वर्षोंसे मनन कर रहे हैं । इन वर्षोंमें हमने अनेक प्रयत्न किये, छोटे और बड़े विद्यार्थियोंको भिन्न भिन्न रीतियोंसे पढ़ा कर अनुभव लिया और इतने अनुभव का और मननका निछोड इन पुस्तकोंमें संगृहित किया है । इसी सिये ये पुस्तक अत्यंत सुगम और सबके उपयोगी सिद्ध होगये हैं ।

ये पुस्तक हमने छः से दस वर्षोंके बालकों और बालिकाओंको पढ़ाये और अनुभव लिया, कि ये छोटे बालक पहिले महिनेसे ही छोटे छोटे वाक्य संस्कृत में बोलने लगते हैं और इन पुस्तकों की पढ़ाई करना उनके लिये एक बड़ा आनंद का कार्य हो जाता है !! इसी प्रकार स्त्रियों और पुरुषोंके लिये भी ये पुस्तक अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुए हैं ।

इसी लिये आपसे निवेदन है कि आप इन पुस्तकों की सूचना अपने समाजके आर्य सभासदों, सदस्यों

और प्रेमी भद्र पुरुषोंको दीजिये । हर एक आर्य भाई अवश्य संस्कृत सीखे । कईयोंको अवतक पता नहीं है कि ऐसी सुगम पुस्तकें बनी हैं । इस लिये आप यथा संभव जितनोंको इन पुस्तकों की सूचना दे सकते हैं दीजिये, ताकि आपकी प्रेरणा द्वारा वहां के भद्रपुरुष संस्कृत के अभिज्ञ बनें ।

आप अपने समाजके अधिवेशनों में इसकी घोषणा दीजिये और ऐसी व्यवस्था कीजिये कि आपके स्थान पर अधिक से अधिक मनुष्य संस्कृत पढ़ने वाले बनें ।

हर एक की सुविधाके लिये इस संस्कृत पाठ-मालाके बारह पुस्तकों का मूल्य म० आ० से केवल ३ तीन रु. रखा है । वी. पी. से ४ रु० होगा । इस लिये ग्राहक म० आ० से ही ३ ) रु. भेजें, वी. पी. से मंगवाने पर उनका व्यर्थ नुकसान होगा ।

आशा है कि आप इस संस्कृत के प्रचार के लिये इतनी सहायता देंगे ।

जहां अन्य स्थानोंमें सहस्रों मनुष्य इन पुस्तकों से लाभ उठा रह हैं, वहां आपके परिचित मनुष्य क्यों वंचित रहें ?

इस लिये इन पुस्तकों की सूचना आप अधिक से अधिक मनुष्योंतक पहुंचानेकी कृपा कीजिये ।

## संस्कृत पाठमाला के अध्ययन से लाभ ।

(१) आप किसी दूसरेकी सहायताके विना अपना कामधंदा करते हुए फुरसत के समय इन पुस्तकोंको पढ़कर अपना संस्कृत का ज्ञान बढ़ा सकते हैं ।

(२) प्रतिदिन घंटा अथवा आध घंटा पढ़नेसे एक वर्षके अंदर आप गमायण महाभारत समझने की योग्यता प्राप्त कर सकते हैं ।

(३) पुस्तक अत्यंत सुगम हैं । विना नियमोंको कंठ किये आपका संस्कृत भाषामें प्रवेश हो सकता है ।

(४) घरमें पुत्रों, पुत्रियों और स्त्रियोंको इन पुस्तकों का पढ़ना और पढ़ाना अत्यंत सुगम है । इस प्रकार आपके घरके सब मनुष्य संस्कृत जाननेवाले हो सकते हैं ।

(५) पाठशालामें जानेवाले विद्यार्थी इन पुस्तकों से बड़ा लाभ प्राप्त कर सकते हैं ।

यदि आपके मनमें संस्कृत सीखनेकी इच्छा है तो आप इन पुस्तकों के ग्राहक बन जाइये ।



# संस्कृत पाठ माला

[ चोवीस भागोंमें सब संस्कृत पढ़ाई हो गई है । ]

बारह पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ३ ) और बी. पी. से ४ )

चोवीस पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ६ ) रु. और बी. पी. से ७ )

प्रतिभाग का मूल्य १- ) पांच आने और डा. व्य. - ) एक आना ।

अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति ।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है-

## १ प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाग

इन तीन भागोंमें संस्कृत भाषाके साथ साधारण परिचय कर दिया गया है ।

## २ चतुर्थ भाग ।

इस चतुर्थ भागमें संधि विचार बताया है ।

## ३ पंचम और षष्ठ भाग

इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया गया है ।

## ४ सप्तम से दशम भाग

इन चार भागोंमें पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक. लिङ्गी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है ।

## ५ एकादश भाग ।

इस भागमें "सर्वनाम" के रूप बताये हैं ।

## ६ द्वादश भाग ।

इस भागमें समासों का विचार किया है ।

## ७ तेरहसे अठारहवें भाग तकके ६ भाग

इन छः भागों में क्रियापद विचार की पाठविधि बताई है ।

## ८ उन्नीससे चौवीसवें भाग तकके ६ भाग

इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है ।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे उन को अल्प परिश्रमसे बड़ा लाभ हो सकता है ।

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )



अंक ४७



[भीष्मपर्व ५]

# महाभारत।

( भाषा--भाष्य--समेत )

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

तैय्यार हैं ।

- |                  |  |
|------------------|--|
| (१) आदिपर्व ।    | पृष्ठ संख्या ११२५. मूल्य म. आ. से ६ ) रु.<br>और वी. पी. से ७ ) रु. |
| (२) सभापर्व ।    | पृष्ठ संख्या ३५६. मूल्य म. आ. से २ ) रु.<br>और वी. पी. से २॥ ) रु. |
| (३) वनपर्व ।     | पृष्ठ संख्या १५३८ मूल्य म. आ. से ८ ) रु.<br>और वी. पी. से. ९ ) रु. |
| (४) विराटपर्व ।  | पृष्ठ संख्या ३०६ मू. म. आ. से १॥ ) और<br>वी. पी. से २ ) रु.        |
| (५) उद्योगपर्व । | पृष्ठ संख्या ९५३ मू. म. आ. से. ५ ) रु.<br>और वी. पी. से ) ६ रु.    |

## [५] महाभारत समालोचना ।

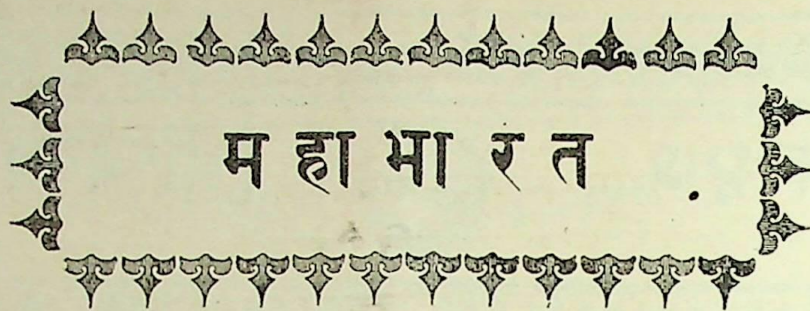
१ प्रथम भाग मू.॥) वी. पी. से॥=) आने २ द्वितीय भाग मू.॥) वी. पी. से॥=) आने

महाभारतके ग्राहकोंके लिये १२०० पृष्ठोंका ६ ) रु. मूल्य होगा ।

मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध, ( जि. सातारा )

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६ ) और वी. पी. से ७ ) विदेशकेलिये ८ )





## महाभारत के पठन से लाभ ।

— ० —

- ( १ ) आर्यजातिका अत्यंत प्राचीन इतिहास विदित होगा ।
- ( २ ) आर्यनीति शास्त्रका उत्तम बोध होगा ।
- ( ३ ) भारतीय राजनीति शास्त्र का ज्ञान होगा ।
- ( ४ ) आर्यों की समाजसंस्थाओंकी उत्क्रांतिका बोध होगा ।
- ( ५ ) आर्य राजशासन पद्धतिका पता लगेगा ।
- ( ६ ) ऋषियोंके धर्मवचनों का बोध होकर सनातन मानव धर्मका उत्तम ज्ञान होगा ।
- ( ७ ) चार वर्णों और चार आश्रमों की प्राचीन व्यवस्था के स्वरूपका पता लग जायगा ।
- ( ८ ) कई आलंकारिक कथाओंके मूलका पता लग जायगा ।
- ( ९ ) वैदिकधर्मके प्राचीन आचार विचारोंका ज्ञान होगा और-
- ( १० ) प्राचीन आर्य लोगोंका सदाचार देखकर हमें आजकी स्थितिमें किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये, इसका निश्चित ज्ञान होगा ।

तात्पर्य हरएक अवस्थामें अपने प्राचीन पूर्वजोंके इतिहास का ज्ञान प्राप्त होनेसे अनन्त लाभ हो सकते हैं ।

इसलिये, आप स्वयं महाभारत का पाठ कीजिये, मनन कीजिये और बोध प्राप्त कीजिये तथा दूसरोंको वैसा करनेके लिये प्रेरणा कीजिये ।

प्रतिमास १०० पृष्ठोंका एक अंक प्रसिद्ध होता है.  
 १२ अंकोंका अर्थात् १२०० पृष्ठोंका मूल्य म. आ. ६ )  
 और बी, पी, से ७) रु, है ॥

आप अपना नाम ग्राहक श्रेणीमें लिखवा कर अपना चंदा आ. से ६ ) रु. भेज दें तथा अपने मित्रोंको ग्राहक बनने के लिये उत्साह दीजिये ।



पुरा ह्येष हरिर्भूत्वा विकुण्ठोऽकुण्ठसायकः ।

सुरासुरानवस्फूर्जन्नब्रवीत्के जयन्तिवति ॥ १५ ॥

कथं कृष्ण जयेमेति यैरुक्तं तत्र तैर्जितम्

तत्प्रसादाद्धि त्रैलोक्यं प्राप्तं शक्रादिभिः सुरैः ॥ १६ ॥

तस्य ते न व्यथां काश्चिदिह पश्यामि भारत ।

यस्य ते जयमाशास्ते विश्वभुक् त्रिदिवेश्वरः ॥ १७ ॥ [७६३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

युधिष्ठिरार्जुनसंवादे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

संजय उवाच— ततो युधिष्ठिरो राजा स्वां सेनां समनोदयत् ।

प्रतिव्यूहन्ननीकानि भीष्मस्य भरतर्षभ ॥ १ ॥

यथोद्दिष्टान्यनीकानि प्रत्यव्यूहन्त पाण्डवाः ।

स्वर्गं परममिच्छन्तः सुयुद्धेन कुरुद्वहाः ॥ २ ॥

मध्ये शिखण्डिनोऽनीकं राक्षितं सव्यसाचिना ।

धृष्टद्युम्नश्चरन्नग्रे भीमसेनेन पालितः ॥ ३ ॥

अनीकं दक्षिणं राजन्युयुधानेन पालितम् ।

अप्रतिहतशस्त्रवाले इन्हीं वैकुण्ठवासी हरिने पूर्व कालमें आविर्भूत होकर देव-ताओं और असुरोंसे अति गम्भीर स्वरमें पूछा था “कौन जयी होगा?” ॥ उनके बाद जिन लोगोंने उस समय कहा “हे कृष्ण ! हम लोग जयी हुए । वहाँ श्रीकृष्ण जीके प्रसादसे इन्द्रादि देवता सबोंने इस तरहपर कहके जयलाभ कर त्रैलोक्य प्राप्त किया था ॥ इस लिये हे भारत ! विश्वभुक् त्रिदिवेश्वर वही हरि जब हम लोगोंके जय होनेके लिये इच्छा करते हैं, तो इस जयके होनेके विषयमें कुछ कष्ट मुझे नहीं दीखता है ॥ ( १५-१७ )

भीष्मपर्वमें इक्कीस अध्याय समाप्त । [७६३]

भीष्मपर्वमें बाईस अध्याय ।

इतनी कथा सुनाकर सञ्जय फिर बोले हे भरतर्षभ ! इनके बाद भीष्मकी सेनाके प्रतिपक्षमें व्यूह रचना कर लेनेके लिये अपनी सेनाको राजा युधिष्ठिर प्रेरित करने लगे ॥ अनन्तर कुरुकुलश्रेष्ठ युद्धसे स्वर्गकी इच्छा करनेवाले पाण्डवों ने अपने शत्रुओंके प्रतिपक्षमें यथोद्दिष्ट अनीक व्यूहकी रचना कर ली ॥ सव्य-साची अर्जुन मध्यभागमें शिखण्डीकी सेनाकी रक्षा करने लगे । सेनाके आगे चलनेवाले धृष्टद्युम्नकी रक्षा भीमसेन स्वयं करने लगे ॥ ( १-३ )

सात्वतवंशके प्रधान धनुष्मान् श्री-



# यज्ञकी पुस्तक

## वैदिक यज्ञ संस्था ।

प्रथम भाग ।

मूल्य १ ) रु. डाकव्यय । )

इस पुस्तक में निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है—

### प्राचीन संस्कृत निबंध ।

१ पिष्ट - पशु - मीमांसा । लेख १

२ " " " " २

३ लघु पुरोडाश मीमांसा ।

### भाषाके लेख ।

४ दर्श और पौर्णमास (ले०-श्री०पं० बुद्धदेवजी)

५ अद्भुत कुमार-संभव " " "

६ बृद्ध के यज्ञ विषयक विचार

( ले०- श्री० पं० चंद्रमणिजी )

७ यज्ञका महत्त्व

( संपादकोय )

८ यज्ञका क्षेत्र

"

९ यज्ञका गूढ तत्त्व

"

१० औषधियों का महामख

"

११ वैदिक यज्ञ और पशुहिंसा

( ले०- श्री. पं. धर्मदेवजी )

१२ क्या वेदों में यज्ञों में पशुओंका बलि करना

लिखा है? (ले० श्री० पं० पुरुषोत्तम लालजी)

वैदिक यज्ञ संस्था । द्वितीय भाग । मूल्य १ ) डा. व्य. । )

मंत्री स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )



## वैदिक उपदेश माला !

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिये बारह उपदेश है । इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी ।

मूल्य ॥ ) आठ आने । डाक व्यय - ) एक आना ।

मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )



# ‘ केन ’ उपनिषद्

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है--

- १ केन उपनिषद् का मनन,
- २ उपनिषद् ज्ञान का महत्त्व,
- ३ उपनिषद् का अर्थ,
- ४ सांप्रदायिक झगड़े,
- ५ “ केन ” शब्द का महत्त्व,
- ६ वेदान्त,
- ७ उपनिषदों में ज्ञान का विकास,
- ८ अग्नि शब्दका भाव,
- ९ उपनिषद् के अंग,
- १० शांतिमंत्रोंका विचार,
- ११ तीनों शांति मंत्रों में तत्त्व ज्ञान,
- १२ तीन शांतियोंका भव,
- १३ ईश और केन उपनिषद्,
- १४ “ यक्ष ” कौन है? ,
- १५ हैमवती उमा,
- १६ पार्वती कौन है?

- १७ पर्वत, पार्वती, रुद्र, सप्तऋषि और अरुंधती,
- १८ इंद्र कौन है?
- १९ उपनिषद् का अर्थ और व्याख्या,
- २० अथर्ववेदीय केन सूक्तका अर्थ और व्याख्या,
- २१ व्यष्टि, समष्टी और परमेश्वरी,
- २५ त्रिलोकी,
- २३ अथर्वाका सिर,
- २४ ब्रह्मज्ञानी की आयुष्य मर्यादा,
- २५ ब्रह्म नगरी, अयोध्या, आठ चक्र,
- २६ आत्मवान् यज्ञ,
- २७ अपनी राजधानीमें ब्रह्मका प्रवेश,
- २८ देवी भागवतमें देवी की कथा,
- २९ वेदका वागांभृणी सूक्त, इंद्र सूक्त, वैकुण्ठ सूक्त, अथर्व सूक्त,
- ३० शाक्तमत, देव और देवताकी एकता,
- ६१ वैदिक ज्ञान की श्रेष्ठता ।

इतने विषय इस पुस्तक में आगये हैं. इस लिये उपनिषदों का विचार करने वालोंके लिये यह पुस्तक अवश्य पढ़ने योग्य है ।

मूल्य १। ) रु. डाकव्यय = ) है ।

मंत्री स्वाध्याय मंडल, औंध. ( जि. सातारा )

## ( मराठी ) पुरुषार्थ ( मासिक )

स्वधर्माची जागृति करून स्वतःच्या पुरुषार्थाने आपली उन्नति करून घेण्याचे निश्चित मार्ग दाखवणारे मासिक. या मासिकामध्ये आरोग्य वाढविणारे सुगम योगसाधनाचे मार्गही दाखवले जातात. याच्या

योगाने हजारों माणसांनी आपले आरोग्य वाढवले आहे. वार्षिक वर्गणी म. आ. नं २ ) रु. व व्ही. पी. नं २ ॥ ) रु. नमुन्याचा अंक मागवा.

स्वाध्याय मंडल औंध ( जि० सातारा )



## पुरुषार्थाचे कायमचे वर्गणीदार

जे लोक पुरुषार्थ मासिकाला कायमचे वर्गणीदार होऊं इच्छितात त्यांनीं एकवेळ पंचवीस रु० पुरुषार्थ कचेरीत भरावे म्हणजे ते कायमचे वर्गणीदार होतील व पुढें केव्हांही त्यांस वर्गणी भरावी लाग-

णार नाही. पुरुषार्थाचा आकार वाढून जरी वर्गणी वाढली तरी त्यांस याच देणगीवर सतत "पुरुषार्थ" मासिक मिळत जाईल.

## पुरुषार्थ-ग्रंथ-माला.

### संध्या [ उपासना ]

मराठी अर्थासह, कि० १ आणा व ट. ख. १ आणा. संध्या हा "ध्यानयोग" च आहे व तो विशिष्ट भावना मनांत स्थिर करीत गेल्यानंच सिद्ध होणार आहे. अशा रीतिने संध्या करतां यावी म्हणून या पुस्तका-मध्ये संध्येचे मूळ वेदमंत्र दिले असून त्या खाली त्या मंत्रांचें सरळ मराठी भाषांतर दिलें आहे. भाषांतर वाचलें असतां मंत्र म्हणतेवेळीं संध्या करतांना जी भावना मनांत धरणें अवश्य आहे तिचें सहज ज्ञान होईल व अशा रीतिने संध्या करीत गेल्यास हरपकास आपली ऐहिक व पारमार्थिक उन्नति सहज साध्य करून घेतां येईल.

### २ सूर्यास नमस्कार

ले० श्री० बाळासाहेब पंत. बी. ए. प्रतिनिधि सं० औंध या पुस्तकांत नमस्कारांच्या व्यायामाची सचित्र पद्धति दिली आहे. सुमारे दोड तप न चुकतां दररोज स्वतः श्रीमंतांनीं या पद्धतिने नमस्कारांचा व्यायाम घेतला. अशा अनुभवानें या व्यायामाची श्रेष्ठता स्वतः पाहिल्यानंतर श्रीमंतांनीं औंध संस्थानामध्ये सर्व शाळांतून हा नमस्कारांचा व्यायाम आवश्यक केला. त्यामुळे सर्वसाधारणपणें सर्व मुलांवर इष्ट परिणाम झाल्याचें दिसून आलें. इतक्या अनुभवानंतर हें पुस्तक श्रीमंतांनीं लिहिलें आहे. म्हणून त्याची श्रेष्ठता सहज समजेल. कि० ४ आणे. ट. ख. १ आणा.

### ३ नमस्कारांचा तक्ता

( २० x ३० इंच म्ह० ) सुमारे सवा हात रुंद व पावणे दोन हात लांब अशा कागदावर समंत्रक नमस्कारांचीं २५ नांवे क्रमानें छापलीं आहेत व वर उगवत्या सूर्याचें प्रेक्षणीय चित्र दिलें आहे. किंमत २ आणे, ट. ख. एक आणा.

### ४ मनुष्याचें आयुष्य

मनुष्याचें आयुष्य किती आहे, तें वाढवतां येतें कीं नाहीं, वाढवतां येत असल्यास तें कोणत्या उपायांनीं वाढवतां येतें, पूर्वी कोणी या उपायांनीं आपलें आयुष्य वाढवलें होतें कीं काय; पूर्वी या देशांत कोणी, कसें व किती आपलें आयुष्य वाढवलें, आज आपणांस आमचें आयुष्य कोणत्या उपायांनीं वाढवतां येईल, इत्यादि विषयांचें विवेचन शास्त्रीय प्रमाणांसह या पुस्तकांत आहे. कि० ३ आणे, ट. ख. १ आणा.

### ५ स्वधर्माची ओळख.

यांत स्वधर्माची ओळख पटविणारे लेख आहेत. हें पुस्तक वाचलें असतां आपल्या धर्माची उत्तम माहिती होईल. कि० ४ आणे ट. ख. १ आणा.

### ६ वैदिक संस्कृतीचें स्वरूप.

या पुस्तकामध्ये वैदिक संस्कृतीचें स्वरूप, दिव्य ऋषींचें दर्शन, शिक्षणाचें ध्येय, स्वराज्याची पात्रता, प्राचीन हिंदुस्थानांतील स्वराज्य वगैरे विषयांचें विवरण आहे. हें पुस्तक वाचलें असतां आर्यांच्या प्राचीन संस्कृतीची उत्कृष्ट कल्पना होऊं शकते.

कि० ४ आणे, ट. ख. १ आणा.

### ७ सूर्यभेदन व्यायाम ( मराठी )

खात्रीनें आरोग्य बल व आयुष्य वाढवणारा योगासनांचा व्यायाम. किंमत ६ आणे ट. ख. १ आणा.

### ८ आरोग्यासाठी योगसाधन

या पुस्तकाध्ये आरोग्यासाठी योगसाधन कसें करावे तें दाखवलें आहे. पुस्तक सचित्र आहे व यांत अनुभवाची माहिती दिली असल्यामुळे हें पुस्तक हरपकाच्या आरोग्य साधनाला उपयोगी होईल. किंमत ८ आणे. ट. ख. २ आणे.



## स्वाध्याय मंडल का नवम वर्ष ।

स्वाध्याय मंडलके नवम वर्षका इतिवृत्त पाठकोंके सम्मुख रखा जाता है। पाठक इसमें देख सकते हैं कि इस मंडलके कार्य की प्रगति इस वर्ष कितनी हुई है।

### धन्यवाद ।

इस वर्ष कई कारणों से स्वाध्याय मंडलका कर्जा बढ़ गया था और उस कारण आगे कार्य चलना असंभव हो गया था। ऐसे कठिन प्रसंगमें श्री. सेठ शूरजी वल्लभ दासजी से (८०००) रु. तथा श्री. गणपतराव गोरे जीसे (३६०५) रु. की दो तीन वर्षोंके लिये स्थायी सहायता प्राप्त हुई, जिससे उस समय के कर्जेका बोझ दो तीन वर्षोंके लिये कम हुआ और इस वर्षका कार्य चलाना संभव हुआ, इसलिये श्री. सेठ शूरजी वल्लभदासजीको तथा बा. गणपतरावजी को हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं। क्यों कि यदि इनसे इतनी सहायता इस समय इकट्ठी न आती, तो कार्य करीब बंद होनेकी ही संभावना थी। अतः आगे का कार्य सुकर करनेमें सहायता देनेके कारण हम उक्त महानुभावों के शतशः धन्यवाद गाते हैं।

### अथर्ववेद स्वाध्याय

पूर्वोक्त सहायता प्राप्त होते ही अथर्व वेदका स्वाध्याय लिखना शुरू किया और इस समय तक प्रथम कांड आधा छप चुका है और आगे लेखनका कार्य चल रहा है। यह क्रमशः वैदिक धर्म मासिक में छप रहा है और जिन ग्राहकोंने पढ़ा उन्होंने इसी

प्रकार कार्य चलानेका उत्साह दिया है। इसलिये यह अथर्ववेदका भाषाभाष्य इसी प्रकार आगे मुद्रित करनेका विचार निश्चित किया है। इससे कुछ स्थिर कार्य होता रहेगा। यह भाष्य “वैदिक धर्म” मासिक में खंडशः छपकर ग्राहकोंके पास जायगा जिससे ग्राहकोंको बहुत सस्ता भी मिलेगा और मासिक स्वाध्याय करनेवालोंको सरलतासे स्वाध्याय करना अत्यंत सुगम होगा।

### यजुर्वेदका मुद्रण

यजुर्वेदका शुद्ध मुद्रण करनेका संकल्प गत वर्ष प्रसिद्ध किया था। जिसका मुद्रण इस वर्ष शुरू हो गया। अब थोड़े ही समयमें यजुर्वेद का मुद्रण पूर्ण हो जायगा। यजुर्वेद के प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ, युरोपमें मुद्रित पुस्तक, भारतवर्षमें मुद्रित पुस्तक आदिकी सहायतासे पाठभेदादिका निश्चय करके, तथा जो पंडित यजुर्वेद को कंठस्थ रखते हैं उनके द्वारा शुद्ध करवाके-जहांतक हो सक वहांतक-अतिशुद्ध मुद्रण करनेका संकल्प किया है और अतिपरिश्रमसे यह वेदोंके पुस्तकोंका शुद्ध मुद्रण कार्य चलाया है। जब इसी प्रकार दो तीन महिनोमें यजुर्वेद मुद्रित हो जायगा, तब अथर्ववेद छपेगा और इसी प्रकार चारों वेदों की संहिताएं छपी जायगी, तत्पश्चात् वेद के शाखाग्रंथ भी छापनेका विचार है और उसकी तैयारियां चलायी हैं।



## पादानुक्रमणिका

इस समय तक वेदोंकी ओ अनुक्रमणिकाएं बनी हैं, वह मंत्रके प्रथम चरण की बनी हैं। इसलिये मंत्रका द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ चरण देखनेके कार्य उनसे नहीं हो सकता। इस कारण हमने प्रयत्नसे वेदोंकी पादानुक्रमणिकाएं बनाई हैं जो वेद पाठियों के लिये बड़ी लाभदायक होगी। हमारी वेद छपाई में यह एक विशेषता होगी।

वेद छपाईके लिये टाइप बड़ा लिया है इसलिये नित्यपाठ करनेवालोंके लिये ये पुस्तक बड़े सहायक हो सकते हैं।

## संस्कृत पढ़ाई

संस्कृत भाषाका ज्ञान होनेके बिना हमारे आर्ष ग्रंथ समझ नहीं सकते और केवल भाषांतर द्वारा आर्ष ग्रंथोंका हृदय समझमें नहीं आसकता। इस लिये हरएक वैदिक धर्मीको संस्कृत भाषाका जाननी अत्यावश्यक है। परंतु आजकल की पढ़ाई ऐसा हुई है कि जिसमें अन्यान्य भाषाओंका ज्ञान तो होता है परंतु संस्कृत का ज्ञान नहीं होता, इसलिये हरएकका मार्ग कठिन हुआ है। इस कठिनताको दूर करनेके लिये हमने "संस्कृत पाठ माला" मुद्रित की है। जिसके २४ भागोंके अध्ययनसे संस्कृतकी सब पढ़ाई पूर्ण हो सकती है। जिन लोगों ने इस पद्धतिसे संस्कृतका अध्ययन किया है उन्होंने इस पाठविधिकी श्रेष्ठताका अनुभव किया है। इन पुस्तकों की पाठविधि इतनी सुगम है कि आठ वर्षके लड़के भी दो तीन महिनोमें थोड़ा थोड़ा संस्कृत बोलने लग जाते हैं। बड़े अभ्यासियोंको तो लाभ होता ही है। इसकी पाठविधि ऐसी सुगम है कि साधारण भाषा पढ़नेवाले भी एक वर्षके अभ्याससे महाभारत रामायण के साधारण श्लोक समझनेकी योग्यता प्राप्त कर सकते हैं।

## वेदका स्वयंशिक्षक

इस संस्कृत पाठ मालाकी २४ भागों की पढ़ाई होनेके पश्चात् वेदमें प्रवेश करनेके लिये "वेद

स्वयं शिक्षक" लिखे गये हैं। इसके दोभाग प्रसिद्ध हुए हैं, आगेके भाग यथाक्रम प्रसिद्ध हो जायेंगे

## स्वाध्यायमण्डल के परिश्रम

इस प्रकार स्वाध्याय मंडलके परिश्रम स्वाध्याय करनेवालोंकी कठिनता दूर करनेके लिये हो रहे हैं। जो पाठक इस स्वाध्याय मंडलके कार्यके साथ प्रारंभसे परिचित हैं उनको इस कार्यके लाभ के विषयमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है। इतन करनेपर भी स्वाध्याय मंडलकी आर्थिक अवस्था समाधानकारक नहीं है।

## कर्जा

प्रतिवर्ष कर्जा बढ़ रहा है। यद्यपि इस वर्ष कुल कर्जा करीब २३००० रु. है तथापि उसमेंसे करीब १०००० रु. का कर्जा पुस्तक प्रकाशनसे स्वयं और क्रमशः उतरने वाला है इसलिये उसका इतना बोझ नहीं है। परंतु शेष १३००० रु० का कर्जा दो तीन वर्षोंमें उतरना आवश्यक है। यदि पोषक वर्गके सौ ग्राहक सौ रु० देकर बनाये जायेंगे तो यह बहुतसा कर्जा उतर सकता है। यदि पाठक इस रीतिसे पोषक वर्ग के ग्राहक बढ़ानेकी सहायता करेंगे तो हम द्विगुणित उत्साहसे कार्य करके दिखा देंगे।

## ग्राहकोंका लाभ

पोषक वर्गके ग्राहकोंको कमसे कम प्रतिवर्ष १६ रु. के पुस्तक अवश्यही मिलते हैं, संभव हुआ तो अधिक भी मिलते रहेंगे। क्योंकि स्वाध्यायमंडल की ग्रंथ प्रकाशन की शक्ति प्रतिदिन बढ़ रही है। इसलिये छः वर्षों में ही उनको दान की रकम की पुस्तकें प्राप्त होकर आगे प्रकाशित होनेवाले सब पुस्तकों पर उनका अधिकार हमेशाके लिये रहेगा। केवल सौ रु० देनेवालोंको इतने ग्रंथ देनेका साहस केवल स्वाध्यायमंडलने ही किया है। इसलिये ग्राहक इस रीतिसे अपना लाभ करते हुए इस संस्था को भी सहायता कर सकते हैं।

जो पोषक वर्गके ग्राहक होते हैं उनको पूर्वमुद्रित पुस्तकें १५ फी सेकडा न्यून मूल्यसे दी जाती हैं।



यह भी उनके लिये एक बड़ा लाभ है। इसलिये आशा है कि पाठक इस रीतिसे अपने लाभ के साथ स्वाध्याय मंडलकी भी सहायता करेंगे और धर्म प्रचारके कार्य की सहायता करेंगे।

गुजराती पुस्तकें।

स्वाध्याय मंडलकी पुस्तकें बहुत भाषाओंमें प्रसिद्ध हो रही हैं। गुजराती भाषामें प्रकाशित करने का कार्य तो नियमपूर्वक चल रहा है। इस समय तक सूर्यभेदन व्यायाम, आसन तथा बालक धर्म शिक्षा के पुस्तक गुजरातीमें छप चुके हैं, ब्रह्मचर्य पुस्तक का मुद्रण भी शीघ्रही होगा। इसके पश्चात् अन्यान्य पुस्तकें यथाक्रम मुद्रित होती रहेंगी। गुजराती पुस्तकें मिलनेका पता—श्री. म. बापुलालजी पटेल, आर्यसमाज, आनंद (जि. बड़ोदा)। जो केवल

गुजराती भाषा जानते हैं वे इन पुस्तकोंसे बड़ा लाभ उठा सकते हैं।

मराठी भाषा में।

मराठी भाषामें भी स्वाध्यायमंडल की पुस्तकें स्वा० मंडल द्वारा ही प्रकाशित की जा रही हैं। प्रायः प्रति मास सौ पृष्ठोंका एक पुस्तक प्रकाशित होता है। इस वेगसे थोड़ेही समयमें सब पुस्तकें मराठी भाषामें प्रकाशित हो जायगी।

पाठक इस कार्य के भारका अवलोकन करें और जो हो सकता है वह इस कार्य की सहायता के लिये करें।

औंध

( जि. सतारा )

१।१।२७

निवेदक

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर  
स्वाध्यायमंडल

## आसनों का चित्रपट !

आसनों का व्यायाम लेनेसे सहस्रों मनुष्योंका स्वास्थ्य सुधर चुका है, इस लिये आसन व्यायाम से स्वास्थ्य लाभ होनेके विषयमें अब किसी को संदेह ही नहीं रहा है। अतः लोग सब आसनोंके एक ही कागज पर छपे हुए चित्रपट बहुत दिनोंसे मांग रहे थे। वैसे चित्रपट अब मुद्रित किये हैं। २०-३० इंच कागज पर सब आसन दिखाई दिये गये हैं। यह चित्रपट कमरे में दिवार पर लगाकर उस के चित्रोंको देख कर आसन करनेकी बहुत सुविधा अब हो गई है।

मूल्य केवल = ) तीन आने और डाक व्यय— )  
एक आना है।

स्वाध्याय मंडल

औंध ( जि. सतारा )



## स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि० सातारा ) का

नवम वर्षका आयव्यय ।

( ता. १।१।२६ से ता. ३१।१२।२६ तक )

## परिशिष्ट १

आय	रु०	आ०	व्यय	रु०	आ०
गतवर्षकी रोकड .....	७३	०	मुद्रणालय		
वैदिकधर्म चंदा.....	२५९३	१	यंत्रव्यय ९००		
महाभारत " .....	४४७०	१२	टाइप ५७५-९		
पुरुषार्थ " .....	२३५२	५	फर्निचर २७१-१५		
पुस्तक विक्रीसे प्राप्त	६१४६	९		१७४७	८
दान प्राप्त—			पुस्तकालय	६६६	४
पोषकवर्ग ४८०			पुस्तक छपाई ( मुंबई में )	२९६५	१०
मासिक सहायता ५९			कागज आदि	५८२७	११
इतर दान २१३			वेतन	५९१८	२
यज्ञ सहायता १			डाकव्यय	१६९०	१
	७५३	०	स्टेशनरी	१२८	२
स्थिरसहायक चंदा.....	६९	०	रेलवे व्यय	६७१	८
छपाईसे प्राप्त.....	२९८	४	विज्ञापनव्यय	७८	२
कागज विक्रीसे प्राप्त .....	६७	८	यंत्रदुरुस्ती	२२६	०
विज्ञापन से प्राप्त .....	२२	०	साधारण व्यय	१८२	९
कर्जा—			कर्जा निवृत्ति	७०८०	११
स्थिरसहायकवर्ग (२३२० )			स्थिरग्राहकचंदा वापस	११५	१२
अनामत १३-९)	१२३३३	९	औंधमें रोकड	१८८१	०
रु.	२९१७९	०		२९१७९	०

## (मराठी) संस्कृत स्वयांशिक्षक ।

संस्कृत भाषा शिकण्याच्या सोपा उपाय. २४ भागां मध्ये संस्कृतचें सर्व शिक्षण संपूर्ण होतें.

बारा भागांची किंमत म. आ. नें ३ रु. व वी. पी. नें ४ रु.

चोवीस भागांची म. आ. नें किं. ६ रु. वी. पी. नें ७ रु. लवकर मागवा.

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )



## स्वाध्याय मंडल का हानिलाभ पत्रक ।

( ता. १।१।२६ से ता. ३१।१२।२६ तक )

## परिशष्ट २

आय	रु०	आ०	व्यय	रु०	आ०
वैदिकधर्मचंदा—			आरंभ दिनका पुस्तकसंग्रह	१६२९६	०
गतवर्षका शेष	८५०- ०		पुस्तक छपाई	३८६५	१०
इसवर्ष प्राप्त	२५९३- १		कागज आदि	५०२६	९
	<u>३४४३- १</u>		अन्यव्यय—		
बाद पेशगी	६५०- ०	२७९३	वेतन	५९१८- २	
महाभारतचंदा			डाकव्यय	१६९०- १	
इस वर्ष प्राप्त	४४७०-१२		स्टेशनरी	१२८- २	
बाद पेशगी	२१९०- ०	२२८०	रेलवेव्यय	६७१- ८	
पुरुषार्थचंदा			विज्ञापन	७८- २	
गतवर्षका शेष	६०६- ०		यंत्रदुरुस्ती	२२६- ०	
इसवर्षमें प्राप्त	२३५२- ५	१२	साधारणव्यय	१८२- ९	
	<u>२९५८- ५</u>				
बाद पेशगी	८००- ०	२१५८	घटावः—		
स्थिरग्राहकचंदा—			टाइपका	१६५०- ०	
गतवर्षका शेष	१२- ०		यंत्रका	६६०- ०	
इसवर्ष प्राप्त	६९- ०		पुस्तकालयका	१४०- ०	
	<u>८१- ०</u>		मकानका	६५०- ०	
बाद पेशगी	१०- ०	७१			
दानप्राप्ति—			आयकाशेष	३१००	०
पोषकवर्ग	४८०- ०		स्थिरकोशकेलिये	६१५८	१०
मासिकसहायता	५९- ०				
इतरदान	२१३- ०				
यज्ञसहायता	१- ०				
	<u>७५३</u>	०			
पुस्तकविक्रीसे प्राप्त	६१४६	९			
	<u>(आगे अगले पृष्ठपर देखिये)</u>				



आय	रु०	आ०	व्यय	रु०	आ०
छपाईसे प्राप्त	२९८	४			
कागजविक्रीसे प्राप्त	६७	८			
विज्ञापनसे प्राप्त	२२	०			
कर्जामें छूट					
अंतिमदिन पुस्तक संग्रह	८२००	१४			
	२०५५०	०			
रु०	४३३४१	५		रु०	४३३४१ ५

स्वाध्याय मंडल औद्योगिक आर्थिक अवस्था पत्रक ।

( ता. ३१। १२। २६ के दिन )

परिशिष्ट ३

कोश और कर्जा	रु०	अ०	संपत्ति	रु०	आ०
स्थिरकोश-			मुद्रणालय-		
गतवर्षका शेष २२०४५- ७			मकान १२७९७- १		
इसवर्षमें जमा ६१५८-१०	२८२०४	१	यंत्रादि १३२६८- ६		
			टाइप ४५५४-१२		
यंत्रादिघटाव -			अन्य सामान २१७३- १		
गतवर्षका शेष ३५६७- ३				३२७९३	४
इसवर्षमें ३१००- ०	६६६७	३	फर्निचर १४७		४
कर्जा--			पुस्तकालय २८३६		७
( १ ) स्थिरसहायक			पुस्तक संग्रह २०५५०		०
गतवर्षका ११४५- ०			रोकड बंकमें १८८१		०
इसवर्षका १२३२०- ०					
१३४६५- ०					
बाद वापस ११५-१२	१३३४९	४			
( २ ) अन्यकर्जा					
कागजका १२७३-१४					
छपाई २००-०					
अनामत १३- ९					
पेशगी ३६५०- ०					
बैंक ४१५०- ०	९९८७	७			
रु०	५८२०७	१५		रु०	५८२०७ १५



## इस वर्ष के दानका व्यौरा

### पोषक वर्ग ।

श्री. सौ. तापीबाई, मुंबई	१०० )
म. बोध रामजी सूद	१०० )
" मगनलालजी जौहरी	१०० )
सेठ प्रागजी प्राणजीवन व्यास	१०० )
श्री. अ. नि. देशपांडे रालेगांव	७० )
श्री. पं. आ. इनामदार औंध	१० )
	<u>४८०</u>

### मासिकदान।

श्री. वी. एस. मराठे, मुंबई	५५ )
म. दि. वा. दत्तवाडकर, औंध	४ )
	<u>५९ )</u>

### स्थिरसहायकवर्ग ।

श्री० सेठ शूरजी वल्लभदासजी	८००० )
म. गणपतरावजी गोरे	३६०५ )
" बूधरामजी सूद	४०० )
ला. रामचंद्रजी टनन	१०० )
म. बिहारीलाल वासुदेव प्रसादजी	१०० )
" माधवराव गेजी	५० )
" बी. एन्. सरपाल	५० )
म. रामप्रसादजी, आग्रा	१० )
पं. पुष्करदत्तजी शर्मा	५ )
	<u>१२३२०)</u>

### दान

गुप्तदान अंबाला	१०० )
म. मन्नालालजी गुप्त.	५० )
पं. हरिशरणजी	३४ )
म. बलदेव नरोत्तम सारंग	१० )
" रामचंद्रजी इगतपुरी	५ )
" विश्वदास जी टीचर लंखा	५ )
" बलसिंहजी व्याया	४ )
पं. व्यंकटाचार्य उडीपो.	२ )
" चक्रपाणीजी —	१ )
म. भगवानस्वरूपजी भटनगर	१ )
श्री. धर्मपत्नी महादेव प्रसादजी	१ )
	<u>२१३)</u>

### स्थिर ग्राहकवर्ग ।

म. व्या. व. दांडेकर, इंदूर	२५ )
" ग. गो. नवरे शिव	२३ )
" सत्यदेवजी नागपुर	१० )
" नत्थूरामजी शर्मा	७ )
" ना. वी. मा. —	४ )
	<u>६९ )</u>

## भूलका सुधार.

इसी पुस्तकके पृष्ठ ४ पर " स्थिर सहायक वर्ग " के नियम ८ में " भेंट के पुस्तकों का क्रम " उलटा पढ़ना चाहिये, जैसा " २ ) ४॥ ) और १० ) के पुस्तक अथवा इसी हिसाबसे अधिक पुस्तक भेंट के रूपमें मिलेंगे । "



# छूत और अछूत

## [ प्रथम भाग ]

अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ! अत्यंत उपयोगी !!

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है—

- १ छूत अछूत के सामान्य कारण,
- २ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढ़ी,
- ३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
- ४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
- ५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
- ६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
- ७ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था,
- ८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
- ९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
- १० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
- ११ वैदिक कालकी उदारता,
- १२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता
- १३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था ।

इस पुस्तकमें हरएक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण, इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है । यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है ।

पृष्ठ संख्या १८० मूल्य केवल १) रु. है । (डाकव्यय ।)

अतिशीघ्र मंगवाइये ।

द्वितीय भाग छप रहा है, अगले मासमें तैयार होगा ।

मुद्रक तथा प्रकाशक— श्री. दा. सातवलेकर, भारतमुद्रणालय ।

स्वाध्याय मंडल, औंध, जि. सातारा.



# Employment for millions STUDENTS' OWN MAGAZINE

A Monthly English Teacher--Careers for Young men a speciality.

ANNUAL SUBSCRIPTION WITH SUPPLEMENTS, Rs. 3.

GET YOUR COPY FOR MARCH NUMBER RESERVED FOR 6 ANNAS STAMPS.

SAMPLE COPY POSITIVELY NO.

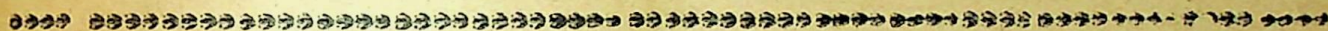
APPLY TO-

CAPITAL INDUSTRIAL BUREAU, RAM GALLI, LAHORE.



## वैदिक उपदेश

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिए बारह उपदेश हैं। इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी। मूल्य ॥ ) आठ आने। डाकव्यय - ) एक आना।  
मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औध ( जि. सातारा )



देश देशान्तर का ज्ञान प्राप्त करने का  
अपूर्व साधन  
विद्यार्थियों को परीक्षा पास करने का  
सुगम उपाय

## भूगोल

भूगोल विषयक हिन्दी का एकमात्र सचित्र मासिकपत्र। पंजाब, संयुक्त प्रान्त, विहार उड़ीसा, मध्य प्रान्त और बरार के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत।

“भूगोल” में ज्योतिष, यात्रा, व्यवसाय, पशु धनस्पति अनुसंधान आदि भूगोल के सभी अंगों पर उच्च कोटि के मौलिक लेख प्रकाशित होते हैं। ( पिछले दो वर्षों के लेखों और लेखकों की सूची मुफ्त मंगाकर स्वयं देख लीजिये )।

वार्षिक मूल्य ३ )

मैनेजर “भूगोल” मेरठ।

## योगमीमांसा

त्रैमासिक पत्र

संपादक— श्रीमान् कुबलयानंद जी  
महाराज।

कैवल्यधाम आश्रममें योग शास्त्र की खोज हो रही है जिस खोजका परिणाम आश्चर्यजनक सिद्धियोंमें हुआ है, उन आविष्कारोंका प्रकाशन इस त्रैमासिक द्वारा होगा। प्रत्येक अंकमें ८० पृष्ठ और १६ चित्र दिये जायेंगे।

वार्षिक चंदा ७ ) ; विदेशके लिये १२ शि०  
प्रत्येक अंक २ ) रु.

श्री. प्रबंधकर्ता-योगमीमांसा कार्यालय, कुंजवन;  
पोष्ट-लोणावला, ( जि. पुणे )





# छूत और अछूत ।

## [ प्रथम भाग ]

अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ! अत्यंत उपयोगी !!

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

- १ छूत अछूत के सामान्य कारण,
- २ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढी,
- ३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
- ४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
- ५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
- ६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
- ७ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था,
- ८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
- ९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
- १० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
- ११ वैदिक कालकी उदारता,
- १२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,
- १३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था ।

इस पुस्तकमें हर एक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है । यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है ।

पृष्ठ संख्या १८० मूल्य केवल १) रु. है डाकव्यय।)

### अतिशीघ्र मंगवाइये ।

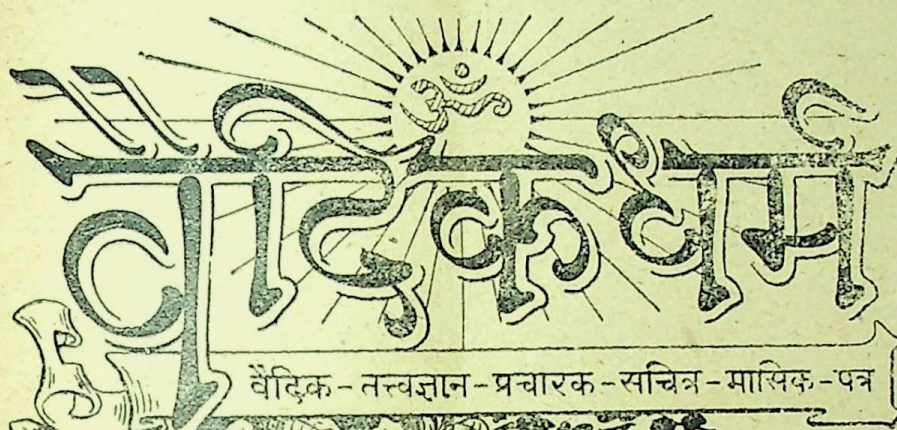
द्वितीय भाग छप रहा है अगले मासमें तैयार होगा ।

मुद्रक तथा प्रकाशक-- श्री. दा. सातवलेकर, भारतमुद्रणालय ।

स्वाध्याय मंडल, औंध, जि. सातारा.



वर्ष ८ अंक ६ क्रमांक १० ज्येष्ठ संवत् १९८४ जून सन १९२७



छपकर तैयार है।

## महाभारत की समालोचना

प्रथम भाग और द्वितीय  
भाग।

प्रति भागका

मूल्य ॥) डाकव्यय=)

बी. पी. से ॥=)

मन्त्री.— स्वाध्यायमंडल औंध  
( जि. सातारा)

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवलेकर।  
स्वाध्यायमंडल, औंध ( जि. सातारा )



## विषयसूची ।

<p>१ शूर पुरुष ९७</p> <p>२ शारीरिक बल बढ़ानेका उपाय ९८</p> <p>३ यजुर्वेद का मुद्रण १०६</p> <p>४ साहित्य चर्चा ११२</p> <p>५ यजुर्वेद का नमूना पृष्ठ ४९-५६</p> <p>६ अथर्ववेद का स्वाध्याय पृ. १०५-१२८</p>	<p>सौभाग्यवर्धन सूक्त १०५</p> <p>शत्रुनाशन सूक्त ११०</p> <p>महान शासक ११४</p> <p>प्रजापालक सूक्त ११७</p> <p>हृदयरोग तथा कामिलारोग ११९</p> <p>श्वेतकुष्ठनाशन सूक्त १२३</p> <p>कुष्ठनाशन सूक्त १२६</p>
---	--

# आसनों का चित्रपट !

आसनों का व्यायाम लेनेसे सहस्रों मनुष्योंका स्वास्थ्य सुधर चुका है, इस लिये आसन व्यायामसे स्वास्थ्य लाभ होनेके विषयमें अब किसी को संदेह ही नहीं रहा है । अतः लोग सब आसनोंके एक ही कागज पर छपे हुए चित्रपट बहुत दिनोंसे मांग रहे थे । वैसे चित्रपट अब मुद्रित किये हैं । २०-३० इंच कागज पर सब आसन दिखाई दिये हैं । यह चित्रपट कमरे में दिवार पर लगाकर उसके चित्रोंको देख कर आसन करनेकी बहुत सुविधा अब हो गई है ।

मूल्य केवल = ) तीन आने और डाक व्यय — ) एक आना है ।

स्वाध्याय मंडल

औध ( जि. सातारा )





वर्ष ८

अंक ६

क्रमांक ९०

ज्येष्ठ

संवत् १९८४

जून

सन १९२७

# वैदिकधर्म

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर ।

स्वाध्याय मंडल, औंध जि. सातारा ।

जनताका हित करनेवाले शूर पुरुष ।

भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा  
रभसासो अञ्जयः ॥ अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा  
अधि वयो न पक्षान्व्यनु श्रियो धिरे ॥

ऋग्वेद० १ । १६६ । १०

जिनके ( नर्येषु ) मनुष्योंका हित करने वाले ( बाहुषु ) बाहुओं में ( भूरीणि भद्रा ) बहुत कल्याणकारी बल है, ( वक्षः सु ) छातीके ऊपर ( रुक्माः ) तेजस्वी ( रभसासः ) सुंदर ( अंजयः ) आभूषण हैं । ( अंसेषु ) कंधोंपर ( एताः ) ये शस्त्र हैं जिन ( पविषु ) शस्त्रों में ( क्षुराः ) उस्त्रेके समान तेजधारा हैं । ( वयः पक्षान् न ) जैसे पक्षी पंखों को धारण करते हैं उस प्रकार ( श्रियः ) शोभादायक शस्त्रास्त्र ( अनु वि धिरे ) जो धारण करते हैं ।

जनताका हित करने वाले शूरवीर अपने बाहुओंका बल बढ़ावें, कमरमें और कंधोंपर तेज शस्त्रास्त्र धारण करें और उनका उपयोग शत्रुको दूर करने में करें और अपने पुरुषार्थ से जनताका हित करें ।

—०—



चतुर्विध पुरुषार्थ का साधन ।

## शारीरिक बल बढ़ाने के उपाय ।

### १ ब्रह्मचर्य ।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाध्नत ॥ अथर्व० ॥

बालकों का स्वास्थ्य बना रहे, उनके शरीर में फुर्ती और उत्साह रहे तथा उनकी आयु बढ़े इस लिए अत्यन्त आवश्यकता ब्रह्मचर्य की है । छोटी उमर में वीर्य के नाश के सदृश स्वास्थ्यको और आयु को हानि पहुँचाने वाली और दूसरी बात शायद ही कोई हो । लोग समझते हैं कि शरीर में वीर्य उत्पन्न होने पर उसके व्यय करने में कोई हानि नहीं । किन्तु यह ख्याल बिल्कुल गलत और घातक है ।

इन्द्रिय-विज्ञान-शास्त्र के विद्वानों को अभी पूरा पता नहीं चला कि वीर्य उत्पन्न होने पर उसका व्यय न किया जाय तो शरीर को क्या लाभ होता है । हमारे ऋषिमुनियों की यह दृढ़ संमति है कि वीर्यरक्षणसे अनेक लाभ हैं । बहुतेरे विदेशी विद्वानों का भी मत है कि अनप्युक्त वीर्य शरीर सोख लेता है और उससे शरीर में उत्साह बढ़ता है । जिस मनुष्य के शरीर में पुरुषत्वके अभाव के कारण वीर्य उत्पन्न नहीं होता, वा जिस जानवर (नर) का पुरुषत्व कृत्रिम रीतिसे घटा दिया जाता है, उसमें त्वेष, स्वाभिमान आदि गुण कम होते हैं । इससे विदित होगा कि शरीर में वीर्य रहनेसे क्या लाभ होता है ।

वीर्य का व्यय होने के पूर्व शरीर में जो शक्ति, उत्साह और श्रमसहिष्णुता रहती है वह वीर्य का व्यय होने पर बहुत समय तक फिर नहीं आती । इससे भी वीर्य के व्यय से होनेवाली हानि विदित होगी । वीर्य भाफ के सदृश है । भाफको जितना

अधिक दबाओ उतनी ही अधिक शक्ति उसमें आती है । इसी प्रकार वीर्य को दबा रखने की शक्ति शरीर में जितनी अधिक होगी उतनी ही श्रमसहिष्णुता, चपलता और उतना ही उत्साह अधिक होगा ।

जवानी में मनोवृत्तियों का प्रबल एवं श्रेष्ठ होना वीर्य की अधिकाई का फल है । जवानी का जोश शरीर में रहने पर स्त्री, पुरुषों के आचरण में बड़ा भारी फरक दिखाई देता है । विपत्ति—पीड़ित मनुष्य के लिए हृदय का अकुलाना, कुल की मर्यादा की रक्षा में वा स्वाभिमान के लिए प्राण-त्याग करने को तैयार होना, प्राणों के समान प्यारी प्रिया के लिए अतीव साहस के काम करना आदि काम तभी तक हो सकते हैं जब तक शरीर में वीर्य का जोश हो । कुशल से कुशल योद्धा उतरती उमर में धीमे काम भले ही करे; किन्तु आंधी के समान प्रबल वेग से शत्रु पर हमला करना, वा वज्रपात के समान भयानक आवाज उठा सारे संसार को जीत लेना आदि, संसार को चकित करनेवाले काम जवानी में ही हो सकते हैं ।

पुरुषत्व और पराक्रम तथा कुछ श्रेष्ठ मनोवृत्तियों का सम्बन्ध लोग बहुत प्राचीन समय से जानते हैं । यह बात अंग्रेजी के वर्चू (virtue) शब्द से जो लैटिन भाषासे लिया गया है (vir=a man) और संस्कृत के पौरुष शब्द से सिद्ध होती है । देखिये—



Vir = a man

वीर = मनुष्य

Vir-tue = सद्गुण

वीर-त्व = वीरता

प्रसिद्ध पहलवान शरीर का सामर्थ्य न घटे इसलिए स्त्री को वर्ज्य कर देते हैं। वा ( वे विवाहित हों तो ) कुश्ती वा दंगल लड़ने के पहले कुछ दिन वे ब्रह्मचर्य से रहते हैं। इंग्लैण्ड आदि देशों में नावों की दौड़ के पूर्व नाविक कुछ दिन ब्रह्मचर्य से रहते हैं। इन बातों से ज्ञात होगा कि वीर्य का नाश होने से शक्ति को कैसी हानि होती है। वीर्य का व्यय होने से मस्तिष्क की शक्ति कम होती ही है। इसे जानकर ही पहले के लोग गुरु के पास अध्ययन पूरा हो चुकने के पश्चात् विवाह करते थे। अब भी लोगों की समझ है कि पति की भेंट के पश्चात् वा दो, एक पुत्रों के पिता का पद प्राप्त होने पर युवक का अध्ययन खतम हो चुकता है। वा नवीन विषय का आकलन वा नया अध्ययन उससे नहीं हो सकता। इस समझ का कारण यही है कि उन्हें पूर्णतया विदित है कि वीर्यनाश का फल मस्तिष्क की शक्ति क्षीण करना है। हम लोग पुराणों में पढ़ते हैं कि स्त्री को देखकर जब कोई ऋषि मोहित हो जाता था, तब तपस्या के कारण प्राप्त हुई प्रचण्ड मनः-शक्ति वा सिद्धि नष्ट हो जाती थी। इसकी जड़ उपरोक्त कथन में है। हमें पुराणों से विदित होता है विश्वामित्र आदि ऋषियों की स्त्री के दर्शन से कैसी अवनति हुई। इससे सिद्ध है कि मनः-शक्ति, पराक्रम आदि का बीज अधिकांश में वीर्य ही है। इसीलिए 'वीर्य' शब्द, जिस का अर्थ शौर्य है, 'रेतस्' अर्थ में आता है। तब स्पष्ट ही है कि ब्रह्मचर्य जितना बढ़ाया जावे उतना ही शरीर में उत्साह अधिक रहेगा।

यह ब्रह्मचर्य केवल स्त्रीसंग न करने से वा जल्दी विवाह न करने ही से, नहीं बढ़ सकता। सच्चा ब्रह्मचर्य रखना ही तो स्त्री के संबन्ध की बातों का मन को अयोग्य समय में स्पर्श भी न होना चाहिए।



मन में वासना उत्पन्न होते ही वीर्य की उत्पत्ति होती है। और वह वीर्याशय में इकट्ठा होता है। जब उस स्थान में वीर्य बहुत इकट्ठा हो जाता है तब स्वप्न में स्त्रीसंग का आभास होता है और वीर्यपतन होता है। वीर्यनाश का दूसरा मार्ग यह है कि मन में स्त्रीके सम्बन्ध का बुरा भाव उत्पन्न होते ही वीर्य उत्पन्न होता है और वह मूत्र से मिलकर निकल जाता है। इस प्रकार स्वप्नावस्था न होने पर भी थोड़ा थोड़ा वीर्य नाश हो सकता है। इसी लिए जिसके मन में काम की इच्छा उत्पन्न होती है उसके अविवाहित रहने से वा विवाहित रहते हुए स्त्री से अलग व्रतस्थ रहने से कुछ लाभ नहीं। हमारे ऋषि तो अष्टविध मैथुन के विषयमें कहते ही हैं, परंतु वैबल में भी कहा है—

Who-so-ever looketh on a woman to lust after her, hath committed adultery with her already in his heart.

अर्थात् प्रत्यक्ष व्यभिचारी के सदृश परस्त्री के विषय में कामवासना रखनेवाला मनुष्य भी व्यभिचारी है।

हजरत ईसा मसीह का यह कथन है। हमारे ऋषियोंने तो सहस्रोंवार कहा है। इसी प्रकार कह सकते हैं कि प्रत्यक्ष स्त्रीसंग करनेवाले के सदृश जिसके हृदयमें ब्रह्मचारी रहते हुए स्त्री सम्बन्ध के कुविचार आते हैं वह ब्रह्मचारी नहीं है। इस दृष्टि से देखने पर विदित होगा कि वर्तमान युवकों में ब्रह्मचर्य का बहुत ही अभाव है। जिनके विवाह जल्द हो जाते हैं उनके ब्रह्मचर्य की बात करना ही व्यर्थ है, किन्तु अविवाहितों में भी उपरोक्त कारण से ब्रह्मचर्य कम रहता है। मातापिता की गलती से और लड़कों का पिण्ड जन्मसे ही कमजोर रहने के कारण वे छोड़ी उमर में ही जवान हो जाते हैं। और वर्तमान शिक्षा प्रणाली के कारण उनका मस्तिष्क और ज्ञानतन्तु निर्बल हो जाते हैं। इसी लिए उनके मन में कामवासना बहुत जल्द उत्पन्न होती है।



## खानपान ।

इन कारणों के सिवा व्यायाम तथा पुरुषत्व के खेलों का अभाव है ही । साथ ही बालकों का आहार भी एक कारण है । हमारे भोजन के पदार्थों में पौष्टिक पदार्थ कम रहते हैं और तेल, मिर्च, मसाला आदि पडे हुए पदार्थ अधिक रहते हैं । आजकल चाय, काफी आदि उत्तेजक पेय पदार्थों का प्रचार भी बहुत हो गया है । इससे यह आहार भी बालकों को छोटी उमर में युवावस्था प्राप्त कराने का कारण होता है । यूरोपीय डाक्टरों ने इस विषय की खोज तथा अभ्यास किया है कि बालकों को छोटी उमर में काम की इच्छा उत्पन्न होना, इसी का परिणाम बुरी आदतें लगना और स्वप्नावस्था के समान विकार हो जाना आदि का कारण क्या है? उन सब का कथन है कि चाय, काफी आदि वस्तुएँ तथा बहुत मसाला पड़ी हुई चीजें खाने से बालकों में कामवासना उत्पन्न होती है ।

अंग्रेजी स्कूलों में तथा कालेजों में जानेवाले विद्यार्थी नित्य इन पेयों का सेवन करते हैं । और इन पेयों का सेवन करनेवालों की संख्या बढ़ती ही जाती है । इन पदार्थों ने कुछ लोगों को अवश्य ही बुरी आदतें लगा दी हैं और आगे चलकर औरों को लगा देंगे । जो बालक काफी व्यायाम नहीं करते, तथा जिनके ज्ञानतन्तु अभ्यास के कारण क्षीण हो जाते हैं ऐसे बालकों में चाय, काफी सदृश उत्तेजक पेयों के कारण कामवासना उत्पन्न होना तथा बुरी बातों की ओर चित्त झुकना सम्भव है । अब यूरोपादी देशों में भी हल्ला होने लगा है कि इन उत्तेजक पदार्थों के सेवन से ब्रह्मचर्य कम होता जाता है । कामवासना जागृत करनेवाली दूसरी वस्तुएँ मिर्च और मसाला हैं । सब लोगों को कबूल है कि मिर्च और मसाले उत्तेजक वस्तुएँ हैं । इसी-लिए इन वस्तुओं से कामवासना जागृत होना निश्चित ही है ।

तब सिद्धान्त यही निकलता है कि यदि हम देशके नायुवकों का ब्रह्मचर्य कायम रखना तथा बढ़ाना चाहते हैं तो हमें चाहिए कि चाय, काफी, मसाला,

मिर्च आदि उत्तेजक वस्तुएँ उन्हें बिलकुल न दें ।

यदि कोई ध्यानपूर्वक देखे कि ठण्ड और गरमी का मनुष्य के शरीरपर क्या परिणाम होता है, तो उसे विदित होगा कि उष्णता से शरीर में तुरन्त ही फुर्ती आती है किन्तु कुछ समय के बाद शरीर को वह कमजोर कर देती है । उष्ण पदार्थों का यह परिणाम जानकर आप स्वयं जान सकते हैं कि उत्तेजक पदार्थों से कैसी हानि होती है । क्यों कि उत्तेजक वस्तुओं की तासीर गरम रहती है और मनुष्य का पिण्ड जितना कमजोर होगा उतनी ही अधिक हानि गरम तासीर की वस्तुएँ करती हैं । शराब जैसी अतीव उत्तेजक वस्तुएँ बलवान मनुष्य हजम कर जाता है किन्तु कमजोर मनुष्य के शरीर में उनसे तुरन्त ही उष्णता बढ़ती है । और उसे हानि होती है । इसीसे यदि आप बालकों और युवकों में ब्रह्मचर्य कायम रखना चाहते हैं तो आप को चाहिए कि आप उष्ण एवं उत्तेजक वस्तुओं का सेवन उन्हें मना कर दें ।

## मनकी शुद्धि ।

ब्रह्मचर्य की रक्षा करने का एक और उपाय है मन को शुद्ध रखना । हमारे प्रौढ एवं सभ्य लोगों में एक बुरी आदत यह है कि वे मामूली बातचीत में भी असभ्य एवं अश्लील बातें करते हैं । तथा उन्हें अश्लील भाषण और अश्लील विषय की चाह है । साथ ही वे जब बालकों में भी यही चाह पाते हैं तब उसे फौरन रोकते नहीं, उसकी ओर ध्यान ही नहीं देते । यह असावधानी अतिही निन्दनीय है । वर्तमान कालेज के विद्यार्थियों में, उनके क्लबों में, तथा बड़ी उमर के लोगों में वार्तालाप का बिलकुल मामूली विषय और हँसी का विषय यही रहता है । पहले के लोग बालकों के सम्मुख ऐसी बातें कदापि न करते थे और बड़ी फिकर करते थे कि लड़कों को असभ्य बातें दिखने न पावें । किन्तु अब बिलकुल विपरीत बातें होती हैं । माबाप को पर्वाह नहीं रहती कि उनके लड़के शाकुन्तल, सुभद्राहरण आदि नाटक देखते हैं, या राणा भीमदेव, राठोड वीर



दुर्गादास आदि देखते हैं । परिणाम यह होता है कि जिन बालकों का पिण्ड ही कमजोर होता है, शिक्षा के कारण जिनका मस्तिष्क ऐसा कमजोर हो जाता है कि वह जल्द ही उत्तेजित होवे, जिन्हें पौष्टिक आहार नहीं मिलता केवल उत्तेजक आहार मिलता है, जो छुटपन ही से असम्यक्त बातें सुनते रहते हैं, जो शृंगार-रस-प्रधान नाटक पढ़ते और देखते हैं, ऐसे बालकों में दीर्घ ब्रह्मचर्य किस प्रकार दीख सकता है । इसीसे ब्रह्मचर्य का नाश करनेवाली अन्य परिस्थिति को नष्ट न कर केवल प्रौढ विवाह का प्रचार कर ब्रह्मचर्य की रक्षा का प्रयत्न करना व्यर्थ है । जब तक युवक का पिण्ड कमजोर है, थोड़ेही समय में जिसका मस्तिष्क परिपक्व हुआ है, जो व्यायाम नहीं करता, नाटक, गल्प कथाएँ और उपन्यास पढ़ता है, जो उष्ण तथा उत्तेजक पदार्थ सेवन करता है, उस युवक का मन शुद्ध रहना असंभव है । और जब तक मन शुद्ध नहीं तब तक ब्रह्मचर्य की रक्षा भी नहीं हो सकती । केवल विवाह देरसे करने ही से क्या ? इसी लिए आवश्यक है कि ब्रह्मचर्य की रक्षा करना हो तो उपरोक्त ब्रह्मचर्य का नाश करनेवाले सब कारण नष्ट कर दिये जाय ।

वर्तमान समाज की परिस्थिति ऐसी है कि नव-युवक को यौवन प्राप्त होनेपर कुछ समय विश्राम मिलता है किन्तु युवतियों को विश्राम करीब करीब बिल्कुल नहीं मिलता । इसका परिणाम स्त्रियों को तथा भावी संतान को हानिकर होता है । जिस प्रकार यौवन प्राप्त होने के पश्चात् कुछ समय तक पुरुष ब्रह्मचारी रहे तो उसके शरीर की वृद्धि अच्छी तरह होती है । इसी प्रकार रजोदर्शन के पश्चात् पत्नी को पति से कुछ समय दूर रखनेसे उसके शरीर की वृद्धि को अवकाश मिलता है । भावी सन्तान की भलाई के लिए, तथा उनका स्वास्थ्य अच्छा रखने के लिए आवश्यक है कि लड़कों के सहस्र लड़कियाँ भी यौवन प्राप्त होने के पश्चात् कुछ दिन व्रत से रहें । साथ ही यह भी आवश्यक है कि भेंट होने पर भी उनका एकान्त कुछ नियमित

समय के अन्तर से होवे । अर्थात् वे ऋतुगामो हों । लौकिक दृष्टि से विवाह के पश्चात् तुरन्त ही पति-पत्नी का एकान्त करानेवाले माबाप निम्न लिखित चरक के वाक्य पर ध्यान दें-

ऊन-षोडशवर्षायां अप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ।

यः पुमान् गर्भमाश्रिते कुक्षिस्थः स निपद्यते ॥

ब्रह्मचर्य की आवश्यकता केवल नौजवान बालकों को ही नहीं प्रौढ पुरुषों को भी है । कई दिनों से विद्वान लोग कण्ठ शोष करके कह रहे हैं कि संसार की मनुष्य-जाति के स्वास्थ्य के न्हास का जबरदस्त कारण विषय का अतिरेक है । किन्तु विद्वानों के इस कथनपर लोगों ने अब तक ध्यान नहीं दिया । स्त्री-सम्भोग का मुख्य उद्देश प्रजोत्पत्ति है, सुख नहीं । इससे जिस सम्भोग का उपयोग प्रजोत्पत्ति के लिए नहीं अर्थात् जो केवल सुख के लिए है, वह सृष्टि के नियमों के विरुद्ध है । सृष्टि के इन नियमों के उल्लंघन से हानि अवश्य ही होगी । कैसा आश्चर्य है कि लोग इस बात को नहीं समझते ? गर्भ-धारण हो चुकने पर स्त्रीसे संग करना इन्द्रिय-विज्ञान-शास्त्र के भी विरुद्ध है । यदि लोग इन बातों पर ध्यान दें तो उन्हें विदित होगा कि वे कैसी भारी भूल कर रहे हैं ।

अस्तु, उपरोक्त ब्रह्मचर्य का नाश करनेवाले कारणों को नष्ट कर दें और बालकों के ब्रह्मचर्य का समय बढ़ा दें तथा प्रौढ पुरुष विषय का अतिरेक न करें तो स्वास्थ्य के न्हास को रोकने में बड़ी मदद होगी ।

## योग्य आहार ।

शरीर-सामर्थ्य के न्हास के अनेक कारण हैं । उनमें एक कारण दारिद्र्य है । दरिद्रतासे संसार की फिकर बढ़ती है । और पौष्टिक अन्न भरपूर नहीं मिलता । इसीसे शरीर के सामर्थ्य का नाश होता है । अतएव वर्तमान समय में जो हानि हो रही है उसको रोकने के लिए अपनी गरीबी नष्ट करने का प्रयत्न होना चाहिए । अपनी साम्पत्तिक दशा में सुधार करना बड़ा व्यापक प्रश्न है, अतएव वह बहुत कठिन है । इस कठिन प्रश्न को छोड़कर भी



शरीर के न्हास को रोक सकते हैं। इसके लिए उपाय है योग्य आहार ।

विलायत में जो मजदूर आधे-पेट भोजन करने वाले समझे जाते हैं, उन्हें रोजीना तीन छटाक दूध और आधी छटाक शक्कर मिलती है। किन्तु हमारे देश के मध्यम दशा के सरकारी नोकरों के बालकों को—खासकर जब कि माबाप शहर में रहते हैं—ये वस्तुएँ इतनी नहीं मिलती। तब हमारे देश के मजदूरों के हाल का क्या ठिकाना? पूरा पेटभर भोजन न मिलनेवाले मजदूरों तथा किसानों को छोड़ दें। जिन्हे पेटभर के भोजन मिलता है ऐसे हमारे देश के मजदूरों में से कितने होंगे जिन्हे रोज तीन छटाक दूध और आधी छटाक शक्कर मिलती है? हम नहीं समझते ऐसे मजदूर सौ में दस भी मिलेंगे। ब्राह्मणों में भी घी और दूध जैसी वस्तुएँ तेवहारों को छोड़ शायदही कभी मिलती हैं। ऐसी परिस्थिति में रहकर जिन बालकों को अतीव परिश्रम से विद्या सीखनी होती है, उनके शरीर की वृद्धि अच्छी तरह कैसे हो सकती है? उनमें साहस, श्रमसहिष्णुता आदि गुण कैसे आवेंगे?

हम लोगों का अन्न ही हलके दर्जेका है तब हमारा शरीर दृढ कैसे हो! इसीसे स्वास्थ्य को सुधारने के लिए हमारे भोजन में सुधार होना आवश्यक है। कोई कहेगा कि मजदूर पेटभर रोटी न मिलने पर भी मोटे ताजे होते हैं। इससे वह सिद्ध करना चाहेगा कि पौष्टिक आहार की आवश्यकता नहीं है। किन्तु यह उचित नहीं। पहले के लोगों के सदृश आजकल के लोगों का पिण्ड नीरोग और बलवान नहीं होता। दूसरे जो मनुष्य जन्म ही से बुद्धिमान है उसे कोई न पढावे तब भी वह स्वयं पढकर विद्वान हो जाता है। किन्तु इससे क्या कोई यह समझता है कि शिक्षा अनावश्यक है? इसी प्रकार कोई बलवान पिण्ड का मनुष्य सादे भोजन से दृष्ट पुष्ट होता है, इससे पौष्टिक अन्न की अनावश्यकता बतलाना व्यर्थ है। इससे यही सिद्ध होता है कि उन्हें अच्छा भोजन न मिलने पर भी वे ऐसे

पुष्ट हैं, यदि पौष्टिक भोजन मिलता तो वे इससे भी पुष्ट और बलवान होते। वर्तमान समय में हमारा पिण्ड जन्म से ही बलहीन होता है, हमें पहले की अपेक्षा मानसिक श्रम अधिक करने पड़ते हैं, और जीवन संग्राम भी अब अधिक कठिन हो गया है। इसीसे हमें पौष्टिक भोजन की अतीव आवश्यकता है। सब प्राणियों के और लोगों के अवलोकन से भी यही विदित होगा कि हमें शरीर बलवान बनाने के लिए श्रेष्ठ भोजन करना आवश्यक है। साधारण नियम है कि प्राणि या वनस्पति का दर्जा जितना ऊंचा होगा उतनाही ऊंचा उसका भोजन रहता है।

संसार की उन्नति का इतिहास देखने से विदित होता है कि लोग जब गंगा, नील आदि नदियों की उपजाऊ कछारों में बसे और जब भोजन प्राप्त करने का परिश्रम कम हुआ, तब बुद्धि का विकास शुरू हुआ और तभी धर्म, काव्य, दर्शन, आदि उत्पन्न हुए। बहुतेरे लोगों ने अनुभव किया होगा कि हमें काव्य, संगीत आदि की विशेष चाह रहनेपर भी यदि बड़ी तेज भूख लगे तो हम ये सब बातें भूल जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि जब तक पोषण अच्छी तरह नहीं होता तब तक अन्य व्यवसाय नहीं सूझते। अर्थात् पचन-इंद्रियों से जितना कम काम लिया जावेगा, और शरीर का पोषण जितनी अच्छी तरह से होगा, शरीर के भीतरी शक्तियों का उतना ही अधिक उपयोग मस्तिष्क के विकास में होगा। जिस दिन हम जडान्न खाते हैं उस दिन रोज की अपेक्षा खून का अधिक भाग उस अन्न के हजम करने में लग जाता है, इससे मस्तिष्क तथा अन्य अंगों की ओर जानेवाला खून का प्रवाह मद्दा पड़ जाता है। यही कारण है कि शारीरिक और मानसिक व्यापार मद्दे पड़ जाते हैं। तब आप जान सकते हैं कि चाहे जो भोजन हजम करनेवाले विशाल उदरवालों की अपेक्षा सदैव उत्साहित एवं फुर्तीले स्नायु की जिन्हे आवश्यकता है उन लोगों को थोड़े समय में हजम होनेवाले पौष्टिक भोजन की कैसी भारी आवश्यकता है।



हमें याद रखना चाहिए कि पहले की अपेक्षा अब पौष्टिक भोजन की अधिक आवश्यकता है। हम लोगों ने पाश्चिमात्यों की सभ्यता को अपनाया है। इस सभ्यतासे जीवनसंग्राम अधिक कठिन होता जाता है। (किसी भी रजगार में स्पर्धा बढ़ती है; उससे पेट पालने में शारीरिक और मानसिक परिश्रम अधिक करने पड़ते हैं।) ऐसी दशा में शरीर बलवान बनाने के लिए हमें पौष्टिक भोजन की बहुत अधिक आवश्यकता है।

हम अपने भोजन में ऐसा परिवर्तन करें जिससे सुधार के कारण बढ़े हुए जीवन संग्राम से हमारे शरीर को हानि न पहुँचे। छुटपन में बहुत शारीरिक मिहनत करने के कारण जिसके शरीर में श्रम-सहिष्णुता आगई है, वह मनुष्य यदि काम के लिए रोजीना ४-५ घंटे कड़ी, धूप, वा ठण्ड में घूमें, तो उसे हानि न होगी। किन्तु यदि कोई हाई कोर्ट का वकील कड़ी धूप में पैदल कचहरी को जावे या कड़ी ठण्ड में एक कुडता पहन कर काम करे तो उसे अवश्य ही हानि होगी।

अंग्रेजों का राज्य होने के पूर्व आज जैसी धांदली न मचती थी और साधारणतः मानसिक श्रम भी कम होते थे। अतः मामूली, मोटे अन्न से ही शरीर का पोषण होता था। किन्तु वर्तमान समय में जहाँ तहाँ स्पर्धा बढ़ गई है। इससे मानसिक परिश्रम अधिक करने पड़ते हैं। अतएव अब हमें ऐसे भोजन की आवश्यकता है जिससे शरीर और मस्तिष्क का खर्चा हुआ भाग शीघ्र पूरा हो। जिन प्राणियों की शक्तियाँ केवल खाये हुए भोजन को हजम करने ही में खर्च होती हैं ऐसे भैंस सदृश जीवों के भोजन की अपेक्षा उन जीवधारियों के लिए श्रेष्ठ भोजन की आवश्यकता होती है, जिनकी चपलता और कुछ अंश में मानसिक शक्तियों का अधिक उपयोग होता है। इससे भी ज्ञात होगा कि सुधरे हुए लोगों को श्रेष्ठ भोजन की आवश्यकता होती है।

शरीर का पोषण जैसे भोजन की पौष्टिकता पर निर्भर है वैसेही- किंवहुना उससे भी अधिक-भोजन के उचित पचन पर अवलम्बित है। इससे पौष्टिक

भोजन करनेपर भी यदि उसे हजम करने के लिए काफी व्यायाम न किया जाय तो उस भोजन से कुछ लाभ नहीं। इससे लोगों को व्यायाम करना चाहिए ताकि पौष्टिक भोजन का दुरुपयोग न होवे।

## भदार्नी व्यवसाय ।

शरीर का न्हास होने के जो जो कारण हैं उन्हें दूर कर देने से ही शरीर का न्हास रुक सकता है। इन कारणों में से एक कारण यह बतलाया गया है कि भारतवासियोंको फौज में ऊँचे दर्जे के और जबाबदेही के काम न देने की सरकारी नीति। इसका प्रतिकार प्रथम किया जावे।

इसके सम्बन्ध में दूसरा उपाय यह है कि जिन उद्योगों से या जिन व्यवसायों से हम लोगों में उन गुणों का और उन वृत्तियों का विकास होगा जो युद्ध करने से विकसित होती हैं उन्हीं उद्योगों और व्यवसायों का प्रचार किया जावे। युद्ध में जिन गुणों और वृत्तियों की वृद्धि होती है वे गुण और वृत्तियाँ हैं:- शूरता, स्वाभिमान, श्रमसहिष्णुता, प्राणों की बेफिक्री, एकता से काम करने की आदत आदि। इन गुणों का विकास करने के लिये जिन उपायों को हम कर सकते हैं वे हैं, कुश्ती, शर्यत, शिकार आदि। ये और इनके सदृश दूसरे व्यवसाय, जिनसे शरीर सुदृढ बनकर शूरता का प्रत्यक्ष रीतिसे विकास होता है, उन्हें काफी उत्तेजना देनी चाहिये और लोगों को इन व्यवसायों का व्यसनसा लग जाना चाहिये।

इसके साथ ही ऐसे उत्सव शुरू करना चाहिए जिनसे लोगों में एकराष्ट्रीयता का भाव उत्पन्न हो, लोग समझने लगें कि हम सब एक ही देश के निवासी हैं इससे हम लोगों में से कुछ लोगों का भला हो या कुछ जातियों का भला हो तो उसी में हमारे देश का भला है। लोगों के मन में इस प्रकार के भाव उत्पन्न करनेवाले उत्सव हैं श्रीशिवाजी उत्सव, राणा प्रतापमहोत्सव आदि। रण-वाद्य के गंभीर घोष को सुनकर जो स्फूर्ति उत्पन्न होती है, हम लोग अपने देशकी भलाई के लिये लड़ रहे हैं इस बात के जानने से जो अभिमान



होता है, संकटों के आने पर उनका मुँकाबला करने में प्रगट होनेवाला स्वावलम्बन, धीरज आदि गुण और शत्रु पर विजय प्राप्त कर स्वदेश को लोटते समय जो आनन्द होता है वह ऊपर लिखे उत्सवों से न होगा; किन्तु ये उपाय उसी प्रकार हैं जैसे माता के मर जाने पर आया का दूध पिलाकर लडके की प्राण रक्षा करना। ये उपाय कृत्रिम हैं सही, परन्तु असल के न होने पर कृत्रिम से ही काम चलाना आवश्यक है। इसलिये यदि लोग चाहते हैं कि हमारा देश नष्ट न हो जाय तो उन्हें ऊपर लिखे उपायों से काम लेना आवश्यक है।

व्यायाम भी एक उपाय है। लोगोंका ध्यान व्यायाम की ओर से हट गया है, इसीसे शरीर की हानि बहुत तेजी से हो रही है। पहले समय में दण्ड, बैठक, अखाड़ा खेलना आदि बातों का शौक अधिकांश लोगों को रहता था। इससे एक दूसरे की देखा-सीखी और भी कई लोग व्यायाम करने लगते थे। उस समय लोगों का ध्यान धर्म की ओर अधिक था। इससे बहुतेरे द्विज सूर्य नमस्कार का व्यायाम कम से कम सौ दो सौवार प्रतिदिन करते थे। साथ ही बालकों को स्कूलों की अधिक फिकर नहीं रहती थी, इससे उन्हें इधर उधर घूमने तथा ऊधम मचाने को अवसर मिलता था। इससे आ-बाल-वृद्धों को सहज ही में व्यायाम हो जाता था। परन्तु अब हाल बदल गया है। इससे यदि लोग चाहते हैं कि बालक व्यायाम करें तो उन्हें चाहिये कि वे बालकों को छोटी उमर में पाठशाला में न भेजें छोटी उमर में पाठशाला में भरती करने पर भी ऐसा प्रबन्ध किया जा सकता है जिससे बालकों के स्वास्थ्य पर बुरा असर न हो। किन्तु इस प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध होने को अभी बहुत देर है।

इस प्रकार की शिक्षा से यह मतलब है कि बालकों को जितने कम समय तक एक स्थान में बैठना पड़े उतना अच्छा होगा और वे खेल खेल में ज्ञान प्राप्त कर लें। बालकों में व्यायाम की रुचि उत्पन्न करने के लिये शिक्षकों और पाठकों को आवश्यक होगा कि वे मनको हरण करनेवाले क्रीडांगण-खेल

के मैदान-बनावें और खेल के भिन्न भिन्न साधन बना दें। इससे लाभ यह होगा कि बालकों में खेल तथा व्यायाम की रुचि उत्पन्न होगी। साल में कम से कम एक बार सब बालकों को मौका दिया जाय जिससे वे अपना बल, साहस, कुशलता आदि दिखला सकें। जो बालक खेल में कुशल सिद्ध हों उन्हें ईनाम दी जावे जिससे उनका उत्साह बढ़े। शहर के भिन्न भिन्न स्थानों में अखाड़े, व्यायाम-भुवन आदि खोले जावें। इन व्यायाम-भुवनों में दुष्ट एवं दुराचारी बालक न आने पावें।

जिस प्रकार हर एक बड़े नगर में एक न एक बड़ा मन्दिर रहता है उसी तरह हर एक बड़े नगर में एक बड़ा तथा सुन्दर अखाड़ा होना चाहिये। जहां तक बन सके यह अखाड़ा शहर के बीच कोई बड़ा मैदान खरीद कर उसमें बनवाया जावे। वहाँ व्यायाम के सब साधन रखे जावें तथा ऐसे भी साधन हों जिनसे व्यायाम के साथही दिल बह ले। इस अखाड़े को इस प्रकार साफ, सुधरा तथा सुन्दर दशा में रखना चाहिये जिससे उसकी सुन्दरता से ही लोगों का दिल उसकी ओर खिंच जावे और लोग वहाँ आवें। इस अखाड़े में कुश्तियां तथा अन्य हुनर की परीक्षा ली जावे और उसमें सफल होनेवाले बालकोंको ईनामें बांटी जावें। पढ़नेवाले विद्यार्थियों की रुचि यदि व्यायाम की ओर हो जावे तो उनका जीवन अधिक सुखमय होगा तथा वे कम से कम दस पांच साल अधिक जीवित रहेंगे। लोगों को चाहिये कि इन बातों पर विश्वास करें और इन्हे समझें तथा अपने गांव में या शहर में इस प्रकार का अखाड़ा बना दें। इससे स्वार्थ के साथ ही बड़ा भारी देश-हित होगा।

आजकल स्कूलों तथा कालेजों में छात्र-वृत्तियां दी जाती हैं। ये छात्र-वृत्तियां अंग्रेजी, संस्कृत, मातृ-भाषा आदि भिन्न भिन्न विषयों में ऊंचा नंबर प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियों को मिलती हैं। इसी तरह और भी कुछ छात्रवृत्तियां रखी जावें और वे उन बालकों को दी जावें जो अधिक न रटकर पढ़ाई में साधारण अच्छे हों और साथही स्वास्थ्य तथा



शरीर को अच्छा तथा सुदृढ़ रखता है । वर्तमान समय में बुद्धिमान लोगों का ही शरीर अधिक विगड़ता और कमजोर होता जाता है इससे पढ़ने वाले बालकों में व्यायाम की रुचि उत्पन्न करने के लिये छात्रवृत्तियां रखना आवश्यक है । शिक्षा का प्रचार होना जितना आवश्यक है उतनीही आवश्यकता है शिक्षा के कारण शरीर की हानि न होने देने की । तब क्या यह सिद्ध नहीं होता कि छात्र-वृत्ति उसी विद्यार्थी को मिले जो बुद्धिमान रहते हुए दृष्ट-पुष्ट तथा नीरोग रहे ? देश में अच्छे अच्छे घोड़े और बैल उत्पन्न होवें इसलिये जानवरों की प्रदर्शनी होती है । तब दृष्ट-पुष्ट तथा नीरोग विद्यार्थियों की संख्या बढ़ाने के लिये विद्यार्थियों की प्रदर्शनी क्यों न होवे और उन्हें ईनाम क्यों न दीये जावें ? विद्यार्थियों को शरीर बलवान बनाने की कितनी अधिक आवश्यकता है इस बात को जानकर यदि कोई धनवान दृष्ट-पुष्ट तथा बलवान और नीरोग विद्यार्थियों के लिये दस पांच छात्र-वृत्तियां रख दें तो उनके विद्यार्थियों पर तथा देशपर अगण्य उपकार होंगे ।

बंगाल की सुविख्यात विदुषी श्रीमती सरला देवी घोशाल ने किसी कांग्रेस के समय कहा था, " राष्ट्रीय सभा के साथ ही जैसे औद्योगिक परिषद होती है, उसी प्रकार शरीर-सामर्थ्य की वृद्धि में तथा पुरुषत्व प्राप्ति में उत्तेजना देने के हेतु एक शरीर-सामर्थ्य की प्रदर्शनी भी हुआ करे । और कुश्ती में तथा पुरुषत्व के भिन्न भिन्न खेलों और कामों में जो प्रवीण सिद्ध होंगे उन्हें ईनाम दीये जावें ।" यदि इस सूचना के अनुसार काम हो तो क्या ही अच्छा हो ! सब लोगों ने मिलकर व्यर्थ का कोलाहल न कर देश के हित के लिए जो काम घर बैठे हो सकते हैं उनमें से एक काम यह है । बालकों को छोटी उमर में पाठशाला में न भेजना, उनसे खुली हवामें व्यायाम कराना, छुटपन का रटना बंद कर देना, आदि बातें प्रत्येक मनुष्य कर सकता है ।

साहस, पराक्रम, कर्तृत्व आदि गुणों का विकास करने वाले व्यवसाय सरकारने बन्द कर दिये हैं उनकी कमी पूरी करने के लिए एक उपाय है परदेश गमन ।

परदेश की यात्रा में अनेक अडचनें आती हैं । परदेशियों से मिल जुल कर रहने में दूरदर्शिता तथा मनकी उदारता की आवश्यकता होती है । तथा अपनी महत्ता का उन्हे अनुभव कराने के लिए अपनी सब शक्तियों का उपयोग करना पड़ता है । इसीलिए हम कहते हैं कि उपरोक्त सब गुण परदेश-गमन से प्राप्त होते हैं ।

मजदूरी के लिए वा छोटे मोटे व्यापार के लिए ब्रिटिश साम्राज्य के देशों में कोई कोई हिन्दू जाते हैं । किन्तु इससे भी श्रेष्ठ हेतु के लिए परदेश की यात्रा करनेवाले हिन्दू नहीं दीखते । अमेरिका के उस उपजाऊ प्रदेश में जहाँ अभी कोई उपनिवेश नहीं हुए, वा अंग्रेजी उपनिवेशों के सिवा अन्य उपनिवेशों में यदि उच्च वर्ग के भारतवासी जाकर बसें तो अपनी श्रेष्ठ मनोवृत्तियों को उत्तेजना मिलेगी । ऐसा करने में शरीर को असह्य कष्ट होंगे और सम्भव है प्राण-त्याग भी करना पड़े । किन्तु याद रखना होगा कि जिस प्रकार मनुष्य को विना तपस्या के पुण्य की प्राप्ति नहीं होती उसी तरह देश का भी उद्धार कष्ट सहें बिना नहीं हो सकता ।

पश्चिम के लोग सदैव शरीर-सुखमें ही रत रहते हैं इसलिए हम उनका परिहास करते हैं । किन्तु देश के लिए, धर्म के लिए, तथा कीर्ति के लिए इह-लोक के सुख त्यागने का अवसर आने पर हम इस नश्वर देह को सर्वस्व मानते तथा और बातों को त्याग देते हैं । क्या यह असंभवता हमें न निकाल देनी चाहिए ? यह असंभवता निकालनी हो तो हमें चाहिए कि जबतक युद्ध में शौर्य आदि गुणों को बतलाने का मौका सरकार नहीं देती, तबतक हमें शरीर के कष्टों की और प्राणों की भी पर्वाह न कर परदेश में जाना चाहिए जिससे हमारी कर्तृत्वशक्ति को उत्तेजना मिले । लोगों में उपनिवेश बनाने तथा व्यापार करने की इच्छा उत्पन्न करने तथा बढ़ाने के लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए ।

देश-हित की जिन्हे इच्छा है वे उपरोक्त उपायों की महत्ता को जाने और इनके प्रसार का प्रयत्न करें जिससे शरीर-सामर्थ्य को वृद्धि होगी । और चतुर्विध पुरुषार्थ करना संभव होगा क्योंकि शरीर ही सच्चा धर्मसाधन है ।



# यजुर्वेद का मुद्रण ।

## मूल्य ।

यजुर्वेद का मुद्रण शुरू है और इस समय तक ८० पृष्ठ मुद्रित हो चुके हैं, उनमेंसे चार पृष्ठ इस अंकमें नमूने के तौर पर दिये हैं। आगे मुद्रण चल रहा है और इस महिने में १०४ पृष्ठों का पहिला अंक तैयार हो जायगा। इस का मूल्य १०० सौ पृष्ठों का बारह आने के हिसाबसे होगा, परंतु जो लोग पेशगी मूल्य दो रु० भेज देंगे उनके लिये सौ पृष्ठों को आठ आने के हिसाबसे होगा। डाक व्यय अलग होगा। जो लोग पेशगी मूल्य भेज कर ग्राहक होना चाहते हैं वे मनीआर्डर द्वारा दो रु० भेज दें। यजुर्वेद के साथ सर्वानुक्रमणी, मंत्रपाद-सूची, ऋषिसूची, देवतासूची आदि बहुत भाग होंगे। यजुर्वेद के इन भागों का मुद्रण होनेके पश्चात् अथर्व वेद का इसी प्रकार मुद्रण होगा। और इन वैदिक ग्रंथोंका हर एक अंक सौ पृष्ठों का प्रकाशित होगा। पेशगी मूल्य भेजने वालोंको ही मूल्य की सहूलियत होगी। आशा है कि पाठक इस से लाभ उठावेंगे।

## मुद्रण की विशेषता ।

नमूनेके पृष्ठ देखने से ही पाठकों को पता लग जायगा कि इस मुद्रण में कुछ विशेषताएं हैं, जो इस समय तक मुद्रित हुए किसीभी पुस्तक में नहीं हैं। देखिये--

१ प्रत्येक मंत्र अलग अलग मुद्रित किया है। अर्थात् एक मंत्र समाप्त होने के बाद कुछ स्थान खूला छोड़ दिया है और पश्चात् दूसरा मंत्र शुरू किया है।

२ मंत्रोंके अंदरका पदच्छेद विशेष ख्याल से किया है।

३ अक्षर बड़े रखे हैं जिस से पाठक खुली रोतिसे और सुवोधता से मंत्र पढ़ सकते हैं। किसी प्रकार एक मंत्र की दूसरे मंत्रके साथ संकीर्णता न हो इस का पूरा ख्याल रखा गया है।

४ बड़े गाथा के मंत्र पूर्ण पंक्तिमें और छंद मंत्र छोटी पंक्तियों में रखे हैं जिससे यह भेद स्पष्ट प्रतीत हो जायगा।

५ नित्यपाठ के लिये जितनी बातों का ख्याल करना चाहिये उन सब बातों का ख्याल करके ही मुद्रण किया है।

पाठक इन सब बातों को नमूने के पृष्ठों में प्रत्यक्ष करें। इसके अतिरिक्त शुद्ध पाठ करने के सब चिन्ह इसमें दिये हैं। जैसा—

## देवा ऽ अभिसंविशन्तु ।

यहां का [ ऽ ] चिन्ह यजुर्वेद के विशेष उच्चारण के आलाप के खटके के लिये ही है, इस का उच्चारण “ देवा ” शब्द के “ आ ” कार का उच्चारण किंचित लंबा करके एकदम बंद करना और उसी क्षण आगे के “ अ ” कार पर दबाव डाल कर “ अभि ” का उच्चारण करना। यजुर्वेदपाठमें इस उच्चारण की विशेषता है। न जाननेवाले इस आलापके खटके को मर्जी चाहे वहां बोलते हैं और उस कारण मंत्रोच्चार भद्दासा हो जाता है। यह कठिनता दूर करने के लिये जहां खटके के साथ मंत्र बोलना आवश्यक है वहां उक्त चिन्ह हमने रखा है। इस कारण जो पाठक इस पुस्तक के साथ यजुर्वेदका पाठ करेंगे उन्होंने इन चिन्होंका ख्याल करके यदि पाठ किया तो उनकी गलती होना संभव नहीं है। यह उच्चारण की विशेषता किसीभी अन्य पुस्तकमें नहीं है।



अनुस्वार, अनुनासिक और अर्धानुनासिक के चिन्ह क्रमशः

[ ˆ, ˆ̣, ˆ̤ ]

ये यहां रखे हैं। ये प्रसिद्ध चिन्ह हैं। [ ˆ̤ ] इस अनुस्वारका उच्चारण “म्” अथवा अगले व्यंजनके वर्गका अंतिम वर्ण करनेकी बात सब जानते ही हैं।

[ ˆ̣ ]

इस चिन्हका उच्चारण “व्वं” के समान करना चाहिये। तथा [ ˆ̤ ] इस अर्धचंद्र का उच्चारण भाषा के “जहाँ” शब्दमें जिस प्रकार अर्धानुनासिक सा किया जाता है उस प्रकार करना चाहिये। इस पुस्तकमें ये चिन्ह जहां जो चिन्ह आवश्यक है वहां ही वह दिया है। इस लिये इनके यहां दिये हुए उच्चारणविधि के समान यदि पाठक इनका उच्चारण करेंगे तो इस विषय की गलती नहीं होगी। पाठक इसका विशेष ख्याल रखें।

स्वर्गोंमें नीचे और ऊपर स्वर चिन्ह दिये हैं उनका निम्न स्वरमें और उच्च स्वरमें उच्चारण करने का विधान सब जानते हैं और वह स्पष्ट भी है। इसके अतिरिक्त

[ ˆ̥, ˆ̦ ]

ये दो स्वर चिन्ह इस यजुर्वेदमें अधिक हैं। इनमेंसे प्रथम चिन्हका स्वरौच्चार किंचित आगे बढ़ा कर दवानेसे होता है और ˆ̦ इस स्वर का उच्चार द्विगुणित जोरसे नीचे दवानेसे होता है। जिस अक्षर के नीचे ये स्वर हों उनका इस विधि के अनुसार उच्चार करनेसे उच्चारण की अशुद्धि नहीं हो सकती।

साथ ही पाठकों को इस बातका ख्याल करना चाहिये कि जहां मंत्रमें चरण रेखा लिखी है वहां ही ठहरना चाहिये। बीचमें किसी अन्य स्थानपर ठहरनेसे स्वर बदल जाते हैं। अतः जहां चरणरेखा हो वहां ही ठहरना चाहिये। इस पुस्तकमें चरणरेखाएं जहां चाहिये वहां ही रखी हैं और उनके अनुसार ही स्वरोंकी योजना की है।

ॐ

यजुर्वेदमें विसर्ग ( : ) के कई चिन्ह हैं। अर्थात् [ ˆ, ˆ̣, ˆ̤ ] इतने हैं और इनके उच्चारणमें थोड़ासा भेद भी है। परंतु यह सूक्ष्म भेद गुरुपरंपरासे ही समझमें आना संभव है, अन्यथा नहीं। इस कारण हमने विसर्ग चिन्ह ( : ) यही सर्वत्र रखा है। इसका पूर्ण उच्चारण ही सर्वत्र होता है। जिस प्रकार अंतमें विसर्ग बोला जाता है उसी प्रकार बीचमें भी बोलना चाहिये। यह यजुर्वेद की विशेषता कभी भूलना योग्य नहीं है।

## वैदिक परंपरा ।

जो वैदिक परंपरा इस देशमें शुरू है और जिस रीतिसे पुस्तक लिखे जाते हैं और मुद्रित किये जाते हैं वह रीति भी यहां बतानी चाहिये। इस लिये उस पद्धतिसे एक मंत्र यहां रखा जाता है, पाठक देखें कि यह वैदिक पद्धति कितनी कठिन है—

पुवित्रेस्थोवैष्णव्यौसवितुर्वःप्रसवऽउत्पुना  
म्यच्छिद्रेणपुवित्रेणसूर्यस्यरश्मिभिः॥ देवी  
रापोऽअग्नेगुवोऽअग्नेपुवोग्रऽइममद्ययज्ञन्नयु  
ताग्रेयज्ञपतिःसुधातुंयज्ञपतिन्देवयुवम् ॥ १२ ॥

यही मंत्र हमने निम्न प्रकार छापा है—

पुवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसवऽउत्पुना  
म्यच्छिद्रेण पुवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। देवीरापो  
ऽअग्नेगुवोऽअग्नेपुवो ऽग्रऽ इममद्य यज्ञन्नयुताग्रे-  
यज्ञपतिः सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ॥ १२ ॥

वैदिक परम्परा के अनुसार मंत्रों में पदच्छेद नहीं होना चाहिये, क्योंकि यह “संहिता” है और संहिता का अर्थ ही यह है कि जिसमें छेद नहीं अर्थात् एक दूसरे के साथ जुड़े हुए पद जिसमें हैं। जहां मंत्र समाप्त होता है वहां भी आगेके मंत्रका थोड़ासा भाग लिखकर ही ये वैदिक लोग



मंत्रों के कई स्थानों पर लिखते हैं। इस लिये कि मंत्र समाप्त होने पर भी दूसरा मंत्र प्रारंभ होने तक कुछ व्यवधान मध्यम में समझा जावे। पाठक सोच सकते हैं कि यह रीति सर्व साधारण पाठकों के लिये किननी कष्टप्रद हो सकती है। इस प्रकार लिखी या मुद्रित की हुई पुस्तकें सर्व साधारण पाठक पढ़ भी नहीं सकेंगे। क्योंकि इसमें कई अक्षर द्विगुणित हुए हैं, कई विसर्ग भिन्न प्रकार से लिखे हैं, तथा अनुसार अनुनासिक में भी न्स्व दीर्घ का भेद लिखा होता है, किसी भी स्थान पर पदच्छेद नहीं होता है, जहां यकार का उच्चारण जकार किया जाता है वहां यकार के बीच में एक तेढ़ी रेखा लगी होती है, ताकि पढ़ने वालों को पता लगे कि यहां के थकार का उच्चारण य नहीं परंतु ज है, नीचे वाले स्वरों में भी कई स्वर सीधे और कई गोल हैं, ये इस लिये कि इनके हस्तस्वर की गतीका इससे बोध हो। यद्यपि परंपरा के विद्वानों को यह पद्धति पूर्ण और स्पष्ट होने से सुबोध प्रतीत होती है, और हर एक चिन्ह जहां का वहां परिपूर्ण होनेसे यह पद्धति है भी पूर्ण और निर्दोष, परंतु सर्व साधारण पाठकों की दृष्टिसे यह अत्यंत दुर्बोध होनेसे सर्व साधारण जनो के लिये यह उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती।

हमने स्वाध्याय मंडल में जिस समय यजुर्वेद के मुद्रण का विचार निश्चित किया और सब पद्धतियों का सर्व साधारण पाठकों की सुभीता की दृष्टिसे विचार किया, तब हमें यह प्राचीन वैदिक परंपरा की लेखनपद्धति इस समय सर्व साधारण जनता के लिये दुर्बोध होने के कारण अलग रखनी पड़ी।

तथापि हम निःसंदेह यह कह सकते हैं कि हर एक उच्चारण का स्पष्ट चिन्ह यदि किसी पद्धतिसे स्पष्टतया बताया जा सकता है तो इसी वैदिक पद्धतिसे ही बताया जा सकता है। क्योंकि इस वाजसनेयी संहिता का उच्चारण अन्य संहिताओं की अपेक्षा कुछ भिन्न और कुछ प्रखरसा है। देखिये-

परंपरा का उच्चारण

पवित्रेस्थो

वैष्णव्यौ

सवितुर्वः

प्रसवः उत्पुनाम्य

अच्छिद्रेण

सूर्यस्य रश्मिभिः

साधारण पाठ

पवित्रेस्थो

वैष्णव्यौ

सवितुर्वः

प्रसवः उत्पुनाम्य

अच्छिद्रेण

सूर्यस्य रश्मिभिः

यहां पाठक स्पष्ट रीतिसे देख सकते हैं कि साधारण पाठमें जहां द्वित्व नहीं है वहां यजुर्वेद के वैदिक उच्चारणमें द्वित्व हुआ है यहां तक यह द्वित्व होता है कि “वैष्णव्यौ” शब्द के “वैष्णव्यौ” ऐसा द्वित्व होकर उच्चारण जाता है। यह सब परंपरा की पाठविधि के अनुसार ठीक ही है, परंतु इतने चिन्ह लिख देने पर भी अपरिचित सर्व साधारण पाठक न तो इस प्रकार उच्चारण कर सकते हैं और नाही संपूर्ण स्वरों का ठीक व्यक्तीकरण भी कर सकते। इसलिये शुद्ध वैदिक स्वरचिन्हों और द्वित्वादि रूपों से अलंकृत वैदिक परिपाठीसे मुद्रित पुस्तक सर्व साधारण जनो के लिये थोड़ी भी उपयोगी नहीं हो सकती, इतना ही नहीं, परंतु अवस्था यहां तक बदल गई है कि उक्त बतायी रीतिके अनुसार मुद्रित हुआ पुस्तक देखकर साधारण मनुष्य उसे पढ़नेमें भी प्रवृत्त नहीं होगा।

इस बात का अनुभव करके हमने वैदिक परंपरा की परिपाठी छोड़कर सुबोध परिपाठी का ही अवलंबन किया है और उसमें जहां तक आवश्यक है वहां तक ही थोड़ेसे चिन्हों का उपयोग किया है। जिनका विवरण और स्पष्टीकरण इससे पूर्व बताया जा चुका है। यदि पाठक इन चिन्हों का पूर्वोक्त रीतिसे उच्चारण करेंगे तो वे बहुत शुद्ध उच्चारण कर सकते हैं। और उनको वेद पाठ करने में कोई कठिनाता भी नहीं होगी।

इस प्रकार पाठक समझ गये होंगे कि प्राचीन परंपरा की परिपाठी और इस सुबोध परिपाठी में किस बातमें भेद है तथा उसमें कठिनाता और सुबोधता कैसी है। मुंबई में व्यंकटेश्वर मुद्रणालय में प्राचीन परिपाठी के अनुसार यजुर्वेद संहिता के पुस्तक छपे हैं और सम्पूर्ण हस्तलिखित



यजुर्वेद के पुस्तक इसी परिपाठीके अनुसार होते हैं । परंतु ये पुस्तक सर्व साधारण जनोके उपयोग के लिये कभी नहीं आये, केवल ये पुस्तक प्राचीन परिपाठीके पंडितोंमें ही रहे हैं । हमें वेदके जो पुस्तक मुद्रित करने हैं वे सर्व साधारण जनोके लिये ही मुद्रित करने हैं, इस लिये अनावश्यक चिन्ह तथा द्वित्वादि रूप हटाकर ही हमने मुद्रण किया है ।

इसी प्रकार जर्मन मुद्रित, मुंबई निर्णयसागर मुद्रित और अजमेर मुद्रित यजुर्वेद के पुस्तकोंमें भी पूर्वोक्त चिन्ह और द्वित्वादि रूप हटा दिये हैं और सुबोध रीतिसे ही मुद्रण किया है । श्री. म. आल्बेर्ट वेबर महोदय जीने जर्मन देशकी बर्लिन राजधानीमें जो महीधर भाष्यसमेत वाजसनेयी यजुर्वेद संहिता मुद्रित की है, उसमें द्वित्वादी रूप यहांतक हटानेका प्रयत्न किया है कि “ गच्छ ” के स्थान पर “ गछ ” ही मुद्रित किया है इसी प्रकार सर्वत्र किया है । मंत्र में ही नहीं परंतु महीधर भाष्यमें भी “ गच्छतु ” के स्थानपर “ गछतु ” ही मुद्रित किया है । हस्त लिखित कई पुस्तकोंमें भी जहां संपूर्ण चिन्ह और द्वित्वादि रूप दिये होते हैं उनमें भी “ गछ, गछतु ” आदि प्रकार ही “ छ ” के पूर्वका “ च् ” कार नहीं लिखा होता है । कई पुस्तकों में होता है । परंतु जर्मन मुद्रित पुस्तकमें सर्वत्र मंत्रमें तथा भाषामें “ च्छ ” के स्थानपर “ छ ” ही मुद्रित हुआ है । जैसा—

“ गच्छ ” के स्थानपर	“ गछ ”
गच्छति	गछति
यच्छ	यछ
इच्छ	इछ

इस प्रकार मंत्रमें और भाष्य में मुद्रित हुआ है । परंतु इन सब शब्दोंका उच्चारण नित्य “ च्छ ” के समान ही होता है । संस्कृत भाषामें क्या और वेदमें क्या यह “ च्छ ” ही उच्चारण जाता है । इस कारण सुबोध पद्धतिकी पुस्तकमें “ च्छ ” ही लिखना योग्य है, इस कारण हमने भी “ च्छ ” ही रखा है ।

इस समय तक जितने पुस्तक मुद्रित हुए हैं उनमें से यदि वैदिक परिपाठीके पुस्तक अलग रखे जाय, तो म० आल्बेर्ट वेबर महोदय जी का बर्लिन जर्मनी में मुद्रित सभाष्य यजुर्वेदका पुस्तक ही सबसे उत्तम और सबसे शुद्ध है । विशेष टाइप बनाकर, विशेष संशोधनके साथ, और विशेष परिश्रमसे शुद्धाशुद्ध का विचार करके और पाठभेदोंका निश्चय करके यह पुस्तक सन १८५२ में मुद्रित हुई ।

मुद्रण विषयके जैसे उत्तमोत्तम साधन जर्मनी में उपलब्ध हो सकते हैं, तथा उत्तमोत्तम पुस्तकोंका और प्राचीन पुस्तकोंका संग्रह जैसा वहां उन्होंने किया है, तथा जिस संशोधक बुद्धिसे वे ग्रंथ संशोधनका कार्य करते हैं, साथही साथ उनको जर्मन विश्वविद्यालयों और उनके संस्कृतवेत्ता अध्यापकोंसे जैसी जिस प्रकार सहायता मिल सकती है, उनमें से हजारवां हिस्सा भी भारतवर्षमें नहीं है, अतः उनके पुस्तकोंमें अधिक गुण और यहांके पुस्तकोंमें अधिक दोष रहना स्वाभाविक है । एक एक जर्मन तथा यूरोपीयन संस्कृतज्ञ पंडित तीस तीस या चालीस चालीस वर्ष तक एक एक ग्रंथका अध्ययन करता है, तब तक संपूर्ण तुलनात्मक साधन इकट्ठे करता है, खूब विचार करता है और पश्चात् शुद्ध ग्रंथ तैयार करके मुद्रण करता है । इतना स्वास्थ्य और इतना साधन भारत वर्षमें कहां है? यहां एकही पंडित को अपने उदरनिर्वाहके कार्य से ले कर अन्य कार्य करते हुए, असहाय स्थितिमें, साधनाभाव की अवस्थामें कार्य करना पड़ता है । इसके साथ अल्प अध्ययनसे महान कार्यको हाथ डालनेका स्वभाव भी है । इस कारण यहांके ग्रंथसंशोधन में और यूरोप के ग्रंथसंशोधनमें जमीन आस्मान का भेद रहना स्वाभाविक ही है ।

इन यूरोपीयनोंके वेद विषयक संशोधनोंसे बड़ा बोध हम ले सकते हैं । और यदि यहां के पंडित उनसे कार्य करनेकी विधि सीख लेंगे तो यहां भी उनसे अधिक निर्दोष कार्य होना संभव है । यद्यपि इस समय तक के प्रकाशित सब पुस्तकों में जर्मन मुद्रित पुस्तक अधिक निर्दोष है तथापि वह पूर्ण



निर्दोष है ऐसा कहा नहीं जा सकता ।

जर्मन मुद्रित यजुर्वेद मंत्रकी संहिता के रूपसे मुद्रित नहीं किया है, प्रत्युत मंत्रकी कंडिकाओंको अलग अलग करके छापा है जैसे —

इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवा वः सविता  
प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण ० ॥

यह मंत्रकी संहिता है, परंतु ऐसा न छापाते हुए जर्मन मुद्रित पुस्तकमें इस मंत्रकी कंडिकाएँ अलग अलग छापी हैं जैसे—

इषे त्वा । ऊर्जे त्वा । वायव स्थ । देवो वः  
सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे ० ।

इससे पाठक जान सकते हैं कि यद्यपि यह जर्मन मुद्रित यजुर्वेद अभ्यास करनेके लिये बहुत अच्छा है तथापि नित्य पाठ के लिये अथवा संहिताके पूर्ण मंत्रोंसे बननेवाले कार्य करने के लिये उपयोगी नहीं हो सकता । पूर्ण मंत्रके स्वर और होते हैं और उसकी कंडिकाएँ बननेके पश्चात् उसके स्वर और होते हैं । इस कारण इस पुस्तक के स्वर भी भिन्न ही हैं ।

कंडिका की दृष्टिसे वे ठीक हैं, परंतु संहिताकी दृष्टिसे उनका उपयोग नहीं है, क्योंकि मंत्रकी संहिता बननेपर स्वर बदल जाते हैं । इस कारण वेद पाठकी दृष्टिसे यह जर्मन मुद्रित पुस्तक बहुत उपयोगी नहीं हो सकता । परंतु जो संहिता का अर्थ पढ़ना चाहते हैं उनके लिये ही यह उपयोगी हो सकता है ।

यद्यपि यह दोष नहीं है तथापि यजुर्वेद संहिता का कार्य इससे नहीं हो सकता, नित्य पाठ के लिये यह उपयोगी नहीं हो सकता, इससे मंत्रका पाठ नहीं किया जा सकता, इत्यादि दृष्टिसे यह पुस्तक संहिता के स्थान पर उपयुक्त नहीं हो सकता । पाठक यह भेद इतने विवरणसे समझ गये होंगे ।

इस पुस्तक में स्वर के पूर्व के उच्चारण के खटके के चिन्ह भी सब स्थानपर दिये नहीं हैं । कई स्थानों पर दिये हैं और कई स्थानों पर नहीं हैं । संभवतः इसका कारण यह होगा कि संहिता पाठ के लिये यह पुस्तक मुद्रित ही नहीं किया गया है ।

इसके अतिरिक्त कई स्थानों पर थोड़ीसी अशुद्धियां भी रह गयी हैं । इनमें से कुछ नमूने के लिये यहां दी जाती हैं

जर्मन पुस्तक में अशुद्धियां —

अ०	मं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	श्रेष्ठतमाय	श्रेष्ठतमाय
॥	२	परमेण	परमेण
॥	१८	वधाय	वधाय
॥	२४	वधः	वधः
३	७	प्राणादपानती	प्राणादपानती
॥	२६	सुम्नाय	सुम्नाय
॥	४३	शुभ्योः	शुभ्योः
॥	५२	वन्धुर	वन्धुर
६	९	देवस्य त्वा	देवस्य त्वा
७	८	इन्द्रवो	इन्द्रवो
॥	२२	देवाव्यं गृह्णामि	देवाव्यं
८	२२	तं जुषस्व	तं जुषस्व
११	८०	मस्मसा कुरु	मस्मसा कुरु
१२	२०	तृतीयै	तृतीयै
१२	३१	अग्ने	अग्ने
॥	४६	श्रयध्वम्	श्रयध्वम्

इन में से कुछ नेत्रदोष से और कई हस्तदोषसे रह गई हैं । इनमें से कई अशुद्धियां पाठ भेद के रूपमें सुधारी भी गई हैं ।

“व” कारके स्थानपर कई स्थानों में “ब” कार छापा है उसका संभवतः यह कारण प्रतीत होता है कि प्रायः हस्त लिखित पुस्तकों में “व” कारके स्थान पर “व्व” लिखा होता है



और वह पुराणी पुस्तकों में प्रायः “ व ” के सदृश दिखाई देता है। इसी लिये “ वध्र ” के स्थान पर “ वध ” शब्द मुद्रित हुआ प्रतीत होता है। नहीं तो वेद को कंठस्थ करनेवाले भी जहां “ व ” नहीं बोलते वहां “ व ” छापनेका कोई प्रयोजन दिखाई नहीं देता।

य. ७।२२ में इस जर्मन मुद्रित पुस्तक में “ देवाव्यं गृह्णामि ” छपा है इस में “ गृह्णामि ” पद अधिक छप गया है। मंत्र २३ में यही मंत्रभाग छः बार आगया है और वहां “ गृह्णामि ” पद मध्य में नहीं है, परंतु प्रत्येक कंडिकाके अंतमें है। इन की तुलना से भी पता लगता है कि २२ वे मंत्रमें दो बार “ गृह्णामि ” की आवश्यकता नहीं है।

य. ११।८० में जर्मन मुद्रित पुस्तक में “ भस्मसा कुरु ” छपा है और पाठभेद पत्रक में “ मस्मसा कुरु ” पाठ लिखा है। अर्थात् म. आश्वेत वेबर महोदयजीके मतसे “ भस्मसा कुरु ” यह पाठ यहां अभीष्ट है। इसी आधार पर म० ब्लूमफील्ड महोदयने जो वैदिक मंत्र पादसूची अमरिकाके हार्वर्ड विश्वविद्यालयकी ग्रंथमाला में मुद्रित की है उसमें भी “ सर्वं तं भस्मसा कुरु ” यही पाठ वाजसनेयी यजुर्वेद का समझकर स्वीकृत किया है। क्योंकि उक्त पुस्तकके आधारपर ही इस पुस्तक का विधान हुआ है। और “ मस्मसा कुरु ” यह पाठ तैत्तिरीय संहिता और शत पथ ब्राह्मणका मान लिया है। परंतु यह गलती है। इस-

विषयमें जर्मन पुस्तक में जो महीधर भाष्य मुद्रित किया है उसके भाष्यकी पंक्तियां यहां देखिये--

“ तं सर्वं जनं चतुर्विधं भस्मसा कुरु चूर्णीं कुरु चर्वित्वा भक्षयेत्यर्थः भस्मसा शब्दो डाजन्तो निपातः चर्वणजन्यशब्दानुकरणवाची ॥ ८० ॥ ”

इस भाष्य में भी “ भस्मसा ” शब्द दोवार आगया है, परंतु यहां भी “ मस्मसा ” ही शब्द चाहिये क्योंकि ( चर्वणजन्य शब्दानुकरणवाची ) अर्थात् “ चबानेसे होनेवाले मुख के शब्द के अनुकरण का वाचक यह शब्द है ” यह महीधर का कथन है। चबानेका शब्द “ भस् भस् ” ऐसा नहीं होता परंतु “ मस् मस् ” ऐसा होता है, मराठी भाषा में इसका “ मच् मच् ” ऐसा शब्द प्रचलित भी है। “ भस्म ” ऐसा किसी भी स्थानपर चबानेके शब्द का अनुकरण नहीं हो सकता। इसलिये हम कह सकते हैं कि जो भाष्य म. वेबर महाशयजीने छपा है उसके तात्पर्यार्थ का स्वीकार करनेपर भी “ भस्मसा ” पाठ शुद्ध नहीं सिद्ध होता, परंतु “ मस्मसा पाठ ” ही शुद्ध होता है। कंठस्थ रखने वाले पंडित “ मस्मसा ” ही बोलते हैं।

इस प्रकार कुछ अशुद्धियां रहीं तो भी उनके पुस्तक की उत्तमता न्यून नहीं होती। इस प्रकार के मुद्रण में ऐसी थोड़ीसी अशुद्धियां रहना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार जर्मन मुद्रित पुस्तक का विचार करने के पश्चात् भारत वर्षमें मुद्रित हुए पुस्तकोंका विचार हम करेंगे। ( क्रमशः )

## बलवर्धन का उपाय ।

यदि आप प्रतिदिन दस मिनिट सूर्यभेदन व्यायाम नियम पूर्वक करते रहेंगे, तो आपका बल बढ जानेका अनुभव दो मास में निःसंदेह आजायगा। क्या सचमुच आप अपने स्वास्थ्य और बलके लिये प्रतिदिन दस मिनिट नहीं निकाल सकते हैं? सूर्य भेदन व्यायाम की पुस्तक। मूल्य बारह आने है। डाकव्यय तीन आने।

स्वाध्याय मंडल. औंध ( जि. सातारा )



# साहित्य चर्चा ।

## १ भारत वर्ष का इतिहास ।

(ले०- श्री. आचार्य रामदेवजी, गुरुकुल कांगड़ी ।

प्र०- गुरुकुल कांगड़ी । म. १॥।)

श्री० प्र० रामदेवजी आचार्य गुरुकुल कांगड़ी का नाम भारत वर्ष में प्रसिद्ध है । इनके भारत वर्ष के इतिहास का प्रथम खंड मुद्रित होकर कई वर्ष हुए और इस समय तक उसके कई संस्करण भी मुद्रित हो चुके हैं । पाठक टकटकी लगा कर द्वितीय खंडकी प्रतीक्षा कई वर्षोंसे कर रहे हैं, परंतु कार्यवश आचार्यजीके द्वारा इस द्वितीय खंड का संपादन नहीं हो सका, जो अब प्रकाशित हुआ है । हमें पूर्ण आशा है कि पहिले खंड के समानही यह द्वितीय खंड भी पाठकों को प्रिय लगेगा और थोड़े समयमें ही इसके कई संस्करण मुद्रित करने पड़ेंगे । जिस समय के इतिहास की खोज आचार्य रामदेवजी कर रहे हैं, उस समय का मानवी इतिहास, जैसा आज हम चाहते हैं वैसा लिखा हुआ उपलब्ध नहीं है । जो कल्पना इतिहास विषयक आज हम देखते हैं वह प्राचीन आर्य विद्वानों के अंदर थी ही नहीं । प्राचीन समयके विद्वान इतिहास शब्दसे कुछ अन्य भाव लेते हैं । और आजकल हम कुछ अन्य भाव लेने लगे हैं । यदि यह भेद समझना हो तो इस प्रकार समझा जा सकता है कि आजकल हम मनुष्यों की स्थूल घटनाओंको तिथिवार के क्रमसे लिखने को इतिहास कहते हैं, परंतु प्राचीन कालमें इसी इतिहासमें “मानवी अंतःकरणके परस्परविरोधी सनातन वृत्तियोंका सनातन खेल ” ही देखा जाता था । इसलिये प्राचीन आर्य इतिहास लेखकोंको तिथिक्रमानुसार मानवी घटनाओंका संगतिकरण करनेकी उतनी आवश्यकता नहीं थी जितनी कि हम आज समझ रहे हैं । वे क्षणभंगुर घटनामें सनातन भावना देखते थे । वह दृष्टि आजके इतिहासमें नहीं है । तथापि हम यह कदापि नहीं कहते कि

आज कल की इतिहासकी कल्पना के अनुसार प्राचीन आर्यों का इतिहास देखनेके साधन इकट्ठे नहीं हो सकेंगे । आचार्य रामदेवजी के प्रयत्नसे इन दो खंडों में ये ही साधन इकट्ठे किये गये हैं । और इसलिये समुद्रमंथन से कुछ रत्न बाहर निकालनेके कार्य के समान यह बड़ा कार्य करने के लिये आचार्य जी सब इतिहासज्ञों के सन्मान के भागी अवश्य हो जायेंगे । क्यों कि ऐसी खोज होनेके बिना प्राचीन इतिहास का स्वरूप भी जनताके सम्मुख नहीं आसकता । इसलिये हम आचार्य जी की हार्दिक प्रशंसा करते हैं कि उन्होंने कई वर्ष लगातार प्रयत्न कर के इधर उधर से थोड़ा थोड़ा मसाला इकट्ठा करके विशाल इतिहास के मंदिर की रचना करने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है । इस समय तक इस दिशा से किसीनेभी इतना विस्तृत प्रयत्न नहीं किया, इस लिये आचार्यजीकी प्रशंसा अधिकही करनी चाहिये ।

इस ग्रंथके प्रथम भागके पांच अध्यायोंमें आर्योंके युद्ध तथा शस्त्रास्त्र, राज्यशासन, सामाजिक आचार, प्राकृतिक विज्ञान और शिल्पका वर्णन है । द्वितीय विभागमें महाभारतसे बौद्ध कालतक का राजनैतिक इतिहास है । तृतीय विभागमें शुक्रनीति का विचार है । चतुर्थ विभागमें भारतीय सभ्यता के विदेशोंमें प्रचारका वर्णन है ।

ये सब प्रकरण विशेष अन्वेषणासे लिखे होनेके कारण अवश्य पढ़ने योग्य हैं ।

## ( २ ) अंत्यजस्तोत्र

(ले०- श्री० - अमृतलाल सुंदरजी । प्र० - श्री० जीवराम कल्याणजी, रोहावाला, कच्छ कोटडा । मू. आधा आना ) यह पुस्तक गुजराती भाषामें है । अंत्यजोद्धार के विषयमें श्री. महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक आदि अनेक बड़े व्यक्तियोंके विचार इसमें हैं । प्रस्तावना लेखक स्वयं महात्मा गांधीजी हैं । इस से पुस्तक की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है ।



पावकवर्चाः शुक्रवर्चा ऽ अनूनवर्चा ऽ उदियर्षि भानुना ।  
 पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पूणक्षि रोदसी ऽ उभे ॥ १०७ ॥  
 ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।  
 त्वे ऽ इषः सन्दधुर्भूरिवर्षसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ १०८ ॥  
 इरज्यन्नग्रे प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो ऽ अमर्त्य ।  
 स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पूणक्षि सानसि क्रतुम् ॥ १०९ ॥  
 इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।  
 रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसि रयिम् ॥ ११० ॥  
 क्रतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।  
 श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ १११ ॥  
 आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ ११२ ॥  
 सं ते पयांश्चसि सप्तु यन्तु वाजाः सं वृष्यान्त्यभिमातिषाहः ।  
 आप्यायमानो ऽ अमृताय सोम दिवि श्रवांश्चस्युत्तमानि धिष्व ॥ ११३ ॥  
 आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः । भवानः सप्रथस्तमः सखा वृधे ॥ ११४ ॥  
 आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् । अग्रे त्वाङ्गामया गिरा ॥ ११५ ॥  
 तुभ्यं ता ऽ अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्रे कामाय येमिरे ॥ ११६ ॥  
 अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राडेको विराजति ॥ ११७ ॥

इति द्वादशोऽध्यायः ।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

मयि गृह्णाम्यग्रे ऽ अग्निं रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ।  
 मामु देवताः सचन्ताम् ॥ १ ॥  
 अपां पृष्ठमसि योनिरग्रेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् ।  
 वर्धमानो महौ २ ऽ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिष्णा प्रथस्व ॥ २ ॥



ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन ऽ आवः ।

स बुध्न्या ऽ उपमा ऽ अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ ३ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकं ऽ आसीत् ।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।

समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ ५ ॥

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ।

ये ऽ अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ६ ॥

या ऽ इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीँ ऽ रनु ।

ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ७ ॥

ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु ।

येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ २ ऽ इमेन ।

तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ ९ ॥

तव भ्रमासं ऽ आशुया पतन्त्यनुस्पृश धृषता शोशुचानः ।

तपूँष्यग्रे जुह्वा पतज्ज्ञानसन्दिता विसृज विष्वगुल्काः ॥ १० ॥

प्रति स्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो ऽ अस्या ऽ अदब्धः ।

यो नो दूरे ऽ अघशंशो यो ऽ अन्त्यग्रे मा किष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥ ११ ॥

उदग्रे तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्युमित्राँ २ ऽ ओषतात्तिग्महेते ।

यो नो ऽ अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥ १२ ॥

ऊर्ध्वो भव प्रतिविध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्रे ।

अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून् ।

अग्रेष्ट्वा तेजसा सादयामि ॥ १३ ॥



इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ्मात्या हेमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हेमन्ती पङ्क्त्यै निधनवन्निधन-  
वत् ऽ आग्रयण ऽ आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्यां शाक्वरैवते  
विश्वकर्म ऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यो लोकं ता ऽ इन्द्रम् ॥५८

इति त्रयोदशोऽध्यायः

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुया ।

उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाश्विनाध्वर्यु सादयतामिह त्वा ॥ १ ॥

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सद्ने पृथिव्याः । अभि त्वा रुद्रा वसवो

गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यु सादयतामिह त्वा ॥ २ ॥

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानां मुम्ने बृहते रणाय ।

पितेवैधि सूनव ऽ आ सुशेवा स्वावेशा तन्वा संविशस्वाश्विनाध्वर्यु सादयतामिह त्वा ॥३॥

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे ऽ अभिगृणन्तु देवाः ।

स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणायजस्वाश्विनाध्वर्यु सादयतामिह त्वा ॥४॥

अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्रीं विष्टम्भनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम् ।

ऊर्मिर्द्रप्सो ऽ अपामसि विश्वकर्मा त ऽ ऋषिरश्विनाध्वर्यु सादयतामिह त्वा ॥ ५ ॥

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू ऽ अग्नेरन्तःश्लेषो ऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽ

ओषधयः कल्पन्तामग्रयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये ऽ अग्रयः समनसोऽन्तरा

द्यावापृथिवी ऽ इमे । ग्रैष्मावृतू ऽ अभिकल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया

देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवे सीदतम् ॥ ६ ॥

सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्र्यै त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यु

सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्र्यै त्वा



वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यु सादयतामिह त्वा सजृर्ऋतुभिः सजृर्विधाभिः सजृरुद्रैः सजृर्देवैर्वै-  
योनाधैरग्र्यै त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यु सादयतामिह त्वा सजृर्ऋतुभिः सजृर्विधाभिः  
सजृरादित्यैः सजृर्देवैर्वैयोनाधैरग्र्यै त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यु सादयतामिह त्वा सजृ-  
र्ऋतुभिः सजृर्विधाभिः सजृर्विश्वैर्देवैः सजृर्देवैर्वैयोनाधैरग्र्यै त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यु  
सादयतामिह त्वा ॥ ७ ॥

प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्म उर्व्या विभाहि श्रोत्रं मे श्लोकय ।  
अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय ॥ ८ ॥

मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दो विश्व-  
कर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विवलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो  
वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयोऽनाधृष्टं छन्दः सिंंहो वयश्छदिश्छन्दः पृष्ठवाड्वयो  
बृहती छन्दः उक्षा वयः ककुप् छन्दः ऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः ॥ ९ ॥

अनड्वान्वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवा-  
ड्वयो विराट् छन्दः पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वयः उष्णिक् छन्दस्तुर्यवाड्व-  
योऽनुष्टुप् छन्दो लोकं ता इन्द्रम् ॥ १० ॥

इन्द्राग्नी ऽअव्यथमानामिष्टकां दृधं हतं युवम् ।  
पृष्ठेन द्यावापृथिवी ऽअन्तरिक्षं च विवाधसे ॥ ११ ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृधं-  
हान्तरिक्षं मा हिंसीः । विश्वस्मै प्राणायोपानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ।  
वायुष्ट्वाभिपातु मद्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद्भ्रुवा सीद ॥ १२ ॥

राज्यासि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची  
दिगधिपत्यसि बृहती दिक् ॥ १३ ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ।  
विश्वस्मै प्राणायोपानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।  
वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद्भ्रुवा सीद ॥ १४ ॥



अथर्व वेदका स्वाध्याय ।

# सौभाग्य- वर्धन- सूक्त ।

( १८ )

( ऋषिः— द्रविणोदाः । देवता— वैनायकं सौभगम् )

निर्लक्ष्म्यं ललाम्यं १ निररातिं सुवामसि ।

अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि ॥ १ ॥

निररणिं सविता साविषत्पदोर्निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा ।

निरस्मभ्यमनुमती रराणा प्रेमां देवा असाविषुः सौभगाय ॥ २ ॥

यत्त आत्मनि तन्वां घोरमास्ति यद्वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा ।

सर्वं तद्वाचाप हन्मो वयं देवस्त्वा सविता सूदयतु ॥ ३ ॥

रिश्यपदीं वृषदतीं गोषेधां विधमामुत ।

विलीढ्यं ललाम्यं ३ ता अस्मन्नाशयामसि ॥ ४ ॥

अर्थ—(ललाम्यं) सिरपर होनेवाले (लक्ष्म्यं) बुरे चिन्हको (निः) निःशेषतासे दूर करते हैं, तथा (अ-रातिं) कंजूसी आदि (निः सुवामसि) निःशेष दूर करते हैं । (अथ या भद्रा) और जो कल्याण कारक चिन्ह हैं (तानि नः प्रजायै) वे सब हमारी संतान के लिये हम प्राप्त करते हैं और (अरातिं) कंजूसी आदिको (नयामसि) दूर भगाते हैं ॥ १ ॥ सविता, वरुण, मित्र और अर्यमा ( पदोः हस्तयोः ) पावों और हाथोंकी ( अरणिं ) पीडाको ( निः निः साविषत् ) दूर करें । ( रराणा अनुमतिः ) दानशील अनुमतिने (अस्मभ्यं निः) हमारे लिये निः शेष प्रेरणा की है । तथा (देवाः) देवोंने (इमां) इस स्त्रीको (सौभगाय) सौभाग्य के लिये ( प्र



असाविषुः) प्रेरित किया है ॥ २ ॥ (यत् ते आत्मनि) जो तेरी आत्मामें तथा (तन्वां) शरीर में (वा यत् केशेषु) अथवा जो केशोंमें (वा प्रति चक्षणे) अथवा जो दृष्टिमें (घोरं आस्ति) भयानक चिन्ह है (तत् सर्वं) वह सब (वयं वाचा हन्मः) हम वाणीसे हटा देते हैं । (सविता देवः) सविता देव (त्वा सूदयतु) तुझे सिद्ध करे अर्थात् परिष्कृत बनावे ॥ ३ ॥ (रिश्यपदीं) हरण के समान पांव वाली, (वृषदतीं) बैलके समान दांतवाली (गोषेधां) गायके समान चलनेवाली, (विधमां) विरुद्ध शब्द बोलनेवाली, जिसका शब्द कठोर है ऐसी स्त्री (उत ललाम्यं विलीढ्यं) और सिरपरका कुलक्षण यह सब हम (अस्मत् नाशयामसि) अपनेसे नाश करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ — सिरपर तथा शरीर पर जो कुलक्षण होंगे उनको दूर करना चाहिये तथा अंतःकरणमें कंजूसी आदि जो दुर्गुण हैं उनको भी दूर करना चाहिये, और जो सुलक्षण हैं उनको अपने तथा अपने संतानोंके पास स्थिर करना अथवा बढ़ाना चाहिये । तथा कंजूसी आदि मनके बुरे भावोंको हटाना चाहिये ॥ १ ॥ सविता, वरुण, मित्र, अर्यमा, अनुमति आदि सब देव और देवता हाथों और पावों की पीडा को दूर करें, इस विषयमें ये हमें उपदेश दें । क्योंकि देवोंने स्त्री और पुरुषको उत्तम भाग्य के लिये ही बनाया है ॥ २ ॥ तुम्हारे आत्मा अथवा मनमें, शरीरमें, केशोंमें तथा दृष्टिमें जो कुछ कुलक्षण हों, जो कुछ भी दुर्गुण हों, उसको हम वचनसे हटाते हैं । परमेश्वर तुम्हें उत्तम लक्षणोंसे युक्त बनावे ॥ ३ ॥ हरिण के समान पांव, बैलके समान दांत, गायके समान चलनेकी आदत, कठार बुरा आवाज होना तथा सिरपरका अन्य कुलक्षण यह सब हमसे दूर हो ॥ ४ ॥

### कुलक्षण और सुलक्षण ।

इस सूक्तमें शरीरके तथा मन बुद्धि आत्मा आदिके भी जो कुलक्षण हों उनको दूर करने तथा अपने आपको पूण सुलक्षण युक्त बनानेका उपदेश किया है । इस सूक्त में वर्णित कुलक्षण ये हैं—

( १ ) ललाम्यं लक्ष्म्यं— सिरपरका लक्षण, कपाल छोटा होना, भालपर बाल होने, बुद्धिहीन दर्शन आदि कुलक्षण । ( मंत्र १ )

( २ ) ललाम्यं विलीढ्यं — सिर पर बालोंके गुच्छे रहने और उनसे सिरकी



शोभाका विगाड आदि कुलक्षण । ( मंत्र ४ )

( ३ ) रिश्यपदी — हरिके समान कृश पांव । ( मंत्र ४ )

( ४ ) वृषदती— बैलके समान बड़े दांत । ( मंत्र ४ )

( ५ ) गोषेधा — गायके समान चलना । ( मंत्र ४ ) •

( ६ ) वि-धमा — कानोंको बुरा लगनेवाला आवाज, जिसका मीठा मंजुल आवाज नहीं । ( मंत्र ४ )

ये अंतिम ( ३-६ ) चार कुलक्षण स्त्रीलिंग निर्देशसे स्त्रियोंके लिये बहुत बुरे हैं अर्थात् स्त्रियोंमें ये न हों । वधू पसंद करनेके समय इन लक्षणोंका विचार करना योग्य है ।

( ७ ) केशेषु घोरं — बालोंमें क्रूरता अथवा भयंकरता दिखाई देना अर्थात् बालोंके कारण मुख क्रूरसा दीखना । ( मंत्र ३ )

( ८ ) प्रतिचक्षणे क्रूरं— नेत्रों में क्रूरता, भयानक नेत्र, भयानक दृष्टि । ( मंत्र ३ )

( ९ ) तन्वां क्रूरं— शरीरमें भयानकता, अर्थात् शरीरके अवयवके तेढामेढा होनेके कारण भयानक दृश्य । ( मं. ३ )

( १० ) आत्मनि क्रूरं— मन बुद्धि चित्त आत्मामें क्रूरताके भाव होना । ( मंत्र ३ )

( ११ ) अ-रातिं — कंजूसी, उदारभाव का अभाव । ( मं. १ )

( १२ ) पदोः हस्तयोः अ-राणिः — पांव और हाथों की पीडा अथवा कुछ विकार । ( मं. २ )

ये बारह कुलक्षण इस सूक्त में कहे हैं । इस सूक्त का विचार करनेके समय इससे पूर्व आया हुआ “ कुलवधु सूक्त ” ( अ. १ । १४ ) भी देखने योग्य है । अर्थात् इन दोनोंका विचार करनेसे ही वधूवर परीक्षा करनेका ज्ञान हो सकता है । इस लिये पाठक इन दोनों सूक्तोंका साथ साथ विचार करें । इन कुलक्षणों में से कई लक्षण केवल स्त्रियोंमें और कई पुरुषोंमें तथा कई दोनोंमें होंगे । अथवा सब लक्षण न्यूनाधिक भेदसे स्त्रीपुरुषों में दिखाई देना भी संभव है ।

ये कुलक्षण दूर करना और इन के विरोधी सुलक्षण अपने में बढाना हरएक का कर्तव्य है । इन कुलक्षणोंका विचार करनेसे सुलक्षणोंका भी ज्ञान हो सकता है । जिससे शरीर सुडौल दिखाई देता है वे शरीरके सुलक्षण समझने चाहिये । इसी प्रकार इंद्रियों, मन, बुद्धि वाचा आदिके भी सुलक्षण और कुलक्षण हैं । इन सबका निश्चित ज्ञान प्राप्त



करके अपनेमें से कुलक्षण दूर करना और सुलक्षण अपनेमें बढ़ाना हरएक का आवश्यक कर्तव्य है ।

### वाणीसे कुलक्ष्णोंको हटाना ।

मंत्र ३ में “ सर्व तद्वाचा हन्मो वयं । ” अर्थात् हम ये सब कुलक्षण वाणीसे दूर करते हैं, अथवा वाणीसे इन कुलक्ष्णोंका नाश करते हैं, कहा है; तथा साथ साथ “ देवस्त्वा सविता सूदयतु ” अर्थात् सविता देव तुम्हें पूर्ण सुलक्षण युक्त बनावे, कहा है । परमेश्वर कृपासे मनुष्य सुलक्ष्णोंसे युक्त हो सकता है, इस में किसीको संदेह नहीं हो सकता, परंतु वाणीसे कुलक्ष्णोंको दूर करने के विषयमें बहुत लोगोंको संदेह होना संभव है, अतः इस विषयमें कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता है । वेदमें यह विषय कई सूक्तोंमें आगया है इस लिये पाठक इस का खूब विचार करें ।

### वाणीसे प्रेरणा ।

वाणीसे अपने आपको अथवा दूसरे को भी प्रेरणा या सूचना देकर रोग दूर करना, तथा मन आदिके कुलक्षण दूर करना संभवनीय है, यह बात वेदमें अनेक स्थानों में प्रकाशित हुई है । यह सूचना इस प्रकार दी जाती है — “ मेरे अंदर ..... यह कुलक्षण है, यह केवल थोड़ी देर रहनेवाला है, यह चिरकाल नहीं रहेगा, यह कम हो रहा है; अतिशीघ्र कम होगा । मेरे अंदर सुलक्षण बढ़ रहे हैं, मैं सुलक्ष्णोंसे युक्त होऊंगा । मैं निर्दोष बन रहा हूं । मैं निरोगी रहूंगा । मैं दोषोंको हटाता हूं और अपनेमें गुणोंको विकसित करता हूं । ”

इत्यादी रीतिसे अनेक प्रकार की सूचनायें मनको देने और उनका प्रतिबिम्ब मनके अंदर स्थिर रखनेसे इष्ट सिद्धि होती है । वेदका यह मानस शास्त्रका सिद्धांत हर एक को विचार करने योग्य है । “ मैं हीन हूं, दीन हूं ” आदि विचार जो लोग आज कल बोलते हैं, वे विचार मनमें प्रतिबिम्बित होनेसे मनपर कुसंस्कार होनेके कारण हमारी गिरावट के कारण हो रहे हैं । इसलिये शुद्ध वाणीका उच्चार ही हमेशा करना चाहिये कभीभी अशुद्ध गिरे हुए भावोंसे युक्त शब्दोंका उच्चार नहीं करना चाहिये । वाणीकी शुद्ध प्रेरणा के विषयमें साक्षात् उपदेश देनेवाले कई सूक्त आगे आनेवाले हैं इसलिये इस विषयमें यहां इतनाही लेख पर्याप्त है । अस्तु इस प्रकार शुद्ध वाणीद्वारा और परमेश्वर भक्तिद्वारा अपने कुलक्ष्णोंको दूर करना और अपने अंदर सुलक्ष्णोंको बढ़ाना हरएक मनुष्यको योग्य है ।



## हाथों और पांवोंका दर्द ।

द्वितीय मंत्र में कहा है कि सविता ( सूर्य ), वरुण ( जल ), मित्र ( प्राणवायु ), अर्यमा ( आगका पौधा ) ये हाथों और पांवों के दर्द को तथा शरीरके दर्दको दूर करें। सूर्यप्रकाश, समुद्र आदिका जल, शुद्ध वायु, आगके पत्तोंका सेक आदिसे बहुतसे रोग दूर हो जाते हैं । इस विषय में इससे पूर्व बहुत कुछ कहा गया है और आगे भी यह विषय बारंबार आनेवाला है । आरोग्य तो इन से ही प्राप्त होता है ।

## सौभाग्य के लिये ।

“ इमां देवा असाविषुः सौभाग्य । ” इस को देवोंने सौभाग्य के लिये बनाया है । विशेष करके स्त्रीके उद्देश्यसे यह मंत्रभाग है, परंतु सबके लिये भी यह माना जा सकता है । अर्थात् मनुष्य मात्र स्त्री हो या पुरुष हो वह अपना कल्याण साधन करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है और वह यदि परमेश्वर भक्ति करेगा तथा शुद्ध वाणी की सूचनासे अपने मन को प्रभावित करेगा तो अवश्यमेव सौभाग्यका भागी बनेगा । हरएक मनुष्य यह वैदिक धर्मके सिद्धांतको मनमें स्थिर करे । अपनी उन्नतिको सिद्ध करना हरएक के पुरुषार्थपर अवलंबित है । यदि अपनी अवनति हुई है तो निश्चय जानना चाहिये कि पुरुषार्थ में त्रुटी हुई है ।

## संतान का कल्याण ।

यदि अपने में कुछ कुलक्षण रहे भी, तथापि अपने संतानों में सब सुलक्षण आजाय ( या भद्रा तानि नः प्रजायै ) यह प्रथम मंत्रका उपदेश हरएक गृहस्थीको ध्यान में धरना चाहिए । अपनी संतान निर्दोष तथा सुलक्षणोंसे तथा सद्गुणोंसे युक्त बने यह भाव यदि हरएक गृहस्थी में रहेगा, तो प्रति पुत्र में मनुष्यों का सुधार होता जायगा और राष्ट्र प्रतिदिन उन्नतिकी सीढ़ीपर चढेगा । यह उपदेश हरएक प्रकारसे कल्याण करने वाला है इस लिये इसको कोई गृहस्थी न भूले ।

इस प्रकार पाठक इस सूक्तका विचार करें और अपने कुलक्षणों को दूर करके अपने अंदर सुलक्षण बढानेका प्रयत्न करें ।



## शत्रुनाशन सूक्त ।

( १९ )

( ऋषिः— ब्रह्मा । देवता—ईश्वर, ब्रह्म )

मा नो विदन् विव्याधिनो मो अभिव्याधिनो विदन् ।

आराच्छरव्या अस्मद्विषूचीरिन्द्र पातय ॥ १ ॥

विष्वश्चो अस्मच्छरवः पतन्तु ये अस्ता ये चास्याः ।

दैवीर्मनुष्येषवो ममाऽमित्रान् वि विध्यत ॥ २ ॥

यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ठयो यो अस्माँ अभिदासति ।

रुद्रः शरव्ययैतान् ममाऽमित्रान् विविध्यतु ॥ ३ ॥

यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विषञ्छपाति नः ।

देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥ ४ ॥

अर्थ— ( वि-व्याधिनः ) विशेष वेधनेवाले शत्रु ( नः मा विदन् ) हम तक न पहुंचें । ( अभिव्याधिनः ) चारों ओरसे मारने काटनेवाले शत्रु ( नः मो विदन् ) हम तक कभी न पहुंचें । हे ( इन्द्र ) परमेश्वर ! ( विषूचीः शरव्याः ) सब ओर फैलने वाले बाण समूहोंको ( अस्मत् आरात् पातय ) हमसे दूर गिरा ॥ १ ॥ ( ये अस्ताः ) जो फेंके हुए और ( ये च अस्याः ) जो फेंके जायेंगे वे सब ( विष्वश्चः शरवः ) चारों ओर फैले हुए बाण आदि शस्त्र ( अस्मत् पतन्तु ) हमसे दूर जाकर गिरें ( दैवीः मनुष्येषवः ) हे मनुष्यों के दिव्य बाणों ! ( मम अमित्रान् ) मेरे शत्रुओं को ( विविध्यत ) वेध कर डालो ॥ २ ॥ ( यः नः स्वः ) जो हमारा अपना अथवा ( यः अरणः ) जो दूसरा परकीय हो, किंवा जो ( स—जातः ) समान उच्च जातिका कुलीन ( उत ) अथवा



जो ( निष्ठयः ) भिन्न जातिवाला या संकर जातिका हीन ( अस्मान् अभिदासति ) हमपर चढाई करके हमें दास बनानेकी चेष्टा करे, ( एतान् मम अमित्रान् ) इन मेरे शत्रुओंको ( रुद्रः ) रुलानेवाला वीर ( शरव्यया विविध्यतु ) बाणोंसे वेध करे ॥ ३ ॥ ( यः ) जो ( सपत्नः ) विरोधी और ( यः अ-सपत्नः ) जो प्रगट विरोधी नहीं है ( च यः द्विषन् ) और जो द्वेष करता हुआ ( नः शपाति ) हमको शापता है ( तं ) उसका ( सर्वे देवाः ) सब देव ( धूर्वन्तु ) नाश करें । ( मम अन्तरं वर्म ) मेरा आंतरिक कवच ( ब्रह्म ) ब्रह्म ज्ञान ही है ।

भावार्थ — हमारे वीरोंका शौर्य ऐसा हो कि हमारा नाश करनेकी इच्छा करने वाले सब शत्रु हमसे सदा दूर रहें और हमतक वे कभी न पहुंच सकें । उनके शस्त्र भी हमसे दूर रहें ॥ १ ॥ सब शस्त्र हमसे दूर गिरें । और हमारे शत्रुओंपरही सब शस्त्र गिरते रहें ॥ २ ॥ कोई हमारा मित्र या शत्रु, हमारी जातीवाला वा परजातिका, कुलीन या हीन, कोई भी क्यों न हो, यदि वह हमें दास बनाने या हमारा नाश करनेकी चेष्टा करता है तो उसका नाश शस्त्रोंसे करना योग्य है ॥ ३ ॥ जो प्रकट या छिपाहुआ शत्रु हमारा नाश करना चाहता है या हमें बुरे शब्द बोलता है सब सज्जन उसको दूर करें । मेरा आंतरिक कवच सत्य ज्ञान ही है ॥ ४ ॥

यह “ सांग्रामिक गण ” का सूक्त है, इस कारण “ अपराजित गण ” के सूक्तों के साथ भी इसका संबंध है, अतः पाठक इस गणके सूक्तोंके साथ इस का भी विचार करें ।

### आंतरिक कवच ।

इस सूक्तमें जो सबसे महत्त्व पूर्ण बात कही है वह आंतरिक कवच की है । देशके कवच पर्वत, दुर्ग और समुद्र होते हैं इनके होने के कारण बाहरके शत्रु देशमें घुस नहीं सकते । ग्रामके कवच कीले होते हैं इनके कारण शत्रु ग्राममें घुस नहीं सकते । शरीरके कवच लोहेके अथवा तारके बनाये जाते हैं जिनके कारण शत्रुके शस्त्र शरीर पर लगते नहीं और शरीर सुरक्षित रहता है । शरीरके अंदर आत्मा और अंतःकरण है, मन बुद्धि चित्त और अहंकार मिलकर अंतःकरण होता है, इसकी साथ आत्माके लिये रहती है । इस “ अन्तःकरण ” के लिये “ अंतः कवच ” अवश्य चाहिये, जो इस



सूक्त ने “ ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ” शब्दोंद्वारा बताया है। ज्ञान रूप कवच ही मेरा आंतरिक कवच ” है। जिसके आत्मा और अंतःकरणका ज्ञानरूप कवचसे संरक्षण होता है, उनको किसी शत्रुसे डर नहीं हो सकता, वह अज्ञात शत्रु ही बन सकता है। इस ज्ञान रूप कवच के बताने में जो ज्ञान वाचक “ ब्रह्म ” शब्द सूक्तमें प्रयुक्त किया है। वही परमेश्वर या परब्रह्मका वाचक है और इसलिये इस ब्रह्म शब्दसे “ परमात्म विषयक आस्तिक्य बुद्धियुक्त ज्ञान ” इतना अर्थ इस शब्दसे समझना योग्य है।

### इस सूक्तके दो विभाग ।

इस सूक्तके दो विभाग होते हैं, प्रथम विभागमें प्रारंभसे चतुर्थ मंत्रके तृतीय चरण तकके सब मंत्र आते हैं और द्वितीय विभागमें चतुर्थ मंत्रके चतुर्थ चरणका ही समावेश होता है। इन विभागोंको देख कर इस सूक्त का विचार करनेसे बड़ा बोध मिलता है।

### वैदिकधर्मका साध्य । ब्राह्म कवच ।

“ परमात्माकी भक्तिसे परिपूर्ण सत्य सनातन ज्ञानही मेरा कवच है ” इस ब्राह्म कवचसे सुरक्षित होनेपर मुझे किसी भी शत्रुका भय नहीं, यह आत्मविश्वास मनुष्यमें उत्पन्न करना वैदिक धर्मका साध्य है। यह भाव मनुष्यमात्रमें स्थापित करनेके लिये ही वैदिक धर्मकी शिक्षा है। परंतु यह ज्ञान समय समयपर थोड़ेसे परिशुद्ध महात्माओंमें उत्पन्न होता है और उनसे भी थोड़े संतोंमें इसका साक्षात् अनुभव होता है, यह बात हम इतिहासमें देखते हैं। इस लिये यद्यपि वेद का यह साध्य है, तथापि सब मनुष्योंमें यह साध्य साक्षात् प्रत्यक्षमें आना कठिन है इसमें भी संदेह नहीं है। इसी लिये सर्व साधारण मनुष्य आत्मिक दिव्य शक्ति को शरण जानेकी अपेक्षा मतभेदका निश्चय करनेके समय शारीरिक पाशवी शक्तिका ही आश्रय करते हैं !! अतः हम कहते हैं प्रथम विभागके मंत्र पाशवी शक्तिका विचार करते हुए साधारणजनोंका मार्ग बता रहे हैं और द्वितीय विभागका मंत्रभाग आत्मिक दिव्य शक्तिका मानवी अंतिम ध्येय बता रहा है।

“ आत्मिक शक्ति या आत्मिक ज्ञान ही मेरा सब से बड़ा कवच है, जिससे मैं सब प्रकारके शत्रुओंसे सुरक्षित रह सकता हूं, मेरे अंदर अहिंसाका भाव पूर्णरूप से स्थिर रहा, तो जो जो मेरे पास आवेंगे उनके अंदरसे भी शत्रुताका भाव दूर हो जायगा । ”

इत्यादि वैदिक धर्मकी शिक्षा अंतिम साध्य है, मनुष्य को यही बात अंतमें स्वीकारनी है, परंतु यह स्वीकार बाह्य दबावसे नहीं होना चाहिये, परंतु अंतःस्फूर्तिसे ही



होना चाहिये, अपना स्वभाव ही ऐसा बनना चाहिये । इसी भावसे मनुष्यका सबसे अधिक कल्याण है ।

### अन्य कवच । क्षात्र कवच ।

शरीरके, नगरोंके तथा देशोंके अन्यान्य कवच उक्त विश्वासके अभावमें आवश्यक ही हैं । स्वसंरक्षण के शस्त्रास्त्र आदि सब इस अवस्थामें ही सहायक हैं । अर्थात् जबतक जनता पूर्वोक्त अधिकारके लिये योग्य नहीं होती, तब तक शूरवीर क्षत्रियगण राष्ट्रका संरक्षण इन शस्त्रास्त्रोंसे करें । यह क्षात्र साधन हैं । ज्ञान कवच से सुरक्षित होना ब्राह्म साधन है और लोहेके कवचों तथा शस्त्रास्त्रोंसे सुरक्षित होना क्षात्र साधन है । ब्राह्म-साधन स्वीकारने योग्य जनताकी उन्नति धर्म साधनसे करनी चाहिये और जबतक उतनी उन्नति नहीं होती, तबतक क्षात्र साधनसे शत्रुओंका प्रतिकार करना योग्य है । क्षात्रसाधनोंसे युद्धोंके बहुत होनेसे ही मनुष्य इन साधनोंकी क्रूरताका अनुभव करता है और ब्राह्म साधन को स्वीकारने का यत्न करता है ।

इस प्रकार युद्ध भी मनुष्यको ब्राह्मसाधनतक पहुंचाने वाले मार्ग दर्शक बनते हैं ।

### दासभाव का नाश ।

तृतीय मंत्र में कहा है कि “ जो अपना या पराया हमें दास बनाने की चेष्टा करता है, उसका नाश करना चाहिये । ” राष्ट्रीय पारतंत्र्य शारीरिक दास भाव का द्योतक है, इस के अतिरिक्त मानसिक, बौद्धिक, तथा वाचिक पारतंत्र्य भी है और ये सबसे अधिक घातक है । किसी प्रकारका भी पारतंत्र्य जो अपना नाशका कारण हो वह स्वीकारना नहीं चाहिये, परंतु उसके कारणको दूर करना चाहिये । आर्योंको दास कभी नहीं बनना चाहिये । स्वाधीनता ही मनुष्यका साध्य है । ज्ञान और पुरुषार्थसे स्वाधीनता-बंधनसे मुक्ति—प्राप्त होती है, इसकाभी आशय यही है । मनुष्य के सब दुःख दासत्व के कारण हैं । इस लिये कोई मनुष्य या कोई राष्ट्र दूसरे मनुष्यको या राष्ट्र को दासत्वमें दवाने का यत्न न करे और यदि किसी से ऐसा प्रयत्न हुआ तो सब मनुष्य उसका विरोध करें ।

दासभाव को हटानेका उपदेश पाठक इस सूक्त में विशेष प्रकार से देखें और उस को अपने जीवन में घटावें । पाठक इस सूक्तके इस प्रकार विचार करने से बहुत ही बोध प्राप्त कर सकते हैं ।



## महान् शासक ।

( २० )

( ऋषिः— अथर्वा । देवता - सोमः )

अदारसृद् भवतु देव सोमास्मिन्यज्ञे मरुतो मृडता नः ।

मा नो विदद्भिमा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्ट्या या॥१॥

यो अस्य सेन्यो वधोऽघायूनामुदीरते ।

युवं तं मित्रावरुणावस्मद्यावयतं परि ॥ २ ॥

इतश्च यदमुतश्च यद्वधं वरुण यावय ।

वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावथा वधम् ॥ ३ ॥

शास इत्था महौ अस्यमित्रसाहो अस्तृतः ।

न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन ॥ ४ ॥

अर्थ— हे ( देव सोम ) सोम देव ! ( अ-दार-सृत् भवतु ) आपसकी फूट उत्पन्न करनेका कार्य न हो । हे ( मरुतः ) मरुतो ! ( अस्मिन् यज्ञे ) इस यज्ञमें ( नः मृडत ) हमें सुखी करो । ( अभि-भाः नः मा विदद् ) पराभव हमारे पास न आवे, ( अशस्तिः मो ) अकीर्ति हमें प्राप्त न हो, ( या द्वेष्ट्या वृजिना ) जो द्वेष बढ़ाने वाले कुटिल कृत्य हैं वेभी ( नः मा विदद् ) हमारे पास न हों ॥ १ ॥ ( अघायूनां ) पाप मय जीवन वालोंका ( यः सेन्यः वधः ) जो सेनाके शूर वीरोंसे वध ( अद्य उदीरते ) आज हो रहा है । हे मित्र और वरुणो ! ( युवं ) तुम ( तं अस्मत् परि यावयतं ) उसको हमसे सर्वथा हटा दो ॥ २ ॥ हे ( वरुण ) सर्वश्रेष्ठ ईश्वर ! ( यत् इतः च यत् अमुतः ) जो यहांसे और जो वहांसे वध होगा उस ( वधं यावय ) उसको भी दूर कर दे । ( महत् शर्म वियच्छ ) बड़ा सुख अथवा आश्रय हमें दे और ( वधं वरीयः यावय ) वधको अतिदूर कर दे ॥ ३ ॥ ( इत्था महान् शासः ) इस प्रकार सत्य और महान् शासक ईश्वर ( अ-मित्र-साहः अ-स्तृतः ) शत्रुका पराजय करने वाला और कभी न हारनेवाला ( असि ) तू है । ( यस्य सखा ) जिसका मित्र ( कदाचन न हन्यते ) कभीभी नहीं मारा जाता और ( न जीयते ) न पराजित होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे ईश्वर ! आपसकी फूट बढ़ानेवाला कोई कार्य हमसे न हो । इस सत्कर्मसे हमें सुख प्राप्त हो ! पराजय, अपकीर्ति, अयश, द्वेष



और कुटिलता हमारे पास न आवें ॥ १ ॥ हे देव ! शूरवीरोंके द्वारा जो पापियोंके वध हो रहे हैं, वैसे वधोंके प्रसंग भी हमारे अंदर न उत्पन्न हों ॥ २ ॥ हे प्रभु ! हमारे अंदर अथवा दूसरोंके अंदर वध करनेका भाव न रहे । वधका भावही हम सबसे दूर कर और तेरा बड़ा आश्रय—सुख-पूर्ण आश्रय—हमें दो ॥ ३ ॥ इस रीतिसे तेराही महान सत्य शासन सब के ऊपर है, तूही सच्चा शत्रुओंका दूर करनेवाला और सर्वदा अपराजित है, तेरा मित्र बनकर जो रहता है न उसका वध कभी होगा और नाही उसका कभी पराजय होगा ॥ ४ ॥

### पूर्व सूक्तसे संबंध ।

पूर्व सूक्तके अंतमें “ईश्वर भक्ति युक्त सत्यज्ञान ही मेरा सच्चा कवच है” यह विशेष बात कही है, उसीका विशेष वर्णन इस सूक्तमें हो रहा है । सबसे पहिले आपसकी फूट को दूर करनेकी सूचना दी है ।

### आपकी फूट हटादो ।

“अ-दार-सृत् भवतु” हमारा आचरण फूट हटाने वाला हो, यह इस उपदेश का तात्पर्य है । देखिये—

दार = फूट ( दृः फटना धातु )

दार + सृत् = फूटका प्रयत्न, फूटका कार्य ।

अ + दार + सृत् = फूट हटानेवाला कार्य ।

“अ + दार + सृत् भवतु” अर्थात् “आपसकी फूट हटानेवाला कार्य हम सबसे होता रहे ।” आपस की फूटके कारण शत्रु हमला करते हैं और शत्रुओंके हमले हो जानेपर हमें शत्रुओंको भगानेका यत्न करना पड़ता है । इस लिये युद्धका कारण आपस की फूट है । यदि आपसकी फूट न होगी और सब लोग एक मतसे रहेंगे तो दूसरे लोग हमला करनेके लिये भी डरेंगे । जहां आपसमें फूट होती है वहीं शत्रुओंका हमला होता है । इस लिये युद्धोंका कारण आपसकी फूटमें देखना और आपस की फूटको दूर करना चाहिये । राष्ट्रीय सुखकी यही बुनियाद है ।

आपसकी फूट हटजाने के पश्चात् ही ( मृडत ) सुख होनेकी संभावना है । अन्यथा सुखकी आशा नहीं है । आपसकी फूट हटानेसे जो लाभ होगा वह निम्न लिखित प्रकार प्रथम मंत्रके उत्तरार्ध में वर्णन किया है ।



- १ अभिभा नः मा विदत् = पराजय हमारे पास नहीं आवेगा,
- २ अशस्तिः सो = दुष्कीर्ति हमारे पास नहीं आवेगी,
- ३ वृजिना नः मा = कुटिल कृत्य हमें करने नहीं होंगे,
- ४ द्वेष्या नः मा विदत् = द्वेष करना नहीं पड़ेगा ।

जिस समय हम आपसकी फूट हटायेंगे, उस समय हमें किसी के द्वेष करने का कोई कारण नहीं रहेगा, किसीसे कपट युक्त कुटिल व्यवहार करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी, हमारा कभी पराभव न होगा अथवा हम पर कोई आपत्ति नहीं आवेगी और हमारी अपकीर्ति भी नहीं होगी; अर्थात् जब हम आपसकी फूट हटाकर अपनी उत्तम संघटना करेंगे और एकताके बलसे आगे बढ़ेंगे, उस समय सब लोग हमारे मित्र बन कर हमारे साथ मित्रताका व्यवहार करेंगे, हम भी सबके साथ सरल व्यवहार करते जायेंगे, एकताके कारण हमारा बल बढ़ेगा और उस हेतुसे कभी पराभव नहीं होगा तथा हमारा यश फैलता जायगा । ( मंत्र १ )

द्वितीय और तृतीय मंत्रमें जो सैनिक वीरोंसे होने वाले दुष्टोंके संहारका वर्णन है, वह वर्णन भी हमारी आपसकी फूट के कारण ही दुष्ट लोग हमें सताते हैं और उनका वध करनेका प्रयोजन उत्पन्न होता है, अर्थात् यदि हमारा समाज सुसंघटित होगा तो उस वधकी जड़ही नष्ट होनेसे वह वध भी नहीं होंगे और हमें ( सहत् शर्म ) बड़ा सुख प्राप्त होगा । “शर्म” शब्दका अर्थ “सुख और आश्रय” है । पूर्वापर संबंधसे यहां परमेश्वरका आश्रय अभीष्ट है । क्यों कि सच्चा सुख भी परमात्माके आश्रयसे ही होता है । ( मंत्र. २, ३ )

### बड़ा शासक ।

एक ईश्वर ही सबसे बड़ा शासन कर्त्ता है, उसके ऊपर किसी अन्यका अधिकार नहीं है, सब उसीके शासनमें कार्य करते हैं, वही सर्वोपरि है । वह शत्रुताका सच्चा नाशक और कभी पराजित न होने वाला है । यदि ऐसे समर्थ प्रभुका मित्र बनकर कोई रहे तो उसका कभी नाश न होगा और कभी पराजय न होगा । अर्थात् प्रभुका मित्र बन कर व्यवहार करने वालेका यश सर्वत्र फैलेगा और उसका ही नाम सर्वत्र होगा । ( मंत्र ४ )

पूर्व सूक्तमें जिस “ज्ञान-कवच, ब्रह्म-वर्म” का वर्णन किया है वह ब्रह्म-कवच यही है कि “परमेश्वर का शासन सर्वोपरि मानना और उसका सखा बनकर व्यवहार करना ।”

आशा है कि पाठक इस प्रकार प्रभुके मित्र बननेका यत्न करेंगे ।



# प्रजापालक सूक्त ।

( २१ )

( ऋषिः — अथर्वा । देवता - इन्द्रः )

स्वस्तिदा विशांपतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।  
वृषेन्द्र पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः ॥ १ ॥

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।  
अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति ॥ २ ॥

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।  
विमन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥ ३ ॥

अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।  
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥ ४ ॥

अर्थ— (स्वस्ति- दा) मंगल देनेवाला, ( विशां पतिः ) प्रजाओंका पालक, ( वृत्र-हा ) घेरनेवाले शत्रुका नाश करनेवाला, (वि-मृधः वशी) विशेष हिंसकोंको वशमें करनेवाला, (वृषा) बलवान् (सोम-पाः) सोम का पान करनेवाला, (अ-भयं-करः) अभय देनेवाला (इन्द्रः) प्रभु राजा (नः) हमारे (पुरः) एतु आगे चले, हमारा नेता बने ॥१॥ हे इन्द्र ! (नः मृधः) हमारे शत्रुओंको (विजहि) मार डाल । (पृतन्यतः) सेनाके द्वारा हमपर हमला चढानेवालों-को नीचा यच्छ नीचेही प्रतिबंध कर । (यः अस्मान् अभिदासति) जो हमें दास बनाना चाहता है या हमारा घात करना चाहता है उसको (अधमं तमः गमय) हीन अंधकारमें



पहुँचा दें ॥ २ ॥ (रक्षः मृधः विविजहि) राक्षसों और हिंसकोंको मारडाल, (वृत्रस्य हन् विरुज ) घेरकर हमला करनेवाले शत्रुके दोनों जबड़ोंको तोड़ दे । हे (वृत्रहन् इन्द्र) शत्रु नाशक प्रभो ! (अमिदासतः अमित्रस्य) हमारा नाश करनेवाले शत्रुके (मन्युं विरुज) उत्साहको तोड़ दे ॥ ३ ॥ हे (इन्द्र) प्रभो ! राजन् ! ( द्विषतः मनः अप ) द्वेषीका मन बदल दे । (जिज्यासतः वधं अप) हमारी आयुका नाश करनेवालेको दूर कर । (महत् शर्म वियच्छ) बड़ा सुख हमें दे और (वधं वरीयः यावय) वध को दूर कर ॥ ४ ॥

भावार्थ— प्रजाजनोंका हित और मंगल करनेवाला, प्रजाओंका उत्तम पालन करनेवाला, घेर कर नाश करनेवाले शत्रुको दूर करनेवाला, बलिष्ठ, अमृत पान करनेवाला, प्रजाको अभय देनेवाला राजा ही हमारा अग्रगामी बने ॥ १ ॥ हे राजन् ! प्रजाके शत्रुका नाश कर, सेना लेकर हमला करनेवाले शत्रुको दबा दे, जो घातपात और नाश करना चाहता है उसको भगादे ॥ २ ॥ हिंसक क्रूर शत्रुओंको मारडाल, घेर कर सतानेवाले दुष्टोंको काट दो, सब प्रकारके शत्रुओंका उत्साह नाश कर दे ॥ ३ ॥ शत्रुओंके मन ही बदल दे अर्थात् वे हमला करनेका विचार छोड़ दें, नाश करने वालोंको दूर करदे, घातपात आदिको दूर कर और सब प्रजाको सुखी कर ॥ ४ ॥

### क्षात्रधर्म ।

यह “ अभयगण ” का सूक्त है । इस सूक्तमें क्षात्र धर्मका उपदेश और राजाके कर्तव्योंका वर्णन है उसका मनन पाठक करें । उत्तम राजाके गुण प्रथम मंत्रमें वर्णन किये हैं । इस मंत्रकी कसौटीसे राजा उत्तम है या नहीं इसकी परीक्षा हो सकती है । अन्य तीन मंत्रोंमें विविध प्रकारके शत्रुओंका वर्णन है और उनका प्रतिकार करने का उपदेश है । सब प्रकारके अंतर्वाह्य शत्रुओंका प्रतिकार करके प्रजाको अधिकसे अधिक सुखी करना राजाका मुख्य कर्तव्य है । यह सूक्त अतिसरल है इस लिये इसका अधिक स्पष्टीकरण आवश्यक नहीं है ।

[ चतुर्थ अनुवाक समाप्त । ]



# हृदयरोग तथा कामिला रोग

की चिकित्सा ।

( २२ )

[ ऋषिः—ब्रह्मा । देवता — सूर्यः, हरिमा, हृद्रोगः ]

अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते ।

गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥ १ ॥

परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि ।

यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत् ॥ २ ॥

या रोहिणीर्दिवत्या ३ गावो या उत रोहिणीः ।

रूपं रूपं वयो वयस्ताभिश्च परि दध्मसि ॥ ३ ॥

सुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।

अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ॥ ४ ॥

अर्थ— ( ते हृद्-द्योतः च हरिमा ) तेरा हृदयका जलन और पीलापन ( सूर्य अनु उदयताम् ) सूर्यके पीछे चलाजावे । गौके अथवा सूर्यके ( रोहितस्य तेन वर्णेन ) उस लाल रंगसे ( त्वा परि दध्मसि ) तुझे सब प्रकारसे हृष्ट पृष्ट करते हैं ॥ १ ॥ ( रोहितैः वर्णैः ) लाल रंगोंसे ( त्वा ) तुझको ( दीर्घायुत्वाय परि दध्मसि ) दीर्घ आयुके लिये घेरते हैं । ( यथा ) जिससे (अयं) यह (अ- रपा असत्) नीरोग हो जाय और (अ-हरितः) भुवत् पीलक रोगसे मुक्त हो जाय ॥ २ ॥ (याः देवत्या रोहिणीः गावः) जो दिव्य लाल-रंग की गौवें हैं (उत या रोहिणीः) और जो लाल रंगकी किरणें हैं (ताभिः) उनसे (रूपं रूपं) सुंदरता और (वयः वयः) बलके अनुसार (त्वा परि दध्मसि) तुम्हें घेरते हैं ॥ ३ ॥ (ते हरिमाणं) तेरे पीलक रोगको (सुकेषु रोपणाकासु च) तोते और पौधोंके रंगोंमें (दध्मसि) धारण करते हैं (अथो) और (ते हरिमाणं) तेरा फीकापन हम (हारिद्रवेषु) हरीवनस्पतियोंमें (नि दध्मसि) रख देते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— तेरा हृदयरोग और पीलक रोग सूर्य किरणोंके साथ संबंध करनेसे चला जायगा । लाल रंग की गौवें और सूर्यकी लाल किरणें होती



हैं, इनके द्वारा नीरोगता हो सकती है ॥ १ ॥ लाल रंगके प्रयोगसे दीर्घ आयुष्य प्राप्त होता है, पीलक रोग दूर होता है और नीरोगता प्राप्त होती है ॥ २ ॥ लाल रंगकी गौवें और लाल रंगकी सूर्य किरणें दिव्य गुणोंसे युक्त होती हैं । रूप और बलके अनुसार उनके द्वारा रोगी घेरा जावे ॥ ३ ॥ इस लालरंगकी चिकित्सासे रोगीका पीलापन तथा फीकापन दूर होगा और वह हरे पक्षी और हरी वनस्पतियोंमें जाकर निवास करेगा, अर्थात् रोगीके पास फिर नहीं आवेगा ॥ ४ ॥

### वर्णचिकित्सा ।

यह सूक्त “ वर्ण चिकित्सा ” के महत्त्वपूर्ण विषयका उपदेश दे रहा है । मनुष्य को हृदयका रोग और कामिला नामका पीला रोग कष्ट देते हैं । अपचन, पेटके विकार, तमाखू, मद्यप्राशन आदि अनेक कारण हैं, जिनके कारण हृदय के दोष उत्पन्न होते हैं । तरुण अवस्थामें वीर्यदोष होनेके कारण भी हृदय के विकार उत्पन्न होते हैं । कामिला रोग पित्त के दूषित होनेके कारण उत्पन्न होता है । इन रोगोंके कारण मनुष्य कृश, निस्तेज, फीका, दुर्बल और दीन होता है । इस लिये इन रोगोंको हटानेका उपाय इस सूक्तमें वेद बता रहा है । सूर्यकिरणों द्वारा चिकित्सा तथा लाल रंगवाली गौओंके द्वारा चिकित्सा करनेसे उक्त दोष दूर होते हैं और उत्तम स्वास्थ्य मिलता है ।

### सूर्य किरण चिकित्सा ।

सूर्य किरणोंमें सात रंग होते हैं अथवा रंगवाली शीशोंकी सहायतासे इष्टरंगके किरण प्राप्त किये जा सकते हैं । नंगे शरीर पर इन किरणोंको रखनेसे आरोग्य प्राप्त होता है और रोग दूर होते हैं । यह रंगीन सूर्य किरणोंका स्नानही है । यह नंगे शरीरसे ही करना चाहिये । छतपर लाल रंगके शीशे रखनेसे कमरे में लालरंगकी किरणें प्राप्त हो सकती हैं, इसमें नंगे शरीरसे रहनेसे यह चिकित्सा साध्य हो सकती है ।

जिस प्रकार उक्त रोगोंके लिये लालरंगकी किरणोंसे चिकित्सा होती है उसी प्रकार अन्यान्य रोगोंके लिये अन्यान्य वर्णोंके सूर्य किरणोंसे चिकित्सा होना संभवनीय है । इस लिये सुयोग्य वैद्य इस का अधिक विचार करें और सूर्य किरण चिकित्सासे रोगियों के रोग दूर करके जनताके सुखकी वृद्धि करें ।

### परिधारण विधि ।

सूर्य किरण चिकित्सामें “ परिधारण विधि ” का महत्त्व है । इस सूक्तमें “ परि



दध्मसि ” शब्द चार बार, “ निदध्मसि ” शब्द एक बार और “ दध्मसि ” शब्द एक बार आया है । “ चारों ओरसे धारण करना ” यह भाव इन शब्दों से व्यक्त होता है । शरीरके चारों ओरसे संबंध करनेका नाम “ परिधारण ” है । जिस प्रकार तलावके पानीमें तैरनेसे शरीर के साथ जलका परिधारण होसकता है, उसी प्रकार लाल रंगके सूर्य किरण कमरेमें लेकर उसमें नंगे शरीर रहना और शरीरको उलट पुलट करके सब शरीरके साथ लालरंग के सूर्य किरणोंका संबंध करना परिधारण विधिका तात्पर्य है ।

१ रोहितैः वर्णैः परिदध्मसि ( मंत्र २ )

२ दीर्घायुत्वाय परिदध्मसि (    ”    )

३ गो रोहितस्य वर्णेन त्वा परिदध्मसि ( मं. १ )

४ ताभिष्ट्वा परिदध्मसि ॥ ( मं. ३ )

ये सब मंत्र भाग रक्त वर्ण के सूर्य किरणोंका स्नान अर्थात् “ परिधारण ” करनेका विधान कर रहे हैं । रोगीको नंगे शरीर पूर्वोक्त रक्त वर्णके शीशेवाले कमरेमें रखने और उसके शरीरका संबंध रक्त वर्णके सूर्य किरणोंके साथ करनेसे यह परिधारण हो सकता है और इससे नीरोगता, दीर्घ आयुष्य प्राप्ति तथा बल प्राप्ति भी होसकती है । अन्यान्य रोगोंके निवारणके लिये अन्यान्य वर्णोंके किरणोंके स्नानों की योजना करना चतुर वैद्योंकी बुद्धिमत्तापर निर्भर है ।

## रूप और बल ।

रूप और बलके अनुसार यह चिकित्सा, यह परिधारणविधि अथवा किरण स्नान करना योग्य है यह सूचना तृतीय मंत्रके उत्तरार्धमें पाठक देख सकते हैं । रूपका अर्थ शरीरका सौंदर्य, शरीरका रंग और शरीरकी सुकुमारता है । यदि गोरा शरीर हो, यदि सुकुमार नाजुक शरीर हो तो उसके लिये कितना किरण स्नान देना चाहिये, उसके लिये सवेरका कोमल प्रकाश, या दोपहरका कठोर प्रकाश बर्तना चाहिये, इत्यादिका विचार करना वैद्योंका कार्य है । जो काले शरीर वाले तथा सुदृढ़ या कठोर शरीरवाले होते हैं उनके लिये किरणस्नानका प्रमाण भी भिन्न होना योग्य है । तथा जो घरमें बैठनेवाले लोग होते हैं और जो धूपमें कार्य करनेवाले होते हैं उनके लिये भी उक्त प्रमाण न्यूनाधिक होना उचित है । इस विचार का नाम ही “ रूप और बल के अनुसार विचार ” करना है । ( रूपं रूपं वयो वयः ) यह प्रमाण



दर्शनेवाला मंत्र भाग अत्यंत महत्त्वका है । रोगीकी कोमलता या कठोरता, रोगीका रंग, रोगीका रहना सहना, रोगीका पेशा, उसकी आयु तथा शारीरिक बल इन सबका विचार करके किरण स्नान की योजना करना चाहिये । नहीं तो कोमल प्रकृति वालेको अधिक स्नान देनेसे आरोग्य के स्थानपर अनारोग्य होगा । अथवा कठोर प्रकृतिवाले को अल्प प्रमाणमें देनेसे उसपर कुछ भी परिणाम न होगा । इस दृष्टीसे तृतीय मंत्रका उत्तरार्ध बहुत मनन करने योग्य है ।

### रंगीन गौके दूधसे चिकित्सा ।

इसी सूक्तसे रंगीन गौके दूधसे रोगीकी चिकित्सा करनेकी विधि भी बतादी है । गोत्रे सफेद, काले, लाल, भूरे, नसवारी, बादामी, तथा विविध रंग के धब्बोंवाली होती हैं । सूर्य किरण गौके पीठपर गिरते हैं और उस कारण रंगके भेदके अनुसार दूधपर भिन्न परिणाम होता है । श्वेत गौके दूधका गुण धर्म भिन्न होगा, काले रंगकी गौका दूध भिन्न गुणधर्मवाला होगा, लाल गौका दूध भिन्नगुणधर्मवाला होगा, उसी प्रकार अन्यान्य रंगवाले गौओंके दूधके गुणधर्म भिन्न होंगे । एक बार वर्णचिकित्साका तत्त्व मानने पर यह परिणाम माननाही पड़ता है । इसी लिये इस सूक्तके मंत्र ३ में “रोहिणीः गावः” अर्थात् लाल गौओं के दूधका तथा अन्यान्य गोरसोंका उपयोग हृदय विकार और कामिला रोग की निवृत्ति के लिये करनेका विधान है । यह विधान मनन करनेसे बड़ा बोध प्रद प्रतीत होता है । और इसके मनन करनेसे अन्यान्य रोगों के लिये अन्यान्य गौओंके गोरसोंका उपयोग करनेका उपदेश भी प्राप्त होगा । वर्ण चिकित्सा का ही तत्त्व गोदुग्ध चिकित्सा के लिये वर्ता जायगा । दोनोंके बीच में तत्त्व एक ही है ।

### पथ्य ।

वर्ण चिकित्सा के साथ साथ गोरस सेवनका पथ्य रखनेसे अत्यधिक लाभ होना संभवनीय है । अर्थात् लालरंगके किरणों के परिधारण करने के दिन लाल गौके दूध का सेवन करना, इत्यादि प्रकार यह पथ्य समझना उचित है ।

इस प्रकार इस सूक्तका विचार करके पाठक बहुत लाभ प्राप्त कर सकते हैं ।



# श्वेतकुष्ठनाशन सूक्त ।

( २३ )

( ऋषिः - अथर्वा । देवता - ओषधिः )

नक्तं जानास्योषधे रामे कृष्णे असिक्वि च ।

इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ॥ १ ॥

किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत् ।

आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय ॥ २ ॥

आसितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव ।

आसिक्न्यस्योषधे निरितो नाशया पृषत् ॥ ३ ॥

अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत्त्वचि ॥

दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् ॥ ४ ॥

अर्थ— हे रामा कृष्णा और आसिक्वि औषधि ! तू (नक्तं जाता असि) रात्रीके समय उत्पन्न हुई है । हे (रजनि) रंग देनेवाली ! (यत् किलासं पलितं च) जो कुष्ठ और श्वेत कुष्ठ है (इदं रजय) उसको रंग कर दे ॥ १ ॥ (इतः) इसके शरीरसे (किलासं पलितं) कुष्ठ और श्वेत कुष्ठ तथा (पृषत्) धब्बे आदि सब (निः नाशय) नष्ट कर दे । (शुक्लानि परा पातय) श्वेतधब्बे दूर कर दे । (स्वः वर्णः) अपना रंग (त्वा) तुझे (आ-विशतां) प्राप्त हो ॥ २ ॥ (ते प्रलयनं) तेरा लयस्थान (आसितं) कृष्ण वर्ण है तथा (तव अवस्थानं) तेरा स्थान भी (आसितं) काला है, हे औषधि ! तू स्वयं (आसिक्नी असि) कालेरंगवाली है इसलिये (इतः) यहाँसे (पृषत्) धब्बे (निः नाशय) नष्ट कर दे ॥ ३ ॥ (दूष्या कृतस्य) दोषके कारण उत्पन्न हुए (अस्थिजस्य तनूजस्य च) हड्डीसे तथा शरीरसे उत्पन्न हुए (किलासस्य यत् त्वचि श्वेतं लक्ष्म) कुष्ठ का जो त्वचापर श्वेत चिन्ह है उसको (ब्रह्मणा अनीनशम्) इस ज्ञानसे मैंने नाश किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ—रामा कृष्णा आसिक्नी ये औषधियाँ हैं, इनका पोषण रात्रीके समय होता



है, इनमें रंग चढ़ाने का सामर्थ्य है । इसलिये इनके लेपन से श्वेतकुष्ठ दूर होता है ।  
 ॥ १ ॥ शरीर पर जो श्वेत कुष्ठके धब्बे होते हैं, उन श्वेत धब्बोंको इस औषधिके लेपन से दूर कर दे और अपने चमडीका असली रंग शरीरपर आने दें ॥ २ ॥ यह वनस्पति नष्ट होने पर भी काला रंग बनता है, उसका स्थान काले रंगका होता है और वनस्पति भी स्वयं काले रंगवाली है, इसी कारण यह वनस्पति श्वेत धब्बोंको दूर कर देती है ॥ ३ ॥ दुराचारके दोषोंसे उत्पन्न, हड्डीसे उत्पन्न, मांससे उत्पन्न हुए सब प्रकार के श्वेत कुष्ठके धब्बोंको इस ज्ञानसे दूर किया जाता है ॥ ४ ॥

### श्वेतकुष्ठ ।

शरीरका रंग गन्धमी सा होता है । गोरे कालेका भेद होनेपर भी चमडी का एक विलक्षण रंग होता है । जो रंग नष्ट होनेसे चमडीपर श्वेतसे धब्बे दिखाई देते हैं । उनका नाम ही श्वेत कुष्ठ होता है । यह श्वेत कुष्ठ शरीरपर होनेसे शरीरका सौंदर्य नष्ट होता है और सुडौल सुंदर मनुष्य भी कुरूपसा दिखाई देता है, इस लिये इस ( श्वेत लक्ष्म ) श्वेत चिन्ह-श्वेत कुष्ठ — दूर करनेका उपाय वेदने यहां बताया है ।

### निदान ।

वेद इस श्वेत कुष्ठके कारण इस सूक्तमें निम्न प्रकार देता है—

( १ ) दूषया कृतस्य — दोष युक्त कृत्य अर्थात् दोष पूर्ण आचरण । सदाचार न होनेसे अथवा आचार विषयक कोई दोष कुलमें रहनेसे यह कुष्ठ होता है । जिस प्रकार व्यक्ति दोषसे तथा कुलके दोषसे भी यह कुष्ठ होता है ।

( २ ) अस्थिजस्य — अस्थिगत दोषसे यह होता है ।

( ३ ) तनूजस्य — शारीरिक अर्थात् मांसके दोषसे होता है ।

( ४ ) त्वचि — चमडीके अंदर कुछ दोष होनेसे भी यह होता है ।

ये दोष सबके सब हों या इनमेंसे थोड़े हों यह कुष्ठ हो जाता है ।

### दो भेद और उनका उपाय ।

इस कुष्ठमें दो भेद होते हैं एक किलास और दूसरा पलित । पलित शब्दसे केवल श्वेतत्व का ही बोध होता है इस कारण यह श्वेत धब्बोंका वाचक स्पष्ट है । इसको छोड़कर दूसरे कुष्ठका नाम किलास प्रतीत होता है, जिसमें चमडी विरूपसी बनती है । सुयोग्य वैद्य इन शब्दोंका निश्चय करें ।

“ रामा, कृष्णा, असिकनी ” इन औषधियोंका इस कुष्ठ पर उपयोग होता है । ये



नाम निश्चयसे किन औषधियोंके बोधक हैं और किन औषधियोंका उपयोग इस कुष्ठके निवारण करनेके लिये हो सकता है, यह विषय केवल शब्द शास्त्रज्ञ नहीं कर सकता; न यह विषय केवल कोशोंकी सहायतासे हल होसकता है । इस विषयमें केवल सुयोग्य वैद्य ही निश्चित मत दे सकते हैं, तथा वे ही योग्य मार्गसे खोज कर सकते हैं । इस लिये इस लेख द्वारा वैद्योंको प्रेरणा देनाही यहां हमारा कार्य है । वेदमें बहुत विद्याएं होनेसे अनंक विद्याओंके पंडित विद्वान मिलने पर ही वेदकी खोज हो सकती है । अतः सुयोग्य वैद्योंको आयुर्वेद विषयक वेद भागकी खोज लगानी चाहिये और यह प्रत्यक्ष विषय होनेसे इन औषधादिका प्रयोग करके ही इसका सप्रयोग प्रतिपादन करना चाहिये । आशा है कि वैद्य और डाक्टर इस विषयमें योग्य सहायता देंगे ।

### रंगका घुसना ।

कई लोग समझते हैं कि ऊपर ही ऊपर वनस्पतिका रस आदि लगानेसे चमडीका ऊपरका रंग बदल जाता है, परंतु यह सत्य नहीं है । इस सूक्तके द्वितीय मंत्रमें—

आ त्वा स्वो विशतां वर्णः ।

“अपना रंग अंदर घुस जाय” यह मंत्र भाग बता रहा है कि इन औषधियोंका परिणाम चमडीके अंदर ही होना अभीष्ट है, न की केवल ऊपर ही ऊपर । ऊपर परिणाम हो, परंतु “विशतां” क्रिया “अंदर घुसने” का भाव बता रही है । इस लिये चमडीके अंदर रंग घुस जाता है और वहां वह स्थिर हो जाता है । यह मंत्र का कथन स्पष्ट है ।

### औषधियोंका पोषण ।

औषधियोंका पोषण दिनके समय होता है या रात्रीके समय, यह प्रश्न बड़े शास्त्रीय महत्त्व का है । औषधियोंका राजा सोम—चंद्र—है, इस लिये औषधियोंका पोषण और वर्धन रात्रीके समय होता है । यही बात “नक्तं जाता” शब्दोंसे इस सूक्त में बतायी है । रात्रीके समय बनी बढी या पुष्ट हुई औषधी होती है । प्रायः सभी औषधियोंके संबंध में यह बात सत्य है ऐसा हमारा ख्याल है । वनस्पति विद्या जाननेवाले लोग इस कथन का अधिक विचार करें ।

“सौभाग्य वर्धन” के ( १८ वें ) सूक्तमें सौंदर्य वर्धन का उपदेश दिया है, इस लिये उस कार्य के लिये श्वेत कुष्ठ यदि किसीको हो, तो उसको दूर करना आवश्यक ही है । अतः पाठक इस सूक्तको पूर्वोक्त १८ वें सूक्तके साथ पढ़ें ।

आशा है कि पाठक इस प्रकार पूर्वापर सूक्तोंका संबंध देख कर सूक्तार्थसे अधिक से अधिक लाभ उठावें ।



## कुष्ठ नाशन सूक्त ।

( २४ )

( ऋषिः— ब्रह्मा । देवता— आसुरी वनस्पतिः । )

सुपर्णो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ ।

तदासुरी युधा जिता रूपं चक्रे वनस्पतीन् ॥ १ ॥

आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषजमिदं किलासनाशनम् ।

अनीनशत्किलासं सरूपामकरत्त्वचम् ॥ २ ॥

सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता ।

सरूपकृत्त्वमोषधे सा सरूपमिदं कृधि ॥ ३ ॥

इयामा सरूपं करणी पृथिव्या अध्युद्धृता ।

इदम् पु प्र साधय पुना रूपाणि कल्पय ॥ ४ ॥

अर्थ— सुपर्ण ( प्रथमः जातः ) सबसे पहिले हुआ ( तस्य पित्तं ) उसका पित्त ( त्वं आसिथ ) तूने प्राप्त किया है । ( युधा जिता ) युद्धसे जीती हुई वह आसुरी ( वनस्पतीन् ) वनस्पतियोंको ( तत् रूपं चक्रे ) वह रूप करती रही ॥ १ ॥ ( प्रथमा आसुरी ) पहिली आसुरीने ( इदं किलास-भेषजं ) यह कुष्ठका औषध (चक्रे) बनाया । ( इदं ) यह ( किलास-नाशनं ) कुष्ठ रोगका नाश करनेवाला है । इसने ( किलासं ) कुष्ठका ( अनीनशत् ) नाश किया और ( त्वचं ) त्वचाको ( स—रूपां ) समान रंगवाली ( अकरत् ) बनादिया ॥ २ ॥ हे औषधे ! तेरी माता (सरूपा) समान रंगवाली है तथा तेरा पिता भी समान रंगवाला है । इस लिये ( त्वं स - रूप - कृत् ) तू भी समान रूप करनेवाली है ( सा ) वह तू ( इदं सरूपं ) इसको समान रंगरूपवाला



( कृधि ) कर ॥ ३ ॥ श्यामा नामक वनस्पति ( सरूप-करणी ) समान रूपरंग बनानेवाली है । यह ( पृथिव्याः अध्युद्धता ) पृथ्वीसे उखाड़ी गई है । ( इदं उ सु प्रसाधय ) यह कर्म ठीक प्रकार सिद्ध कर और ( पुनः रूपाणि कल्पय ) फिर पूर्ववत् रंगरूप बना दे ॥ ४ ॥

भावार्थ—सुपर्ण नाम सूर्य है उसकी किरणोंमें पित्त बढ़ानेकी शक्ति है । सूर्य किरणों द्वारा वह पित्त वनस्पतियोंमें संचित होता है । योग्य उपायोंसे स्वाधीन बनी हुई वनस्पतियाँ रूप रंग का सुधार करनेमें सहायक होती हैं ॥ १ ॥ आसुरी वनस्पति से कुष्ठ रोग के लिये उत्तम औषध बनता है । यह निश्चयसे कुष्ठ रोग दूर करती है और इससे शरीर की त्वचा समान रंग रूपवाली बनती है ॥ २ ॥ जिन पौधों के संयोगसे यह वनस्पति बनती है, वे पौधे ( अर्थात् इसके माता पिता रूपी पौधे भी ) शरीर का रंग सुधारने वाले हैं । इसलिये यह वनस्पति भी रंग का सुधार करनेमें समर्थ है ॥ ३ ॥ यह श्यामा वनस्पति शरीर की चमडीका रंग ठीक करनेवाली है । यह भूमिसे उखाड़ी हुई यह कार्य करती है । अतः इसके उपयोगसे शरीरका रंग सुधारा जाय ॥ ४ ॥

### वनस्पतिके माता पिता ।

इस सूक्त के तृतीय मंत्रमें वनस्पतिके मातापिताओं का वर्णन है अर्थात् दो वृक्षवनस्पतियोंके संयोगसे बननेवाली यह तीसरी वनस्पति है । दो वृक्षोंके कलम जोड़नेसे तीसरी वनस्पति विशेष गुणधर्म से युक्त बनती है, यह उद्यान शास्त्र जाननेवाले जानते ही हैं । कुष्ठनाशक श्यामा आसुरी वनस्पति इस प्रकार बनायी जाती है । शरीरके रंगका सुधार करनेवाली दो औषधियों के संयोगसे यह श्यामा बनती है । जो आधारका पौधा होता है उसका नाम माता और जिसकी शाखा उस पर चिपकायी या जोड़ी जाती है वह उस का पिता तथा उस संयोगसे जो नयी वनस्पति बनती है वह उक्त दोनोंका पुत्र है । पाठक इस उद्यान विद्याको इस मंत्रमें देखें । ( मंत्र ३ )

### सरूप-करण ।

शरीरके वास्तविक रंगके समान कुष्ठरोग के स्थान के चमडेका रंग बनाना “ सरूप-करण ” का तात्पर्य है । आसुरी श्यामा वनस्पति यह करती है इसी लिये कुष्ठरोगपर इसका उपयोग होता है । ( मं० २—३ )



## वनस्पतिपर विजय ।

“ युद्धसे जीती हुई आसुरी वनस्पती औषध बनाती है । ” यह प्रथम मंत्रका कथन विशेष मननीय है । वैद्यको हरएक दवापर इस प्रकार प्रभुत्व संपादन करना पड़ता है । औषधी उसके हाथमें आनेकी आवश्यकता है । वनस्पति के गुणधर्मोंसे पूर्ण परिचय, और उसका उपयोग करनेका उत्तम ज्ञान वैद्यको होना आवश्यक है । नहीं तो औषध सिद्ध नहीं कहा जा सकता । ( मं. १ )

## सूर्यका प्रभाव ।

सूर्य में नाना प्रकार के वीर्य हैं । वे वीर्य किरणों द्वारा वनस्पतियोंमें जाते हैं । वनस्पतिद्वारा वेही वीर्य प्राप्त होते हैं और रोग नाश अथवा बलवर्धन करते हैं । इस प्रकार यह सब सूर्यकाही प्रभाव है । ( मं. १ )

## सूर्यसे वीर्य प्राप्ति ।

सूर्यसे नाना प्रकारके वीर्य प्राप्त करनेकी यह सूचना बहुत ही मनन करने योग्य है ।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च । ऋग्वेद

“ सूर्य ही स्थावर जंगम का आत्मा है ” यह वेदका उपदेश भी यहां मनन करना चाहिये । जब सूर्यसे नाना प्रकारके वीर्य प्राप्त करके हम अधिक वीर्यवान हो जायेंगे तभी यह मंत्रभाग हमारे अनुभवमें आ सकता है ।

नंगे शरीर सूर्य किरणोंमें विचरनेसे और सूर्य किरणों द्वारा अपनी चमड़ी अच्छी प्रकार तपानेसे शरीर के अंदर सूर्यका जीवन संचारित होता है इसी प्रकार सूर्यसे तपा हुआ वायु प्राणायामसे अंदर लेनेके अभ्याससे क्षयरोग में भी बड़ा लाभ पहुंचता है । इसी प्रकार कई रीतियों से हम सूर्यसे वीर्य प्राप्त कर सकते हैं । पाठक स्वयं इसका अधिक विचार करेंगे तो उनको बहुत बोध प्राप्त हो सकता है ।

वैद्योंको उचित है, कि वे खोजसे श्यामा वनस्पति को प्राप्त करें और उसके योगसे कुष्ठ रोग दूर करें । तथा सूर्यसे अनेक वीर्य प्राप्त करनेके उपाय ढूंढकर निकाल दें और उनका उपयोग आरोग्य बढ़ानेमें करते रहें ।



# Employment for millions STUDENTS' OWN MAGAZINE

A Monthly English Teacher--Careers for Young men a speciality.

ANNUAL SUBSCRIPTION WITH SUPPLEMENTS, Rs. 3.

GET YOUR COPY FOR MARCH NUMBER RESERVED FOR 6 ANNAS STAMPS.

SAMPLE COPY POSITIVELY NO.

APPLY TO-

CAPITAL INDUSTRIAL BUREAU, RAM GALL, LAHORE.

## वैदिक उपदेश

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिए बारह उपदेश हैं। इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी। मूल्य ॥ ) आठ आने। डाकव्यय - ) एक आना।  
मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

देश देशान्तर का ज्ञान प्राप्त करने का  
अपूर्व साधन

विद्यार्थियों को परीक्षा पास करने का  
सुगम उपाय

## भूगोल

भूगोल विषयक हिन्दी का एकमात्र सचित्र मासिकपत्र। पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बिहार उड़ीसा, मध्य प्रान्त और बरार के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत।

“भूगोल” में ज्योतिष, यात्रा, व्यवसाय, पशु वनस्पति अनुसंधान आदि भूगोल के सभी अंगों पर उच्च कोटि के मौलिक लेख प्रकाशित होते हैं। ( पिछले दो वर्षों के लेखों और लेखकों की सूची मुफ्त मंगाकर स्वयं देख लीजिये )।

वार्षिक मूल्य ३ )

मैनेजर “ भूगोल ” मेरठ।

## योगमीमांसा

त्रैमासिक पत्र

संपादक— श्रीमान् कुबलयानंद जी  
महाराज।

कैवल्यधाम आश्रममें योग शास्त्र की खोज हो रही है जिस खोजका परिणाम आश्चर्यजनक सिद्धियोंमें हुआ है, उन आविष्कारोंका प्रकाशन इस त्रैमासिक द्वारा होगा। प्रत्येक अंकमें ८० पृष्ठ और १६ चित्र दिये जायेंगे।

वार्षिक चंदा ७ ) ; विदेशके लिये १२ शि०  
प्रत्येक अंक २ ) रु.

श्री. प्रबंधकर्ता-योगमीमांसा कार्यालय, कुंजवन;  
पोष्ट-लोणावला, ( जि. पुणे )



# छूत और अछूत ।

## [ प्रथम भाग ]

अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ! अत्यंत उपयोगी !!

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

- १ छूत अछूत के सामान्य कारण,
- २ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढ़ी,
- ३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
- ४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
- ५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
- ६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
- ७ गुणकमानुसार वर्ण व्यवस्था,
- ८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
- ९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
- १० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
- ११ वैदिक कालकी उदारता,
- १२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,
- १३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था ।

इस पुस्तकमें हर एक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है । यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है ।

पृष्ठ संख्या १८० मूल्य केवल १ रु. है डाकव्यय।)

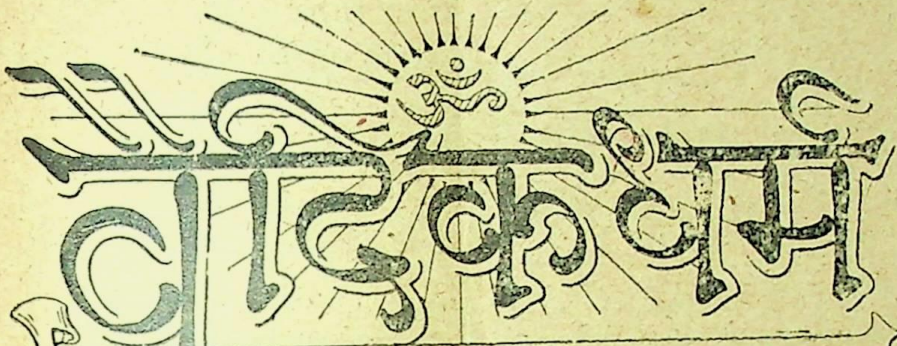
**अतिशीघ्र मंगवाइयें ।**

द्वितीय भाग छप रहा है अगले मासमें तैयार होगा ।



वर्ष ८ अंक ७ क्रमांक ९९

आषाढ संवत् १९८४ जूले सन १९२७



वैदिक - तत्त्वज्ञान - प्रचारक - सचित्र - मासिक - पत्र



छपकर तैयार है ।

## महाभारत की समालोचना

प्रथम भाग और द्वितीय  
भाग ।

प्रति भागका

मूल्य ॥) डाकव्यय=)

बी. पी. से ॥)=)

भंत्रा.— स्वाध्यायमंडल औंध

( जि. सातारा )

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ।

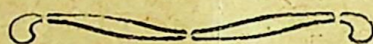
स्वाध्यायमंडल, औंध ( जि. सातारा )



## विषयसूची ।

१ शत्रुसे अभेद्य बनो	११३	७ अथर्व वेदका स्वाध्याय	१२९-१५२
२ धर्म किसे कहते हैं	११४	शीतज्वर दूरीकरण	१२९
३ प्राचीन भारतका स्वराज्य	११७	सुख प्राप्ति सूक्त	१३४
४ सपत्न	११९	विजयो स्त्रीका पराक्रम	१ ७
५ सोम	१२२	दुष्ट नाशन सूक्त	१४१
६ यजुर्वेद मुद्रण	१२३	राष्ट्र संवर्धन सूक्त	१४५

# आसनों का चित्रपट !



आसनों का व्यायाम लेनेसे सहस्रों मनुष्योंका स्वास्थ्य सुधर चुका है, इस लिये आसन व्यायामसे स्वास्थ्य लाभ होनेके विषयमें अब किसी को संदेह ही नहीं रहा है। अतः लोग सब आसनोंके एक ही कागज पर छपे हुए चित्रपट बहुत दिनोंसे मांग रहे थे। वैसे चित्रपट अब मुद्रित किये हैं। २०—३० इंच कागज पर सब आसन दिखाई दिये हैं। यह चित्रपट कमरे में दिवार पर लगाकर उसके चित्रोंको देख कर आसन करनेकी बहुत सुविधा अब हो गई है।

मूल्य केवल ८ ) तीन आने और डाक व्यय — ) एक आना है।

स्वाध्याय मंडल  
औध ( जि. सातारा )





वर्ष ८

अंक ७

क्रमांक ११



आषाढ

संवत् १९८४

जुलै

सन १९२७

## वैदिकधर्म

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ।

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

### शत्रुसे अभेद्य बनो !

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं  
बहुला पृथ्वानि । पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा  
मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥

क्र. १०/१०१।८

“ ( व्रजं ) गौ के स्थान अच्छे बनाओ । वही आपका ( नृपाणः ) पीने का स्थान है । बहुत बड़े बड़े ( वर्म ) कवच ( सीव्यध्वं ) सीओ । ( पुरः ) अपने नगर ऐसे सुदृढ़ ( आयसीः ) कीले जैसे बनाओ कि जो शत्रुओं द्वारा ( अधृष्टाः ) पराजित न हो सकें । तथा आपके ( चमसः ) वर्तन ( मा सुस्रोत् ) न चूर्ण उनको दृढ़ बनाओ । ”

( १ ) गौशालाएं उत्तम बनाओ, जिसमें जाकर आप ताजा दूध बारंवार पीते रहें और अपनी पुष्टि बढ़ावें, ( २ ) कवच उत्तम तैयार करो और अपने गांव भी उत्तम कीले जैसे शत्रुओंद्वारा अभेद्य बनाओ । अर्थात् अपनी ग्रामकी रक्षाके लिये सदा तैयार रहो । ( ३ ) अपने घरकी चीजें भी उसी प्रकार उत्तम अवस्थामें रखो । अर्थात् आपके शरीर, आपके घर और परिवार तथा आपके नगर बलवान तथा शत्रुसे अभेद्य हों ।



## धर्म किसे कहते हैं ?

### ‘ धर्म ’ शब्द का अर्थ ।

‘ धर्म ’ शब्द ‘ धृ ’ धातु से बना है । ‘ धृ ’ संस्कृत की धातु है । उसका अर्थ है ( १ ) जीना, जीवन धारण करना; ( २ ) रहना, होना; ( ३ ) धारण करना, आधार देना; ( ४ ) अधिकार करना, अपनाना; ( ५ ) उपयोग करना; ( ६ ) अभ्यास करना; ( ७ ) देखभाल करना; आदि । प्रसिद्ध वैय्याकरण पाणिनीजी अपने धातुपाठ में ‘ धृ ’ धातु के अर्थ इस प्रकार देते हैं: ‘ धृ ’ धारणे, पोषणे, अवस्थाने । संस्कृत भाषामें इस धातु का उपयोग ऊपर लिखे सात अर्थों में होता है । तब ‘ धर्म ’ शब्द का धात्वर्थ हुआ “ मनुष्य को इस संसार में ( १ ) सुचारु रीति से जीवन व्यतीत करने के लिए, ( २ ) इस पृथ्वी पर बस्ती कर अच्छी तरह रहने के लिए, ( ३ ) अपने जीवन का पोषण करने के लिए तथा दूसरे गरीब लोगों को सहायता पहुँचाने के लिए, ( ४ ) इस संसारपर अपना अधिकार जमाने के लिए, ( ५ ) संसार का अच्छी तरह उपयोग करने के लिए, ( ६ ) संसार के सच्चे नियमों को जान कर उनका पालन करने के लिए, ( ७ ) सारांश हर प्रकार से अपनी रक्षा होने के लिए जिन जिन नियमों का पालन करना हमें आवश्यक है उन्हें धर्म कहते हैं । ”

‘ धर्म ’ शब्द का यथार्थ अर्थ जान लेने के पश्चात् यह भी मालूम कर लेना आवश्यक है कि संस्कृत भाषामें किन किन भिन्न अर्थों में इस शब्द का उपयोग किया जाता है । “ ( १ ) नियम, ( २ ) प्रचलित नियम, ( ३ ) नीति-नियम, सद्गुण, सीधा व्यवहार, ( ४ ) कर्तव्य, प्राप्त कर्तव्य, ( ५ ) न्याय्य तथा पक्षपात रहित वर्तव्य, ( ६ ) सदाचार, पवित्रता,

( ७ ) स्वभाव, शील, ( ८ ) विशेष गुण, ( ९ ) स्वार्थत्याग, आत्मसमर्पण, ( १० ) ईश्वर-भक्ति ” आदि अर्थों में धर्म शब्द का उपयोग होता है । पहले दिए हुए धात्वर्थ का मिलान इन अर्थों से करने पर दोनों का सम्बन्ध पाठकों पर प्रकट हो जावेगा । यथार्थ अर्थ में जो धातु संदिग्ध थी वह रूढ़ अर्थ में स्पष्टरूप से दिख पड़ती है ।

उपरोक्त दोनों अर्थों को मिला देने से मालूम होगा कि “ इस संसार में अपना जीवन आनन्दमय बनाने के लिए और सब प्रकारसे उन्नति करने के लिए मनुष्य को न्याय्य, निःपक्षपाती और सीधा आचरण रखना चाहिए और जनता के हित के लिए आत्मसमर्पण करने को तत्पर रहना चाहिए । इसी का नाम धर्म है । इस अर्थ को जान करही श्रीकणाद मुनिने धर्म का लक्षण इस प्रकार बतलाया है:—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ।

वैशेषिक दर्शन १ । २

अर्थात् “ जिससे ‘ अभ्युदय ’ तथा ‘ निःश्रेयस ’ की सिद्धि होती है उसे धर्म कहते हैं । ” अभ्युदय का अर्थ है संसार में प्राप्त होनेवाली उन्नति । सामाजिक, राष्ट्रीय, औद्योगिक आदि बातों में जितनी उन्नति करना सम्भव है, वह सब प्रकार की भौतिक उन्नति ‘ अभ्युदय ’ शब्द से बतलाई जाती है । ‘ निःश्रेयस ’ शब्द से आत्मिक उन्नति का बोध होता है । सारांश श्री कणाद मुनि की धर्म की परिभाषा से यह मालूम होता है कि आधिभौतिक सुख प्राप्त करने के मार्ग और साथ ही आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त करने के साधन दोनों धर्म में सम्मिलित हैं । इस का सरल अर्थ यही कि यदि मनुष्य सच्चे-धर्म नियमों का पालन करे, यदि देश के लोग इस सत्य धर्म के अनुसार आचरण रखें तो वह मनुष्य या वह देश



आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति निश्चयसे कर सकेगा। धर्म का पालन करनेवाला राष्ट्र या धर्म का पालन करनेवाला मनुष्य ऐहिक और पारमार्थिक उन्नति के मार्ग से कभी भी दूर नहीं रह सकता।

## धर्म के आभास का परिणाम।

हो सकता है कि मनुष्य अपनी समझ के अनुसार किसी विशेष प्रकार का आचरण रखता है और उसी को वेसमज से 'धर्म' कहता है। परंतु उसका यह आचरण वास्तव में मानव धर्म के विपरीत है। यद्यपि उसे स्वयं इस बात की सुध नहीं है। ऐसी दशा में उस मनुष्यकी उन्नति नहीं अवनति ही होगी। क्या इसका दोष धर्म के मत्थे मढ़ा जा सकता है? कदापि नहीं। यह दोष उस मनुष्य के अज्ञान का है। इसीलिए अत्यन्त आवश्यक है कि धर्म पथ पर चलनेवाले तथा धर्म की निन्दा करनेवाले निश्चय कर लें कि सच्चा धर्म क्या है?

यह बात उदाहरण से अधिक स्पष्ट होगी। भारत-वर्ष के हिन्दु-मुसलमान भाई धर्म के नामपर एक दुसरे का गला घोटने पर उतारू हैं। वास्तव में यदि दोनों में सच्चे धर्म के भाव भरे हैं तो दोनों में एकता होनी चाहिये। दोनों में से एक में भी यदि सच्चा धर्म उज्ज्वल रूप से प्रकाशित होवेगा तो यह अनर्थ कदापि न हो सकेगा। किन्तु दोनों भाई धर्म के आभास को प्रधानता देते हैं और सच्चे मानव धर्मको गौण मानते हैं। परिणाम यह होता है कि जिस समय इन दोनों को मिलकर एक हो जाना चाहिए ठीक उसी समय ये एक दुसरेका सिर धुनने को तैयार हैं। कैसा आश्चर्य है? और यह काम करते समय वे अपने को दुसरे से अधिक धार्मिक समझते हैं। यही बात अन्य धार्मिक रीति रस्मों में भी पाई जाती है। धर्म से उन्नति अवश्य ही होती है किन्तु सच्चे मानव धर्म से; केवल धर्म के आभास से नहीं।

## सच्चे धर्म का महत्त्व।

इसी से पाठक जान सकते हैं कि सच्चे धर्म से मनुष्य ऐहिक तथा पारमार्थिक उन्नति प्राप्त कर सकता है। अर्थात् जिससे ऐहिक तथा पारमार्थिक

उन्नति हो उसे ही धर्म कहते हैं। धर्म की महत्ता ऐसी भारी है कि उपनिषत्कारोंने कहा है:—

- ( १ ) धर्मात्परं नास्ति । बृ. उ. १।४।१४
- ( २ ) यो वै स धर्मः सत्यमेव तत् । बृ. उ. १।४।१४
- ( ३ ) धर्मः सर्वेषां मधु । बृ. उ. २।५।११
- ( ४ ) धर्मान्न प्रमदितव्यम् । तैत्तिरीय उ. १।११।१
- ( ५ ) धर्मो विश्वस्य जगत् प्रतिष्ठा ।

महानारायण उ. २।१।६

“( १ ) धर्म से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। ( २ ) सत्य ही धर्म है। ( ३ ) धर्म ही सबसे मधुर है। ( ४ ) धर्म कभी भी छोड़ना नहीं चाहिए। ( ५ ) धर्म ही सम्पूर्ण जगत् का आधार है। ”

सच्चे धर्म का श्रेष्ठत्व इस प्रकार है। सच्चे धर्म का सभी को आधार है। सभी की उन्नति सच्चे धर्म से होती है। इस लिए उपरोक्त वर्णन यथार्थ में सत्य है। जो मनुष्य या देश सच्चे धर्म से चलेगा उसे उपरोक्त बातों की सत्यता प्रतीत होगी और वह कहेगा कि—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।

मनुस्मृति ८-१।५

अर्थात् 'धर्म का घात करने से अपना हो घात होता है और धर्म की रक्षा करने से अपनी रक्षा होती है।' यह यथार्थ में सत्य है।

## व्यापक धर्म।

हम कह सकते हैं कि धर्म सर्वव्यापी है। प्रत्येक पदार्थ में उसका खास धर्म रहता है। जिस प्रकार उस पदार्थ में धर्म की उन्नति या अवनति होती है उसी प्रकार उस पदार्थ की कीमत ( महत्त्व ) अधिक या कम होती है। यह बात प्रत्येक मनुष्य जानता है।

कोई मनुष्य बाजार में सौंठ लेने जावे तो वह उसी सौंठ को अधिक दाम देकर भी खरीदेगा जिसमें सौंठ का धर्म अधिक होगा। किन्तु जिस में सौंठ के गुण ही नहीं उस वस्तु को सफ्त मिलने पर भी वह न लेवेगा। यही बात प्रत्येक वस्तु की है। प्रत्येक मनुष्य दूसरी वस्तु के सम्बन्ध में



विचार करते समय उस वस्तु के धर्म का विचार करता है। परन्तु वह यह बात कभी भी नहीं सोचता कि अपना धर्म अपने पास है या नहीं; होना चाहिए या नहीं, उस धर्मका-मानव धर्म का-अपने में उत्कर्ष हो रहा है या अधःपात ! अपनी खुद की परीक्षा के समय वह इन सब बातों को भूल जाता है। किन्तु दूसरे की परीक्षा करते समय वह बहुत अच्छा परीक्षक बन जाता है !!!

सौंठ में सौंठ का धर्म है। अग्नि में अग्नि का धर्म है। और भी अन्यान्य वस्तुओं में अपने अपने धर्म हैं। जिस प्रमाण में उनके धर्म उज्ज्वल रहते हैं उसी प्रमाण में उनकी योग्यता अधिक रहती है। इसी प्रकार मनुष्य में 'मानव धर्म' है, इसी लिए वह मनुष्य कहलाता है। जिस प्रमाण में उसमें 'मानव धर्म' की मात्रा अधिक उज्ज्वल होगी, उसी प्रमाण में वह मनुष्य उच्च समझा जावेगा। आज तक जो जो महापुरुष हो गए हैं और अब भी जो लोग वंदनीय समझे जाते हैं उनमें दूसरों की अपेक्षा मानव धर्म का तेज अधिक प्रमाण में पाया जाता है। यह बात सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य इसे जानता है।

यहाँ हमें दूसरे पदार्थों के धर्म का विचार करना नहीं है; किन्तु 'मानव धर्म' का ही विचार करना है। जिस प्रकार दूसरे पदार्थों में उनके विशेष धर्म रहते हैं, उसी प्रकार मनुष्य में भी मानव धर्म है। यह धर्म मनुष्य के ही समान प्राचीन है। इसी लिए गौड पदाचार्य करते हैं-

अजातोऽमृतो धर्मः। गौ. पा. ४।६

'धर्म उत्पन्न नहीं हुआ अर्थात् बनाया हुआ नहीं है, वह खुद ही बना है और वह सनातन, शाश्वत अ-मृत रूप है।' मनुष्य को चाहिए कि वह इस

स्वयं-भू मानव-धर्म को ही माने। यह स्वयं-भू मानव-धर्म यद्यपि मनुष्य के समान प्राचीन है और यद्यपि वह प्रत्येक मनुष्य के साथ ही आता है तथापि कुछ विशेष नियमों का पालन करने से वह अधिक उज्ज्वल हो सकता है और उसके विपरीत आचरण करने से वह मलिन भी हो सकता है। इसी लिए धर्म-शास्त्र बने हैं।

वृक्ष, वनस्पतियों के धर्म विशेष प्रकार के खात देने से तथा विशेष प्रकारसे उनकी फिकर करने से बढ़ते हैं और न करने से घटते हैं। यही हाल मनुष्य के धर्म का है। इसी लिए इस शरीर को 'क्षेत्र' (खेत) और इस खेत में काम करनेवाले आत्मा को 'क्षेत्रज्ञ (खेती का जानकार किसान)' कहते हैं। शरीर रूपी खेत में कष्ट कर उसे उपजाऊ बनाना ही उसका काम है। तात्पर्य यह कि यदि मनुष्य योग्य नियमों के अनुसार चले तो उस में धर्म का विकास होता है और अयोग्य रीतिसे चले तो उसका मानव धर्म मलिन हो जाता है। यह नियम जानने से प्रत्येक मनुष्य को मालूम होगा कि प्रयत्न से मानव धर्म का विकास करना चाहिए।

इस लेखमें (१) धर्म के माने मनुष्य की आधि-भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति करा देनेवाले नियम और आचरण, (२) धर्म अपनी उन्नति का विरोध नहीं करता बल्कि उसमें सहायता पहुंचाता है, साथ ही वह पारमार्थिक उन्नति भी करा देता है, (३) धर्म सब जगत का आधार है, (४) धर्म के अनुसार चलने से मनुष्य का कल्याण अवश्यही होता है, (५) मानव धर्म की उन्नतिसे अपनी उन्नति होती है आदि बातें स्पष्टतया बतलाई गई हैं।

आगामी लेखमें हमें विचार करना है कि रुढ़ धर्म का रूप किस प्रकार है।





## प्राचीन भारत का स्वराज्य ।

बहुतेरे इतिहासवेत्ताओं का मत है कि प्रजातन्त्र शासन पद्धति जारी करने का पहला मान ग्रीक लोगों को है। किन्तु प्रजातन्त्र की कल्पना तथा स्थापना जिस प्रकार ग्रीस के प्राचीन इतिहास में मिलती है उसी तरह भारत के इतिहास में भी मिलती है। इतिहास देवता के स्वप्न में भी ग्रीस न आया होगा इतने पहले अर्थात् वेदकाल में यह प्रजातन्त्र शासनका विचार भारत में प्रचलित था।

१ विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु । क्र. १० । १७३ । १

२ ध्रुवो राजा विशामयम् । क्र. १० । १७३ । ४

३ त्वा ई विशो न राजानं वृणतां । क्र. १०।१२४।८

४ त्वां विशो वृणतां राज्याय । अथ. ४ । ४ । २ ”

१ सब प्रजाएं तेरी ही इच्छा करें। २ प्रजाओंका संतोष बढ़ानेवाला राजाही स्थिर है। ३ तुम्हेंही राजा के स्थान के लिये प्रजाएं चुनें। ४ सब प्रजाएं तुम्हारा स्वीकार करें।

इन वाक्यों से स्पष्ट होता है कि अति प्राचीन कालमें राजा लोकनियुक्त वा कमसे कम लोक-सम्मत रहता था।

रामायण में लिखा है कि श्रीराम के राज-तिलक के समय दशरथ राजाने कहा था—

यदिदं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमन्त्रितम् ।

भवन्तो मेऽनुमन्यन्तां कथं वा करवाण्यहम् ॥

इसी तरह सुग्रीव ने वालि से कहा था—

अभिषिक्तो न कामेन तन्मे क्षन्तुं त्वमर्हसि ।

इन वाक्यों से स्पष्ट है कि रामायण कालमें राजा लोकनियुक्त रहता होगा। महाभारत में भी ऐसे ही वचन मिलते हैं। इन से विदित होता है कि प्राचीन काल में राजा लोक नियुक्त रहता था। इसीको वर्तमान राजनैतिक भाषा में कहना हो तो यों कहना होगा कि वह लोकनियुक्त अध्यक्ष रहता था।

“संगच्छध्वम् । संवदध्वम् । सं वो मनांसि जानताम् । समानो मन्त्रः । समितिः समानी । समानं मनः सहचित्तमेषां समानी व आकूतिः । समाना हृदयानि वः । ”

इन ऋग्वेद के वचनों से

“नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वोनमो नमः॥”

यजुर्वेद

“सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने ”

अथर्व वेद

उपरोक्त वेद वचनों के आधार पर राव साहब पावगी तथा डॉ. प्रमथ नाथ बानर्जी महाशयों ने यह सिद्ध किया है कि वेदकाल से शुरूकर अर्वाचीन कालतक लोक-सभाएँ थीं और उनके द्वारा राजालोग राजकाज करते थे। उन दिनों में वर्तमान प्रजातन्त्र के सदृश शासन होगा ही यह मैं नहीं कहता। किन्तु इतना अवश्य ही सिद्ध है कि उस समय अनियमित राजसत्ता के साथही नियमित राजसत्ता, अल्पसंख्य जनसत्ता तथा लोकसत्ता का अस्तित्व था। इसको पुष्टि देनेके लिए वेदवचन पुराणग्रन्थ, शिलालेख, परदेश के यात्रियों की यात्रा के वर्णन आदि आधार मिलते हैं।

सर चार्ल्स मेटकाफ साहब ने १८३२ में पार्लिया-मेन्ट के सन्मुख एक रिपोर्ट पेश की थी। उसमें उन्होंने कबूल किया था कि हमारी पंचायतें ‘छोटे छोटे प्रजातन्त्र राज्य’ (Little Republics) थे। सब लोग मानते हैं कि ये ‘छोटे प्रजातन्त्र राज्य’ बहुत प्राचीन कालसे जारी हैं। किन्तु इसमें कुछ भी विशेषता नहीं है। अन्य देशों में भी ये संस्थाएँ जारी थीं। प्रश्न यह है कि क्या हिन्दु-स्थान इन छोटे स्वसत्तावाले राज्यों से आगे बढ़ा था? हिन्दुस्थान इसके आगे गया इस बातको



सिद्ध करने के लिए हम प्रो. विहज् डेविड्स साहब के ग्रन्थ का ही आधार बताते हैं। 'बौद्ध कालीन हिन्दुस्थान, नामक ग्रन्थ में वे कहते हैं, "बौद्ध काल के ग्रन्थों से सिद्ध होता है कि उस समय राजसत्ता के साथ ही पूर्ण वा बह्वंशी स्वतन्त्र प्रजातन्त्र राज्य थे। यह बात उत्तर काल के जैन ग्रन्थों से निःसंदेह सिद्ध होती है।" जैन धर्म के चलानेवाले श्री महावीरजी स्वयं प्रजातन्त्र राज में उत्पन्न हुए थे। महाभारत से विदित होता है कि महाभारत काल में वा उसके पहले ही से वृष्णी नामकी एक जाति का अस्तित्व था। इसके विषयमें भगवद्गीता में कहा है: "वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि।" इसका शासन अल्प संख्य जनता के आधीन था और उस राज्य के सूत्रसंचालकों में से एक भगवान् श्रीकृष्ण थे। इससे आगे बढ़ जब हम अर्वाचीन कालकी ओर आते हैं तब मंदासर के कुमार गुप्त तथा बंधुवर्मन् के शिलालेखों से विदित होता है कि छठवीं शताब्दि के करीब मालव जाति के लोग प्रजातन्त्र राज्य का अनुभव कर रहे थे। जबाब-देही की शासनप्रणालि में इंग्लैण्ड ने यह प्रथा शुरू की है कि किसी भी बात का दोषी राजा नहीं है, उसका मन्त्रि-मण्डल है। मद्रासक्षस नाटक के आधार पर हम कह सकते हैं कि यही प्रथा आर्य चाणक्यने भी शुरू की थी।

किन्तु इन सब उदाहरणों से भी अच्छा उदाहरण मलबारके नायर लोगों की शासन पद्धति में पाया जाता है। यहां की शासन प्रणाली ठीक वैसी ही जबाबदेही की है जैसी कि इंग्लैण्ड में है। इनके राजप्रबन्ध का अन्तिम जोड़ ग्राम पंचायत है। इसे वे लोग "तारा" कहते थे। ये 'ताराएँ' अन्य स्थानों की ग्रामपंचायतोंके सदृश पूर्ण स्वतन्त्र रहती थीं। अनेक ताराएँ मिलकर एक परगना होता है उसे वे 'नाड' कहते थे। इन 'नाडों' को लोक-नियुक्त प्रतिनिधियों की 'कोट्टम्' नाम की सभा रहती थी जो दूरदूर पार्लियामेंट के सदृश थी। तेल्लीचेरी में ईस्ट-इण्डिया कम्पनीकी एक कोठी थी। इस कोठी की डायरी में ता० २८ मई १७४६ का हाल लिखते समय कहा है, "ये नायर लोग कालि-

कत के लोगों के नेता हैं। वे अपना काम पार्लियामेंट के समान चलाते हैं। हर एक बात में वे राज्यकर्ताओं की आज्ञा नहीं मानते। यदि मन्त्रि-मण्डल कोई गलत काम करे तो वे लोग उसे सजा देते हैं।" मद्रास सिविल सर्विस के मि. लोगेन साहबने लिखा है, 'उपरोक्त पार्लियामेंट नाडा के प्रतिनिधियों की कोट्टम् नामक सभा है। जब कभी सब लोगों को मिलकर कोई बातें करनी होती हैं तब कोट्टम् उन्हें निश्चित करती है। यह पार्लियामेंट के सदृश कोट्टम् केवल मलबार ही में नहीं थी किन्तु कनारा में भी सन १८३२। १८३३ तक थी। उसने अंग्रेजों को बहुत कष्ट भी दिया था। मलबार की कोट्टम् १८ मार्च १७९२ तक, जब कि उस प्रदेश को अंग्रेजों ने अपने अधिकार में कर लिया, विद्यमान थी। अति प्राचीन कालसे अठारवीं शताब्दि के अन्त तक नायरोकी 'तारा' तथा 'नाड' संस्थाओं द्वारा अत्याचार तथा जादती से देश की रक्षा होती रही है। इसी के कारण मलयाल के अहातेमें समृद्धि थी और कालिकत पूर्वपश्चिमका व्यापार का बड़ा केन्द्र बन गया था। ( देखो मलबार गॅझेट्रीअर-प्रथम खण्ड। ) इन नायरो के शासन में केवल राज-सत्ता ही मर्यादित नहीं थी, राजा का राजत्व काल भी निश्चित रहता था। पहले राजत्व काल की अवधि १२ वर्ष की रहती थी। तदनंतर 'महा मखम्, यज्ञ कर नया राजा चुना जाता था। यही अतिप्राचीन काल का "राजसूय यज्ञ" समझना उचित है।

इस वर्णन से आप लोगों को विदित हुआ होगा कि नायरोकी शासनप्रणाली बहुत कुछ जबाब देही शासन-पद्धति थी। राजा लोक-नियुक्त, उसकी अवधि १२ वर्ष की और उसका अधिकार मर्यादित ये बातें आजके इंग्लैण्ड के राजा के अधिकार से भी मर्यादित हैं। इंग्लैण्ड के नाम मात्र के राजा के मर्यादित अधिकार की अपेक्षा नायरो की शासन-पद्धति में विशेषता यह थी कि उनमें निश्चित-अवधि और लोक-निर्वाचन था। अर्थात् उनकी शासन-पद्धति 'लोक-निर्वाचित-निश्चित-अवधि-पूर्ण-मर्यादित, राजसत्ता थी। इस प्रकार इस पद्धति



में राजा की सत्ता नष्ट प्राय थी। मन्त्रि-मण्डलका भी यही हाल था। गैरवाजिब तथा जन-मन-विरुद्ध बातें करनेपर वे पदच्युत किये जाते या दण्डित होते थे। लोकनिर्वाचित प्रतिनिधि जब लोक-मत विरुद्ध शासन करते हैं तब इंग्लैण्ड में यह मन्त्रि-मण्डल बरखास्त हो जाता है। नायरोंका शासन क्या इसी प्रकार न था ? इंग्लैण्ड की वर्तमान राजसत्ता से भी अधिक नियंत्रित राजसत्ता और इंग्लैण्ड के मन्त्रिमण्डलके सदृश मन्त्रियोंकी जनताके प्रति जवाब देही नायरों में प्रचलित थी। ये बातें अंग्रेज अधिकारियों ने ही लिख रखी हैं। तब कौन कह सकता है कि नायरोंको उत्तरदायी शासन मालूम न था ? हम

नहीं कहते कि नायरों का शासन ठीक वैसा ही था जैसा कि वर्तमान समय में लोग चाहते हैं। किन्तु तात्त्विक दृष्टिसे यह मानना होगा कि वे उस पद्धति के सिद्धान्तों से परिचित थे। हमें केवल इतनाही सिद्ध करना है कि भारतवासी उत्तर-दायी शासन तथा प्रजातन्त्र शासन के भिन्न भिन्न प्रकारों से पूर्ण-तया अपरिचित न थे। इसी लिए प्रजातन्त्र शासन स्थापित करने का श्रेय केवल पाश्चात्य लोगों को नहीं दिया जा सकता। क्योंकि वैदिक काल से इस उक्त समयतक इस देशमें प्रजातन्त्र राज्य काही महत्त्व माना गया है।

=====

## सपत्नी

( अर्थात् संकल्पशक्ति की सपत्नी । )

( ले० — उदयमानु )

ब्रह्माण्ड के पतित — पावन दिव्य लोक में महाराजा चित्त-देव राज्य कर रहे थे। बड़े बड़े ज्ञानी, मुनिजन जिस पद के लिये तरसते थे, भगवान् इन्द्र जिस पद की प्राप्ति के लिए कठोर तपश्चर्या में रत थे, उस सार्वभौम, सम्राट् पद पर दिव्य गुणों से युक्त श्रीमान् चित्तदेव विराजमान थे। जिस प्रकार समुद्र में बड़े बड़े नद अनिच्छित ही आकर सम्मिलित हो जाते हैं, जैसे विद्या के समीप विनय सहज ही आजाती है, इसी प्रकार दिव्य दिव्य गुण दिव्य दिव्य शक्तियां महाराजा को प्राप्त थीं।

आपकी सती-साध्वी धर्मपत्नी का नाम कल्पना, देवी था। जैसे एक कृषक स्वतंत्र होते हुए भी तहसीलदार को अपना प्रभु समझकर उसका कृपा पात्र बनने में अपना कल्याण समझता है, ठीक इसी प्रकार संसार की प्रत्येक विजेय ( जिस पर जय प्राप्त करना है ) कल्पना देवी का कृपा पात्र बनने में अपना सौभाग्य समझता था।

दोनों ( पति-पत्नी ) बड़े प्रेम से व्यवहार करते मानों स्वयं प्रणय ने ही इस दम्पति का वेष लिया हो, जनता इनके व्यवहार पर मुग्ध थीं। यहां तक कि आवश्यकता पड़ने पर अपना सर्वस्व महाराजा के लिए अर्पण करने को उद्यत हो जाती।

इस प्रकार आमोद प्रमोद में आनन्द-सुख में, खेल-तमाशे में कई दिन व्यतीत हो गये। एकाएक महाराजाके चित्तमें इन विषयों से ग्लानि होने लगी, यहां तक कि उनकी अवस्था अब प्रथम से बिल्कुल भिन्न हो गई। इसका कारण सर्व साधारण को तो मालूम नहीं हुआ परन्तु राज्य के जो धुरन्धर और प्रगाढ़ विद्वान् थे वे समझ गये। उनकी कल्पना देवी अनुपम सुन्दर होते हुए भी शारीरिक स्वास्थ्य में अद्वितीय थी, परन्तु दानों पर इनके शून्य थे, इस कारण वे चलने फिरने में असमर्थ थीं। महाराजाने बहुत कुछ प्रयत्न किया कि किसी प्रकार कल्पना देवी के पैर ठीक हो जावें परन्तु असफल हुए। जिस प्रकार



गाड़ी का एक पैरया टूट जाने पर गाड़ी निरुपयोगी हो जाती है इसी प्रकार महाराजा का गृहस्थाश्रम निष्फल होने लगा । इनकी दूसरी धर्मपत्नी संकल्पादेवी थीं; अपितु वे आंख से अंधी थीं ।

( २ )

एक दिन महाराज अपने विश्राम-गृह में विराजमान थे । चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था । नगर में अशान्ति फैल रही थी । नगर में वर्षा न होने के कारण लोग महान् दुःखी थे मानों किसी पक्षियों के वन में अधिक का पदार्पण हुआ हो ।

महाराज को विवेक नामक मंत्री ने वर्षा निमित्त महायज्ञ करने का परामर्श दिया । इन दोनों धर्मपत्नियों ने प्रजा की सेवा करने निमित्त यज्ञ का कार्य अपने उपर लिया । चन्दन की लकड़ी, समिधा इत्यादिक एकत्र करने के लिए दोनों पत्नियों ने वन को गमन किया ।

यद्यपि दोनों का ध्येय एक ही महा-यज्ञ था, परन्तु सपत्निक द्वेष से दोनों साथ साथ रह कर कार्य न कर सकीं । जिस प्रकार छूत और अछूत ये दोनोंही अपना एक उद्देश अपनी उन्नति यह रखते हुए भी थोड़े से स्वार्थ के लिए अपने राष्ट्रीय महायज्ञ का विध्वंस करने का अदम्य साहस रखते हैं, इसी प्रकार दोनों धर्मपत्नियां यह चाहती थी कि यज्ञ का कार्य मैं अकेली ही कर सकती हूं, मैं ही अकेली यज्ञ भाजन बन जाऊं परन्तु एक लंगड़ी थी और दूसरी अन्धी होने के कारण कुछ भी कार्य न कर सकीं ।

( ३ )

उक्त दोनों देवियां पृथक् पृथक् वन में विचरती रहीं । घोर परिश्रम किया । चिन्ता में अव्यस्त रहीं । न खाने की सुध न भोग विलास की । चाहे इन देवियों ने आजन्म में धरातलपर पैर न रखा हो परन्तु आज सपत्निक द्वेष ने इन्हें बनकी कठोर भूमिपर चलने का अदम्य साहस, उत्कट कर्म वृत्ति उत्पन्न कर दी । दोनों बार बार परिश्रम करती थीं परन्तु एक अन्धी होने के कारण और दूसरी पैरों के शून्य होने के कारण असफल हुई ।

अन्त में दोनों देवियां वन के दुःखों को न सहन

कर सकीं । व्यथित होकर रोने लगी । कभी कभी वृक्षों के समीप जाती और कहने लगती, ए. वृक्षों ? तुम्हें हमने लगाया और बड़ा किया है, हमने तुम्हारी सेवा की है, आज हमारे ऊपर आपत्ति है तुम हमारी सहायता करो । रोती थीं, तडफती थीं और दोनों निर्जन वन में व्याकुल थीं ।

इनकी मूर्खता पर वृक्ष हंसते । इनकी कुंठित बुद्धि पर, इनके सपत्निक द्वेषपर वृक्ष, वायु के साथ अट्टहास करते, इनकी हंसी करते, इनकी बुराई करते मानों बार बार अपनी खड खडाहट द्वारा इन दोनों को सम्मिलित होकर कार्य करने का उपदेश दे रहे हों । चन्द्रमा आकाश मार्ग में कहीं भी नहीं दिखाई देता, मानों इनकी मूर्खता पर सदा के लिए अस्त हो गया । नदियों का मनमोहक कल कल निनाद अब स्वप्नवत हो गया मानों अपनी स्वामिनियों के दुःखपर अविरल अश्रुधारा समुद्र में बहाकर सदा के लिए शांत हो गई । अलिंगणों की मधुर गुंजाहट बन्द हो गई मानों वे भी इनके दुःखसे दुःखित होगये हों । पृथ्वीपर जहां देखो वहां ओस की बूंदें दिखाई देती मानों तारांगण रो रो कर अश्रुपात करते हों परन्तु इन्हें कुछ भी नहीं सूझता था ।

वायु चंद्रमा की किरणों का सितार बजाकर एकता का पाठ पढ़ाती, पक्षी गणों का झुंड, आकाश वृक्ष, पृथ्वी सभी एकता का, मिलकर काम करने का उपदेश करते थे परन्तु हाय ! सपत्निकद्वेष तेरी बलहारी है । तेरी ही कृपा द्वारा हम पिट रहे हैं, मारे जा रहे हैं, हमारी मा, बहिनोंका सतीत्व हमारी आंखों के सन्मुख विधर्मियों द्वारा नाश हो रहा है, हम मरणोन्मुख हो रहे हैं, अब मरने को कुछ घड़ी ही बाकी है तथापि हे द्वेष ? तू हमें नहीं छोड़ता । धन्य है !!

( ४ )

प्रजा का यज्ञ समाप्त हो गया था, वर्षा भी हो गई थी । सब लोग उक्त देवियों का हाल जानने को उत्सुक थे । जंगल में, कंदरामें, आकाश में, पाताल में, भूलोक द्यूलोक में सब जगह दूत भेजे गये ।

अन्त में एक निर्जन वन में दोनों देवियां करुणा



मयी वाणी से हाय देव ! हाय देव !! चिल्लाती हुई  
मृत्यु की घड़ी गिनती दिखाई दी ।

चित्त महाराज को अपनी स्त्रियों की इस परीक्षा  
में अनवतीर्ण होने के कारण बड़ा क्रोध और तरस  
आगई मानों किसी महाबली की शरण में कोई  
आया हो । दोनों को भोजन दिया उनको मरने से  
बचाया और यह स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य  
मंत्र दिया “ हे देवियों! तुम्हारी असफलताका  
कारण तुम्हारा आपसका द्वेष है । यदि अंधी के  
ऊपर लंगड़ी बैठ कर काम करती तो अल्प समय  
में सफलता प्राप्त हो जाती..... दोनों संयुक्त होकर  
काम करतीं । ”

दोनों रानीयां प्रसन्न हुई । इसी उपदेश को  
शिरोधार्य बनाकर सदा के लिए एक दूसरे की  
सहायक होती । अपने कर्तव्य को निभाती हुई  
दिव्य जीवन व्यतीत करती रहीं ।

यही हाल है हमारे संकल्प और कल्पना का; यही  
हाल है, छूत और अछूत का और यही हाल है आर्य

सनातनका एतदर्थ यही हाल है हमारे जीवन का ।

अपंग कल्पनामें विचार-शक्ति है, परंतु कार्य करने  
की शक्ति नहीं । अंधे संकल्प में कर्म करने की शक्ति  
है पर विचार - शक्ति नहीं है । आप एक संकल्प  
कीजिए और विचार उस संकल्प से भिन्न या विरुद्ध  
कीजिए तो परिणाम यह होगा कि उसी क्षण आप  
का अन्धा संकल्प गिर पड़ेगा, निरस हो जायगा,  
संकल्प की सारी ताकत नष्ट भ्रष्ट हो जायगी । इस  
कारण यदि विजय प्राप्त करना है तो संकल्प और  
कल्पना की एकता कीजिए । कल्पना के विरुद्ध  
हो जाने से प्रचंड संकल्प भी क्षणभर में नाश हो  
जायगा । इसी लिए मुनीश्वर पातञ्जली ने कहा है  
कि कल्पना और संकल्प का योग करो, उनमें  
अनुकूलता स्थापित करो और कभी अपने संकल्प  
के विरुद्ध कल्पना उदय हो जावे तो उस उदित  
कल्पना के प्रतिपक्ष की भावना अर्थात् निश्चित  
संकल्प के अनुकूल विचार द्वारा उस वितर्क का  
नाश करो । यही संकल्प शक्ति का चंद्रोदय है ।

“ मेमनः शिव संकल्पमस्तु । ”

## यजुर्वेद [ मूल मात्र ]

इस समय पूर्वार्ध बीस अध्याय छप चुके हैं । आगे छपाई चल  
रही है । जो ग्राहक दो रु. म. आ. द्वारा भेजकर अपना नाम  
ग्राहक श्रेणीमें लिखेंगे, उनको सौ पृष्ठोंका मूल्य आठ आने  
होगा । अन्यो के लिये सौ पृष्ठोंका मूल्य बारह आनेके हिसाबसे  
होगा । डाकव्यय दोनों अवस्थामें अलग होगा ।





( ले०-श्री० प्रो० रुलिया रामजी कश्यप, एम्, एस्. सी. )

अग्नि आदि शब्दों की न्यायी वेद में सोम शब्द भी अनेक अर्थों में आता है। जैसे कहीं पर यह परमात्मा का वाचक है, कहीं पर चन्द्रमा का, कहीं पर मनुष्य विशेष का और कहीं पर औषध विशेष का। इनके उदाहरण वेदमें स्थान स्थान पर मिलते हैं यथा—

१. सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो  
जनिता पृथिव्याः । जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य  
जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥

साम० उ० ३-१-१९-१ ॥

अर्थात् अग्नि, सूर्य, इन्द्र, विष्णु, पृथिवी, द्यौ तथा मतियों (बुद्धियों अथवा विचारों) का उत्पादक सोम सबको शुद्ध पवित्र करने का सदैव यत्न कर रहा है ॥

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो  
मृगाणाम् । श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः  
पवित्रमत्येति रेभन् ॥

साम० उ० ३. १. १९-२ ॥

अर्थात् जिस प्रकार सब देवों में ब्रह्मा सर्वोपरि है उसी प्रकार सोम भी सब देवों में सर्वोपरि देव है। इसी प्रकार कवियों में पदवीः की न्यायी वह सर्वोत्तम कवि है। इसी प्रकार विप्रों में ऋषिवत्, मृगों में महिष वत्, गृध्रों में श्येनवत्, वनियों में स्वधिति वत्, सोम सर्वोत्तम विप्र, मृग, गृध्र और वनि है, यह सोम सब को पवित्र करनेवाला है और अपनी महिमा में अन्य सब को उल्लास जाता है। इस

की महिमा उन सब की महिमा से अधिक महान है और यह शब्द करता ही रहता है क्योंकि वेद इसी का वचन है और विजुली का द, द, द, शब्द भी इसी का शब्द है ॥ )

इन दोनों मंत्रों से पता चलता है कि यहां उस सोम का वर्णन है जो अग्नि से विष्णु पर्यन्त सब देवों का पिता है जो पृथिवी से द्यौ पर्यन्त सब लोकों का उत्पादक है जो सब को भक्ति, मनन शक्ति देता है। इस के अतिरिक्त सोम वह है जो देवों में ब्रह्मा समान, कवियों में पदवीः समान, विप्रों में ऋषि समान, मृगों में महिष समान, गृध्रों में श्येनसमान और वनियों में स्वधिति समान श्रेष्ठ है। इस के विना सोम सब का पावक और सब से महान् महिमावाला है। अतः इन विशेषणों से युक्त सोम केवल परमात्मा के विना अन्य कौन हो सकता है।

अतः इन मन्त्रों में सोम शब्द परमात्मा का वाचक है। अर्थात् यहां पर सोम का अर्थ परमात्मा है ॥

२. दिवि सोमो अधिश्रितः ॥ १ ॥

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।

अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥

ऋग्वेद १०। ८५ ॥

अर्थात् सोम द्यौ लोक में आश्रित है उसी के द्वारा सूर्य की किरणें बलवान होती हैं, और ( इन से उत्पन्न ओषधियों के साथ महिमावाली ) पृथिवी भी उस सोम के द्वारा ही महान् है, बड़ी है ( क्योंकि सोम छोटा है और पृथिवी बड़ी है )



और यह सोम इन नक्षत्रों तारागण के समीप विद्यमान है ॥

यहां पर साफ है कि सोम नाम चन्द्रमा का ही है क्योंकि चन्द्रमा ही आसमान में तारागण के बीच विद्यमान होता हुआ सूर्य की किरणों को शीतल तथा पृष्ठ करता हुआ पृथिवी पर ओषधियां उगाकर पृथिवी की महिमा बढ़ाता हुआ उसे मही बना रहा है और उस से छोटा भी है ।

अतः यहां पर सोम शब्द चन्द्रमा का वाचक है, अर्थात् यहां सोम का अर्थ चन्द्रमा है ॥

३. अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति ।

तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वध्वम् ॥ २ ॥

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणाहवम् ।

प्रति सक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥ १ ॥

ऋग्० १ । ९३॥

अर्थात् हे अग्नि और सोम ! जो आज तुम्हारे इस वचन को सेवे अर्थात् तुम्हारे वचन को सुन तदनुकूल आचरण करे, उसे तुम गौ घोड़े आदि की बहुतायत से होनेवाली पुष्टि तथा उत्तम बल, वीर्य और इन सब से होने वाला सुख दो ॥ १ ॥ हे अग्नि और सोम ! आप सुखादि की वर्षा करने वाले हो मेरे इस उत्तम ( ब्राह्म ) श्रोतव्य तथा ( दातव्य ) वक्तव्य वचन को ध्यान दे कर ( उत्तम प्रकार से ) सुनो । सूक्त, उत्तम वचन, वेद सूक्त सुनने की इच्छा रखो तथा ( इन सूक्तों में चित्त ) देनेवाले के लिये सुख ( साधक ) होवो ॥ २ ॥

इन दोनों मन्त्रों में सोम से प्रार्थना है कि वह शब्दों को सुने, सूक्तों को सुनना चाहे, सुनानेवाले को सुख देवे और उस के विषय में यह भी बताया है कि वह बोलता है और अपने वचनानुकूल चलनेवाले को बल, वीर्य, धन, पशु, आदि देकर सुखी तथा बलवान करता है । अतः यहां सोम कोई बोलने, सुनने और वेदसूक्तों को चाहनेवाला चेतन है । यदि कोई कहे कि ऐसा सोम तो परमात्मा है तो हम कहेंगे कि यहां ऐसे दो का वर्णन है । अग्नि और सोम दोनों के ही यही गुण वर्णित हैं अतः क्यों-कि परमात्मा दो नहीं हो सकते अतः- यहां सोम का

वाच्य परमात्मा नहीं । परमात्मा से भिन्न बोलने सुनने वाला चेतन मनुष्य से भिन्न अन्य जानवर आदि भी हैं परन्तु उनकी वाणी व्यक्त नहीं होती, हां! तोते की तो कुछ व्यक्त भी होती है पर उसको बोध नहीं, समझ नहीं और वह विचारा सूक्तों की कामना इस कारण कर ही नहीं सकता । अतः इन मन्त्रों में सोम किन्हीं जानवरों का वाचक नहीं, इति । शेष रहे मनुष्यही चेतन बोलने, सुनने, समझनेवाले हैं, पर उन में भी वेद के विद्यार्थी ही वेद सूक्तों की कामना कर सकते हैं ।

अतः यहां वेदका विद्यार्थी मनुष्य विशेष ही सोम शब्द का वाच्यार्थ है ॥

४. हिरण्ययी नौरचरद्विरण्यवन्धना दिवि ।

तत्रामृतस्य चक्षुषं ततः कुष्ठो अजायत.....॥७॥

यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः । तत्रामृतस्य चक्षुषं ततः कुष्ठो अजायत् । स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति । तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ८ ॥

अथर्व० १९।३९॥

अर्थात् विजुलीसे चलनेवाली नौका आकाशमार्ग से जाती हुई जहां जा कर रुक जाती है वहां हिमवान (हिमालय=बरफानी) पर्वतों के शिखरों पर हिमवान के शिरपर, सर्वोच्च शिखर पर " अमृत " नामक ओषधि का दर्शन होता है, उसी स्थान से कुष्ठ ओषधि की उत्पत्ति है । वह कुष्ठ सब रोगों की एक ही दवा है, परन्तु वह सोम के पास ही ठहरती, अर्थात् कुष्ठ और सोम दोनों पास पास ही उगती हैं । वह कुष्ठ सब रोगों और सब दुःखदौ की नाश करनेवाली है, इसी स्थान में सर्वोत्तम दिव्य ओषधि पहाड़ी पीपलू भी उगता है, क्यों कि अथर्व वेद के उस " कुष्ठ सूक्त " के छठे मन्त्र--

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।

तत्रामृतस्य चक्षुषं ततः कुष्ठो अजायत ।

स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।

तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥

अथर्व० १९। ३९। १९॥



का अर्थ है कि “इस ( अर्थात् मैदान ) से तीसरे अर्थात् पर्वत शिखर ( क्योंकि मैदान पहिला, पहाड़ दूसरा और पर्वत शिखर तीसरा है ) पर ( द्यौ में अर्थात् ) सूर्य के निरन्तर प्रकाश में ( जहां सूर्य का प्रकाश मैदान तथा पहाड़ की अपेक्षा बहुत अधिक समय तक निरन्तर रहता है ) दिव्य गुणों का निवासस्थान, दिव्य अश्वत्थ “पहाड़ी पीपल ” उगता है, वहीं पर “ अमृत ” भी दिखाई पड़ता है, वहीं पर “ कुष्ठ ” पैदा होता है और उसी के पास “ सोम ” उगता है। वही कुष्ठ सब व्याधियों तथा पीड़ाओं की अकेली ही नाश करने वाली है, अतः विश्वभेषज है ॥ ”

इस प्रकार इस कुष्ठ सूक्त में पहाड़ी पीपल, अमृत, कुष्ठ और सोम के उत्पत्तिस्थान का वर्णन है। यह सब यहां ओषधि विशेषों के नाम हैं, अतः इस ओषधि सूक्त के देवता कुष्ठ ओषधि का साथी सोम भी ओषधि विशेष ही होना युक्तियुक्त है। साथ ही यह भी विचारणीय है कि पर्वत शिखर पर उगने वाला सोम परमात्मा, चन्द्र वा पुरुष विशेष तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि परमात्मा जन्मता ही नहीं, चन्द्र पर्वत में नहीं, वरञ्च आसमान में होता है और पुरुष विशेष पर्वत पर उगा नहीं करते अतः इस प्रसंग में वर्णित सोम शब्द ओषधि विशेष का ही वाचक है, अतः यहां सोम शब्द का अर्थ एक ओषधि विशेष है जो हिमवान् पर्वतों के उच्चतम शिखरों पर पहाड़ी पीपल, अमृत और कुष्ठ के पास ही वैसी ही भूमि में उगता है।

अतः यहां सोम का अर्थ ओषधि विशेष सोम ही है ॥

५. स्वादिष्टया मदिष्टया पवस्व सोम धारया ।  
इन्द्राय पातवे सुतः ॥

ऋग्वे० ९ । १ । १॥

अर्थात् हे सोम ! तू अपनी अत्यन्त स्वादु और सारे शरीर में जोश चढ़ाने वाली धार के रूप में निचुड़कर प्राप्त हो ताकि निचुड़े हुए तुझे ऐश्वर्य शाली धनाढ्य बलवान् इन्द्र पी सके ॥ इस से सिद्ध

है कि यहां पर सोम किसी स्वादु मीठे बहुत महंगे पेय पदार्थ का नाम है। साधारण बोल चाल में मीठे स्वादु पेय को रस कहते हैं। अतः यहां पर सोम नाम किसी रस का है और ऊपर सोम नाम एक ओषधि विशेष का वर्णन किया गया था, अतः उन मन्त्रों के द्वारा इस मन्त्र को पढ़ने से पता चलता है कि इस मन्त्र का सोम रस, उसी सोम ओषधि-विशेष का स्वरस होगा ॥ अतः यहां सोम का अर्थ सोम ओषधिका स्वरस है ॥

इस प्रकार हमने सोम शब्द के पांच अर्थ परमात्मा, वेदका विद्यार्थी मनुष्य, चन्द्रमा, ओषधि सोम, तथा ओषधि सोम का स्वरस, किये ॥

अब क्योंकि हम वेदोक्त ओषधियों का वर्णन करने में गत ३, ४, मास से लगे हुए हैं इस कारण यहां भी हम अब सोम के पहिले तीन अर्थों को छोड़ कर केवल अन्त के दो अर्थों का ही इकट्ठा वर्णन करें ताकि, पाठकों को संसार प्रसिद्ध सोम ओषधि तथा उस के स्वरस की वेदोक्त तथा आर्ष महत्ताका अनुभव हो और जिससे कि स्यात् कोई भाग्यवान् जिसे कश्मीर आदि देशों में भ्रमण करते हुए यह प्राप्त हो जावे, वह इस से लाभ उठा सके।

वेद में कई प्रकार की सोम ओषधि वर्णित है यथा—

१. उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान् ।

उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥

अथर्व० ८ । १ । २ ॥

अर्थात् इस (मरणासन्न पुरुष) को इस का कल्याण करने के लिये भग, अंशुमान सोम, मरुत देव, इन्द्र तथा अग्नि सब ने उत्तम रीत्या ग्रहण किया है ॥ यहां पर अंशुमान सोम का वर्णन है जिसे मरणासन्न पुरुष को देने से वह जीवित रह जाता है, मरता नहीं। यह इस से पहिले पिछले मन्त्रों के मिलान से पता चलता है ॥

इस प्रकार सोम की एक जाति का नाम अंशुमान सोम है ॥



२. प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे  
ववृत्तानाः । सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभी-  
दको जागृविर्मह्यमच्छान् ॥

ऋग्० १० । ३४ । १ ॥

अर्थात् जुए ( द्यूत ) की नरदें मुझे मौजवान्  
सोमके भोजन की न्यायीं आनन्द देती हैं ॥

अतः यहां सोम की दूसरी जाति मौजवान् सोम  
वर्णित है ॥

३. यो अप्सु चन्द्रमा इव सोमश्चमूषु ददृशे ।  
पिवेदस्य त्वमीशिषे ॥

ऋग्० ८ । ८२ । ८ ॥

अर्थात् हे इन्द्र! तेरी सेनाओं के बीचमें ही उनके  
पास तेरे पानार्थ वह सोम विशेष भी विद्यमान है  
जो जलमें चन्द्रमाकी न्यायीं दिखलाई पड़ता है, वह  
सोम तेरा ही अपना है, उसे तू अवश्य पी ॥ अर्थात्  
चन्द्रमा सोम लड़ाई में जाती हुई फौजके  
साथ भी रखना चाहिये ताकि इन्द्र वहां उसे पी  
सके ॥

अतः यहां सोम की तीसरी जाति चन्द्रमा सोम  
ओषधि ( रस ) वर्णित है जिसका वर्णन निम्न  
मन्त्र में अतीव सुन्दर तथा मनोहर है यथा-

नवो नवो भवति जायमानोऽङ्गांकेतुरुषसामेत्य-  
ग्रम् । भागं देवेभ्यो विदधात्यायन्प्र चन्द्रमा-  
स्तिरते दीर्घमायुः ॥

ऋग्० १० । ८५ । १९ ॥

अर्थात् प्रतिदिन उत्पन्न होता हुआ सोम ओषधि  
का पत्ता नया नया नवीन ही होता है । दिनोंका यह  
झंडा है, क्योंकि एक पत्ता प्रतिदिन फूटने के कारण  
दिनों जितनी संख्या में ही पत्ते होते हैं; अतः पत्तों  
के द्वारा दिन गिने जाने हैं, उषा होनेसे तनिक  
ही पूर्व नया पत्ता फूटता है । निकलता हुआ,  
उगकर यह विद्वानों को उन का भाग देता है और  
उनकी आयु को यह चन्द्रमा सोम ओषधि बहुत ही

लम्बी बढ़ा देती है ॥ अतः इस में चन्द्रमा सोमका  
बड़ा ही सुन्दर वर्णन है कि प्रति दिन उषा होने  
से पूर्व इस के एक नवीन पत्र फूट निकलता है  
जिसे खाकर विद्वान अपनी आयुको बहुत ही बढ़ा  
लेते हैं ॥

४. आपतये त्वा गृह्णामि तन्नूप्रे शाक्वराय  
ओजिष्ठाय ॥

यजुः० ५ । ५ ॥

अर्थात् "तुझे शरीर को न गिरने देनेवाले अर्थात्  
आयुरक्षक अत्यन्त ओजवर्द्धक शाक्वर ( सोम )  
के लिये ग्रहण करता हूं ॥ "

अतः यहां पर सोमकी चौथी जाति शाक्वर  
सोम का वर्णन है क्योंकि शरीर को न गिरने देने  
वाला अत्यन्त ओजवर्द्धक आदि गुण युक्त शाक्वर  
विना शाक्वर सोम के कौन हो सकता है ॥

५. ६. ७. " एष ते गायत्र भाग इति मे सोमाय  
ब्रूतादेष ते त्रेष्टुभ भाग इति मे सोमाय ब्रूता-  
देष ते जागत भाग इति मे सोमाय ब्रूता-  
च्छन्दो नामाना साम्राज्यङ्गच्छेति मे सोमाय  
ब्रूतात् । आस्माकोऽसि शुक्रस्ते गृह्यो विचित-  
स्त्वा विचिन्वन्तु ॥ "

यजुः ४ । २४ ॥

अर्थात् मेरे सोम को कहे कि यह तेरा गायत्र  
भाग है मेरे सोमको कहो कि यह तेरा त्रेष्टुभ भाग है ।  
मेरे सोम को कहो कि यह तेरा जागत भाग है  
और फिर मेरे सोम को यह भी कहो कि तू छन्द-  
नामों का सम्राट् हो, अर्थात् छन्दों के नामों को धार  
कर प्रसिद्ध हो ॥

अतः यहां पर सोमकी पांचवी, छठी, सातवीं  
जाति गायत्र, त्रेष्टुभ और जागत सोम का तो वर्णन  
स्फुट ही है परन्तु छन्द नामों का सम्राट् हो कहने  
से अन्त, पाङ्क्त, शाक्वर, रैवत, अग्निष्टोम  
और त्रिपादगायत्र सोम जातियां भी वर्णित हो  
गई ॥



८ पुरुदस्मो विषुरूप इन्दुरन्तर्महिमानमानञ्ज-  
धोरः । एकपदीन्दिपदीन्त्रिपदीञ्चतुष्पदीम-  
ष्टापदीम्भवाननुप्रथन्ता स्वाहा ॥

यजु० ८ । ३० ॥

अर्थात् बहुत शक्तियों का दाता, अत्यन्त सुन्दर  
रूप दायक ( इन्दु ) सोमने अन्दर बहुत महिमा  
उत्पन्न कर दी है । बुद्धि को रमणीय करके यह  
दुनिया में एकपदी, द्विपदी, त्रिपदी, चतुष्पदी, अष्टा-  
पदी वाणी का विस्तार करता है ॥ जिस सोमके  
पानसे वेदवाणी का इतना विस्तार होता है, सम्भव  
है उसे ही त्रिपदा गायत्र्यायुक्त नाम दिया जाता हो,  
क्यों कि त्रिपदा गायत्रि, गायत्रियों में सबसे लम्बी  
है और गायत्रि ही छन्दों में श्रेष्ठ है, अतः त्रिपदा  
गायत्रिही सर्वश्रेष्ठ छन्द है । अतः सम्भव है कि  
इसी कारण इस सोम विशेष की त्रिपदागायत्र्या-  
युक्त सोम नाम दिया जाता हो । परन्तु यह बात  
सर्वथा संदिग्ध है क्योंकि इस वेद मंत्र में स्पष्ट रीत्या  
त्रिपदा गायत्र्या युक्त सोमका वर्णन नहीं और वेदोंमें  
अन्यत्र कहीं पर भी इस का नाम मात्र भी कथन  
नहीं ॥

इस प्रकार वेद में स्पष्टतया केवल अंशुमान,  
मौजवान, चन्द्रमा, गायत्र्य, त्रैष्टुभ, जागत इन छः  
सोम ओषधियों का ही वर्णन है और किञ्चित् स्पष्ट  
रीत्या सातवीं शाक्वर सोम ओषधि का वर्णन  
है, परन्तु संदिग्धतया त्रिपदागायत्र्या युक्तसोमका  
भी वर्णन है ॥

और अनुमान गम्य वर्णन तो पाँक का भी माना  
जा सकता है ।

यह सोम जातियों का वर्णन वेद से किया गया  
अब इन सब का सुश्रुतोक्त सांज्ञा लक्षण तथा इन  
में से प्रत्येक का नाम और विशेष लक्षण तथा इन  
का उत्पत्ति स्थान तथा प्रयोग प्रकार आदि विस्तृत  
वृत्त पाठकों के लाभार्थ सुश्रुतसे उद्धृत किया  
जाता है यथा-

सर्वेषामेव सोमाणां पञ्चाणि दशपञ्च च ।

तानि शुक्ले च कृष्णे च जायन्ते निपतन्ति च ॥ २० ॥

एकैकं जायते पत्रं सोमस्याहरहस्तदा ।

शुक्लस्य पौर्णमास्यान्तु भवेत्पञ्चदशच्छदाः ॥ २१ ॥

शीर्यते पत्रमेकैकं दिवसे दिवसे पुनः ।

कृष्णपक्षक्षयेचापि लता भवति केवला ॥ २२ ॥

सुश्रुत० चिकि० अ० २९ ॥

अर्थात् सब सोमों के पन्द्रह पत्ते होते हैं वे सब  
शुक्लपक्ष में फटते हैं और कृष्णपक्ष में गिर पड़ते  
हैं ॥ २० ॥ सोम के एक एक पत्ता नित्य प्रति उप-  
जता है तब शुक्लपक्ष की पौर्णमासी के दिन पन्द्रह  
पत्ते हो जाते हैं ॥ २१ ॥ और वैसेही कृष्णपक्ष में नित्य  
प्रति एक एक पत्ता गिरता है, तब कृष्णपक्ष की  
आमावस के दिन अकेली लता अर्थात् बेल रह जाती  
है ( क्योंकि पत्ते सब ही झड़ चुके होते हैं ) ॥ २२ ॥

सर्व एव तु विज्ञेयाः सोमाः पञ्चदशच्छदाः ।

क्षीरकन्दलतावन्तः पत्रैर्नानाविधैः स्मृताः ॥ २६ ॥

सुश्रुत० चिकि० अ० २९ ॥

अर्थात् सब प्रकारके सोमों के पत्ते पंद्रह ही होते  
हैं और सभी सोमों में दूध, कन्द, लता, और नाना  
प्रकारके पत्ते होते हैं ॥

इस प्रकार सुश्रुतानुसार सब प्रकार के सोमों के  
सांज्ञे लक्षण ये हैं-

१ बेल, २ कन्द, ३ दूध और ४ चान्द के साथ  
घटने बढने वाले १ से १५ और १५ से १ तथा  
आमावस को ० पत्ते ॥

इन सामान्य लक्षणों से युक्त सोम विशेष लक्षणों  
की भिन्नता के कारण २४ जातियों में विभक्त है, उन  
चौबीस के नाम ये हैं-

अंशुमानमुञ्जवांश्चैव चन्द्रमा रजतप्रभः ।

दूर्वासोमः कनीयांश्च श्वेताक्ष कनकप्रभः ॥ ३ ॥

प्रतानवांस्तालवृन्तः करवीरौश्वानपि ।

स्वयम्प्रमो महासोमो यश्चापि गरुडाहृतः ॥ ४ ॥

गायत्र्यश्त्रैष्टुभः पाङ्क्तो जागतः शाङ्करस्तथा ।

अग्निष्टोमो रैवतश्च, यथोक्त इति संज्ञितः ॥ ५ ॥

गायत्र्या त्रिपदायुक्ता यश्चोडुपतिरुच्यते ॥



अर्थात् १ अंशुमान्, २ मुंजवान्, ३ चन्द्रमा, ४ रजतप्रभ, ५ दूर्वासोम, ६ कनीयान्, ७ श्वेताक्ष, ८ कनकप्रभ, ९ प्रतानवान्, १० तालवृन्त, ११ करवीर, १२ अंशवान्, १३ स्वयंप्रभ, १४ महासोम, १५ गरुडाहृत, १६ गायत्र्य, १७ त्रैष्टुभ, १८ पांक्त, १९ जागत, २० शाकवर, २१ अग्निष्टोम, २२ रैवत, २३ यथोक्त संज्ञक, २४ त्रिपदागायत्रियुक्त उडुपति ॥

इन चौबीस के भिन्न भिन्न विशेष लक्षण यह हैं—  
अंशुमानाज्यगन्धस्तु कन्दवान् रजतप्रभः ।

कदल्याकारकन्दस्तु मुञ्जवाल्शुनच्छदः ।

चन्द्रमाः कनकाभासो जले चरति सर्वदा ॥ २३ ॥

गरुडाहृतनामा च श्वेताक्षश्चापि पाण्डुरी ।

सर्पनिर्मोकसदृशौ तौ वृक्षप्रावलम्बिनौ ॥ २४ ॥

तथान्यैर्मण्डलैश्चित्रैश्चित्रिता इव भान्ति ते ॥ २५ ॥

अर्थात् अंशुमान सोम घृतके समान गन्ध वाला, कन्दवाला और चाँदि के समान कान्ति वाला होता है ॥ मुंजवान सोम के कंद की आकृति केले जैसी होती है और पत्ते लहसुन के पत्तों जैसे होते हैं ॥ चन्द्रमा सोम की कान्ति सोने के समान होती है और वह सदा ही जल में विचरता है ॥ २३ ॥ गरुडाहृत सोम और श्वेताक्ष सोम दोनों सफेद रंग, साँप की कांचुली जैसे और वृक्ष के तने से लटकते हुए होते हैं ॥ २४ ॥ अन्य प्रकार के चित्रित मण्डलों से चित्रित की तरह अन्य सोम प्रकाशित रहते हैं ॥ २५ ॥

इस प्रकार सोमों के भिन्न भिन्न विशेष लक्षण वर्णित हुए, अब उन के विविध उत्पत्ति स्थानों का वर्णन करते हैं; यथा—

हिमवत्यर्बुदे सहो महेन्द्रमलये तथा ।

श्रीपर्वते देवगिरौ गिरौ देवसहो तथा ॥ २७ ॥

पारिपाते च विन्ध्ये च देवसुन्दे हृदे तथा ।

उत्तरेण वितस्तायाः प्रवृद्धा ये महीधराः ।

पञ्च तेषामधो मध्ये सिन्धुनामा महानदः ॥ २८ ॥

हठवत् प्लवते तत्र चन्द्रमाः सोमसत्तमः ।

तस्योद्देशेषु वाप्यस्ति मुञ्जवानंशुमानपि ॥ २९ ॥

काश्मीरेषु सरो दिव्यं नाम्ना क्षुद्रकमानसम् ॥ ३० ॥

गायत्र्यस्त्रैष्टुभः पाङ्क्तो जागतः शाकवरस्तथा ।  
अत्र सन्त्यपरे चापि सोमाः सोमसमप्रभाः ॥ ३१ ॥

अर्थात् हिमवान्, अर्बुद, सह्य, महेन्द्रमलय, श्री-पर्वत, देवगिरि, देवसह, पारिपात्र और विन्ध्य पर्वत में तथा देवसुन्द हृद् ( तालाव ) में, तथा वितस्ता नदी के उत्तर में जो बड़े बड़े पांच पर्वत हैं उनके नीचे ( दामन में ) तथा उन सब के बीच में सिन्धु नाम वाला महानद ( बड़ा दरया ) है, उसी स्थान-पर सिन्धु में सब सोमों में उत्तम चन्द्रमा सोम मानों अपने हठ से ही वहाँ तैर रहा है और उसी के आसपास मुंजवान सोम और अंशुमान सोम भी वहीं पर हैं ॥ २७-२९ काश्मीर में क्षुद्रक मानस नाम का एक दिव्य सुन्दर ( तालाव ) सरोवर है जिस में गायत्र्य, त्रैष्टुभ, पांक्त, जागत, शाकवर सोम और अन्य भी चन्द्रमा की न्यायी चमकने वाले सोम पाये जाते हैं ॥ ३०-३१ ॥

इस प्रकार विविध सोमों के भिन्न भिन्न उत्पत्ति स्थान भी वर्णित हुए । सभी जातियों के सोमों की प्रयोग विधि भी लिखी जा सकती है । परन्तु इस के पीने से जहां मनुष्य मृत्यु जरा से मुक्त होता है वहीं पर वह विधि इतनी कष्ट प्रद है और उस में इतने बचाव ( Precautions ) रखने की आवश्यकता है कि हम उसे भत्र में प्रकाशित कर प्रसिद्ध करना भयावह समझते हैं, तो भी हम इतना अवश्य लिखते हैं कि सोम विशेषका कन्द लेकर उसमें धातु विशेष की सुईसे छेद करके उसका रस धातुविशेष के पात्र में टपकाकर उसकी एक अञ्जुलिमात्र पीने से मनुष्य को उलटी वमन और जुलाव आकर शरीर शुद्धि हो, पश्चात् मांस, त्वक् आदि के झड़ने के पीछे नया मांस, त्वक आकर तथा पुराने दन्त, केश, नख झड़कर नये दन्त, केश, नख आकर मनुष्य अत्यन्त सुन्दर, बलवान्, मेधावी, यौगिक सिद्धिसिद्ध बन दश हजार साल तक शरीर को नयी युवावस्थामें रख सकता है, यह ऋषियों का कथन है ॥ इति सोम प्रकरण समाप्त हुआ ॥ १४ ॥



# यजुर्वेदका मुद्रण ।

यजुर्वेदके मुद्रणके विषयमें गत अंकमें थोडासा लिखा गया था। अब कुछ शेष बातों का विचार यहां करना है। जर्मन पुस्तक में इतना विशेष प्रयत्न होने पर भी कुछ अशुद्धियां रहीं हैं और जिन लोगोंने इस जर्मन पुस्तक को अपने आधार के लिये पूर्ण रूपसे लिया उन्होंने भी वही गलतियां की हैं। अजमेर मुद्रित पुस्तकोंमें वही जर्मन पुस्तक की अशुद्धियां जैसी की वैसी रही हैं। अध्याय ११ मंत्र ८० में अजमेर मुद्रित पुस्तक में ' भस्मसा कुरु ' पाठ ही छपा है, यहां तक यह अशुद्धि पहुंची है कि यजुर्वेद के स्वामि भाष्य में भी यही पाठ छपा है और अर्थ लिखते हुए भी " जलाकर भस्म कीजिये " ऐसा ही अर्थ किया है। हम समझते हैं कि यह पंडितों की ही भूल है।

जर्मन मुद्रित यजुर्वेद का पुस्तक संहिता पाठ के लिये नहीं है, इसलिये उन्होंने प्रत्येक कंडिका अलग अलग छपी है, इस कारण उसके स्वरोंमें संहिताकी अपेक्षा कुछ भेद भी हुआ है। यह बात न देखते हुए ही अजमेर मुद्रित यजुर्वेदमें कई मंत्र कंडिका रूपमें छापे हैं और कई संहिता रूपमें छापे हैं। कोई एक क्रम रखना आवश्यक था, परंतु वैसा नहीं किया गया है। उदाहरण के लिये अध्याय १९ मंत्र ९ " तेजोऽसि तेजो मयि धेहि " यह मंत्र देखिये। अजमेर मुद्रित पुस्तकमें इस मंत्रके छः टुकड़े करके प्रत्येक टुकड़ा चरण रेखा से विभक्त करके छपा है। इस कारण संधि स्वर आदि अशुद्ध छपे हैं। यजुर्वेद स्वामि भाष्यमें यह मंत्र ठीक छपा है। इस प्रकार कई बातें विचारणीय हैं।

इन सब बातोंका विचार करके हम इस पुस्तक का मुद्रण कर रहे हैं और जहां तक हो सके वहां तक निर्दोष ग्रंथ मुद्रित करनेका यत्न कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त एक विशेष योजना हमने की है वह यह है कि भारत वर्ष में जहां जहां यजुर्वेदको कंठ रखनेवाले पूर्ण विद्वान पंडित हैं उनके पास हमारे यहां का छपा हुआ पुस्तक भेज दिया जायगा और उन को प्रार्थना की जायगी कि इस पुस्तक को जहां तक बन सके शुद्ध करके वापस करो। यदि उनके पाठमें कुछ भेद हुआ तो उनके पाठका विचार करके आवश्यक हुआ तो हम उसका एक परिशिष्ट अलग देंगे। विचार करने के पश्चात् उनका पाठ अनावश्यक सिद्ध हुआ तो वह नहीं दिया जायगा।

जो पाठक शुद्ध यजुर्वेद मुद्रण में सहायता देना चाहते हैं वे ऐसे वेद पाठियोंका पता हमें दें कि जिनको उत्तम रीतिसे पूर्ण यजुर्वेद मुखोद्गत हो और जिनका नाम वेदपाठियोंमें संमान से लिया जाता हो। हम उनके पास यह ग्रंथ भेज देंगे और उनसे-आवश्यक हुआ तो-कुछ पुरस्कार देकर भी-सहायता लेंगे। इस समय हमने दक्षिण भारत, काशी, ग्वालेर आदिस्थान के सुयोग्य वेदपाठियों से सहायता ली है और इन प्रांतों के ग्रंथों से भी सहायता ली है। परंतु इससे भी अधिक परिश्रम हम उक्त प्रकार करना चाहते हैं, ऐसा प्रयत्न इस समय तक किसी ने नहीं किया है। इस लिये हमें आशा है कि पाठक इस विषयमें हमें सहायता अवश्य देंगे।



अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

## शीत-ज्वर-दूरीकरण-सूक्त ।

( २५ )

( ऋषिः—भृग्वंगिराः । देवता—अग्निः, तक्मा । )

यदग्निरापो अदहत्प्रविश्य यत्राकृण्वन् धर्मधृतो नमांसि ।  
 तत्र त आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान् परि वृंग्धि तक्मन् ॥ १ ॥  
 यद्यर्चिर्यदि वासि शोचिः शकल्येषि यदि वा ते जनित्रम् ।  
 ऋदुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृंग्धि तक्मन् ॥ २ ॥  
 यदि शोको यदि वाभिशोको यदि वा राज्ञो वरुणस्यासि पुत्रः ।  
 ऋदुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृंग्धि तक्मन् ॥ ३ ॥  
 नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि ।  
 यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने ॥ ४ ॥

अर्थ— (यत्र) जहाँ (धर्म-धृतः) धर्मका पालन करने वाले सदाचारी लोकं (नमांसि कृण्वन्) नमस्कार करते हैं, वहाँ (प्रविश्य) प्रवेश करके (यत् अग्निः) जो अग्नि (आपः अदहत्) प्राणधारक जल तत्त्वको जलाता है (तत्र) वहाँ (ते परमं जनित्रं) तेरा परम जन्म स्थान है, ऐसा (आहुः) कहते हैं। हे (तक्मन्) कष्ट देनेवाले ज्वर ! (सः संविद्वान्) जानता हुआ तू (नः परि वृंग्धि) हमको छोड़ दे ॥ १ ॥ (यदि अर्चिः) यदि तू ज्वाला रूप, (यदि वा शोचिः असि) अथवा यदि तापरूप हो, (यदि ते जनित्रं) यदि तेरा जन्म स्थान (शकल्य-इषि) अंगप्रत्यंगमें परिणाम करता है, तो तू (ऋदुः नाम असि) ऋदु [ अर्थात् गति करनेवाला ] इस नामका है। अतः हे (हरितस्य देव तक्मन्) पीलक रोगको उत्पन्न करनेवाले ज्वर देव ! (सः संविद्वान्) वह तू यह जानता हुआ (नः परि वृंग्धि) हमें छोड़ दे ॥ २ ॥ (यदि शोकः)



यदि तू पीडा देनेवाला अथवा ( यदि अभि शोकः ) यदि सर्वत्र पीडा उत्पन्न करनेवाला हो, ( यदि वरुणस्य राज्ञः पुत्रः असि ) किंवा वरुण राजा का तू पुत्र ही क्यों न हो, तुम्हारा नाम ऋडु है । हे पीलक रोगके उत्पन्न करनेवाले ज्वर देव ! तू हम सबको यह जानकर छोड़ दे ॥ ३ ॥ (शीताय तक्मने नमः) शीत ज्वर के लिये नमस्कार, (रूराय शोचिषे नमः कृणोमि) रूखे तापको भी नमस्कार करता हूँ । (यः अन्येद्युः) जो एक दिन छोड़ कर आनेवाला ज्वर है, (उभयद्युः) जो दो दिन आनेवाला (अभ्येति) होता है जो (तृतयिकाय) तिहारी (तक्मने नमः अस्तु) ज्वर के लिये नमस्कार होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—धार्मिक लोग जहाँ प्राणायाम द्वारा पहुँचते और प्राण शक्ति का महत्त्व जानकर उसको प्रणाम भी करते हैं उस प्राणके मूलस्थानमें पहुँच कर यह ज्वरका अग्नि प्राणधारक आप् तत्त्वको जला देता है । यही इस ज्वरका परम स्थान है । यह जानकर मनुष्य बचे ॥ १ ॥ यह ज्वर बहुत जोरकी तपिश चढानेवाला हो किंवा अंदर ही अंदर तपनेवाला हो, किंवा हरएक अंग प्रत्यंगको कमजोर करनेवाला हो वह हरएक जीवनके अणुको हिला देता है इसलिये इसको “ऋडु” कहते हैं, यह पांडुरोग अथवा कामिला रोगको उत्पन्न करता है, यह जान कर हरएक मनुष्य इससे अपना बचाव करे ॥ २ ॥ कई ज्वर विशेष अंगमें दर्द उत्पन्न करते हैं और कई संपूर्ण अंगप्रत्यंगोंमें पीडा उत्पन्न करते हैं, जलराज वरुणसे इसकी उत्पात्ति होती है, यह हरएक अंगप्रत्यंग को हिला देता है और पीलक रोग शरीरमें उत्पन्न करदेता है । इस लिये हरएक मनुष्य इससे बचता रहे ॥ ३ ॥ शीत ज्वर, रूक्ष ज्वर, प्रतिदिन आनेवाला, एकदिन छोड़कर आनेवाला, दो दिन छोड़कर आनेवाला, तीसरे दिन आनेवाला ऐसे अनेक प्रकारके जो ज्वर हैं उनको नमस्कार हो अर्थात् ये हम सबसे दूर रहें ॥ ४ ॥

### ज्वर की उत्पत्ति ।

यह तक्मनाशन गण” का सूक्त है और इस सूक्त में ज्वरकी उत्पत्ति निम्न लिखित प्रकार लिखी है—



### वरुणस्य राज्ञः पुत्रः । ( मंत्र ३ )

यह “वरुण राजा का पुत्र है ।” अर्थात् वरुणसे इसकी उत्पत्ति है । जल का अधिपति वरुण है यह सब जानते ही हैं । वरुण राजाके जलरूपी साम्राज्यमें यह जन्म लेता है । इसका सीधा आशय यह व्यक्त हो रहा है कि जहाँ जल स्थिररूपसे रहता या सड़ता है वहाँ से इस ज्वर की उत्पत्ति होती है । आजकल भी प्रायः यह बात निश्चितसी हो चुकी है कि जहाँ जल प्रवाहित नहीं होता परंतु रुका रहता है, वहाँ ही शीतज्वर की उत्पत्ति होती है और शीतज्वर ऐसे ही स्थानों से फैलता है ।

यदि यह ज्ञान निश्चित हुआ तो ज्वरनाशक पहिला उपाय यही हो सकता है, कि, अपने घरके आसपास तथा अपने ग्राममें अथवा निकट कोई ऐसे स्थान नहीं रखने चाहिए, कि जहाँ जल रुकता और सड़ता रहे । पाठक इस सबसे प्रथम और मुख्य ज्वरनाशक उपायका विचार करें । और इससे अपना लाभ उठावें ।

### ज्वरका परिणाम ।

इस सूक्तमें ज्वरका नाम “ऽहूडु” लिखा है । इसका अर्थ “गति करनेवाला” है । यह ज्वर जब शरीरमें आता है तब शरीरके खून में तथा अंगप्रत्यंगों के जीवन तत्त्वमें गति उत्पन्न करता है । और इसी कारण अंगप्रत्यंग का जीवनरस ( आप तत्त्व ) जल जाता है । यही बात प्रथम मंत्रमें कही है—

अग्निः आपः अदहत् ॥ ( मंत्र १ )

“यह ज्वर जीवन रस को ही जला देता है ।” इसी कारण ज्वरसे शरीरकी शक्ति कम होती है । आप तत्त्व प्राणशक्ति का धारण करनेवाला है । ( आपोमयः प्राणः ) आपतत्त्वमय प्राण है यह उपनिषदोंका कथन है । प्राणके आश्रयका शरीरस्थ आप तत्त्व-इस ज्वरके द्वारा जल जाता है, इसी कारण ज्वर आनेपर जीवन शक्ति कम हो जाती है । इसी कारण इस ज्वरको पीलक रोगका उत्पादक कहा है । देखिये—

हरितस्य देव ! मंत्र ( २ , ३ )

“ पीलापन उत्पन्न करनेवाला ” पीला निस्तेज बनानेवाला, पीलकरोग कामिला, पांडुरोग, जीवनरसका क्षय करनेवाला रोग इन सबका उत्पादक ज्वर है । यह ज्वर इतने भयानक रोगोंको उत्पन्न करनेवाला है, इसी लिये इससे मनुष्यको अपने आपका बचाव करना चाहिये । यह ज्वर प्राणके मूल स्थानपर हमला करके उसीको कमजोर करता है इस विषयमें यह मंत्र देखिये —



यदग्निरापो अदहत् प्रविश्य यत्राकृण्वन् धर्मधृतो नम्रांसि॥ ( मंत्र १ )

जहां धार्मिक लोग जाकर नमन करते हैं वहां प्रविष्ट होकर यह अग्नि- ज्वर- प्राण- धारक जीवन रसको जलाता है । ”

योगादि साधन द्वारा धार्मिक लोग समाधि अवस्थामें हृदय कमलमें प्रविष्ट होते हैं, उसी हृदयमें जीवनका रस है, वही रस ज्वरसे जलता है । अर्थात् ज्वरका हृदयपर बहुत बुरा परिणाम होता है, जिससे बहुत कमजोरी भी उत्पन्न होती है । इसी कारण यह ज्वर पीलक रोग अथवा पांडुरोग उत्पन्न करता है ऐसा इस सूक्तके द्वितीय मंत्रमें कहा है । यह हिमज्वर जिसको आजकल “ मलेरिया ” कहा जाता है वह बहुत ही हानि कारक है । इस लिये इसको हरएक प्रयत्नसे दूर रखना चाहिये यही निम्न लिखित मंत्र भागमें सूचित किया है —

स नः संविद्वान् परिवृग्धि तक्मन् ॥ ( मंत्र १, २, ३ )

“ यह बात जानता हुआ ज्वर दूर रखा जाय ” अर्थात् ज्वर के कारण दूर करके उसका हमला मनुष्यपर न हो इस विषयमें योग्य प्रयत्न किये जाय । ज्वर आनेके बाद उसके प्रतिकार का यत्न करना चाहिये इसमें किसीका विवाद नहीं हो सकता, परंतु इस सूक्त द्वारा वेद यही उपदेश देना चाहता है, कि अपने घरकी और ग्राम की व्यवस्था मनुष्य इस प्रकार रखें कि यह मलेरिया ज्वर आवेही न और उसके निवारण के लिये दवा-इयां पीनी न पड़ें । क्यों कि यह विष इतना घातक है कि एक बार आया हुआ हिमज्वर अपना परिणाम स्थिर रूपसे शरीरमें रख जाता है और उसके निवारण के लिये सालों साल और बड़े व्ययसे यत्न करने आवश्यक होते हैं ।

## हिमज्वर के नाम ।

इस सूक्तमें हिमज्वरके निम्नलिखित नाम दिये हैं—

१ ञ्हूडु = गति उत्पन्न करनेवाला, शरीरमें कंप उत्पन्न करनेवाला, ज्वर का शीत जिस समय प्रारंभ होता है, उस समय मनुष्य कांपने लगता है । मराठी भाषामें इस हिम ज्वरका नाम “ हुडहुडा ताप ” है, यह शब्दभी “ ञ्हूडु ” वैदिक शब्दके साथ मिलता जुलता है । यही शब्द विभिन्न हस्त लिखित पुस्तकोंमें निम्नलिखित प्रकार लिखा हुआ मिलता है - ञ्हूडु, ञ्हूदु, ञ्हूडु, हुडु, रुडु, ञ्हूदु, रुडू, ञ्हूदू ” अथर्ववेदकी पिप्पलाद शाखा की संहितामें “ हुडु ” पाठ है । यह “ हुडु ” शब्द मराठी “ हुडहुडा ” शब्द के ही सदृशही शब्द है । ( मंत्र २, ३ )



२ शीतिः — जो ज्वर शीत लग कर प्रारंभ होता है ॥ यह प्रतिदिन आनेवाला समझना उचित है । (मंत्र ४)

३ अन्येद्युः— एक दिन छोड़कर आनेवाला । (मं० ४)

४ उभयेद्युः- दूसरे दिन आनेवाला अथवा दो दिन छोड़ कर आनेवाला । (मं० ४)

५ तृतीयकः— तीसरे दिन आनेवाला किंवा तीनदिन छोड़ कर आनेवाला अथवा नियत दिन बीचमें छोड़ कर आनेवाला । (मं० ४)

६ तक्माः० जीवन दुःखमय बनानेवाला ज्वर ।

७ अर्चिः— अग्निकी ज्वालाएं भड़कनेके समान जिसकी उष्णता बाहर बहुत होती है । (मं० २)

८ शोचिः शोकः— जिसमें शरीरमें पीडा होती है । (मं० २)

९ शकल्य-एषिः- अंग प्रत्यंग अलग अलग होनेके समान शिथिलता आती है। (मं० २)

१० अभिशोकः - जिममें सब शरीरमें बड़ा दर्द करता है । (मं० ३)

इन नामोंका विचार करनेसे इस ज्वरके स्वरूपका पता लग सकता है और निश्चय होता है कि यह वर्णन शीतज्वर जिसे मलेरिया आजकल कहते हैं इसका ही है ।

घरके पास जल सड़ता न रहे, घरके पासकी भूमि अच्छी रहे और किसी भी स्थान में इस रोगकी उत्पत्ति होने योग्य परिस्थिति न हो, इसी प्रकार ग्राम में और ग्रामके आस पास भी स्थान योग्य और आरोग्य कारक हों, जिससे यह रोग उत्पन्न ही न होगा । क्योंकि यह ज्वर जल के दलदल से उत्पन्न होता है । इसीलिये “ जल देवता का पुत्र ” इसका एक नाम इसी सूक्त में दिया है । यदि पाठक इसका योग्य विचार करेंगे तो उनको इससे बचनेका उपाय ज्ञात हो सकता है । आशा है कि वे इसका विचार करेंगे और अपने आपको इससे बचायेंगे ॥

### नमः शब्द ।

इस सूक्तके अंतिम मंत्रमें “नमः” शब्द तीनवार आया है । यहांका यह नमनवाचक शब्द घातक मनुष्यको दूर रखनेके लिये किये जानेवाले नमस्कार के समान उस ज्वरसे बचनेका भाव सूचित करता है ऐसा हमारा ख्याल है । कोशोंमें “ नमस्कर, नमस्कारी ” शब्द औषधियोंके भी वाचक हैं । यदि “ नमः ” शब्द से किसी औषधीका बोध होता होतो वह खोज करना चाहिये । “नमः” शब्दके अर्थ “नमस्कार, अन्न, शस्त्र, दण्ड” इतने प्रसिद्ध हैं, “ नमष्करी, नमस्कार, नमष्कारी ” ये शब्द औषधियोंके भी वाचक हैं । अतः इस विषयका अन्वेषण वैद्य लोग करें ।



# सुख प्राप्ति सूक्त ।

( २६ )

( ऋषिः— ब्रह्मा । देवताः— इन्द्रादयः )

आरे ३ सावस्मदस्तु हेतिर्देवासो असत् । आरे अश्मायमस्यथ ॥ १ ॥  
 सखा सावस्मभ्यमस्तु रातिः सखेन्द्रो भगः । सविता चित्रराधाः ॥ २ ॥  
 यूयं नः प्रवतो नपान्मरुतः सूर्यत्वचसः । शर्म यच्छाथ सप्रथः ॥ ३ ॥  
 सुषूदत मृडत मृडया नस्तनूभ्यः । मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥ ४ ॥

अर्थ— हे (देवासः) देवो ! (असौ हेतिः) यह शस्त्र (अस्मत् आरे अस्तु) हमसे दूर रहे । और (यं अस्यथ) जिसे तुम फेंकते हो वह (अश्मा आरे असत्) पत्थर भी हमसे दूर रहे ॥ १ ॥ (असौ रातिः) यह दानशालि, (भगः) धनयुक्त सविता, (चित्रराधः इन्द्रः) विशेष ऐश्वर्यसे युक्त इन्द्र हमारा (सखा अस्तु) मित्र होवे ॥ २ ॥ हे (प्रवतः नपात्) अपने आपका रक्षण करनेवाले को न गिरानेवाले ! हे (सूर्यत्वचसः मरुतः) सूर्यके समान तेजस्वी मरुत् देवो ! (यूयं) तुम (नः) हमारे लिये (सप्रथः शर्म) विस्तृत सुख (यच्छाथ) दो ॥ ३ ॥ (सुषूदत) तुम हमें आश्रय दो, (मृडत) हमें सुखी करो, (नः तनूभ्यः मृडय) हमारे शरीरोंको आरोग्य दो तथा (तोकेभ्यः मयः कृधि) बालबच्चोंके लिये आनन्द करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे देवो ! आपका दंडरूप शस्त्र आदि हमारे ऊपर प्रयुक्त होनेका अवसर न आवे, अर्थात् हमसे ऐसा कोई कार्य न हो कि जिसके लिये हम दण्डके भागी बनें ॥ १ ॥ इन्द्र सविता भग आदि देवगण हमारे सहायक हों ॥ २ ॥ मरुत् देव हमारा सुख बढ़ावें ॥ ३ ॥ सब देव हमें उत्तम आधार दें, हमारे शरीरका आरोग्य बढ़ावें, हमारे मनकी शांति वृद्धिगत करें, हमारे बाल बच्चोंको कुशल रखें और सब प्रकारसे हमारा आनन्द बढ़ावें ॥ ४ ॥



## देवोंसे मित्रता ।

इन्द्र, सविता, भग, मरुत् आदि देवोंसे मित्रता करनेसे सुख मिलता है और उनके प्रतिकूल आचरण करनेसे दुःख प्राप्त होता है। इस लिये प्रथम मंत्रमें प्रार्थना है कि उन देवोंका दंड हमपर न चले, और दूसरे मंत्रमें प्रार्थना है कि ये सब देव हमारे मित्र-हमारे सहायक-बन कर हमारा सुख बढ़ावें, अथवा हमारा ऐसा आचरण बने कि ये हमारे सहायक बनें और विरोधी न हों। देखिये इसका आशय क्या है—

१ सविता — सूर्यदेव है, यह स्वयं मित्रता करनेके लिये हमारे पास नहीं आता है, परन्तु सुबह उदय होनेके समयसे अपना हाथ हमारे पास भेजता है और हमसे मिलना चाहता है, परन्तु पाठक ही ख्याल करें कि हम अपने आपको तंग मकानोंमें बंद रखते हैं, और सविता देवके पवित्र हाथके पास जाते ही नहीं। सूर्य ही आरोग्य की देवता है, उसके साथ इस प्रकार विरोध करनेसे उसका वज्राघात हमपर गिरता है जिससे नाना रोगके दुःखोंमें गिरना आवश्यक होता है।

२ मरुत् नाम वायु देवता का है। यह वायु देव भी हमारी सहायता करनेके लिये हर एक स्थानमें हमारे पहिलेसे ही उपस्थित है, परन्तु हम खुली हवा सेवन नहीं करते हैं, परिशुद्ध वायु हमारे घरों और कमरोंमें आवे ऐसी व्यवस्था नहीं करते, इतनाही नहीं परन्तु वायुको बिगाड़नेके अनंत साधन निर्माण करते हैं। इत्यादि कारणोंसे वायु देवताका क्रोध हमपर होता है और उनका वज्राघात हमें सहन करना पड़ता है। जिससे विविध बीमारियां वायुके क्रोधसे हमें सता रहीं हैं।

इसी प्रकार अन्यान्य देवोंका संबंध जानना उचित है। इस विषयमें अथर्ववेद स्वाध्याय कां० १ सूक्त ३, ९, देखिये, इन सूक्तोंके स्पष्टीकरण के प्रसङ्गमें देवताओंसे हमारे संबंधका वर्णन किया है। इस लिये इस सूक्तके साथ उन सूक्तोंका संबंध अवश्य देखना चाहिये।

जिस प्रकार ये ब्राह्म देवताएं हमारे मित्र बनकर रहनेसे भी हमारा स्वास्थ्य और सुख बढ़ सकता है, उसी प्रकार उनके प्रतिनिधि-जो हमारे शरीरमें स्थान स्थानमें रहे हैं उनको मित्र बनाकर रखनेसे भी हमारा स्वास्थ्य और आरोग्य रह सकता है, इस विषयमें अब थोड़ासा विवरण देखिये—

१ सविता सूर्य देव आकाशमें है, उसीका प्रतिनिधि अंशरूप देव हमारे आंखमें तथा नाभिस्थानके सूर्य चक्रमें रहा है। क्रमशः इनके काम दर्शनशक्ति और पाचनशक्तिके



साथ संबंधित हैं । पाठक यहां अनुभव करें कि ये देव यदि हमारे मित्र बनकर रहें तो ही स्वास्थ्य और आरोग्य रह सकता है । यदि आंख किसी समय धोखा देवे, अथवा रूपके विषयमें मोहित होकर हीन मार्गसे इस शरीरको ले चले, तो उससे प्राप्त होनेवाली शरीर की कष्टमय दशा की कल्पना पाठक ही कर सकते हैं । इसी प्रकार पेट की पाचन शक्ति ठीक न रहनेसे कितने रोग उत्पन्न हो सकते हैं इसका ज्ञान पाठकोंसे छिपा नहीं है । अर्थात् शरीर स्थानीय सूर्य-सविता के अंश रूप देव के सखा बनकर न रहनेसे मनुष्यकी आपत्तियोंकी संख्या कितनी बढ़ सकती है इसका पाठक ही विचार करें ।

२ इसी प्रकार मरुत् वायु देव फेंफड़ोंमें तथा शरीरके नाना स्थानोंमें रहते हैं । यदि उनका कभी प्रकोप हो जाय तो नाना विकारोंकी उत्पत्ति हो सकती है ।

इसी प्रकार इन्द्रदेव अंतःकरण के स्थानमें तथा अन्यान्य देव शरीरके अन्यान्य स्थानोंमें रहते हैं । पाठक विचार करके जान सकते हैं, कि इनके “ सखा ” बनकर रहनेसे ही मनुष्य मात्रको स्वास्थ्य और आनंद प्राप्त हो सकता है । इनके विरोधी बननेसे दुःखका पारावार नहीं होगा ।

पहिले मंत्रमें “ देवोंके दण्डसे दूर रहने की ” और दूसरे मंत्रमें “ देवोंसे मित्रता रखने की ” सूचना का इस प्रकार विचार पाठक करें और यह परम उपयोगी उपदेश अपने आचरणमें ढालनेका प्रयत्न करें और परम आनंद प्राप्त करें । तीसरे मंत्रका “ इसी आचरणसे विस्तृत सुख मिलता है, ” यह कथन अब सुस्पष्ट ही हुआ है ।

चतुर्थ मंत्रमें जो कहा है कि “ ये ही देव हमें सहारा देते हैं, हमें सुखी रखते हैं, हमारे शरीरका आरोग्य बढ़ाते हैं और बालबच्चोंको भी आनंदित रखते हैं, ” यह कथन अब पाठकोंको भी दिनके प्रकाशके समान प्रत्यक्ष हुआ होगा । इस लिये स्वास्थ्य और सुखकी प्राप्ति के इस सच्चे मार्गका अवलंबन पाठक करें ।

### विशेष सूचना ।

विशेष कर पाठक इस बातका अधिक ख्याल रखें, कि वेद सुख स्वास्थ्य और आनंदके प्राप्त करने के लिये धनादि साधन नहीं बताता है, प्रत्युत “ जल, वायु, सूर्य आदि के साथ सख्य करो ” यही साधन बता रहा है । यह हरएक कर सकता है । चाहे धन किसी-को मिले या न भी मिले, परंतु “ जल वायु और सूर्य प्रकाश ” तो हरएक को मिल सकता है । इस स्वास्थ्यके अति सुलभ साधनका पाठक अधिक विचार करें, वेदकी इस शैलीका अवश्य मनन करें और इस उपदेश के अनुसार आचरण करके लाभ उठावें ।



## विजयी स्त्री का पराक्रम ।

( २७ )

( ऋषि:— अथर्वा । देवता— इन्द्राणी )

अमूः पारे पृदाकस्त्रिषप्ता निर्जरायवः ।

तासां जरायुभिर्वयमक्षया ऽवपि व्ययामस्यघायोः परिपन्थिनः ॥ १ ॥

विषूच्येतु कृन्तती पिनाकमिव विभ्रती ।

विष्वक्पुनर्भुवा मनोऽसमृद्धा अघायवः ॥ २ ॥

न बहवः समशकन्नाभका अभिदाधृषुः ।

वेणोरद्गा इवाऽभितोऽसमृद्धा अघायवः ॥ ३ ॥

प्रेतं पादौ स्फुरतं वहतं पृणतो गृहान् ।

इन्द्राण्येतु प्रथमाऽजीताऽमुषिता पुरः ॥ ४ ॥

अर्थ— ( अमूः पारे ) वह पारमें ( निर्जरायवः ) झिल्लीसे निकली हुई ( त्रि- सप्ताः ) तीन गुणा सात ( पृदाकः ) सर्पिणियोंके समान सेनाएं हैं । ( तासां ) उनकी ( जरायुभिः ) केंचुलियोंसे ( वयं ) हम ( अघ - आयोः परिपन्थिनः ) पापी दुष्टकी ( अक्षयौ ) दोनों आंखें ( अपि व्ययामसि ) ढके देते हैं ॥ १ ॥ ( पिनाकं इव विभ्रती ) धनुष्य धारण करनेवाली, और शत्रुको ( कृन्तती ) काटने वाली वीरसेना ( विषूची एतु ) चारों ओर आगे बढ़े । जिससे ( पुनर्भुवाः ) फिर इकट्ठी की हुई शत्रुसेनाका ( मनः विष्वक् ) मन इधर उधर हो जावे । और उससे ( अघायवः ) पापी शत्रु ( असमृद्धाः ) निर्धन हो जावें ॥ २ ॥ ( बहवः न समशकन् ) बहुत शत्रु भी उनके सामने ठहर नहीं सकते, फिर ( अभकाः ) जो बालक हैं वे ( न अभि दाधृषुः ) धैर्य ही नहीं कर सकते । ( वेणोः अद्गाः इव ) बांसके अंकुरों के समान ( अभितः ) सब ओरसे ( अघायवः ) पापीलोग ( असमृद्धाः ) निर्धन होवें ॥ ३ ॥ हे ( पादौ ) दोनों पांवों ! ( प्रेतं ) आगे बढ़ो, ( प्रस्फुरतं ) फुरती करो, ( पृणतः गृहान् वहतं ) संतोष देनेवाले घरोंके प्रति हमें पहुंचाओ । ( अजीता ) बिना जीती, ( अमुषिता ) बिना लूटी हुई और ( प्रथमा ) मुखिया



बनी हुई ( इन्द्राणी ) महाराणी ( पुरः एतु ) सबके आगे बढे ॥ ४ ॥

भावार्थ— केंचुलीसे बाहर आयी हुई सर्पिणीके समान चपल सेनाएं तीन गुणे सात विभागोंमें विभक्त होकर युद्धके लिये सिद्ध हैं, उनकी हलचलोंसे हम सब पापी दुष्टोंकी आंखें बंद कर देते हैं ॥ १ ॥ शस्त्रधारण करनेवाली और शत्रुको काटनेवाली वीरोंकी सेना चारों दिशाओंमें आगे बढे जिससे शत्रुसेनाका मन तितर बितर हो जावे और सब पापी शत्रु निर्धन हो जावें ॥ २ ॥ ऐसी शूर वीरों की सेनाके सन्मुख बहुत शत्रुभी ठहर नहीं सकते फिर कमजोर बालक कैसे ठहर सकेंगे ? बांसके कोमल और अशक्त अंकुरके समान चारों ओरसे पापी शत्रु धनहीन हो कर नाश को प्राप्त होंगे ॥ ३ ॥ विजयी अपराजित और न लूटी गई वीर स्त्री महाराणी मुखिया बनकर आगे बढे, इतर लोग उसके पीछे चलें, हरएक वीरके पांव आगे बढें, शरीरमें फुर्ती चढे और सब लोग संतोष बढ़ाने वालोंके घरोंतक पहुंच जाय ॥ ४ ॥

### इन्द्राणी ।

“इन्द्र” शब्द राजाका वाचक है जैसा-नरेन्द्र (मनुष्योंका राजा) मृगेन्द्र ( मृगों का राजा), खगेन्द्र (पक्षियोंका राजा) इत्यादि । केवल इन्द्र शब्द भी राजाका ही वाचक है, और “ इन्द्राणी ” शब्द “ इन्द्रकी राणी, राजाकी राणी, महाराणी, राणी” का वाचक है । यह इन्द्राणी सेना की प्रेरक देवी है यह बात तैत्तिरीय संहितामें कही है देखिये—

इन्द्राणी वै सेनायै देवता । तै० सं० २।२।८।१

“ इन्द्राणी सैन्यकी देवता है । ” क्योंकि इसकी प्रेरणासे सैनिक अपना पराक्रम दिखाते और विजय प्राप्त करते हैं ।

### वीर स्त्री ।

“ इन्द्राणी अर्थात् राणी सेनाकी मुखिया बनकर सेना को प्रोत्साहन देती हुई आगे चले, हरएक के पांव आगे बढें, हरएकका मन उत्साहसे युक्त रहे, संतोष बढ़ाने वाले सज्जनों के घरों में ही लोग जाय । ” परंतु जो लोग संतोषको कम करने वाले, उत्साह का नाश करने वाले, और मनकी आशाका घात करनेवाले हों उनके पास कोई न जावे, क्योंकि ऐसे लोग अपने हीन भावोंसे मनुष्योंको निरुत्साहित ही करते हैं । यह मंत्र ४ का भाव विचार करने योग्य है ।



जिस राष्ट्रमें स्त्रियां भी ऐसी शूर और दक्ष होंगी, वह राष्ट्र सदा विजयी ही होगा इस में क्या संदेह है ? जिस देश में स्त्रियां सेनाको चला सकेंगी उस देश के पुरुष कितने शूर और कैसे वीर होंगे । क्या ऐसी वीर स्त्रियोंको कोई हीन मनवाला आदमी धमका सकता है और ऐसी शूर स्त्रियों की किसी स्थानपर कोई बेइज्जत कर सकता है । इस लिये आत्मसंमान रखनेकी इच्छा करने वालों को उचित है, कि वे स्वयं मर्द बनें और अपनी स्त्रियों को भी ऐसी शिक्षा दें कि वे भी शूरवीर बनकर अपने संमान की रक्षा कर सकें ।

“ हाथ में शस्त्र धारण करती हुई, शत्रुको काटती हुई आगे बढ़े, जिसका वेग देख कर शत्रुका मन उत्साहरहित होवे और शत्रु निर्धन अर्थात् परास्त हो जावें । ” यह द्वितीय मंत्रका भाव भी इस चतुर्थ मंत्रके साथ देखने योग्य है । क्यों कि यह मंत्र भी वीर स्त्रीका पराक्रम ही बता रहा है । यह सेना का वर्णन करता हुआ भी वीरस्त्रीका वर्णन करता है । ( मंत्र २ )

वीरस्त्रियों को उपमा केंचुलीसे निकली हुई सर्पिणी की इस सूक्तमें दी है । स्वभावतः सर्पिणी बड़ी तेज रहती ही है और अति फुर्तीसे शत्रुपर हमला करती है । परंतु जिस समय वह केंचुलीसे बाहर आती है उस समय अतितेजस्वी और अतिचपल रहती है, क्योंकि इस समय यह नवजीवनसे युक्त होती है । वीर स्त्री ऐसी ही होती है । स्त्री स्वभावतः चपल होती है, परंतु जिस समय कार्यवश राष्ट्रीय आपत्तिसे प्रेरित होकर आत्मसंमान की रक्षाके लिये कोई वीरा स्त्री अपने अंतर्गृह रूपी केंचुलीसे बाहर आती है, उस समय उसकी तेजस्विताका वर्णन क्या करना है ? वह उस समय सचमुच सर्पिणी की भांती चमकती हुई, बिजुलीके समान तेजस्विनी बनकर वीरसेनागणों को प्रेरित करती है । उस समय का उत्साह वीर पुरुष ही कल्पना से जान सकते हैं । “ उसके तेजसे शत्रु के आंख ही अंध बन जाते हैं ” और उस के सब शत्रु निःसत्त्व हो जाते हैं । ( मंत्र १ )

जहां ऐसी वीरांगनाएं समर्थ हैं “ उन लोगोंके सामने बड़े बड़े शत्रु भी ठहर नहीं सकते, फिर अल्प शक्तिवाले कमजोर मनुष्योंकी बातही क्या है ? घांस के अंकुरोंके समान उनके शत्रु नष्टभ्रंष्टही हो जाते हैं । ( मंत्र ३ )

### शत्रुवाचक शब्द ।

इस सूक्तमें शत्रुवाचक कुछ शब्द हैं उनका विचार यहां करना आवश्यक है—

१ अघायुः = आयु भर पाप कर्म करनेवाला ।

२ परिपंथिन् = बटमार, बुरे मार्गसे चलनेवाला ।



पापीलोग ये हैं और इनके बुरे आचरण के कारणही वे शत्रुत्व करने योग्य हैं ।

“ असमृद्धा अघायवः ” यह शब्द प्रयोग इस सूक्त में दोवार आया है । “ पापी समृद्धिसे रहित होते हैं । ” यह इसका भाव है । पापसे कभी वृद्धि नहीं होगी । पाप से मनुष्य गिरताही जाता है । यह भाव इस में देखने योग्य है । जो मनुष्य पाप कर्म द्वारा धनाढ्य बनना चाहते हैं उनको यह मंत्र भाग देखना योग्य है । यह मंत्र उपदेश दे रहा है कि “ पापी कभी उन्नत नहीं होगा; ” यदि किसी अवस्थासे वह धनवान् हुआ, तो भी वह उसका धन उसके नाशका ही हेतु निःसंदेह बनेगा । तात्पर्य परिणाम की दृष्टिसे यह स्पष्ट ही समझना चाहिये कि पापी लोग अवश्यही नाशको प्राप्त होंगे।

### तीन गुणा सात ।

सेनाके तीन गुणा सात विभाग हैं । रथयोधी, गजयोधी, अश्वयोधी, पदाती, दुर्गयोधी, जलयोधी तथा कूटयोधी ये सात प्रकार के सैनिक होते हैं । प्रत्येकमें अधिकारी, प्रत्यक्ष युद्धकारी और सहायक इन तीन भेदोंसे तीन गुणा सात सैनिक होते हैं ।

### निर्जरायु ।

“ जरायु ” शब्द झिल्ली, जेरी का वाचक है, परंतु यहां श्लेषार्थ से प्रयुक्त है । यहां इसका अर्थ ( जरा+आयु ) वृद्धावस्था अथवा जीर्णता किंवा थकावट, तथा आयुष्य । ( निः +जरा- आयुः ) यो जीर्णता थकावट वृद्धावस्था अथवा आयुकी पर्वा न करने वाले होते हैं, अर्थात् जो अपने जीने मरनेकी पर्वाह न करके लडते हैं, जो अपनी अवस्थाकी तथा सुखदुःख की पर्वाह न करते हुए अपने यशके लिये ही लडते रहते हैं उनको “ निर्जरायु ” अर्थात् “ जरा और आयुके विचारसे मुक्त ” कहते हैं । जीवित की आशा छोड़ कर लडनेवाले सैनिक ।

इस सूक्तके मंत्र वीरा स्त्री विषयक तथा सेना विषयक अर्थ बताते हैं, इस लिये ये मंत्र विशेष मननके साथ पढने योग्य हैं । तथा इस में कई शब्द श्लेष अर्थ बताने वाले भी हैं जैसा कि ऊपर बताया है । इन सब बातोंका विचार करके यदि पाठक इस सूक्त का अभ्यास करेंगे तो उनको बहुत बोध मिल सकता है ।

आशा है कि इस प्रकार पाठक अपने राष्ट्र में वीरा स्त्री और वीर पुरुष उत्पन्न करेंगे और अपना यश बढानेका परम पुरुषार्थ करेंगे ।

यह सूक्त “ स्वस्त्ययन गण ” का है इस लिये इस गण के अन्य सूक्तों के साथ पाठक इसका विचार करें ।



# दुष्ट नाशन सूक्त ।

( २८ )

( ऋषिः — चातनः । देवता- स्वस्त्ययनम् । )

उप प्रागाद्देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः ।

दहन्नप द्वयाचिनो यातुधानान्किमीदिनः ॥ १ ॥

प्रति दह यातुधानान्प्रति देव किमीदिनः ।

प्रतीचीः कृष्णवर्त्मने सं दह यातुधान्यः ॥ २ ॥

या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।

या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥ ३ ॥

पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्यम् ।

अधा मिथो विकेश्यो विघ्नतां यातुधान्यो वितृह्यन्तामराय्यः ॥ ४ ॥

अर्थ- ( अमीव- चातनः ) रोगोंको दूर करनेवाला और ( रक्षोहा ) राक्षसों का नाश करनेवाला अग्निदेव ( किमीदिनः ) सदा भूखों को यातुधानान् लुटेरों को तथा ( द्वयाचिनः ) दुमुखे कपटियोंको ( अप दहन् ) जलाता हुआ ( उप प्रागात् ) पास पहुंचा है ॥ १ ॥ हे अग्निदेव ! ( यातुधानान् प्रति दह ) लुटेरों को जलादे तथा ( किमीदिनः प्रति ) सदा भूखोंको भी जलादे । हे ( कृष्णवर्त्मने ) कृष्ण मार्गवाले अग्निदेव ! ( प्रतीचीः यातुधान्यः ) संमुख आनेवाली लुटेरी स्त्रियोंकोभी ( संदह ) ठीक जला दो ॥ २ ॥ यह दुष्ट लुटेरी स्त्रियां ( शपनेन शशाप ) शापसे शाप देती हैं, ( या अघं मूरं आदधे ) जो पाप ही प्रारंभसे स्वीकारती हैं, ( या रसस्य हरणाय ) जो रस पीनेके लिये ( जातं तोकं आरेभे ) जन्मे हुए बालक को खाना आरंभ करती है और ( सा अत्तु ) वह पुत्र खाती है ॥ ३ ॥ ( यातुधानीः ) पापी स्त्री ( पुत्रं अत्तु ) पुत्र खाती है, ( स्वसारं उत नप्यं ) बहिन को तथा नाती को खाती है । ( अथ ) और



(विकेद्यः) केश पकड़ पकड़ कर (मिथः घ्नतां) आपसमें झगड़ती हैं । (अ-  
राध्यः यातुधानीः) दान भावरहित घातकी स्त्री (वितृह्यन्तां) आपसमें  
मारपीट करती है ॥ ४ ॥

भावार्थ— रोग दूर करनेमें समर्थ अर्थात् उत्तम वैद्य, आसुर भावको  
हटाने वाला, अग्निके समान तेजस्वी उपदेशक स्वार्थी लुटेरे तथा कपटियोंको  
दूर करता हुआ आगे चले ॥ १ ॥ हे उपदेशक! तू लुटेरे स्वार्थी दुष्टोंको नाश  
कर, तथा सामने आने वाली दुष्ट स्त्रियोंकी भी दुष्टता दूर कर दे ॥ २ ॥  
इन दुष्टोंका लक्षण यह है, कि ये आपसमें गालियां देते रहते हैं, हर एक काम  
पाप हेतुसे करते हैं, यहां तक ये क्रूर होते हैं, कि रक्त पीने की इच्छासे  
नये उत्पन्न बालक को ही चूसना आरंभ कर देते हैं ॥ ३ ॥ इनकी स्त्री  
अपने पुत्रको खानी है, बहिन तथा नाती को भी खाती है, तथा एक  
दूसरेके बाल पकड़कर आपसमें ही लड़ती रहती हैं ॥ ४ ॥

### पूर्वापर संबंध ।

इसी प्रथम कांडके ७ तथा ८ वें सूक्तकी व्याख्या के प्रसंगमें धर्मप्रचार प्रकरणमें  
अग्नि देव किस प्रकार ब्राह्मण उपदेशक ही है, तथा वह किस प्रकार जलाता है अर्थात्  
दुष्टोंको सुधारता है, इत्यादि सब विषय अतिस्पष्ट कर दिया है । इसलिये इन ७ और ८  
वें सूक्तके स्पष्टीकरण पाठक यहां पहिले पढ़ें और पश्चात् यह सूक्त पढ़ें ।

संस्कृतमें “वि-दग्ध” (विशेष प्रकारसे जलाहुआ) यह शब्द “अति विद्वान्” के लिये  
प्रयुक्त होता है । यहां अज्ञान का दहन जलन आदि समझना उचित है । जिस प्रकार अग्नि  
लोहे आदि को तपाकर शुद्ध करता है उसी प्रकार उपदेशक द्वारा प्रेरित ज्ञानाग्नि  
अज्ञानी मनुष्योंके अज्ञान को जला कर शुद्ध करता है । इस कारण “ब्राह्मण” के लि-  
ये वेदमें “अग्नि” शब्द आता है । ब्राह्मण और क्षत्रिय के वाचक वेदमें “अग्नि और इन्द्र”  
प्रसिद्ध हैं । ब्राह्मण धर्म अग्नि देवताके और क्षात्रधर्म इन्द्र देवताके सूक्तोंसे प्रकट होता  
है, इत्यादि बातें विस्तारसे ७ और ८ वें सूक्तकी व्याख्याके प्रसंगमें स्पष्ट कर दी हैं ।  
वही धर्म प्रचार की बात इस सूक्त में है इसलिये पाठक उक्त पूर्व सूक्तोंके साथ इस  
सूक्तका संबंध देखें ।

इस सूक्तमें “अमीव - चातनः” (रोगोंका दूर करनेवाला) यह शब्द विशेषण  
रूपमें आया है । यह यहां चिकित्सा द्वारा रोग दूर कर सकने वाले उत्तम वैद्यका बोध



करता है । उपदेशक जैसा शास्त्रमें प्रवीण चाहिये वैसाही वह उत्तम वैद्य भी चाहिये । वैद्य होनेसे वह रोगोंकी चिकित्सा करता हुआ धर्मका प्रचार कर सकता है । धर्म प्रचारक के अन्य गुण सूक्त ७, ८ में देखिये ।

### दुर्जनोंके लक्षण ।

इस सूक्तमें दुर्जनोंके पूर्वकी अपेक्षा कुछ अधिक लक्षण कहे हैं जो सूक्त ७, ८ में कहे लक्षणोंकी पूर्ति कर रहे हैं, इस लिये उनका विचार यहां करते हैं—

१ द्रयाविन् - मनमें एक भाव और बाहर एक भाव ऐसा कपट करनेवाले । (मं १)

“ किमीदिन्, यातुधान ” इन शब्दोंका भाव सूक्त ७, ८ की व्याख्याके प्रसंगमें बताया ही है । इस सूक्तमें दुर्जनों के कई व्यवहार बताये हैं, वेभी यहां देखिये—

२ शपन्नेन शशाप = शापसे शाप देना, बुरे शब्द बोलना, गलियां देना इ० । (मं ३)

३ अघं सूरं आदधे = प्रारंभमें पापका भाव रखता है । हर एक काममें पाप दृष्टीसे ही उसका प्रारंभ करना ।

४ रसस्य हरणाय जातं तोकं आरेभे = रक्त पीनेके लिये नवजात बच्चेको खाती है ।

५ यातुधानी पुत्रं स्वसारं नप्त्यं अत्ति = यह दुष्ट आसुरी स्त्री बच्चा बहिन अथवा नाती को खाती है ।

६ विकेह्यः मिथः विघ्नतां, वितृह्यन्तां = आपसमें केश पकड़ कर परस्पर मार पीट करती है ।

ये सब दुर्जन स्त्रीपुरुषोंके लक्षण हैं । बालबच्चोंको खाने वाले लोग इस समय अफ्रिका में कई स्थानों पर हैं, परंतु अन्य देशोंमें अब ये नहीं हैं । जहां कहीं ये हों, वहां धर्मोपदेशक चला जावे और उनको उपदेश देकर उत्तम मनुष्य बना देवे, ज्ञानी बनावे, उनकी दुष्टता दूर करके उनको सज्जन बना देवे ।

ऐसे मनुष्य-भक्षक दुष्ट क्रूर हिंसक मनुष्योंमें भी जाकर धर्मोपदेश देकर उनको सुधारनेका यत्न करनेका उपदेश होनेसे इससे कुछ सुधरे हुए किंचित् ऊपरली श्रेणीके मनुष्योंमें धर्म जागृति करने का आशय स्वयंही स्पष्ट हो जाता है ।

### दुष्टोंका सुधार ।

दुष्ट लोगोंमें दुष्टता होनेके कारण ही वे असभ्य समझे जाते हैं । उनकी दुष्टता उपदे-



शादि द्वारा हटाकर उनको सभ्य बनाना ब्राह्ममार्ग है और उनको दंड देकर डरावेसे उनका सुधार करकेका यत्न करना क्षात्र मार्ग है । वेदमें अग्निदेवता से ब्राह्ममार्ग और इन्द्र देवतासे क्षात्र मार्ग बताया है । जलाते या तपाते तो दोनों ही हैं, परंतु एक उपदेशद्वारा उनके अज्ञानको जलाता है और दूसरा शस्त्रदण्ड और इसीप्रकार के कठोर उपायोंसे पीड़ा देकर उनको सुधारता है ।

सुधार तो दोनोंसे होता है, परंतु क्षत्रियोंके दंडद्वारा तपाने के उपाय से ब्राह्मणोंके ज्ञानाग्नि द्वारा तपानेका उपाय अधिक उत्तम है । और इसमें कष्ट भी कम है ।

पाठक अग्नि शब्द से आग का ग्रहण करके उससे दुष्टोंको जलानेका भाव इस सूक्तसे न निकालें, क्यों कि इस सूक्तका संबंध आगेपीछेके अनेक सूक्तोंसे है और अग्नि-के गुणोंके प्रमाण देकर ज्ञानी उपदेशक ही अग्निशब्दसे ऐसे सूक्तों में अभीष्ट है यह सूक्त ७, ८ के प्रसंगमें स्पष्ट बताया ही है । इसके अतिरिक्त “रोग दूर करनेवाला अग्नि ” इस सूक्तमें कहा है, यदि यह उनलोगोंको जलाही देवे तो उस के रोगमुक्त करनेके गुणसे क्या लाभ हो सकता है । इस लिये यहां अग्निका जलाना “ ज्ञानाग्नि-से अज्ञानताका जलाना ” ही है । दुष्ट गुणधर्मोंको हटाना और वहां श्रेष्ठ गुण धर्म स्थापित करना ही यहां अभीष्ट है और इसीलिये रोगमुक्त करनेवाला उत्तम वैद्यही धर्मोपदेशक का कार्य करे, यह सूचना इस सूक्तमें हमें मिलती है । क्यों कि रोगिके मनपर वैद्यके उपदेश का जैसा असर होता है वैसा वक्ताके व्याख्यानसे श्रोताओं पर नहीं होता । रोगीका मन आतुर होता है इस लिये श्रवण की हुई उत्तम बात उसके मनमें जम जाती है और इस कारण वह श्रुति ही सुधर जाता है ।

[ यहां तृतीय और चतुर्थ मंत्रमें “ अत्तु ” शब्द है जिसका अर्थ “ खावे ” ऐसा होता है । परंतु “ शशाप, आदधे ” इन क्रियाओंके अनुसंधानसे “ अत्तु ” के स्थानपर “ अत्ति ” मानना युक्त है । क्यों कि यहां यातुधानोंकी रीति बताई है जैसे ( शशाप ) शाप देते रहते हैं, ( अघं आदधे ) पाप स्वीकारते रहते हैं, ( तोकं अत्ति ) बच्चेको खाते रहते हैं, अर्थात् यह उनकी रीति है । पूर्वापर संबंधसे यह अर्थ यहां अभीष्ट है ऐसा हमें प्रतीत होता है । तथापि पाठक अधिक योग्य और कोई अन्य भाव इस सूक्तमें देखेंगे, तो अर्थकी खोज होनेमें अवश्य सहायता होगी । ]

पंचम अनुवाक समाप्त ।



# राष्ट्रसंवर्धन सूक्त ।

( २९ )

( ऋषिः— वसिष्ठः । देवता—अभीवर्तो मणिः )

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे ।  
 तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥ १ ॥  
 अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः ।  
 अभि पृतन्यन्तं निष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥ २ ॥  
 अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत् ।  
 अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥ ३ ॥  
 अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः ।  
 राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥ ४ ॥  
 उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः ।  
 यथाऽहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥ ५ ॥  
 सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः ।  
 यथाऽहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥ ६ ॥

अर्थ - हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानी पुरुष ! ( येन इन्द्रः अभिवावृधे ) जिससे इन्द्रका विजय हुआ था, (तेन अभीवर्तेन मणिना) उस विजय करनेवाले मणिसे (अस्मान्) हमको ( राष्ट्राय अभिवर्धय ) राष्ट्रके लिये बढा दो॥ १ ॥ (याः नः अरातयः) जो हमारे शत्रु हैं उनको तथा अन्य (सपत्नान्) वैरियोंको (अभिवृत्य) पराभूत करके, ( यः नः दुरस्यति ) जो हमसे दुष्टताका आचरण करता है तथा जो (पृतन्यन्तं) सेनासे हमपर चढाई करता है उससे (अभि अभितिष्ठ) युद्ध करनेके लिये स्थिर हो जाओ॥ २ ॥ (सविता देवः) सूर्य देवने तथा (सोमः) चंद्रमा देवने भी (त्वा) तुझे (अभि अभि अवीवृधत्) सब प्रकारसे बढाया है । (विश्वा भूतानि) सब भूत (त्वा अभि) तुझे बढा रहे हैं, जिससे तू (अभिवर्तः अससि) शत्रुको दवानेवाला हुआ



है ॥ ३ ॥ (अभिवर्तः) शत्रुको घेरनेवाला, (अभिभवः) शत्रुका पराभव करनेवाला, (सपत्नक्षयणः) प्रतिपक्षियोंका नाश करनेवाला यह (मणिः) मणि है । यह (सपत्नेभ्यः पराभवे) प्रतिपक्षियोंका पराभव करनेके लिये तथा (राष्ट्राय) राष्ट्रके अभ्युदयके लिये (मह्यं बध्यतां) मुझपर बांधा जावे ॥ ४ ॥ (असौ सूर्यः उदगात्) यह सूर्य उदयको प्राप्त हुआ है, (इदं माम्-कं वचः उत्) यह मेरा वचन भी प्रकट हुआ है, (यथा) जिससे (अहं शत्रुहः) शत्रुका नाश करनेवाला, (सपत्नहा) प्रतिपक्षीका घात करनेवाला होकर मैं (असपत्नः असानि) शत्रुरहित होऊँ ॥ ५ ॥ (यथा) जिससे (अहं) मैं (सपत्न-क्षयणः) प्रतिपक्षियोंका नाश करनेवाला, (वृषा) बलवान् और (विषासहिः) विजयी होकर (अभिराष्ट्रः) राष्ट्रके अनुकूल बनकर तथा राष्ट्रकी सहायता प्राप्त करके (एषां वीराणां) इन वीरोंका (जनस्य च) और सब लोगोंका (वि राजानि) विशेष प्रकारसे रंजनकरनेवाला राजा होऊँ ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे राष्ट्रके ज्ञानी पुरुषो ! जिस राजचिन्ह रूपी मणिको धारण करके इन्द्र विजयी हुआ था, उसी विजयी मणिसे हमें राष्ट्रके हितके लिये बढाइये ॥ १ ॥ जो अनुदार शत्रु हैं और जो प्रतिपक्षी हैं उनको परास्त करनेके लिये; तथा जो हमसे बुरा व्यवहार करने हैं और जो हमपर सेना भेज कर चढाई करते हैं उनको ठीक करनेके लिये अपनी तैयारी करके आगे बढो ॥ २ ॥ सूर्य, चन्द्र आदि देव तथा सब भूतमात्र तुझे सहायता देकर बढा रहे हैं, जिससे तू सब शत्रुओंको दबानेवाला बन गया है ॥ ३ ॥ शत्रुको घेरनेवाला, वीरोंका पराभव करनेवाला, प्रतिपक्षियोंको दूर करनेवाला यह राज चिन्ह रूपी मणि है । इस लिये प्रतिपक्षियोंका पराभव करनेके लिये और अपने राष्ट्रका अभ्युदय करनेके लिये मुझपर यह मणि बांध दीजिये ॥ ४ ॥ जैसा यह सूर्य उदय हुआ है, वैसा यह मेरा वचन भी प्रकट हुआ है, अब तुम ऐसा करो कि जिससे मैं शत्रुका नाश करनेवाला, प्रतिपक्षियोंको दूर करनेवाला होकर शत्रु रहित हो जाऊँ ॥ ५ ॥ मैं प्रतिपक्षियोंका नाश करके बलवान बनकर, विजयी होकर अपने राष्ट्रके अनुकूल कार्य करता हुआ अपने वीरोंका और अपने राष्ट्रके सब लोगोंका हित साधन करूँगा ॥ ६ ॥



## अनुसन्धान ।

यह सूक्त राज प्रकरण का है इस लिये इसी कांडके अपराजित गणके सब सूक्तोंके साथ इसका विचार करना योग्य है । तथा आगे आनेवाले राज प्रकरणके सूक्तोंके साथ भी इसका संबंध देखने योग्य है । इससे पूर्व अपराजित गणके सूक्त २, १९, २०, २१ ये आये हैं, इसके अतिरिक्त अभय गण, सांग्रामिक गणके सूक्तोंके साथ भी इन सूक्तोंका विचार करना चाहिये ।

## अभीवर्त मणि ।

जिस प्रकार राजाके चिन्ह राजदंड, छत्र, चामर आदि होते हैं उसी प्रकारका “ अभीवर्त मणि ” भी एक राजचिन्ह है । इसके धारण करनेके समय यह सूक्त बोला जाता है ।

देवोंका राजा इन्द्र है, उसका पुरोहित बृहस्पति या ब्रह्मणस्पति है । यह पुरोहित इन्द्रके शरीरपर यह अभीवर्त मणि बांधता है । अर्थात् राज पुरोहित ही राजाके शरीरपर यह राजचिन्ह रूपी मणि बांध देवे । यह संबंध देखनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह सूक्त संवाद रूप है । यह संवाद इस प्रकार है देखिये—

## इस सूक्तका संवाद ।

राजा= हे पुरोहित जी ! जो अभीवर्त मणि इन्द्रके शरीर पर देव गुरु बृहस्पतिने बांध दिया था और जिससे इन्द्र दिग्विजयी हुआ था, वह राजचिन्हरूपी मणि मेरे शरीर पर आप धारण कराइये, जिससे मैं राष्ट्रका वर्धन करनेमें समर्थ हो जाऊं ॥ १ ॥

पुरोहित= हे राजन् ! जो अनुदार शत्रु हैं और जो प्रतिपक्षी हैं तथा जो हमारे राष्ट्रके साथ बुरा व्यवहार करते हैं और हमपर सैन्यसे चढाई करते हैं उनको परास्त करनेकी तैयारी करो ॥ २ ॥ सूर्य, चंद्र तथा सब भूत तुम्हारी सहायता कर रहे हैं, जिससे तू शत्रुको दबा सकता है ॥ ३ ॥

राजा= पुरोहित जी ! यह राजचिन्ह रूपी मणि शत्रुको घेरने, वैरीका पराभव करने और प्रतिपक्षियोंको हटाने का सामर्थ्य देनेवाला है । इसलिये विरोधियोंका पराभव और अपने राष्ट्रका अभ्युदय करनेके कार्यमें मुझे समर्थ बनानेके लिये मुझपर यह मणि बांध दीजिये ॥ ४ ॥ जैसा सूर्य उदयको प्राप्त होता है वैसाही मेरेसे शब्दोंका प्रकाश होता



है, इस लिये आप ऐसा करें जिससे मैं शत्रुका नाश कर सकूँ ॥ ५ ॥ मैं बलवान् बनकर प्रतिपक्षियोंको दूर करूँगा और विजयी होकर अपने राष्ट्रके अनुकूल कार्य करता हुआ अपने वीरोंका और राष्ट्रका हित करूँगा ॥ ६ ॥

पाठक यह संवाद विचारसे पढ़ेंगे तो उनके ध्यानमें इस सूक्तका आशय शीघ्रतासे आसकेगा । राजा राजचिन्ह धारण करता है, उस समय पुरोहित राजासे प्रजाहितकी कुछ बातें करनेके लिये कहते हैं और राजा भी राष्ट्रहित करनेकी प्रतिज्ञा उस समय करता है । पुरोहित ब्राह्मशक्तिका और राजा क्षात्र शक्तिका प्रतिनिधि है । राष्ट्रकी ब्राह्मशक्ति पुरोहितके मुखसे राजकर्तव्यका उपदेश राजाको करती है, राजगद्दीपर राजाको रखना या न रखना राष्ट्रकी ब्राह्मशक्ति के आधीन रहना चाहिये । अर्थात् ब्राह्मशक्तिके आधीन क्षात्रशक्ति रहनी चाहिये । यह बात यहां प्रकाशित होती है । ज्ञानी लोगोंपर शूरोंकी हुकुमत न रहे, परंतु शूर ज्ञानीलोगोंके आधीन कार्य करें । राष्ट्रकी ( Civil & military ) ब्राह्म तथा क्षात्र शक्ति एक दूसरेके साथ कैसा वर्ताव करे, यह इस सूक्तमें स्पष्ट हुआ है । ब्राह्मशक्ति द्वारा संमत हुआ राजा ही राजगद्दीपर आसकता है अन्य नहीं ।

### राजाके गुण ।

इस सूक्त में जो राजाके गुण बताये हैं, वे निम्न शब्दों द्वारा पाठक देख सकते हैं—

१ अस्मान् राष्ट्राय अभिवर्धय = हमारी शक्ति राष्ट्रकी उन्नति के लिये बढ़े अर्थात् राजाके अंदर जो शक्ति बढ़ती है वह राष्ट्रकी उन्नतिके लिये ही सार्थक में लगे, यही भाव राजाके अंदर रहे । अपनी बढी हुई तन मन धन आदि सब शक्ति अपने भोग के लिये नहीं है प्रत्युत राष्ट्रकी भलाई के लिये ही है यह जिस राजाका निश्चय होगा वही सच्चा राजा कहा जासकता है ॥ ( मंत्र १ )

२ राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे = राष्ट्रकी उन्नति और वैरियोंका पराभव करने के लिये राजचिह्नरूप मणि मेरे ( राजाके ) शरीर पर बांधा जावे । मणि आदि रत्न तथा अन्य राज चिन्ह जो राजा धारण करता है वह अपनी शोभा बढ़ानेके लिये नहीं है, प्रत्युत वे केवल दोही उद्देश्य के लिये हैं, ( १ ) राष्ट्रकी उन्नति हो, और ( २ ) जनताके शत्रु दूर किये जाय । राजाके अंदर यह शक्ति उत्पन्न करने के लिये ही उसपर राजचिन्ह चढाये जाते हैं । ( मंत्र ४ )



३ अभिराष्ट्रः = ( अभितः राष्ट्रं यस्य ) जिसके चारों ओर राष्ट्र है, ऐसा राजा हो । अर्थात् राजा अपने राष्ट्रमें रहे, राष्ट्र के लिये रहे, राष्ट्रके साथ रहे, राष्ट्रका बनकर रहे । राजाका हित राष्ट्रहित ही हो, और राष्ट्रका हित राजहित हो, अर्थात् दोनोंके हित संबंध में फरक न रहे । राजाके लिये राष्ट्र अनुकूल रहे और राष्ट्रके लिये राजा अनुकूल हो । राष्ट्रहितका उच्च ध्येय अपने सामने रखने वाले राजाका बांध इस शब्दसे होता है । जिस राजाके लिये अपनी जान देनेके लिये राष्ट्र तैयार होता है उस राजाका यह नाम है । यह शब्द आदर्श राजाका वाचक है । ( मं. ६ )

४ शत्रुहः—शत्रुका नाश करने वाला । ( मं० ५ )

५ असपत्नः — अंदरके प्रतिपक्षी या विरोधी जिसको न हों । ( मं. ५ )

६ सपत्न हा - प्रतिपक्षीका नाश करनेवाला, अर्थात् प्रतिपक्षियोंका पराभव करने वाला । ( मं० ५ ) “ सपत्न-क्षयणः ” यह शब्द इसी अर्थ में ( मं. ६ में ) आया है ।

७ वृषा— बलवान् । सब प्रकार के बलोंसे युक्त राजा होना चाहिये, अन्यथा वह परास्त होगा । ( मं० ६ )

८ विधासहिः — शत्रुके हमले होनेपर उनको सहन करके अपने स्थानसे पीछे न हटने वाला । ( मं० ६ )

९ वीराणां जनस्य च विराजानि— राष्ट्रके शूरवीर तथा राष्ट्रकी संपूर्ण जनता इन सब को संतुष्ट करनेवाला । ( मं. ६ )

१० प्रतिपक्षियोंको दवाना, वैरियोंका नाश करना, सेना के साथ चढ़ाई करनेवाले का प्रतिकार करना और जो दुष्ट व्यवहार करता है उसको ठीक करना आदि राजाके कर्तव्य ( मं० २ ) में कहे हैं ।

ये दस कर्तव्य राजाके इस सूक्तमें कहे हैं ये सब मनन करने योग्य हैं । ये सब कर्तव्य वही भाव बता रहे हैं कि राजा अपने भोग के लिये राजगद्दीपर नहीं आता है, प्रत्युत राष्ट्र के हित करनेके लिये ही आता है । यदि राजालोग् इस सूक्त का अधिक मनन करके अपने लिये योग्य बोध लेंगे तो बहुत ही उत्तम होगा ।



## राजचिह्न ।

छत्र, चामर, राजदण्ड, मणि, रत्न, रत्नमाला, मुकुट, विशेष कपडेलत्ते, राजसभा का ठाठ, हाथी, घोड़े आदि सब जो राजचिह्न करके समझे जाते हैं, इन चिह्नोंके धारण करनेसे जनतापर कुछ विशेष प्रभाव पड़ता है और उस प्रभाव के कारण राजाके इर्दगिर्द शक्ति केन्द्रीभूत हो जाती है। यद्यपि इस प्रत्येक चिह्नमें कोई विशेष शक्ति नहीं होती, तथापि राजचिह्न धारण करनेवाले साधारण सिपाहीमें भी अन्य सामान्य जनोकी अपेक्षा कुछ विशेष शक्ति होनेका अनुभव हरएक करता है; इसी प्रकार उक्त चिह्नोंके कारण अमूर्त राज शासन का एक विशेष प्रभाव जनता पर पड़ता है जिस कारण राजा शक्तियोंका केन्द्र बनता है। जिस समय अपने चिह्नोंसे और संपूर्ण ठाठ से राजा जाता है उस समय उसका बड़ा भारी प्रभाव सामान्यजनता पर पड़ता है, इसी कारण राजामें शक्ति इकट्ठी होती है। इस सूक्त के चतुर्थ मंत्रमें “यह मणि ही शत्रुनाश करने वाला, प्रभाव बढ़ानेवाला, राष्ट्रहित साधन करनेवाला है” इत्यादि कहा है, उसका भाव उक्त प्रकार ही समझना योग्य है। सिपाहीकी शक्ति उसके चिह्नों से ही उसमें आती है और यह शक्ति वास्तविक नहीं प्रत्युत एक विशेष भावनासे ही उत्पन्न होती है। संपूर्ण राजचिह्नों की शक्ति इसी प्रकार भावनात्मक है। अस्तु, अब शत्रुके लक्षण देखिये—

## शत्रुके लक्षण ।

इस सूक्तमें निम्नलिखित प्रकार शत्रुके लक्षणोंका वर्णन किया है—

- १ यः दुरस्यति= जो दुष्ट व्यवहार करता है। (मं. २)
- २ सपत्नः= भिन्न पक्षका मनुष्य। राष्ट्रमें जितने पक्ष होंगे, उतने पक्षवाले आप-समें सपत्न होंगे। सपत्न शब्द (Party Politics) पक्ष भेदका राजकारण बता रहा है।
- ३ अरातिः= अनुदार, जो मनमें श्रेष्ठ भाव नहीं रखता।
- ४ घृतन्यन्=सैन्यसे चढाई करनेवाला।

इन शब्दोंके विचार से शत्रुका पता लग सकता है। इनमें कई अंदरके शत्रु हैं और कई बाहरके हैं।



## सबकी सहायता ।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि “सूर्य चंद्र और सब भूतमात्र जिस राजाके सहायक होते हैं वह शत्रुको पराजित करता है ॥” (मं. ३) इसमें सूर्य चंद्र आदि शब्द बाह्य सृष्टिकी सहायता बता रहे हैं, ( Nature's help ) निसर्गकी सहायता राजाकी शक्तिका एक महत्त्वपूर्ण भाग है । राष्ट्रकी रचना ही ऐसी हो कि जहां शत्रुका प्रवेश सुगमता से न हो सके । यह एक शक्ति ही है ।

दूसरी शक्ति ( विश्वा भूतानि ) सब भूत मात्रसे प्राप्त होती है । पंचमहाभूतोंसे शक्ति प्राप्त करनेकी भी बात इसमें सुगमतासे ज्ञात हो सकती है । “ भूत ” शब्दका दूसरा प्रसिद्ध अर्थ “ प्राणी, मनुष्य ” ऐसा होता है । जिस राजाको राष्ट्रके सब प्राणी और सब मनुष्य सहायक हों, उसकी शक्ति विशेष होगी ही, इसमें क्या संदेह है ? यही सब जनताकी शुभ इच्छासे प्राप्त होनेवाली शक्ति है जो राजाको अपने पास रखनी चाहिये क्योंकि इसीपर राजाका चिरस्थायित्व अवलंबित है ॥

वैदिक राज प्रकरण के विषयमें इस सूक्तमें बड़ा अच्छा उपदेश है । यदि पाठक अधिक मनन करेंगे तो उनको राज प्रकरण के बहुत उत्तम निर्देश इस सूक्तमें मिल सकते हैं ।

## केवल राष्ट्रके लिये ।

इस सूक्तके अंदर कई सामान्य निर्देश भी हैं जिनका यहां विचार करना आवश्यक है । इस से पाठकों को इस बातका भी पता लग जायगा कि वेदके विशेष उपदेशों से भी सामान्य निर्देश कैसे प्राप्त होते हैं । देखिये प्रथम मंत्रमें—

अस्मान् राष्ट्राय अभिवर्धय । ( मंत्र १ )

कहा है । इसका अर्थ— “ हमें राष्ट्रके लिये बढ़ाओ—” अर्थात् हमारी उन्नति इस लिये करो कि हम राष्ट्रहित साधन करने के योग्य बनें । हमारा शरीर सुदृढ हो, हमारी आयु दीर्घ हो, हमारे इंद्रिय अधिक कार्य क्षम बनें, हमारा मन मननशक्ति से युक्त हो, हमारी बुद्धी ज्ञानसे परिपूर्ण हो, हममें आत्मिक बल बढ़े, तथा हमारी कौटुंबिक, सामाजिक तथा अन्यान्य शक्तियां बढ़ें । ये सब शक्तियां इस लिये बढ़ें कि इन के योगसे हमारा राष्ट्र अभ्युदयसे युक्त हो । इन शक्तियों की वृद्धि इसलिये नहीं करनी है कि इनसे केवल व्यक्तिका ही सुख बढ़े, केवल एक जातीके हाथमें अधिकार रहे, या किसी एक कुलके पास परम अधिकार हो जाय; परंतु ये शक्तियां इस लिये बढ़ानी चाहियें कि इन के संयोगसे राष्ट्रकी प्रगती हो, राष्ट्रकी उन्नति हो ।



सामान्य अर्थ देखनेके समय इस प्रथम मंत्रका “ अस्मान् ” शब्द बड़ा महत्त्व रखता है । इसका अर्थ होता है “ हम सबको ” । अर्थात् हम सबको मिलकर राष्ट्र हित के लिये वृद्धिगत करो । इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि किसी एक की ही उन्नति या किसी एक की शक्तिका विकास ही यहां अपेक्षित नहीं है, परंतु सबकी शक्तिका विकास यहां अपेक्षित है । राष्ट्रीय उन्नतिके लिये जो प्रजाजनोंकी शक्तिका विकास करना है वह हरएक प्रजाजन का, किसी प्रकार भी पक्षपात न करते हुए, करना चाहिये । अर्थात् जातिविशिष्ट या संघविशिष्ट पक्षपातके लिये यहां कोई स्थान रहना नहीं चाहिये ।

जो मैं करता हूं वह राष्ट्रके लिये समर्पित हो यही भाव हरएक के मनमें रहना चाहिये । —

राष्ट्राय मह्यं बध्यतां ।

सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥ ( मं० ४ )

“ मुझे राष्ट्रके लिये बांध दे ताकि मैं राष्ट्रके शत्रुओंका पराभव कर सकूं । ” यह भाव मनमें धारण करना चाहिये । मैं राष्ट्रके साथ बांधा जाऊं, मेरा अपने राष्ट्रके साथ ऐसा संबंध जुड़ जाय कि वह कभी न टूटे, राष्ट्रका हित और मेरा हित एक बने, मैं राष्ट्रके लिये ही जीवित रहूं, इत्यादि प्रकारके भाव उक्त मंत्रमें हैं । जो जिसके साथ बांधा जाता है वह उसीके साथ रहता है । यदि स्वराष्ट्राभिमानसे मनुष्य राष्ट्रके साथ एक बार अच्छी प्रकार कसकर बांधा जाय तो वह वहांसे नहीं हटेगा । इसी प्रकार मनुष्य अपने राष्ट्रके साथ बांधे जाय और ऐसा परस्पर संबंध जड़नेके कारण राष्ट्रमें अपूर्व संघ शक्ति उत्पन्न हो यह बात वेद को अभीष्ट है ।

हरएक मनुष्य “ अभिराष्ट्र ” ( मं० ६ ) बने अर्थात् राष्ट्रहित करनेका ध्येय अपने सन्मुख रखे । वह मनुष्य कहीं भी जाय, कुछ भी कार्य करे, उसके सन्मुख अपने राष्ट्रके अभ्युदयका विचार जाग्रत रहे । इस प्रकार जिसके मनके सामने राष्ट्रका विचार सदा जाग्रत रहता है, उसीको वेद “ अभिराष्ट्र ” कहता है । (अभितः राष्ट्र) अपने चारों ओर अपना राष्ट्र है ऐसा माननेवाला हरएक अवस्थामें अपने सन्मुख अपने राष्ट्रको देखने वाला जो होता है उसका यह नाम है ।

पाठक इस प्रकार मंत्रोंके सामान्य उपदेशोंसे अधिक मनन करके बोध उठावें । वेदमें राष्ट्र हितके उपदेश किस प्रकार स्पष्ट रूपमें हैं यह इस रीतिसे पाठक देख सकते हैं ।



# Employment for millions STUDENTS' OWN MAGAZINE

A Monthly English Teacher--Careers for Young men a speciality.

ANNUAL SUBSCRIPTION WITH SUPPLEMENTS, Rs. 3.

GET YOUR COPY FOR MARCH NUMBER RESERVED FOR 6 ANNAS STAMPS.

SAMPLE COPY POSITIVELY No.

APPLY TO-

CAPITAL INDUSTRIAL BUREAU, RAM GALL, LAHORE.

## वैदिक उपदेश

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिए बारह उपदेश हैं। इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी। मूल्य ॥ ) आठ आने। डाकव्यय - ) एक आना।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

देश देशान्तर का ज्ञान प्राप्त करनेका अपूर्व साधन

विद्यार्थियों को परीक्षा पास करने का

सुगम उपाय

## भूगोल

भूगोल विषयक हिन्दी का एकमात्र सचित्र मासिकपत्र। पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बिहार उड़ीसा, मध्य प्रान्त और बरार के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत।

"भूगोल" में ज्योतिष, यात्रा, व्यवसाय, पशु पक्षिपति अनुसंधान आदि भूगोल के सभी अंगों पर उच्च कोटि के मौलिक लेख प्रकाशित होते हैं। ( पिछले दो वर्षों के लेखों और लेखकों की सूची मुफ्त मंगाकर स्वयं देख लीजिये )।

वार्षिक मूल्य ३ )

मैनेजर "भूगोल" ई० सा० कालेज इलाहाबाद,

कुस्ती, लाठी, पटा. बार चगैरह के

सचित्र व्यायाम मासिक

चार भाषाओं में हिन्दी भाषाका मूल्य ५ ) अंग्रेजी का ५ ) मराठी का २॥ ) गुजराती का २॥ ) रक्खा गया है। उत्तम लेखों और चित्रों से पूर्ण होने से देखनेलायक है। नमूने का अंक मुफ्त नहीं भेजा जाता। व्ही. पी. खर्च अलग लिया जाता है। ज्यादा हकीकतके लिये लिखो। मैनेजर, - व्यायाम राजपूरा, बडोदा

## योगमीमांसा

त्रैमासिक पत्र

संपादक— श्रीमान् कुवलयानंद जी महाराज।

कैवल्यधाम आश्रममें योग शास्त्र की खोज हो रही है जिस खोजका परिणाम आश्चर्यजनक सिद्धियोंमें हुआ है, उन आविष्कारोंका प्रकाशन इस त्रैमासिक द्वारा होगा। प्रत्येक अंकमें ८० पृष्ठ और १६ चित्र दिये जायेंगे।

वार्षिक चंदा ७ ) ; विदेशके लिये १२ शि० प्रत्येक अंक २ ) ६.

श्री. प्रबंधकर्ता-योगमीमांसा कार्यालय, कुंजवन; पोष्ट-लोणावला, ( जि. पुणे )



# छूत और अछूत ।

## [ प्रथम भाग ]

अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ! अत्यंत उपयोगी !!

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है—

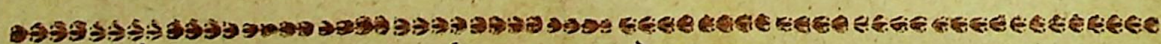
- १ छूत अछूत के सामान्य कारण,
- २ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढी,
- ३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
- ४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
- ५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
- ६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
- ७ गुणकमानुसार वर्ण व्यवस्था,
- ८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
- ९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
- १० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
- ११ वैदिक कालकी उदारता,
- १२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,
- १३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था ।

इस पुस्तकमें हर एक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है । यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है ।

पृष्ठ संख्या १८० मूल्य केवल १ रु. है डाकव्यय।)

### अतिशीघ्र मंगवाइये ।

द्वितीय भाग छप रहा है अगले मासमें तैयार होगा ।



मुद्रक तथा प्रकाशक—श्री. दा. सातवलेकर, भारतमुद्रणालय ।

स्वाध्याय मंडल, औंध, जि. सातारा.



# ॐ वैदिक धर्म ।

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

वर्ष ८

अंक ८

कमांक

१२



श्रावण

संवत् १९८४

अगस्त

सन १९२७

छपकर तैयार है।

## महाभारत की समालोचना

प्रथम भाग और द्वितीय भाग ।

प्रति भागका मूल्य ॥ ) डाकघर = ) बी. पी. से॥ = )

मंत्री— स्वाध्याय मंडल औद्य ( जि. सातारा )

वार्षिकमूल्य—

म० आ० से ४ )

बी. पी. से ४॥ ) विदेशके लिये ५ )



विषयसूची ।

गोमांसभक्षण की प्रथा । पृ. १२९-१६८

~~~~~

## Employment for millions STUDENTS' OWN MAGAZINE.

A Monthly English Teacher--Careers for Young men a speciality.

ANNUAL SUBSCRIPTION WITH SUPPLEMENTS, Rs. 3.

GET YOUR COPY FOR MARCH NUMBER RESERVED FOR 6 ANNAS STAMPS.

SAMPLE COPY POSITIVELY NO.

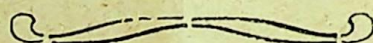
APPLY TO-

CAPITAL INDUSTRIAL BUREAU, RAM GALLI, LAHORE.

~~~~~

# आर्यसमाज का इतिहास

## त्रैमासिक रूप में ।



इतिहास की बहुत सी सामग्री तैयार है। उसकेवल लेखनीमें लाकर प्रकाशित कर देने की कमी है। सम्पूर्ण इतिहास रायल अठपेजो के कम से कम १००० पृष्ठोंमें समाप्त होगा। इतनी बड़ी पुस्तक का इकट्ठा छपवाना मेरी शक्ति से बाहिर है, इस कारण सुलभता से कार्य को करने के लिए मैंने निम्न लिखित विचार किया है।

इतिहास क्रमशः त्रैमासिक रूपमें प्रकाशित किया जायगा। प्रतिअंक कम से कम १०० पृष्ठ पाठकोंकी भेंट हुआ करेंगे। १०० पृष्ठ की पुस्तक तैयार होते ही ग्राहकों को रवाना की जायगी।

इतिहास के स्थायी ग्राहकों का प्रत्येक अंक॥॥) बारह आने में मिलेगा और जो लोग ग्राहक नहीं हैं

उन्हें १) एक रुपये में दिया जायगा। स्थायी ग्राहक बनने के लिए प्रत्येक ग्राहक को २) दो रुपये प्रारम्भिक फीस के पहिले अंक के साथ देने पड़ेंगे, और यह २) दो रुपये इतिहास के आखिरी अंकों में मजरा दे दिए जायेंगे। तीसरे महिने इतिहास का अंक प्रकाशित होकर ॥॥) की वी. पी. द्वारा भेज दिया जायगा।

इतिहास का प्रकाशन ५०० ग्राहकों के नाम आनेपर आरम्भ किया जायगा। जो सज्जन इतिहास के प्रकाशन में सहायता देना चाहते हैं, वह शीघ्र ही पत्र लिख कर ग्राहक श्रेणी में अपना अपना नाम लिखा दें।

इन्द्र विद्यावाचस्पति

( अर्जुन सम्पादक ) देहली



# संस्कृत पाठ माला।

[ चौबीस भागोंमें सब संस्कृत पढ़ाई हो गई है । ]

बारह पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ३ ) और वी. पी. से ४ )

चौबीस पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ६ ) रु. और वी. पी. से ७ )

प्रतिभाग का मूल्य १- ) पांच आने और डा. व्य. - ) एक आना ।

अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति ।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

१ प्रथम द्वितीय और तृतीय भाग ।

इन तीन भागोंमें संस्कृत भाषाके साथ साधारण परिचय कर दिया गया है ।

२ चतुर्थ भाग ।

इस चतुर्थ भागमें संधि विचार बताया है ।

३ पंचम और षष्ठ भाग

इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया गया है ।

४ सप्तम से दशम भाग ।

इन चार भागोंमें पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक. लिङ्गी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है ।

५ एकादश भाग ।

इस भागमें “ सर्वनाम ” के रूप बताये हैं ।

६ द्वादश भाग ।

इस भागमें समासों का विचार किया है ॥

७ तेरहसे अठारहवें भाग तकके ६ भाग ।

इन छः भागों में क्रियापद विचार की पाठविधि बताई है ।

८ उन्नीससे चौबीसवें भाग तकके ६ भाग ।

इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है ।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे उन को अल्प परिश्रमसे बड़ा लाभ हो सकता है ।

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )



# अग्नि विद्या ।

इस पुस्तक में निम्न लिखित विषय हैं ।

- १ अग्नि शब्दका भाव, २ अग्निके पर्याय शब्द, ३ पहिला मानव अग्नि, ४ वृषभ और धेनु, ५ अंगिरा ऋषि, ६ वैश्वानर अग्नि, ७ ब्राह्मण और शत्रिय, ८ जनता का केन्द्र, ९ सब धन संघका है, १० बुद्धिमें पहिला अग्नि, ११ मनुष्यमें अग्नि, १२ मर्त्योंमें अमर अग्नि, १३ वाणीमें अग्नि, १४ पुरोहित अग्नि, १५ शक्ति प्रदाता अग्नि, १६ हस्त-पाद-हीन गुह्य अग्नि, १७ वृद्ध नागरिक, १८ मूकमें वाचाल, १९ अनेकों का प्रेरक एक देव, २० जीवनाग्नि, २१ अग्निकी दस बहिर्ने, २२ देवोंके साथ रहनेवाला अग्नि, २३ यज्ञका झंडा, २४ गुह्य निवासी अग्नि, २५ सात संख्याका गुह्य तत्त्व, २६ तनूनपात् अग्नि, २७ यज्ञ पुरुष, यज्ञशाला, मंदिर ( चित्र ), २८ परमाग्नि, २९ अग्नि सूक्त का अर्थ और व्याख्या ।
- हर एक विषयको सिद्ध करने के लिये वेद के विपुल प्रमाण दिये हैं । इस पुस्तकके पढ़ने से अग्नि विद्या की वैदिक कल्पना ठीक प्रकार ज्ञात हो सकती है ।
- मूल्य १॥ ) रु. डाकव्यय = ) है  
मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

## महाभारत ।

हिंदी भाषा—भाष्य—समेत

तैय्यार हैं ।

- १ आदिपर्व पृष्ठ संख्या ११२५ मूल्य म. आ. से ६ ) रु. और वी. पी. से ७ ) रु.  
२ सभापर्व पृष्ठ संख्या ३५६ मूल्य म. आ. से २ ) और वी. पी. से. ) रु. २॥ )  
३ वनपर्व पृष्ठ संख्या १५३८ मूल्य ८ ) रु. और वी. पी. से. ९ ) रु.  
४ विराटपर्व पृष्ठ संख्या ३०६ मू० म. आ. से १॥ ) और वी. पी. से २ ) रु.  
५ उद्योगपर्व पृष्ठ संख्या ९५३ मू. म. आ० से ५ ) रु. और वी. पी. से ६ रु.

### ६ महाभारत समालोचना—

- १ प्रथम भाग । मू. म. आर्डरसे ॥ ) वी. पी. से ॥ = ) आने ।  
२ द्वितीय भाग । मू. म. आर्डरसे ॥ ) वी. पी. से ॥ = ) आने ।  
महाभारतके ग्राहकोंके लिये १२०० पृष्ठोंका ६ ) रु. मूल्य होगा ।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध, ( जि. सातारा )



वर्ष ८

अंक ८

क्रमांक १२



श्रावण

संवत् १९८४

अगस्त

सन १९२७

# वैदिक धर्म



वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ।

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

गौका महत्त्व ।

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्गौः समुद्रसमं सरः ।

इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोप्तु मात्रा न विद्यते ॥

यजुर्वेद० २३ । ४८

( १ ) सूर्यके समान (ब्रह्म) ज्ञान तेजस्वी है, (२) द्युलोक समुद्रके समान सरोवर है, (३) इन्द्र पृथ्वीसे भी बहुत बड़ा है, परंतु (४) " गौके लिये कोई उपमा ही नहीं है । "

सूर्य, द्युलोक और पृथ्वी इनकी महत्ता बहुत बड़ी है, तथापि उनके साथ तुलना हो सकती है, जैसी - ज्ञानकी तुलना सूर्यके प्रकाशसे की जाती है, समुद्रकी उपमा द्युलोक को दी जाती है और यद्यपि पृथ्वी बहुत बड़ी है तथापि इन्द्र उस पृथ्वीसे बहुत बड़ा है, क्योंकि उसीकी शक्ति भेद्योंद्वारा पृथ्वीको सहायता करती है । इस लिये सूर्य, द्युलोक और पृथ्वी ये पदार्थ बड़े होनेपर भी निरुपमेय नहीं हैं; परंतु हम कह सकते हैं कि "गौ ही एक ऐसी है जिसके लिये कोई उपमा नहीं," न उनके सदृश कोई अन्य वस्तु है; क्यों कि अकेली गौ मनुष्यका जितना हित करती है उतना किसी अन्यसे नहीं होता, इस लिये गौके लिये कोई उपमा नहीं है । अर्थात् उनके उपकार मानव जातीपर अनंत हैं ।



## गोमांस भक्षण की प्रथा ।

### ( १ ) म० वैद्यजीका मत ।

कुच्छ सप्ताह व्यतीत हुए “ यंग इंडिया ” पत्रमें श्री० म० चिंतामणराव वैद्यजीका गोरक्षण के विषय-पर एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने लिखा था कि “ प्राचीन कालमें इस भारत भूमिमें गोमांस भक्षण की प्रथा थी, वैदिक जमानेमें ऋषि लोग यज्ञ यागोंमें गोमांस का उपयोग करते थे, इतनाही नहीं प्रत्युत प्रात्यहिक क्षुधा शमन के लिये भी गोमांस का उपयोग होता था । ”

श्री० महात्मा गांधीजीने इस लेख को जनताके सम्मुख रखने के अवसर में स्पष्ट शब्दोंसे लिखा था कि “ श्री. वैद्यजीका यह विधान कई लोग आक्षेपणीय समझेंगे; परंतु अतिप्राचीन कालमें लोग क्या करते थे और क्या नहीं इसके विवादमें हमें अपना समय खो देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्यों कि आज हम गोरक्षा किस युक्तिसे कर सकते हैं, यही इस समय हमें देखना है । ”

अतिप्राचीन वैदिक कालकी प्रथा हमारे इस समयके लिये घातक सिद्ध हुई तो उसी प्रथाको स्वीकार करनेका आग्रह कोई नहीं करेगा; वेदने यदि “ अग्नि शीत है ” ऐसा कहा तो हम उस वेदाज्ञाको कदापि नहीं मानेंगे, ऐसा जो श्री शंकराचार्यजीने कहा है वह इस विषयमें भी सत्य है। केवल किसी बातकी प्राचीनता उसकी उत्तमताको सिद्ध नहीं कर सकती, अतः हम कह सकते हैं कि यदि वैदिक जमानेमें लोग गोमांस भक्षण करते थे ऐसा सिद्ध हुआ, तो उससे यह कदापि सिद्ध नहीं होगा कि आज भी हमें गोमांस भक्षण करना आवश्यक है। कई बातें ऐसी हैं कि जो वैदिक जमानेमें प्रचलित

थीं, परंतु इस समय उनका प्रचार नहीं है । इतना होनेपर भी चूंकि हमारा धार्मिक संबंध ऋषिकाल-के तथा वैदिक कालके आचारसे घनिष्ठ रूपमें है, इसलिये हमें देखना चाहिये कि क्या सचमुच वैदिक कालके ऋषिमुनी गोमांस भक्षण करते थे या नहीं । इतिहासिक खोजकी दृष्टिसे इसका विचार हमें करना चाहिये, धार्मिक अंध विश्वास को एक ओर रखकर केवल इतिहासिक सत्य तत्त्व देखनेके लिये ही यह खोज हमें करनी चाहिये । क्यों कि गोमांस भक्षण की प्रथाका प्राचीन कालमें अस्तित्व सिद्ध करेगा कि गौका पवित्र्य नवीन है, यदि अतिप्राचीन कालसे गौकी इतनी पवित्रता होती तो उसको काटकर खाने की संभावना कष्टसे मानने योग्य बनेगी । अतः हमें देखना चाहिये कि वैदिक समय में गोमांस भक्षण की प्रथा थी या नहीं ।

### ( २ ) डा० मुंजेजी का मत ।

इसी समय और एक बात हुई, जिसके कारण इसलेख को लिखनेकी अत्यंत आवश्यकता प्रतीत हुई, वह बात यह है कि अखिल हिंदू महासभाके अध्यक्ष और बड़े उत्साही कार्यवाह नागपूर के सुप्रसिद्ध डाक्टर मुंजे महोदयजीने अपना यह मत प्रकाशित किया कि हिंदूमात्रको मांसभोजन करके दृष्ट पृष्ट होना चाहिये। जबसे हिंदू जातीने मांसभोजन छोड़ दिया और जैन बौद्धोंका अहिंसावाद अपनाया तबसे हिंदूजातीका क्षतिपात हुआ। इसलिये भविष्य कालमें अपनी जातीमें बल उत्पन्न करनेकी इच्छा हो तो मांसभोजन करना आवश्यक है ।

डाक्टर मुंजे महोदयजीने केवल मांसभोजन करनेकी ओर लोगोंको प्रेरित था; इतनेमें श्री. वैद्यजीका



लेख प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने वैदिक कालमें गोमांसभक्षणकी प्रथा होनेकी बात लिख दी। अब यदि कोई मनुष्य दोनों महाशयोंके मतोंका संगतिकरण करेगा, तो उसका फल यही निकल आवेगा कि भारत वर्षमें जबतक गोमांसभक्षण जारी था, तबतक के आर्य विजयशाली थे और जबसे अहिंसा मत प्रचलित हुआ तबसे इनका वैभव कम होने लगा।

हमें पूरा विश्वास है कि डाक्टर मुंजे और श्री. वैद्यजीके मत एकदूसरेकी पुष्टीके लिये नहीं लिखे गये हैं और उन्होंने अपने स्वतंत्र विचारसेही अपनी स्वतंत्र संमतियां प्रकाशित की हैं; तथापि उन दोनों मतोंका करीब एक समय में प्रकाशित होना लोगोंको गोमांस भक्षणके प्रलोभनमें डाल सकेगा, इस लिये यह लेख विस्तारसे लिखना आवश्यक हुआ है।

श्री. वैद्यजीका उक्त मत जिस समय हमने देखा उस समय योगप्रदीपिकाका एक श्लोक हमारे सम्मुख उपस्थित हुआ। वह श्लोक यह है—

### (३) योगमें गोमांस ।

गोमांसं भक्षयेन्नित्यं पिवेदमरवारुणीम् ।

कुलीनं तमहं मन्ये इतरे कुलघातकाः ।

हठयोगप्रदीपिका ।

“ नित्य गोमांस भक्षण करें और अमरवारुणी-मद्य-का पान करें, उसी को मैं कुलीन मानता हूं, इतर लोग कुलघातकी हैं । ”

अर्थात् गोमांसभक्षण और मद्यपान करनेवाले लोग कुलीन और अन्य लोग कुलघातक हैं। यदि यह श्लोक किसीके सम्मुख आया, तो वह मनुष्य यही समझेगा कि योगशास्त्र ऐसे वाम मार्गका प्रचार करता है और योगियोंके मतसे गोमांस भक्षण और मद्यपान आवश्यक और धर्म्य बात है। श्लोक का अर्थ स्पष्ट है और जिस कारण उस ग्रंथमें यह श्लोक है, उस कारण उस ग्रंथका यह मत है, ऐसा कहनेमें कोई हानि नहीं। परंतु यहां विचार की बात यह है कि, योगग्रंथमें यह श्लोक है इस लिये योगके संकेतानुसार ही इसका अर्थ होना उचित है,

कोशोंके अन्य अर्थ चाहे कुछ हों, यदि वे अर्थ योगशास्त्रकी परिपाठीके अनुकूल न हों तो ग्रहण करने योग्य नहीं हो सकते। योगमें “गोमांसभक्षण” संज्ञाकी एक क्रिया है, इसका वर्णन निम्न श्लोकमें देखिये—

गोशब्देनोदिता जिह्वा तत्प्रवेशो हि तालुनि ।

गोमांसभक्षणं तत्तु महापातकनाशनम् ॥

हठयोग प्रदीपिका ।

“ गो शब्दका अर्थ है जिह्वा, उसका प्रवेश तालु-स्थानमें करना, इसको योगप्रणालीके अनुसार गोमांस भक्षण नाम है। ” इसी प्रकार “ अमरवारुणी ” नाम मस्तिष्ककी एक ग्रंथी के रस का है।

हर एक शास्त्रमें अपनी अपनी विशेष संज्ञाएं होती हैं। उनका अर्थ-निश्चय उनकी प्रणाली के अनुसार ही करना चाहिये। उनकी प्रणाली न देखी तो अर्थ का अनर्थ होने में देरी नहीं लगेगी। उक्त स्थानमें जिस प्रकार “ गोमांस भक्षण ” यह संज्ञा योग की एक विशेष क्रियाको है उसी प्रकार कई अन्य संज्ञाएं हैं कि जिनके कारण लोगोंको मांस भक्षण की प्रथा प्राचीन कालमें थी ऐसा भ्रम उत्पन्न होता है।

### (४) प्रकरणानुकूल अर्थविचार ।

ऐसे स्थानपर विचार इस बात का करना चाहिये कि यह शास्त्र कौनसा है, इसके महा सिद्धांत क्या हैं, उन महा सिद्धांतोंके अनुकूल यह अर्थ है वा नहीं, यदि अनुकूल हो तोही अर्थ सत्य होगा अन्यथा असत्य होगा। अब पूर्व लिखे गोमांस भक्षणवाले श्लोक के विषय में देखिये।

( १ ) यह श्लोक योग शास्त्र का है,

( २ ) योगशास्त्र प्रारंभसे ही “ अहिंसा, सत्य, अस्तेय ” आदि यमनियमोंका उपदेश करता है,

( ३ ) इस लिये इस शास्त्र में आये “ गोमांस भक्षण ” का अर्थ अहिंसापरक ही होना चाहिये, जो हमने ऊपर बताया ही है।

जो शास्त्र प्रारंभ में अहिंसा का उपदेश करता है उस शास्त्रमें आगे स्वमतव्याघात का बात कभी नहीं आ सकती। चूं कि किसीभी योगशास्त्र में



हिंसा के अनुकूल आज्ञा नहीं है और संपूर्ण योग शास्त्रके ग्रंथ एक मतसे कायिक, वाचिक, मानसिक, शाब्दिक परिपूर्ण अहिंसा का उपदेश कर रहे हैं, इसलिये पूर्वोक्त “गोमांस भक्षण” वाले श्लोक का अर्थ भी कायिक, वाचिक, मानसिक अहिंसाके साथ युक्तियुक्त ही करना चाहिये। अन्यथा स्वकीय तंत्रसिद्धांतकी हानि होगी।

इसको कहते हैं कि ‘प्रकरणानुकूल अर्थ करना’ ग्रंथ क्या है, प्रकरण क्या है, उसका सर्वतंत्र महासिद्धांत क्या है यह देखकर ही हमें वाक्योंका अर्थ करना चाहिये। यदि ऐसा न किया जाय तो संस्कृत ग्रंथोंके शब्दोंके अर्थोंका अनर्थ होना कोई असंभव बात नहीं है। क्योंकि संस्कृतमें प्रायः योग रूढिके शब्द होते हैं और पूर्व योग से उनका अर्थ सुगमतासे बदला जाता है। इसलिये संस्कृत ग्रंथ पढ़नेके समय हमें इस पूर्वापर प्रकरणके संबंधका अवश्य ही ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिये।

### ( ५ ) ऋषिपंचमी ।

क्या ऐसा विचार करते हुए हम कह सकते हैं कि वेदके मंत्रोंसे गोमांस भक्षण की प्रथा सिद्ध होती है? जैसा कि श्री० वैद्यजीने लिखा है? हमारे विचार से नहीं, गोमांस भक्षण की तो क्या, परंतु मांस भक्षण की प्रथा भी अति प्राचीन नहीं है। ऋषिकाल का या वैदिक काल का भोजन बतानेवाला एक तेहवार हिंदुओं में इस समय में भी प्रचलित है, जिसको “ऋषिपंचमी” कहते हैं। भाद्रपद शुक्ल पंचमी के दिन यह तेहवार आता है। प्रायः संपूर्ण भारतवर्ष में यह मनाया जाता है। इस दिन कोई मांसभोजन नहीं करते, इतनाही नहीं, परंतु खेतमें तयार हुआ अन्नभी नहीं खाते। जो अन्न “अकृष्टपच्य” होता है अर्थात् कृषिसे उत्पन्न नहीं होता, हातसे भूमि खोदकर उसमें हाथसे बोये हुए कुछ विशेष निरानके अनाज कंद मूल पत्ते और फल जो केवल हाथके प्रयत्नसे उत्पन्न होते हैं, वेही खाये जाते हैं। अर्थात् यह तेहवार उस समय का ऋषियोंका अन्न हमें बताता है कि जिस समय ऋषिलोग हल भी नहीं चलाते थे, प्रत्युत किसी साधारण रीतिसे

जमीन खोद खोदकर उसमें थोड़ासा अन्न उपजाते थे। बैलोंके द्वारा बड़े हल चलाकर चावल, गेहूं, मूंग आदि धान्योंकी उत्पत्ति होनेके भी पूर्वकालकी स्मृति हमें इस तेहवार से मिलती है। चावल, गेहूं, मूंग आदि धान्य आजकल के हमारे भोजनका प्रधान अंग हैं, इसका नाम “कृष्टपच्य अन्न” है। इस प्रकारकी कृषि प्रारंभ होनेके पूर्व और बड़े हल उपयोगमें आनेके पूर्व लोह कंद, मूल, फल, पत्ते और कृषिसे उत्पन्न न हुआ तृणधान्य खाते थे, नमक भी उस समय उपयोग में नहीं था।

इस दिन के भोजनके विषयमें निम्नलिखित श्लोक देखने योग्य है—

शाकाहारस्तु कर्तव्यः श्यामाकाहार एव वा।  
नीवारैर्वापि कर्तव्यः कृष्टपच्यं न भक्षयेत् ॥

“इस दिन शाकाहार करना चाहिये, अथवा श्यामाक धान्य खावें, किंवा तृण धान्य नीवार आदि (जो घास से उत्पन्न होता है) खाया जावे, परंतु खेतीसे उत्पन्न अन्न न खाया जावे।”

जहां खेतीके धान्य खानेका निषेध होगा वहां मांसके खाने की संभावना कहां होगी। अर्थात् तृण धान्य खानेकी प्रथा खेतीके धान्यके प्रथाके पूर्व समयकी है इसमें कोई संदेह नहीं है। और यदि मांसाहार अति प्राचीन होता तो इस दिन अवश्य किया जाता, जिस कारण इस दिन मांसाहार नहीं किया जाता और न उसका प्रतिनिधि उपयोग में आता है, उस कारण हम कह सकते हैं कि मांसाहार आर्य वंशजों में जो घुसा है वह तीसरी अवस्थापर घुसा है। (१) पहिली अवस्था=अकृष्टपच्य तृणधान्य, फलमूल, कंदमूल पत्ते आदि का भोजन, (२) दूसरी अवस्था=कृष्टपच्य गेहूं, चावल आदि भोजन, (३) तीसरी अवस्था=पूर्वोक्त भोजन में मांसके घुसनेकी है।

इस दृष्टीसे ऋषी पंचमीका तेहवार हमें अति प्राचीन ऋषिभोजन की प्रथा शाकाहारके होनेकी सूचना देता है।

यदि म. चिंतामणराव वैद्य इस ऋषिपंचमीके “ऋषि भोजन” का विचार करेंगे, तो उनको पता



लग जायगा, कि ऋषियों का भोजन क्या था । प्राचीन कालकी प्रथा हिंदुओंके शुभ दिवसोंमें आज भी आचारमें आती है । एकादशी, शिवरात्री, आदि तिथियोंमें, सोम, मंगल, गुरु, रवि आदि वारोंके दिन जो लोग उपवास करते हैं तथा अन्यान्य पवित्र माने हुए दिनों में निरशन का माना हुआ जो आहार है, उसमें भी कंद, मूल, फल, पत्ते और वन्य अकृष्ट-पच्य अनाज ही होता है । चावल, गेहूं, मूंग आदि धान्य उपवास के दिन इस लिये नहीं खाते कि यह नवीन अन्न है । चावल, गेहूं आदि धान्य खाने की प्रथा नवीन और अकृष्टपच्य कंदमूल, पत्ते आदि खानेकी प्रथा प्राचीन ऋषि लोगोंकी थी इस विषय में अब किसीको संदेह नहीं हो सकता । प्राचीन आचार की खोज करनेके समयमें भारतीय हिंदुओं के शुभदिवसोंके आचार हमें बड़ा ज्ञान दे सकते हैं । जिस समय गेहूं चावल आदि नवीन धान्य प्रचार में आ गया उस समय कंदमूलादि ऋषि भोजन पवित्र दिवसों के लिये रखा गया । इस प्रकार पुराणी प्रथा और नवीन रीतिका मेल यहां दिखाई देता है । शतपथ ब्राह्मणमें भी इसका उल्लेख है, जैसा देखिये—

यदेवाशितमनशितं तदश्रीयत् .....॥ ९ ॥

.....तस्मादारण्यमेवाश्रीयत् ॥ १० ॥

“ जो भोजन न खानेके समान होता है वह उपवासके व्रतके दिन खाया जाय, ... वन्य ( कंदमूल फल आदि ) खाया जाय । ”

यह कंद मूल फलका भोजन निरशनका भोजन है अर्थात् व्रत रखनेके दिन यदि कुछ खाना हो तो यह वन्य पदार्थ खाये जाय । शतपथ ब्राह्मण का समय इससे करीब पांच सहस्र वर्षोंका है । उस समय भी आज कल के समान ही उपवासका व्रत होता था और उस दिन आजकलके समान निरशन का भोजन उक्त प्रकार किया जाता था । शतपथ ब्राह्मणके समय चावल गेहूं उडद आदि खेतीसे उपजे धान्य विप्ल होने लगे थे और अति प्राचीन ऋषिभोजन व्रतके दिन के लिये ही रखा गया था । इसका विचार करके पाठक जान सकते हैं, कि जो

ऋषिभोजन हम ऋषिपंचमीके दिन प्रयत्नसे करते हैं और जिस दिन अरुंधती देवी के साथ वसिष्ठादि सप्तऋषियों का पूण्यस्मरण करते हैं और जो दिन ऋषियों के समान आचार करनेमें व्यतीत करते हैं, उस दिनके व्रतका निरशनका फलाहार शतपथ ब्राह्मण के इतना पुराना तो है ही, परंतु शतपथ ब्राह्मणके समय में भी वह अति प्राचीन बन गया था; अर्थात् शतपथसे भी कई सहस्र वर्षोंका यह ऋषिभोजन होना संभव है । इस प्राचीन ऋषिभोजन में मांस भोजन की वृत्ति नहीं, कृषिसे उत्पन्न भोजन नहीं, परंतु वनमें स्वभावसे उत्पन्न कंदमूल फल पत्ते और कुछ जंगली धान्य होता है । यदि वैदिक कालके ऋषियों के भोजन में मांस का थोड़ाभी संबंध होता, तो ऋषिपंचमी के समय के भोजनमें उसका थोड़ा अंश होता, या उसका कोई प्रतिनिधि भी होता ।

### ( ६ ) मांसका प्रतिनिधि ।

“ मांस ” का प्रतिनिधि “ माष, माह या उडद ” माना है और जहां “ मांसान्न ” की आवश्यकता होती है वहां “ माषान्न अर्थात् उडद और चावल ” का ग्रहण करनेकी स्मार्त पद्धति भी थी । वैद्यजीको ज्ञात ही होगी । परंतु उक्त ऋषिपंचमीके समय आहार में मांस प्रतिनिधि भी नहीं है । इसलिये हम कहते हैं कि ऋषिपंचमीका भोजन सच्चा ऋषि भोजन है और जो पूर्णरूपसे निर्मांस है । म. वैद्यजी इस ऋषिपंचमी व्रतको अच्छी प्रकार जानते हैं और इसकी गवाहीसे जो सिद्ध हो रहा है उसके खंडन में उनके पास कोई युक्ति नहीं है, यह हम अच्छी प्रकार जानते हैं, क्योंकि हमें पता है कि वे ऋषिपंचमी माननेवाले कुटुंबके ही कुटुंबी हैं ।

यह ऋषिपंचमी व्रत सप्तऋषियोंके पूज्य स्मरण के लिये किया जाता है और प्रायः संपूर्ण भारत वर्षमें किया जाता है । इसलिये इसकी प्राचीनतामें यत्किंचित भी संदेह नहीं ।

यहां दूसरी बात यह है कि आजकल जो जातियां मांस खाती हैं उन सबमें वर्षमें कुछ दिन निर्मांस



भोजनके होते हैं और प्रायः सभी एकमतसे मानते हैं कि निरामिष भोजन उत्तम है। जगत् में चीनी लोग सर्वभक्षक होनेमें सुप्रसिद्ध हैं, परंतु उनमें भी मंदिरोंके पूजापाठी लोग निर्मांस भोजी होते हैं और हिंदुस्थान के निरामिष भोजियोंकी प्रशंसा मुक्तकंठसे वे करते हैं। यही प्रथा मुसलमान और ईसाइयों में भी है। जगत् का कोई ऐसा धर्म नहीं है जो निरामिष भोजन को बुरा मानता हो और जो व्रतके दिनों में भी निरामिष भोजन का उपदेश न करता हो।

अन्य धर्मोंकी बात छोड़ दें ऊपर शतपथ ब्राह्मण-ने पूर्वोक्त स्थानमें उपवास के व्रतके समय वन्य कंदमूलफलही खानेको कहा है। हिंदुओंमें मांस भोजी हिंदु प्रायः श्रावणमास में मांस नहीं खाते, एकादशी आदि दिनोंमें नहीं खाते। परंतु इन दिनोंमें ऋषि अन्न खाते हैं, कई लोग हविष्यान्न खाते हैं। इस का तात्पर्य यह है कि भोजन में चावल गेहूं आदि आगये, मांस भी घुस गया, तो ऐसे समयमें अति प्राचीन कालका ऋषि भोजन पवित्र दिनों के लिये रखा गया है। इससे प्राचीन ऋषि भोजन सहज प्राप्त निरामिष वन्य फलभोज ही था इसका स्पष्ट पता लगता है।

इस समय तक जो आचार व्यवहार चला आया है उसका विचार करनेसे जो ऋषिभोजन का पता हमें चलता है वह यही है कि ऋषि निरामिष भोजी थे और अति प्राचीन वैदिक समयमें निरामिष भोजन ही प्रचलित था।

१ अति प्राचीन ऋषि भोजन = कंद, मूल, फल और वन्य सहज उत्पन्न आरण्यक तृणधान।

२ उसके बाद का भोजन = गेहूं, चावल, उड़द आदि धान्य, ( इस द्वितीय समयमें प्राचीन वन्य भोजन व्रतके लिये ही रखा गया था। )

३ तीसरे समय का भोजन = इस समय पूर्वोक्त भोजनमें मांस घुस गया था, ( तथापि अति प्राचीन काल के ऋष्यन्न की श्रेष्ठता सर्वमान्य होनेसे व्रतादिके दिनोंमें द्वितीय और तृतीय समयके भोजन निषिद्ध माने गये।

इससे यदि कुछ सिद्ध हो सकता है तो यही सिद्ध होता सकता है कि मांसभोजन उस समय शुरू हुआ जिस समय आर्य लोग पतन के मार्ग में झुक गये थे। प्राचीन ऋषि कालमें आर्य लोग निरामिष भोजी ही थे।

### ( ७ ) उत्क्रांतिवाद ।

यदि उत्क्रांति का वाद सत्य है और यदि मनुष्यका शरीर वानर के शरीरसे उत्क्रांत हुआ है, तो यह बात निःसंदेह माननी पड़ेगी कि मनुष्य प्रारंभिक अवस्थामें निरामिष भोजी ही था। क्यों कि वंदर फलभोजी ही हैं। वे वृक्षोंके फल, पत्ते आदि खाते हैं। इसलिये मनुष्य स्वभावतः मांसभोजी नहीं है। जब वह जीवन कलहमें आता है और फलभोज असंभव हो जानेकी अवस्था प्राप्त होती है तब वह दूसरेको मारकर उसका मांस खाता है। इसलिये हम कैसे कह सकते हैं कि आदि वैदिक कालमें ऋषिलोग मांस और विशेषकर गोमांस खाते थे। यदि वैदिक समय मानव जातीका प्रथम अवसर है तो उस समय मानना पड़ेगा कि मनुष्य फल भोजी ही थे। जैसा कि हम देख आये हैं कि ऋषिपंचमी के व्रतका अन्न केवल कंदमूलफल ही है। वही ठीक प्रतीत होता है।

### ( ८ ) सारस्वत ब्राह्मणोंकी गवाही ।

आजकल ब्राह्मणोंमें सारस्वत नामके ब्राह्मण हैं। जिनके इतिहासमें लिखा है कि ये सरस्वती नदीके तीर पर रहते थे। अति प्राचीन समयमें बड़ा



अकाल पड़ा और कई वर्ष बिलकुल वृष्टि नहीं हुई और कुछभी फलफूल, कंदमूल, धान्य आदि कुछभी मिलना असंभव हुआ । उस समय सारस्वती नदी के तटपर रहनेवाले ब्राह्मणोंने नदीमें प्राप्त होनेवाली मछलियां खाकर जीव का धारण किया । बहुतदिन मछलियों के भोजनके स्वाद का अभ्यास होनेसे आगे सारस्वत ब्राह्मणों को वही जिह्वालय का अभ्यास रखने की बुद्धि हो गई । इस से ब्राह्मणों में सारस्वत ब्राह्मणही मछलि खाते हैं, अन्य ब्राह्मण नहीं खाते । यदि यह सारस्वतों का इतिहास सत्य है तो मानना पड़ता है कि प्राचीन ऋषिकाल में येभी शाकाभोजी थे परंतु जीवनकलह में पड़ जानेके कारण इनको मांसभोजन स्वीकारना पड़ा । इससे हमारा पूर्व लिखा मतही पुष्ट हुआ कि वैदिक काल के आदि आर्य शाकाहारी ही थे, पश्चात् उनमेंसे कई जातियां बहुत समय व्यतीत होनेपर मांसभोजी बनी । इसी कारण इस समय में भी कई आर्य जातियां शुद्ध निरामिष भोजी हैं और कई आमिष भोजी हैं । थोड़ीसी ब्राह्मण जातियां सारस्वतों के समान अंशतः मांसाहारी हुई, कुछ क्षत्रिय जातियां युद्धादि कारणसे मांस खाने लगीं; परंतु बहुत सी ब्राह्मण जातियां और पूर्ण रीतिसे वैश्य जातियां इस समय तक निरामिष भोजी ही हैं और सब जातियां शाक-भोज को पवित्र भोजन मानती हैं ।

इस रीतिसे सामान्यतया मांसभोजनका विचार करनेसे पता चलता है कि आदिकाल में अर्थात् वैदिक काल में रहनेवाले ऋषिलोग फलभोजी थे, उसके पश्चात् धान्यभोज शुरू हुआ; पश्चात् अकालादि तथा युद्धादि आपत्तियों के वारंवार आनेके कारण कई आर्य जातियां जो ऐसी आपत्तियों में फंसी, मांसाहारी बन गईं । अर्थात् वैदिक काल में मांसभोजन की शिष्टसंमत प्रथा नहीं थी, फिर गोमांस भक्षण की प्रथा तो दूर की बात है ।

### ( ९ ) वेदका महासिद्धांत ।

वेद का महासिद्धांत संपूर्ण भूतों को मित्र दृष्टिसे देखना है, इस लिये हम कह सकते हैं कि जो संपूर्ण

प्राणियोंको मित्रकी प्रेमदृष्टिसे देखते हैं वे अपने पेटके लिये उनका घात कैसा कर सकते हैं? मित्र की प्रेमदृष्टि तो अपना प्राण दूसरोंके लिये अर्पण करायेगी, कभी ऐसा नहीं हो सकता है कि जिसपर प्रेम करना है उसीको अपने पेटके लिये काटा जाय । देखिये वेद का महासिद्धांत-

( १ ) मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।

( २ ) मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।

( ३ ) मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥

वा. यजु. ३६ । १८

( ४ ) मित्रस्य वच्चक्षुषा समीक्षध्वम् ।

य. मैत्रायणी सं० ४।१।२७

“ ( १ ) मित्रकी दृष्टिसे मुझे सब प्राणि देखें,  
( २ ) मैं मित्रकी दृष्टिसे सब प्राणियोंको देखता हूं,  
( ३ ) हम सब परस्पर मित्रकी दृष्टिसे देखेंगे,  
( ४ ) मित्रकी समान दृष्टिसे सब को देखो । ”

यह वेदाज्ञा है । यहां केवल मनुष्योंको ही मित्र दृष्टिसे देखने का उपदेश नहीं है प्रत्युत संपूर्ण प्राणि-मात्रको मित्र दृष्टिसे देखनेका उपदेश है । तो क्या अपने मित्र कोही अपने पेटके लिये मारना है? यदि मारना है तो मित्र दृष्टि किस काम की? अर्थात् इस वैदिक महासिद्धांत को माननेवाले वैदिक लोग सबभूतों सब प्राणियोंको मित्र दृष्टिसे देखेंगे और उनको काटकर खानेकी बात को स्वीकारेंगे नहीं । इसलिये मानना पड़ेगा कि किसी बाह्य कारणसे आर्यवंशजोंमें मांसभोजन घुसा है । आर्योंका स्वाभाविक अन्न शाकाहार ही है ।

### ( १० ) यज्ञकी ग्वाही ।

यज्ञमें मांस प्रयोग होना चाहिये या नहीं यह बात भिन्न है । हमारा मत है कि यज्ञ निर्मांस ही होते थे, परंतु कुछ समय के लिये प्रचलित समांस यज्ञों का ही विचार किया जाय तो पता लगेगा कि आज कलकी यज्ञकी वेदी के दो भेद हैं—



## १ पूर्व वेदी और

## २ उत्तर वेदी,

पूर्व वेदी में कई वेदियां हैं जिनमें केवल धान्यका ही हवन होता है और कभी मांस का संबंध नहीं आता। केवल इस “ उत्तर वेदी ” में मांसका हवन होता है। यदि ये वेदी शब्द के विशेषण रूप “ पूर्व और उत्तर ” ये दो शब्द “ पूर्वकाल और उत्तर काल ” के वाचक मान लिये जाय, तो स्पष्ट सिद्ध होता है कि पूर्व ( कालकी ) वेदी में केवल धान्य-हवन ही किया जाता था, और उत्तर ( कालकी ) वेदी में आगे मांस हवन होने लगा।

जिसमें आजकल मांसका हवन किया जाता है उस वेदीका नाम “ उत्तर वेदी ” ही है। उत्तर वेदी का अर्थ स्पष्ट रूपसे यही है कि “ उत्तर समय में प्रचलित हुई वेदी ” अर्थात् पूर्वकालमें यज्ञमें यह वेदी ही नहीं थी। जो वेदियां पूर्वकालमें थी वह “ पूर्व वेदियां ” इस समयमें भी हैं। पूर्ववेदियोंमें शुद्ध धान्यका ही हवन होता है और उत्तर वेदीपर मांसका हवन होता है। इतनाही नहीं परंतु पहिले वेदियोंका धान्यहवन पूर्णतासे समाप्त करनेके पश्चात् ही इस मांसवेदीके कार्य को प्रारंभ होता है। यज्ञ के पहिले दोचार दिनों में कभी मांस हवन नहीं होता, केवल धान्य हवन होता है, यज्ञके पश्चात् के दिनों में उत्तर वेदीमें ही मांसहवन करते हैं।

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि अति प्राचीन कालका यज्ञ पूर्व वेदियोंसे बताया जाता है जिसमें धान्य हवन ही है। और पश्चात् के समयका हवन उत्तर वेदीके मांस हवनसे बताया जाता है। यदि ब्राह्मण ग्रंथोंके समयसे समांस यज्ञ प्रचलित थे, ऐसा किसी को मानना हो, तो उसको यह बात अवश्य माननी पड़ेगी कि इससे पूर्वकाल में वह प्रथा न थी और उस समय निर्मांस यज्ञ ही प्रचलित थे।

पाठक ऋषिपंचमी के दिनका पूर्वोक्त भोजन और इस यज्ञ के पूर्व ( समय में प्रचलित ) वेदीपर होनेवाला धान्यहवन इन दोनों बातोंकी संगति लगा कर देखें, तो उनको वैदिक कालमें निर्मांस भोजन होनेका निःसंदेह निश्चय हो जायगा।

## ११ मधुपर्क ।

कईयों का कथन है कि मधुपर्क विधि वैदिक है और उसमें “ मांस ” आवश्यक है। परंतु ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदमें “ मधुपर्क ” शब्द ही नहीं है, ब्राह्मणों और उपनिषदों में भी यह शब्द नहीं है। केवल अथर्ववेद संहितामें एकवार मधुपर्क शब्द आया है। वह मंत्र यह है —

यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।

अथर्व. १०।३।२१

“ जैसा यश सोमपानमें और जैसा मधुपर्कमें है वैसा मुझे प्राप्त हो। ” वेदकी चारों संहिताओंमें मधुपर्क विषयक इतनाही उल्लेख है, इसलिये मधुपर्क में वैदिक रीतिसे क्या होना चाहिये और क्या नहीं इसका पता नहीं लग सकता। परंतु इतना सत्य है कि मधुपर्क में मांस अवश्य है ऐसा जिनका पक्ष होगा उनके मतकी सिद्धि वैदिक मंत्रोंसे नहीं हो सकती। ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रंथोंतक किसी भी ग्रंथमें मधुपर्कका इससे अधिक उल्लेख नहीं है। अतः “ वेदके मधुपर्क में मांसकी आवश्यकता है ” यह बात वैदिक प्रमाणोंसे सिद्ध होना असंभव है।

यद्यपि वेदोंमें अन्यत्र मधुपर्क शब्दही नहीं है तथापि “ मधुपेय ” शब्द है, यह भी इसके समानार्थक माना जा सकता है। यह एक उत्तम मधुर अर्थात् “ मीठा पेय ” है ऐसा निम्नलिखित मंत्र से प्रतीत होता है—

वृषाऽसि देवो वृषभः पृथिव्या वृषा सिंधूनां  
वृषभस्तियानाम् । वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय  
स्वादू रसो मधुपेयो वराय ॥

ऋग्वेद ६।४४।२१

इस मंत्रके अंतिम भागमें “ स्वादूरसो मधुपेयः ” ऐसे शब्द हैं इनका अर्थ “ मीठा रस मधुपेय ” है। परंतु यह कोई स्वतंत्र पेय नहीं है, यह सोमरस ही है जिसका सूचक “ इन्दु ” शब्द इसी मंत्र में है। इस मंत्रमें “ वृषा, वृषभ ” ये बलवाचक शब्द हैं।

इनके देखनेसे कईयोंने मधुपेयमें बैल के मांसकी कल्पना की होगी। परंतु यह मंत्र “ इन्द्र ” देवता की प्रशंसापर है और इसका शब्दार्थ “ हे इन्द्र



देव ! तू पृथिवी, द्यूलोक, नदियां, स्थावर जंगम पदार्थ आदिको बल देनेवाला है, इसलिये इस मधुपानके समय यहां आओ ” यह है । यद्यपि अंग्रेजी भाषांतर में मि. ग्रिफिथने ‘ Thou art the Bull of earth, the Bull of heaven ’ ऐसे शब्द लिखे हैं तथापि यहांका तात्पर्य बैल नहीं है परंतु “ शक्ति देनेवाला ” है यह अंग्रेजी शब्दोंके बीचका भाव समझनेवालों को पुनः कहनेकी आवश्यकता नहीं है । यदि कोई मनुष्य इस मंत्रमें “ वृषा और मधुपेय ” ये दो शब्द आगये हैं, इसलिये मधुपेय में बैलके मांस की आवश्यकता है । ” ऐसा कहेगा तो वह कथन ऐसा है कि उसकी उपेक्षा ही की जाय। क्यों कि जो बात मंत्रमें नहीं है वह मंत्रके सिर पर मढ़ देना कोई विद्याकी बात नहीं हो सकती ।

इतने विवरणसे यह बात सिद्ध हुई कि वेदोंमें मधुपर्क शब्द केवल एक बार अथर्व वेद में आया है और उस मंत्रसे मधुपर्क में मांस की आवश्यकता सिद्ध नहीं होती। मधुपेयमें भी मांसकी आवश्यकता नहीं है क्यों कि मधुपेय यह सोमवल्लीके रससे बनाया हुआ मधुर पेय ही है । और उसमें गाय का, बैलका या किसी अन्य जानवर का मांस डालनेका विधान किसी स्थानपर भी नहीं है । यज्ञोंमें जो सोमरस आजकल तयार करते हैं उसमें भी मांस या मांसरस या रक्त कभी नहीं डाला जाता । इस से सिद्ध है कि “ मधुपेय ” में मांसकी आवश्यकता नहीं । तथापि क्षणभर हम “ दर्जन-तोष-न्याय ” से मधुपर्क में मांस होनेकी संभावना मानकर क्या आपत्ति आती है यह पाठकों के सम्मुख रख देते हैं-

## (१२) अतिथिसत्कारमें मधुपर्क ।

प्रायः जहां कहां आधुनिक ग्रंथों में मधुपर्कका उल्लेख है वह अतिथिसत्कार के प्रसंगमें आया है । घरके दैनंदिनीय खाद्यपेय में किसीने मधुपर्क किया, दिया या खाया ऐसा प्रसंग किसी भी ग्रंथ में नहीं है ।

“ कोई ऋषि महर्षि किसी राजा के घर आया, द्वारमें ही राजाने उसका आतिथ्य किया, आसनपर बिठलाया, पूजा की, पूजाके बीचमें मधुपर्क के लिये

गाय लायी गई, मधुपर्क किया और पूजा समाप्त करके कुशल प्रश्न पूछे । प्रश्नोत्तर होते ही ऋषि वापस चले गये । ”

“ दूसरा प्रसंग विवाह के समय होता है, वर विवाह मंडपमें आता है, उसकी पूजा की जाती है और उस समय मधुपर्क दिया जाता है । ” यदि यह प्रथा ठीक है तो इसमें मांस भोजन के लिये स्थान ही नहीं है, क्यों कि इस में जो विधि होते हैं, वे इस प्रकार हैं—

- १ अतिथि ( या वर का ) द्वारपर आना,
- २ यजमान ( राजा या वरके श्वशुर ) का द्वार पर जाना और द्वार पर सत्कार करना,
- ३ सत्कार के पश्चात् उसका अंदर प्रवेश,
- ४ आसनपर बिठलाना,
- ५ पांच धोना, चंदन, इतर, तथा पुष्पमाला आदिका समर्पण करना,
- ६ गौ लाकर उसका समर्पण करना,
- ७ मधुपर्क देना, उसने मधुपर्क खाना और हाथ मुख आदि धोना, पश्चात्—
- ८ पूजा समाप्त करके कुशल प्रश्नादि करना या आगे का जो कार्य हो वह प्रारंभ करना।

पाठक क्षणभरके लिये मानलें की यहां गोवध करके उसके मांसके साथ मधुपर्क देना अभीष्ट हो तो पशुके देहसे मांस निकाल कर उसको पकाकर खाने योग्य बनाने के लिये आधे या पौने घंटेकी अवधि की कम से कम आवश्यकता होगी, घरमें पहिले बनाया हुआ तो अर्पण करना नहीं है, इस लिये कमसे कम आध घंटेका समय इस विधिमें नहीं है, क्यों कि यह सब विधि एक दूसरेके पीछे ही करने की है, इस कारण मानना पड़ता है कि दो चार मिनटों में गौ से मधुपर्क बनानेकी कोई विधि अवश्य होगी ।

आतिथ्यपूजा में गौ समर्पण आवश्यक है इसमें संदेह नहीं, परंतु वह काटकर खानेके लिये नहीं है, प्रत्युत ताजा ताजा दूध दुह कर उस अतिथिको देनेके लिये ही है । यदि पाठक पूर्वोक्त मधुपर्क विधिका विचार करेंगे तो उनको पता लग जायगा



के पूजामें ही गौ लाकर उसका दूध निकाल कर गर्म गर्म ही अतिथिको पिलाना पांच मेनिटों में भी संभवनीय है। वैदिक काल में " वशा गौ " प्रसिद्ध थीं। ये गौवें दिनमें जितनीवार चाहे दूध देती थीं, और जो चाहे उनका दूध निकाल सकता था। इसीलिये इनको " माता " कहा जाता था। जिस प्रकार बच्चा माताके पास जाता है उसी प्रकार लोग " वशा गौ " के पास जाते थे। यहां यह वैदिक समय की रीति ध्यानसे देखनी चाहिये।

अब मधुपर्कके विषयमें देखिये पूजाके बीचमें गौ लाई जाती है, वहां का वहां उससे दूध निकाला जाता है। गर्म गर्म अतिथिके सन्मुख प्रेमसे रखा जाता है, साथ साथ दही, घी, मधु, मिश्री ये चार पदार्थ भी दिये जाते हैं—मधुपर्क के लिये इन पांच पदार्थों की आवश्यकता है दूध, दही, घी, मधु ( शहद ), मिश्री इन पांच पदार्थोंका मिलकर नाम मधुपर्क है। दही-घी-मधु-मिश्री ये चार पदार्थ गृहस्थीके घरमें सदा रहते ही हैं, ( आजकल के बीसवीं सदीके यूरोपीय सभ्यतासे रंगे हुए, घरमें चा रखनेवाले पाठक क्षमा करें, उनके घरोंमें ये ही चीजें दुष्प्राप्य होंगी यह हमें पता है ) वैदिक कालमें उक्तपदार्थ गृहस्थीके घरमें सदा रहते ही थे। अतिथि आतेही ताजा दूध दोहकर साथ उसके उक्त पदार्थ एक कटोरीमें—स्वर्ण की कटोरी में—मिलाकर रखे जाते थे। अतिथि सुवर्ण चमस से या अपनी अंगुलियों से उक्त मधुपर्क खाता था और उसपर ताजा दूध पीता था। आजकल इस वैदिक मधुपर्क के स्थानपर चा आ बैठा है वह भारतियों को दूध पीनेकी आज्ञा देता नहीं है !!! अस्तु।

दधिसर्पिः पयः क्षौद्रं सिता चैतैश्च पंचभिः  
प्रोच्यते मधुपर्कः।

" दही, घी, दूध, मधु ( शहद ), मिश्री इन पांचों का मधुपर्क होता है। " दूध के स्थानपर दूधके अभावमें पानी भी आजकल बर्ता जाता है! पाठक विचार करें कि ऐसे पवित्र मधुपर्कमें मांस की अभावना कैसी हो सकती है।

## ( १३ ) और आपत्ति ।

हमें स्वयं इस बात का पूरा पता नहीं है क्यों कि हमारे घराने में किसीने भी कभी मांसका स्वाद लिया नहीं है, केवल शाक भोज ही हम करते हैं। तथापि हमने अपने मांसाहारी परिचितों से मालूम किया जिससे हमें पता लगा कि मांसका कोई पदार्थ मधु ( शहद ) या मिश्रीसे बनता नहीं। जो भी पदार्थ मांससे बनते हैं सबके सब नमकीन तथा मिरच वाले बनते हैं। यदि यह सत्य बात है तो मधुपर्क मांसके साथ कैसे बन सकता है ? क्यों कि यह " मधु-पर्क " है अर्थात् " ( मधु ) शहदसे ( पर्क ) मिश्रित मीठा खाद्य है। " शहद या मिश्रीसे मिश्रित करके मांसका कोई पदार्थ बनता नहीं है, मांसका मिश्रण नमकीन मिरच मसालों के साथ बनता है।

पाठक विचार कर सकते हैं और निश्चय कर सकते हैं कि मधुर मीठा पेय—जिसमें मधु और मिश्री मिलाई हों—मांससे बन सकते हैं वा नहीं। इस विषय में यह हमारा कथन भी यदि असत्य सिद्ध हुआ तथापि हमारी कोई हानि नहीं है, क्यों कि मधुपर्क में गोमांस या साधारण मांसका होना वेद मंत्रोंसे सिद्ध नहीं होता, यह हमने इससे पूर्व बताया ही है। इस लिये यह बात सिद्ध होने या न होने पर हमारे सिद्धांतकी स्थिति या अस्थिति निर्भर नहीं है। परंतु इस बातका बोझ उनपर है कि जो कहते हैं कि मधुपर्कमें मांस आवश्यक है। अपना मत वेद-मंत्रोंसे सिद्ध करें अन्यथा निर्मांस मधुपर्क वैदिक समयमें होनेका स्वीकार करें।

कइयोंका कथन है कि चूंकि उत्तर रामचरित नाटकमें आतिथ्य सत्कारमें वसिष्ठके गोमांस खानेका उल्लेख है इसलिये आतिथ्य के समय किये जानेवाले मधुपर्कमें गोमांस अवश्य पड़ता था। उत्तररामचरित्रका उल्लेख हम भी जानते हैं, उत्तररामचरित नाटक का काल अति आधुनिक है, उस समयके नाटक लेखकोंका ख्याल होगा कि मधुपर्क में गोमांस आवश्यक है, परंतु क्या नाटक के उल्लेख केलिये



वैदिक समय को जिम्मे वार लिया जा सकता है? नाटक का काल और वैदिक समयमें कितना बड़ा अंतर है? क्या यह अंतर कभी भूला जा सकता है? और नाटक की बातें वेदपर मढ़नेका प्रयत्न यदि विद्वान लोग करने लगे तो वैसा और दूसरा अनर्थ कौनसा हो सकता है। ऐसे भयंकर अनुमान करने वालोंसे वेदकी रक्षा परमात्माही करे। हमारे ख्यालमें यहां बड़ा भारी कालविपर्ययदोष ( anachronism ) है और बड़े विद्वानों को ऐसे दोष-युक्त मत प्रकाशित करनेसे पूर्व बड़ा विचार करना चाहिये। सारांश यह है कि नाटक का वचन वैदिक पद्धतिके सिद्ध करने के लिये प्रमाण मानना अशक्य है।

नामांसो मधुपर्को भवति ।

ऐसे सूत्रग्रंथोंके वचन भी तत्कालीन आचारपद्धतिके द्योतक हैं। जिस समय ये सूत्रग्रंथ लिखे गये और ये नाटक रचे गये उस समय मांसका प्रचार होनेसे, या उससे पूर्व कालमें मांसका प्रयोग होनेसे, इन ग्रंथोंमें ऐसे वचन आते हैं। इन वचनोंसे अधिक से अधिक यह सिद्ध हो सकता है कि इन ग्रंथोंके समय या इनके पूर्व कालमें इस प्रकार की प्रथा थी। परंतु इससे वह कदापि सिद्ध नहीं होगा कि अति अति प्राचीन वैदिक कालमें भी मांसमय मधुपर्क की प्रथा थी अथवा गोमांस भक्षण भी प्रचलित था। यह बात सिद्ध करनेके लिये वेदके छंदोबद्ध मंत्र भागसे ही प्रमाण वचन मिलने चाहिये। किसी दूसरे प्रकारसे यह बात कभी सिद्ध नहीं हो सकती।

## (१४) कलिवर्ज्य प्रकरण ।

इनका कथन है कि “कलिवर्ज्य प्रकरण” में “अश्वमेध, गोमेध” आदिका निषेध किया है इसलिये इस निषेध के पूर्व अश्वमेध और गोमेध होता था। और अश्वमेधमें घोड़े का मांस और गोमेधमें गायका मांस खाया जाता था।

यहां प्रश्न होता है कि यह कलिवर्ज्य प्रकरण किसने लिखा? और किस ग्रंथमें लिखा है? क्या माननीय प्रमाण ग्रंथमें इस वचन का अस्तित्व है? जो माननीय प्रमाणभूत स्मृतिग्रंथ हैं उनमें यह वचन

नहीं है, इसलिये ऐसे कपोलकल्पित प्रकरणसे कोई विशेष प्रबल अनुमान नहीं हो सकता है।

दूसरी बात यह है कि इस कलिवर्ज्य प्रकरण का समय निश्चित हो जानेसे सब बात स्पष्ट हो जाती है। हमारे विचार से कलिवर्ज्य प्रकरण सात आठसौ वर्ष के अंदर अंदर का है। इसलिये इसके बलसे उसके पूर्वके संपूर्ण भूतकालका नियमन नहीं हो सकता है। यहां भी पूर्वकथित कालविपर्यय दोष आसकता है।

इसके अतिरिक्त यदि माना भी जाय कि कलिवर्ज्य प्रकरण में अश्वमेध और गोमेध का निषेध है, इससे अश्वमेध या गोमेध की वैदिक रीतिका पता नहीं लग सकता है। इससे इतना ही सिद्ध हो सकता है कि इस कलिवर्ज्य प्रकरण के लिखे जानेके पूर्व ये यज्ञ प्रचलित थे।

हमने इसी लेख के पूर्व भाग में यज्ञकी गवाही देते हुए बताया ही है कि यज्ञोंमें वेदमंत्रों के समय के यज्ञोंकी अपेक्षा ब्राह्मण और सूत्रग्रंथोंके यज्ञोंमें बहुत घटवध हुआ है। जो बातें मंत्रसंहिताओंके यज्ञोंमें न थी वह बातें उन में आके घुस गई हैं, यह कारण है कि पूर्व वेदी के हवनमें मांस नहीं बर्ता जाता और उत्तर वेदीके हवनमें अर्थात् पीछे घुसे हुए यज्ञ कर्ममें मांस का हवन किया जाता है। यह आज कल की या यज्ञप्रयोग के पुस्तक जिस समय लिखे गये उस समयकी प्रथा है। वैदिक प्रथा तो वह ही है कि जो छंदोबद्ध मंत्र भागमें बताई है। इसलिये हम यहां प्रश्न पूछते हैं कि कौनसे वेदमंत्र से यह बात सिद्ध होती है की वैदिक गोमेध में गौकी हिंसा की जाती थी? यदि वेदका एकभी मंत्र हो तो उसे सामने करें। प्रमाण के बिना माननेके दिन अब गुजर चुके हैं। हमें पता है कि बहुतसे विद्वान इस समय मानते हैं कि गोमेध में गौकी हिंसा की जाती थी। परंतु यहां विद्वान मानते हैं, या अविद्वान मानते हैं, यह प्रश्न नहीं है। वेद मंत्रों में किस बातको प्रमाण वचन मिलते हैं और किस बात को प्रमाण वचन नहीं मिलते। यही प्रश्न यहाँ है और इसीका विचार हमें करना है।



## (१५) बृहदारण्यक का

## वचन ।

बृहदारण्यक में सुप्रजा जनन के प्रकरण में निम्नलिखित वचन है, कहा जाता है कि इसमें बैल या गौ के मांस खानेका उल्लेख है । हम पाठकों के विचारार्थ वह वचन यहां धर देते हैं--

अथ य इच्छेत्पुत्रो मे पण्डितो विगीतः समितिगमः  
शुश्रूषितां वाचं भाषिता जायेत सर्वांवेदानानु  
ब्रवीत सर्वमायुरियादिति मांसौदनं पाचयित्वा  
सर्पिष्मन्तमश्रीयातामीश्वरौ जनयित्वा  
औक्षेण वार्षभेण वा ॥

श. ब्रा. १४।७।५।१८; वृ-उ. ६।४।१८

“ जिसकी इच्छा हो कि अपना पुत्र बड़ा पंडित, सभामें जाने वाला, बड़ा उत्तम वक्ता, सब वेदोंका प्रवचन करनेवाला पूर्णायु हो, तो वह मांसचावल पकाकर घी के साथ खावें, उक्षा के वा ऋषभ के मांस के साथ पकावें ॥ ”

यहां “ मांसौदन ” शब्द है और इसके अंतमें, उक्षा और ऋषभ ” ये बैलवाचक शब्द भी हैं । इससे ये लोग अनुमान करते हैं कि गाय या बैलके मांस खाने वाले को चार वेदोंका वक्ता पुत्र उत्पन्न हो सकता है ।

यदि यह बात सत्य होती तो सब युरोप में वेदवेत्ता ही लोग निर्माण होते। परंतु वैसा दिखाई नहीं देता; इसलिये इस के अर्थ का विचार करना चाहिये । अर्थका विचार प्रकरणसे ही हो सकता है, इस लिये यह प्रकरण देखिये--

य इच्छेत्पुत्रो मे शकलो जायेत वेदमनुब्रवीत  
सर्वमायुरियादिति क्षीरौदनं पाचयित्वा सर्पि-  
ष्मन्तमश्रीयाताम् ॥ १४ ॥ य इच्छेत्पुत्रो मे  
कपिलः पिंगलो जायेत द्वौ वेदावनुब्रवीत  
सर्वमायुरियादिति दध्यौदनं पाचयित्वा सर्पि-  
ष्मन्तमश्रीयाताम् ॥ १५ ॥ अथ य इच्छेत्पुत्रो  
मे श्यामो लोहिताक्षो जायेत त्रींवेदाननुब्रवीत

सर्वमायुरियादित्युदौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तम-  
श्रीयाताम् ॥ १६ ॥ अथ य इच्छेद् दुहिता मे  
पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति तिलौदनं  
पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्रीयाताम् ॥ १७ ॥

श. ब्रा. १४।७।५।१४-१७; वृ-उ. ६।४।१४-१७

इसका अर्थ यह है--( १ ) गौर वर्ण पूर्णायु एक वेद जाननेवाले पुत्र की इच्छा हो तो दूध चावल पका कर घी के साथ खावें ॥ ( २ ) भूरे वर्ण वाले दो वेदोंके जाननेवाले पूर्णायु पुत्र की इच्छा हो तो दही चावल पका कर घी के साथ खावें ॥ ( ३ ) काले वर्ण वाले, लाल नेत्रवाले तीन वेद जानने वाले पुत्र की इच्छा हो तो पानी में पतले चावल पका कर घी के साथ खावें ॥ ( ४ ) पुत्री पंडिता और पूर्ण आयुवाली होने की इच्छा हो तो तिल चावलकी खिचडी बना कर घीके साथ खावें ॥

इसके बाद का वचन वह है जिसमें मांसका उल्लेख है, यदि चार वेद जाननेवाला, पंडित, वक्ता, दीर्घायु पुत्र होनेकी इच्छा हो तो मांसचावल पकाकर घी के साथ खावें, मांस बैलका हो । अस्तु । इसका फलित यह है--

एकवेद के ज्ञानी पुत्रके लिये दूधचावल घीसे खावें	
दो ” ” ” दही ” ”	
तीन ” ” ” पानी ” ”	
पंडिता पुत्री ” तिल चावल ”	
चार वेद ज्ञानी ” गो मांस चावल ”	

एक वेदके लिये दूध चावल बस हैं, दो वेदों के लिये दही चावल पर्याप्त हैं, तीन वेदोंके लिये पतले चावल पानी में पके बस हैं, फिर चार वेदों के लिये एकदम “ गोमांस में पके चावल ” क्यों आव-  
श्यक हैं ?

यदि बलिष्ठ भोजन की सीढ़ी यहां अभीष्ट होती तो भेड बकरी आदि पशुओंका उल्लेख इस से पूर्व आना आवश्यक था । वह नहीं है इस लिये यहां कुछ पूर्व के अनुकूल ही शाकाहारका पदार्थ



आवश्यक है ऐसा स्पष्ट पता लगता है । यदि भेड़ बकरी कमसे कम तीसरे स्थानपर गिनी होती तो मांसवालों का पक्ष अटूट होता; परंतु यहां पूर्वापर संबंध शाकाहार का प्रतीत होता है और चौथी सीटीपर एकदम गोमांसपर लेखक क्रुद्धपडा है । जहां ब्राह्मणग्रंथों में यज्ञीय पशुओंका उल्लेख है वहां मनुष्य, घोड़ा, गाय, बकरी, भेड़ यह क्रम है, भेड़ बकरी के बाद यज्ञीय पदार्थ भ्रान्त्य गिना है । इसी क्रमसे यदि इस बृहदारण्यक वचनमें क्रम होता तो शाकभोजी लोगोंका मुंह बंद हो जाता । परंतु यहां तीन वेद तक शाकाहार पर्याप्त माना है और चतुर्थ वेदके लिये एकदम गोमांस आवश्यक माना है, यह बहुत दूर को छलांग है ।

जो युरोप के लोग प्रत्येक वेदके “ उत्पत्ति का समय अलग अलग मानते हैं उनके लिये यहां एक बड़ी ही आपत्ति आ जाती है । एक, दो और तीन वेद का तात्पर्य यदि हम ऋग्वेद, ऋग्यजुर्वेद और ऋग्यजुःसामवेद लें, तो इन तीन वेदोंके ज्ञानके समय मांस का कोई नाम तक नहीं, और केवल चतुर्थ वेद अर्थात् अथर्व वेद के लिये ही गोमांसकी आवश्यकता उक्त वाक्य में बताई है । युरोपीयनों के मतसे ऋग्वेद सबसे पुराना और अथर्व सबसे नवीन है । अर्थात् उनकी ही युक्तितसे वेदत्रयी के लिये दूध चावल या दही चावल बस हैं और नवीन अथर्व वेद के लिये गोमांस आया है । इस से यदि कोई कहे कि वैदिक कालमें भी प्राचीन अर्वाचीन भेद किया जाय, तो प्राचीन वैदिक समयमें मांस न था अर्वाचीन समय में मांस प्रचलित हुआ । युरोपीयनोंकी युक्तियां इस प्रकार उनके ही विरुद्ध होती हैं । हम तो मानते ही हैं कि किसी भी वैदिक कालमें मांस भोजन की प्रथा शिष्ट संमत नहीं थी । परंतु यहां युरोपीयनोंकी मानी हुई बातें मानकर ही उक्त शतपथ के वचन का आशय देखा जाय, तो वह उनके मत के विरुद्ध जाता है और आदि वैदिक काल में मांसभोजन नहीं था यह सिद्ध होता है । परंतु इस विषयको बढ़ाने की हमें आवश्यकता नहीं है; क्योंकि हम पूर्वापर संबंधसे गोमांसकी आवश्यकता यहां है वा नहीं,

यही देखना है । प्रसंग देखनेसे पता लगता है कि यहां मांस की आवश्यकता नहीं है, इसका हेतु यह है—

पूर्वोक्त बृहदारण्यक उपनिषद् के वचन में “ औक्षेण वार्षभेण वा ” ऐसा अंतिम वचन है । इस वचन में “ उक्षा और ऋषभ ” ये दो शब्द हैं । संस्कृत में इन दोनों शब्दों का एक ही “ बैल ” ऐसा अर्थ है । यदि दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है तो बीचके “ वा ” शब्दकी आवश्यकता क्या है ? उपनिषत्कारको “ उक्षा ” शब्दसे भिन्न पदार्थ बताना है और “ ऋषभ ” शब्द से भिन्न पदार्थ बताना है । यह भिन्नता वैद्यशास्त्रग्रंथ देखनेसे स्पष्ट हो जाती है—

१ उक्षा = सोम औषधि

२ ऋषभ = ऋषभक ”

ये वैद्यक के अर्थ लेने पर ही यहां के “ वा ” शब्दकी ठीक संगति लग सकती है । ये दोनों औषधियां बलवर्धक, वीर्यउत्पादक और प्रजानिर्माण शक्ति की वृद्धि करनेवाली हैं, वाजीकरण की औषधियों में इनका प्रमुख स्थान है । ऋषभक का वर्णन यह है —

जीवर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रिशिखरोद्भवौ ।

जीवकः कूर्चकाकारः ऋषभो वृषशृंगवत् ।

जीवर्षभकौ बल्यौ शीतौ शुक्रकफप्रदौ ।

भाव प्र० १

“ हिमालयपर ऋषभक वनस्पति होती है । यह बैल के सींग के समान आकारवाली होती है, यह बल बढ़ानेवाली और वीर्य बढ़ानेवाली है । ” जितने बैल वाचक शब्द हैं उतने सब इस वनस्पतिके वाचक हैं । उक्षा का अर्थ सोम है यह बात हरएक कोशमें प्रसिद्ध है । ये दो वनस्पतियां परस्पर भिन्न हैं, वीर्यवर्धक हैं, वाजीकरण प्रयोगमें प्रयुक्त होती हैं, इनका स्वतंत्र प्रयोग भी वाजीकरण में किया जाता है ।

अब पाठक यहां देखें की तीन वेदों के जानकार पत्र पैदा करने के लिये, दूधचावल, दहीचावल, पतलेचावल और घी खानेको कहा,



और चार वेद जाननेवाला सभामें विजयी पुत्र पैदा करनेके लिये ऋषभक औषधीके स्वरस के अथवा सोम औषधिके स्वरस के साथ चावल पका कर घीके साथ खानेका उपदेश किया, यह अर्थ प्रकरण के साथ सजता है और मांस में इतनी बड़ी छलांग मारनेका दोषभी नहीं आता ।

मांस शब्द संस्कृत में जिस प्रकार शरीरके मांस का वाचक है, उसी प्रकार फलों के गूदे का वाचक और वनस्पतियोंके घन स्वरस का भी वाचक प्रसिद्ध है। श्री. म. आपटे के कोशमें (The Fleishy part of a fruit) अर्थात् फलका गूदा यह मांस शब्दका अर्थ दिया है । यह अर्थ सब कोशकारों को संमत है । ऋषभक वनस्पति वाजीकरण की औषधि है और वीर्यवर्धक भी है, इसलिये पुत्रोत्पत्ति प्रकरण के साथ यह अर्थ विशेष ही संगत होता है । जिस प्रकार इन औषधियोंका प्रयोग वाजीकरण वीर्यवर्धन आदिमें होता है उस प्रकार मांस या गोमांस का प्रयोग होने की बात आर्यवैद्यक में तो नहीं है ।

इसके अतिरिक्त बृहदारण्यक उपनिषद् अध्यात्म विद्या का ग्रंथ है, इस ग्रंथ द्वारा सर्वात्मभाव, सर्व भूतमें समदृष्टि, सर्वत्र आत्मवद्भाव होने के पश्चात् वह आत्मज्ञानी पुरुष सुप्रजानिर्माण के लिये गौको काटकर उसका मांस स्वयं खायेगा यह असंभव बात है । अध्यात्म ज्ञान होनेके पश्चात् सुप्रजानिर्माण करना तो वैदिकतत्त्वज्ञान की दृष्टिसे अत्यंत महत्त्व की बात है, जन्मसे सुसंस्कारसंपन्न संतान उत्पन्न करनेकी यही रीति है । इसलिये मांसभक्षण जैसे क्रूर व्यवहारकी संभावनाही अध्यात्मज्ञानीके विषय में असंभव प्रतीत होती है । अतः पूर्व स्थल में बताया हुआ वनस्पति विषयक अर्थ ही यहां लेना युक्तियुक्त है ऐसा हमारा विचार है ।

यदि वेदमें गोमांस खानेकी आज्ञा होती तो और बात बन जाती । परंतु वेदमें गौ को इतना पवित्र माना है कि उसको अवध्य ही समझा है । इसलिये गोमांस भक्षणकी कल्पना ही वैदिक सिद्धांत के

प्रतिकूल सिद्ध हो जाती है । इसलिये इस उपनिषद् ध्वन का वैदिक धर्मके अनुकूल अर्थ करना होती वनस्पति विषयक ही अर्थ करना चाहिये, अन्यथा वह विरुद्धार्थ बन जायगा ।

## (१६) गोमेध का विचार ।

बहुत से लोगोंका यह ख्याल है कि वैदिक समय के गोमेध में गायकी हिंसा अवश्य होती थी । कलियुगमें गोमेध करने का कलिवर्ज्य प्रकरणमें कहा प्रतिबंध इसकी सिद्धता के लिये बताते हैं । परंतु ये लोग एक बात बिल्कुल भूल जाते हैं कि पार्सी लोगों के जेंदावेस्ता नामक धर्म पुस्तक में जो “गोमेज यज्ञ ” वैदिक गोमेध के सदृश है, उसमें गौकी हिंसा बिल्कुल नहीं और उनके सोम याग में भी हिंसा नहीं होती, केवल सोमवल्ली के रसका उपयोग किया जाता है । युरोपीयन लोग तुलनात्मक विचार करते हैं, परंतु जिस समय तुलनात्मक विचारसे अहिंसा सिद्ध होती है उस समय उस विचार को वे छोड़ देते हैं । यदि पार्सियोंका गोमेज गो वध के बिना बन सकता है तो वैदिक आर्योंका गोमेध क्यों नहीं बन सकता ?

“मेध ” केलिये किसीका घातपात करनेकी आवश्यकता बिल्कुल नहीं है, उदाहरण के लिये हम “गृहमेध, पितृमेध ” शब्द पेश कर सकते हैं । पितृमेधमें जैसा पिताका सत्कार अभीष्ट है और पिताके मांसके हवन की आवश्यकता नहीं होती; गृहमेधमें जिस प्रकार घरके आरोग्यरक्षण की बातों का विचार प्रधान होता है, उसीप्रकार “गोमेध में गौका सत्कार करना और उसके आरोग्यादिका विचार होना स्वाभाविक ही है । मनुभी कहते हैं-

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।

होमो दैवो बलिभौतो न्यज्ञोऽतिथिपूजनम् ।

मनुस्मृति

“विद्या पढ़ाना ब्रह्मयज्ञ है, मातापिताओंको संतुष्ट रखना पितृमेध है, होमहवन देव यज्ञ है, कृमि कीटकों के लिये अन्नका समर्पण करना भूतयज्ञ है और नरमेध अतिथिसत्कार है ।



पितृमेध, गृहमेध ये शब्द सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार नरमेध, अश्वमेध और गोमेध हैं इतनी प्रसिद्ध बात होनेपर भी म० वैद्य जैसे विद्वान लोग मानते हैं कि गोमेधमें गायका बलि दिया जाता था। इसलिये इस बातका विचार विस्तारसे करना चाहिये—

### (१७) यज्ञवाचक नाम ।

यज्ञवाचक नामों में “अध्वर” शब्द है इसका अर्थ ही “अ हिंसा” है, “ध्वर” शब्द हिंसावाचक है उसका निषेध अध्वर शब्दने किया है। यज्ञके नामों में अहिंसा वाचक अध्वर शब्दका होना सिद्ध कर रहा है कि यज्ञ मेध आदिमें किसी भी प्रकार हिंसा होना उचित नहीं है। “मेध” शब्दके तीन अर्थ हैं, “बुद्धिवर्धन, संगति करण और हिंसन” मेध शब्दमें हिंसा की वृ है, परंतु “वर्धन और मिलाना” भी है। अर्थात् “गो-मेध” का शब्दार्थ होगा = (१) गोसंवर्धन, (२) गोसंगतिकरण और (३) गोहिंसन। पाठक ही विचार करें कि तीन अर्थों में से गोमेधमें कौन सा अर्थ लिया जा सकता है। अहिंसा वाचक “अध्वर” शब्दके साहचर्यसे गोहिंसन अर्थ एकतर्फ करना ही पड़ता है और शेष दो अर्थ स्थानपर रह जाते हैं। गौकी पालना, गौओंको बढाना और गौसे अच्छे बच्चे पैदा करना “Cow Breeding” का तात्पर्य यहां गोसंगतिकरणसे है। गोमेधमें ये सब बातें आती हैं और गोवध नहीं आता; यह यज्ञके नामों का विचार करनेसे ही सिद्ध हो सकता है। तथापि विचारकी पूर्णताके लिये यहां गौके नामों का भी विचार करते हैं—

### ( १८ ) गौके वैदिक नाम ।

वैदिक कोश निघण्टु में गाय के नौ नाम दिये हैं उनमें निम्न लिखित तीन नाम अहिंसार्थक हैं—

- १ अघ्न्या (अ-घ्न्या) = हनन करने अयोग्य। अहंतव्या  
 २ अही (अ-ही) = “ ” “ ” “ ”  
 ३ अदिति (अ-दिति) = टुकड़े “ ” (अखंडनीया)

ये तीनों नाम गौ की हिंसा नहीं होनी चाहिये यह बात स्पष्ट रीतिसे बता रहे हैं। पहिले यज्ञ के नामों में अहिंसा बताई, अब गौके नामों में भी वही अहिंसा है। गौके नाम स्वयं अपने निज अर्थसे बता रहे हैं कि गौ पवित्र है इसलिये उसकी कभी हिंसा

नहीं होनी चाहिये। यही अर्थ प्रमाण मान कर महा भारतमें निम्न श्लोक लिखा है—

अघ्न्या इति गवां नाम क पता हन्तुमर्हति ।

महच्चकाराऽकुशलं वृषं गां वाऽऽलमेत्तु यः ।

म. भा शांति. अ. २६३

“भाई ! गौओंका नाम ही अघ्न्या है अर्थात् गौ हिंसा करने योग्य नहीं है, फिर इन गौओंको कौन मार सकता है। जो लोग गौको या बैल को मारते हैं वे बड़ा अयोग्य कर्म करते हैं।

### (१९) चरक की साक्षी ।

गोमेधके विषयमें वैद्यक ग्रंथ की चरक संहितामें निम्न लिखित पंक्तियां लिखी हैं—

आदिकाले खलु यज्ञेषु पशवः समालम्बनीया बभूवुः नारंभाय प्रक्रियन्ते स्म । ततो दक्षयज्ञ-प्रत्यवरकालं मनोः पुत्राणां मरिष्यन्नाभाकेश्वा-कुक्कुडिचर्यादीनां च क्रतुषु पशूनामेवाभ्यन्-ज्ञानात्पशवः प्रोक्षणमापुः । अतश्च प्रत्यवर-कालं पृषध्रेण दीर्घसत्रेण यजमानेन पशूनाम-लाभाद्भवामालम्भः प्रावर्तितः । तं दृष्ट्वा प्र-व्यथिता भूतगणाः । तेषां चोपयोगादुपकृता-नां गवां गौरवादौष्ण्यादसात्म्यादशस्तोपयो-गाच्चोपहताग्नीनामुपहतमनसामतीसारः पूर्व-मुत्पन्नः पृषध्रयज्ञे ॥ चरक चिकित्सा. अ. १९

“आदिकालमें सचमुच गौ आदि पशुओंको यज्ञों में सुशोभित किया जाता था। उनका वध नहीं होता था। पश्चात् दक्षयज्ञके नंतर मरिष्यन्, नाभाक, इक्ष्वाकु, तथा कुक्कुडिचर्या आदि मनुके पुत्रोंके यज्ञोंमें पशुओंका प्रोक्षण होने लगा। इसके बाद बहुत समय व्यतीत होनेपर राजापृषध्रेने जब दीर्घ सत्र शुरू किया और अन्य पशु न मिलने लगे तब अन्य पशुओंके अभाव में गौओंका आलम्बन शुरू किया। गौओंकी यह दशा देखकर सब प्राणिमात्र को बड़ा कष्ट हुआ। गौओंका मांस भारी, उष्ण और अस्वाभाविक होनेके कारण उस समय लोगों की अग्नि और बुद्धि शक्ति भी मन्द हो गई और अग्नि मंद होनेके कारण इसी पृषध्रके यज्ञसे गोवध से अतिसार रोग उत्पन्न हुआ।”



पाठक इस चरकाचार्यके कथनका खूब मनन करें। इसमें यज्ञकी तीन अवस्थाएं बताई हैं— ( १ ) पहिले समय में यज्ञोंमें पशुवध नहीं होता था। प्रत्युत गौ आदि पशुओंको यज्ञोंमें सुशोभित करके सत्कारसे रखा जाता था; ( २ ) दूसरे समयमें अर्थात् उसके बादके समयमें मनुके पुत्रोंने पशुओंको यज्ञ में प्रोक्षण करने की रीति चलाई; ( ३ ) पश्चात् तीसरे समयमें पृषधने सबसे प्रथम यज्ञमें गौका वध किया, परंतु इसका सबने निषेध किया। जिन्होंने इस यज्ञमें गोमांस खाया उनको अतिसार रोग हुआ; और तबसे अतिसार सब लोगोंको सताता रहा है।

इससे यह सिद्ध होता है कि अति प्राचीन वैदिक कालमें निर्मांस यज्ञ होते थे, मध्य कालमें समांस यज्ञ शुरू हुए परंतु इस कालमें भी गौ मारी नहीं जाती थी, पश्चात् बहुत आधुनिक कालमें यज्ञमें गोवध शुरू किया परंतु इसके विरुद्ध सब जनता हुई और गोवध जहां हुआ वहांसे अतिसार रोग शुरू हुआ। हमारा यह ख्याल है कि यज्ञमें गोवध बहुत दिन तक चला न होगा, पृषधके समय शुरू हुआ, लोगोंको भी यह पसंद न हुआ और रोगभी फैला; इस लिये फिर किसीने यह दुष्कर्म किया ही न होगा। तात्पर्य प्राचीन कालके यज्ञोंमें न पशुवध होता था और ना ही गोवध होता था। जिसने किया उसने बहुत अच्छी प्रकार उसका फल भोगा और उससे शुरू हुआ अतिसार रोग अबभी जनता को कष्ट दे रहा है। एक बार ऐसा भयानक अनुभव देखनेके पश्चात् ऐसा कुकर्म कौन भद्र पुरुष फिर करेगा?

चरकाचार्य के बताये तीन काल के हवनके तीन प्रकार और हमने इसी लेखमें इससे पूर्व ऋषि-पंचमी और यज्ञकी साक्षीके प्रकरणोंमें बताये विभाग, इनकी परस्पर तुलना पाठक करें और अतिप्राचीन आदि वैदिक कालमें निर्मांस अन्नकी प्रथा होनेका अनुभव देखें। सब बातें भिन्न भिन्न प्रमाणोंका विचार करने के बाद यदि एक ही रूपसे दिखाई देने लगीं, तो वही निश्चित सत्य है, ऐसा मानना योग्य है।

## ( २० ) एक संदेह स्थान ।

वेदमंत्रोंमें कई ऐसे मंत्र हैं कि जहां शब्दार्थसे कुछ तात्पर्य और प्रतीत होता है उदाहरण के लिये देखिये -

गोभिः श्रीणीत मत्सरम् ।

ऋ. ९।४६।४

इसका शब्दार्थ यह है - “ ( गोभिः ) गौओंके साथ ( मत्सरं ) सोम ( श्रीणीत ) पकाओ। ” ऐसे मंत्र देखकर लोग भ्रममें पड़ते हैं कि यह गोमांस के साथ सोम पकानेकी आज्ञा है। परंतु यह व्याकरण के अज्ञान के कारण भ्रम उत्पन्न होता है। व्याकरण के तद्धित प्रत्यय के साथ अच्छा परिचय हुआ तो यह भ्रम नहीं हो सकता, इस विषयमें श्री० यास्काचार्य का कथन देखिये-

अथाप्यस्यां ताद्धितेन कृत्स्नवन्निगमा

भवन्ति “ गोभिः श्रीणीत मत्सरमिति ” पयसः ।

निरुक्त. २।५

“ तद्धित प्रत्यय होनेके समान अंशके लिये संपूर्णका प्रयोग किया जाता है, उदाहरण ‘ गोभिः श्रीणीत मत्सरं ’ इसमें ‘ गौ ’ शब्दका अर्थ ‘ दूध ’ है। ” इसी विषयमें यास्काचार्यका और कथन सुनने लायक है—

“ अंशं दुहन्तो अध्यासते गवि ” इत्यधिषवण-चर्मणः । अथापि चर्म च श्लेष्मा च “ गोभिः सन्नद्धो असि वीलयस्व ” इति रथस्तुतौ । अथापि स्नाव च श्लेष्मा च “ गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ” इतीषुस्तुतौ ॥ १ ॥ ५ ॥ ज्यापि गौरुच्यते । गव्या चेत्ताद्धितम्, अथ चेन्न गव्या गमयतीषून् इति । “ वक्षे वक्षे नियतामीमयद्रौस्ततो वयः प्रपतान् पूरुषादः । ”

निरुक्त. २।५

इस वचन में वेदके तीन मंत्र देकर श्री० यास्काचार्यजीने बताया है कि “ चर्म, सरेस, तांत तथा धनुषकी डोरी ” इतने अर्थ गो शब्दके हैं, अर्थात् यहां अंशके लिये संपूर्ण का प्रयोग किया है।



आंख देखता है ऐसा कहनेके स्थान पर मनुष्य देखता है ऐसा सब बोलते ही हैं, इसी प्रकार गौसे उत्पन्न होने वाले दूध, दही, घी, चर्म, सरेश, तांत और तांतकी बनी डोरी आदि सब पदार्थों के लिये वेदमें एकही "गौ" शब्दका प्रयोग हुआ है। ऐसे प्रसंगोंमें पूर्वापर संबंधसे ही अर्थ करना चाहिये। पाठकों की सुविधाके लिये यहां हम इनके एक एक उदाहरण देते हैं-

अंशुं दुहन्तो अध्यासते गवि ।

ऋ० १० । १४ । १

"(अंशुं) सोमका रस (दुहन्तः) दोहन करते हुए (गवि) चर्मपर (अध्यासते) बैठते हैं।" यज्ञका विधि जिन्होंने देखा है उनको पता है कि चर्मपर सोम रखा जाता है और पश्चात् रस निचोड़ा जाता है। इसलिये यहां "गवि" शब्दका अर्थ "चर्मपर" ऐसा है, "गायमें" ऐसा अर्थ नहीं। और देखिये-

वनस्पते वीड्वंगो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः  
सुवीरः । गोभिः सन्नद्धो असि वीलयस्वास्था-  
ता ते जयतु जेत्वानि ॥

ऋ. ६ । ४७ । २६

"हे (वनस्पते) वृक्षसे बने हुए रथ ! तू (वीड्वंगः) दृढ अवयवोंवाला हमारा सहायक (प्रतरणः) पार ले जानेवाला और सुवीरोंसे युक्त हो। तू (गोभिः सन्नद्धः) चर्मकी रस्सियोंसे बांधा हुआ (वीलयस्व) वीरता दिखा, (ते आस्थाता) तेरे अंदर बैठनेवाला (जेत्वानि जयतु) जीतने योग्य शत्रुको जीते।"

इस मंत्रमें अंशके लिये पूर्णका प्रयोग करनेके दो उदाहरण हैं - (१) "गौ" शब्द चमड़ेकी डोरी का वाचक है, और (२) "वनस्पति" (वृक्ष) शब्द वृक्षसे बने हुए रथ का वाचक है। जिस प्रकार वृक्षसे लकड़ी और लकड़ीसे रथ बनता है, उसी प्रकार गौसे चमड़ा और चमड़ेसे डोरी बनती है। इसी प्रकार गौसे दूध, दूधसे दही, दहीसे मक्खन और मक्खनसे घी बनता है, और उक्त

कारणही इन सब पदार्थोंके लिये "गौ" शब्द प्रयुक्त होता है। अब और दूसरा उदाहरण देखिये-  
सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो  
गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ॥

ऋ. ६ । ७५ । ११

"यह बाण (सु-पर्ण) उत्तम पंखोंसे (वस्ते) युक्त है, इसका (दन्तः मृगः) नोक मृगकी हड्डीका बना है और यह (गोभिः सन्नद्धा) गोचर्मके बने बारीक धागों से अच्छी प्रकार बांधा है यह (प्रसूता) धनुष्यसे छूटा हुआ शत्रुपर (पतति) गिरता है।"

इस मंत्रमें भी अंशके लिये पूर्णका प्रयोग होनेके दो उदाहरण हैं। एक "मृग" शब्द मृगकी अर्थात् हरण की हड्डीका वाचक है। मृगकी हड्डी कहनेके स्थानपर केवल "मृग" ही कहा है। इसी प्रकार आगे जाकर चर्मसे बनी डोरियोंका वाचक शब्द "गोभिः" है। यह शब्दभी गोचर्मकी डोरीके लिये प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार निम्न मंत्रमें देखिये-

वृक्षे वृक्षे नियतामीमयद्रौस्ततो वयः

प्रपतान्पुरुषादः ॥

ऋ. १० । २७ । २२

(वृक्षे वृक्षे) लकड़ीसे बने प्रत्येक धनुष्यपर (नियता गौ) तनी हुई गोचर्मकी डोरी-ज्या- (अमीमयत्) शब्द करती है (ततः) उससे (पुरुषादः) मनुष्यों को खाने वाले (वयः) पक्षियोंके पर लगे हुए बाण (प्रपतान्) शत्रुपर गिर जाते हैं।

इस मंत्रमें दो या तीन शब्द अंश के लिये पूर्ण का प्रयोग होनेके हैं। (१) "वृक्ष" शब्द वृक्ष या लकड़ीसे बने हुए धनुष्य का वाचक है, (२) "गौ" शब्द गो चर्मसे बने धनुष्यकी डोरी का वाचक है और (३) "वयः" (पक्षी) शब्द उनके पंख लगे बाणों का वाचक है।

पाठक इतने उदाहरणों से समझ गये होंगे कि वेदकी यह शैली ही है कि अंश के लिये पूर्ण का प्रयोग हो। यह प्रयोग यदि केवल गौके लिये ही



होता तो कोई कह सकते थे कि यह खींचातानी की बात है, परंतु यहां तो अन्य बातों के लिये भी ऐसे ही प्रयोग हैं और ढाई सहस्र वर्षों के पूर्व ये उदाहरण देकर यही बात श्री० यास्काचार्य जीने बताई है। उक्त उदाहरणोंका समीकरण यह है-

- १ वनस्पति शब्द उसकी लकड़ीसे बने रथ के लिये
- २ वृक्ष " " " धनुष्य "
- ३ गौ शब्द उससे बने दूध, घी, आदिके "
- ४ " " " चर्म, चर्मपदार्थ "
- ५ " " " उसके चर्मसे बने हुए डोरी, बैग "
- ६ मृग उसकी हड्डीसे बने शस्त्रका द्योतक है
- ७ वयः शब्द उस पक्षीके पंखोंसे बने बाणों का वाचक है।

इस प्रकार अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, परंतु यहां हमने उतने ही दिये हैं कि जितने स्वयं श्री० यास्काचार्य ने अपने निरुक्त ग्रंथमें दिये हैं। इनको देखनेसे पाठकों का निश्चय होगया होगा कि यह वैदिक शैली ही है। यह बात यूरोपके विद्वानों के भी ध्यान में आ गई है और उन्होंने इसका स्वीकार भी किया है और इस लिये म० मैकडोनेल और कीथ महोदयोंने अपने वैदिक इन्डेक्स में लिखा है कि-

"The term (गौ Go) is often applied to express the products of the cow. It frequently means the milk, but rarely the flesh of the animal. In many passages it designates leather used as the material of various objects, as a bowstring or a sling or thongs to fasten part of the chariot, or reins, or the lash of a whip. (पृ. २३४)

अर्थात् "गौ" शब्द गौसे बने हुए पदार्थ बताने के लिये प्रयुक्त हुआ है। बारंबार यह गौ शब्द दूध के लिये आता है, क्वचित् पशुके मांसके लिये आता है। कई मंत्रों में इस गौ शब्दका अर्थ चर्म है जिससे धनुष्यकी डोरी, रस्सी, चमड़ेकी पट्टी,

गौफन लगामें, चाबूक आदि पदार्थ हैं। "

इसमें स्पष्ट लिखा है कि गौ शब्दका अर्थ दूध, चर्म आदि पदार्थ वेद में हैं। उक्त महोदयोंका मत है कि क्वचित् मांस भी अर्थ गौशब्दका होता है, परंतु ऐसे प्रयोग बहुत अल्प हैं। मांस अर्थ भी हो सकता है क्योंकि वह भी गौका अंशही है, परंतु जब गौ "अवध्य (अ-ध्या)" कही गई है तो उसके वधसे प्राप्त होने वाले मांस की संभावना कैसी हो सकती है? एकवार गौ को अवध्य कहा, यज्ञों के नामों द्वारा अहिंसा (अ-धर) कही, इसके पश्चात् गौके मांस की प्राप्ति ही नहीं होती। अतः गौ शब्दके वेही अंग लेने होंगे कि जो गौका वध करने के बिना प्राप्त हो सकते हैं, अर्थात् दूध, दही, मक्खन, घी, तथा चर्म तो मृत गौका भी मिल सकता है इस लिये उस चर्मके सब पदार्थ उसके अंतर्भूत हो जाते हैं, गौकी हड्डी भी इसी प्रकार गौ मरने पर प्राप्त हो सकती है। एक मांस ही ऐसी वस्तु है कि जो हिंसा किये बिना नहीं प्राप्त हो सकती अतः अवध्य गौका मांस वैदिक कालमें खाया जाता था इस विषयके कोई प्रमाण नहीं है।

## २१ नामधातु 'गोपाय' ।

जब एक बात निर्विवाद रीतिसे बहु मान्य और सर्वत्र प्रसिद्ध हो जाती है तब उसका शब्द मूलतः न होने पर भी भाषा में रूढ़ हो जाता है। उदाहरण के लिये "मेस्मर" यह अंग्रेजीका शब्द लीजिये। सन १७७८ में जर्मन डाक्टर मेस्मर ने प्रयोग द्वारा सिद्ध करके बताया कि एक मनुष्य अपनी मानस-शक्ति द्वारा दूसरे मनुष्यपर विशेष प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। यह बात इतनी लोकप्रिय हो गई कि इस क्रियाका वाचक धातु इस के ही नामसे बनाया गया देखिये-

Mesmer "मेस्मर" = जर्मन डाक्टर का नाम जिसने मानस शास्त्र का उक्त सिद्धांत प्रकाशित किया।

Mesmerize "मेस्मराइज्" = उक्त क्रियाके



प्रयोग करना ( धातु )

Mesmerism " मेस्मेरिज्म " = उक्त मानस क्रिया ।

Mesmerizer " मेस्मेरायझर " = उक्त मानस प्रयोग करनेवाला मनुष्य

इस प्रकार अनेक शब्द आंग्रेजी भाषामें बने हैं और आंग्रेजी कोशों में भी छपे हैं । ये शब्द सन १७७८ के पूर्व थे ही नहीं । इस प्रकार कई शब्द मनुष्योंके नामोंसे धातु बनकर उस धातुसे पुनः शब्द बने हैं । यह तब होता है कि जब वह बात बहुमान्य हो जाय ।

इसी प्रकार " गोपायति " क्रिया और " गोपाय " धातु " गोप " शब्द से संस्कृतमें तथा वेदमें बना है । " गोपायति " का अर्थ " रक्षण करता है " यह है । वास्तविक इसका अर्थ " (गोप इव आचरति) गोपालक के समान आचरण करता है " यह है । गोपालन की क्रिया सर्व मान्य और सर्व संमत होनेके बिना ऐसे नाम धातु प्रचारमें आना असंभव है ।

" गवालियेके समान आचरण " का अर्थ " संरक्षण " होने का तात्पर्य यही है कि " गौका संरक्षण " एक सर्वमान्य और निःसंदेह बात है, उसमें शंका नहीं हो सकती, किसीका इस विषयमें मतभेद नहीं हो सकता । " गुप् " धातु संरक्षण करनेके अर्थमें संस्कृतमें प्रयुक्त होता है और उसके रूप पूर्वोक्त नाम धातु के समान " गोपायति " ही होते हैं । गौके संरक्षण का विलक्षण प्रभाव जैसा सर्व साधारण पर हुआ इस शब्दद्वारा दिखता है, जिसका धातुके बनने और उसके रूप बनने पर भी असर पड़े, ऐसा कोई अन्य धातु या शब्द संस्कृतमें या वेदमें भी नहीं है । एक ही यह प्रयोग यदि सूक्ष्म विचार की दृष्टिसे देखा जाय तो स्पष्ट सिद्ध कर देगा कि गौओंका संरक्षण, पालन और संवर्धन आयोंमें और वैदिक धर्म में एक विशेष महत्त्व की बात है कि जिसपर शंकाही नहीं हो सकती । वेदने इस शब्द प्रयोग द्वारा ही सिद्ध कर दिया है कि " गौ अवध्य है " और उसका पालन तो निर्विवाद रीतिसे होना चाहिये । वेदमें इसके प्रयोग देखिये—

ये गोपायन्ति सूर्यम् । ऋ. १० । १५४। ५

" जो सूर्य की रक्षा करते हैं, " यह इसका तात्पर्य है, परंतु इसका भाव यह है कि " गोपालनके कर्मके समान कर्म सूर्य के साथ करते हैं । " अर्थात् सूर्य की पालना करते हैं । गोपालन के विषयमें और इससे अधिक कहना ही क्या चाहिये । वैदिक धर्ममें तो इस प्रकारके शब्द प्रयोगों से अंतिम आज्ञाही कही जाती है, जिसका उलट पुलट होना असंभव है ।

इस नामधातु और धातु के प्रयोग वेदमें बहुत हैं, उन सबके उदाहरण यहां दिखाने की आवश्यकता नहीं, परंतु इनकी उत्पत्ति यहां देखने योग्य है—

गौ = गाय

गोप (गो-प) = गायका पालक

गोपाय् = गोपालके समान आचरण करना अर्थात् रक्षा करना

गोपायति = रक्षा करता है ।

गापायनं = संरक्षण

गुप् (गु+प्) = (धातु) रक्षा करना

देखिये और विचारिये कि यदि गोपालन का महत्त्व निःसंदेह वैदिक धर्म में न होता तो ऐसे प्रयोग वेदमें कैसे आजाते । फिर इतना गोपालन का महत्त्व सिद्ध होनेपर किस प्रकार कहा जा सकता है कि वैदिक कालमें गोमांस भक्षणकी प्रथा थी । यदि गोमांसभक्षण की प्रथा होती तो गोरक्षा का इतना महत्त्व कैसे दर्शाया जाता?

## (२२) विवाहमें गोमांस

विवाह संस्कारमें गोमांस खाया जाता था ऐसा युरोपीयन पंडित म. मैकडोनेल और कीथने अपने वैदिक इंडेक्स में पृ. १४५ पर लिखा है— "The marriage ceremony was accompanied by the slaying of oxen, clearly for food." विवाह संस्कार में गाय बैलोंका वध अन्नके लिये ही किया जाता था । इस विषय का प्रमाण उन्होंने जो दिया है उसका विचार अब करना चाहिये—  
सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासजत् ।  
अघासु हन्यन्ते गावोर्जुन्योः पर्युह्यते ॥

ऋ. १० । ८५ । १३



यह मंत्र एक आलंकारिक वर्णनमें आगया है इसका पूर्वापर संबंध देखनेसे मंत्र का अर्थ स्वयं खुल जायगा । इसलिये इसके पूर्व के कुछ मंत्र देखिये-

सत्येनोत्तमिता भूमिः सूर्येणोत्तमिता द्यौः ।  
 ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिष्ठितः ॥१॥  
 चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।  
 द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम् ॥७॥  
 स्तोमा आसन्प्रतिध्रुवः कुरीरं छंद ओपशः ।  
 सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत्पुरोगवः ॥८॥  
 सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।  
 सूर्या यत्पत्ये शंसन्ती मनसा सविता ददात् ॥९॥  
 मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत छदिः ।  
 शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात्सूर्या गृहम् ॥१०॥  
 क्रक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः ।  
 श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥११॥  
 शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।  
 अनो मनस्मयं सूर्यारोहत्प्रयतो पतिम् ॥१२॥  
 सूर्याया वहतुः प्रागात्सविता यमवासृजत् ।  
 “अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते ॥ १३ ॥”  
 यदयात् शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।  
 क्वैकं चक्रं वामासीत्क्व दष्टाय तस्थथुः ॥१५॥  
 द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्मण क्रतुथा विदुः ।  
 अथैकं चक्रं यद्रहा तदद्वातय इन्द्रिदुः ॥१६॥  
 क्र. १० । ८५ । १-१६

इन मंत्रोंका अर्थ देखनेके समय पाठक यह बात ध्यान में रखें की यह विवाहका आलंकारिक वर्णन है जिसमें सूर्य की पुत्री सूर्या का विवाह चंद्रमासे होनेका वर्णन है, देखिये अब इस का अर्थ-

“सत्यसे भूमिका धारण हुआ है, सूर्यने द्युलोक का धारण किया है, सचाईसे आदित्य ठहरे हैं, द्युलोकमें सोम रहा है ॥१॥ विचारशक्ति का तकिया बनाया है, दृष्टिका अंजन आंखमें रखा है, भूमिसे द्युलोक तकके सब पदार्थ खजाना था जिस समय सूर्या वधु अपने पतिके पास गई ॥७॥ रथ बनाने में मंत्रों के दंडे लगाये गये, कुरीर नामक छंदों से उसकी चमक बढ़ाई गई । दोनों अश्विनीकुमार

वधुपक्षके साथ थे और अग्नि सबके आगे था ॥८॥ सोम वधू चाहनेवाला वर था और अश्विदेव वधुके साथ रहे । सूर्य देवने मनसे पतिकी इच्छा करनेवाली सूर्यावधूको पतिके हाथमें अर्पण किया ॥ ९ ॥ इसका रथ मन ही था, द्युलोक उस रथका ऊपर का भाग था, दो श्वेत बैल रथको जाड़े थे जिस समय सूर्या अपने पतिके घर पहुंची ॥ १० ॥ ऋक् और साम मंत्रोंसे वे दोनों बैल अपने स्थानमें रखे गये थे । यहां दो कान ही रथके दो चक्र थे, द्युलोक में उसका स्थावर जंगम मार्ग है ॥ ११ ॥ तुम्हारे जानेके दोनों चक्र शुद्ध हैं, व्यान नामक प्राण रथका ( अक्षः ) मध्यदंड है, ऐसे ( मनस्मयं अनः ) मन रूपी रथपर सूर्या देवी बैठ कर अपने पतिके पास जाती है ॥ १२ ॥ सविता देवने सूर्या देवी की दहेज धूमधडाके के साथ भेजी जो आगे चली, इस समय [ ( अघासु हन्यन्ते गावः ) युरोपीयनों का अर्थ=मघा नक्षत्रमें गौवें मारी जाती हैं !!! ] मघा नक्षत्रमें दहेजमें गौवें भेजी जाती हैं अर्थात् सूर्यकी किरणें चंद्रमातक पहुंचायाँ जाती हैं और ( अर्जुन्योः पर्युह्यते ) फल्गुनी नक्षत्रमें सूर्या के साथ सोम का विवाह किया जाता है ॥१३॥ हे अश्विदेवो ! जब आप अपने तीन चक्रवाले रथ में बैठ कर सूर्यादेवी के वरात में स्वयं आये, तब आपके रथका एक चक्र कहां था, और आप आज्ञा-पालन के लिये कहां ठहरे थे ॥१५॥ हे सूर्या देवी ! तुम्हारे दो चक्र ब्राह्मण क्रतुओं के अनुसार जानते हैं और जो एक चक्र ( गुहा ) गुप्त है, ( या हृदयकी गुहामें अदृश्य है, ) उसको बेही जानते हैं कि जो अटल सत्य तत्त्वको जानते हैं ॥ १६ ॥

पाठक ये मंत्र देखें और उनका यह अर्थ भी देखें तो उनको स्पष्ट पता लग जायगा कि यहां गौ-ओंका वधु करनेका संबंध ही नहीं है । यदि “गायें मारी जाती हैं” ऐसा बीचमें पढ़ा तो वह वहां सजा-ता ही नहीं है । ऊपरके अर्थमें यह यूरोपीयनों का अर्थ और वास्तविक अर्थ दोनों दिये हैं । पाठक खूब विचार करके देखें और स्वयं अनुभव करें कि यूरोपीयनोंकी यह मंत्र समझनेमें कैसी बड़ी भारी भूल हुई है ।



डा. वुईल्सन ने (अघासु हन्यन्ते गावः) का अर्थ "मघा नक्षत्रमें गौवें (are whipped along) चलाई जाती हैं।" ऐसा किया है जो अधिक शुद्ध है, परंतु "गौवें काटी जाती है" यह अर्थ म. ग्रिफिथ, व्हिटने आदियों ने माना है, वह उनकी बड़ी भारी भूल है, यह पूर्वापर संबंध देखनेसे स्वयं स्पष्ट हुआ है। यह ऊपरके मंत्रोंका जो अर्थ हमने ऊपर दिया है वह सब युरोपीयन ऐसा ही मानते हैं, केवल "गौ काटने" वाला उनका अर्थ भिन्न है। वास्तवमें यहां अब इसका अधिक विवरण करनेकी आवश्यकता नहीं है, तथापि पाठकों को यह अलंकार स्पष्ट समझमें आजाय इसलिये संक्षेपसे यह अलंकार खोलते हैं। विवाहकी बरातका रथ—

रथ	मन ( मं. १० )
रथका छत्र	द्युलोक ( ,, )
रथचालक	दो बैल ( ,, )
लगामें	ऋक्साम मंत्र (मं. ११)
मार्ग	स्थावर जंगम जगत् (११)
अक्ष (रथदंड)	व्यान प्राण. ( मं. १२ )
तकिया	विचार शक्ति (मं. ७)
अंजन	दृश्य ( मं. ७ )
खजाना	सब पदार्थ ( मं. ७ )
रथके दंड	मंत्र ( मं. ८ )
रथकी चमक	मंत्रोंके छंद ( मं. ८ )
वधूके साथी	दो अश्विनीकुमार ( मं. ९ )
अग्रगामी	अग्नि ( मं. ९ )
दो रथ चक्र	दो कान ( मं. ११ )

मंत्रमें जिस प्रकार वर्णन है वह यहां दिया है, परंतु पाठक जानते ही हैं कि वेदका वर्णन आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीन विभागों में विभक्त होता है, उस विचार से संगति करण करके नीचे कोष्टक दिया जाता है जिससे यह रूपक खुल जायगा—

अधिभूत ( लोकचारमें )	अधिदैवत ( विश्वमें )	अध्यात्म ( शरीरमें )
वधूका पिता	सूर्य	परमपिता
वधू	सूर्या (सूर्यप्रभा)	बुद्धिशक्ति

वर	सोम	षोडशकला-
वधूके साथी	दो अश्विनी	गुप्त आत्मा
बरातमें-	अग्नि	श्वास, उच्छ्वास
अग्रगामी		शब्द ( वाणी )
.....	.....	.....
आंखमें अंजन	दृश्य	दृष्टि
वधूका धन	सब पदार्थ	सब अवयव
.....	.....	.....
गौवें	किरणें	इन्द्रियें
रथ	विद्युत्	मन
रथका छत्र	द्युलोक	मस्तिष्क
रथका मार्ग	स्थिरचर	जडचेतन
रथवाहक	वायु	प्राणापान
बैल(दो)		
लगामें	...	ऋक्साममंत्र
रथके दंड	...	मंत्र
रथकी चमक	...	छंद
अक्ष	...	व्यानवायु
रथके दो चक्र	दिशाएं	दो कान
रथमें तकिये	...	सुविचार

यह कोष्टक देखनेसे यह वैदिक अलंकार पाठकों के मनमें खुल गया होगा। इसलिये इसका विचार यहां अधिक फैलाने की आवश्यकता नहीं है। पाठक यह विवाह अपने अंदर भी देख सकते हैं और बाहर जगतमें भी देख सकते हैं। वेद मंत्रों में बाह्य जगत्में होने वाले सनातन विवाह का वर्णन किया है और बीच बीचमें व्यक्तिके शरीरमें होनेवाले विवाहकी भी सूचनाएं 'मन, सुविचार' आदि शब्दों द्वारा दी हैं। सूर्यको प्रभा चंद्रमामें जाकर वहां रमती है, इसपर रूपकालंकार से आध्यात्मिक तत्त्वका वर्णन इस सूक्त में किया है।

"गो" शब्द सूर्य किरणोंका वाचक प्रसिद्ध है, इसविषय में किसीको भी शंका नहीं है। "हन्यन्ते" इस क्रियामें "हन्" धातु है, "हन् हिंसागत्यो" ये व्याकरणाचार्य पाणिनी मुनिने इसके अर्थ दिये हैं अर्थात् "हिंसा और गति" ये इसके अर्थ धातु पाठमें हैं, कोशोंमें इस "हन्" धातुके अर्थ निम्न



प्रकार हैं- To kill ( वध करना ), To multiply ( गुणाकरना ), To go ( जाना )। हर एक कोशमें पाठक ये देख सकते ।

यदि पाठक ये ' हन् ' धातुके अर्थ देखेंगे तो उनको-

अघ्रास् हन्यन्ते गावो जृन्वोः पर्युह्यते ॥

इस पूर्वोक्त मंत्रके वाक्य का अर्थ (पूर्वोक्त अलंकार छोड़ कर भी) स्पष्ट हो जायगा "(अघ्रास्) मघा नक्षत्रके समय ( गावः ) गौवें ( हन्यन्ते ) चलाई जाती हैं, और ( अर्जुन्योः ) फल्गुनी नक्षत्रके समय ( पर्युह्यते ) विवाह किया जाता है ।" डा. वुड्सनने यही अर्थ स्वीकृत किया है। अलंकार का तात्पर्य छोड़कर और केवल स्थूल दृष्टिसे देखकर भी सरल अर्थ यह होता है। क्यों कि यद्यपि हन् धातु का वध करना अर्थ प्रसिद्ध है तथापि उसका दूसरा गतिवाचक अर्थ नष्ट नहीं हुआ है। यदि इसका ( to multiply ) गुणा करना यह अर्थ लिया जाय तो 'गावः हन्यन्ते' का अर्थ होगा 'गौओं की संख्या बढ़ाई जाती है' गौवें दुगुणी चौगुणी की जाती हैं। जिस समय विवाह होता है उस समय बहुत आदमो इकट्ठे होते हैं, उनको दूध पिलानेके लिये स्थान स्थानसे गौवें इकट्ठी की जाती हैं, लाई जाती हैं और उनकी संख्या बढ़ाई जाती है। विवाह प्रसंग के लिये यह अर्थ कितना सार्थ है और सरल है यह देखिये। "अध्या" शब्दसे बताया हुआ गौका अवध्यत्व रख करही जो अर्थ पूर्वापर संबंध में ठीक बैठ जायगा वही ठीक अर्थ होगा।

इसके अतिरिक्त पूर्वोक्त कोष्टक में देखिये तो पता लग जायगा कि जो आधिभूतमें "गौवें" हैं, वेही आधिदैवतमें "किरणें" और आध्यात्मिक भूमिका में "इंद्रियशक्तियां" हैं। जिस समय किसी बातके विषयमें संदेह उत्पन्न हो जाता है उस समय अन्य क्षेत्रोंका व्यवहार देखकर अर्थ का निश्चय करना चाहिये। अधिभूतपक्ष में अर्थात् लोक व्यवहार में गौवों का वध विवाह प्रसंगमें करना चाहिये या नहीं। इस मंत्र का अर्थ कैसा

करना चाहिये, 'हन्' धातुके दो अर्थ हैं उनमें यहां कौनसा लिया जाय। इस शंकाकी उत्पत्ति होनेपर आधिदैवत में और अध्यात्ममें क्या होता है यह देखिये और उचित निश्चय कीजिये।

आधिदैवत पक्ष में सूर्यकी किरणें चंद्रमातक फैलाई जाती हैं, प्रकाश का विस्तार किया जाता है, यह अर्थ स्पष्ट है। सूर्यकी किरणें मारी नहीं जाती। यह देखने से हमें पता लगा कि "हन्" धातु का अर्थ वध यहां अपेक्षित नहीं है, प्रत्युत फैलाव विस्तार या गति अर्थ ही अपेक्षित है। प्रतिबंध या वध अर्थ यहां लिया जाय तो सूर्यकी किरणें मारी जानेपर चंद्रमातक सूर्यकी प्रभा पहुंचेगी कैसी और सूर्यपत्नी प्रभा (सूर्या सावित्री) का सोम (चंद्र) के साथ विवाह कैसे होगा? और धूमधामके साथ बरात भी कैसी चलेगी? अर्थात् यहां "हन्" धातु का वध अर्थ अपेक्षित नहीं है।

आध्यात्मिक पक्षमें अपने अंदर देखिये कि क्या इंद्रिय शक्तियां मारी जानेसे आत्मा का सुख बढ़ेगा या उन को सुनियमोंसे चलानेसे कल्याण होगा। इसके विवाह का रथ जगत् के मार्ग परसे क्रकसा मंत्रोंके द्वारा नियत धर्ममार्गपर से ही चलना चाहिये इसलिये इसके रथके बैल सुशिक्षित होके मंत्रोंके लगामों द्वारा योग्य मार्ग परसे चलाने चाहिये। इत्यादि विचार से स्पष्ट पता लगता है कि यहां भी गोपालन ही अभीष्ट है।

इसी प्रकार विवाह यज्ञमें आनेवाले पारिवारिक सज्जनों के दुग्धपानके लिये गौवों को इकट्ठा करना, उनको योग्य मार्ग परसे चलाना, इधर उधर भागने न देना योग्य है। उनका वध करनेसे, उनकी कतल करने से क्या लाभ होगा?

इस दृष्टिसे देखनेसे भी पता लग जाता है कि विवाह संस्कार में गौवोंकी संख्या (multiply) बढ़ाना यहां अभीष्ट है या उनको योग्य मार्गसे चलाना अभीष्ट है। ऊपर "हन्" धातुका अर्थ 'गति' दिया है। इस गतिके अर्थ 'ज्ञान' गमन और प्राप्ति हैं ॥ ये अर्थ सब व्याकरणशास्त्रकार मानते हैं। ये अर्थ यदि गति शब्दसे यहां लिये जाय तो



“ गावः हन्यन्ते ” का अर्थ होगा— “ गौओं का ज्ञान प्राप्त करना, गौओं को चलाना, अथवा गौओं को प्राप्त करना । ”

“ हन् ” धातु का अर्थ “ ताड़न करना ” भी है । इस समय मराठी भाषामें यह अर्थ प्रचलित है ( हनन = हाणणे ) इस शब्द का अर्थ सोटीसे ताड़न करना है अर्थात् गवालिये हाथ में सोटी लेकर गौवों को जिस दिशामें ले जाना होता है उस दिशामें ले जाते हैं । यह “ हनन ” शब्द का अर्थ है । हन् धातु का यह अर्थ लिया जाय तो “ हन्यन्ते गावः ” का अर्थ होगा— “ गौओं को गवालिये जिस मार्गसे ले जाना हो उस मार्गसे ले जाते हैं । ” अर्थात् विवाह के प्रसंगमें गौओं को इकट्ठा करते हैं और इष्ट स्थानपर ले जाते हैं ।

कुछभी हो, यहां “ गौवों का वध ” अभीष्ट नहीं है यह बात स्पष्ट है । श्री. सायणाचार्य जीने भी यहां वध अर्थ नहीं किया है — “ मघानक्षत्रेषु गावः हन्यन्ते दण्डैः ताडयन्ते प्रेरणार्थम् । ” अर्थात् “ मघा नक्षत्रके समय गौवें वहां पहुंचाने के लिये सोटियों से ताड़ित होकर प्रेरित की जाती हैं । ” सूर्य के घरसे चली हुई गौवें सोमके घर पहुंचने के लिये मार्गमें ठीक मार्गसे चलायी जाती हैं । यहां सायण भाष्यका भाव यह है कि “ सूर्य देवने अपनी पुत्री के विवाह के समय दहेज, स्त्रीधन या ( Dowry ) के रूपमें दी हुई गौवें चंद्रमा के घर तक पहुंचाने का कार्य करनेके लिये सूर्य देवके गवालिये गौवें ले जाते हैं और ठीक मार्गसे उनको चलाने के लिये मार्गमें आवश्यक हुआ तो ताड़न करते हैं, अंतमें वह गौवें सोमके घर पहुंचती हैं और फल्गुनी नक्षत्रके समय सूर्य पुत्री का चंद्रमाके साथ विवाह होता है । ” यदि यहां “ गौवों का वध ” अर्थ लिया जाय तो दहेज का बीचमें ही नाश होनेसे पुत्रीका भावी पति रुष्ट हो जायगा और विवाह में आपत्ति आजायगी । इस कारण “ वध ” अर्थ यहां अभीष्ट नहीं है ।

किसी भी प्रकार पाठक विचार कर के देखेंगे, तो उनको स्पष्टतासे पता लग जायगा कि यहां “ गोवध ” अभीष्ट नहीं है । इतना होते हुए भी यूरोपीयन

पंडितोंने इस मंत्रके आधार से ही लिखा है कि—

The marriage ceremony was accompanied by slaying of oxen, clearly for food

“ ( विवाह संस्कार में खाने के लिये ही गाय बैल काटे जाते थे ! ) पूर्वापर संबंध न देखते हुए ही एकदम कैसे अनुमान लिख मारते हैं, इसका बड़ा आश्चर्य होता है । संभवतः म० वैद्यजी भी ऐसे लेखों को देख कर ही कहते होंगे कि “ प्राचीन समयमें गोमांस भक्षण की प्रथा थी । ” यूरोपके लोग जो चाहे सो अनुमान करें, परंतु हमारे लोगों को तो पूर्वापर संबंध देखकर अधिक विचार करके ही अपने अनुमान निकालना चाहिये । अन्यथा ऊपर वाले मंत्र में देखिये कि किसीभी रीतिसे गोका वध सजता ही नहीं, परंतु यही मंत्र गोमांसभक्षण का प्रमाण करके ये लोग पेश करते हैं । इस से और अधिक कोरी भूल कोई नहीं हो सकती ।

नक्षत्रों में “ मघा ” नक्षत्र होते ही “ पूर्वा और उत्तरा ” ये दो फल्गुनी नक्षत्र आते हैं । चंद्रमाके तीन राशी का प्रवास इनमें होता है । सोमवार के दिन मघा नक्षत्र हुआ तो प्रायः मंगल और बुध के दिनोंमें दोनों फल्गुनी नक्षत्र आते हैं । इसीलिये दहेज मघानक्षत्र के समय भेज कर दूसरे या तीसरे दिन विवाह किया जाता है । इस मंत्रसे यदि कोई अनुमान निकालना है तो यही निकल सकेगा कि वेद के अनुसार दहेज में गौवें दी जाती हैं और दहेज घर के घर पहुंचने के पश्चात् विवाह होता है । परंतु गौवोंके वधका अनुमान तो कदापि निकल नहीं सकता । ऐसा अनुमान निकालना एक अज्ञान का विलक्षण प्रदर्शन करना ही है । यहां “ हन् ” धातु का अर्थ क्या है यह अवश्य देखना चाहिये—

१ हन् = (वधकरना To kill) यह अर्थ प्रसिद्ध है ।

२ हन् = (जाना, चलाना, प्रेरणा देना To go, to remove) यह अर्थ व्याकरणाचार्योंने माना है और यह धातु इस अर्थ में क्वचित् भाषामें भी प्रयुक्त होता है । वेद में यह अर्थ अधिक बार आता है और



भाषामें कम । वैदिक कोश 'निघण्टु' के २। १४ में यह 'गति' अर्थ दिया है ।

३ हन् = ( रक्षा करना ) जैसा "हस्त - धन" में "धन" का अर्थ "रक्षा करना" है । 'हस्तधन' का अर्थ ( Hand guard ) "हाथकी रक्षा करनेवाला" ऐसा होता है । यह प्रयोग वेदमें है । ( क. ६ : ७५। १४ )

४ हन् = ( गुणा करना To multiply ) गणितमें यह प्रयोग है । "घात, हनन, हति, हत" आदि शब्द ( Multiplication ) बहोत्री, गुणा अर्थमें प्रयुक्त हैं ।

५ हन् = ( उड़ाना, बढ़ाना to raise ) "तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुः" ( शाकुंतल १। ३२ ) ( घोड़ेके पांव से हत अर्थात् उड़ाई हुई धूली ) ऐसे वाक्यों में यह अर्थ होता है ।

६ हन् = ( ताड़न करना to beat ) जैसा पशुओंको सोटीसे गवालिये समयपर ताड़न करते हैं ।

७ हन् = ( To ward off; avert रक्षा करना, दूर करना ) यह अर्थ महाभारतमें भी है ।

८ हन् = ( to touch, come in contact स्पर्श करना, संबंधमें आना ) वराहमिहिर बृहत्संहितामें यह अर्थ ज्योतिषमें प्रयुक्त है ।

९ हन् = ( to give up, abandon छोड़ देना )

१० हन् = ( to obstruct प्रतिबंध करना )

"हन्" धातु के इतने अर्थ कोशों हैं । इन अर्थों में से प्राचीन वेद मंत्रों में कौनसे अर्थ आये हैं इनका प्रकरण और पूर्वापर संगतिसे ही अर्थ करना चाहिये "हन्" धातु जहां जहां आजाय वहां वहां उसका "वध" ही अर्थ लिया जाय तो अर्थका अनर्थ होनेमें विलंब नहीं लगेगा ।

## २३ अतिथिकेलिये गौ

वेद में गौ वाचक "अतिथिनी" शब्द आया है, इस शब्द के दो अर्थ हैं, ( १ ) भ्रमण करनेवाली

और ( २ ) अतिथिके लिये योग्या युरोपीयन भाषांतर कार तथा कोशकार "अतिथिनी" शब्द का अर्थ ( wandering ) घूमने फिरने वाली, भ्रमण करने वाली, चलनेवाली ऐसा ही करते हैं, परंतु म. मैकडोनेल और कीथ महोदयोंने अपने वैदिक इंडेक्स पृ. १४५ पर ( Slaying cows for guests ) अतिथियोंके लिये गौके काटने उल्लेख करते हुए निम्न लिखित मंत्रका प्रमाण दिया है जिस में यह "अतिथिनी" शब्द है—

साध्वर्या अतिथिनीरिषिराः स्मार्हाः सुवर्णा  
अनवद्यरूपाः । बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वित्यूया  
निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥

ऋग्वेद १०। ६८। ३

इसका अर्थ म० ग्रिफिथ यह करते हैं = Brihaspati, having won them from the mountains, strewn down, like barley out of winnowing-baskets; the vigorous, WANDERING COWS who aid the pious, desired of all, of blameless form, well-coloured.

पाठक देखें और विचारें कि इस मंत्रार्थमें अतिथिके लिये गौ काटनेका कहां संबंध है? इस मंत्रका शब्दार्थ यह है— ( साधु + अर्याः ) कल्याण करनेवाली, ( अतिथिनीः ) खूब घूमने वाली, ( रिषिराः ) इच्छा करने योग्य, ( स्मार्हाः ) स्पृहणीय, ( सुवर्णाः ) उत्तम रंगवाली, ( अनवद्यरूपाः ) उत्तम स्वरूप ऐसी ( गाः ) गौवें बृहस्पतिने पर्वतोंसे लाईं, जिस प्रकार धान्य छजसे लाते हैं । "

क्या कभी कोई मनुष्य यह मंत्र "अतिथि के लिये गौ काटने" के विषयमें प्रमाण रूपमें दे सकते हैं? परंतु यह म. मैकडोनेल और कीथने अपने पुस्तक में पृ. १४५ पर दिया है । म. ब्लूमफील्डने इस मंत्रपर यही अनुमान "अमेरिकन जर्नल आफ फिलोसोफी" १७, ४२६ तथा "जर्नल आफ दी अमेरिकन ओरिएंटल सोसैटी" १६, १२४ में "अतिथिनी" शब्द से निकाला है जो म. मैकडोनेल ने दिया है । वास्तवमें इस मंत्रमें दोही शब्द हैं, जिनकी ऐसी खींचातानी की जा सकती है—



१ साध्वर्याः = ( साधु+अर्याः ) = साधुओंके पास जानेवाली, कल्याण करने वाली ।

२ अतिथिनी = घूमने वाली, अतिथि के लिये योग्य.

पाठक विचार करें की इन शब्दोंसे ही यदि 'गौ काटकर अतिथिको खिलानेका भाव' निकालना युरोपीयनोंको मंजूर हो तो फिर वाद विवाद करने की कोई आवश्यकताही नहीं है । वे फिर लिखते हैं— The name ATITHIGVA probably means slaying cows for guests. अर्थात् 'अतिथिग्व' शब्द का बहुत करके अर्थ अतिथिके लिये गौ काटना है ।

म० ब्लूमफील्डने अतिथिग्व शब्दका अर्थ— Presenting cows to guests ऐसा करके उससे अनुमान निकाला है कि यहां अतिथिके लिये गोवध दिखाई देता है ।

सर मोनियर वुइलियम्स अपने सुप्रसिद्ध संस्कृत इंग्लिश कोशमें पृ. १४ पर 'अतिथिग्व' शब्दका अर्थ करते हैं—To whom guests should go अर्थात् 'जिसके पास अतिथि चले जाय ।' यही इस शब्दका सत्य अर्थ है । और इस शब्दसे अतिथि के लिये गौ काटनेका कोई तात्पर्य नहीं निकल सकता ।

हम जिस समय युरोपीयन पंडितोंके ऐसे अनुमान पढ़ते हैं तब हमें आश्चर्य होता है कि इतने अल्प आधार से इतनी अनुमानों की बड़ी छलांगें ये लोग क्यों मारते हैं? क्या किसी न किसी प्रकार ऋषियोंके मध्यपर गौ काटकर खानेका दोष लगाना ही इन्हें मंजूर है वा अन्य कोई अंदर की बात है?

“अतिथि-ग्व” शब्दके तीन ही अर्थ संभवनीय हैं, एक 'अतिथिके पास जाना,' दूसरा “अतिथि जिसके पास जाय,” और तीसरा “अतिथिके लिये जिसकी गौवें हैं ऐसा गृहस्थी मनुष्य ।” यह तीसरा अर्थ इस समय तक किसीने भी स्वीकृत किया नहीं है । तथापि यह अर्थ माननेपरभी अतिथि के लिये गौ काटनेका भाव इससे किस प्रकार

निकल सकेगा ? अतिथिसत्कार के लिये, दूध, घी आदि अतिथिको समर्पण करनेके लिये जिसने गौएं रखी हैं ऐसा गृहस्थ, इतना इसका अर्थ होना संभव है । इससे अधिक अनुमान निकालना बड़ा दोषपूर्ण है ।

## ( २४ ) यज्ञमें मांसका अर्पण ।

“यज्ञमें अन्य हवनके समान मांसका भी समर्पण होता था, देवताओं के उद्देश्यसे मांस दिया जाता था और यज्ञशेष मांस ऋत्विज लोग खाते थे” ऐसा कथन मांस शब्दके ऊपर लिखते हुए म० मैकडोनेल और कीथ महोदयोंने किया है—

“The eating of flesh appears as something quite regular in Vedic texts, which show no trace of the doctrine of AHIMSA or abstaining from injury to animals. For example, the ritual offerings of flesh contemplate that the Gods will eat it, and again the Brahmins ate the offering, (Vedic Index Vol II. page 145.)

अर्थात्—“वैदिक सूक्त देखनेपर ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि मांस खाना तो एक सर्व साधारण बात थी, उस समय अहिंसा का सिद्धांत प्रचलित नहीं हुआ था, इसका उदाहरण यह है कि यज्ञमें मांसकी आहुतियां देनेका मतलब यही हो सकता है कि देवता उसे खांय और ब्राह्मण तो यज्ञसे बचा हुआ खाते ही थे ।”

इस विधान में निम्न लिखित बातें हैं—

- ( १ ) वैदिक सूक्तोंमें अहिंसा का सिद्धांत नहीं है,
- ( २ ) वैदिक समयमें मांस खाना तो एक सर्व साधारण बात थी,
- ( ३ ) यज्ञमें मांस की आहुतियां दी जाती थीं,
- ( ४ ) मांसाहुति देनेका भाव देव उन मांस की आहुतियोंको खाते थे यही था,
- ( ५ ) पश्चात् ऋत्विज लोग ब्राह्मण उस मांसको खातेभी थे ।

यह पांच विधान उक्त लेखमें हैं, इस लिये इनका विचार करना आवश्यक है । पहिले यज्ञमें जो मांस-



का हवन आजकल होता है वह उत्तर वेदी में होता है और वह वेदी पीछेसे यज्ञमें घुस गई है यह बात हमने इससे पूर्व ही बताई है। यदि वह बात मानी जाय तो ये पाँचों के पाँचों विधान स्वयं गिर जाते हैं, तथापि वह बात ध्यानमें रखते हुए इस बात की खोज हमें अधिक करनी चाहिये। प्रथम हम देखेंगे कि हवनमें मांस की आवश्यकता समझी जाती थी या नहीं, इस विषयमें निम्न लिखित वचन बड़ा बोधप्रद हो सकता है—

पुरुषं वै देवा अग्रे पशुमालेभिरं तस्यालब्धस्य मेधोऽपचक्राम । सोऽश्वं प्रविवेश । तेऽश्वमालभन्त । तस्यालब्धस्य मेधोऽपचक्राम स गां प्रविवेश । ते गामालभन्त । तस्यालब्धया मेधोऽपचक्राम सोऽग्निं प्रविवेश । तेऽग्निमालभन्त । तस्यालब्धस्य मेधोऽपचक्राम सोऽजं प्रविवेश । तेऽजमालभन्त तस्या लब्धस्य मेधोऽपचक्राम स इमां पृथिवीं प्रविवेश । तं खनन्त इवान्वीपु तमन्वविन्दन् । तौ इमौ ब्रीहियवौ । स यावद्वीर्यवद् वा अस्य एते सर्वे पशव आलब्धाः स्युः तावद्वीर्यवद्वास्य हविरेव भवति ।

शतपथ ब्राह्मण १।२।३।६-९

पशुभ्य मेद उदक्रामस्तौ ब्रीहिश्चैव यवश्च

भूतावजेयाताम् ॥ ऐतरेय ब्रा० २।२।२१

इन वचनोंका तात्पर्य यह है— 'पहिले देवोंने मनुष्य को काटा तब उनको पता लगा कि उसमेंसे यज्ञीय भाग भाग गया और घोड़ेमें छिप गया है, तब उन्होंने घोड़ेको काट कर देखा, तो उनको विदित हुआ कि वहाँसे भी यज्ञीय पदार्थ भाग गया और गायमें जाकर बैठ गया, तब उन्होंने गाय को काट डाला, तो भी उनको पता लगा कि वहाँसे भी यज्ञका भाग भाग गया और मेढेमें घुस गया, तो उन्होंने उसको काटकर देखा तो वहाँसे भी वह भाग गया और बकरेमें छिप गया, तो उन्होंने बकरेको काटा, तो वह यज्ञीय पदार्थ भाग गया और भूमिमें घुस गया और जौ तथा चावल रूपसे ऊपर आगया। इस लिये चावल और जौ का हविही पूर्ण वीर्यवान् है क्योंकि यहां वह यज्ञका भाग स्थिर रहा ।'

इसका तात्पर्य स्पष्ट है कि पशुको काटनेपर उसके मृतदेहमें हवनके योग्य पदार्थ रहता नहीं है, धान्य में वह सदा स्थिर रहता है, इस लिये हवन धान्यका होना चाहिये ।

आजकल कई हिंदु वृष्टिके चार मास 'हविष्यान्न' का भक्षण करते हैं, इसमें मांस नहीं होता है, चावल, जौ, गेहूं, मूंग आदि पदार्थ ही होते हैं। यदि मांस हविष्यमें पहिलेसे होता तो इस हविष्यान्नमें उसकी गिनती हो जाती। परंतु किसी भी स्थानपर हविष्यान्न में मांस नहीं लिया है ।

पूर्वोक्त ब्राह्मण ग्रंथके वचन में स्पष्ट बताया है कि प्राणियोंके शरीर काटते ही उनमेंसे हवनीय पदार्थ भाग जाता है उस मुर्दे शरीर में यज्ञीय पदार्थ मिलता नहीं है, यदि किसी स्थानपर हवनके योग्य पदार्थ मिलता है तो चावल, जौ आदि धान्य में ही मिलता है। यह वचन बड़ा बोधप्रद है। पाठक इसका खूब विचार करें ।

यज्ञमें मांस की आहुतियां दी जाती थी इसविषय में इतना कथन पर्याप्त है अब देव मांस खाते थे या नहीं इस विषयमें कुछ विचार करना आवश्यक है—

## ( २५ ) देवोंके नाम ।

देवोंके नामोंमें कई नाम ऐसे हैं कि जो निर्मास भोजी ही देव थे ऐसा निश्चय कराते हैं, देखिये—

१ अ-मृतान्धसः = ( अ-मृत-अन्धसः ) मरा हुआ अन्न न खानेवाले। मृत शब्द मुर्देका वाचक है, इस लिये मुर्देका अन्न न खानेवाले यह इसका अर्थ होता है ।

२ आज्यपाः देवाः = घी पीनेवाले देव । यह वर्णन वा०यजुर्वेद अ. २१ मंत्र४०में देखने योग्य है ।

ये देवोंके नाम विचार करने योग्य हैं, ये देव निर्मास भोजी थे यह बात स्पष्टरूपसे बताते हैं। देवों का एक भी नाम ऐसा नहीं है कि जो उनका मांस-भोजी होना सिद्ध कर सके—

( ३ ) हविर्भुजः=हविष्यान्न खानेवाले । हविष्यान्न का अर्थ म. मॉनियर बुइलियमने अपने कोश में यह दिया है—Food fit for an oblation (esp. rice or other kinds of grain)



clarified butter &c. चावल तथा अन्य धान्य, घी आदि ।

ये देवों के वैदिक नाम देखिये और वेदमें आये राक्षसों के नामोंकी भी तुलना इन नामोंके साथ कीजिये । तो पता लग जायगा कि कौन मांसभोजी हैं और कौन नहीं हैं—

### ( २६ ) राक्षसोंके नाम ।

१ क्रव्याद् = ( क्रव्य + आद् ) मांस खानेवाला,  
२ पिशाच् = ( पिशित + अश् ) रक्त पीनेवाला,  
३ असुतप् = ( असु + तृप् ) दूसरोंके प्राण लेनेसे तृप्त होनेवाला । किंवा प्राणोंकी तृप्ति करनेवाला ।

४ गर्भाद् = ( गर्भ + अद् ) गर्भ खानेवाला ।  
५ अण्डाद् = ( अण्ड + अद् ) अण्डे खानेवाला ।  
६ मांसाद् = ( मांस + अद् ) मांस खानेवाला ।  
७ कौणप = ( कुणपं ) प्रेत खानेवाला ।  
८ आशरः = हिंसा करनेवाला ।  
९ कर्बुरः = हिंसक ।

ये नाम राक्षसोंका मांस भोजी होना स्पष्ट सिद्ध कर रहे हैं । देवों के नामों में ऐसी व्यक्त हिंसा, क्यों नहीं और राक्षसोंके नामों में स्पष्ट हिंसा क्यों है, इस का विचार करने से स्पष्ट पता लग जायगा कि देव मांस खानेवाले थे यह पक्ष सिद्ध होना कठिन है । हम जानते हैं कि कई आधुनिक कथाएं ऐसी हैं कि जिनमें देवों का मांसभक्षक होना बताया है, परंतु यदि देव सचमूच प्रारंभसे मांसभक्षक होते तो उनके नामों में मांसभक्षक एक तो नाम अवश्य आता, परंतु देवों का एक भी नाम ऐसा नहीं है जिससे देव मांसभक्षक होनेकी बात सिद्ध हो सके । और साथ साथ राक्षसों के नाम तो स्पष्ट उनका मांस-भक्षक होना सिद्ध कर रहे हैं ।

यह देखने से पता लग जायगा कि देवों के उद्देश्यसे मांस की आहुतियां देनेकी संभावना सिद्ध होना कठिन है । अब अग्निके नाम देखिये ।

१ क्रव्यात् = मांसभक्षक,  
२ क्रव्यवाहनः = मांस लेजाने वाला,

३ विश्वाद् ( विश्व + अद् ) = सर्वभक्षक ( क्र० १० । १६ । ६ )

४ उक्षान्नः ( उक्षा + अन्नः ) = उक्षा ( बैल ) खानेवाला,

५ वशान्नः ( वशा + अन्नः ) = गौ खानेवाला

६ घृतान्नः = घी खाने वाला,

७ सर्पिरन्नः = घी ”

ये अग्निवाचक शब्द हैं । अन्य भी बहुतसे शब्द हैं, परंतु उन सबका विचार इस समय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । इन सात शब्दों में पहिले दो शब्द राक्षस वाचक ही हैं । अर्थात् इन शब्दोंका जैसा राक्षस अर्थ होता है, वैसाही अग्नि भी अर्थ है । दोनों का शब्दार्थ ' मांसभक्षक ' ही है इसीलिये ये शब्द अग्निपर भी लगते हैं । और राक्षसपर भी लगते हैं ।

यहां युरोपीयनों की युक्ति यह है कि “ जिस कारण अग्निके नामोंमें ( १ ) क्रव्याद्, ( २ ) क्रव्यवाहन, ( ३ ) उक्षान्नः, ( ४ ) वशान्नः ये शब्द हैं, उस कारण यह बात सिद्ध है कि अग्निमें मांसकी आहुतियां डाली जाती थी और हुतशेष मांस खाया जाता था । ”

यह युरोपीयनोंकी युक्ति ठीक नहीं है क्योंकि अग्निके नामोंमें जो क्रव्याद्, क्रव्यवाहन आदि शब्द आगये हैं, वे यद्यपि अग्निमें मांस जलाने की बात बताते हैं तथापि वह यज्ञमें आहुति डाले हुए मांस के जलाने की नहीं है । क्रव्याद् अग्निके विषयमें निम्न लिखित मंत्र देखने योग्य है —

### ( २७ ) मांसभक्षक अग्नि ।

क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः । इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥  
क्र० १० । १६ । ९

१ ( क्रव्यादं अग्निं दूरं प्रहिणोमि ) = मांस-भक्षक अग्निको मैं दूर भेजता हूं ।

२ ( अयं इतरः जातवेदः देवेभ्यो हव्यं वहतु ) = यह दूसरा जातवेद अग्नि है वह देवोंके लिये हवि लेजावे ।



इस मंत्रमें दो अग्नि कहे हैं ( १ ) एक ऋग्व्याद् अग्नि ( २ ) और दूसरा जातवेद अग्नि जिसमें हवन किया जाता है। पहिला मांसभक्षक अग्नि दूर करना है और दूसरा धान्यभक्षक अग्नि पास रखना है। यह मंत्र विचार करने योग्य है। ऋग्व्याद् अर्थात् मांसभक्षक अग्नि वह है कि जिससे मुर्दे-प्रेत मृत शरीर-जलाये जाते हैं। यह मुर्दे जलाने वाला अग्नि मनुष्यके पास रहना नहीं चाहिये। परंतु मनुष्यों की बस्ती से बहुत दूर रखना चाहिये। अर्थात् मृत शरीर का दाह करनेका स्थान मनुष्य वस्तिसे दूर होना चाहिये।

दूसरा अग्नि जो देवोंके पास हव्य ले जाता है वह धान्यभक्षक अग्नि घर घरमें, ग्राम ग्राममें रहना चाहिये।

इन दो अग्नियोंका विचार करनेसे पता लगता है कि मुर्दे जलानेके कार्य में प्रयुक्त होनेके कारण ही अग्नि का नाम ऋग्व्याद् ( मांसभक्षक ) हुआ है। इससे मुर्दे जलाने की वैदिक प्रथा सिद्ध होती है। दूसरा अग्नि होम हवन के लिये प्रयुक्त होता है, इसमें मांस नहीं डाला जाता, परंतु ( हव्यं वहतु ) हव्य, हविर्द्रव्य, हवनीय पदार्थ-अर्थात् धान्यादि पदार्थ डाले जाते हैं। यदि इसमेंभी मांस डाला जाय तो दो अग्निमें भेद ही क्या होगा? इसलिये देवोंको हव्य देनेवाले अग्निमें मांस नहीं डाला जाता, इसका नाम जातवेद अग्नि है। यही निर्मांस भोजन करनेवाला अग्नि समझिये।

प्रेत जलानेवाला अग्नि मांस खानेवाला होता है यह बात स्पष्ट ही है। इसलिये यदि ' ऋग्व्याद् अग्नि ' शब्द से मांसभोजन सिद्ध करना हो तो वह मुर्देका मांस होगा। वास्तव में देखा जाय तो मरे हुए मनुष्यके प्रेत जलानेवाले अग्नि का नाम ऋग्व्याद् होनेसे वह मांस मनुष्यके भक्षण के लिये समझना असंभव है।

## ( २८ ) अन्त्य यज्ञ ।

वैदिक धर्मके अनुसार मनुष्यका सब आयुष्य मिलकर एक बड़ा भारी यज्ञ है अर्थात् अपने संपूर्ण जीवन का सब की भलाईके लिये यज्ञ करना है,

इसमें मनुष्यके प्रेतकी अंतिम इष्टि होती है। यह अंतिम आहुति-अपने शरीरकी अंतिम आहुति डाल दी, तो जीवनभर चलनेवाले यज्ञकी पूर्णता हुई। यहां जीवन यज्ञमय करनेकी कितनी उच्च कल्पना है यह पाठक देखें। अर्थात् वैदिक धर्मकी दृष्टिसे मुर्देका जलाना केवल उसकी राख करना नहीं है, परंतु वह एक अंतिम यज्ञ है और इसमें पूर्णाहुति होनेके कारण बड़ा भारी यज्ञ है। प्रज्वलित अग्निमें अपने देहकी ही अंतिम आहुति डालनी होती है, इस दृष्टिसे देखा जाय तो अग्निमें मांस की-अपने संपूर्ण देहकी-आहुति डालना तो वैदिक धर्म के अनुकूल है ही परंतु क्या इसको समांस यज्ञ कहा जा सकता है? आजकल समांस यज्ञ का जो तात्पर्य है, घोड़ा गाय बैल के मांसकी आहुतियां वेदीपर चढ़ाना माना जाता है। वह इस अंतिम इष्टिसे सर्वथा भिन्न है। इस अंतिम इष्टिमें मनुष्य-देहकी या किसी अन्य देहकी जो आहुति डाली जाती है वह खानेके लिये डाली नहीं जाती। परंतु मुर्दा घरमें रखना नहीं होता है, इसलिये उसको जलाया जाता है और यह अंतिम यज्ञ माना गया है। इसलिये यदि कोई कहे कि यज्ञमें मांस प्रयुक्त होता है तो वह सत्य है, परंतु जिस भावमें वह कहा और समझा जाता है वह सत्य भाव नहीं है। अतः हम कहते हैं कि अग्निका नाम ' ऋग्व्याद् ' होनेपर भी उससे मनुष्यके मांस भक्षणके विषयमें पृष्टि नहीं मिल सकती।

वैदिक समयमें मुर्दे जलानेकी प्रथा होनेके कारण अग्निका नाम ' ऋग्व्याद् ' हुआ है। सर्व साधारण रीतिसे मनुष्य मरते हैं, उनके मुर्दे जलाये जाते हैं, युद्धोंमें घोड़े, बैल आदि अनेक पशुभी मनुष्योंके साथ मरते ही हैं, इन सबको वैदिक समयमें जलाया जाता था। यह प्रथा देखनेसे पाठक जान सकते हैं कि अग्नि का नाम ऋग्व्याद् होनेपर भी उससे मांसभक्षण सिद्ध नहीं हो सकता।

युरोपीयन पंडितों का ख्याल है कि मुर्दा जलाने के पूर्व गौके मांससे लपेटा जाता था, वे कहते हैं—  
' The ritual of the cremation of the dead



required the sloughter of a cow as an essential part, the flesh being used to envelop the dead body " ( Vedic index P. 147 ) अर्थात् ' अंत्येष्टि संस्कारके लिये गायकी कतल करना आवश्यक बात थी, क्योंकि गायके मांससे मुर्दा लपेटा जाता था । ' इसके प्रमाण के लिये उन्होंने निम्न लिखित मंत्र दिया है-

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोणुष्व  
पीवसा मेदसा च । नेत्वा धृष्णुर्हरसा जर्हषाणो  
दधृक्विधक्ष्यन्पर्यङ्ख्याते ॥ क्र. १० । १० । ७  
“ ( अग्नेः वर्म ) अग्निकी ज्वालाएं ( गोभिः )  
गौओंसे ( परिव्ययस्व ) बचाओ, ( पीवसा मेदसा  
च ) गाढी चरबोसे ( सं प्रोणुष्व ) ठीक प्रकार आच्छा-  
दित करो । ऐसा करनेसे ( हरसा धृष्णुः ) तेजसे  
घर्षण करनेवाला ( जर्हषाणः ) आनंदित होनेवाला  
( दधृक् वि धक्ष्यन् ) भस्म करनेवाला अग्नि  
( त्वा न इत् पर्यख्याते ) तुझे घेरकर नहीं  
जलावेगा । ”

यहां “ गोभिः ” शब्द है इसलिये युरोपीयन लोग गौके मांस से मुर्देको लपेटनेका अनुमान करते हैं और ऐसे कार्य के लिये गौको काटना आवश्यक समझते हैं, भारतीय पंडितभी ऐसा ही मानते हैं !! परंतु यहां विचारणीय बात यह है कि इस मंत्रमें “ गोभिः ” शब्द बहुवचन में है, इसका अर्थ होता है “ कमसे कम तीन गौओंसे ” मनुष्यके एक मुर्देको मांस लपेटना हो तो क्या उस कार्य के लिये कमसे कम तीन गौवें आवश्यक होंगी? क्या यदि यह कर्म गोमांससे करना हो तो एक गौसे नहीं होगा? मनुष्यके शरीर के तीन चार गुणा गायका शरीर होता है, अतः मनुष्यके एक मुर्देको वेष्टन करनेके लिये कमसे कम तीन या अधिक गौओंकी आवश्यकता नहीं है ।

इससे पाठकोंको पता लग जायगा कि यहां कुछ बात ही और होगी । “ गौ ” शब्दसे दूध, दही, घी, चमड़ा आदि पदार्थ लिये जाते हैं इस विषयमें इस से पूर्व बताया जा

चुका है और यह बात युरोपीयन भी मानते ही हैं । इसलिये देखना चाहिये कि कौनसी चीज के लिये तीन या तीनसे अधिक गौओंकी आवश्यकता अंत्येष्टि कर्म में पड़ सकती है और जो कार्य केवल एक ही गौसे निभ नहीं सकता ।

मांस चर्म चर्वी आदि एक गौकी पर्याप्त होना संभव है, परंतु केवल घी ही एक ऐसा पदार्थ है कि जो तीनसे अधिक गौवोंसे लेना आवश्यक होगा । मृत शरीरको अग्नि देनेके पूर्व उसको घीसे लिपटा देना आवश्यक हो होता है । जो लोग हवन करते हैं उनको पता है कि अग्निमें डालनेवाले हविर्द्रव्य पर घी छोड़ा जाता है, समिधाओं को भी घी लगा कर अग्निमें छोड़ी जाती हैं, फिर इस ‘अंत्य हवन’ में इस शरीर रूपी अंतिम समिधाको डालनेके समय घीकी आवश्यकता क्यों नहीं होगी ? आजकल समिधाएं घीमें भिगोने के लिये जितना घी चाहिये उतना नहीं होता इस लिये समिधाओंपर दो चार बूंद छिड़का देते हैं, परंतु शरीररूपी श्रेष्ठ समिधा अंत्य यज्ञमें डालनेके समय, वैदिक समयमें, कि जिस समय घीकी ऐसी न्यूनता नहीं थी शरीर भर घी डाला जाता होगा इसमें क्या आश्चर्य है ? घीसे विष दूर होता है, शरीर जलनेके समय विषयुक्त वायु हवामें फैलते हैं, उनको शुद्ध करनेके लिये जितना घी डाला जाय उतना आवश्यक ही है इससे वायुशुद्धि भी होती है। शरीरके तोलके बराबर घी अंत्येष्टिमें बर्तना चाहिये ऐसी वैदिक प्रथा थी । आजकल यह कार्य दसपांच तोले घीसे हिंदू करते हैं, परंतु केवल आर्य समाजी ही अंत्येष्टि के लिये बहुत घी बर्तते हैं ।

‘गौ’ शब्दसे गौसे उत्पन्न होनेवाला घी लियाही जाता है, यह कोई नयी बात नहीं है और इसको सब एकमतसे मानते हैं। ऐसा होते हुए भी उक्त मंत्र से गौ काटनेका अनुमान निकाला जाता है यह बड़ा आश्चर्य है । गौके बहुवचन की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ और इस कारण यहां के अर्थका अनर्थ हुआ यह स्पष्ट बात है। अस्तु ।

इस मंत्रके देखनेसे भी गौ काटनेकी कल्पना वैदिक जमानेमें थी ऐसा सिद्ध नहीं हो सकता। एक



बात यहां ध्यानमें धरनी चाहिये, वह यह है कि, आज कल के समान वैदिक समयमें गौ सुपूजनीय मानी जाती थी; परंतु आज कल मृत गौके चर्म, हड्डी, चर्बी आदि पदार्थोंका कोई उपयोग नहीं करता, वैदिक समयमें मरे हुए गौके देहसे जितने उपयोगी पदार्थ हो सकते हैं बनाये जाते थे । आजकल हिंदुओंमें एक जाती है कि जो इस व्यवसायको कर सकती है, परंतु ठीक रीतिसे यह व्यवसाय आजकल नहीं किया जाता। अतः चमड़ा, हड्डी, चर्बी आदि पदार्थ व्यर्थ नाशमें जाते हैं ! पाठक विचार करें और इस रीतिसे गौके मृत शरीर से जो हो सकता है आर्थिक लाभ प्राप्त करने के व्यवहार से वंचित न रहें । इस प्रकारकी घनी चर्बीके गोले मृत शरीर पर रखे जाते थे यह बात पूर्वोक्त मंत्रों ' ( पीवसा मेदसा सं प्रोणुष्व ) घनी चर्बीसे मुर्देको आच्छादित करो ' इस भागमें स्पष्ट शब्दोंसे कही है । अर्थात् यह मंत्रभी गायका वध करनेकी आज्ञा नहीं दे रहा है। युरोपीयन लोग और उनके अनुयायी हमारे भारतीय भाई जिसको परिपुष्ट प्रमाण समझते हैं वह ऐसे ही कमजोर प्रमाण होते हैं !!!

## २९ यज्ञमें पशु ।

यज्ञमें मनुष्य जो देवताओं के उद्देश्यमें देता है वह स्वयं खाता है, ऐसा मान कर युरोपीयन पंडित लिखते हैं—

‘ The usual food of the Vedic Indian, as far as flesh was concerned, can be gathered from the list of sacrificial victims: what man ate he presented to Gods—that is, the sheep, the goat, and the ox. (Vedic Index Vol. II. P. 143)’

अर्थात्— ‘ वैदिक समयका हिंदी मनुष्य कौनसा मांस खाता था यह देखना हो तो यज्ञिय पशुओंकी नामावली देखें; जो मनुष्य खाता है वह देवता को समर्पण करता है अर्थात् मेंढी, बकरी, बैल । ’ इसका मतलब यह है कि ये पशु मार कर खाये जाते थे । ये युरोपियन लोग मानते हैं कि अश्वमेधमें घोड़ा

मारा जाता था परंतु इनका कथन है कि वैदिक समयके आर्य अधिकतर घोड़ेका मांस नहीं खाते थे । यह युरोपीयनों की कृपा है कि उन्होंने घोड़ेका मांससे आर्योंको बचाया। नहीं तो जिसका यज्ञ होता था वह खाया जाता था ऐसा माननेपर और यज्ञ प्रक्रियामें घोड़ेको काटनेकी प्रथा थी ऐसा माननेपर युरोपीयनोंके सामनेसे आर्योंका बच जाना कठिन बात थी । परंतु ‘ वैदिक इन्डैक्स ’ पुस्तकमें घोड़ेका मांस खानेकी प्रथा नहीं थी ऐसा स्पष्ट लिखा है इस लिये हम उनके धन्यवाद गाते हैं । अब विचार करना है कि जिसका यज्ञ होता था वह खाया जाता था ऐसा तत्त्व माननेपर क्या क्या आपत्ति आती है । नरमेध में नरमांस और अश्वमेधमें अश्वमांस के विषयमें युरोपीयनों की संमति है कि इनका मांस नहीं खाया जाता था । यदि यह अपवाद मान लिया जाय तो मानना पड़ेगा कि देवताओं के उद्देश्यसे पशुसमर्पण करनेपर भी उसके मांस खानेका नियम नहीं है। तथापि क्षणभर के लिये मनुष्य और घोड़ेको हम एक ओर करते हैं; तो शेष रहे हुए यज्ञमें समर्पित होने वाले पशुआदिकों को निःसंदेह खाया जाता था ऐसा नहीं दिखाई देता । देखिये—

वाचे प्लूषीन् । चक्षुषे मशकान् ।

श्रोत्राय भृङ्गाः॥

यजु. २४ । २९

‘ वाणीके लिये दीमक, आंखके लिये मक्खियां और कानके लिये भ्रमरों का आलंभन करते हैं । ’

“ जो देवता के उद्देश्यसे दिया जाता था वह वैदिक आर्योंका अन्न था ” यदि यह म० मैकडोनेल और कीथ का सूत्र सच्चा माना जाय तो ‘ दीमक ’ मक्खियां और भ्रमर भी वैदिक आर्य खाते थे ऐसा मानना पड़ेगा !!! युरोपीयनों के अनुमान कितने भयंकर होते हैं इसका यह एक नमूना ही है । जो भारतीय भाई युरोपीयनोंके पीछे अपना कदम रखते हैं, उनको संभालकरही उनके पीछे जाना चाहिये । और देखिये—

ब्रह्मणे ब्राह्मणमालभते, क्षत्राय राजन्यम्

नृत्ताय सूतं, धर्माय सभाचरम् ॥ यजु. ३० । ६

“ ब्रह्मदेवता के लिये ब्राह्मण, क्षत्रदेवके लिये क्षत्रिय



धीर, नृत्य देव केलिये सूत, धर्म के लिये सभासद का आलंभन किया जाता है । ”

यहां भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, सूत और धर्म सभाके सभासदों का बलि उक्त देवताओं के उद्देश्यसे करने का विधान माना जाय तो “ ब्राह्मण, क्षत्रिय, सूत और धर्मसभाके सदस्योंका मांस खानेकी प्रथा थी ” ऐसा माननेमें क्या हर्ज होगा ?

देवताओं के उद्देश्यसे जो चढ़ावा होता है वह उनका भक्ष्य अन्न था यह युरोपीयनोंका सूत्र माना जाय तो ब्राह्मण से लेकर दीमक तक कोई भी प्राणी वचेगा नहीं । यह बात देखकर भी ऐसे अनुमान निकालनेसे ये लोग हटते नहीं और हमारे लोग युरोपीयनोंके अनुमान अंधविश्वाससे मानते हैं ? “ आलम्भन ” किया का अर्थ “ देवताके उद्देश्यसे दी हुई भेंट, या वध ” यह भाव वास्तविक नहीं है । उपनयनमें “ हृदयालंभन ” विधिमें हृदयका वध अर्थ नहीं है प्रत्युत हृदयस्पर्श, हृदयकी प्राप्ति ये अर्थ लिये जाते हैं । अथर्ववेद ७ । १०९ । ७ में “ अक्षान् यद्वभूनालभते ” यह वाक्य है उसमें “ भूरे रंगवाले पांशोंका वध ” इष्ट नहीं है परंतु “ स्वीकार ” अर्थ इष्ट है । “ लभ् ” धातुका अर्थ “ प्राप्ति ” है । “ आलम्भ ” का अर्थ “ अत्यंत प्राप्ति ” यही मुख्य अर्थ है । आगे इसका अर्थ वध हुआ । अब यह अर्थ लेकर पूर्वोक्त मंत्रोंका अर्थ देखिये—

- १ ब्रह्मणे ब्राह्मणं आलभते = ज्ञानके लिये ज्ञानी को प्राप्त करता है ।
- २ क्षत्राय राजन्यं ,, = शौर्य के लिये शूर को प्राप्त करता है ।
- ३ नृत्ताय सूतं ,, = नाचनेके लिये सूत को बुलाता है ।
- ४ धर्माय सभाचरं ,, = धर्मके ज्ञान के लिये धर्म सभा के सदस्यके पास जाता है ।

इसके अर्थ युरोपीयन और ही समझते हैं जैसा देखिये—“ For Brahman he binds Brahmaus

to the stake ” अर्थात् “ ब्रह्मदेवता के लिये वह ब्राह्मण को यूपके साथ बांध देता है । ” पशु यूपके साथ बांधनेका तात्पर्य यही समझा जाता है कि आगे उसका वध करके उसके मांसका हवन हो । सरल अर्थ छोड़कर तेढ़ा मार्ग अवलंबन करनेसे कितना अर्थका अनर्थ हो सकता है, यह बात यहां स्पष्ट विदित हो रही है । तथा और देखिये—

धूम्रान्वसन्तायालभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णान्वर्षाभ्यो अरुणान् शरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गान् शिशिराय ॥

यजु. २४ । ११

“ धूम्रवर्णवालोंका वसन्त ऋतु के लिये, श्वेत का ग्रीष्मके लिये, कालों का वर्षाके लिये, अरुण वर्ण वालों का शरदृतुके लिये, नानारंग युक्तों का हेमन्तके लिये और लालयुक्त कपिल वर्णवालोंका शिशिरऋतुके लिये आलंभन करता है । ”

यहां पशुओंका वध उस ऋतुके निमित्त समझा जाता है । परंतु पाठक कृपया यहां एक सर्व साधारण नियम ही देखें कि “ गर्मीके दिनों में सफेद रंगके कपडे सुख देते हैं और सर्दी के दिनों में काले या नसवारी कपडे सुख देते हैं । ” यह हर एक मनुष्य जानता है और इसी प्रकार वर्तता भी है । इस वेद मंत्रमें किस ऋतुमें कौनसे वर्ण को महत्त्व देना चाहिये यह बात लिखी है । कपडे लेनेके समय भी इस मंत्रका उपदेश ध्यानमें रहेगा तोभी लाभ होगा । इस सामान्य नियम को कई पंडित पशुपरक लगाते हैं इसलिये उनकी बुद्धिकी किस रीतिसे प्रशंसा की जाय यह हमारे समझ में नहीं आता है । इस यज्ञ प्रकरण की पशुगिनती का तत्त्व समझानेके लिये पाठकों के सम्मुख कुछ मंत्र रख देते हैं—

शार्दूलाय रोहित्वा ऋषभाय गवयी ।

यजु. २४।३०

‘व्याघ्रकेलिये हिरन।बैलके लिये गाय ।’ पाठक थोड़ा विचार करें कि उसी पशु यज्ञके अध्यायमें ये मंत्र हैं । क्या यहां भाव है? व्याघ्र के लिये हिरन खानेके लिये देना है और बैलके लिये गाय प्रजा उत्पत्ति करनेके



लिये देना है। पाठक यहां 'आलंभे' शब्दका अर्थ अनुभव करें। पास पासके दो मंत्रोंमें भावार्थका इतना फर्क है। यदि यह अर्थभेद न देखा जाय तो अर्थ भी बन नहीं सकता। जिस बातके लिये शेर के सामने हरणी रखी जा सकती है उसी अर्थ के लिये बैलके सामने गाय रखी नहीं जा सकती। यदि इतना विचार पाठक करेंगे तो उनके सामने यह बात स्पष्ट हो जायगी कि जो समर्पित पशुओंका वध ही एक अर्थ सर्वत्र लेना है वह भ्रम ही है।

यहां देखा जाय तो 'बैलके लिये गाय समर्पित' करना लिखा है, परंतु वृषभदेव (बैलदेव) तो मांस भक्षक ही नहीं है फिर उसके लिये गोमांस क्या कामका होगा? इसलिये अर्थ करनेवाले युरोपीयन पंडित और तदनुसार चलनेवाले भारतीय विद्वान थोड़ा बुद्धीसे काम लेंगे तो अच्छा होगा। और देखिये—

मनुष्यराजाय मर्कटः ।

य अ. २४। ३०

'मनुष्यों के राजाके लिये बंदर' लिखा है। खानेके लिये या खेलने के लिये या उपदेश लेनेके यह बात गुप्त है। राजा बंदर के समान न बने, मनन शील बने। बंदरकी हलचल जैसी व्यर्थ होती है वैसी राजाकी न हो। यह उपदेश लेने के लिये राजगृहमें बंदर रहे। यदि इससे कोई यह अर्थ निकाले की राजा केवल बंदर काही मांस खाये और किसी जानवरका न खाय या धान्य भी न खाय तो भी अर्थका अनर्थ ही होगा। इस विषयमें और देखिये—

शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे ।

य. अ. २४। ३३

'व्याघ्र, भेडिया और सांप ये तेरे क्रोधके लिये अर्पण हैं।' क्या यहां क्रोध देवकी प्रीतिके लिये व्याघ्र, भेडिया और सांप (Tiger, wolf, viper) बलि दिये जाते थे और बलि देकर यज्ञशेष मांस खाया जाता था? वैदिक आर्य जो देवताओंके उद्देश्यसे समर्पित करते थे वही खाते थे यह युरोपीयनोंका

अनुमान किस किस अनर्थमें पाठकोंको डालेगा, इसकी कोई हद्द नहीं है। क्रोधके लिये येही पशु क्यों हैं अन्य क्यों नहीं हैं? क्या इसका विचार नहीं होना चाहिये? वास्तव में वेदको इस मंत्र भाग के द्वारा यह उपदेश देना है कि जो कार्य क्रोध शरीरमें करता है वही देशमें शेर भेडिया और सांप करते हैं। जिनको अपने अंदर के क्रोधका नाशक धर्म समझमें नहीं आता वे इस उदाहरण से समझें कि व्याघ्र, भेडिया और सांप जिस प्रकार अन्य प्राणियों का घातपात करते हैं उस प्रकार ही शरीर में क्रोध जीवनतत्त्वका नाश करता है।

इतने मंत्रभाग पर्याप्त हैं। इतने उदाहरणोंका ही विचार पाठक करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि "आलंभते" क्रियाका अर्थ सर्वत्र "वध" करना कितना अनर्थकारक है और यहां के इस पशुसमर्पण अध्यायके मंत्रोंका भाव कुछ और ही है। इस अध्यायसे वैदिक आर्योंके मांसभोजन की कल्पना होना असंभव है। यहां संपूर्ण अध्याय की संगति लगानेके लिये हमारे पास समय नहीं है, इसलिये नमूनेके तौरपर यहां थोड़ेसे मंत्र बताये हैं। इनके विचारसे कहनेवाली बात स्पष्ट हो जायगी और युरोपीयनोंका मत बड़ा भ्रामक है यह बात भी व्यक्त हो जायगी। इसलिये उनके मत मानकर उससे वैदिक आर्योंके मांसभक्षक होनेका अनुमान कोई न निकाले। वेदोंका अध्ययन हमें अपनी दृष्टि से करना चाहिये, वेदोंके तत्त्व अपने आंखसे देखनेका अभ्यास हमको अवश्य करना चाहिये। अन्यथा "अंधोंके पीछे चलनेवाले अंधोंकी अवस्था" हमारी बन जायगी, इसलिये यहां हम पाठकोंको सावधान करते हैं।

### (३०) उक्षान्न और वशान्न ।

अब यह बात रही है कि अग्निके नामोंमें जो 'उक्षान्न और वशान्न' शब्द आये हैं उनका तात्पर्य क्या है? युरोपीयन लोग मानते हैं कि "उक्षान्न" का तात्पर्य बैलका मांस और 'वशान्न' का अर्थ गोमांस है। जिस कारण ये नाम अग्निके



लिये वेदमें आये हैं उस कारण अग्निमें ये मांस डाले जाते थे और खाये भी जाते थे । यह युरोपीयनों का मत है । अग्निके नामोंसे यदि मनुष्यके भोजन की कल्पना की जाय तो अग्निका नाम " विश्वाद् " है उसका अर्थ " सर्व भक्षक " है । देखिये —

युवानं विश्वपतिं कविं विश्वाद् पुरुषेपसम् ।

अग्निं शुम्भामि मन्मभिः ॥ ऋ. ८ । ४४ । २६

'मैं तरुण, जगत्पति, कवि, (विश्व + अद्) सर्व भक्षक, बहुत हलचल करनेवाले अग्निकी उत्तम विचारोंसे प्रशंसा करता हूँ ।' इस मंत्रमें 'विश्वद्' शब्द अग्निके लिये प्रयुक्त हुआ है । अग्नि (विश्व) सर्व (अद्) भक्षक है, इससे मनुष्य सर्वभक्षक था, वैदिक कालके मनुष्य सर्व भक्षक थे ऐसे अनुमान निकालना अयोग्य है । अग्नि सर्वभक्षक है, उसमें जो डाला जाय वह भस्म करता है, परंतु इससे यह कैसा सिद्ध हो सकता है, कि उतनी चीजें मनुष्य अवश्य खाता था ।

सप्त वृक्षों की समिधाएं अग्निमें डाली जाती हैं तो क्या इससे आम्र, खदिर, बिल्व, पलाश, वट, अर्क आदिकी लकड़ियां भी वैदिक आर्य खाते थे यह अनुमान हो सकता है ? अनुमान निकालनेकी यह भयानक रीति होगी !! इस लिये ' उक्षान्न और वशान्न ' शब्द अग्निवाचक वेदमें हैं इससे बैल और गाय का मांस वैदिक आर्य खाते थे ऐसा कहना अनुचित होगा ।

पूर्व स्थानपर ' एकदेश के लिये संपूर्ण ' का ग्रहण होता है यह बात बता दी है, उसी नियम के अनुसार " वशान्न " शब्दका अर्थ ' गौ से उत्पन्न होनेवाले दूध, घी आदि पदार्थ खाने वाला अग्नि ' ऐसा होता है । इस विषयमें और उदाहरण देखिये --

ऋ. १ । १३७ । १ में निम्न लिखित शब्द हैं --  
' गोश्रीताः, गवाशिरः ' ये शब्द हैं । ये ' सोम ' के विशेषण हैं । इनका शब्दार्थ है (गो) गायसे (श्रीता) मिश्रित । तथा (गो) गायसे (आशिरः) मिश्रित इन दोनों शब्दोंमें ' गो ' शब्द है, परंतु यहां कोई

भी गोमांस नहीं लेते, परंतु गायका दूध ही लेते हैं । म. ग्रिफिथने ' गवाशिरः ' का अर्थ Bent with milk अर्थात् ' दूधसे मिश्रित ' ऐसा किया है । सोम रसमें गाय का दूध मिलाकर बड़ा मधुर पेय बनाया जाता है यह बात सब जानते ही हैं ।

श्री० सायणाचार्य जी भी ' गोश्रीताः, गवाशिरः ' शब्दोंके विषयमें निम्न प्रकार भाष्य करते हैं --  
" विकारे प्रकृतिशब्दः । पयोभिः मिश्रिताः । गोभिः क्षीरैः आशिरो मिश्रिताः संजाताः । " (ऋ. १ । १३७ । १-२ ) अर्थात् यहां गौ शब्दसे दूध लिया जाता है, उससे मिश्रित सोम यहां इन शब्दोंसे बताया जाता है ।

सोम के साथ निम्न पदार्थोंका मिश्रण करनेकी सूचना वेदमंत्रों में दी है --

१ गवाशिरः = गो दूध से मिश्रित सोम  
( ऋ. १ । १३७ । १ )

२ गोश्रीता = " " " "

३ दध्याशिरः = गौके दहीसे " " "

४ यवाशिरः = भूनेजौ के आटेसे मिश्रित सोम  
( ऋ. १ । १८७ । ९ )

५ त्र्याशिरः = दूध, दही और भूने हुए धान से मिश्रित सोम ( ऋ. ५ । २७ । ५ )  
Mixed with milk, curds & parched grain ( म. ग्रिफिथ )

६ रसाशिरः = रसोंसे मिश्रित सोम ।  
( ऋ. ३ । ४८ । १ )

सोमके साथ कितने पदार्थ मिलाये जाते थे यह बात यहां स्पष्ट हो गई है । सोम में मांस या रक्त मिलाने की बात कहीं भी नहीं है यह पाठक अवश्य ध्यानमें धारण करें ।

सोम का नाम वेद में ' उक्षा ' भी आता है उक्षा शब्दका धात्वर्थ (Sprinkling) सिंचन करनेवाला है । सोमसे रसकी बूंदें निकलती हैं इस कारण उस को उक्षा कहते हैं यह पूर्वस्थल में बताया भी है । पूर्व वेदीमें सोमरस का हवन होता है । इस लिये सोम अग्निका अन्न है यही भाव " उक्षान्न ( सोमही



अन्न ) ” शब्द में है । वैल अर्थ यहां अपेक्षित नहीं है । क्यों कि वैलके मांस का हवन होता ही नहीं, फिर वह अग्निमें जाय कहाँसे ।

अब “ वशान्न ” शब्द रहा है । यहां वशा यह गौवाचक शब्द है और वह उस गौसे उत्पन्न होने वाले दूध अथवा घी आदि पदार्थोंका यहां वाचक है । अग्निमें घीका हवन होता ही है । “ घृतपृष्ठ ” शब्द अग्नि का वाचक है । इसका अर्थ ‘ घी है जिस के पीठ पर ’ यह शब्द अग्निमें घीका हवन होता है यह भाव स्पष्ट बता रहा है । यज्ञमें गाय का ही घी बर्ता जाता है, इसलिये अंशके लिये पूर्ण का प्रयोग अर्थात् घी के लिये गो शब्दका प्रयोग यहां हुआ है । यह ‘वशान्न’ शब्दका अर्थ है । यदि वेदको वशान्नशब्दसे गोमांस अथ अभीष्ट होता और मांसहवन इष्ट होता तो किसी न किसी स्थानपर जैसा ‘घृत-पृष्ठ’ शब्द वेदमें प्रयुक्त हुआ है उसी प्रकार ‘मांस-पृष्ठ’ शब्द वेदमें अग्निके लिये प्रयुक्त होता । परंतु वैसा एकभी शब्द प्रयुक्त नहीं है । इसलिये हम कह सकते हैं कि वेदको मांसहवन अभीष्ट नहीं है । वेद को जो मांसहवन अभीष्ट है वह केवल मुर्दा जलानेके समय अंत्येष्टी में प्रेतका ही अर्थात् मनुष्य देहका ही—हवन होता है । किसी अन्य पशुको काटना और उसके मांसका हवन करना वेदको संमत नहीं है । जो मांसवाहक या मांसभक्षक अर्थ वाले ‘ऋव्याद, ऋव्यावाहन’ शब्द अग्निके लिये वेदमें प्रयुक्त हुए हैं वे मृत शरीर जलानेके कारण प्रयुक्त हुए हैं यह बात इससे पूर्व बतलाई जा चुकी है ।

यहां कई कहेंगे कि ‘वशा’ शब्दका अर्थ ‘जन्मसे वंध्या गौ’ ऐसा है इसलिये उससे दूध, घी, दही आदि निकलनेकी संभावना नहीं है, इस कारण वशान्न शब्दका अर्थ गोमांसभक्षक अग्नि ऐसा ही करना चाहिये । परंतु यह युक्ति ठीक नहीं है । ‘वशा’ शब्दके अर्थ म. आपटेके संस्कृत इंग्लिश के कोशमें निम्न लिखित प्रकार है— ( A woman ) स्त्री. ( a wife ) धर्मपत्नी, ( A daughter ) पुत्री,

लडकी, ( a husbands' Sister ) पतिकी बहन, ( a cow ) गाय, ( a barren woman ) वंध्या स्त्री, ( a barren cow ) वंध्यागौ, ( a female elephant ) हाथीन ।

वशा शब्दके इतने अर्थ होते हैं यह बात सब यूरोपीयन भी मानते हैं, इसलिये इस विषयमें किसी को भी शंका करना उचित नहीं है । इन अर्थों को देखने से पता लग जायगा कि वशा शब्दका अर्थ वंध्या गौ है और उसका दूसरा अर्थ नहीं यह गलत बात है । वंध्या होनेपर वह गौ निकम्मी है इस कारण उसको काटकर खायी जाय, यह यूरोपीयनों की युक्ति यहां उक्त अर्थके कारण सजती नहीं है । वशागौ के दूध का वर्णन अथर्व १०।१०।३१ में देखने योग्य है । अतः वशान्न शब्दका अर्थ गौसे उत्पन्न होनेवाले दूध, घी आदिका ही वाचक है इसमें संदेह नहीं ।

इससे पूर्व ‘उक्षान्न’ शब्दका अर्थ ‘सोम अन्न’ बतायाही है । क्यों कि उक्षा शब्द सोमवाचक सब कोश कारोंने माना है । उक्षा शब्द जिस प्रकार वैल वाचक होता हुआ औषधिका वाचक होता है उसी प्रकार ‘वृषभान्न’ शब्द में ‘वृषभ’ शब्द वैलका वाचक होते हुए भी वनस्पतिका वाचक है । इस विषयमें इसी लेख में पहिले कहा जा चुका है । अब यहां इसका अर्थ श्री. सायणाचार्य कैसा करते हैं वह बताना है—

वृषभान्नाय बलवर्धकानि अन्नानि यस्य सः ।

ऋ. सा. भाष्य २।१६।५

‘वृषभान्न’ शब्दका अर्थ बलवर्धक अन्न जो भक्षण करता है । यह वृषभान्न शब्द ऋग्वेदमें इन्द्रका वाचक आया है, इस शब्दमें वैलके मांसकी वू किसी मांसपक्षी विद्वान को आजाय इसलिये यहां इस शब्दका सायण भाष्यमें दिया हुआ अर्थ बताया है । वृष, वृषभ, ऋषभ आदि शब्द बलवानके वाचक प्रसिद्ध हैं, इसलिये “ ऋषभान्न, या वृषभान्न का अर्थ बलवर्धक अन्नका सेवन करने वाला ” ऐसा होता है । वृष, वृषण, वृषभ ये सब शब्द वीर्यवान के वाचक हैं । उक्षा शब्द भी “ सिंचन करनेवाला, वीर्य का



सिंघन करने में समर्थ " इस अर्थ में सब कोश कारोंने दिया है। सोम रक्ष के समान वीर्यवर्धक, बलवर्धक तथा शक्तिवर्धक कोई अन्य वनस्पति नहीं है और मांस तो निश्चयसे ही नहीं है; इसीलिये उक्षा शब्द सोम का वाचक और ऋषभ, वृषभ, ऋषभक तथा वृषभक ये शब्द ऋषभक औषधिके नाम वेदमें हैं। इन शब्दों को केवल बैलके ही वाचक मानकर इन शब्दोंसे मांसभक्षण का मत सिद्ध करना पूर्वोक्त कारण से ही अयुक्त है।

यूरोपीयन पंडितोंने तथा उनके अनुगामी भारत-वर्षीय विद्वानोंने वैदिक आयोंके गोमांसभक्षक होनेके विषयमें जो भी वेद मंत्रों के प्रमाणवचन दिये थे, उन सबका यहां तक विचार हुआ। उनके प्रकाशित सब प्रमाणोंका उत्तर यहां तकके लेखमें दिया गया। उन्होंने ब्राह्मण ग्रंथोंके आधार से जो जो विधान वैदिक आयोंके मांसभक्षक होनेके विषयमें किये हैं उनका विचार हम आगे करेंगे। क्योंकि वेदमंत्रोंका विचार परिपूर्ण होनेके पश्चात् ही ब्राह्मणग्रंथोंपर किये गये आक्षेपोंका उत्तर देना योग्य है। वेदमंत्रों पर-छंदोबद्ध मंत्रभाग पर किये गये अनुमानों का विचार यहांतक किया और उनका एक भी विधान उत्तर दिये बिना नहीं रखा है। इससे स्पष्टापूर्वक सिद्ध हो चुका है कि, वेदमंत्रों के प्रमाणों से वैदिक समय के आयों का मांसभक्षक या गोमांसभक्षक होना सिद्ध नहीं हो सकता।

अब हमें अपना पक्ष प्रदर्शित करना है। हमारा पक्ष यह है कि वैदिक मंत्रोंका उपदेश अहिंसा विषय में स्पष्ट है, यदि वैदिक मंत्रोंसे वैदिक धर्मी के लिये कोई योग्य भोजन सिद्ध हो सकता है, तो निर्मांस भोजनही है, विशेष कर गौको अवध्य कहने के कारण गोमांसका भोजन वेद मंत्रों से सिद्ध होना असंभव है।

वेदमें उपदेश देनेके तीन प्रकार होते हैं। जो कहना है वह वेद सबसे प्रथम नामों द्वारा कहता है, पश्चात् वही बात मंत्रभागों द्वारा बताता है, नंतर वही बात पूर्ण मंत्रों द्वारा कही जाती है। इस प्रकार तीन केंद्रों द्वारा जो बात कही जाय वह वेदका

महासिद्धांत कर के समझी जा सकती है। अब हम अपने पक्ष की सिद्धता इसी रीतिसे कैसी होती है वह बतायेंगे-

### ( ३१ ) नामोंमें गौकी अवध्यता।

गौके नाम " अघ्न्या, अही, अदिति " ये हैं और ये गौ अवध्य है यह बात स्वयं प्रकट कर रहे हैं, यह इससे पूर्व इसी लेखमें बताया है (इसी लेख का प्रकरण १८ वां देखिये )

यद्यपि " अ-घ्न्या " शब्द " गौका अ-वध्यत्व " बताता है और निःसंदेह बता रहा है तथापि सब यूरोपीयनों को यह भी अर्थ पसंद नहीं है। सेंट पिटर्सबर्ग के प्रसिद्ध कोशमें इस शब्दका " ( Hard to overcome ) काबूमें रखने के लिये कठिन " यह अर्थ अधिक योग्य माना है। म. वेबर महोदयने " अघ्न्या " शब्दके स्थानपर " अह्न्या " शब्द मान कर उसका तात्पर्य " ( Bright coloured like day ) दिनके समान तेजस्वी रंगवाली " किया है। परंतु हम नहीं समझते कि अघ्न्या के स्थानपर अह्न्या मानने के लिये क्या प्रमाण है? वा सेंट पिटर्सबर्ग कोश में पसंद किये अर्थके लिये भी प्रमाण क्या है?

वेदका अर्थ करनेके समय शब्दोंके मनमाने अर्थ नहीं किये जा सकते। यदि किसी शब्दके इस प्रकार अनेक अर्थ होने लगे और कौनसा अर्थ स्वीकार करने योग्य है और कौनसा नहीं इस विषयमें संदेह हुआ, तो अन्यत्र आधे या पूरे मंत्र भागोंमें क्या उपदेश दिया है यह देखकर ही सत्य अर्थका निर्णय करना चाहिये। अघ्न्या शब्द के तीन अर्थ इस समय हमारे सम्मुख आगये हैं—

१ अघ्न्या = ( अहंतव्या ) अवध्य ( श्री. यास्का चार्यादि भारतीय विद्वान )

२ " = काबूमें रखनेके लिये कठिन ( सेंट पिटर्सबर्ग कोश )

३ " = दिनके समान तेजस्वी ( म. वेबर )

अब देखना है कि इन तीन अर्थोंमें से कौनसा अर्थ वैदिक है और कौनसा अवैदिक है। इसका निर्णय अन्य मंत्रभाग देखनेसे ही हो सकता है।



इस लिये गौविषयक अन्य आज्ञाएं अब हम देखते हैं--

### ३२ गोवधनिषेधक वेदवचन ।

गां मा हिंसीरदिति विराजम् ॥ ४२ ॥

घृतं दुहानामदिति जनाय...मा हिंसीः ॥ ४९ ॥

यजु. १३

“ तेजस्वी अवध्य गौ है इसलिये उसकी हिंसा न कर । अवध्य गौ है और वह जनोके लिये घी देती है इसलिये गौकी हिंसा मत कर । ” इस प्रकार गायकी हिंसा करना मना किया है, यह हिंसा न करनेकी आज्ञा है, अब दूसरी रीतिसे भी यही उपदेश वेदमंत्रोंमें दिया है वे मंत्र देखिये--

आरे गो-हा नृहा वधो वो अस्तु..... ।

ऋ. ७ । ५६ । १६

आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नम्..... ॥

ऋ. १ । ११४ । १०

“ गौका वध तथा मनुष्यका वध करनेवाला दूर रहे । ” यह दूसरी रीतिका निषेध है ।

इन मंत्रों के देखनेसे पता लग जायगा कि गाय का वध न करना ही वेदका धर्म है, वेदका उद्देश्य गोवध न हो यही है, इसलिये “ गोघ्न, गोहा ” अर्थात् गोघातकों को दूर करनेका उपदेश है । गोघातक मनुष्य हो तो भी उसको दूर करना है अथवा जिस किसी अन्य रीतिसे गौका वध होता हो तो उस को भी दूर करना है । सब प्रकार से होनेवाला गोवध दूर करनेकी आज्ञा वेद देता है इसी लिये “ अघ्न्या ” शब्दके अन्य अर्थ वैदिक अर्थ नहीं हैं, परंतु “ अवध्या ” यही एक अर्थ वेदमें अभीष्ट है क्योंकि वेदमें गोवध सब प्रकारसे निषिद्ध माना है ।

जो तो म०वेबर महोदयने अघ्न्या शब्दका अर्थ दिनके समान तेजस्वी करके करनेका प्रयत्न किया है वह अर्थ तो अन्य युरोपीयन भी पसंद नहीं करते हैं । इसलिये उसके विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है ।

यदि अ-घ्न्या, अ-ही, अ-दिति इन शब्दोंका अर्थ अवध्य गौ निश्चित ठहर गया, तो गौ काटने और

गोमांस भक्षण करनेकी बात सिद्ध नहीं होगी, यह जिनको डर होता है वे ऐसे अर्थोंसे घबराते हैं । परंतु हमें वैसी घबराहटमें पडनेका कोई प्रयोजन नहीं है ।

### ३३ वेदमें अहिंसा ।

वेदमें केवल गौकी ही अहिंसा नहीं लिखी है परंतु सर्व साधारण द्विपाद चतुष्पादोंकी भी अहिंसा लिखी है । सब भूतोंको मित्रदृष्टि से देखनेका वेदका महा सिद्धांत इससे पूर्व इस लेखके नवम प्रकरणमें बताया ही है । उसके साथ निम्न लिखित प्रमाणों का विचार कीजिये--

अश्वं...मा हिंसीः... ॥ ४१ ॥

अविं...मा हिंसीः... ॥ ४३ ॥

इमं मा हिंसीद्विपादं पशुम् ॥ ४७ ॥

इमं मा हिंसीः...वाजिनम् ॥ ४८ ॥

इममूर्णायुं...मा हिंसीः ॥ ५० ॥ यजु. १३

मा हिंसीः पुरुषम् ॥

यजु. १६ । ३

“ घोडा, बकरा, द्विपाद पशु, उन देनेवाला तथा पुरुष इनकी हिंसा न कर । ” ये मंत्र मित्रदृष्टिवाले मंत्रों के साथ पढनेसे वेदका अहिंसापूर्ण उपदेश स्पष्ट सामने आजायगा । सर्व साधारण प्राणियोंकी मित्रदृष्टिसे देखो और इन प्राणियों की हिंसा तो कभी न करो, यह वेदका उपदेश मनुष्यों के लिये है । इतना होते हुए भी कई युरोपीयन समझते हैं कि वेदमें अहिंसा का तत्त्व वैसा उत्कट नहीं है जैसा आगे बढ गया है ।

यह माना जा सकता है कि जैन बौद्धों ने जिस प्रकार आत्यंतिक और ऐकान्तिक अहिंसा प्रचलित की वैसी वेद में नहीं थी, परंतु अहिंसाका सिद्धांत ही वेद में नहीं था यह कहना अयुक्त है । वेद सर्व साधारण आचरण के लिये अहिंसाका ही उपदेश दे रहा है, परंतु प्रसंगविशेष में युद्धादि प्रसंगोंमें वध करनेसे पीछे रहनेकी आज्ञा भी नहीं देता, अर्थात् वेद में इसी प्रकार की अहिंसा है जो मानते हुए राष्ट्रीय महायुद्धमें आवश्यक वध की भी उसमें संभावना है । परंतु कोई कहे कि अपने पेटके



लिये दूसरों का वध किया जाय तो वैसी हिंसा करनेकी आज्ञा वेद नहीं देता है। यह भेद पाठकोंको अवश्य ध्यानमें धारण करना चाहिये ।

पूर्वोक्त “ अ-अन्या, अ-दिति, अ-ही ” इन शब्दोंका अर्थ इस सब विचार के प्रकाश में ही देखना चाहिये । इसलिये हम कहते हैं कि इनका अर्थ “अवध्य गौ” ऐसा ही है और दूसरा नहीं है । जिस समय ये शब्द गौ से भिन्न किसी दूसरे पदार्थ के लिये आ जाय उस समय बेशक इनका अर्थ दूसरा हो, परंतु इन गौ वाचक शब्दोंका अर्थ “अवध्य गौ” इतना ही है। इस प्रकार हमने देखा कि वेदने अह्न्या आदि शब्दोंने गौ का अवध्यत्व बताया है और मंत्र भागों द्वारा भी गौ का अवध्यत्व व्यक्त किया है, अब पूर्ण मंत्रों द्वारा गौ का अवध्यत्व वेद में बताया है वा नहीं यह देखना है —

### ( ३४ ) अनुपमेय गौ ।

वेद का मत है कि अन्य सब पदार्थोंके लिये उपमा मिल सकती है, परंतु गाय के लिये कोई उपमा नहीं है, इतने गाय के उपकार मनुष्य जाती पर हैं, इस विषय में निम्न लिखित मंत्र देखिये—

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमं सरः ।

इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते॥

यजुर्वेद. २३ । ४८

“ ज्ञानतेज के लिये सूर्य की उपमा है, द्युलोक के लिये समुद्र की उपमा है, तथा पृथिवी बहुत बड़ी है तो भी उससे इन्द्र अधिक समर्थ है, परंतु गौ के साथ किसी की भी तुलना नहीं होती । ”

देखिये वेदमें गौका कितना महत्त्व वर्णन किया है। यद्यपि पृथ्वी के लिये भी गौ शब्द आया है तथापि गाय वाचकही गौ शब्द इस मंत्र में है और यहां व्यक्त शब्दों द्वारा उसकी निरुपमेयता बतायी है। इस विषय में और देखिये—

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वती महि विश्रुति । एता ते अह्न्ये नामानि ।

यजु—८ । ४३

‘ इडा, रन्ता, हव्या, काम्या, चन्द्रा, ज्योति, अदिति, सरस्वती, मही, विश्रुती ये नाम, हे (अह्न्ये)

अवध्य गौ! तेरे हैं ।’ इन नामोंका अर्थ देखिये—

१ इडा ( Refreshing draught ) उत्साह  
वर्धक पेय देनेवाली,

२ रन्ता ( Delightful ) आनंद बढ़ानेवाली,

३ हव्या ( Worshipful ) पूजा करने योग्य, सत्कार करने योग्य

४ काम्या ( Loveable ) प्रेम करने योग्य

५ चन्द्रा ( Splendid ) सुंदर, तेजस्वी

६ ज्योती ( Shining one ) प्रकाशमान्

७ अदिति ( Inviolable ) जिसके साथ क्रूर व्यवहार करने योग्य नहीं, अखंडनीय

८ सरस्वती ( Full of sap ) रससे युक्त, अमृतरूपी रस देनेवाली

९ मही ( The Mighty One ) विशेष महत्त्व-वाली

१० विश्रुती ( Most glorious ) विशेष कीर्तियुक्त

११ अह्न्या ( Not to be killed ) अवध्य ।

ये ग्यारह नाम जो वेदमें गौका महत्त्व वर्णन कर रहे हैं वह आज भी हमारे अनुभवमें आ रहा है, इसलिये इसका विस्तार यहां अधिक करनेकी आवश्यकता नहीं है। ये अर्थ यूरोपीयनोंके स्वीकृतही अर्थ हैं हमने इनके गूढार्थ जान बझकर ही दिये नहीं हैं । पाठकही विचार करें कि जिस गौका इतना महत्त्व वेदमें वर्णन किया है उसका वध कैसे हो सकता है! देखिये और—

### ३५ गौसे लाभ ।

दुहामश्विभ्यां पयो अन्ध्येयं सा वर्धतां महते सौभाग्य ॥ क्र. १ । १६४ । २७

“ यह अवध्य गौ अश्विनी देवोंके लिये दूध देवे और वह हमारे बड़े सौभाग्य के लिए बहुत बड़े । ” इस मंत्रमें ( सा अह्न्या वर्धताम् ) यह अवध्य गौ बड़े ऐसा कहा है, यह मंत्र विशेष मनन करने योग्य है। इसका अर्थ म. प्रिफिथ करते हैं— and may she prosper to our high advantage अर्थात्



“ हमारे लाभ के लिए गौकी वृद्धि हो । ” जब इस मंत्र द्वारा यह बात सिद्ध हुई की गौकी वृद्धिसे ही हमारा सौभाग्य बढ़ना है तो गौ काटनेकी संभावना ही कहाँसे हो सकती है ? गौकी संख्या और गौके गुण इनकी वृद्धि होनेसे मनुष्यका अगणित लाभ हो सकता है यह बात वेद मुक्तकंठसे अनेक प्रकारसे कह रहा है । इतना वेदका महत्त्व वैदिक कालमें माना जाता था । इस लिए हम कह सकते हैं कि वैदिक कालमें गौकी उन्नति करने की ओर ही धार्मिक लोगों का प्रयत्न था । और देखिये—

सूयवसान्नागवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।  
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ।

क्र. १ । १६४ । ४०

“ गौ उत्तम घास खा कर ( भगवती ) भाग्यवान बने और हम उस गौसे ( भगवन्तः ) भाग्यवान या धनवान हों । हे अवध्य गौ ! तू सदा ( तृणं अद्धि ) घास ही खा और ( आ - चरन्ती ) वापस आते समय ( शुद्धं उदकं पिब ) शुद्ध जल पान कर । ”

गौको क्या खिलाना चाहिये वह इस मंत्रमें सुंदर शब्दों द्वारा कहा है । गौ घास ही खावे, यदि गौ पालनी हो तो उत्तम घास उसे मिले ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये । उत्तम घास और शुद्ध जल पीने वाली गौसे जो दूध आ सकता है वही मनुष्यके लिये आरोग्य-वर्धक हो सकता है । पका अन्न, धान्य, सड़े पदार्थ तथा मनुष्यकी विष्टा आदि गौको खिला कर जो दूध मिलता है वह उतना लाभदायक नहीं हो सकता । इस विषयमें निम्न लिखित मंत्र अवश्य देखिये—

यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावती  
नामजावयः । तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छ  
न्त्वाभूताः ॥

अथर्व. ८।७।२५

“ जो जो औषधियां सदा अवध्य गौवें खाती हैं और जो भेड़ बकरियां खाती हैं वह सब औषधियां तेरा सुख बढ़ावें । ” इस मंत्रका अर्थ म० ग्रिफिथने किया हुआ भी यहां देखिये—The multitude of herbs whereon The Cows, whom none may slaughter, feed, all that are food for goats

& sheep, so many Plants, brought hitherwards, give shelter and defence to thee.

इसका अर्थ ऊपर दिया ही है । इसमें “अघ्न्या” शब्द का अर्थ “whom none may slaughter” अर्थात् जिनका कोई वध न करे ” यह दिया है । यदि गौवाचक अघ्न्या शब्दका यह अर्थ है और उसका वध करना किसी को भी उचित नहीं तो फिर गोमांसभक्षण की प्रथा आयों में थी यह किस आधारसे यूरोपीयन विद्वान मानते हैं ?

### ( ३६ ) अवध्य बैल ।

“ अघ्न्या ” शब्द जैसा गौ के लिये प्रयुक्त होता है वैसाही “ अघ्न्य ” शब्द बैलवाचक भी है । इस लिये गौ के समानही बैल भी रक्षणीय और वर्धनीय तथा अवध्य ही है देखिये—

संगाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्ति हन्ति चक्षुषा ।

शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥ १७ ॥

शतयाजं स यजते नैनं दुवन्त्यग्नेयः ।

जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमा  
जुहोति ॥ १८

अथर्व० ९ । ४ ।

“ जो गौवोंका पति ( अघ्न्यः ) अवध्य अर्थात् बैल है वह कानोंसे कल्याणकी बातें सुनता है, वह आंखों से अकाल के दुर्मिष्य का नाश करता है और अपने सींगोंसे राक्षसोंको दूर भगाता है ॥ सौ यज्ञोंसे वह यजन करता है, ( एनं ) इस बैलको ( अग्नेयः न दुवन्ति ) अग्नि जलाते नहीं हैं । सब देव उसे उन्नत करते हैं जो ( ब्राह्मणे ) ब्राह्मण को ( ऋषभं ) बैल ( आजुहोति ) अर्पण करता है । ” इसमें निम्न लिखित बातें देखने योग्य हैं—

१ बैल का नाम “ अघ्न्य ” है जिसका अर्थ “ अवध्य ” है ।

२ एक बैल ब्राह्मणको दान करना सौ यज्ञके बराबर है । ( मंत्र १८ ) बैल का रक्षण करना, संवर्धन करना और दान करनेका इतना महत्त्व है ।

३ उसको अग्नि जलाते नहीं हैं, इतना बैलका महत्त्व है । ( मं०-१८ )



४ बैल कभी कानोंसे बुरे शब्द सुनता नहीं, क्यों कि सब उसकी प्रशंसा ही करते हैं । ( मं०-१७ )

५ बैल अपने आंखसे अकाल के दौर्भिक्षको दूर करता है ( अवर्ति हन्ति चक्षुषा ) ॥ बैल खेती द्वारा अकाल को दूर हटाता है । ( मं०-१७ )

यह बैलका वर्णन पढ़नेसे पाठकोंको पता लग जायगा कि बैल ऐसा उपयोगी है, इसलिये कौन उसको अपने पेटकी पूर्ति के लिये काटेगा और अकाल से त्रस्त होने के लिये तैयार होगा । यदि बैल अकाल को दूर करता है तो उसे सुरक्षित रखना ही आवश्यक है ।

उक्त मंत्र १८ के उत्तरार्ध का भाषांतर यूरोपीयन लोग कैसा करते हैं वह यहां देखिये—

म० ग्रीफिथ—All Gods promote the Brahman who offers the Bull in sacrifice.

म० विटनी—All Gods quicken him, who makes offering of a bull to a Brahman

म. विटनीका अर्थ कुच्छ अंशमें ठीक है जो हमने अपने अर्थमें ऊपर दिया है । म. ग्रिफिथने बिलकुल उलटा अर्थ लिखा है । मंत्रमें “ब्राह्मणे आ जुहोति” है जिसका अर्थ “ब्राह्मणके लिये समर्पण करता है” ऐसा होता है, परंतु उन्होंने न समझते हुए ही मन माना अर्थ लिख कर अर्थका अनर्थ किया है । ब्राह्मणके लिये बैल समर्पण करनेकी बात इसी सूक्तमें अगले ही मंत्रमें कही है—

ब्राह्मणेभ्यो ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः ।

पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्ठेऽव पश्यते ॥

अथर्व० ९ । ४ । १९

“ब्राह्मणोंको बैल देकर जो अपना मन श्रेष्ठ बनाता है उसकी अपनी गोशाला में गौवें और बैल बढ़ गये हैं ऐसा वह शीघ्रही देखता है ।” इस मंत्र से स्पष्ट पता लगता है कि ब्राह्मण को बैल दान देना एक वैदिक समय की प्रथा थी । ब्राह्मण को गौवें तो मिलती ही थी, परंतु गौवोंके पति के स्थान की पूर्ति करने के लिये उनको उत्तम बैल की आवश्यकता होना स्वाभाविक है, वह बैल उनको इस प्रकार दान से प्राप्त होते थे ।

इस प्रकार वेदमें बैल का महत्त्व वर्णन करके उसको अवध्य कहा है । इस कारण हम कह सकते हैं कि बैल का वध भी वेद विहित नहीं है ।

### (३७) गोवध प्रतिबंध ।

निम्न मंत्रमें गौका महत्त्व और उसका वध करने का प्रतिबंध स्पष्ट शब्दों में पाठक देख सकते हैं—  
माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः । प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदिति वधिष्ट ।

ऋग्वेद. ८ । १०१ । १५

“गौ रुद्रोंकी माता, वसुओं की पुत्री, आदित्यों की बहन और अमृत का केन्द्र है । जो समझ सकता है उस मनुष्यसे कहता हूं कि ( अनागां ) निष्पाप ( अ-दिति ) अवध्य गौ है इस लिये इस ( गां मा-वधिष्ट ) गौका वध मत् कर ।”

इस मंत्र में सब समझदार मनुष्योंको आज्ञा सुनाई है कि “गौ सदा के लिये निष्पाप और अवध्य है अतः उसका वध कोई भी न करे । पाठक इस दूसरे चरण का बहुत विचार करें । इसका म. ग्रिफिथका किया अर्थ देखिये—to folk who understand, will I proclaim it—injure not Aditi the cow, the sinless. ‘समझनेको जिन मनुष्योंको अकल है उन सब मनुष्यों को वेदने यह आदेश सुनाया है कि गौ सदाके लिये निष्पाप और अवध्य है, अतः उसका वध कोई न करे ।’ जिन मनुष्यों को ज्ञान बिलकुल नहीं है, जो अपना हित अहित नहीं समझ सकते और जो धर्मोपदेश का महत्त्व जान नहीं सकते, वे ही गोवध करते होंगे । क्यों कि वेद की इतनी स्पष्ट आज्ञा गोवध निषेध के विषय में होने पर वैदिक धर्मी किस प्रकार गोवध कर सकते हैं? इस लिये हम पहिले से लिखते आये हैं, कि वेदका शिष्ट संमत धर्म गोवध को प्रतिबंध करता है ।

### (३८) गायका प्रयोजन ।

गाय मनुष्यों के सुख के लिये ही रखनी है, वह सुख गायसे मिलनेवाले पदार्थों से प्राप्त होना है, इस विषय में निम्न लिखित मंत्र देखिये—



महान्तं कोशमुदत्ता नि पिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या  
विषिताः पुरस्तात् । घृतेन द्यावा पृथिवी  
व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वध्याभ्यः॥ ऋ. ५। ८३। ८  
“ बड़ा बर्तन उठाओ, उसमें अमृतकी धाराएं  
चलती रहें, गौके घीसे द्युलोक और पृथिवी भर  
दो, गौओं से उत्तम पान प्राप्त हो । ”

इन मंत्रमें गौरक्षाका प्रयोजन कह दिया है। गौसे  
बड़े बर्तन भरने योग्य दूध मिलता रहे, उस से  
बहुत घी उत्पन्न हो, वह घी सबको खानेके लिये  
विपुल मिले । तथा गौओंका दूधभी उत्तम रीतिसे  
लोक अधिक प्रमाण में पीते जायें। गौका यह प्रयोजन  
है। गौओंकी उन्नति करके लोग यह बात सिद्ध करें।

### ( ३९ ) मांसभक्षण निषेध ।

वेदमें मांसभक्षण निषेध स्पष्ट शब्दोंमें है। यह  
केवल मांसभक्षण का ही निषेध नहीं है प्रत्युत “मांस  
वर्ग ” के सब पदार्थोंका निषेध है। मांस, मद्य,  
जूआ और व्यभिचार ये चार बातें मांसवर्गकी हैं,  
इन चारोंके सेवन का निषेध वेदमें किया है, वह  
मंत्र अब देखिये—

यथा मांसं यथा सुरा यथाश्वा अधिदेवने । यथा  
पुंसो वृषण्यतः स्त्रियां निहन्यते मनः ॥ अ० ६। ७०। १

“ जैसा मांस, जैसा मद्य और जैसा जूआ है  
उसी प्रकार पुरुषका मन स्त्रियोंमें ( निहन्यते ) निः  
संदेह मारा जाता है । ” अर्थ जिन व्यवहारोंसे  
मनुष्यका मन गिर जाता है, मारा जाता है, या पतित  
हो जाता है वैसे चार व्यवहार हैं— मांसभक्षण,  
सुरापान, जूआ खेलना और व्यभिचार करना ।  
इनसे मनुष्य पतित होता है इसकारण इनको कोई  
भला मनुष्य न करे। यह “ वर्ग का निषेध ” होनेके  
कारण इनमेंसे किसी एक का पूर्ण निषेध करनेसे  
सब अन्योका निषेध स्वयं हो जाता है, देखिये  
एक का निषेध—

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व । ऋग्वेद.

“ जूआ मत खेल, खेती कर ” इस मंत्रमें जूआ  
मत खेल यह पूर्ण निषेध है, यह जूआ पूर्वोक्त  
मांसवर्ग में तीसरा है। जब एक का पूर्ण निषेध  
होता है तो तत्सम अन्य जो जो उस वर्गमें परिगणित  
हों उन सब का निषेध स्वयं हो जाता है; इस पद्ध-

तिसे पूर्वोक्त चारों का निषेध एकदम हो गया।  
यह बात युरोपीयनोंनें भी स्वीकृत की है देखिये  
Its ( of flesh ) use, is disapproved, as  
in a passage of the Atharvaveda, (6-70-1)  
where meat is classed with sura ( सुरा )  
or intoxicating liquor, as a bad thing.  
अर्थात् “ अथर्व वेदके कां-६-७०-१ मंत्रमें मांस-  
भक्षणका निषेध किया है जहां मांस को मद्य के साथ  
लिख कर वह बुरा है करके जतलाया है । ” इससे  
निःसंदेह सिद्ध हुआ कि मांसभक्षण, मद्यपान, जूआ  
खेलना और व्यभिचार करना ये चार बातें मनुष्य-  
को गिरानेवाली हैं, इसलिये किसी को भी इसके साथ  
अपना संबंध रखना उचित नहीं है ।

अब पाठक विचार करें कि जिस समय कि बुरे  
आचरणकी एक वर्गमें परिगणना होती है, और  
उस वर्गको ही संबंध रखने अयोग्य कहा जाता है,  
तथा उस वर्गके प्रत्येक बुरे आचरणसे मनका अधः-  
पात निःसंदेह होगा, ऐसी भयकी सूचना भी दी  
जाती है तब मांस, मद्य, जूआ और व्यभिचार की  
बातें उस धर्ममें किस प्रकार आनेकी संभावना भी  
हो सकती है ।

इस लिये हम कहते हैं कि वैदिक धर्म में उक्त  
चार दुराचारों की संभावना ही नहीं हो सकती। यहां  
कई लोग यह भी कहेंगे कि मांससे मद्य अधिक  
बुरा है, मद्यसे जूआ अधिक बुरा है और जूआसे  
व्यभिचार बहुत ही बुरा है, परंतु यह बुराई में  
तरतमभाव है। यह क्रम उलटा भी कहा जा सकता  
है, क्योंकि स्त्री के कारण जूआ खेलने की और  
उससे धन कमानेकी आवश्यकता होती है इ० ।  
परंतु इस प्रकार बुराई में तरतम भाव देखनेकी  
हमें कोई आवश्यकता नहीं है। बुराई यदि मनके  
अधःपातके लिये कारण होनी है तो सर्वथा ही  
न्याय्य है। इस लिये उस में बारीकी देखनेकी  
आवश्यकता नहीं है।

अतः वेदकी दृष्टिसे मांसभक्षण उतनाही अधः-  
पातका हेतु है जितना व्यभिचार, अतः उस मार्ग से  
कोई न जाय ।

-( क्रमशः )



# वैदिक धर्म के ग्रंथ ।

## ( १ ) स्वयंशिक्षक माला ।

वेदका स्वयंशिक्षका १ प्रथम भाग ... मूल्य १॥ )

" " २ द्वितीय भाग... " १॥ )

## ( २ ) योगसाधनमाला ।

१ संधोपासना । ... मूल्य १॥ )

२ संध्याका अनुष्ठान । ... " li )

३ वैदिक प्राण विद्या । ... " १ )

४ ब्रह्मचर्य ( सचित्र ) । ... " १। )

५ योगसाधनकी तैयारी । " १ )

६ योगके आसन । ( सचित्र ) " २ )

७ सूर्यभेदनव्यायाम सचित्र " III )

## ( ३ ) यजुर्वेद स्वाध्याय ।

१ यजु. अ. ३० । नरमेध । मूल्य मूल्य १ )

२ यजु. अ. ३२ । एकेश्वर उपासना । " II )

३ यजु. अ. ३६ । शांतिका उपाय । " II = )

## ( ४ ) देवतापरिचय ग्रंथमाला ।

१ रुद्र देवता परिचय । .. मूल्य II )

२ ऋग्वेदमें रुद्र देवता । ... " II = )

३. ३३ देवताओंका विचार । " = )

४ देवताविचार । ..... " = )

५ अग्निविद्या ।... " १॥ )

## ( ५ ) धर्म शिक्षाके ग्रंथ

१ बालकधर्मशिक्षा । प्रथमभाग । मू. - )

२ बालकधर्मशिक्षा । द्वितीयभाग । " = )

३ वैदिक पाठमाला । प्रथम पुस्तक " = )

## ( ६ ) उपनिषद् ग्रंथमाला ।

१ केन उपनिषद् .... मूल्य १। )

२ ईश उपनिषद् " III = )

## ( ७ ) आगम-निबंध-माला

१ वैदिकराज्यपद्धति । ... मू. 1- )

२ मानवी आयुष्य । ... " 1 )

३ वैदिकसभ्यता ... " III )

४ वैदिक चिकित्साशास्त्र । ... " II )

५ वैदिक स्वराज्य की महिमा । " II )

६ वैदिक सर्प विद्या । .... " II )

७ मृत्युको दूर करनेका उपाय । " II )

८ वेदमें चर्खा । .... " II )

९ शिवसंकल्पका विजय । " III )

१० वैदिक धर्मकी विशेषता " II )

११ तर्कसे वेदका अर्थ । .... " II )

१२ वेदमें रोगजन्तु शास्त्र । " = )

१३ ब्रह्मचर्यका विघ्न । .... " = )

१४ वेदमें लोहेके कारखाने । " 1- )

१५ वेदमें कृषिविद्या । " = )

१६ वैदिक जलविद्या । " = )

१७ आत्मशक्तिका विकास । " 1- )

१८ वैदिक उपदेश माला " II )

## ( ८ ) ब्राह्मण- बोध-माला ।

१ शतपथ बोधामृत । " 1 )

## ( ९ ) अन्य पुस्तक ।

१ वैदिक यज्ञसंस्था प्रथम भाग " १ )

२ " " द्वितीय " " १ )

३ छूत और अछूत प्रथम भाग " १ )

४ " " द्वितीय " " III )

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि० सातारा )



# ‘केन’ उपनिषद् ।

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है—

- |   |  |
|---|--|
| १ केन उपनिषद् का मनन, २ उपनिषद् ज्ञान का महत्त्व, ३ उपनिषद् का अर्थ, ४ सांप्रदायिक झगडे, ५ “ केन ” शब्द का महत्त्व, ६ वेदान्त, ७ उपनिषदों में ज्ञान का विकास, ८ अग्नि शब्दका भाव, ९ उपनिषद् के अंग, १० शांतिमंत्रोंका विचार, ११ तीनों शांति मंत्रों में तत्त्व ज्ञान, १२ तीन शांति-योंका भाव, १३ ईश और केन उपनिषद्, १४ “ यक्ष ” कौन है ?, १५ हैमवती उमा, १६ पार्वती कौन है ? १७ पर्वत, पार्वती, रुद्र, सप्तऋषि और अरुंधती, १८ इंद्र कौन है ? १९ उपनिषद् का अर्थ और व्याख्या, २० अथर्ववेदीय केन सूक्तका अर्थ और व्याख्या, २१ व्याष्टि, समष्टी और परमेष्टी, २२ त्रिलोकी | २३ अथर्वाका सिर, २४ ब्रह्मज्ञानी की आयुष्य मर्यादा, २५ ब्रह्म नगरी, अयोध्या, आठ चक्र, २६ आत्म-वान् यज्ञ, २७ अपनी राजधानीमें ब्रह्मका प्रवेश, २८ देवी भागवतमें देवी की कथा, २९ वेदका वागां-भृणी सूक्त, इंद्र सूक्त, वैकुण्ठ सूक्त, अथर्व सूक्त, ३० शाक्तमत, देव और देवताकी एकता ३१ वैदिक ज्ञान की श्रेष्ठता । |
|---|--|

इतने विषय इस पुस्तक में आगये हैं, इस लिये उपनिषदों का विचार करने वालोंके लिये यह पुस्तक अवश्य पढने योग्य है ।

मूल्य १। ) डाकव्यय = ) है ।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि० सातारा )

यज्ञकी पुस्तक

## वैदिक यज्ञ संस्था ।

प्रथम और द्वितीय भाग ।

प्रतिभागका मूल्य १ ) रु. डाकव्यय । )

प्रथम पुस्तक में निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है—

प्राचीन संस्कृत निबंध ।

- १ पिष्ट-पशु-मीमांसा । लेख १  
२ ” ” ” ” ” २  
३ लघु पुरोडाश मीमांसा ।

भाषाके लेख ।

४ दर्श और पौर्णमास ( ले०-श्री० पं० बुद्धदेवजी )

५ अद्भुत कुमार-संभव ” ” ”

६ बुद्ध के यज्ञ विषयक विचार

( ले०-श्री० पं० चंद्रमणिजी )

७ यज्ञका महत्त्व ( संपादकीय )

८ यज्ञका क्षेत्र ”

९ यज्ञका गुढ तत्त्व ”

१० औषधियों का महामख ”

११ वैदिक यज्ञ और पशुहिंसा

( ले०-श्री० पं० धर्मदेवजी )

१२ क्या वेदों में यज्ञों में पशुओंका बलि करना

लिखा है? ( ले० श्री० पं० पुरुषोत्तम लालजी )

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

## वैदिक उपदेश माला !

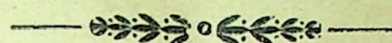
जीवन शूद्ध और पवित्र करनेके लिये बारह उपदेश | अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी ।

है । इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन मूल्य ॥ ) आठ आने । डाक व्यय- ) एक आना ।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )



# विशेष सूचना ।



## पाठक यह लेख सबसे प्रथम अवश्य पढ़ें !!!

वैदिक धर्मके इस पूरे अंकमें गोमांसभक्षण के विषयपर एकही लेख छपा है। यह विषय इस समय चर्चाका विषय हुआ है। महाराष्ट्रके धर्मपर पंडित श्री० चिंतामणराव वैद्यजीने 'यंग इंडिया' नामक अंग्रेजी पत्रमें 'वैदिक कालमें गोमांसभक्षण की प्रथा थी और गोमेधमें गोवध होता था।' यह लिख दिया है। यह लेख प्रसिद्ध होकर आज दो मास हो गये तोभी इस विषयपर किसीने कुछ लिखा नहीं। इस विषय में बड़ा पत्रव्यवहार हुआ परंतु कुछ बात निश्चित रूपमें बनी नहीं। इस लिये गोमांस विषयक जो जो शंकाएं यूरोपके वेदाभ्यासी पंडितोंने उठाई, तथा भारतीय विद्वानोंने भी इस विषयमें जो जो बातें प्रचलित की हैं, उन सबका उचित उत्तर वैदिक प्रमाणोंसे देना आवश्यक हुआ। इसी लिये यह लेख लिखा है।

तथा हिंदू महासभाके उत्साही अध्यक्ष डा० मुंजे महोदयने उद्घोषित किया है कि हिंदुओंमें जो जातियां निर्मांसभोजी हैं उनको इस समय मांसभोजन शुरू कर देना चाहिये। इस उद्घोषणाका परिणाम कई तरुण लोगोंपर हुआ है। इस लिये मांसभक्षण विषयपर भी कुछ विचार प्रकट करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई।

इस लिये 'अथर्व वेदका स्वाध्याय' न छपते हुए संपूर्ण अंकमें यही सामयिक महत्त्वका विषय छापना अत्यावश्यक हुआ। हमारा ख्याल था कि यह विषय इसी अंकमें समाप्त होगा, परंतु इस विषयमें जो जो शंकाएं इस समयतक उपस्थित

की गई हैं उन सबका उचित उत्तर देकर इस विषय का प्रामाणिक और सर्वांगपूर्ण लेख प्रकाशित करनेका संकल्प करनेसे लेख बढ गया। यदि थोड़ा थोड़ा प्रकाशित किया जाता तो पढ़नेवालोंको पूर्वापर अनुसंधान भी नहीं रहता इस लिये यही एक लेख इस अंकमें प्रकाशित किया है। पूर्ण आशा है कि पाठक इसे पढ़कर वैदिक धर्म की मांसभक्षण के विषय की संमति निश्चित करेंगे।

जो जो पाठक इस विषय की शंका अपने मनमें रखते हैं अथवा जो यूरोपीयनों की संमति मानते या जानते हैं उनको उचित है कि वे अपना मत अति शीघ्र हमारे पास लिखकर भेजें ताकि हम उन सबका विचार शेष लेखमें कर सकें।

यह धर्मका विषय है, यहां छिपानेकी आवश्यकता नहीं। यदि वैदिकधर्म गोमांसभक्षण की आज्ञा देता होगा तो हम वैसा कह देंगे, परंतु इस समय जो जो प्रमाण हमारे पास आगये हैं उन सबसे हमारा निश्चित मत यह हुआ है कि वैदिकधर्मके अनुसार गौ अवध्य है और मांस (मद्य, जूआ और व्यभिचार इन चार पातकों) से मनुष्यको दूर रखनेका ही वेदका स्पष्ट आदेश है। इस लिये अनुकूल या प्रतिकूल जो भी संमति पाठक रखते हैं उससे हमें सूचित करें ताकि आगेका लेख शीघ्रही पूर्ण किया जाय।

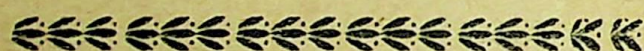
श्रीपाद दामोदर सातवलेकर  
संपादक-वैदिकधर्म ।



# आसनों का चित्रपट !

आसनों का व्यायाम लेनेसे सहस्रों मनुष्योंका स्वास्थ्य सुधर चुका है, इस लये आसन व्यायामसे स्वास्थ्य लाभ होनेके विषयमें अब किसी को संदेह ही नहीं रहा है। अतः लोग सब आसनोंके एक ही कागज पर छपे हुए चित्रपट बहुत दिनोंसे मांग रहे थे। वैसे चित्रपट अब मुद्रित किये हैं २० - ३० इंच कागज पर सब आसन दिखाई दिये हैं यह चित्रपट कमरे में दिवार पर लगाकर उसके चित्रोंको देख कर आसन करनेकी बहुत सुविधा अब हो गई है।

मूल्य केवल = ) तीन आने और डाक व्यय— ) एक आना है। स्वा० मं० औद्योगि० सा०



## योगमीमांसा

त्रैमासिक पत्र

संपादक— श्रीमान् कुवलयानंद जी  
महाराज।

कैवल्यधाम आश्रममें योग शास्त्र की खोज हो रही है जिस खोजका परिणाम आश्चर्यजनक सिद्धियोंमें हुआ है, उन आविष्कारोंका प्रकाशन इस त्रैमासिक द्वारा होगा। प्रत्येक अंकमें ८० पृष्ठ और १६ चित्र दिये जायेंगे।

वार्षिक चंदा ७ ) ; विदेशके लिये १२ शि०  
प्रत्येक अंक २ ) ६.

श्री. प्रबंधकर्ता-योगमीमांसा कार्यालय, कुंजवन;  
पोष्ट लोणावला. ( जि. पुणे )

कुस्ती, लाठी, पटा, बार वगैरह के  
सचित्र व्यायाम मासिक

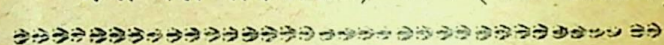
चार भाषाओं में  
हिन्दी भाषाका मूल्य ५ ) अंग्रेजी का ५ )  
मराठी का २॥ ) गुजराती का २॥ )  
रक्खा गया है उत्तम लेखों और चित्रों से  
पूर्ण होने से देखनेलायक है नमूने का अंक  
मुफ्त नहीं भेजा जाता. व्ही. पी. खर्च अलग  
लिया जाता है ज्यादा हकीकतके लिये लिखो

मैनेजर, व्यायाम राजपूरा, बडोदा



## वैदिक उपदेश

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिए बारह  
उपदेश हैं इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो  
सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह हांगी  
मूल्य ॥ ) आठ आने डाकव्यय— ) एक आना  
मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औध ( जि. सातारा )



देश देशान्तर का ज्ञान प्राप्त करनेका अपूर्व साधन  
विद्यार्थियों को परीक्षा पास करने का

सुगम उपाय

## भूगोल

भूगोल विषयक हिन्दी का एकमात्र सचित्र  
मासिकपत्र पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बहार उडोसा,  
मध्य प्रान्त और बरार के शिक्षा विभाग द्वारा  
स्वीकृत।

“भूगोल” में ज्योतिष, यात्रा, व्यवसाय, पशु  
वनस्पति अनुसंधान आदि भूगोल के सभी अंगों  
पर उच्च कोटि के मौलिक लेख प्रकाशित होते  
हैं। ( पिछले दो वर्षों के लेखों और लेखकों की  
सूची मुफ्त मंगाकर स्वयं देख लीजिये )।

वार्षिक मूल्य ३ )

मैनेजर “भूगोल” ई० सा० कालेज इलाहाबाद.

मुद्रक तथा प्रकाशक— श्री० दा० सातवलेकर, भारत मुद्रणालय, औध, ( जि० सातारा )



ॐ

# वैदिक धर्म ।

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

वर्ष ८

अंक ९

क्रमांक

९३



भाद्रपद

संवत् १९८४

सितंबर

सन १९२७

छपकर तैयार है।

## महाभारत की समालोचना

प्रथम भाग और द्वितीय भाग ।

प्रति भागका मूल्य ॥ ) डाकव्य ३ ) बी. पी. से॥ = )

मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औध ( जि. सातारा )

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ४ ) बी. पी. से ४॥ ) विदेशके लिये ५ )



१ आयुर्वेद की चार प्रतिज्ञाएं—१६९

२ यजुर्वेद का मुद्रण—१७०

३ बड़े भाई का हृदय—१७१

४ गोमांस भक्षण की प्रथा ---१७५

५ अथर्व वेद का स्वाध्याय १५३-१६८

# महाभारत ।

( हिंदी भाषा— भाष्य— समेत )

तैयार है ।

( १ ) आदिपर्व । पृष्ठ संख्या ११२५ मूल्य म. आ. से ६) रु

( २ ) सभापर्व । पृष्ठ संख्या ३५६ मूल्य म. आ. से २) रु

( ३ ) वनपर्व । पृष्ठ संख्या १५३८ मूल्य ८) रु.

( ४ ) विराटपर्व । पृष्ठ संख्या ३०६ मूल्य म. आ. से १॥) रु.

( ५ ) भीष्मपर्व । पृष्ठ संख्या ८०० मू. म. आ. से ४) रु

( ६ ) महाभारत समालोचना ।

१ प्रथम भाग । मू. म. आर्डरसे ॥ ) वी. पी. से ॥ = ) आने ।

२ द्वितीय भाग । मू. म. आर्डरसे ॥ ) वी. पी. से ॥ = ) आने ।

महाभारत के ग्राहकों के लिये १२०० पृष्ठों का ६) रु. मूल्य होगा।

मंत्री- स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )



# संस्कृत पाठ माला।

[ चौबीस भागोंमें सब संस्कृत पढाई हो गई है । ]

वारह पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ३ ) और वी. पी. से ४ )

चौबीस पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ६ ) रु. और वी. पी. से ७ )

प्रतिभाग का मूल्य ।- ) पांच आने और डा. व्य. - ) एक आना ।

अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति ।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

## १ प्रथम द्वितीय और तृतीय भाग ।

इन तीन भागोंमें संस्कृत भाषाके साथ साधारण परिचय कर दिया गया है ।

## २ चतुर्थ भाग ।

इस चतुर्थ भागमें संधि विचार बताया है ।

## ३ पंचम और षष्ठ भाग

इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया गया है ।

## ४ सप्तम से दशम भाग ।

इन चार भागोंमें पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक. लिङ्गी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है ।

## ५ एकादश भाग ।

इस भागमें “ सर्वनाम ” के रूप बताये हैं ।

## ६ द्वादश भाग ।

इस भागमें समासों का विचार किया है ॥

## ७ तेरहसे अठारहवें भाग तकके ६ भाग ।

इन छः भागों में क्रियापद विचार की पाठविधि बताई है ।

## ८ उन्नीससे चौबीसवें भाग तकके ६ भाग।

इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे उन को अल्प परिश्रमसे बड़ा लाभ हो सकता है ।

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )



# अग्नि विद्या ।

इस पुस्तक में निम्न लिखित विषय हैं ।

- १ अग्नि शब्दका भाव, २ अग्निके पर्याय शब्द, ३ पहिला मानव अग्नि, ४ वृषभ और धेनु, ५ अंगिरा ऋषि, ६ वैश्वानर अग्नि, ७ ब्राह्मण और अत्रिय, ८ जनता का केन्द्र, ९ सब धन संघका है, १० बुद्धिमें पहिला अग्नि, ११ मनुष्यमें अग्नि, १२ मर्त्योंमें अमर अग्नि, १३ वाणीमें अग्नि, १४ पुरोहित अग्नि, १५ शक्ति प्रदाता अग्नि, १६ हस्त-पाद-हीन गुह्य अग्नि, १७ वृद्ध नागरिक, १८ मूकमें वाचाल, १९ अनेकों का प्रेरक एक देव, २० जीवनाग्नि, २१ अग्निकी दस बहिनें, २२ देवोंके साथ रहनेवाला अग्नि, २३ यज्ञका झंडा, २४ गुहा निवासी अग्नि, २५ सात संख्याका गुह्य तत्त्व, २६ तनूनपात् अग्नि, २७ यज्ञ पुरुष, यज्ञशाला, मंदिर ( चित्र ), २८ परमाग्नि, २९ अग्नि सूक्त का अर्थ और व्याख्या ।
- हर एक विषयको सिद्ध करने के लिये वेद के विपुल प्रमाण दिये हैं । इस पुस्तकके पढ़ने से अग्नि विद्या की वैदिक कल्पना ठीक प्रकार ज्ञात हो सकती है ।
- मूल्य १॥ ) रु. डाकव्यय = ) हैं  
मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

## महाभारत ।

हिंदी भाषा—भाष्य—समेत

तैय्यार हैं ।

- १ आदिपर्व पृष्ठ संख्या ११२५ मूल्य म. आ. से ६ ) रु. और वी. पी. से ७ ) रु.  
२ सभापर्व पृष्ठ संख्या ३५६ मूल्य म. आ. से २ ) और वी. पी. से. ) रु. २॥ )  
३ वनपर्व पृष्ठ संख्या १५३८ मूल्य ८ ) रु. और वी. पी. से. ९ ) रु.  
४ विराटपर्व पृष्ठ संख्या ३०६ मू० म. आ. से १॥ ) और वी. पी. से २ ) रु.  
५ उद्योगपर्व पृष्ठ संख्या ९५३ मू. म. आ० से ५ ) रु. और वी. पी. से ६ रु.

### ६ महाभारत समालोचना—

- १ प्रथम भाग । मू. म. आर्डर से ॥ ) वी. पी. से ॥ = ) आने ।  
२ द्वितीय भाग । मू. म. आर्डर से ॥ ) वी. पी. से ॥ = ) आने ।  
महाभारतके ग्राहकोंके लिये १२०० पृष्ठोंका ६ ) रु. मूल्य होगा ।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध, ( जि. सातारा )



वर्ष ८  
अंक ९

क्रमांक १३



भाद्रपद  
संवत् १९८४  
सितंबर  
सन १९२७



भारत वर्षमें सब जानते जमा करनेके तथा त  
साह्य की अध्यक्षता में के स्थान हैं। आज  
लमानों की बड़ी सभा देखनेसे यदि कई



वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।  
संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवलेकर।  
स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

आर्योंकी चार प्रतिज्ञाएँ ।

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वास ।

वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजिनेना जयेम ॥

ऋग्वेद० १०। ४२। १०

हम सब ( गोभिः ) गौओंके द्वारा ( दुरेवां अ-मति ) अकालादि बुरी अवस्थाको ( तरेम ) तैरेंगे अर्थात् उस आपत्तिसे दूर होंगे, तथा हे (पुरुहूत) सबके द्वारा प्रशंसित ! ( विश्वां क्षुधं ) सब प्रकारकी भूखको ( यवेन ) जौं से हटा देंगे। और ( वयं प्रथमाः ) हम सबसे पहिले बनकर ( राजभिः धनानि ) क्षत्रियोंके साथ राज्यैश्वर्यादि धनोंको प्राप्त करेंगे तथा ( अस्माकेन वृजिनेन ) अपने ही पुरुषार्थसे ( जयेम ) शत्रुपर विजय प्राप्त करेंगे ।

( १ ) हम घरमें गौओंकी पालना करके अकाल को दूर करेंगे, ( २ ) धान्य फल आदिके भोजनसे हम अपनी क्षुधा निवारण करेंगे, ( ३ ) हम सबसे आगे होकर अपने क्षात्रवीरोंको संग लेकर सब प्रकारके धन प्राप्त करेंगे तथा ( ४ ) हम अपने ही पुरुषार्थ के बलसे सर्वत्र विजयी बनेंगे ।



# यजुर्वेद का मुद्रण ।

यजुर्वेदका मुद्रण छत्तीस अध्याय तक हो चुका है। अगले सप्ताहमें संपूर्ण यजुर्वेद मुद्रित होगा। तत्पश्चात् इसीमें काण्व, १ सब धन संघका है, पाठभेद मुद्रित किये जायंगे, ११ मनुष्यमें अग्नि, पुस्तक लेनेसे यजुर्वेद की “ १३ वाणीमें अग्नि, और काण्व ” शाखाकी संहिता, शक्ति प्रदाता अग्नि, काण्व शाखाकी संहिता अलग अलग मुद्रित होगी, १७ वृद्ध नागरिक, नहीं रहेगी। इस समय तक १०० का प्रेरक एक देव, और आगे ४० पृष्ठ छप कर पाठकों के पास २००

जनवरीसे इस समय तक हमारा इस प्रकार का २६ तनूनपात् अग्नि, भी अधिक होगया है। इस मंदिर ( चित्र ), २८ पी. द्वारा भोजना बंद अर्थ और व्याख्या। हर एक विषयको स्यात का है कि बारंबार प्रमाण दिये हैं। इस पुस्तक करनेका कारण लिखते पी. वापस करनेसे व्यर्थ वैदिक कल्पना ठीक प्रमाण १॥ ) वातका भी इनको ख्याल नहीं है।

## पोषक वर्ग ।

हमने लिखा था कि पोषक वर्गको हम साल-भरमें ( १२ ) से ( १६ ) रु. तकके पुस्तक भेंट करेंगे, परंतु इस वर्ष प्रतिमास महाभारतके दो अंक मुद्रित करनेके कारण ( १२ ) महाभारत, ( ४ ) वैदिक धर्म तथा ( ५ ) रु. की अन्य पुस्तकें सब मिलकर इस वर्ष ( २१ ) रु. से भी अधिक पुस्तकें पोषक वर्गको मिलेंगी। यह देखकर कई लोग पोषक वर्ग में नाम दाखल करनेकी इच्छा प्रकट कर रहे हैं, यह निःसंदेह उत्साहकी बात है। परंतु जिस समय पोषक वर्ग में नाम दाखल करनेवाले सौ रु. चंदा देनेपर पिछले छपे सब पुस्तक मुफ्त मांगते हैं तब उनको क्या उत्तर देना यह हमारे समझमें नहीं आता। इस समय महाभारत ५० अंक मुद्रित हुए हैं जिनका मूल्य ( २५ ) रु. है, समालोचना और वेद मिलकर ( ३ ) रु. है, अन्य पुस्तकें करीब ( ३० ) रु. से अधिक मूल्य की हैं। अर्थात् सौ रु. पोषक वर्गका चंदा देनेपर यदि ग्राहकोंको पूर्व मुद्रित ( ६० ) रु. के पुस्तक उपहार रूपमें चाहिये और फिर प्रतिवर्ष ( २० ) रु. के पुस्तक तो मिलते ही रहेंगे, तो हम नहीं समझते कि इस प्रकार करने से स्वाध्याय मंडल की अवस्था कैसी बनेगी? इस लिये हम नम्रतापूर्वक इन सज्जनोंसे प्रार्थना करते हैं कि वे इस संस्थाके सच्चे “ पोषक ” बनें तो दोनों के लिये अच्छा होगा। इस विषयमें इससे अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं।

वेदका पुस्तक सजिल्द ही पाठकों के पास भेजने का संकल्प हमने किया है। दोनों भाग सजिल्द ही भेजे जायंगे। यदि कोई ग्राहक मूल्यकी न्यूनता करने के लिये विना जिल्द चाहेंगे तो उनको विना जिल्द भेजा जायगा। जो ग्राहक वापसी डाक से वेदके पुस्तक मांग रहे हैं उनको यह ध्यानमें धारण करना चाहिये कि अभी करीब ४० पृष्ठ छपने हैं और उस कार्य के लिये कमसे कम एक मासकी आवश्यकता हांगी, उसके बाद जिल्द बनेगी, और पश्चात् पुस्तक ग्राहकों के पास भेजा जायगा।

ग्राहक पेशगी मूल्य ( २ ) रु. मनी आर्डर से भेज रहे हैं। जो पेशगी मूल्य का लाभ उठाना चाहते हैं उनको शीघ्रही म. आ. से मूल्य भेजना चाहिये।

## वी. पी. बंद

ग्राहक पुस्तकें वी. पी. से मंगवाते हैं और विना कारण लौटा देते हैं। इस लिये महाभारत, वेद आदि पुस्तकें वी. पी. द्वारा भोजना बंद किया है, क्योंकि इसके डाकव्यय के समेत वी. पी. पर यहां हमें बहुत व्यय करना पडता है और वी. पी. वापस होनेके कारण हमारा व्यर्थ नुकसान होता है। गत



## बड़े भाई का हृदय !

अली बंधुओं का नाम भारत वर्षमें सब जानते ही हैं, उन में से बड़े भाई साहब की अध्यक्षता में गत पक्षमें कलकत्ता में मुसलमानों की बड़ी सभा, "रंगीला रसूल" का निषेध करनेके लिये, हुई थी। जिसमें बड़े भाई साहबने तथा अन्यान्य मुसलमान वक्ताओं ने अपना हृदय खोल कर, जो कुछ हिंदुओं के विरुद्ध कहा जा सकता है, कह दिया है। उस कथन का सारांश यह है कि—“ हिंदुओं ने मुसलमानों को मस्जिद के सामने बाजे बजाने तथा गोवध करने आदिके अनेक प्रकरणोंमें बड़ा तंग किया, परंतु हमने वह सब सहन किया, अब वेही हिंदु हमारे पैगंबर की निंदा करके हमें चिड़ा रहे हैं ! हिंदुओं की अन्य बातें हमने सहन कीं, परंतु पैगंबर की निंदा हम कदापि नहीं सहन कर सकते। यदि हिंदु ऐसाही करते रहेंगे तो हमारा छुरा उनके गलोंपर चलेगा ३० ३० । ” पशु शक्तिका प्रदर्शन करते हुए जो कुछ कहा जा सकता है वह इनकी वक्तृतामें पाठक देख सकते हैं, उस विषयपूर्ण वक्तृत्व को यहां अधिक दहराना हम उचित नहीं समझते ।

मस्जिद के सामने बाजा बजानेके विषयमें हिंदुओं ने मुसलमानों को कोई कष्ट नहीं दिया है, परंतु जहां इस विषयका कभी सवालभी उठा नहीं था और जहां मुसलमान बादशहाओं के समयसे इस समय तक बराबर बाजा बजता रहा, वहांभी आजकल बाजे का नाया सवाल खड़ा करना और हिंदुओं को अपने धर्मोत्सव आनंदसे बनानेमें भी नानाप्रकारकी रुकावटें खड़ी करती यह कार्य मौलाना साहबके भाईबंधुओंका ही आजकल चारों ओर हो रहा है, जिससे सब लोगोंका यह करीब निश्चयसा हो रहा है कि ये मस्जिदें सचमुच प्रार्थनामंदिरें नहीं हैं, परंतु लाठी, पत्थर, बोतलें आदि आज कलके निःशस्त्रोंके शस्त्र

जमा करनेके तथा लड़ाईका प्रारंभिक विचार करने के स्थान हैं। आज कलके मुसलमानों के व्यवहार देखनेसे यदि कईयोंने ऐसा अनुमान किया तो वह अयोग्य न होगा ।

हिंदुस्थानसे बाहरके संपूर्ण मुसलमानोंके देशोंमें मस्जिद के सामने बाजा बज सकता है, पारिस और लंदनके मस्जिदोंके अंदर तथा बाहर भी बाजा बज सकता है, परंतु भारतवर्षमें नहीं बज सकता। जहां मुसलमान भारतवर्षमें आनेके पूर्व समयसे बजता था वहां भी आज नहीं बज सकता, यह मुसलमानों की वृत्ति देखकर हर एक जान सकता है कि इन चार पांच वर्षोंके अंदर मुसलमानोंके दिलों में कुछ भिन्नही विचार कार्य कर रहा है, जिसके कारण किसी भी रीतिसे ये हिंदुओंसे मित्रताका व्यवहार करनेको तैयार नहीं होते हैं ।

जिन्होंने महमूद गझनवीके समयसे लेकर इस समय तक हिंदुओं के मंदिर तोड़ने और देवताओं की मूर्तियां भंग करनेका ही काम किया है, जिस को ग्वाड़ी सेकड़ों मंदिर और हजारहां मूर्तियां इस समय भी दे रही हैं, जिन्होंने अमूल्य ग्रंथसंग्रह जलाकर भस्म करनेमें हो परम पुरुषार्थ समझा उसी जातीके लोग खुली सभामें कहनेसे शरमाते नहीं कि “ हमने हिंदुओं को इस बातकी क्षमा की। ”

बड़े भाई साहब ! क्षमा तो हिंदुओंने ही की है। श्री. छत्रपति शिवाजी महाराज ने मस्जिदोंकी रक्षा की, कुराण शीफ की रक्षा की और मुसलमानों की स्त्रियोंकी भी रक्षा की। इसके विरुद्ध मुसलमानोंने मंदिरोंको तोड़ा, मूर्तियां फोड़ दीं, स्त्रियोंको भ्रष्ट किया। इसलिये हिंदुओं के उदार हृदयके साथ आपका मुकाबला ही कहा हो सकता है? इस समय तक यदि किसी जातीने क्षमा की होगी तो हिंदुओंने



ही की है, आपकी जातीने नहीं। इतना होते हुए आप ऐसा बोलने का साहस कर रहे हैं इसका कारण इतनाही है कि आपके साथ यथायोग्य बर्ताव करनेका पाठ हिंदुओं ने अभीतक नहीं सीखा है।

आप “रंगीला रसूल” काही मामला लीजिये। जिनके लिये मुसलमान इतनी जबरदस्त हलचल मचा रहे हैं क्या दूसरों के धर्माचार्यों और देवताओं की निंदा करनेवाले किताब मुसलमानों ने इस समयतक नहीं लिखे हैं? मुहम्मद इस्माइल की “रहे हिंदु” नामक पुस्तक में हिंदु देवताओं के विषयमें जितना बुरा लिखा है उतना रंगीला रसूल के कलम में जहर नहीं है, यह पुस्तक सन १९१३ में लखनऊ के फखरुल मतावे प्रेससे छपी और प्रकाशित हुई है। इस पुस्तकमें मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम-चंद्रजी, पूर्ण पुरुष श्रीकृष्णचंद्रजी तथा धर्मात्मा पांडवोंको ऐसे शब्द लिखे हैं कि जो रंगीले रसूल का लेखक अपने पुस्तकमें लिख नहीं सका। “नाकि-सल अकल, बेगैरत, बेशरम, बद चाल, बदरस्म, बद आइन, खूनी, फिादी, हरामके जने, व्यभिचारी आदि विशेषण उक्त महान् विभूतियोंके लिये मुसलमानोंने लिखे हैं। दूसरी किताब “तहफतुल हिंदमय कथा सलोई” महम्मद अब्दुल्लाकी लिखी हुई है, इसमें ब्रह्मा विष्णु महादेव आदि देवोंके विषयमें इतना बुरा लिखा है कि जितना रंगीला रसूल का लेखक भी लिख नहीं सकता। तीसरी पुस्तक “तेगे फकीर बगर्दने फकीर” है। इसके लेखक मौ० महम्मद हुसेन है, इन्होंने किसी भी हिंदु देवताको नहीं छोड़ा है। ये पुस्तकें तो रंगीला रसूल पुस्तक छपनेके कई वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुकी थी। जो लोग रंगीले रसूल के लिये इतना आंदोलन कर रहे हैं वे इन पुस्तकों को कैसे सहन करते हैं? इन पुस्तकों का उत्तर रंगीला रसूल के लेखक ने उनके समान भाषामें दिया है। अब मुसलमानों को वह इतना क्यों चुभता है? जितनी सभ्यता उक्त पुस्तकों के लेखकों में थी उतनी ही सभ्यता रंगीले रसूल के लेखक में है। ये दोनों गुन्हे यदि समान हैं तो पहिला गुन्हा अनेक मुसलमानों ने किया था, कई वर्ष हिंदु चुप रहे। परंतु अब एक हिंदुने उक्त पुस्तकों

का उत्तर वैसी ही भाषामें देनेका यत्न किया।

हमें तो दोनों के लेख दिलसे पसंद नहीं हैं, परंतु जो मौलाना साहेब रंगीला रसूल के विरुद्ध इतनी आवाज उठा रहे हैं उनको उक्त पुस्तक वैसे ही तिरस्कार करने योग्य क्यों नहीं प्रतीत होते यही हमें आश्चर्य प्रतीत होता है !!!

अभी हालमें खाजा हसन निजामी के पेशवा पर में श्री छत्रपतिशिवाजी महाराज के विषयमें और उन की प्रातः स्मरणीय माता जिजाबाई जी के विषय में जो घृणित लेख छपा था, क्या यह लेख मौलाना बंधु जानते नहीं हैं? यदि आक्षेपणीय लेखोंकी संख्या और घृणितता के विषयमें देखा जाय तो जितना घृणित साहित्य मुसलमान लेखकोंने हिंदुओं को चिड़ानेके लिये गत तीस वर्षोंमें लिखा है उसका सौधा हिस्सा भी हिंदुओंने उसके उत्तर देनेके लिये लिखा नहीं है। श्री शिवाजी महाराज को व्यभिचार से उत्पन्न हुआ लिखने में खाजा साहेब को कोई शरम नहीं आई, परंतु वेहो मुसलमान रंगीले रसूल से चिड़ रहे हैं। उनको रंगीले रसूल के लेखक तथा प्रकाशक के ऊपर अपना क्रोध प्रकट करनेके पूर्व अंग्रेज ग्रंथकारोंपर जो कुछ करना है करना चाहिये; क्योंकि म० गिबन (Gibbon) ने अपने “रोमन साम्राज्यका पतन” (Decline and fall of Roman empire) नामक पुस्तक में तथा म. वेल्स (Mr. H. G. Wells) ने “इतिहास की रूपरेखा” (Outline of History) नामक पुस्तक में भूमात्मा रसूल के विषय में जो कुछ लिखा है वह रंगीले रसूल पुस्तक के तात्पर्यसे कुछ कम नहीं है। यदि मौलाना साहेब में कुछ जोर लगाने की शक्ति है तो वे उक्त अंग्रेजोंपर अपनी शक्ति का प्रयोग करें और देखें कि उनका जोर वहां क्या कार्य कर सकता है।

मौलाना साहेब कतल, खून और छुरेकी धमकी बार बार देने लगे हैं। परंतु केवल शब्दों के गजाने के उपरान्त यदि वैसा आचरण करना है तो देर न लगाते हुए अपने दिलके माफक करना शुरू कर दें। हिंदु जातोपर ऐसी अवस्थाएं कईवार आचुकी हैं। आपका इतिहास कुल १३०० वर्षों का हो है, परंतु



हिंदु जाती आज कमसे कम चालीस हजार वर्षों से जीवित है वह निःसंदेह आपकी दया पर जीवित नहीं है। आपका छुरा जगत् में आनेसे पूर्वकाल से वह जीवित है, उस जातीपर अनंत संकट आये तो भी वह जीवित रही है, वह आपको दयाकी याचना नहीं करती है, इस लिये आप खुले दिल से जो करना है शुरू कर दें।

हिंदुजाति शांतिप्रिय है, इस लिये क्रूर अत्याचार असह्य रूपमें होने तक वह अपनी शांति नहीं छोड़ती; परंतु उसकी शांति के लिये भी सीमा है और जब आप जैसे मौलाना साहब उम्म मर्यादा का अतिक्रमण करेंगे, उस समय हिंदुओं को भी आत्मरक्षा के लिये आवश्यकता हुई तो शांति छोड़ना पड़ेगा।

वास्तविक देखा जाय तो हिंदु और मुसलमानों के भारत देशके पुत्र होनेके कारण परस्पर देशभाई हैं और इनको अपना भाईका नाता कभी भूलना नहीं चाहिये। यह नाता हिंदू कभी भी भूल नहीं हैं। दोनों आपस में भाई होनेके कारण दोनों के अंदर परस्पर के विषय में बंधुप्रेम रहना आवश्यक है, केवल हिंदुओं के अंदर बंधुभाव रहनेसे कार्य नहीं चल सकता।

हिंदुओं के अंदर मुसलमानों के विषयमें प्रेमभाव है इसके कई प्रमाण दिखाये जा सकते हैं। सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि जहां मुसलमानों का अल्प प्रमाण है वहां हिंदुओं के बहुसंख्यामें रहते हुए भी अल्प संख्या वाले मुसलमान सुरक्षित हैं और एक भी उदाहरण ऐसा नहीं है कि बहुसंख्याक हिंदुओं ने अल्प संख्यावाले मुसलमानों पर थोड़ा भी अत्याचार किया हो। इसके विरुद्ध मुसलमानों का हृदय देखिये, निजाम हैदराबाद रियासत में रियासत मुसलमानों को होने के कारण जबसे वहां अलीगढ़के मुसलमानों का प्राबल्य हुआ है तबसे हिंदुओं पर एकसे एक बढ़ कर आपत्तियां आ रही हैं, किसी हिंदु रियासतमें हिंदुओं ने मुसलमानों को ऐसे कष्ट नहीं दिये जैसे निजाम की रियासतमें हिंदू भोग रहे हैं। दूसरा उदाहरण सीमा प्रांतका है जहां अल्प संख्याक हिंदुओं को घरदार छोड़कर भागना ही पड़ा है। हिंदु हृदय और मुसलमानी हृदय का

भेद यहां दीख पड़ता है।

हिंदुओं ने ऊर्दू, पर्शियन, अरेबिक आदि पढ़कर मुसलमानी साहित्यमें प्रवीणता संपादन की है। साहित्यको अपनाता जातीय बंधुभाव का द्योतक है। तथा ताबूद आदिमें मुसलमानों की अपेक्षा हिंदुओं का शोर अधिक होता है, बुरा हो या भला हो—परंतु मुसलमानों के उत्सवों को अपनाने के विषयमें निःसंदेह यह हिंदुओं का प्रयत्न है। इससे हम कह सकते हैं कि हिंदुओं ने मुसलमानों के साथ मित्रता करने के लिये अपना हाथ हृदसे अधिक फैलाया है; परंतु इसके बदले मुसलमानों ने क्या किया है? कितने मुसलमान आर्यसाहित्य के तथा संस्कृत भाषाके अभ्यासी और प्रेमी हैं? कितने मुसलमान हिंदुओं के देवों के महोत्सवों में संमिलित होते हैं? परंतु उलटा कहा जा सकता है कि उत्सवों में रुकावटें डालना, मूर्तियों को तोड़ना आदि में इनका हाथ अधिक कार्य करता है। पाठक गत तीन चारसौ वर्षोंका इतिहास देखेंगे, तो उनको पता लग जायेगा कि हिंदुओं ने मुसलमानों के साथ मित्रता करनेका जो जो प्रयत्न किया है वह विफल हुआ है इतना ही नहीं प्रत्युत उस कारण हिंदुओंको नुकसान उठाना पड़ा है। इससे पाठकों को पता लग जायेगा कि कौन मनमें बंधुभाव रखता है और कौन द्वेषका जहर रखता है। यहां प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों होता है। दोनों एकदेश के पुत्र होते हुए मुसलमान हिंदुओंके साथ इतना वैर भाव क्यों धारण करते हैं? इसका एक ही कारण है और वह यह है कि जितने उत्कट भाव से हिंदु भारत देश को अपनी मातृभूमि समझते हैं, वह भाव मुसलमानों में नहीं है।

हिंदु लोक अपने सहस्रों तीर्थों, क्षेत्रों, नगरों और पर्वतों को पवित्र मानते हैं, उनकी पवित्रतासे अपने आपको पवित्र होने की कल्पना करते हैं, संकड़ों नदियोंके जलसे अपने पवित्र होने का भाव हिंदुओं में जागृत है अर्थात् भारत देश के विषय में हिंदुओं के मन में पूज्य मातृभाव तथा अत्यंत आदर है, इतनाही नहीं परंतु हिंदु संस्कृति के साथ भारत देशका घनिष्ठ संबंध होनेसे हिंदुओं के ऋषिमुनि



योगी तथा रामकृष्णादि देव देवता फलाने स्थानपर विराजमान थे इत्यादि भाव आज भी जाग्रत होने के कारण हिंदु के मनमें भारत देशके विषयमें अपने पनका भाव विशेष रूपमें है ।

इसके विरुद्ध मुसलमानों का भाव देखिये, उनके मन में भारत के काशी रामेश्वर का आदर नहीं, हिमालयके शिखरों का प्रेम नहीं, भागीरथी का सन्मान नहीं, परंतु मक्का मदीना, इजिप्तके स्थान, तुर्कस्थान के देश, वहांका खलीफा आदि इनके प्रेमके स्थान भारत देशके बाहर हैं, इसलिये इनका जितना प्रेम उन विदेशोंसे है उतना इस देशसे नहीं है । यह भूमि तो उनकी भोगभूमि है । जैसी आज-कल अंग्रेजों की भोगभूमि भारतवर्ष है उसीप्रकार इनकी भोगभूमि यह है ।

हिंदू यदि भारत भूमिको पूजनीय " मातृ भूमि " समझते हैं तो ये इसको उपभोग्य स्त्री भूमि समझते हैं । इतना मनोवृत्तिमें भेद है इसी कारण ये लोग हिंदुओं पर हमला करनेकी बातें बोलते रहते हैं ।

दूसरी कल्पना इनके मनमें " मुसलमानी जगत् " की घसी है जो हिंदुओं से अपने आपको भिन्न माननेके लिये इनको उत्साहित करती है । तुर्कस्थान, इजिप्त, ईराण, अरबस्थान, अफगानिस्थान, बलुचिस्तान ये देश केवल मुसलमानों के हैं उनके साथ लगता हुआ भारतका उत्तर देश मुसलमानों के संख्याधिक्य से युक्त है, तुर्कस्थानसे बंगालतक का एक मुसलमानी साम्राज्य करने की कल्पना सर-सय्यद अहमदखानके प्रयत्न से इनमें बढ गई है । यह कल्पना भारतके स्वतंत्र स्वराज्य की कल्पना से विरोधी होनेके कारण और हिंदुओं के साथ मिलजुल कर मिलनेवाला अंशरूप स्वराज्य की अपेक्षा, मुसलमानी जगत् के साथ मिलनेसे प्राप्त होनेवाला इस्लामी राज्य इन्हे अधिक प्रिय होनेके कारण ये हिंदुओं के साथ मित्रता करनेके लिये नहीं झुकते, और अपने ही घमंडमें कूदते हैं ।

जबतक भारतके स्वतंत्र स्वराज्यसे अपना कल्याण है यह हिंदुओं के दिलकी भावना के समान भावना इनके मनमें खड़ी न हो जाय और मुसलमानी राज्य

का शासन भारत पर करनेकी घातक कल्पनाका इनको विस्मरण न हो जाय, तब तक ये हिंदुओं के साथ ऐसाही क्रूरता का व्यवहार करेंगे ।

हम जानते हैं कि इनके अंदर कई लोग ऐसे भी हैं कि जो हिंदुओं के समान भारतको मातृभूमि मानते हैं और भारतका स्वतंत्र स्वराज्य होनेकी शुभ भावना मनमें रखते हैं, परंतु इनकी इस जातिमें अल्पसंख्या है और फिसादके लिये गुंडोंको भडकानेवाले इन सज्जनोंकी पर्वा भी नहीं करते ।

ऐसी अवस्था है इसलिये किसी भी स्थानपर समझौता होता नहीं और दिनों दिन झगडा बढताही जाता है ।

हिंदुओं के लिये चारों ओर से बहुत बुरे दिन आये हैं । हिंदू स्वराज्य चाहते हैं इसलिये स्वभावतः भेदनीतिमें चतुर अंग्रेज सरकार हिंदू मुसलमानों में भेद रहना चाहते हैं इसलिये मुसलमानों को संतुष्ट रखते जाते हैं, सरकार की यह नीति होनेके कारण युरोपीयन ओहदेदार स्वभावतः मुसलमानों के पक्षमें रहते हैं, मुसलमान ओहदेदार अपनी जाती का पक्ष लेते हैं इस लिये हिंदुओं पर सख्ती करते हैं, हिंदू ओहदेदार आगये तो वे अपने आपको निः-पक्षपाती सिद्ध करनेकी इच्छासे हिंदुओं को दबाते हैं । रियासतों में जाओ तो मुसलमानी रियासतोंमें हिंदुओं पर खलं खुला अत्याचार होते हैं, इसके उदाहरण है दरावाद रियासतमें किसी भी समय पाठक देख सकते हैं, हिंदू रियासतोंमें जहां विरोधी मुसलमान हों वहां अपने आपको निःपक्षपात सिद्ध करनेके लिये हिंदुओं पर सख्ती होती है इसके उदाहरण बडोदा, अक्कलकोट आदिमें पाठक देख सकते हैं । बडोदा रियासतमें शिवाजी महोत्सव हुआ, उसमें सरकारी अधिकारियों के सामने मुसलमानोंने उत्सवपर हमला किया, मूर्ति पर भो धावा किया, वहां की वहां गीरफ्तारीयां हो गई, परंतु अब प्रायः सभी छोड दिये गये है और दो चार गुंडोंको नाममात्र दंड किया गया । यदि किसी मुसलमान रियासत में हिंदू इस प्रकार फिसाद करते, तो कितना अनर्थ हो जाता ?



इस प्रकार हिंदुओं का ज्ञाता इस समय दूसरा कोई नहीं है। हिंदुओं के नेताओंमें भी मुसलमान नेताओंके समान अपनी जातिके हित करने के विषयमें एकमत नहीं है, यह सबसे दुर्दैव की बात है। इसलिये इस समय हिंदुओं को अपना उद्धार स्वयं करनेका यत्न करना चाहिये। अपनी संघटना करनेका प्रयत्न सबसे प्रथम होना चाहिये संघटना का बल और वैयक्तिक शक्ति हिंदुओंको जितनी बढ़ सकती है बढ़ानी चाहिये। हम अन्योकी मित्रताके विना भी जीवित रह सकते हैं, इतना सिद्ध होने योग्य अपना साम्दायिक और वैयक्तिक बल हिंदुओं को बढ़ाना चाहिये और अपने आंतरिक उपजातियों का संघर्ष जितना न्यून हो सकता है न्यून करना चाहिये।

यदि हिंदु स्वभावतः फिसादी होते तो उनका झगडा इसाई, यहूदी, पार्सी आदि अल्प संख्या वालों

से हो जाता, परंतु वह नहीं होता, इससे हिंदु स्वयं फिसादी नहीं है यह बात स्वयं सिद्ध है। मुसलमानों का झगडा जैसा हिंदुओं से है वैसा पार्सीयों से भी होता है इसलिये फिसाद की जड केवल मुसलमानों के मनोवृत्तिमें है। यह जड हटाने का उपाय हिंदुओं की उत्तम संघटना होनेके विना हो नहीं सकता, इसलिये अपनी संघटनाके करनेके कार्यमें हिंदुओं को विशेष दत्तचित्त होना चाहिये। साथ साथ अपनेमें से जो धर्मान्तरित हिंदु हैं, उनको पुनः अपने में मिलानेका कार्य भी विशेष प्रयत्न से करना चाहिये। शुद्धि और संघटना द्वारा तथा आत्मशुद्धि द्वारा यदि हिंदु अपना बल बढ़ायेंगे तो ही इस समय उनका बचाव हो सकता है अन्यथा दिन बदिन दबनाही पड़ेगा। इसलिये हिंदुओं ! सावधान हो जाओ।

“ नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय । ”

— ० —

## गोमांस भक्षणकी प्रथा !

( पूर्व अंकसे- )

४० भ्रम क्यों होता है ।

वेदका अर्थ यदि इतना स्पष्ट है तो उसके अर्थके विषयमें भ्रम क्यों होता है ? ऐसा यहां प्रश्न पाठकों के मनमें खडा रह सकता है, इसका उत्तर देनेके लिये एक उदाहरण यहां देते हैं। इस उदाहरण का विचार यदि पाठक करेंगे तो उनको अर्थ विषयक भ्रम के कारण का पता लग जायगा। देखिये वह मंत्र

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण ।  
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमा  
न्यासन् ॥ ४३ ॥

ऋ० १ । १६४ । ४३ अथर्व० ९ । १० । २५  
इस मंत्रके विविध लोगोंके अर्थ यहां देते हैं-

( १ ) श्री. सायणाचार्य का अर्थ- ( शकमयं ) गोवरकी अग्निका ( धूमं ) धूवां ( आरात् अपश्यं ) समीपसे ही मैंने देखा। और ( एना अवरेण ) इस निकृष्ट ( विषूवता ) व्याप्तिमान धूम्रसे ( परः ) परे रहनेवाले अग्निको भी मैंने जाना। वहां ( वीराः ) वीर लोग ( पृश्निं उक्षाणं ) श्वेत सोम औषधिका ( अपचन्त ) पाक कर रहे हैं, ये धर्म उत्कृष्ट थे ॥

( २ ) श्री० स्वा० दयानंद सरस्वती- मैं (आरात्) समीपसे ( शकमयं ) शक्तिमय समर्थ ( धूमं ) ब्रह्मचर्य कर्मानुष्ठान के अग्निको ( अपश्यं ) देखता हूं। ( एना अवरेण ) इस नीचे इधर उधर जाते हुए ( विषूवता ) व्याप्तवान् धूमसे ( परः ) पीछे ( वीराः ) विद्याओंमें व्याप्त पूर्ण विद्वान् ( पृश्निं )



आकाश और ( उक्षाणं ) सींचनेवाले मेघ को ( अपचन्त ) पचाते अर्थात् ब्रह्मचर्य विषयक अग्नि होत्राग्नि तपते हैं, वे धर्म ( प्रथमानि ) प्रथम ब्रह्मचर्य संज्ञक ( आसन् ) हुए हैं ॥

( ३ ) म० ग्रिफिथ— I saw from far away the smoke of fuel with spires that rose on high o'er that beneath it. The mighty men have dressed the spotted bullock. These were the customs in the days aforetime.

[ नोट = ( The smoke of fuel ) = arising from burning cow-dung. ( The spotted bullock ) = The Soma. The whole may, perhaps, be a figurative description of the gathering of the rain clouds. ]

( ४ ) म० विल्सन— I behold near ( me ) the smoke of burning cow-dung; I by that all-pervading mean ( effect ), discovered the cause ( fire ); the priests have dressed the soma ox, for such are their first duties.

अर्थात् = “ गोबर की अग्निसे उठा हुआ धूवां मैंने देखा जो ऊपर उठा था । वीरोंने विचित्र बैलको ( अर्थात् सोम औषधिको ) सजाया था, वे रीतियां पहिले समयकी थीं । ”

[ यहां “ उक्षा ” शब्द सोम का वाचक है । और सब मंत्र वृष्टि करनेवाले मेघका वर्णन पर भी माना जा सकता है । ]

( ५ ) म० विटनी का अर्थ— The dung made smoke I saw from far, with the dividing one thus beyond the lower; the heroes cooked a spotted ox; those were the first ordinances.

अर्थात् = “ गोबरसे बने धूमको मैंने दूरसे देखा, जो नीचे वालेके परे भिन्न होता था । वीरोंने बैलको पकाया था, वे पहिलेके धर्मविधि थे । ”

यहां पांच अर्थ दिये हैं, वे एक दूसरेसे भिन्न हैं, परंतु पहिले चार अर्थोंमें जो बैल पकानेकी स्पष्ट बात नहीं थी वह विटनेके पंचम अर्थमें आ गई है । चार

अर्थ लेखक जिस मंत्रमें बैल पकानेकी बात स्पष्टतासे देखते नहीं, उसी मंत्रमें चतुर्थ लेखक बैल पकाने की बू सूंघ रहा है । म० ग्रिफिथ अपने नोट में लिखते ही हैं कि इस मंत्रका “ उक्षा ” शब्द सोमका वाचक है और यह सब मंत्र वृष्टि करनेवाले मेघका अर्थही संभवतः आलंकारिक वर्णन कर रहा होगा । यह म० ग्रिफिथ का कथन कुछ अंशमें पूर्वोक्त दोनों भाष्यकारों के साथ मिलता जुलता है । परंतु म० विटने की बात तो नवीन है ।

उक्षा शब्दका अर्थ सोमर्भा है और बैल भी है, तथा पच धातुका अर्थ पकाना भी है और परिपक्व करना भी है । इस लिये हम यह नहीं कहते कि म० विटनीका अर्थ उन शब्दोंसे निकलही नहीं सकता । हमारा कथन इतनाही है कि इस मंत्रमें बैल पकाने का अर्थ पूर्वापर संबंध से अयुक्त है । ऊपरके यूरोपीयन पंडितों के अर्थोंमें देखने लायक बात हम पाठकों के सन्मुख लाना चाहते हैं वह यह है— म० ग्रिफिथ का ऋग्वेद और अथर्ववेद दोनों का अर्थ प्रकाशित हुआ है । ऋग्वेद पाठ का अर्थ हमने ऊपर दिया है, परंतु येही महाशय अथर्व वेद के इसी मंत्रके अर्थ करनेके समय अपना ऋग्वेद का अर्थ भूल कर बैलवाला अर्थ घुसेड देते हैं, देखिये The heroes cooked and dressed the spotted bullock अर्थात् वीरोंने बैलको पकाया और उसको ठीक किया । अर्थात् यह अर्थ म. विटनीके अर्थ के साथ मिलता जुलता है । यहां यह बात देखनी है कि इन्हीं के इसी मंत्र के ऋग्वेदीय अर्थ में मांसकी स्पष्ट बू नहीं है, परंतु अथर्ववेद के अर्थ में मांस परक अर्थ है । एक ही मंत्रके अर्थ में एकही लेखक कैसा भ्रममें पड सकता है देखिये । वास्तव में ऐसा होना नहीं चाहिये था, परंतु प्रत्यक्ष हुआ है ।

जिस कारण अथर्व वेद के मंत्रके अर्थके विषय में ये दोनों पंडित “ बैल पकाने वाला अर्थ ” करते हैं उस कारण हमें इन मंत्रों का पूर्वापर संबंध देखना चाहिये और इनका अर्थ सत्य है वा नहीं यह बात निश्चित करना चाहिये, इस लिये देखिये पूर्वापर मंत्र



ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ १८ ॥ ऋचः पदं मात्रया कल्पयन्तो-  
र्धर्चेन चाकलृपुर्विश्वमेजत् । त्रिपाद् ब्रह्म पुरुषं वितष्टे तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १९ ॥ विराड् वाग्विराड्पृ-  
थिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः । विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्य भूतं भव्यं वशे स मे भूतं भव्यं वशे कृणातु ॥ २४ ॥ “ शकमयं धूममारा-  
दपश्यं विषूयता पर एनावरेण । उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ २५ ॥ ” त्रयः  
केशिन ऋतुथा विचक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् । विश्वमन्यो अभिचष्टे शर्चाभिर्धार्जिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥ २६ ॥ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद्भिर्वा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ २७ ॥

अथर्व० ९ । १० । मं० १८—२७

विस्तार न हो इसलिये बीचके कुछ मंत्र दिये नहीं हैं, परंतु इन मंत्रोंसे आक्षिप्त मंत्रका पूर्वापर संबंध ठीक प्रकार ज्ञात हो सकता है । इनका अब अर्थ देखिये—

( ऋचः अक्षरे ) मंत्रोंके परम अक्षरोंमें ( विश्वे देवाः ) सब देव ( अधिनिषेदुः ) रहते हैं ( यः तत् न वेद ) जो मनुष्य वह बात नहीं जानता वह मंत्रसे क्या करेगा ? ( ये तत् विदुः ) जो वह बात जानते हैं वे ( समासते ) इकट्ठे होकर विचार करने के लिये बैठते हैं ॥ १८ ॥ वे ( ऋचः पदं ) मंत्रोंके पादोंको मात्राओं के प्रमाणसे माप कर ( अर्धर्चेन ) आधे मंत्रसे उन्होंने ( एजत् विश्वं ) हिलने वाला सब विश्व बताया है । वह बहुत आकार वाला तीन पांवोंसे युक्त ब्रह्म सर्वत्र ( वितष्टे ) फैला है जिससे सब दिशाएं जीवित हैं ॥ १९ ॥ विराट् ही वाणी, पृथिवी, अंतरिक्ष, प्रजापति, मृत्यु है वही साध्य देवोंका अधिराजा है, ( तस्य वशे ) उसी के आधीन भूत भविष्य वर्तमान सब रहता है, वह रूपा करे और मेरे आधीन मेरा भूत भविष्य वर्तमान करे ॥ २४ ॥ शक्तिमान् धूवां मैंने देखा है जो व्यापक होता हुआ इस कनिष्ठसे परे है । वीर लोग सिंचन करने वाली प्रकाशमय

शक्ति को पकाते थे वे मुख्य कर्तव्य थे ॥ २५ ॥ तीन ( केशिनः ) किरणों से युक्त तेजस्वी पदार्थ हैं, ऋतुओं के अनुसार वे प्रकाशते हैं । इनमें से एक वर्षमें बीज डालता है, दूसरा जगतको अपनी शक्तियों से चमकाता है, परंतु तीसरे का वेग ही अनुभवमें आता है, रूप नहीं ॥ २६ ॥ एकही सत्य वस्तुको ज्ञानी लोग विविध नामोंसे वर्णन करते हैं उसी को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण गरुत्मान, यम, मातरिश्वा कहा जाता है ॥ २७ ॥

इन पूर्वापर संबंध के मंत्रों को पाठक देखें और विचारें । तो उनको स्पष्ट पता लग जायगा कि यह अध्यात्मविषय का प्रकरण है और बैल पकानेका यहां कोई संबंध नहीं है । इस २५ वे मंत्रमें बैल पकानेवाला अर्थ माननेपर इस प्रकरण में सजने योग्य कोई अर्थ बन ही नहीं सकता है । इस मंत्रमें जिस शक्तिमान धूवेका वर्णन है वह प्रकृति की अग्निका धूवां है । जो प्रकृतिकी अग्निसे चारों ओर फैलता है और मनुष्योंके आंखोंमें घुसकर उनको अंध बनादेता है । यह धूवां ही अधिक सताता है उतना मूल प्रकृतिका ताप नहीं है । इसलिये यह व्यापक भी है और उरे तथा परेभी है । जो धीर वीर लोग होते हैं वे इस धूवमें भी घुसते हैं परंतु धूवें को घबराते नहीं हैं । इस धूवेंके कष्टको शांत करने के लिये इसके परे रहनेवाली ( उक्षाणं पृश्नि ) सिंचक तेजस्वी शक्ति को अपने अंदर परिपक्व करते हैं अर्थात् अपनी अत्मिक शक्ति को अपरिपक्व रहने नहीं देते । सिंचक शक्तिका अर्थ जीवन देनेवाली तेजोमय आत्मशक्ति ही है । पृश्नि का अर्थ तेजका किरण, प्रकाशशक्ति आदि है, उक्षा का अर्थ सिंचन करनेवाला, भिगोनेवाला, जीवनका जल देनेवाला । ये अर्थ आत्मशक्ति को ही यहां बता रहे हैं । अपने अंदर इस को परिपक्व करना ही मनुष्यका प्रथम धर्म है, अर्थात् मुख्य कर्तव्य है । सताईसवे मंत्रमें कहा है कि एक ही आत्मा के इन्द्रादि अनेक नाम हैं, नामोंका भेद होनेसे मूल सत्य वस्तुमें कोई भेद नहीं होता है । यही एक आत्मतत्त्व पचीसवे मंत्रमें “ पृश्नि उक्षा ” नामसे वर्णित है । सोम भी



इसी आत्माका एक नाम प्रसिद्ध ही है ।

छब्बीसवें मंत्रमें चमकदार तीन पदार्थ हैं ऐसा कहा है । ये तीन पदार्थ दैवी प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा येही तीन हैं, इनमें प्रकृतिका अनुभव जगत में आता है, जीवात्मा का अनुमान हरएक प्राणिमात्रमें होता है, परंतु तीसरे सर्वव्यापक परमात्मा का अनुमान तर्कसे होता है, क्योंकि उसका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता जैसा दूसरोंका होता है ।

इत्यादि वर्णन से ये मंत्र खुल जायेंगे । अब पाठक देख सकते हैं कि क्या इसमें बैल पकाने का संबंध है ? और बैल पकानेवाला अर्थ यहां सजता भी कहा है ? इससे पाठकों के ध्यान में बात अगई होगी कि जो लोग प्रकरणानुकूल अर्थ नहीं देखते वे “ उक्षाणं अपचन्त ” शब्द देख कर बैल पकानेकी बात समझते हैं और अर्थ का अनर्थ करते हैं ।

वेदमें दो सुपर्ण अर्थात् दो पक्षी इस रूपक से भी जीवात्मा परमात्मा का वर्णन है । यह मंत्र ( द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया० । क्र १।१६४।२० तथा अथर्व ९।९ ( १४ ) । २० ) इन पूर्वोक्त मंत्रों के थोड़ा पीछे ही है । यह ऋग्वेदमें और अथर्व वेदमें एक ही प्रकरणमें है । यदि पाठक यह अध्यात्मपरक मंत्र देखेंगे तो उनका निश्चय ही हो जायगा कि यह बैल पकानेवाला मंत्र वास्तवमें अध्यात्मविषयका मंत्र है, और उसमें बैल पकानेका वास्तविक कोई संबंध नहीं है ।

प्रकरणानुकूल मंत्र देखनेका इतना महत्त्व है । श्री० यास्काचार्य जीने भी इसी लिये निरुक्तके प्रारंभमें ही कहा है ( प्रकरणशः एव निर्वक्तव्याः ) मंत्रोंकी व्याख्या प्रकरण के अनुसार ही करनी चाहिये । इस से सिद्ध हुआ कि युरोपीयन लोगोंका अर्थ अत्यंत अशुद्ध है और वह विचार करनेभी योग्य नहीं है । यहां हमने बताया कि भ्रम होने का कारण मंत्रोंका अर्थ प्रकरण के अनुकूल न करना ही है । कोई भी विद्वान यदि मांसपरक अर्थ इस प्रकरण में सजा कर बता सकेगा तो फिर और विचार किया जायगा । परंतु हमारा निश्चय है कि कोई भी विद्वान इस अध्यात्म प्रकरणमें

मांसका अर्थ प्रकरणानुकूल बताही नहीं सकेगा । पाठक भी अपनी स्वतंत्र बुद्धिसे इस प्रकरणमें इस मंत्रको रख कर खूब विचार करें । कोई पक्षपात करने की यहां आवश्यकता नहीं है क्यों कि हमारा पक्ष इतना साफ है कि उसकी सिद्धता करनेके लिये हमें कोई कठिनाता ही नहीं है । एक सत्य परमात्म तत्त्वके इन्द्र अग्नि सोम आदि अनेक नाम होते हैं यह बात सताइसवें मंत्रमें कही है, इसका स्पष्ट तात्पर्य यही है कि नामों का भेद होनेपर भी मुख्य वस्तुमें भेद नहीं होता यह उपदेश करनेके पूर्व जो मंत्र लिखे हैं वे श्रोताओंकी मनको तैयारी करने के लिये लिखे गये हैं । एक ईश्वरवाद का ग्रहण करने योग्य श्रोताओंकी तैयारी करनेके मंत्रोंमें बैल पकानेवाला अर्थ किस प्रकार सज सकता है ? यह पाठक ही देखें ? तात्पर्य भ्रमका कारण प्रकरणकी ओर पूर्ण दुर्लक्ष्य करना ही एक मात्र है ।

### [ ४१ ] पकानेका तात्पर्य ।

इस मंत्रमें “ अपचन्त ” शब्द है । यह शब्द पाठकों को भ्रममें डाल सकता है क्यों कि इसका अर्थ “ पकाया ” है । पकानेका स्पष्ट अर्थ चूलेपर हंडी रखकर उसमें पकाना सब जानते हैं, परंतु यदि पाठक इसका अधिक विचार करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि यह व्यक्त अर्थ रहते हुए भी इसका सूक्ष्म अर्थ और ही है देखिये—

“ तप ” शब्द भी तपाने के अर्थमें प्रयोग होता परंतु “ तप ” शब्दके का अध्यात्म शास्त्रमें कितना व्यापक अर्थ हुआ है, यह पाठक जानते हैं । वह “ तप ” करता है, इसका तात्पर्य “ वह आग पर कोई चीज तपाता है ” यह नहीं लिया जाता, परंतु वह अपनी आत्म उन्नति करनेके लिये विशेष धर्मनियमोंका आचरण करता है, यह “ तप ” शब्दका अर्थ सब लेते हैं । वास्तविक मूल अर्थ “ आगपर रखकर सेक देना ” इतना ही तप शब्दमें है, परंतु वेद और उपनिषद में इस शब्दका “ आत्मोन्नतिके नियम पालन करना ” यह अर्थ रूढ हुआ है, पाठक शब्दके इस अर्थका ख्याल मनमें रखेंगे, तो उनको “ पच ” धातुके अर्थका भी पता लग जायगा ।



जीवात्मा शरीरमें है उसको ब्रह्मचर्य पालनादि सुनियमोंकी अग्निपर तपाकर विशेष शक्तिसे युक्त किया जाता है--

अतस्तत्तनूर्न तदामो अश्रुते ॥ क्र० ९ । ८३ । १

“ जिसके शरीरसे तपाचरण नहीं हुआ, वह उस आत्मिक सुख को प्राप्त नहीं कर सकता । ” यह वेदका उपदेश तपाचरण के महत्त्वका वर्णन कर रहा है । मूल मंत्रके शब्दों का केवल शब्दार्थही देखा जाय तो ऐसा है- “ जिसका शरीर तपा नहीं वह उस सुख को खा नहीं सकता । ” यह शब्दार्थ ही लेकर कई लोग शरीर को सूर्य प्रकाशमें तपाते हैं और कई दूसरे धातुकी मुद्राएं तपाकर शरीर पर धारण करते हैं । परंतु यह मंत्रका आशय नहीं है । मंत्रका “ तप ” शब्द ब्रह्मचर्यादि सुनियमोंके आचरण का भाव बताता है, इससे भिन्न अन्य अर्थ अशुद्ध हैं । इसी प्रकार यहां “ पच ” धातुका अर्थ केवल चूले पर हंडी रखकर पकाना नहीं है परंतु यहां आध्यात्मिक शक्तिको परिपक्व करना है ।

शरीररूपी हंडीमें जीवात्मा रूपी स्वादु रस (सोम-उक्षा) रखा है, यह हंडी सत्वरजतम रूपी जगत्के पथरोंपर रखी है और नीचे से परमात्माग्नि की उष्णता दी गई है । इस प्रकार यहां बहुत मीठा पाक हो रहा है । यह आध्यात्मिक पकाना यहां है । पूर्वोक्त मंत्रमें पाठक यह अर्थ देखें-

“ मैंने धूवां देखा और उससे अग्निका अनुमान किया जिस पर वीर सोम को पका रहे थे, वे पहिले कर्तव्य थे । ”

धूवेंसे जैसा अग्निका अनुमान होता है उसी प्रकार जगत् के कार्य देख कर परमात्माग्निका अनुमान किया जाता है । उसी अग्निपर आत्मा को परिपक्व करनेका अनुष्ठान धीरे लोच करते हैं, येही मुख्य कर्तव्य हैं । पाठक इस स्थानपर उक्त अलंकार देखें और वेदका आध्यात्मिक उपदेश ग्रहण करें । यहां यह आश्चर्य प्रतीत होता है कि इतना उत्तम अर्थ होते हुए उसको यूरोपीयन लोगोंने कितना बिघाडा है ? इससे अर्थका अनर्थ तो और कितना हो सकता है ? अस्तु अब “ पच ” धातुका प्रयोग

देखिये-

१ सस्यमिव मर्त्यः पच्यते ॥ कठ उ० १ । ६

२ यश्च स्वभावं पचति । श्वे० उ० ५ । ५

३ अन्नेनाभिषिक्ताः पचन्तीमे प्राणाः ॥

मैत्री उ० ६ । १२

४ कालः पचति भूतानि ...महात्मनि

“ मैत्री ६ । १५

“ ( १ ) फलके समान मर्त्य मनुष्य पकाया जाता है, ( २ ) जो स्वभाव पकाता है, ( ३ ) अन्नके द्वारा अभिषिक्त हुए ये प्राण पकाते हैं, ( ४ ) काल पकाता है भूतों को... परमात्मामें । ”

ये “ पच ” धातुके उपनिषदों में प्रयोग देखनेसे पाठकोंको पता लग जायगा कि पच धातु का आध्यात्मिक उन्नतिके विषयमें भी तात्पर्य है । इस पच धातुका अर्थ कोशों में यह दिया है-to cook, to ripen, to develop ( पकाना, पक्व करना, बढ़ाना या उन्नत करना ) अर्थात् पकानेके सिवाय दूसरे भी अर्थ कोशों में हैं और वे दूसरे अर्थ आत्मोन्नतिमें भी लग सकते हैं ।

इस से स्पष्ट हुआ कि “ पच ” धातु का प्रयोग होनेपर भी केवल पकानेका ही भाव लेनेकी आवश्यकता नहीं है । जिस प्रकार “ तप् ” धातुका अर्थ तपाना होता हुआ भी उसका तात्पर्य अध्यात्म में सुनियमों का पालन आदि लिया जाता है, उसी प्रकार “ पच ” धातुका अर्थ पकाना होता हुआ भी इस का आध्यात्मिक तात्पर्य आत्मशक्ति की उन्नति करना, आत्मशक्ति का विकास करना, आत्मशक्तिको ( develop ) बढ़ाना आदि प्रकार होता है । इस शब्द के प्रयोग भी देखिये-

१ अन्न पक्व हुआ, २ फल पक्व हुआ, ३ कर्म परिपक्व हुआ, ४ बुद्धि परिपक्व हुई, ५ आत्मा परिपक्व हुआ, इत्यादि वाक्योंमें एक ही “ पच ” धातु के प्रयोग हैं, परंतु भौतिक और अभौतिक प्रसंगों के अनुसार उनके अर्थ भिन्न हैं । इतना पच धातुके अर्थ के विषयमें लिखना पर्याप्त है । इस से पूर्व उपनिषदों के वचन भी दिये हैं जिनमें पच



धातुका प्रयोग अध्यात्म उन्नति दर्शाने के लिये किया गया है। ये सब प्रयोग देखनेसे इसके अध्यात्मिक अर्थ के विषयमें किसी को शंका नहीं हो सकती।

अब “ उक्षा ” शब्द का विचार करना चाहिये । उक्षा शब्द का अर्थ सोम श्री० सायणाचार्य करते हैं और कई यूरोपीयनों ने भी यह अर्थ माना है। उक्षा और सोम ये पर्याय शब्द हैं इसमें किसीको भी संदेह नहीं हो सकता। पूर्वोक्त मंत्रों में उक्षा, सोम, इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, गरुड, सुपर्ण आदि सब नाम उसी एक अद्वितीय सद्बस्तुके हैं यह बताया ही है। जितने भी देवतावाचक विशेष नाम वेद में आये हैं वे सब उसी आत्मतत्त्वके वाचक होने में संदेह ही नहीं है, आत्मा के आत्मा और परमात्मा ये भेद हैं परंतु दोनों में आत्मा शब्द समान ही है इसी प्रकार अन्य भी प्रयोग हैं —

आत्मा	परमात्मा
ब्रह्म	परब्रह्म
”	ज्येष्ठ ”
”	श्रेष्ठ ”
इन्द्र	महेन्द्र
देव	महादेव

इस प्रकार प्रयोग छोटे आत्मा और बड़े आत्माके वाचक हैं, परंतु छोटा और बड़ापन विचार में न लाया तो दोनों स्थानपर एकही शब्द लगता है। इसलिये सद्बस्तुके वाचक जितने भी शब्द हैं वे जैसे अन्य पदार्थों के वाचक होते हैं उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा के भी वाचक हैं। जीवात्मा छोटी शक्तिवाला और परमात्मा बड़ी शक्तिवाला है, परंतु शक्तियां बड़ी हों या छोटी हों दोनों स्थानोंमें समान हैं।

सोम शब्द सोमवल्ली, चंद्र, वनस्पति आदिका वाचक होता हुआ भी आत्मा परमात्मा का वाचक है, इन्द्र शब्द विद्युत का वाचक होता हुआ भी आत्मा परमात्मा का वाचक, अग्नि शब्द आगका वाचक होता हुआ भी आत्मा परमात्मा का वाचक है, इसी प्रकार उक्षा अथवा वृषभ या ऋषभ ये शब्द बैल

तथा वनस्पति के वाचक होते हुए भी आत्मा परमात्मा के वाचक हैं। अर्थात् इस प्रकार के देवता-वाचक सब शब्द उनके व्यक्त अर्थोंके वाचक होते हुए भी आत्मा परमात्माके वाचक हैं। यह वेद की परिभाषा जिनके मनमें ठीक प्रकार नहीं आती उनको अर्थका भ्रम होता है। ये अर्थके भ्रम होनेके कारण हैं। पाठक इन कारणोंका खूब विचार करें। अब “ उक्षाणं अपचन्त ” (बैल पकाया) इस मंत्र भाग का अर्थ वेदका प्रकरण देखिये—

१ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिप-  
स्वजाते । तयोऽन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो  
अभिचाकशीति ॥ २० ॥

२ यक्षिमवृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते  
चाधिविश्वे । तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्वत्ते  
तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २१ ॥

३ यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भक्षमनिमेषं विदथाभिः  
स्वरन्ति । एना विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा  
धोरः पाकमत्रा विवेश ॥ २२ ॥

अथर्व. ९।९।१४

४ अनच्छये तुरगात् जीवमेजद ध्रुवं मध्य आपस्त्या-  
नाम् । जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना  
सयोनिः ॥ ८ ॥

५ ऋचो अक्षरे परमे व्योमस्मिन् देवा अधि-  
विश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद किमुच्चा करिष्यति य  
इत्तद्विदुस्त अमी समासते ॥ १८ ॥

६ विराड् वाग्विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट्  
प्रजापतिः । विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव  
तस्य भूतं भव्यं वशे स मे भूतं भव्यं वशे  
कृणोतु ॥ २४ ॥

७ शकमयं धूममारादपश्यं विपूवता पर एनाश्वरेण।  
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथ-  
मान्यासन् ॥ २५ ॥

८ त्रयः केशिन ऋतुथा विचक्षते संवत्सरे वपत  
एक एषाम् । विश्वमन्योऽभिचष्टे शचीभिर्ग्राजिरे-  
कस्य ददशे न रूपम् ॥ २६ ॥

९ चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा



ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नैगयन्ति तुरीयं  
वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ २७ ॥  
१० इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो  
गरुत्मान् । एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं  
मातरिश्वानमाहुः ॥ २८ ॥

अथर्व० १।१०।१५

अब इनका क्रमपूर्वक अर्थ देखिये—

(१) (सयुजा सखाया) समान मैत्री धारण करनेवाले (द्रा सुपर्णा) दोन गरुड पक्षी अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा (समानं वृक्षं परिषस्व-जाते) एक ही वृक्षपर अर्थात् प्रकृतिके संसार वृक्षपर बैठे हैं (तयोः अन्यः स्वाद् पिप्पलं अन्ति) उनमेंसे एक अर्थात् जीवात्मा इस वृक्षका मधुर फल खाता है, परंतु (अन्यः) दूसरा अर्थात् परमात्मा (अनश्नन् अभिचाकशीति) कुछ भी न खाता हुआ केवल प्रकाशता है या देखता रहता है । [ यह मंत्र उपनिषदों में भी लिया है श्वेताश्व० ४।६, मुंडक० ३।१।१ इस कारण इसके अध्यात्म विषयक होने में शंका ही नहीं है ॥ २० ॥

(२) (यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णाः निविशन्ते) जिस प्रकृतिके संसार वृक्षपर मीठा फल खाने वाले उत्तम पंखवाले पक्षी अर्थात् जीवात्मा निवास करते हैं और (विश्वे अधि सुवते) सब प्रजा भी उत्पन्न करते हैं, (यत् तस्य अग्रे स्वाद् पिप्पलं आहुः) जो उस संसार वृक्षके अंतिम भागमें मीठा फल है ऐसा कहा जाता है (तत् न उन्नशत्) वह फल उसके लिये नहीं प्राप्त होता है, कि (यः पितरं न वेद) जो परमपिता परमात्माको नहीं जानता ॥ २१ ॥  
(३) (यत्र) जिस संसार वृक्षपर बैठे हुए (सुपर्णाः) अनंत पक्षी अर्थात् अनंत जीवात्मा गण (विदथा) परस्पर विचार करके (अ-निमेषं) बीचमें समय न छोड़ते हुए (अमृतस्य भक्षं अभि स्वरन्ति) अमृतके अन्नके भोग के लिये आवाज उठाते हैं, अर्थात् उसकी प्राप्तिके लिये ही शब्द करते हैं, (विश्वस्य भुवनस्य एना स धीरः गोपाः) सब भुवनों का वह ज्ञानी सबका पालक परमात्मा (अत्र मा पाकं आविवेश) यहां मुझ परिपक्व होने-वालेके जीवात्मा में प्रविष्ट होकर रहा है ॥ २२ ॥

[ इस मंत्रमें (मां पाकं) ये शब्द बड़े महत्त्व पूर्ण है “मां” शब्द “मैं जीवात्मा” इस अर्थका द्योतक है और “पाकं” शब्द “पकने वाला, परिपक्व होने वाला, जिसको पकाकर परिपक्व बनाना है, अथवा जो पकाया जा रहा है, जो अपरिपक्व है, परंतु पकाकर परिपक्व होनेवाला है । ”

“इस अर्थमें आया है । पाठक यह शब्द स्मरण रखें, क्योंकि इसीका पाक होनेवाला है, इसीको आगे पकाया जायगा, इसी जीवात्मा को पकानेके बतन में रख कर आगे पकाया जायगा । ]

(४) (पस्त्यानां मध्ये) प्राणियों के शरीरों के मध्यमें (अनत्) प्राण धारण करनेवाला, (तुर-गात्) चलनचलन करनेवाला, (जीवं) जीवन-शक्तिसंयुक्त, (एजत्) हलचल करनेवाला परंतु (ध्रुवं) अचल स्थिर, इन गुणोंसे युक्त आत्मा (आशये) रहा है । यह जीवात्मा (मर्त्येन सयोनिः) मर्त्य शरीरके साथ समान योनिमें उत्पन्न होने पर भी (अ-मर्त्यः) मरण धर्म से रहित है, यह (मृतस्य जीवः स्वधाभिः चरति) मृत प्राणीका जीव मृत्यु के पश्चात् अपनी धारकशक्ति के साथ आकाश में भ्रमण करता है ॥ ८ ॥

[ यहां जीवात्मा का वर्णन पाठक देखें, यह संसार में जन्ममरण के चक्रमें घूमनेवाले जीवात्मा का वर्णन स्पष्ट है । ]

(५) (यस्मिन् ऋचः परमे अक्षरे व्योमन्) जिन मंत्रोंके श्रेष्ठ अक्षरों के अंदर (विश्वे देवाः अधि निषंदुः) सब देव निवास करते हैं, (यः तत् न वेद) जो यह गृह्य बात नहीं जानता वह अज्ञानी मनुष्य (ऋचा किं करिष्यति) मंत्र लेकर क्या करेगा ? (ये इत् तत् विदुः) जो निश्चय से उस बातको जानते हैं (अमी ते समासते) वे इकट्ठे होकर रह सकते हैं ॥ १८ ॥

इस में मंत्र के गृह्य ज्ञान के जाननेका महत्त्व वर्णन किया है इस ज्ञानसे ही मनुष्य की शक्ति विकसित हो सकती है । ]

(६) वाक्, पृथ्वी, अंतरिक्ष, प्रजापति, मृत्यु साध्य देवोंका अधिराज विराट् ही है, उसके (वशे) आधीन भूत भविष्य वर्तमान है, उसकी कृपासे (मे



वशे ) मेरे आधीन अपना भूत भविष्य वर्तमान होवे ॥ २४ ॥

[ व्यक्तिके अंदर विराट् ( आत्मिक तेज ) की शक्ति वाक् रूपसे है और वही शक्ति ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, उस शक्तिके आधीन सब कुछ है, इसलिये मेरी शक्ति धर्मानुष्ठानसे बढ़े और मेरा अधिकार भी जितना हो सकता है उतना विस्तृत होवे। अर्थात् मैं मनुष्य जो इस समय अपरिपक्व अवस्था में हूँ वह परिपक्व बनकर अधिक समर्थ होऊँ। मैं अल्पज्ञ मनुष्य जो दैव के बलसे इधर उधर घुमाया जाता हूँ वह मैं अपनी शक्तिसे चलफिर सकूँ। यह इच्छा इस मंत्रमें की है। इसमें अपरिपक्व अवस्था से परिपक्व दशामें पहुँचनेकी उत्कट इच्छा दीखती है। इसकी परिपक्वता जिस प्रकारके पकाने से होगी वह पकानेकी रीति आगेके मंत्रमें देखिये- ]

( ७ ) ( आरात् शकमयं धूमं अपश्यं ) दूरसे मैंने शक्तिमान् धूँवको देखा ( एना विषूयता अवरेण ) इस व्यापक साधारण चिन्हके देखनेसे मैंने ( परः ) श्रेष्ठ आग्नेय शक्तिको जान लिया। इस श्रेष्ठ अग्निपर ( वीराः उक्षाणं पृश्नि अपचन्त ) वीर लोग शक्तिवाले बेल अर्थात् शक्ति देनेवाले आत्माको परिपक्व बनाते हैं, या पकाते हैं ( तानि धर्माणि प्रथमानि आसन् ) येही धर्मविधि मुख्य हैं ॥ २५ ॥

[ धूम देखनेसे उस धूमके मूलमें अग्नि निःसंदेह है यह कल्पना दूरसे भी हो जाती है। इसी प्रकार प्रकृतिसे जगत् रूपी यह विशाल और व्यापक धूँवाँ निकल रहा है जो हमारे आँखोंमें जाकर हमें अंध बना रहा है। जो ज्ञानी लोग हैं ये दूरसे ही इस धूँवको देख कर इसकी जड़में एक शक्तिमान् अग्नि अर्थात् परम आत्मा निःसंदेह है ऐसा अनुमान निश्चित करते हैं। यद्यपि परमात्मा नहीं दिखाई देता, तथापि जगत् के कार्य को देखकर उसके मूल कारण के स्थानपर एक अद्भुत शक्तिवाली चेतन-शक्ति अवश्य चाहिये ऐसा निश्चय हो जाता है। यही परमात्मा है। इसी परमात्माकी आगपर वीर लोग इस जीवात्मरूपी पकाने योग्य, परिपक्व करने योग्य पदार्थ को पकाते हैं। मनुष्यकी उन्नति के लिये जो योग्य और प्रधान धर्म हैं वे येही हैं अर्थात् मनुष्य

को इन ही धर्मोंका पालन करना अत्यंत आवश्यक है ]

( ८ ) ( केशिनः त्रयः ऋतुथा विचक्षते ) तेजस्वी किरणोंवाले तीन पदार्थ हैं जो ऋतुओंके अनुसार चमकते हैं ( एषां एकः ) इन तीनोंमेंसे एक ( संवत्सरे वपते ) यज्ञमें बीज डालता है, ( अन्यः शचीभिः विश्वं अभिचष्टे ) दूसरा अपनी शक्तियोंसे विश्वको देखता है, परंतु ( एकस्य ध्राजिः ददृशे, रूपं न ) एक की केवल गति ही दिखाई देती है उसका रूप नहीं दिखाई देता ॥ २६ ॥

[ चमक वाले तीन पदार्थ हैं एक दैवी तेजस्विनी प्रकृति, दूसरा बढ़नेकी शक्तिसे युक्त तेजस्वी जीवात्मा और तीसरा महाशक्ति शाली तेजस्वी परमात्मा। प्रकृतीकी चमक दमक सृष्टिमें चारों ओर सबको दिखाई देती है, हरएक इसका अनुभव कर सकता है। कई ज्ञानी लोग जीवात्माको अनुभव करते हैं, क्योंकि “मैं हूँ” इस अनुभव से हरएक को इसका अनुभव होता है। यह देखनेवाला स्वयंही है। परंतु इस प्रकार परमात्माका रूप नहीं दिखाई देता, उसकी केवल गतिसे यह चल रहा है इसका अनुभव होता है, परंतु उसका रूप कैसा है यह समझना अति कठिन है ]

( ९ ) ( वाक् चत्वारि पदानि परिमिता ) वाणी चार पदोंसे परिमित है ( ये मनीषिणः ब्राह्मणाः ते तानि विदुः ) जो ज्ञानी मननशील विद्वान् हैं वेही उन चार पदोंको जानते हैं। इन चार पदोंमेंसे ( शीणि गुहा निहिता न इंगयन्ति ) तीन पदा हृदयमें गुप्त रखे हैं वे प्रकट नहीं हैं परंतु ( मनुष्याः तुरीयं वाचः वदन्ति ) मनुष्य चतुर्थ अवस्था की वाणीको ही बोलते हैं ॥ २७ ॥

[ इस मंत्रमें आत्माकी शक्ति वाणीमें परिणत होती है इसलिये वाणीका मूल आत्मामें देखना चाहिये यह उपदेश किया है। वाणीके चार रूप होते हैं, नाभि, हृदय, कंठ और मुख इन चार स्थानों में वाणी प्रकट होती है। पहिले तीन स्थानों में होने वाला नाद ब्रह्मज्ञानी समझ सकते हैं, परंतु मुखसे उच्चारण शब्द सब लोग जमझ सकते हैं। यद्यपि पहिले तीन स्थान का शब्द सब लोग नहीं समझ



सकते तथापि वह है क्यों कि वह ज्ञानी मनुष्योंके अनुभवमें आता है । इस प्रकार वाणीमें आत्माका स्फुरण देखनेसे वाणीके द्वारा आत्माकी शक्ति प्रकट हो रही है इस बातका अनुभव होगा और मैं आत्मस्वरूप हूं इस बातका पता लग जायगा । ]

( १० ) एकही सत्य आत्माको ज्ञानी लोग अनेक नामोंसे पुकारते हैं, उसीको इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य सुपर्ण, गरुत्मान्, यम, मातरिश्वा आदि कहते हैं ॥ २८ ॥

[ इस मंत्रमें न कहे हुए शब्द भी आत्माके वाचक हैं यह आशय यहां है, सोम, चंद्र, रुद्र, वृषभ, उक्षा, ऋषभ आदि अनेक शब्द हैं कि जो उसी अद्वितीय आत्माके वाचक वेद में आये हैं । ]

पाठक यहां देखें कि “ उक्षाणं अपचन्त ” का अर्थ प्रकरणके अनुकूल किस प्रकार होता है । परंतु युरोपीयनोंका किया हुआ अर्थ यदि यहां लिया जाय तो वह इस आत्मोन्नतिके प्रकरणमें बैठता ही नहीं है । भारतीय भाष्यकारोंमेंसे किसीनेभी युरोपीयनोंके अर्थोंकी पुष्टि नहीं की है । बैलवाचक जहां शब्द आजाय वहां युरोपीयनोंको दूसरा तीसरा कुछ भी सूझताही नहीं है एक मांस काटना पकाना और खाना, यही कल्पना युरोपीयनों के सन्मुख खड़ी हो जाती है । अर्थ करनेके समय प्रकरणानुकूल अर्थ करना भी आवश्यक है, यह सर्वमान्य बात भी जब ये लोग मन घडंत अर्थ करनेके समय भूल जाते हैं तब आश्चर्य ही होता है । इसलिये युरोपीयनोंके अर्थों को स्वीकार करने वाले भारतीय विद्वानोंको ये अर्थ के अनर्थ देख कर बड़ा सावधान होना चाहिये । अब कई पाठकों को “ वृषभ ” शब्द के अर्थके विषयमें शंका हो सकती है इसलिये इस शब्द के वेद में अर्थ किस प्रकार होते हैं यह यहां देखना आवश्यक है, इस कारण इस शब्दका अर्थ बताते हैं—

[ ४२ ] “ वृषभ ” का अर्थ ।

संस्कृत भाषामें “ वृषभ ” शब्द का अर्थ बैल है यह बात सब जानते ही हैं, परंतु वेद में केवल यही एक अर्थ नहीं है । वृषभ, ऋषभ आदि शब्द वेद में

विलक्षण अर्थ से प्रयुक्त होता है, यह विषय अत्यंत महत्त्व का होने के कारण यहां इसका थोडासा विस्तार करनेकी आवश्यकता है, पहिले कई उदाहरण देखिये —

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त-  
हस्तासो अस्य । त्रिधा बद्धो वृषभो  
रोरवीति महोदेवो मर्त्या आ विवेश ॥

ऋ० ४ । ५८ । ३

“चार सींगवाला, तीन पांव वाला, दो सीरवाला तथा सात हाथों से युक्त महादेव वृषभ तीन स्थानों में बंधा हुआ शब्द करता है वह मर्त्या में प्रविष्ट होवे ।”

यहां वृषभ शब्द का अर्थ बैल नहीं है परंतु “शब्द ” है यह सब भाष्यकार मानते हैं । यहां बैल अर्थ लेनेसे कुछ तात्पर्य निकलेगा ही नहीं क्यों कि चार सींगवाला बैल होता ही नहीं । यहां के चार सींग व्याकरणके शब्द के चार विभाग—‘ नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात ’ हैं तथा सात हाथ ‘ शब्दकी सात विभक्तियां हैं । ’ अन्य सब अलंकार यहां खोलनेकी आवश्यकता नहीं है क्यों कि वैसा करने से विषय बढ जायगा । अब और मंत्र देखिये—

वि हि त्वामिन्द्र पुरुधा जनासो हितप्रयसा  
वृषभ ह्वयन्ते ।

ऋ० १० । ११२ । ७

हे इन्द्र! हे ( वृषभ ) बलवान्! सब लोग हितके लिये कार्य करते हुए तेरी ही ( त्वां वि ह्वयन्ते ) प्रार्थना करते हैं ।

इस मंत्रमें वृषभ शब्द इन्द्र देवताके लिये प्रयुक्त हुआ है, इसी प्रकार अग्नि, सोम आदि देवताओं के लिये भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है । ऐसे प्रसंगों में इसका अर्थ ‘ बल बढानेवाला ’ है न की बैल । सोम के लिये वृषभ शब्दका प्रयोग देखिये—

त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता  
विधावसि । स नः पवस्व वसुमद्विरण्यवद्वयं  
स्याम भुवनेषु जीवसे ॥

ऋ. ९ । ८६ । ३८



हे सोम! हे ( पवमान वृषभ ) शुद्ध करनेवाले पवित्र वृषभ अर्थात् शक्तिदायक सोम ! तुझे सब प्रकार से लोग चाहते हैं । वह तू धन और सुवर्ण के साथ हमें पवित्र करो । हम जगत् में दीर्घायु हों ।

इस मंत्र में वृषभ शब्द सोम के अर्थ में प्रयुक्त है, यहां भी इसका अर्थ “ बलवर्धक ” ही है । निम्न लिखित मंत्र में वृषभ शब्दका अर्थ “ तरुण बलवान पति ” है देखिये ।

उप बर्बृहि वृषभाय बाहुं  
अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥

ऋ. १० । १० । १०

“ हे बहन ! तू अपना ( बाहुं ) हाथ किसी दूसरे ( वृषभाय ) बलवान तरुणपति के लिये ( उप बर्बृहि ) सिरोने के लिये आगेकर । हे ( सुभगे ) स्त्री ! मुझसे भिन्न किसी अन्य पति की इच्छा कर ॥ ” इसका अर्थ म० ग्रिफिथ ऐसा अर्थ करते हैं—  
Not me, O fair one, seek another husband and make thine arm a pillow for thy consort. इस मंत्रमें “ वृषभ ” का अर्थ पति ही ये लोग भी करते हैं, यहां यदि ये लोग बैल अर्थ करेंगे तो “ प्राचीन मानव स्त्रियां बैल के साथ शादी करती थी, ” यह अनुमान किया जा सकेगा, परंतु यह इन्होंने किया नहीं है यह हमारे ऊपर इनकी बड़ी कृपा है । दोनों मंत्रभाग यहां देखिये—

( १ ) उक्षाणं अपचन्त ( ऋ. १।१६४।४३ ) = बैल पकाया, ( आत्माको परिपक्व बनानेका अनुष्ठान किया ) ।

( २ ) सुभगे! वृषभाय बाहुं उपबर्बृहि ऋ. १०।१०।१० = हे सुदंर स्त्री ! तू अपने हाथका बैल के लिये सिरोना कर, । ( हे स्त्री ! तू शक्तिमान तरुण पुरुषके लिये अपने हाथ का सिरोना कर । )

ये दो मंत्र देखने से पाठकों को पता लग सकता है कि बैलवाचक वैदिक शब्दों का केवल बैल ही अर्थ किया जाय तो कितना अर्थका अनर्थ हो सकता है । इस विवाह प्रकरण में पतिको ही यह बैलवाचक वृषभ शब्द लगाया है । यदि प्रकरणानुकूल अर्थ न

देखा जाय, तो अनर्थ होने का कोई ठिकाना नहीं रहेगा । प्रकरणानुकूल शब्दार्थ करनेकी आवश्यकता सिद्ध करनेके लिये इससे अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है । इस प्रकार वृषभ शब्द का अर्थ देखनेके पश्चात् अब हम “ उक्षा ” शब्द का अर्थ देखते हैं—

[ ४३ ] उक्षा शब्दका अर्थ ।

संस्कृत भाषामें उक्षा शब्दका भी बैल अर्थ है, परंतु वेदमें यह शब्द अनेक विलक्षण अर्थोंमें आता है, उनमें से कुछ अर्थ नमूनेके तौर पर देखिये—  
अरुरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा विभर्ति  
भुवनानि वाजयुः ॥ ऋ० १ । ८३ । ३

( अग्रियः पृश्निः उक्षा ) पहिला तेजस्वी बैल ( उषसः अरुरुचत् ) उषाओं को चमकाता रहा । यह ( उक्षा वाजयुः भुवनानि विभर्ति ) बैल बल देता हुआ सब भुवनों को धारण करता है ।

इसमें “ उक्षा ( बैल ) ” शब्द सूर्य तथा परमात्मा का वाचक है तथा और देखिये —

नैतावदेना परो अन्यदस्ति

उक्षास द्यावापृथिवी विभर्ति ॥ ऋ० १० । ३१ । ८

( एना एतावत् न ) यह इतनाही नहीं है ( अन्यत् परः अस्ति ) दूसरा परे बहुत है । ( उक्षासः द्यावा पृथिवी विभर्ति ) बैल द्युलोक और पृथिका धारण करता है ।

इस मंत्रका भी “ उक्षा ( बैल ) ” शब्द सूर्य तथा परमात्माका वाचक है । मंत्रके प्रारंभ में जो “ दिखाई देनेवाला उतनाही विश्व नहीं है, परंतु उससे परे अदृश्य बहुत ही विश्व है ” ऐसा कहा है वह विशेष विचार करने योग्य है । इन मंत्रों को देखने से कई अल्पज्ञ मनुष्य कहते हैं कि वैदिक सिद्धांत के अनुसार “ बैलके सींगपर सब जगत् ठहरा है, ” परंतु यह वे इस लिये कहते हैं कि उक्षा शब्दके सूर्य तथा परमात्मा ये अर्थ होते हैं यह बात उनको मालूम नहीं है । अतः उनके अज्ञानका ही यह प्रभाव है । ऊपरके मंत्रमें “ उक्षाने उषाका प्रकाश किया ” यह जो कथन है, वह निःसंदेह



सूर्य का सूचक है जो यह नहीं समझेंगे उनके लिये अनर्थ करनेकी खुली आज्ञा है। और देखिये —

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।

ऋ. १ । १०५ । १०

“जो ये पांच उक्षा(वैल)महान् द्युलोक के मध्यमें ठहरे हैं।” यहां भी उक्षा शब्दका अर्थ वैल नहीं है, क्योंकि कोई वैल द्युलोक के मध्यमें ठहर नहीं सकता। यहाँ उक्षा शब्द नक्षत्र वाचक है जो पांच तारे एक स्थानपर आकाशमें दिखाई देते हैं उनकावाचक यह शब्द यहां है। क्या इससे ऐसा अनुमान हो सकता है कि वैदिक समयमें वैल आकाशमें उड़ते थे? यदि नहीं तो यहां उक्षा शब्दका अर्थ वैल नहीं है, परंतु कोई पदार्थ जो कि आकाशमें दिखाई देता है। उक्षा शब्द का अर्थ वायु तथा प्राण भी है देखिये—

इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसोऽन्तर्नदी

ते पतयन्त्युक्ष्णो महि ब्राधन्त उक्ष्णः ॥ ऋ० १ । १३५ । ९

हे वायो! जो तेरे ( उक्ष्णः ) वैल अर्थात् प्राण तथा वायुके वेग ( अन्तः नदी ) तेरे प्रवाह के अंदर ( सुपतयन्ति ) गिरते हैं या बहते हैं और ये ( उक्ष्णः ) वैल अर्थात् प्राण ( महि ब्राधन्तः ) बड़े शक्तिशाली होते हैं ।

इस मंत्रका उक्षा शब्द वैल वाचक नहीं है, परंतु वायुके प्रवाह तथा प्राण के प्रवाह का वाचक है। म० त्रिफिथ भी यहां The Bulls=Blasts of wind अर्थात् यहां का वैल वाचक उक्षा शब्द वायुके वेगों का वाचक है ऐसा कहते हैं। और वह ठीक ही है। तथा और देखिये—

ऋ० ३ । ७ । ६

उक्षा हि यत्र परिधानमत्तोरनुस्वं धाम जरितुर्ववक्षः॥

“ उक्षा जहां ( अक्तोः परिधानं स्वं धाम ) अंधकारका नाशक अपना प्रकाशमयस्थान ( जरितुर्ववक्षः ) उपासक के पास करता है । ”

यहां अंधकार का नाश करनेवाला उक्षा सूर्य समझिये अथवा अज्ञानान्धकार का नाशक परमात्मा समझिये परंतु यहां उक्षा शब्दका अर्थ वैल नहीं हो सकता, इतनी बात सत्य है। इस उक्षा शब्दके विषयमें म. त्रिफिथ क्या कहते हैं देखिये— “ उक्षा ” Bull, the strong God who protects his worshiper अर्थात् “ यहां का वैलवाचक उक्षा शब्द

उपासककी रक्षा करनेवाला सर्वशक्तिमान परमेश्वर का वाचक है । ” उक्षा सोम आदि शब्द परमात्माके वाचक हैं यह बात इससे पूर्व हमने बता दी है, तथा यह भी बताया है कि जो नाम परमेश्वरके वाचक हैं वे जीवात्माके भी वाचक हैं। इससे उक्षा शब्द के जीवात्मा परमात्माके वाचक होने में किसीको शंका नहीं हो सकती ।

यदि “ उक्षा, वृषभ, ऋषभ ” आदि वैलवाचक शब्दोंके ऐसे आध्यात्मिक अर्थ होते हैं यह बात सर्वमान्य है तो फिर किसी के सामने “ उक्षाणं अपचन्त ” शब्द आये तो पूर्वापर संबंध न देखकर ही वैल पकानेका भाव निकालनेका किसको कैसा अधिकार पहुंच सकता है? परमात्मा परिपूर्ण है और उसकी उपासना करने द्वारा जीवात्मा पूर्ण होने की तैयारीमें है, इसलिये इस जीवात्माकी पूर्णता करनेके उपाय विविध अलंकारोंसे वेद में बताये हैं, उसमें “ देहरूपी हंडीमें इस जीवात्माको पका कर परिपक्व बनानेकी ” भी एक आलंकारिक उपमा है। यह उपमा इतनी अर्थपूर्ण है कि जिस समय यह मनके सन्मुख ठीक प्रकार खड़ी हो जाती उस समय मन आश्चर्यचकित हो जाता है। वेद में केवल यही एक उपमा नहीं है, सैंकड़ों अन्य उपमाएँ हैं और कईयोंमें स्पष्ट बातका उल्लेख है और कईयोंमें इसी प्रकार गुप्त उपदेश है।

अब पाठक पूछेंगे कि ऐसी उपमाएं और ऐसे अलंकार वेद में क्यों आये हैं? उत्तरमें निवेदन है कि यह कोई अस्वाभाविक अलंकार नहीं है। वेद में शब्दोंके यौगिक अर्थ प्रधान होते हैं इसलिये केवल रूढ़ अर्थ को लेकर वेद पढ़ने वाले ही इस प्रकार भ्रममें पड़ते हैं, परंतु जो लोग यौगिक अर्थ लेते हैं वे सुगमता से वेदका अर्थ समझ सकते हैं। अब अपने प्रचलित उक्षा शब्द का अर्थ ही देखिये—

“ उक्ष् सेचने ” धातुसे “ उक्षन् ” शब्द बना है, इसलिये “ सिंचन करने वाला ” यह अर्थ इसका मूल यौगिक है। यह मूल अर्थ इंग्लिश कोशोंमें (Sprinkling) सिंचन करनेवाला, ऐसा दिया है। यही इस शब्द का अर्थ मुख्य है, अन्य सब इसी के भाव हैं। अब इनके अर्थ देखिये—



मेघ जलका सिंचन करता है, जलसे पृथ्वीको भिगोता है इस लिये मेघका नाम “उक्षा” है। इन्द्र वृष्टिसे जगत्को भिगोता है इसलिये इन्द्र का नाम उक्षा है। परमात्मा संपूर्ण स्थिरचर जगत् को जीवन के अमृतसे भिगा देता है इस लिये परमात्माका नाम उक्षा है। कर्मफलको देनेके कारण भी उसको उक्षा कहते हैं। जीवात्मा अपने शरीरको अपनी प्राणशक्तिसे भिगा देता है इसलिये उसको उक्षा कहते हैं। इस प्रकार विविध महान शक्तियोंका नाम उक्षा है। न इसमें कोई अत्युक्ति है और ना ही खोचा तानी है, यह तो शब्दका वास्तविक अर्थ है। जो मनुष्य शब्द के वास्तविक अर्थ को समझ नहीं सकता उसने अपने अज्ञान के कारण यदि किसी वेद मंत्रके अर्थ का अनर्थ किया, तो वह उस अज्ञानीका दोष है उसमें वेदके वर्णनमें दोष किस प्रकार आसकता है? इसलिये आवश्यक है कि जो वेदका अध्ययन करना चाहते हैं वे वेदके मूल संज्ञाको जानें, वैदिक शब्दोंके अर्थ देखें और वेदके वर्णनशैलीसे परिचित हों और पश्चात् वेद पढ़ें। ऐसा करनेसे अर्थका अनर्थ नहीं होगा अन्यथा इसी प्रकार अर्थके अनर्थ बनेंगे। यह तो अज्ञानका चमत्कार है।

उक्षा शब्दका मुख्य यौगिक अर्थ सिंचन करने वाला है, जो सिंचन करता है उसमें शक्ति की अधिकता होती है। जिस प्रकार उक्षा शब्द सिंचन करनेवाला है उसी प्रकार वृषभ, वृषा ये शब्द वृष्टि करनेवाले के द्योतक हैं। इसलिये जो उक्षा शब्द के वाचक हैं वे ही वृषभ और वृषा शब्दके भी वाचक हैं। अतः इन्द्र, परमात्मा, सूर्य, मेघ आदि अर्थ इस शब्दके भी हैं। पूर्वोक्त प्रमाण वचनों में एक मंत्रमें “पति” के लिये वृषभ शब्द आगया है वहां “वीर्य-प्रदान करनेमें समर्थ” यह अर्थ है। जैसा मेघ जल प्रदान करनेमें समर्थ होता है उसी प्रकार पति वीर्य प्रदान करनेमें समर्थ होना चाहिये। पाठक इस वर्णन से जान सकते हैं कि एकही उक्षा या वृषभ शब्द ऐसे विभिन्न अर्थोंका वाचक कैसा बन सकता है। अब पाठकोंके सम्मुख इन शब्दोंके कुछ उदाहरण रखते हैं जिनके विचार से पाठक जान सकते हैं कि

इन शब्दोंके अर्थ कैसे विलक्षण होते हैं और इनका अर्थ केवल बैल ही नहीं है— अथर्व० ११।१९

वृषभा ये स्वराजः । ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति॥

‘जो (स्व राजः) अपने तेजसे युक्त (वृषभाः) मेघ हैं वे (वर्षन्ति) वृष्टि करते हैं, वे वृष्टि कराते हैं’ यहां वृषभ शब्द बैलवाचक नहीं है, मेघका वाचक है क्योंकि इसमें वृष्टिका संबंध है। और देखिये।

पर्वतस्य वृषभस्याधिपृष्ठे नवाश्चरन्ति

सरितः पुराणीः ॥ अथर्व० १२।२।४१

“(वृषभस्य पर्वतस्य पृष्ठे) जिसपर वृष्टि होती है ऐसे पर्वतपर से (पुराणी सरितः नवाः चरन्ति) पुराणी नदियां नई बनकर बहती हैं।” यहांका वृषभ शब्द बैलका वाचक नहीं है परंतु (Raining mountains) वृष्टि होनेवाले तथा बादलोंसे घिरे पर्वतशिखरोंका वाचक है। यह शब्द निःसंदेह सिद्ध करता है कि वृषभ शब्द वेदमें सर्वत्र बैल वाचक नहीं है। और एक अद्भुत मंत्र देखिये— अथर्व० २०।११।२

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्ठतक्षुः

इसका अर्थ म० ग्रिकिथ यह करते हैं—For him, strong independent Ruler, Heaven and Earth have fashioned forth for power and might. अर्थात् (तं वृषभं स्वराजं) उस बल-शाली स्वतंत्र राजाको द्युलोक और पृथ्वी लोकोंने शक्ति (ओजसे) और बल के लिये बनाया है। इस मंत्रका वृषभ शब्द स्वतंत्र साम्राज्य के चालक सम्राट् के लिये आया है। आजकल यदि कोई मनुष्य किसी सम्राट् को “वृषभ” (बैल) करके पुकारेगा तो वह जेलका हकदार होगा, परंतु वैदिक जमानेमें “वृषभ” का बैल अर्थ विशेष करके नहीं था, परंतु “शक्ति शाली, बलवान आदि अर्थ” प्रचलित थे, इसलिये यह शब्द सम्राट् के लिये वेदमें प्रयुक्त किया है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वृषभ आदि बैलवाचक शब्द वैदिक समयमें प्रशंसावाचक माने जाते थे और उनका उपयोग सम्राट् की प्रशंसा करनेमें भी किया जाता था। और एक मंत्र देखिये—

ब्रह्मणस्पतिवृषभिर्वराहैर्मस्वेदेभिर्द्रविणं

व्यानत् ।

अथर्व० २०।११।७



बृहस्पतिने ( धर्म स्वेदेभिः ) जिसमें पसीनेकी वृद्धि आती है ऐसे ( वृषभिः वर+अहैः ) शक्ति शाली दिनोंके द्वारा ( द्विविणं व्यानद् ) धन प्राप्त किया । अर्थात् जिन दिनों में ऐसे बड़े प्रयत्न किये जाते थे उन दिनोंके प्रयत्नोंसे उसको धन प्राप्त होता है । इस मंत्रका “ वृषा ” शब्द वैल वाचक नहीं है प्रत्युत शक्तिके कर्म बताता है । तथा “ वराह ” शब्द भी सूवरका वाचक नहीं है प्रत्युत वह “ वर+अह ” अर्थात् उत्तम शुभ दिनोंका वाचक है । यदि ये सत्य अर्थ न लिये जाय तो कोई वेदका अनभिज्ञ ऐसे अनुमान कर सकेगा कि “ बृहस्पतिने वैल और सूवर बेचकर गर्मीके दिनोंमें बहुत धन कमाया!! ” यह मंत्र इस लिये यहां बताया है कि वास्तविक अर्थका अनर्थ अज्ञानके कारण कैसा हो सकता है इसका ठीक अनुमान पाठकोंको हो जाय । सूवर-वाचक वराह शब्द “ उत्तम दिन ” का वाचक वेद मंत्रमें मिलता है । अब पाठक देख सकते हैं कि इतना अर्थ का सूक्ष्म विचार करना आवश्यक होता है, अन्यथा जो अनुमान होंगे वे अनर्थकारक ही होंगे । परमात्मा के लिये वृषभ शब्द उसके अगाध बलके दर्शाने के लिये वेदमें प्रयुक्त होता है, देखिये—

वृषास्ति दिवो वृषभः पृथिव्याः वृषा सिंघूनां  
वृषभस्तियानाम् ॥ ऋ० ६ । ४४ । २१

“ तू घुलोक, पृथिवी, समुद्र तथा स्थिरजलोंका वृषभ अर्थात् शक्ति दाता हो । ” बलकी वृष्टि करने वाला इस अर्थमें यह शब्द यहां आया है ।

इतने उदाहरण देखनेके पश्चात् किसीको संदेह नहीं हो सकता कि वेद में वृषभ, उक्षा आदि वैल-वाचक शब्द किस किस अर्थमें प्रयुक्त हैं । जो केवल वैल ही उनका अर्थ करते हैं वे कैसे गलतीपर हैं यह भी यहां स्पष्ट होगया है । अब प्रसंगसे प्राप्त एक बातको यहां विशेष रूपमें बताना है पाठक उसका भी विशेष विचार करें, क्यों कि संपूर्ण वैदिक यज्ञ क्रिया के साथ उसका संबंध है । देखिये

### ४४ एक और अनेक -

गोमेध आदि यज्ञोंमें गायका बली दिया जाता था और यज्ञशेष मांस खाया जाता था ऐसा कथन

मांसपक्षी लोग करते हैं । इस लिये संक्षेपसे यज्ञका तत्त्व यहां अब देखना है । यह यज्ञका तत्त्व देखनेके लिये वेद में एक और अनेकों का संबंध जिस ढंगसे वर्णन किया है वह ढंग समझ लेनेकी बड़ी आवश्यकता है । यह संबंध बड़ा महत्त्वका है और पूर्ण रीतिसे बताना हो तो बड़े लंबे लेख की आवश्यकता होगी, परंतु इतना स्थान यहां नहीं है, अतः अति संक्षेपसे इसके मूलभूत सिद्धांत को ही यहां बताते हैं । वेदमें देवतावाचक नामोंमें एकही देवता एक वचन और अनेक वचनमें आती है जैसा—

१ एक एव रुद्रः । तै. सं. १ । ८ । ६ । १

२ असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्राः अधिभूम्याम् ॥

य० अ. १६ । ५४

(१) एकही रुद्र है । (२) असंख्यात हजारों ये रुद्र भूमिपर हैं ।

वेदमें रुद्र एक है ऐसा भी कहा है और रुद्र अनेक हैं ऐसा भी कहा है । यह एक रुद्र कहां है और अनेक रुद्र कहां है इसका विचार करनेके समय हमें निम्न लिखित मंत्र सहायता दे सकते हैं—

१ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ॥ ऋ० १० । ६४ । ८ ।

२ शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलापः ॥ ऋ० ७ । ३५ । ६ ॥

३ रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मुलयाति नः ॥ ऋ० १० । ६६ । ३ ॥

४ रुद्रं रुद्रेभिरावहा बृहन्तम् ॥ ऋ० ७ । १० । ४ ॥

(१) ( रुद्रेषु रुद्रं ) अनेक रुद्रोंमें रहने वाले एक रुद्र की हम प्रार्थना करते हैं । (२) अनेक रुद्रोंके साथ रहनेवाला एक रुद्र हमें शांति देनेवाला हो । (३) अनेक रुद्रोंके साथ रहने वाला एक रुद्र हमें सुखी करे । (४) अनेक रुद्रोंके साथ एक बड़े रुद्र की पूजा करो ।

इत्यादि अनेक मंत्रोंमें अनेक रुद्रोंके साथ रहने वाले एक महान् रुद्रका वर्णन पाठक देखें । इस का आगे संबंध आनेवाला है इस लिये इस एक और अनेक देवोंका स्मरण रखें । इसी प्रकार अग्निका भी वर्णन देखिये—

विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः ।

चनो धाः सहसो यहो । ऋ० १ । २६ । १०

अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः ।

यज्ञेषु ये उ चायवः ॥ ऋ० ३ । २४ । ४



इन दोनों मंत्रोंमें ( विश्वेभिः अग्निभिः अग्निः ) अन्य अनेक अग्नियोंके साथ रहनेवाले एक अग्नि का वर्णन देखने योग्य है। पाठक इस मंत्रमें कहीं बात और पूर्वोक्त रुद्रमंत्रमें कहीं बात तुलना करके देखें तो उसमें उनको अपूर्व साम्य नजर आवेगा। यहां दोनों देवताओंके वर्णनमें “ एक देव अनेक देवोंके साथ है ” यह बात पाठक देखें। अब निम्न मंत्र भाग भी पूर्वोक्त मंत्रोंके साथ देखें—

१ देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ॥ क्र० २। १२। १

२ देवो देवान् परिभूऋतेन ॥ क्र० १०। १२। २

३ देवो देवान् यजत्वग्निरर्हन् ॥ क्र० २। ३। १

४ देवो देवान् यजसि जातवेदः ॥ क्र० १०। ११०। १

५ देवो देवान् स्वेन रसेन पृञ्चन् ॥ क्र० ९। ९७। १२

(१) एक देव अनेक देवोंको क्रतुसे भूषित करता है, (२) एक देव अनेक देवोंको ऋतसे घेरता है, (३) एक योग्य देव अग्नि अनेक देवोंका सत्कार करे, (४) एक जातवेद देव अनेक देवोंका सत्कार करे (५) एक देव अनेक देवोंको अपने रससे तृप्त करता है।

पूर्वोक्त मंत्रोंपर ये मंत्र बहुत ही प्रकाश डालते हैं। एक देव मुख्य है और उसके आश्रयसे अनेक देव रहते हैं। “ एक परमात्माके आश्रयसे अनेक जीवात्मा रहते हैं ” यह तात्पर्य ध्यानमें धर कर यदि पूर्वोक्त मंत्र देखे जाय तो उनका अर्थ अधिक स्पष्ट हो जायगा। यहां यही विषय प्रतिपादन करना नहीं है, अन्यथा इस विषयके अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं, परंतु यहां जो बात बतानी है वह इतने प्रमाणोंसे स्पष्ट हो जायगी, इसलिये इस विषयको अधिक लंबा करनेकी इच्छा नहीं है। जितने मंत्र यहां दिये हैं उनके ही मननसे अध्यात्मविषयकी एक महत्त्वपूर्ण बात कि “ एक परमात्माके आधारसे अनेक जीवात्मा रहते हैं ” यह बात वेदमें किस ढंगसे लिखी है यह बात पाठकों को स्पष्ट हो जायगी।

## ४५ यज्ञका तत्त्व ।

उक्त बातमें एक महत्त्वपूर्ण यज्ञका तत्त्व है। परमात्मा अपनी शक्तिका यज्ञ अनंत जीवोंके उद्धार के लिये करता है, संपूर्ण ब्राह्मणग्रंथोंमें प्रायः यज्ञका वर्णन करते हुए पहिले समय में यह यज्ञ परमात्मा-

ने इसप्रकार किया ऐसा लिखा होता है। इसका उद्देश यह ही है कि अनंत जीवात्मा भी उसी प्रकार परोपकार करने और दूसरोंका उद्धार करने के लिये उक्त यज्ञ करें। परमात्माका जो सब का उद्धार करने का महायज्ञ चल रहा है उसमें संपूर्ण जीवात्माएं अपनी संपूर्ण शक्ति लगा कर समर्पित हों। जिस प्रकार राष्ट्रोद्धार के महायुद्ध में राजा अपनी संपूर्ण शक्ति लगाता है, उस समय सब सैनिकोंको तथा सब प्रजाजनोंको भी अपनी सब शक्ति लगाकर संमिलित होना चाहिये; उसी प्रकार परमात्मा अपनी शक्ति लगाकर जो सबके उद्धार के यज्ञ कर रहा है उन यज्ञोंमें जीवोंको भी आत्मसमर्पण करना चाहिये। यहां यज्ञ यही है कि “ एक अनेकों के लिये समर्पित हो रहा है, अतः अनेक भी एकके लिये समर्पित हों। ”

अपने शरीरमें भी देखिये कि यह एक जीवात्मा अपनी सब शक्ति शरीरके संपूर्ण अनेक अवयवों, अनेक अंगों और अनेक इंद्रियों में डालता है और इस जड़को जीवनपूर्ण करता है, इसलिये इन अनेक इंद्रियों को संयमादि द्वारा जीवात्माके उद्धारके तपादिके कर्मके लिये अपने आपको समर्पित होना चाहिये। यह यज्ञ शरीरमें चल रहा है।

जो यज्ञ परमात्माकी शक्तिसे जगत् में हो रहा है वही अल्प क्षेत्रमें जीवात्माकी शक्ति से शरीरमें बन रहा है और वही मनुष्यों को जगत् में करना चाहिये। यहां भी एक अनेकोंके लिये समर्पित हो रहा है और अनेक एक के लिये समर्पित हो रहे हैं। यह “ एक और अनेक ” का संबंध पाठक ध्यानमें धारण करें।

वेदमें जीवात्मापरमात्माके एक ही नाम होते हैं यह बात इससे पूर्व बतायी ही है, इसी लिये एक रुद्र और अनंत रुद्र के वर्णनमें एकही रुद्र शब्दसे, तथा एक ही अग्नि शब्दसे जीवात्मा और परमात्मा का वर्णन होता है। इसी प्रकार इन्द्र, सोम, वृषभ आदि शब्दों के विषयमें जानना चाहिये। इतनी बात जानने के पश्चात् निम्न लिखित दो मंत्र देखिये—

## ४६ एक वृषभके साथ अनेक वृषभ।

आ चर्षणिप्रः वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ॥१॥ ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र



ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः । तां आतिष्ठ  
तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र  
सोमे ॥ २ ॥

ऋ० १।१७।१-२

“ ( जनानां वृषभः ) लोगोंका बैल जैसा बलवान  
( कृष्टीनां राजा ) प्रजाओंका राजा इन्द्र है ॥ १ ॥  
हे इन्द्र ! जो तेरे ( वृषणः वृषभासः ) बलवान  
अनेक वृषभ ( ब्रह्मयुजः ) ज्ञानसे युक्त हैं उनके  
साथ यहां ( आयाहि ) आओ । ”

इन मंत्रों में एक वृषभ ( इन्द्र ) के साथ अनेक  
वृषभ ( वृषभासः = इन्द्राः ) रहनेका वर्णन है। जो  
भाव अनेक रुद्रोंके साथ एक रुद्रका है, तथा जो भाव  
अनेक अग्नियोंके साथ रहने वाले एक अग्निका है,  
वही भाव एक वृषभ या इन्द्र के साथ रहनेवाले  
अनेक वृषभ या इन्द्रमें निःसंदेह है। एक परमात्मा  
के साथ अनेक जीवात्माओंका होना इस प्रकार वेद  
में वर्णन किया है। और इनका यज्ञ पूर्वोक्त लेखमें  
बतायी रीतिके अनुसार हो रहा है।

एक परमात्माके नाम इन्द्र, अग्नि, रुद्र, सोम,  
वृषभ आदि हैं और ये ही नाम अनेक वचनमें  
आगये तो जीवात्मा के वाचक होते हैं। इन नामोंके  
साथ ही निम्न लिखित नामभी देखने योग्य हैं—

“ अज ” शब्द बकरे का वाचक होता हुआ भी  
“ अ+ज ” अर्थात् अ-जन्मा ईश्वर का वाचक है  
और साथ साथ “ अ-जन्मा जीवात्मा ” का भी वाचक  
है। “ अज ” शरीरमें रहनेवाले जीवात्मा का, जगत् में  
व्यापने वाले परमात्माका तथा बकरेका वाचक है।

“ वृषभ ” शब्द बैलका वाचक होता हुआ भी  
यौगिक अर्थके बलसे शक्ति शाली होनेका भाव  
बतानेके कारण परमात्माका तथा शरीरमें जीवात्मा  
का वाचक है। पीछे इन्द्र शब्द का वाचक वृषभ  
शब्द अनेक बार दिया है और इन्द्र शब्द जीवात्मा  
परमात्माके लिये प्रसिद्ध है। इसी प्रकार “ ऋषभ-  
और उक्षा ” शब्दके भी दोनों अर्थ हैं।

“ अश्व ” शब्द घोड़ेका वाचक होता हुआ भी  
पूर्वोक्त प्रकार जीवात्मा परमात्मा का वाचक है,  
परमात्मा का वाचक होते हुए इसका अर्थ ( अश्रुते  
व्याप्नोति ) सर्वत्र व्यापक है और जीवात्मा वाचक  
होने के प्रसंगमें ( अश्नाति ) फल भोग करता है

या फल खाता है यह अर्थ होता है। अर्थात् एक ही  
अश्व शब्दका अर्थ जीवात्मा और परमात्मा होता है।

ये सब शब्द इन अर्थोंके साथ ध्यानमें धरनेसे  
किसी मंत्रमें “ अज ” शब्द आया, किसीमें “ अश्व ”  
आगया अथवा किसी में “ वृषभ ” शब्द आया या,  
इसी प्रकार का कोई अन्य शब्द आया तो आगे पीछे  
का विचार न करते हुए एकदम मांस भक्षण परके  
ही अर्थ निकालनेकी आवश्यकता नहीं है, यह बात  
इतने विवरण से पाठकोंके सम्मुख हो जायगी।

मनुष्य मात्र या प्राणिमात्र के अंदर जो जीवात्मा  
है वह जन्ममरण रहित होने से “ अ-ज ” अर्थात्  
अजन्मा है, वह युवा शरीरमें रहता हुआ वीर्यसिंचन  
करने द्वारा प्रजाकी उत्पत्ति करता है, इस लिये इस  
को “ वृषा, वृषभ, उक्षा, ” आदि नाम होते हैं, यह  
कर्मफल भोग करता है इसलिये इसको “ अश्व ”  
कहते हैं, यह अपने इंद्रिय गणोंको अपने वशमें रख  
सकता है इसलिये इसीको “ वशा ” कहते हैं।  
अर्थात् ये नाम इसकी विशेष उन्नतिकी अवस्था  
बताते हैं। इस प्रकार का जीवात्मा अपने आपकी  
शक्ति सर्वस्वको परम भक्तिके साथ परमात्मार्पण  
करता है, यह इसका महायज्ञ है, इतना विवरण  
मननपूर्वक देखने के पश्चात् निम्न मंत्र देखिये—

यस्य वशास ऋषभास उक्ष्णो यस्मै मीयन्ते  
स्वरवः स्वर्विदे। यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मसंमितः  
स नो मुञ्चत्वंहसः॥ अथर्व० ४। २४। ४

“ जिसके लिये वशा, ऋषभ, उक्षा आदि हैं, जिस  
तेजस्वी के लिये यज्ञ किये जाते हैं ( ब्रह्मसंमितः शु-  
क्रः ) ज्ञानसे पूर्ण पवित्र सोम भी जिसके लिये है वह  
( नः अंहसः मुञ्चतु ) हम सबको पाप से छुड़ावे । ”

ऐसे मंत्रोंमें मांसपक्षी लोग समझते हैं कि  
( वशा ) गौवें, ( ऋषभ ) बैल, ( उक्षा ) बैल आदि प्राणी  
यज्ञमें बली चढ़ाये जाते थे और उनका मांस  
यज्ञशेष मांस खाया जाता था। परंतु कल्पना  
करनेके लिये इस इतनी मंत्रमें कोई शब्द  
नहीं है। परमात्म देव के लिये वशा ऋषभ  
उक्षा आदि हैं, इन्द्रके लिये ये हैं, इतना कहने  
मात्रसे उनकी हिंसा करके आहुति डालनेका  
विधान कहां और कैसे होता है? यदि स्थूल हवन



ही यहां अभीष्ट लिया जाय, और इससे पूर्व लिखा आध्यात्मिक यज्ञ न लिया जाय, तो भी वशा शब्दसे गौका दुग्ध लिया जा सकता है। इस विषयमें पहिले प्रमाण बताये जा चुके हैं। वृषभादि अन्य पशुओं की आवश्यकता यज्ञमें अन्य रीतिसे भी होती है। यज्ञमें गाड़ी खींचने, वीरोंको ले आने और ले जाने आदिके लिये बैल और घोड़ों की आवश्यकता होती ही है, इसलिये यज्ञमें जहां जहां पशुओंका उल्लेख आजाय वहां वहां हवनके लिये ही है ऐसा मानना अनुचित ही होगा। वेदमें—

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति । ऋ० १।१६४।४३

“ जो उस आत्मतत्त्वको नहीं जानता वह वेदके मंत्र लेकर क्या करेगा ” ऐसा जो कहा है वह निःसंदेह बता रहा है कि वेदका मुख्य तात्पर्य अध्यात्म-ज्ञान देना ही है। वेद प्रतिपादित यज्ञयाग आदि सब इसीलिये हैं। यह अध्यात्मदृष्टि रखकर “ अज, अश्व, वृषभ ” आदि शब्दोंके जो भाव अध्यात्म-विद्यामें समझे जाते हैं, और उनके यज्ञसे जो भाव अध्यात्म में लेना है वह ऊपर लिखा है। परंतु संभव है कि कई कारणोंसे किसी विद्वानको यह भाव लेना पसंद न हो और केवल स्थूल भाव लेना ही पसंद हो तो, यद्यपि वैसा स्थूल अर्थ लेना इस मंत्रके भावसे सर्वथा विपरीत है, तथापि हम इस पर अधिक बल न देते हुए, इतनाही कहते हैं कि स्थूल दृष्टिसे भी यज्ञमें पशुसमर्पित करने और उसका मांस अंतमें भक्षण करनेके लिये जो मंत्र ऊपर बताये गये हैं वे उनका पक्ष सिद्ध नहीं करते हैं। “ इन्द्रके लिये वशा, वृषभ, ऋषभ हैं ” इतना कहने मात्रसे यह बात किसी भी रीतिसे सिद्ध नहीं हो सकती कि इन पशुओंके मांसका समर्पण, हवन और भक्षण किया जाय। अपने मनकी बात वेदपर लगाना नहीं चाहिये। देखिये यदि पूर्वोक्त मंत्रके “ वशा, ऋषभ, उक्षा ” ये शब्द गाय और बैलके वाचक मानने हैं तो उसीके पूर्व के मंत्रमें “ वृषभ ” शब्द आया है उसका अर्थ देखिये—

यश्चर्षणि प्रो वृषभः स्वर्विद् यस्मै ग्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम् । यस्याध्वरः सप्त होता मदिष्टः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ अथर्व० ४।२४।३

इसका म० ग्रिफिथ का ही अर्थ देखिये—  
Ruler of men, finder of light, the hero:  
the pressing stones declare his valour,  
master of sweetest sacrifice with seven  
Hotars. May he deliver us from grief  
and trouble.

इसमें “ वृषभ ” शब्दका अर्थ ‘वीर’ (hero) किया है, यह देखने योग्य है, इसी के आगेके मंत्रमें ही वशा, ऋषभ, उक्षा ये शब्द पड़े हैं। यदि पूर्व मंत्रके “ वृषभ ” शब्दका अर्थ वीर होता है तो उसके अगले ही मंत्रमें वृषभ जातीके ही “ वशा, ऋषभ, और उक्षा ” शब्दके अर्थ “ वीरा, वीर, नायक ” माने जानेमें क्या हानी होगी ? इस तीसरे मंत्रमें वृषभ शब्दका अर्थ बैल किसी भी प्रकार किया ही नहीं जा सकता, यह देखकर यदि इसी प्रकरण के इसके अगले ही मंत्रमें वीर (hero) ही अर्थ किये जाय तो कितना उत्तम सजता है। यह उत्तम अर्थ छोड़ कर ये ही म० ग्रिफिथ आगेके मंत्रका अर्थ यस्य वशास ऋषभास उक्षणः । अथर्व० ४।२४।४ “ The lord of barren cows and bulls and oxen. ” ऐसा किया है। यहां वशा शब्दका अर्थ बंध्या गौ किया है, परंतु इसी अथर्व वेदमें वशा गौका दूध पीनेका उल्लेख है। यदि वशा शब्दका अर्थ बंध्या गौ अथर्व वेदमें होता तो उसके दूध की संभावना न होती। संस्कृत भाषामें वशा का अर्थ बंध्या गौ हो, परंतु वेदमें यह अर्थ नहीं है। अब पूर्वोक्त मंत्रका अर्थ देखिये—

“ ( यः ) जो ( चर्षणि—प्रा ) जनताका पालन करनेवाला, ( स्वः—विद् ) आत्मज्ञानके तेजसे युक्त ( वृषभः ) वीर पुरुष है ( यस्मै ) जिसके ( नृम्णं ) शौर्यकी ( ग्रावाणः ) पत्थर दिलवाले मनुष्य भी ( प्रवदन्ति ) प्रशंसा करते हैं तथा जो सप्त होता यज्ञका स्वामी है वह हमें पापसे बचावे। ”

यहां “ एक और अनेक ” का पहिले बताया हुआ संबंध भी देखने योग्य है - ( म० ३ में ) एक वृषभ का वर्णन है और ( मंत्र० ४ में ) अनेक वशासः ऋषभासः, उक्षणः अर्थात् अनेकों का वर्णन है। इसलिये भी जो पहिले मंत्रमें वृषभसे अर्थ लिया



जाय वही अगले मंत्रमें लेना उचित है ।

## ४७ आलंकारिक गौ और बैल ।

वेद में आलंकारिक भाषामें गौ बैलोंका वर्णन आया है वह भी यहां देखना आवश्यक है । इस विषयको संक्षेपसे बतानेके लिये यहां कुछ मंत्र उद्धृत करते हैं—

सहस्रशृंगो वृषभो यः समुद्राद्दुदाचरत् ॥ अ० ४।५।१  
सहस्रशृंगो वृषभो जातवेदाः । अथर्व० १३।१।१२

“हजार सींग वाला वृषभ समुद्रसे ऊपर आया । हजार सींगवाला वृषभ जिससे वेद बने हैं।” इन मंत्रोंमें निःसंदेह वृषभ शब्द बैलवाचक नहीं है तथा—

यत्र गावो भूरिशृंगा अयासः । क्र० १।१५।४।६

“जहां बहुत सींगवाली गौवें हैं ।” इस मंत्रमें भी बहुत सींग वाली गौवोंका वर्णन किया है, जिस जातिके बैल ऊपर वाले मंत्रमें हैं उसी जातिकी गौवें इस मंत्रमें वर्णन की हैं । निःसंदेह ये गौवें और ये बैल आलंकारिक हैं । हमें यहां इन मंत्रोंका विशेष अर्थ बताने की आवश्यकता नहीं है, केवल इतना ही बताना है कि बैलवाचक शब्द वेदमें केवल बैल वाचक नहीं हैं। यह बात वास्तविक रीतिसे स्पष्ट है, परंतु मांस पक्ष के लोग बिना कारण अर्थका अनर्थ करते हैं, इसलिये हर एक विषयके संबंधमें इतना लिखना आवश्यक होता है । अब इस विषयमें एक और मंत्र देखिए—

वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम् । धृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥ अथर्व० १३।१।३३

“( मतीनां वृषभः ) बुद्धियोंका वृषभ यह ( विराजः वत्सः ) विराट् का वत्स है । वह ( शुक्रपृष्ठः ) तेजस्वी पृष्ठवाला अंतरिक्षमें चढ़ा है । धीसे ( अर्क वत्सं ) पूजनीय वत्सकी ( अभ्यर्चन्ति ) पूजा करते हैं । ( ब्रह्म सन्तं ) स्वयंब्रह्म होते हुए ( ब्रह्मणा-वर्धयन्ति ) ब्रह्मसे बढ़ाते हैं।” यह मंत्र वृषभ शब्दका आध्यात्मिक महत्त्व अच्छी प्रकार सूचित करता है ।

इस मंत्र में जिस वृषभ का वर्णन है वह विराट् ( विराजः वत्सः ) पुरुष परमात्माका बच्चा है । विराट् पुरुष या परमात्माका बच्चा जीवात्मा है इस विषय

में किसीको कोई शंका नहीं हो सकती । तथा यह ( मतीनां वृषभः ) बुद्धियोंकी वर्षा करने वाला है, बुद्धि देने वाला है, यहां वृषभ शब्दका अर्थ वृष्टि करनेवाला है । आत्मा और परमात्मा बुद्धियोंको देते हैं या बुद्धियोंको प्रेरित करते हैं यह बात गायत्रीमंत्रमें ( धियो यो नः प्रचोदयात् ) जो हमारी बुद्धियों को प्रेरित करता है इस मंत्र भागसे व्यक्त हो गई है । जीवात्मा परमात्माका पुत्र होने से परमात्माके गुणधर्म अंशरूपसे जीवात्मामें हैं । परमात्मा स्वयं ब्रह्म है इसी प्रकार उसका पुत्र जीवात्मा भी उसके ब्रह्मगुण से अंशतः युक्त है । यही भाव व्यक्त करनेके उद्देश से ( ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ) जीवात्मा स्वयंब्रह्म होते हुए भी ज्ञानी ब्रह्मकी उपासनासे उसको बढ़ाते हैं । अर्थात् उसकी शक्तिका विकास करते हैं ।

यदि यह मंत्र विशेष रीतिसे देखा जाय तो पाठकों का इस विषय में निश्चय होगा कि यहां का वृषभ शब्द जीवात्मा का वाचक ही है, क्यों कि इसकी सूचक तीन बातें इसमें लिखी हैं— ( १ ) यह विराट् पुरुष परमात्माका पुत्र है, ( २ ) यह बुद्धियोंका प्रेरक है और ( ३ ) इसकी उन्नति ब्रह्मकी उपासनासे होती है । ये तीनों बातें स्पष्ट हैं और ये तीनों बातें यहां के वृषभ शब्दका अर्थ जीवात्मा है यह स्पष्ट बता रही हैं । यह हृदय रूपी अंतरिक्षमें रहता है इस लिये इसको अंतरिक्षमें रहा है ऐसा इस मंत्रमें कहा है । वृषभ शब्द इस प्रकार यहां जीवात्म वाचक होने के पश्चात् यदि पाठक यही बात हमारे पूर्व स्थानमें बताये यज्ञ विषयक लेख के साथ तुलना करके देखेंगे, तो निःसंदेह उनके ध्यानमें जीवात्मा और परमात्माके लिये समर्पित होना, अनेक देवोंका एक देवके लिये समर्पित होना ही यज्ञ का मुख्यार्थ है यह हमने पूर्वस्थान में बताई बात ही स्पष्टता पूर्वक आज्ञायगी । जो बात सत्य होती है वह अनेक प्रकारसे स्वयं खुल जाती है इसमें कोई संदेह नहीं है । इसी विषयमें निम्न लिखित मंत्र देखिये—

अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ॥ अपां न पातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः ॥ अथर्व. १९।४२।४ ( अंहोमुचं ) पापसे छुड़ाने वाले ( अध्वराणां



प्रथमं विराजन्तं ) यज्ञोंमें प्रथम स्थानमें विराजमान ( यज्ञियानां वृषभं ) यज्ञियों में मुख्य (अपां न पातं) जीवन जलको न गिराने वालेकी (धियःहुवे) बुद्धिकी प्राप्ति के लिये हम प्रार्थना करते हैं । ( ते इन्द्रियेण ) तेरी इन्द्रशक्तिके द्वारा ( इन्द्रियं ओजः ) इन्द्रकी दर्शन स्पर्शन आदि कर्म रूप शक्ति हमें प्राप्त हों।

यह मंत्रभी पूर्वोक्त बातही स्पष्ट कर देता है और वृषभ शब्दका जीवात्मपरमात्मपरक होना बताता है।

### ४८ गौमाता को खा जाना ।

वेद में माता को खाजाना और गौमाता को भी खाजाना लिखा है इसविषयमें अब थोड़ासा लिखना आवश्यक है। इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र बड़ा विचार करने योग्य है—

प्र सूनव ऋभूणां बृहन्नवन्त वृजिना । क्षामा ये

विश्वधायसोऽश्वन्धनुं न मातरम् ॥ ऋ० १०।१७६।१

( सूनवः ) पुत्र ( ऋभूणां वृजिना ) ऋभुओंके पराक्रम बड़े वर्णन करते हैं ( ये विश्वधायसः ) जो सबका धारण करनेवाले हैं वे ( क्षामा धेनुं मातरं न अश्वन् ) भूमि, गौ को माताके समान ही खा जाते हैं, भोग करते हैं ।

यहां माता, गौ और भूमिको खा जानेका वर्णन है। पाठक पहिले देखें कि माता को किस प्रकार लडके खाते हैं, पाठक समझ ही गये होंगे कि लडके माताका दूध पीते हैं यही माताको खा जाना है। इस ढंगसे हर एक मनुष्य अपनी माताको तथा अपनी धाई कोई खाजाता है तथापि मातृवधका दोषी नहीं होता है। अर्थात् वेदको गौमाताको खा जाना भी ऐसा मंजूर है कि जिसमें गोवध न हो, गौका हवन भी ऐसा स्वीकार है कि जिसमें गौकी हिंसा न हो। जिस प्रकार लडका माताका दूध पीता है उसी प्रकार गौमाता का भी दूध पीये। भूमिका दूध भी धान्य और फल है वह खाये। तीनों माताओंको खा जानेका यही वैदिक विधि है, इसमें माताकी हिंसा नहीं होती परंतु माताका अमृत रस ही पीया जाता है। पाठक सोचें तो सही कि यह कितनी अद्भुत कल्पना है। वेद कहता है कि—

इह पुष्टिरिह रसः ॥ अथर्व ३।२८। ४

यहां माता के स्तनोंमें—भूमि माता, गौमाता और

सच्ची मातामें पुष्टि देनेवाला अमृत रस है। वह धान्य, फल, दूध रूपसे हमें प्राप्त होता है इस लिये उसको लेना चाहिये। गौवें अनेक हैं—

पृथिवी धेनुः ॥ २ ॥ अंतरिक्षं धेनुः ॥ ४ ॥

द्यौर्धेनुः ॥ ६ ॥ दिशो धेनवः ॥ ८ ॥ अथर्व ० ४।३९

“ पृथ्वी, अंतरिक्ष, द्यौ और दिशा ये सब गौवें हैं। ” इनके जो विविध रस हैं वे खाने ही चाहिये और इस प्रकार माता का भक्षण करना चाहिये। पृथ्वीका रस अन्न, अंतरिक्षका रस जल, द्युलोकका रस प्रकाश, इस प्रकार इन धेनुओंके रस हैं, इनके खाने से ही मनुष्य आरोग्य संपन्न होकर जीवित रहता है। इसलिये कहा है—

### ४९ एक साधारण नियम

पुष्टिं पशूनां परिजग्रमाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च

धान्यम् । पयः पशूनां रस ओषधीनां बृहस्पतिः

सविता मे नियच्छात् ॥ अथर्व ० १९।३१।५

पयो धेनूनां रस ओषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ

अथर्व ० ४।२७।३

( अहं पशूनां पुष्टिं परिजग्रम ) मैं द्विपाद चतुष्पाद पशुओं से पुष्टि लेता हूं, और धान्य भी लेता हूं ( पशूनां पयः ) पशुओंसे दूध लेता हूं, ( ओषधीनां रसः ) औषधियोंसे रस लेता हूं, यह ( सविता मे नियच्छात् ) सविता देवने मुझे दिया है। ( धेनूनां पयः ) गौओंसे दूध, ( ओषधीनां रसः ) औषधियोंसे रस, ( अर्वतां जवं ) घोड़ोंसे वेग कवि लोग प्राप्त करते हैं।

इसमें सर्व साधारण नियम बताया है कि जहां पशु लेनेका वेदमें कथन हो वहां उस पशुका दूध ( पशूनां पयः ) लिया जावे, जहां औषधि लेनेका वेदमें कथन हो वहां ( ओषधीनां रसः ) औषधियों का रस लिया जावे। वेद में सोम शब्द से सोमवल्लीका रस लेना चाहिये, और गौ आदि शब्दोंसे उनका दूध लेना चाहिये। यह वेद की संज्ञा वेदने ही इन मंत्रों द्वारा स्पष्ट की है, इतना स्पष्ट कर देने पर भी जब कोई गौ आदि शब्द देखकर उसके मांसकी कल्पना करे तो उसमें वेदका दोष क्या हो सकता है ? पाठक ही विचार करें किसीको संदेह न हो इसलिये वेदने स्वयं अपना संकेत स्पष्ट शब्दों में बताया है। पाठक इस को देखें और विचारें।



अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

# आयुष्य-वर्धन-सूक्त ।

( ३० )

( ऋषिः— अथर्वा आयुष्कामः । देवता—विश्वे देवाः )

विश्वे देवा वसवो रक्षतेममुतादित्या जागृत यूयमस्मिन् ।  
मेमं सनाभिहृत वान्यनाभिमेमं प्रापत् पौरुषेयो वधो यः ॥ १ ॥  
ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः सचेतसो मे शृणुतेदमुक्तम् ।  
सर्वेभ्यो वः परि ददाम्येतं स्वस्त्येनं जरसे वहाथ ॥ २ ॥  
ये देवा दिवि ष्ट ये पृथिव्यां ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः ।  
ते कृणुत जरसमायुरस्मै शतमन्यान्परि वृणक्तु मृत्यून् ॥ ३ ॥  
येषां प्रयाजा उत वानुयाजा हुतभागा अहुतादश्च देवाः ।  
येषां वः पञ्च प्रदिशो विभक्तास्तान्वो अस्मै सत्रसदः कृणोमि ॥ ४ ॥

अर्थ— हे ( विश्वे देवाः ) सब देवो ! हे ( वसवः ) वसुदेवो ! ( इमं रक्षत ) इसकी रक्षा करो । ( उत ) और हे ( आदित्याः ) आदित्य देवो ! ( यूयं अस्मिन् जागृत ) तुम इसमें जागते रहो । ( इमं ) इस पुरुषको ( सनाभिः ) अपने बंधुका ( उत वा अन्य-नाभिः ) अथवा किसी दूसरेका ( वधः मा प्रापत् ) वधकारक शस्त्र न प्राप्त करे, न प्रहार करे तथा ( यः पौरुषेयः वधः ) जो पुरुष प्रयत्नसे होनेवाला घातपात है वह भी ( इमं मा प्रापत् ) इस को प्राप्त न नरे ॥ १ ॥ हे ( देवाः ) देवो ! ( ये वः पितरः ) जो आपके पिता हैं तथा ( च ये पुत्राः ) जो पुत्र हैं वे सब ( सचेतसः ) सावधान होकर ( मे इदं उक्तं शृणुत ) मेरा यह कथन श्रवण करें । ( सर्वेभ्यो वः एतं परिददामि ) सब आपकी निग्राणीमें इसको मैं देता हूँ ( एनं जरसे स्वस्ति वहाथ ) इसको वृद्ध आयुतक सुखपूर्वक पहुंचा ओ ॥ २ ॥



( ये देवाः दिवि स्थ ) जो देव द्युलोकमें हैं, ( ये पृथिव्यां, ये अन्तरिक्षे ) जो पृथ्वीमें और अंतरिक्षमें हैं, और जो ( औषधिषु पशुषु अप्सु अन्तः ) औषधि, पशु और जलोंके अंदर हैं ( ते अस्मै जरसं आयुः कृणुत ) वे इसके लिये वृद्धावस्थावाली दीर्घ आयु करें । यह पुरुष ( शतं अन्यान् मृत्यून परिवृणक्तु ) सैंकड़ों अन्य अपमृत्यु को हटादेवे ॥ ३ ॥ ( येषां ) जिन तुम्हारे अंदर ( प्रयाजाः ) विशेष यजन करनेवाले, ( उत वा अनुयाजाः ) अथवा अनुकूल यजन करनेवाले तथा ( हुत-भागाः अहुतादः च देवाः ) हवनमें भाग रखनेवाले और हवन किया हुआ न खानेवाले जो देव हैं, ( येषां वः पञ्च प्रदिशः विभक्ताः ) जिन आपकी ही पांच दिशाएँ विभक्त की गई हैं, ( तान् वः ) उन तुमको ( अस्मै ) इस पुरुषकी दीर्घ आयुके लिये ( सत्र-सदः कृणोमि ) सदस्य करता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे सब देवों, हे वसु देवों ! मनुष्यकी रक्षा करो ! हे आदित्य देवों ! तुम मनुष्यमें जाग्रत रहो । मनुष्यका उसीके बंधुसे अथवा कोई अन्य मनुष्यसे अथवा कोई पुरुषसे वध न हो ॥ १ ॥ हे देवों ! जो तुम्हारे पिता हैं और जो तुम्हारे पुत्र हैं वे सब मेरा कथन सुनें ! मनुष्यको पूर्ण दीर्घ आयु तक ले जाना तुम्हारे आधीन है, अतः तुम मनुष्यकी दीर्घ आयु करो ॥ २ ॥ जो देव द्युलोक, अंतरिक्षलोक, भूलोक, औषधि, पशु, जल आदिमें हैं वे सब मिलकर मनुष्यकी दीर्घ आयु करें । तुम्हारी सहायतासे मनुष्य सैंकड़ों अपमृत्युसे बचे ॥ ३ ॥ विशेष याजन करनेवाले, अनुकूल याजन करनेवाले, हवन का भाग लेनेवाले तथा हवन किया हुआ न खानेवाले जो देव हैं और जिन्होंने पांच दिशाएँ विभक्त की हैं, वे सब आप देव मनुष्यकी आयुवर्धक सभाके सदस्य बनें और मनुष्यकी आयु दीर्घ बनाने में सहायता करें ॥ ४ ॥

### आयुका संवर्धन ।

मनुष्य का आयुष्य न केवल पूर्ण होना चाहिये प्रत्युत अतिदीर्घ होना चाहिये । पूर्ण आयुष्यकी मर्यादा तो १२० वर्षोंकी है, इससे कम १०८ वर्षकी और इससे कम १०० सौ वर्षकी है । सौ वर्षकी मर्यादा तो हरएक को प्राप्त होनी ही चाहिये, परंतु उसका



प्रयत्न इससे अधिक आयुष्य प्राप्त करनेकी ओर होने चाहिये इसका सूचक मंत्र यह है—

भूयश्च शरदः शतात् । यजुर्वेद. ३६।२४

सौ वर्षोंसे भी अधिक आयु प्राप्त हो । १२० वर्षोंसे अधिक आयु जितनी भी होगी वह दीर्घ या अतिदीर्घ संज्ञाको प्राप्त होगी । अर्थात् अति दीर्घ आयु प्राप्त करनेका पुरुषार्थ करना वैदिक धर्मके अनुकूल है । इस दीर्घ आयुष्यकी प्राप्ति की वैदिक रीति इस सूक्तमें दर्शाई है, इसलिये पाठक इस सूक्तका विचार करें तथा जो जो सूक्त इस विषयके साथ संबंध रखनेवाले हैं उनकाभी मनन इसके विचारके साथ करें ।

### सामाजिक निर्भयता ।

दीर्घ आयुष्य की प्राप्ति के लिये समाजमें सामाजिक तथा राष्ट्रीय दृष्टिमें, तथा धार्मिक और अन्यान्य दृष्टियोंसे निर्भयता रहना अत्यंत आवश्यक है । निर्भयता सुरक्षितता न रहेगी तो मनुष्य दीर्घायु हो नहीं सकते । समाजमें कोई एक दूसरे पर हमला करनेवाला न हो, इस प्रकार का समाज बनना चाहिये । राजनैतिक कारण से हो, धर्म के नामपर हो, अथवा किसी दूसरे निमित्तसे हो, कानून अपने हाथ में लेकर एक दूसरे पर हमला करना किसीको भी उचित नहीं है, यह दर्शाने के लिये प्रथम मंत्रका उत्तरार्ध है, इसका आशय यह है—

“ इस मनुष्यका वध कोई सजातीय, अन्य जातीय या कोई अन्य मनुष्य किसी साधनसे न करे ॥ ” ( मंत्र १ )

यह वेदका उपदेश मनुष्य मात्र के लिये है, हरएक मनुष्य यह ध्यानमें रखे और अपने आचरणमें ढालनेका प्रयत्न करे । “मैं किसी का वध न करूंगा, किसी दूसरेकी हिंसा मैं नहीं करूंगा । मैं अहिंसा वृत्तिसे आचरण करूंगा ।” यह प्रतिज्ञा हरएक मनुष्य करे और तदनूकूल आचरण करे ।

इस मंत्रमें जो शांति वर्णन की है वह मनुष्य मात्रमें स्थिर रहनी चाहिये, यह बुनि याद है और इसी अहिंसा वृत्तिपर दीर्घायुका मंदिर खड़ा होना है । जबतक मनुष्यमें हिंसक वृत्ति रहेगी तब तक वह दीर्घायु बन नहीं सकता । घातपात करनेकी वृत्ति, क्रोध की लहर, दूसरे का खून करनेकी वासना, दूसरे को दबा कर अपनी धनसंपत्ति बढ़ानेकी अभिलाषा जबतक रहेगी तब तक मनुष्यकी आयु क्षीण ही होती जायगी । इस लिये वध करनेकी वृत्ति अपने समाजमें से दूर करनेका यत्न मनुष्य प्रथम करें ।



## देवोंके आधीन आयुष्य !

मनुष्यका समाज जितना अहिंसावृत्तिवाला होगा उतनी उसकी आयुष्यमर्यादा दीर्घ होसकती है । यह बात जितनी सिद्ध होगी उतनी सिद्ध करके आगे का मार्ग आक्रमण करना चाहिये । आगेका मार्ग यह है कि— “ अपना आयुष्य देवोंके आधीन है, देव हमारी रक्षा कर रहे हैं ” यह भाव मनमें धारण करना । इसकी सूचना प्रथम मंत्रके पूर्वार्धने दी है, उसका आशय यह है—

“ हे सब वसु देवो ! मनुष्यकी रक्षा करो । हे सब आदित्यो ! मनुष्यमें जागते रहो । ” ( मंत्र १ )

इस मंत्रमें भी दो भाग हैं । पहिले भागमें वसु देवोंकी रक्षक शक्तिके साथ संबंध बताया है और दूसरे भागमें आदित्य देवोंको मनुष्यके अंदर, मनुष्यके देहमें, जाग्रत रहनेकी सूचना दी है । ये दोनों बातें दीर्घ आयु करनेके लिये अत्यंत आवश्यक हैं । अब इनका संबंध देखिये—

सबसे पहिले मनुष्य यह विचार मनमें धारण करे कि संपूर्ण देव मेरी रक्षा कर रहे हैं, परब्रह्म परमात्मा सर्वेश्वर सर्व समर्थ प्रभु मेरी रक्षा कर रहा है और उसकी आधीनतामें सूर्यादि सब देव सदा मेरी रक्षा कर रहे हैं । मैं परमात्माका अमृत पुत्र हूं इसलिये मेरा परमपिता परमात्मा मेरी रक्षा करता था, करता है और करताही रहेगा । परमात्माके आधीन अन्य सब देव होनेके कारण वेभी उस परमात्माके पुत्रकी रक्षा अवश्य करेंगे ही ।

इस प्रकार संपूर्ण देव मेरा संरक्षण करते हैं इसलिये मैं निर्भय हूं यह विचार मनमें दृढ़ करके मनके अंदर जो जो चिंताके विचार आयेंगे उनको हटाना चाहिये और विश्वाससे मनकी ऐसी दृढ़ अवस्था बनानी चाहिये कि जिसमें चिंताका विचार ही न उठे और चिंतार हितनिर्भय होनेका भाव आनंद वृत्तिके साथ मनमें रहे । दीर्घायुष्यके लिये इस प्रकार परमात्मापर तथा अन्यान्य देवोंकी संरक्षक शक्तिपर अपना पूर्ण विश्वास रखना चाहिये, अन्यथा दीर्घ आयुष्य प्राप्त होना असंभव है ।

कई पाठक शंका करेंगे कि अन्यान्य देव हमारी रक्षा किस प्रकार कर रहे हैं? इस विषयमें इससे पूर्व कई स्थानोंपर उल्लेख आगया है । तथापि संक्षेपसे यहांभी इसका विचार करते हैं । पाठक जानते ही हैं कि प्रथम मंत्रमें “ वसु ” देवोंका उल्लेख है, ये सब जगत के निवासक देव होनेके कारण ही इनको “ वसु ” कहते हैं । सबके जो निवासक होते हैं वे सबकी रक्षा अवश्य ही करेंगे ।



सब वसुओं का भी परम वसु परमात्मा है क्यों कि वह जैसा सब जगत् को वसाता है इसी प्रकार जगत् के संरक्षक सब देवों को भी वसाता है । उसके बाद पृथ्वी, आप, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ये अष्टवसु हैं ऐसा कहा जाता है । भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य आदि के साथ हमारे क्षणक्षण के आयुष्यका संबंध है, इनमें से एक का भी संबंध हमसे टूट गया तो हमारा नाश होगा । इतना महत्व इनका है और इसी कारण इनके रक्षण में सदा मनुष्य रहता है ऐसा उपरवाले मंत्रमें कहा है । इससे स्पष्ट हुआ कि मनुष्य की रक्षा इन देवोंके कारण हो रही है और अति निःपक्षपातसे हो रही है । ये देव कभी किसी का पक्षपात नहीं करते हैं । सूर्य सब पर एकसां प्रकाशता है, वायु सबके लिये एकसां बह रहा है, जल सबके लिये आकाशसे गिरता है, पृथ्वी सबको समान तया आधार दे रही है । इस प्रकार ये सब देव न केवल सबकी रक्षा कर रहे हैं प्रत्युत सबके साथ निःपक्षपात का भी वर्ताव कर रहे हैं ।

हमारे जीवन के साथ इनका संबंध इतना घनिष्ठ है कि इनके बिना हमारा जीवन ही अशक्य है । वायुके बिना प्राण धारणा कैसी होगी ? सूर्य के बिना जीवनही असंभव होगा, इत्यादि प्रकार पाठक देखें और मनमें निश्चयपूर्वक यह बात धारण करें कि परमात्माके नियमके आधीन रहते हुए ये सब देव हमारी रक्षा कर रहे हैं ।

**हम क्या करते हैं ?**

सब देव तो हमारी रक्षा कर ही रहे हैं, परंतु हम क्या कर रहे हैं, हम उनकी रक्षा में रहनेका यत्न कर रहे हैं या उनकी रक्षासे बाहर होनेके यत्न में हैं ? इसका विचार पाठकोंको करना चाहिये । देखिये, परमात्माकी और देवोंकी रक्षासे हम कैसे बाहर जाते हैं — परमात्मापर जो विश्वास ही नहीं रखते वे परमात्माकी रक्षा से बाहर हो जाते हैं । दयामय परमात्मा तोभी उनकी रक्षा करता ही रहता है यह उनकी ही अपार दया है, परंतु ये अविश्वासी लोग उसकी अपार दयासे लाभ नहीं उठाते । अविश्वासके कारण जितनी हानि है किसी अन्य कारणसे नहीं हो सकती । दीर्घ आयुकी प्राप्ति के लिये इसी कारण मनमें परमात्मविषयक दृढ़ विश्वास चाहिये ।

इसके बाद सूर्य अपने प्रकाश से सबको जीवनामृत देनेद्वारा सब की रक्षा करही रहा है, परंतु मनुष्य सूर्य प्रकाशसे दूर रहते हैं, तंग गलियोंके तंग मकानोंमें रहते हैं, दिनभर कमरोंमें अपने आपको बंद रखते हैं और इस प्रकार सूर्यदेवकी संरक्षक शक्तिसे अपने आपको दूर रखते हैं । इनके लिये भगवान् सहस्ररश्मी सूर्यदेव क्या कर सकते हैं ?



इसी प्रकार वायु और जल आदि देवोंके विषय में समझना उचित है । ये देव तो सबकी रक्षा करही रहे हैं परंतु मनुष्योंको भी चाहिये कि वे इनकी उत्तम रक्षासे अपने आपको दूर न रखें और जहांतक होसके उतना प्रयत्न करके उनकी रक्षामें अपने आपको अधिक रखें ।

पाठक यहां समझही गये होंगे कि संपूर्ण देव मनुष्यमात्र की किस रीतिसे रक्षा कर रहे हैं और मनुष्य उनकी रक्षामें किस प्रकार दूर होते हैं और स्वयं अपना नुकसान किस प्रकार कर रहे हैं ।

### आदित्य देवोंकी जाग्रती ।

इस प्रथम मंत्रमें दीर्घ आयुष्य वर्धक एक महत्त्वपूर्ण बात कही है वह यह है— “ हे आदित्यदेवो ! इस मनुष्यमें जाग्रत रहो । ” मनुष्यके अंदर आदित्य से ही सब जीवन शक्ति आरही है । यह जीवन शक्ति जैसी मनुष्यमें कार्य करती है उसी प्रकार सब जगत्में कार्य कर रही है । इसी शक्तिसे सब जगत् चल रहा है । परंतु यहां मनुष्य का ही हमें विचार करना है । मनुष्य में यह आदित्य शक्ति मस्तिष्कमें रहती है, नेत्र में रहती है और पेट में रही है । मस्तिष्क में मज्जाकेंद्र चलाती है, पेटमें पाचक केंद्र को चेतना देती है और नेत्रमें देखनेका व्यापार कराती है । इनमें से कोई भी आदित्य शक्ति कम हुई तो भी मनुष्यका आयुष्य घटता जाता है ! मस्तिष्क का मज्जाकेंद्र आदित्य शक्तिसे हीन होगया तो तो संपूर्ण शरीर चेतना रहित हो जाता है, पेटका वाचक केंद्र आदित्य शक्तिसे हीन होगया तो हाजमा बिगड़ जाता है, नेत्रकी आदित्यशक्ति हटगई तो मनुष्य अंधा बनता है और उसके सब व्यवहार ही बंद हो जाते हैं । इतना महत्त्व इस आदित्य शक्तिका मनुष्यके अथवा प्राणीके शरीरमें है । इसलिये वेदमें कहा है कि —

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च । ऋग्वेद. १।११५।१

“ यह आदित्य सूर्य ही स्थावर जंगम जगत् का आत्मा है । ” पाठक इस मंत्रका आशय ध्यानमें रखें और अपने अंदरकी आदित्य शक्ति सदा जाग्रत रखनेका अनुष्ठान करें । सूर्यभेदन व्यायाम और सूर्यभेदी प्राणायाम द्वारा पेटके स्थान में रहनेवाली आदित्य शक्ति जाग्रत हो जाती है, ध्यान धारणा द्वारा मस्तिष्क की आदित्य शक्ति जाग्रत होती है, तथा त्राटक आदि अभ्यास द्वारा नेत्र की आदित्य शक्ति जाग्रत हो जाती है । इस प्रकार योगाभ्यास द्वारा अपने अंदरकी आदित्य शक्ति जाग्रत और बल-



युक्त करनेसे मनुष्य दीर्घजीवी हो सकता है ।

इस प्रथम मंत्रके ये उपदेश यदि पाठक ध्यानमें धारण करेंगे और इस उपदेशका योग्य अनुष्ठान करेंगे तो उनकी आयु बढ जायगी इसमें कोई संदेह ही नहीं है । “ समाजमें निर्भयता, परमेश्वरपर दृढनिष्ठा, वायु जल सूर्य आदि देवताओंसे अधिक संबंध करना और अपने अंदर आदित्य शक्तियोंकी जाग्रती करना ” यह संक्षेपसे दीर्घायु प्राप्त करनेका मार्ग है ।

इसी मार्गका थोडासा स्पष्टीकरण आगेके मंत्रोंमें है, वह अब देखिये—

### देवोंके पिता और पुत्र ।

इस आयुष्यवर्धक सूक्तके द्वितीय मंत्रमें कहा है कि “ हे देवो ! जो तुम्हारे पिता हैं और तुम्हारे पुत्र हैं वे मेरी बात सुनें ! मैं तुम्हारे ही आधीन इस मनुष्यको करता हूं, तुम इसको दीर्घ आयुष्य तक सुखसे पहुंचाओ । ” ( मंत्र २ )

इस द्वितीय मंत्रमें “ देव, देवोंके सब पिता और देवोंके सब पुत्र ये सब मनुष्यको सुखसे दीर्घ आयुष्य तक पहुंचानेवाले हैं ” ऐसा कहा है, यह सूचना मनन करने योग्य है । यह मंत्र ठीक समझमें आनेके लिये देव कौन हैं, उनके पिता कौन हैं और उनके पुत्र कौन हैं, इसका विचार करना यहां अत्यंत आवश्यक है । अथर्व वेदमें इन पिता पुत्रोंका वर्णन इस प्रकार आया है—

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।

यो वै तान्विद्यात्प्रत्यक्षं स वा अद्य महद्ब्रूते ॥ ३ ॥

प्राणापानौ चक्षुःश्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।

व्यानोदानौ वाङ्मनस्ते वा आकूतिमावहन् ॥ ४ ॥

कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत ।

कुतस्त्वष्टा समभवत्कुतो धाताऽजायत ॥ ८ ॥

इन्द्रादिन्द्रः सोमात्सोमो अग्निरग्निरजायत ।

त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताऽजायत ॥ ९ ॥

ये त आसन्दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।

पुत्रेभ्यो लोकं दत्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥ १० ॥

अथर्व ११ । ८ ( १० )



(पुरा)सबसे प्रथम (देवेभ्यः दश देवाः)देवोंसे दस देव (साकं अजायन्त) साथ साथ उत्पन्न हुए । जो इनको प्रत्यक्ष जानेगा, (सः अद्य महत् वदन्) वह बड़े ब्रह्मके विषयमें बोलेगा । वही ब्रह्मका ज्ञान कहेगा ॥ ३ ॥ प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, (अक्षितिः) अविनाशी बुद्धि, और (क्षितिः) नाशवान चित्त, व्यान, उदान, वाचा और मन ये दस देव तेरे (आकृतिं आवहन्) संकल्पको उठाते हैं ॥ ४ ॥ कहांसे इन्द्र, सोम, और अग्नि होगये? कहांसे त्वष्टा हुआ, और धाताभी कहांसे हो गया ? ॥ ८ ॥ इन्द्रसे इन्द्र, सोमसे सोम, अग्निसे अग्नि, त्वष्टासे त्वष्टा, और धातासे धाता हुआ है ॥ ९ ॥ (ये पुरा देवेभ्यः दश देवाः) जो पहिले देवोंसे दस देव हुए हैं, (पुत्रेभ्यो लोकं दत्वा) पुत्रोंको स्थान देकर वे स्वयं (कस्मिन् लोके आसते) किस लोक में बैठे हैं ? ॥ १० ॥

इन मंत्रोंमें देव, देवोंके पिता और पुत्र कौनसे हैं इसका वर्णन है । प्राण अपानादि दस देव इन्द्रादि देवोंसे बने हैं और वे पुत्र रूप देव इस शरीरमें रहते हैं, इन पुत्रदेवोंके पिता देव इस जगत्में हैं और उनके भी पिता परमात्मामें रहते हैं, इसका स्पष्टीकरण यह है— प्राणरूप देव मनुष्य शरीरमें है, यह जगत्में संचार करनेवाले वायुका पुत्र है, और इस वायुकाभी पिता -- वायुका भी वायु -- परमपिता परमात्मा है । इसी प्रकार चक्षुरूपी पुत्रदेव शरीरमें रहता है, उसका पिता सूर्यदेव द्युलोकमें है, और सूर्यका पिता -- सूर्यका भी सूर्य -- परमपिता परमात्मा है । इसी प्रकार अन्यान्य देवोंके विषयमें जानना योग्य है । यह विषय इससे पूर्व आ चुका है, इसलिये यहां अधिक विवरण की आवश्यकता नहीं है ।

सबका सारांश यह है कि पुत्र रूपी देव प्राणियोंके इन्द्रियों और अवयवोंमें अर्थात् शरीर में रहते हैं । इनके पितादेव भू-भुवः-स्वः इस त्रिलोकीमें रहते हैं और इन सूर्यादि देवोंके भी पिता विशेष शक्तिके रूपसे परमात्मामें निवास करते हैं ।

हमारा आंख सूर्यके विना कार्य करनेमें असमर्थ है और सूर्य परमात्माकी सौर महाशक्तिके विना अपना कार्य करनेमें असमर्थ है । इसी प्रकार संपूर्ण देवों और उनके पिता पुत्रोंके विषयमें जानना योग्य है । इन सबके आधीन मनुष्यका दीर्घायु बनना है ।

इस लिये जो दीर्घ आयुष्यके इच्छुक हैं वे भक्तियुक्त अंतःकरणसे अपना संबंध परम पिता परमात्मासे दृढ़ करें । यह परम पिता परमात्मा सूर्यका भी सूर्य, वायुका भी वायु प्राण का भी प्राण, अर्थात् देवोंका भी देव है और वही हम सबका पिता है । इसकी भक्ति यदि अंतःकरणमें दृढ़ हो गई तो मनकी समता स्थिर रह सकती है और उससे



दीर्घ आयु प्राप्त होती है । इस प्रकार देवोंके पितासे मनुष्यका संबंध होता है और यह संबंध अत्यंत लाभ कारी है ।

वायु सूर्य आदि देवोंसे हमारा संबंध किस प्रकार है और उसका हमारे आरोग्य और दीर्घ आयुसे कितना घनिष्ठ संबंध है, यह हमने प्रथम मंत्रके व्याख्यान के प्रसंगमें वर्णन किया ही है, इस लिये उसको दुहरानेकी यहां आवश्यकता नहीं है ।

प्राण, चक्षु, कर्ण आदि देवपुत्र हमारे शरीरमें ही रहते हैं । योगादि साधनोंसे इनका बल बढ सकता है । इस लिये इनके व्यायामके अनुष्ठानसे पाठक इनकी शक्ति विकसित करें और अपना शरीर नीरोग और बलवान बनाकर दीर्घायुके अधिकारी बनें ।

इस प्रकार मनुष्यका दीर्घ आयुष्य के साथ देवों, देवों के पितरों और देवों के पुत्रों का संबंध है । यह जान कर योग्य अनुष्ठान द्वारा आयुष्यवर्धन का प्रयत्न करें ।

परमपिता परमात्मा यद्यपि एक ही है तथापि वह संपूर्ण सूर्य, चंद्र, वायु, रुद्र आदि अनेक देवताओं की विविध शक्तियों से युक्त है, इसलिये संपूर्ण देवताओं का सामुदायिक पितृत्व उसमें है, ऐसा काव्यमय वर्णन मंत्रमें किया है वह उचितही है । इस प्रकार इस मंत्रमें मनुष्यके दीर्घ आयुष्यके अनुष्ठान का मार्ग इस मंत्रमें उत्तम और स्पष्ट शब्दों द्वारा बताया है । पाठक इसका विशेष विचार करें ।

### देवोंके स्थान

तृतीय मंत्रमें देवोंके स्थान कहे हैं । यह तृतीय मंत्र यह आशय प्रकट करता है—  
“ द्युलोक, अंतरिक्ष, पृथिवी, औषधि, पशु, जल, इन स्थानोंमें देव रहते हैं, वे मनुष्य के लिये दीर्घ आयु करते हैं और जिनकी सहायतासे सेंकड़ों अपमृत्यु दूर हो जाते हैं ।”

( मंत्र ३ ) यह मंत्र बड़ा विचार करने योग्य है ।

द्युलोकमें सूर्यादि देव, अंतरिक्षमें वायु, रुद्र, इन्द्र, चन्द्र आदि देव, पृथ्वीमें अग्नि आदि देव, औषधियोंमें रसात्मक सोमदेव, पशुओंमें दुग्धादिरूपसे अमृत देव, जलमें वरुण आदि देव निवास करते हैं । ये सब देव मनुष्यकी आयु बढानेके कार्यमें सहायक होते हैं । सूर्य देव जीवन देता है, वायु प्राण देता है; इन्द्र और चन्द्र क्रमशः सुषुप्ति और जाग्रतिके व्यापक और अव्यापक मनके सञ्चालक देव हैं, रुद्र स्वयं प्राणोंका चालक है, अग्नि वाणीसे संबंध रखता है, औषधिवनस्पतियोंसे अन्न तथा दवाइयां बनकर मनुष्यकी सहायता करती हैं, पशुओंसे दुग्ध रूपी अमृत मिलता है, जल देवसे वीर्य बनता है, इस प्रकार अन्यान्य देव मनुष्यके सहायक हैं । परंतु प्रयत्न द्वारा मनुष्यने उनसे लाभ उठानेका पुरुषार्थ करना आवश्यक है ।



इन सब देवोंसे अपना संबंध सुरक्षित करके, उनसे यथायोग्य लाभ लेनेका यत्न करनेसे आयुष्य बढ़ सकता है । इन देवोंसे नाना प्रकारकी चिकित्साएं बनी हैं, द्युलोक के देवोंसे सौरचिकित्सा, वर्णचिकित्सा, प्रकाशकिरण-चिकित्सा; अंतरिक्ष स्थानीय देवोंसे वायुचिकित्सा, विद्युच्चिकित्सा, मानसचिकित्सा अथवा चांद्रचिकित्सा; पृथ्वीस्थानीय देवोंसे अग्निचिकित्सा, खनिजपदार्थोंसे रसचिकित्सा, शस्त्रचिकित्सा, औषधियोंसे तथा वनस्पतियोंसे भैषज्यचिकित्सा, पशुओंके दूधसे दुग्धचिकित्सा अर्थात् पशुओंको विविध औषधियां खिलाकर तथा विविध रंगोंकी गौओंके दूध का उपयोग करनेसे, तथा पशुके मूत्रादिके उपयोगसे विविध चिकित्साएं सिद्ध होती हैं, जलसे जल-चिकित्सा, इस प्रकार अनेकानेक चिकित्साएं होती हैं ।

इन सब चिकित्साओंका अर्थ ही यह है कि विविध रीति से इन सब देवोंकी दिव्य शक्तियोंसे लाभ उठाना । प्राचीन कालके ऋषिमुनियोंने इन सब देवोंसे लाभ उठानेके जो जो प्रयत्न किये, उनका फल ही ये सब चिकित्साएं हैं । आजकल भी इस दिशासे विविध प्रयत्न हो रहे हैं । इन देवताओंमें विविध और अनंत शक्तियां हैं, उनकी समाप्ति नहीं होगी, इसलिये मनुष्योंको विविध रीतिसे यत्न करके इन देवताओंसे विशेष लाभ उठानेकेलिये यत्न करना चाहिये । इतने प्राचीन कालमें ऋषिलोक यह उद्योग करते थे और लाभ उठाते थे और दीर्घजीवी भी बने थे । यह सिल सिला टूट गया है, तथापि आजकल प्रयत्न करनेपर उसी मार्गसे बहुत खोज होना संभव है । जो पाठक इस क्षेत्रमें कार्य कर सकते हैं कार्य करें और विद्याकी उन्नति करें तथा यशके भागी बनें । अस्तु । इस प्रकार इन देवताओं की शक्ति अपने अंदर लेने और उस शक्तिको अपने अंदर स्थिर करनेसे मनुष्य दीर्घ आयुष्य प्राप्त कर सकता है ।

साधारणसे साधारण प्रयत्नसे भी बड़ा लाभ हो सकता है । जैसा सूर्य किरणों में अपना नंगा शरीर तपानेसे, वायु में नंगे शरीर घूमनेसे, जलमें तैरनेसे, उत्तम औषधियोंका रस पीनेसे और गोदुग्ध आदिके सेवनसे साधारण परिस्थितिमें रहने वाला मनुष्य भी बहुत लाभ उठा सकते हैं । फिर जो विविध यंत्र निर्माण द्वारा इन दैवी शक्तियोंसे अधिक लाभ उठानेका पुरुषार्थ करेंगे उनके विषयमें क्या कहना है । इस प्रकार ये देवताएं गौके समान हैं, इनसे जितना दूध दोहना चाहो आप उतना दुह सकते हैं । इनमें अखंड अमृत रस भरा है । जो जितना पुरुषार्थ करेगा उसको उतना अमृत मिलेगा और वह उतना अमर होगा ।



## देवताओंके चार वर्ग ।

इस प्रकार तीन मंत्रोंमें देवताओंमें अमृतरस प्राप्त करने द्वारा अमरत्व प्राप्त करने अर्थात् दीर्घायु बननेके अनुष्ठान का स्वरूप बतानेके पश्चात् चतुर्थ मंत्रमें देवताओंके चार वर्गोंका वर्णन किया है और इन देवताओंको अपने सहकारी सदस्य बनानेका उपदेश किया है । इस चतुर्थ मंत्रका आशय यह है—

“ देवोंमें प्रयाज, अनुयाज, हुतभाग और अहुताद ये चार वर्गके देव हैं । इन देवोंसे ये पाँचों दिशाएं विभक्त हुई हैं । ये सब देव मनुष्यके सहकारी सभ्य बनें । ” (मंत्र४)

इन चार वर्गोंके देवोंके लक्षण इनके वाचक शब्दोंसे ही व्यक्त होते हैं । ये लक्षण देखिये—

१ प्रयाजाः = विशेष यजन करने वाले, २ अनुयाजा=अनुकूल यजन करने वाले, ३ हुतभागाः=हवन का भाग लेने वाले, ४ अहुतादः=हवनका भाग न खानेवाले ।

पाठक इन देवोंको अपने शरीरमें सबसे प्रथम देखें— ( १ ) जिनपर इच्छा शक्ति-का परिणाम नहीं होता, परंतु जो अवयव अपनी ही गतिसे कार्य करते हैं उन अवयवों का नाम प्रयाज है, जैसे हृदय आदि अवयव । ( २ ) जो अवयव अपनी इच्छाशक्ति से अनुकूल कार्य में लगाये जा सकते हैं उनको अनुयाज कहते हैं, जैसे हाथ, पांव, आंख आदि । ( ३ ) हुत भाग वह इंद्रिय हैं जो भोग की इच्छुक हैं और कार्य करने से थकती हैं और विश्रामसे तथा अन्नरस मिलनेसे पुष्ट होती हैं । (४) शरीरमें अहुताद केवल ग्यारह प्राणही हैं, क्योंकि ये प्राण शरीर में सदा कार्य करते हैं और स्वयं कुछभी भोग नहीं लेते, जन्मसे लेकर मरनेतक बराबर कार्य करते रहते हैं ।

इस प्राणका वर्णन तथा अन्य इंद्रियोंका वर्णन इसी प्रकार उपनिषदोंमें किया है । प्राणाग्निहोत्र उपनिषदमें शरीर यज्ञके प्रयाज और अनुयाज का वर्णन इस प्रकार है—

शारीरयज्ञस्य ... के प्रयाजाः केऽनुयाजाः ॥

महाभूतानि प्रयाजाः ॥ भूतान्यनुयाजाः ॥ प्राणाग्निहोत्र० ॥ ३-४

शरीरमें चले हुए यज्ञके प्रयाज और अनुयाज कौन हैं ? महाभूत प्रयाज और भूत अनुयाज हैं । इसीप्रकार हुतभाग और अहुताद विषयक वर्णन उपनिषदोंमें तथा ब्राह्मणों में लिखा है जिसका तात्पर्य ऊपर दियाही है ।

इसी आभ्यंतर यज्ञका नकशा बाह्य यज्ञमें किया जाता है, उसका वर्णन यहां करने की आवश्यकता नहीं है । अनुयाजों से प्रयाज अधिक महत्त्व के हैं तथा हुतभागों से अहुताद विशेष महत्त्व रखते हैं । जो शरीर शास्त्र जानते हैं उनको इसका अधिक विस्तार



करनेकी आवश्यकता नहीं है क्यों कि वे जानते ही हैं कि इच्छा शक्तिकी नियंत्रणासे चलनेवाले हस्तपादादि अवयवोंकी अपेक्षा अनिच्छासे कार्य करनेवाले हृदयादि अंतरवयव अधिक महत्त्वके हैं । तथा अहुताद अर्थात् कुछभी भोग न लेते हुए जन्मसे मरनेतक अविश्रांत कार्य करनेवाले प्राणादिक अधिक श्रेष्ठ हैं और नेत्र कर्ण आदि अवयव जो श्रमसे थकते हैं, विश्राम करते हैं और भोगभी भोगते हैं ये उनसे गौण हैं ।

यह मुख्य गौणका भेद देखकर दीर्घायु प्राप्तिका अनुष्ठान करनेवाले को उचित है, कि वह अपने अंदर के मुख्य देवों अर्थात् इंद्रिय शक्तियोंको अधिक बलवान् करे और अन्यो को भी बलवान करे, परंतु यह ख्याल रखे कि गौण अवयवों की शक्ति बढाने के कार्य करते हुए मुख्य अवयवोंकी क्षीणता न होने दें । उदाहरण के लिये पहिलवानोंके व्यायामही लीजिये । पहिलवान लोग अपने शरीर के पुट्टोंको बलवान बनानेके यत्न बहुत करते हैं, परंतु हृदय आदि अंतरवयवों का ख्याल नहीं करते हैं, इससे ऐसा होता है कि उनका स्थूल शरीर बडा बलशाली होता है, परंतु हृदयादि विशेष महत्त्वके अवयव कमजोर हो जाते हैं । इसका परिणाम अल्पायुमें उनकी मृत्यु हो जाती है ।

यदि ये लोग साथ साथ हृदयको भी बलवान बनानेका यत्न करेंगे तो ऐसा नहीं होगा । इस लिये यहां कहना यह है कि अपने अंदर जो देवताओंके अंश रहते हैं उनमें मुख्य अवयवोंका विशेष ख्याल करना, उनकी शक्ति बढानेका और उनकी कमजोरी न बढे इसका विशेष विचार करना चाहिये । इसके पश्चात् गौण अवयवोंका विचार करना उचित है । श्वाससंस्थान, मज्जासंस्थान, और हृदयसंस्थान आदि महत्त्व पूर्ण संस्थानोंका बल बढना चाहिये और स्नायु आदि उनके अनुकूल रहने योग्य शक्ति शाली बनने चाहिये ।

मंत्रका प्रयाज शब्द मुख्य का भाव और अनुयाज शब्द गौण का भाव बताता है । ये सब देव हमारे चारों ओर सब दिशाओंमें विभक्त हुए हैं और उन्होंने संपूर्ण स्थान को विभक्त किया है । ये सब देव हमारे शरीरमें चलनेवाले शतसांवत्सरिक सत्र के भागी बनें, अर्थात् ये इस सौवर्ष चलनेवाले जीवन रूपी महायज्ञके हिस्सेदार हैं ही, परंतु ये अपना कार्य करनेमें समर्थ बनकर अपना यज्ञका भाग उत्तम रीतिसे पूर्ण करने में समर्थ हों, अपना यज्ञका भाग उत्तम रीतिसे करें और निर्विघ्नातासे यह शतसांवत्सरिक यज्ञ चलाने में हमारे सहकारी बनें ।

इस प्रकार इन मंत्रोंका आशय है, ये मंत्र स्पष्ट हैं और बहुत बोधप्रद हैं । यदि पाठक इस ढंगसे अनुष्ठान करेंगे तो उनको निःसंदेह लाभ हो सकता है । यह “ आयुष्य गण ” का सूक्त है और पाठक इस विषयके अन्य सूक्तों के साथ इसका विचार करें ।



# आशा-पालक-सूक्त ।

( ३२ )

( ऋषिः—ब्रह्मा । देवता—आशापालाः, वास्तोष्पतिः )

आशानामाशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतेभ्यः ।

इदं भूतस्याध्यक्षेभ्यो विधेम हविषा वयम् ॥ १ ॥

य आशानामाशापालाश्चत्वार स्थन देवाः ।

ते नो निर्ऋत्याः पाशेभ्यो मुञ्चतांहसो अंहसः ॥ २ ॥

अस्त्रामस्त्वा हविषा यजाम्यश्लोणस्त्वा घृतेन जुहोमि ।

य आशानामाशापालस्तुरीयो देवः स नः सुभूतमेह वक्षत् ॥ ३ ॥

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।

विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दशेम सूर्यम् ॥ ४ ॥

अर्थ — ( भूतस्य अध्यक्षेभ्यः ) जगत् के अध्यक्ष ( अमृतेभ्यः ) अमर ( आशानां चतुर्भ्यः आशापालेभ्यः ) दिशाओंके चार दिशापालकोंके लिये ( वयं ) हम सब ( हविषा इदं विधेम ) हविर्द्रव्यसे इस प्रकार अर्पण करते हैं ॥ १ ॥ हे ( देवाः ) देवो ! ( ये आशानां चत्वारः आशापालाः स्थन ) जो तुम दिशाओंके चार दिशापालक हो ( ते नः ) वे तुम हम सबको ( निर्ऋत्याः पाशेभ्यः ) अवनति के पाशोंसे तथा ( अंहसः अंहसः ) हर एक पापसे ( मुञ्चतां ) छुडाओ ॥ २ ॥ ( अ-स्त्रामः ) न थका हुआ मैं ( हविषा त्वा यजामि ) हविर्द्रव्यसे तेरा यजन करता हूँ । ( अ-श्लोणः त्वा घृतेन जुहोमि ) लंगडा न होता हुआ तुझको घीसे अर्पण करता हूँ । यह ( आशानां आशापालः तुरीयः देवः ) जो दिशाओंका दिशापाल चतुर्थ देव है ( सः नः सुभूतं इह आवक्षत् ) वह हम सबको उत्तम प्रकारसे यहां पहुंचावे ॥ ३ ॥ ( नः मात्रे उत पित्रे स्वस्ति अस्तु ) हम सबकी माता के लिये तथा हमारे पिताके लिये आनंद होवे । तथा ( गोभ्यः जगते पुरुषेभ्यः स्वस्ति ) गौवोंके लिये, चलने फिरनेवालों के लिये और पुरुषोंके लिये सुख होवे । ( नः विश्वं सुभूतं सुविदत्रं अस्तु ) हम सबके लिये सब प्रकारका ऐश्वर्य और उत्तम



ज्ञान हो और हम ( सूर्य ज्योक् एव दशेम ) सूर्य को बहुत काल तक देखते रहें अर्थात् हम दीर्घायुषी हों ॥ ४ ॥

भावार्थ—चार दिशाओंके चार अमर दिक्पाल हैं, वे इस बने हुए जगतके अध्यक्ष हैं। उनकी पूजा हम करते हैं ॥ १ ॥ चार दिशाओंके चार दिक्पाल हैं, वे हमें हरएक पापसे बचावें और दुर्गतिसे भी हमारा छुटकारा करें ॥ ३ ॥ मैं न थकता हुआ उनका सत्कार करता हूँ, लंगड़ा लूलान बन कर मैं उनको घी देता हूँ, जो इन चार दिक्पालोंमें चतुर्थ देव है वह हमें सुखपूर्वक उत्तम अवस्था तक पहुंचावे ॥ ५ ॥ हमारे माता पिता, हमारे अन्य इष्टमित्र, हमारे गाय घोड़े आदि पशु तथा जो भी हमारे प्राणी हों वे सब इस इस प्रकार सुखी हों। हमारा सब प्रकारसे अभ्युदय होवे और हमारा ज्ञान उत्तम प्रकारसे बढ़े तथा हम दीर्घायु हों ॥ ४ ॥

### दिक्पाल ।

पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर ये चार दिशाएं हैं। उनकी रक्षा करनेवाले चार दिक्पाल हैं, वे अपनी अपनी दिशाका संरक्षण कर रहे हैं। ये विश्वके रक्षक इतने दक्ष हैं कि इनको न समझते हुए कोई मनुष्य किसी भी प्रकार बुरा कार्य कर नहीं सकता। हरएक मनुष्यको उचित है कि वह उक्त बात मनमें धारण करे और इन दैवी लोकपालोंके दण्ड के योग्य कोई आचरण न करे।

राजा अपने राज्यकी व्यवस्था और राज्यका सुशासन करनेके लिये अपने राज्यमें चार विभाग करके उनपर एक एक मुख्य शासक अधिकारी नियत करे, वह अधिकारी दक्षतासे अपने विभागका योग्य शासन करे। दुष्टोंको दंड दे और सुष्टोंका प्रतिपालन करे। और कहांभी अनाचार होने न दें। यह राष्ट्रीति का पाठ इस सूक्तसे हमें मिलता है।

विश्व के अंदर राष्ट्र, और राष्ट्र के अंदर व्यक्तिका देह है। और इन तीनों स्थानों में नियम एक जैसा ही है। इस लिये राष्ट्र शासन का विचार होने के पश्चात् जिन व्यक्तियोंका राष्ट्र बनता है उन व्यक्तियोंके अंदर चार दिशाओंके चार दिक्पाल किस रूपमें हैं और उनका शासन इस अध्यात्मभूमिकामें कैसा चल रहा है और उससे हमें वैयक्तिक सदाचार के विषय में कौनसा बोध लेना है, इस का विचार अव करना चाहिये।



## देहमें चार दिक्पाल ।

देहमें मुख को “ पूर्व द्वार ” कहते हैं, और गुदाको “ पश्चिम द्वार ” कहते हैं । ये द्वार एक दूसरेके साथ संबंधित भी हैं । पूर्व द्वारसे अर्थात् मुखसे अन्न पान शरीरके अंदर घुसता है, वहां का कार्य करता है और शरीर के मलादिके रूपमें परिवर्तित होकर पश्चिम द्वारसे अर्थात् गुदासे बाहर हो जाता है । अर्थात् पोषक अन्नका प्रवेश पूर्व द्वारसे इस शरीरमें होता है और मल को दूर करनेका कार्य पश्चिम द्वारसे होता है । दोनों कार्य शरीरके स्वास्थ्य के लिये अत्यंत आवश्यक ही हैं । परंतु यह तो स्थूल शरीरके स्वास्थ्य के साथ का संबंध है, इससे और दो द्वार हैं जिनका संबंध मनुष्यकी उन्नति या अधोगति के साथ अधिक है; वे दो द्वार मनुष्यके शरीरमें ही हैं, जिनको “ उत्तर द्वार ” तथा “ दक्षिण द्वार ” कहते हैं ।

“ उत्तर द्वार ” मस्तकमें है जिसका नाम “ विद्यति द्वार ” उपनिषदोंमें कहा है, इस द्वारसे शरीरमें जीवात्माका प्रवेश होता है और इसी द्वारसे अपने प्रयत्नसे जिस समय यह बाहर जाता है उस समय से यह जन्ममरण के दुःखसे छूटता है और पुनः शरीरके बंधनमें पड़ता नहीं । बालक के मस्तकमें छोटेपन में इस स्थानपर हड्डी होती नहीं । इसका नाम उत्तर द्वार है क्योंकि इस द्वार से जानेसे उच्चतर अवस्था प्राप्त होती है ।

यह मज्जा केन्द्रके साथ संबंधित है । इसी मज्जा केन्द्रके साथ संबंध रखनेवाला निचला द्वार शिख है जिससे वीर्यका पात होता है । इसके योग्य नियम पालनसे सु-योग्य संतति उत्पन्न होती है, परंतु इसके अनियम में चलानेसे मनुष्य की अधोगति होती है । ये दो द्वार मनुष्यको उच्च और नीच बनानेमें समर्थ हैं । ब्रह्मचर्य पालन द्वारा उत्तर मार्गसे जानेका उपनिषदोंका वर्णन इसी उत्तर मार्गको सूचित करता है, इसीका नाम “ उत्तरायण ( उत्तर+अयन ) ” अर्थात् उत्तर मार्गसे जाना है । इसके विरुद्ध “ दक्षिणायन ” अर्थात् दक्षिण मार्गसे जाना है, जिसके संयमसे उत्तम गृहस्थ धर्म पालन पूर्वक उन्नति होना संभव है, परंतु असंयमसे मनुष्य इतना गिरता है कि उसका कोई ठिकाना ही नहीं होता । ये दो मार्ग मज्जातंतुओंके साथ संबंध रखनेवाले हैं ।

इस प्रकार पूर्वद्वार और पश्चिमद्वार ये शरीर में अन्ननलिका के साथ संबंध बताते हैं तथा उत्तर द्वार और दक्षिण द्वार ये दो मार्ग मज्जा तंतुओंके साथ संबंध रखते हैं । ये चार द्वारों के चार संरक्षक देव हैं परंतु ये देव राक्षसोंके हमले के अंदर दबने नहीं चाहिये ।



## आशा और दिशा ।

इस सूक्तमें दिशा वाचक “ आशा ” शब्द है और, उसके पालक का नाम “आशा-पाल ” मंत्रोंमें आया है । “ आशा ” शब्दके दो अर्थ हैं । एक “ दिशा ” और दूसरा “ आशा, महत्वाकांक्षा, उम्मीद ” । मनुष्यकी जैसी आशा, इच्छा, महत्वाकांक्षा और उम्मीद होती है उसी प्रकारकी उसकी कार्य करनेकी दिशा होती होती है । मनुष्य जिस समय आशाहीन होजाता है , निराश होता है, हताश होता है, उस समय वह इस जगत्से हटनेका या मर जानेका इच्छुक होता है । यह विचार यदि पाठकोंके मन में जम जायगा, तो उन को पता लग जायगा कि यह सूक्त मनुष्य के साथ कितना घनिष्ठ संबंध रखता है ।

जिस समय “ आशा ” शब्दका अर्थ “ आशा, आकांक्षा, ” आदि किया जाता है उस समय यही सूक्त मनुष्यका अभ्युदयका मार्ग बताता है । तथा जिस समय इसी “ आशा ” शब्दका अर्थ “ दिशा ” किया जाता है, उस समय यही सूक्त बाह्य जगत् तथा राष्ट्र के प्रबंध का भाव बताता है । सूक्तकी यह शब्दरचना विशेष गंभीर है और वह हरएक को वेदकी अद्भुत वर्णन शैलीका स्वरूप बता रही है ।

### सूक्त का मनुष्यवाचक भावार्थ !

मनुष्य की चार आशाएँ हैं, उनके चार अमर पालक हैं । इन भूताध्यक्षोंकी हवनसे हम पूजा करते हैं ॥ १ ॥ मनुष्यकी चार आशाओंके चार पालक हैं, वे हमें पापसे बचावें और दुष्ट अवस्थासे भी बचावें ॥ २ ॥ मैं न थकता हुआ और अंगोंसे दुर्बल न होता हुआ हविसे तथा घृतसे इनको तृप्त करता हूँ । इन चार आशाओंके पालकोंमें से चतुर्थ पालक जो है वह हमें उत्तम आनंदको प्राप्त करनेमें सहायकारी होवे ॥ ३ ॥ इनकी सहायतासे हमारे माता, पिता, इष्ट मित्र, गाय घोड़े आदि सब सुखी हों । हमारा अभ्युदय होवे और हम ज्ञानी बनकर दीर्घायु बनें ।

केवल एक “ आशा ” शब्दका अर्थ ठीक प्रकार ध्यानमें आनेसे व्यक्ति विषयक उन्नतिके मार्गके संबंधमें कैसा उत्तम उपदेश मिल सकता है यह पाठक यहां देखें । यह उपदेश इतना महत्त्व पूर्ण है कि इसके अनुसार चलनेसे मनुष्य ऐहिक अभ्युदय तथा पारमार्थिक निश्चयस प्राप्त कर सकता है । इस सूक्त पर बहुत लिखा जा सकता है परंतु यहां संक्षेपसे ही इसका विवरण करेंगे —



# वैदिक धर्म के ग्रंथ ।

## ( १ ) स्वयंशिक्षक माला ।

- वेदका स्वयंशिक्षका १ प्रथम भाग ... मूल्य १॥ )  
 " " २ द्वितीय भाग ... " १॥ )

## ( २ ) योगसाधनमाला ।

- १ संध्योपासना । ... मूल्य १॥ )  
 २ संध्याका अनुष्ठान । ... " ॥ )  
 ३ वैदिक प्राण विद्या । ... " १ )  
 ४ ब्रह्मचर्य ( सचित्र ) । ... " १ )  
 ५ योगसाधनकी तैयारी । ... " १ )  
 ६ योगके आसन । ( सचित्र ) ... " २ )  
 ७ सूर्यभेदनव्यायाम सचित्र ... " ॥ )

## ( ३ ) यजुर्वेद स्वाध्याय ।

- १ यजु. अ. ३० । नरमेध । मूल्य मूल्य १ )  
 २ यजु. अ. ३२ । एकेश्वर उपासना । ... " ॥ )  
 ३ यजु. अ. ३६ । शांतिका उपाय । ... " ॥ = )

## ( ४ ) देवतापरिचय ग्रंथमाला ।

- १ रुद्र देवता परिचय । .. मूल्य ॥ )  
 २ ऋग्वेदमें रुद्र देवता । ... " ॥ = )  
 ३. ३३ देवताओंका विचार । ... " = )  
 ४ देवताविचार । ..... " = )  
 ५ अग्निविद्या । ... " १॥ )

## ( ५ ) धर्म शिक्षाके ग्रंथ

- १ बालकधर्मशिक्षा । प्रथमभाग । मू. - )  
 २ बालकधर्मशिक्षा । द्वितीयभाग । " = )  
 ३ वैदिक पाठमाला । प्रथम पुस्तक " = )

## ( ६ ) उपनिषद् ग्रंथमाला ।

- १ केन उपनिषद् .... मूल्य १। )  
 २ ईश उपनिषद् ... " ॥ = )

## ( ७ ) आगम-निबंध-माला

- १ वैदिकराज्यपद्धति । ... मू. १- )  
 २ मानवी आयुष्य । ... " १ )  
 ३ वैदिकसभ्यता ... " ॥ )  
 ४ वैदिक चिकित्साशास्त्र । ... " ॥ )  
 ५ वैदिक स्वराज्य की महिमा । ... " ॥ )  
 ६ वैदिक सर्प विद्या । .... " ॥ )  
 ७ मृत्युको दूर करनेका उपाय । ... " ॥ )  
 ८ वेदमें चर्चा । .... " ॥ )  
 ९ शिवसंकल्पका विजय । ... " ॥ )  
 १० वैदिक धर्मकी विशेषता ... " ॥ )  
 ११ तर्कसे वेदका अर्थ । .... " ॥ )  
 १२ वेदमें रोगजन्तु शास्त्र । ... " = )  
 १३ ब्रह्मचर्यका विघ्न । .... " = )  
 १४ वेदमें लोहेके कारखाने । ... " १- )  
 १५ वेदमें कृषिविद्या । ... " = )  
 १६ वैदिक जलविद्या । ... " = )  
 १७ आत्मशक्तिका विकास । ... " १- )  
 १८ वैदिक उपदेश माला ... " ॥ )

## ( ८ ) ब्राह्मण- बोध-माला ।

- १ शतपथ बोधामृत । ... " १ )

## ( ९ ) अन्य पुस्तक ।

- १ वैदिक यज्ञसंस्था प्रथम भाग ... " १ )  
 २ " " द्वितीय " ... " १ )  
 ३ छूत और अछूत प्रथम भाग ... " १ )  
 ४ " " द्वितीय " ... " ॥ )

स्वाध्याय मंडल, औष ( जि० सातारा )



# ‘केन’ उपनिषद् ।

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है—

१ केन उपनिषद् का मनन, २ उपनिषद् ज्ञान का महत्त्व, ३ उपनिषद् का अर्थ, ४ सांप्रदायिक झगडे, ५ “ केन ” शब्द का महत्त्व, ६ वेदान्त, ७ उपनिषदों में ज्ञान का विकास, ८ अग्नि शब्दका भाव, ९ उपनिषद् के अंग, १० शांतिमंत्रोंका विचार, ११ तीनों शांति मंत्रों में तत्त्व ज्ञान, १२ तीन शांति योंका भाव, १३ ईश और केन उपनिषद्, १४ “ यक्ष ” कौन है ?, १५ हैमवती उमा, १६ पार्वती कौन है ? १७ पर्वत, पार्वती, रुद्र, सप्तर्षि और अरुंधती, १८ इंद्र कौन है? १९ उपनिषद् का अर्थ और व्याख्या, २० अथर्ववेदीय केन सूक्तका अर्थ और व्याख्या, २१ व्याष्टि, समष्टी और परमेष्टी, २२ त्रिलोकी

२३ अथर्वाका सिर, २४ ब्रह्मज्ञानी की आयुष्य मर्यादा, २५ ब्रह्म नगरी, अयोध्या, आठ चक्र, २६ आत्मवान् यज्ञ, २७ अपनी राजधानीमें ब्रह्मका प्रवेश, २८ देवी भागवतमें देवी की कथा, २९ वेदका वागांमृणी सूक्त, इंद्र सूक्त, वैकुण्ठ सूक्त, अथर्व सूक्त, ३० शाक्तमत, देव और देवताकी एकता ३१ वैदिक ज्ञान की श्रेष्ठता ।

इतने विषय इस पुस्तक में आगये हैं, इस लिये उपनिषदों का विचार करने वालोंके लिये यह पुस्तक अवश्य पढने योग्य है ।

मूल्य १। ) डाकव्यय= ) है ।

मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि० सातारा )

यज्ञकी पुस्तक

## वैदिक यज्ञ संस्था ।

प्रथम और द्वितीय भाग ।

प्रतिभागका मूल्य १ ) रु. डाकव्यय । )

प्रथम पुस्तक में निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है—

प्राचीन संस्कृत निबंध ।

१ पिष्ट-पशु-मीमांसा । लेख १

२ ” ” ” ” २

३ लघु पुरोडाश मीमांसा ।

भाषाके लेख ।

४ दर्श और पौर्णमास ( ले०-श्री० पं० बुद्धदेवजी )

५ अद्भुत कुमार-संभव ” ” ”

६ बुद्ध के यज्ञ विषयक विचार

( ले०-श्री० पं० चंद्रमणिजी )

७ यज्ञका महत्त्व

( संपादकीय )

८ यज्ञका क्षेत्र

”

९ यज्ञका गुढ तत्त्व

”

१० औषधियों का महामख

”

११ वैदिक यज्ञ और पशुहिंसा

( ले.- श्री. पं. धर्मदेवजी )

१२ क्या वेदों में यज्ञों में पशुओंका बलि करना

लिखा है? ( ले० श्री० पं० पुरुषोत्तम लालजी )

मंत्री--स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

## वैदिक उपदेश माला !

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिये बारह उपदेश है । इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन

अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी ।

मूल्य ॥ ) आठ आने । डाक व्यय— ) एक आना ।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )



# Employment for millions STUDENTS' OWN MAGAZINE.

A Monthly English Teacher—Careers for Young men a speciality.

ANNUAL SUBSCRIPTION WITH SUPPLEMENTS, Rs. 3.

GET YOUR COPY FOR MARCH NUMBER RESERVED FOR 6 ANNAS STAMPS.

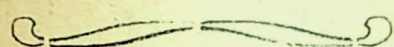
SAMPLE COPY POSITIVELY No.

APPLY TO—

CAPITAL INDUSTRIAL BUREAU, RAM GALL, LAHORE.



## आसनों का चित्रपट !



आसनों का व्यायाम लेनेसे सहस्रों मनुष्योंका स्वास्थ्य सुधर चुका है, इस लिये आसन व्यायामसे स्वास्थ्य लाभ होनेके विषयमें अब किसी को संदेह ही नहीं रहा है। अतः लोग सब आसनोंके एक ही कागज पर छपे हुए चित्रपट बहुत दिनोंसे मांग रहे थे। वैसे चित्रपट अब मुद्रित किये हैं २०—३० इंच कागज पर सब आसन दिखाई दिये हैं। यह चित्रपट कमरे में दिवार पर लगाकर उसके चित्रोंको देख कर आसन करनेकी बहुत सुविधा अब हो गई है।

मूल्य केवल ८०) तीन आने और डाक व्यय ८०) एक आना है। स्वाध्याय मंडल, औंध ( सातारा )

कुस्तो, लाठी, पटा, बार वगैरह के

सचित्र व्यायाम मासिक

हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी और गुजराती इन चार भाषाओं में

प्रत्येक का मूल्य २॥ )

रखवा गया है। उत्तम लेखों और चित्रों से पूर्ण होने से देखनेलायक है। नमूने का अंक मुफ्त नहीं भेजा जाता। वही पी. खर्च अलग लिया जाता है। ज्यादा हकीकतके लिये लिखो

मैनेजर,—व्यायाम, राजपूरा, बडोदा

## योगमीमांसा ।

त्रैमासिक पत्र

संपादक—श्रीमान् कुवलयानन्द जी महाराज ।

कैवल्यधाम आश्रममें योग शास्त्र की खोज हो रही है जिस खोजका परिणाम आश्चर्यजनक सिद्धियोंमें हुआ है, उन आविष्कारोंका प्रकाशन इस त्रैमासिक द्वारा होगा। प्रत्येक अंकमें ८० पृष्ठ और १६ चित्र दिये जायेंगे।

वार्षिक चंदा ७ ) ; विदेशके लिये १२ शि० प्रत्येक अंक २ ) रु.

श्री. प्रबंधकर्ता-योगमीमांसा कार्यालय, कुंजवन; पोष्ट-लोणावला, ( जि. पुणे )



## वैदिक उपदेश ।

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिए बारह उपदेश हैं इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी मूल्य ॥ ) आठ आने डाकव्यय ८०) एक आना मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )



# छूत और अछूत ।

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ !! अत्यन्त उपयोगी !

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

- १ छूत अछूत के सामान्य कारण,
- २ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढी,
- ३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
- ४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
- ५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
- ६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
- ७ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था,
- ८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
- ९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
- १० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
- ११ वैदिक कालकी उदारता,
- १२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,
- १३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था ।

इस पुस्तकमें हर एक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है । यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है ।

प्रथम भाग । मू. १ )

द्वितीय भाग । मू. III )

अतिशीघ्र मंगवाइये ।

स्वाध्याय मंडल. औध ( जि. सातारा )



ॐ

# वैदिक धर्म ।

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

वर्ष ८

अंक १०

क्रमांक  
९४



आश्विन

संवत् १९८४

अक्तूबर

सन १९२७

छपकर तैयार है।

## महाभारत की समालोचना

प्रथम भाग और द्वितीय भाग ।

प्रति भागका मूल्य ॥ ) डाकव्य ३ ) वी. पी. से॥ = )

मंत्रि— स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

वार्षिकमूल्य— म० आ० से ४ ) वी. पी. से ४॥ ) विदेशके लिये ५ )



- १ गौका सबको आधार
- २ सरल स्वभाव
- ३ गोमेध

- १९४ ४ पैगंबर यश रक्षा कानून
- १९५ ५ अथर्व वेद का स्वाध्याय
- २०० चार द्वारोंकी चार आशाएं

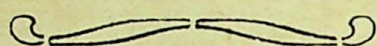
२१६  
१६९

जीवन रस का महासागर

१८०

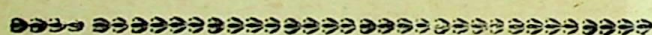


## आसनों का चित्रपट



आसनों का व्यायाम लेनेसे सहस्रों मनुष्योंका स्वास्थ्य सुधर चुका है, इस लिये आसन व्यायामसे स्वास्थ्य लाभ होनेके विषयमें अब किसी को संदेह ही नहीं रहा है। अतः लोग सब आसनोंके एक ही कागज पर छपे हुए चित्रपट बहुत दिनोंसे मांग रहे थे। वैसे चित्रपट अब मुद्रित किये हैं २०-३० इंच कागज पर सब आसन दिखाई दिये हैं। यह चित्रपट कमरे में दिवार पर लगाकर उसके चित्रोंको देख कर आसन करनेकी बहुत सुविधा अब हो गई है।

मूल्य केवल ८/-) तीन आने और डाक व्यय ८/-) एक आना है। स्वाध्याय मंडल, औध ( सातारा )



कुस्ती, लाठी, पटा, बार वगैरह के

सचित्र व्यायाम मासिक

हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी और गुजराती इन

चार भाषाओं में

प्रत्येक का मूल्य २॥ )

रक्खा गया है। उत्तम लेखों और चित्रों से पूर्ण होने से देखनेलायक है। नमूने का अंक मुफ्त नहीं भेजा जाता। व्ही. पी. खर्च अलग लिया जाता है। ज्यादा हकीकतके लिये लिखो मैनेजर, - व्यायाम, राजपूरा, बडोदा

## योगमीमांसा ।

त्रैमासिक पत्र

संपादक— श्रीमान् कुवलयानंद जी महाराज ।

कैवल्यधाम आश्रममें योग शास्त्र की खोज हो रही है जिस खोजका परिणाम आश्चर्यजनक सिद्धियोंमें हुआ है, उन आविष्कारोंका प्रकाशन इस त्रैमासिक द्वारा होगा। प्रत्येक अंकमें ८० पृष्ठ और १६ चित्र दिये जायेंगे।

वार्षिक चंदा ७ ) ; विदेशके लिये १२ शि० प्रत्येक अंक २ ) रु.

श्री. प्रबंधकर्ता-योगमीमांसा कार्यालय, कुंजवन;

पोष्ट लोणावला, ( जि. पुणे )



## वैदिक उपदेश

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिए बारह उपदेश हैं इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी मूल्य ॥ ) आठ आने डाकव्यय ८/-) एक आना मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औध ( जि. सातारा )



# संस्कृत पाठ माला।

[ चौबीस भागोंमें सब संस्कृत पढाई हो गई है । ]

बारह पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ३ ) और वी. पी. से ४ )

चौबीस पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ६ ) रु. और वी. पी. से ७ )

प्रतिभाग का मूल्य १- ) पांच आने और डा. व्य. - ) एक आना ।

अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति ।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

१ प्रथम द्वितीय और तृतीय भाग ।

इन तीन भागोंमें संस्कृत भाषाके साथ साधारण परिचय कर दिया गया है ।

२ चतुर्थ भाग ।

इस चतुर्थ भागमें संधि विचार बताया है ।

३ पंचम और षष्ठ भाग

इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया गया है ।

४ सप्तम से दशम भाग ।

इन चार भागोंमें पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक. लिङ्गी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है ।

५ एकादश भाग ।

इस भागमें “ सर्वनाम ” के रूप बताये हैं ।

६ द्वादश भाग ।

इस भागमें समासों का विचार किया है ॥

७ तेरहसे अठारहवें भाग तकके ६ भाग ।

इन छः भागों में क्रियापद विचार की पाठविधि बताई है ।

८ उन्नीससे चौविंसे भाग तकके ६ भाग ।

इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है ।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे उन को अल्प परिश्रमसे बड़ा लाभ हो सकता है ।

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )



# अग्नि विद्या ।

इस पुस्तक में निम्न लिखित विषय हैं ।

- १ अग्नि शब्दका भाव, २ अग्निके पर्याय शब्द, ३ पहिला मानव अग्नि, ४ वृषभ और धेनु, ५ अंगिरा ऋषि, ६ वैश्वानर अग्नि, ७ ब्राह्मण और शत्रिय, ८ जनता का केन्द्र, ९ सब धन संघका है, १० बुद्धिमें पहिला अग्नि, ११ मनुष्यमें अग्नि, १२ मर्त्योंमें अमर अग्नि, १३ वाणीमें अग्नि, १४ पुरोहित अग्नि, १५ शक्ति प्रदाता अग्नि, १६ हस्त-पाद-हीन गुह्य अग्नि, १७ वृद्ध नागरिक, १८ मूकमें वाचाल, १९ अनेकों का प्रेरक एक देव, २० जीवनाग्नि, २१ अग्निकी दस बहिनें, २२ देवोंके साथ रहनेवाला अग्नि, २३ यज्ञका झंडा, २४ गुहा निवासी अग्नि, २५ सात संख्याका गुह्य तत्त्व, २६ तनूनपात् अग्नि, २७ यज्ञ पुरुष, यज्ञशाला, मंदिर ( चित्र ), २८ परमाग्नि, २९ अग्नि सूक्त का अर्थ और व्याख्या ।
- हर एक विषयको सिद्ध करने के लिये वेद के विपुल प्रमाण दिये हैं । इस पुस्तकके पढ़ने से अग्नि विद्या की वैदिक कल्पना ठीक प्रकार ज्ञात हो सकती है ।
- मूल्य १॥ ) रु. डाकव्यय = ) है  
मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

## महाभारत ।

हिंदी भाषा—भाष्य—समेत

तैय्यार हैं ।

- १ आदिपर्व पृष्ठ संख्या ११२५ मूल्य म. आ. से ६ ) रु. और वी. पी. से ७ ) रु.  
२ सभापर्व पृष्ठ संख्या ३५६ मूल्य म. आ. से २ ) और वी. पी. से. ) रु. २॥ )  
३ वनपर्व पृष्ठ संख्या १५३८ मूल्य ८ ) रु. और वी. पी. से. ९ ) रु.  
४ विराटपर्व पृष्ठ संख्या ३०६ मू० म. आ. से १॥ ) और वी. पी. से २ ) रु.  
५ उद्योगपर्व पृष्ठ संख्या ९५३ मू. म. आ० से ५ ) रु. और वी. पी. से ६ रु.

### ६ महाभारत समालोचना—

- १ प्रथम भाग । मू. म. आर्डरसे ॥ ) वी. पी. से ॥ = ) आने ।  
२ द्वितीय भाग । मू. म. आर्डरसे ॥ ) वी. पी. से ॥ = ) आने ।  
महाभारतके ग्राहकोंके लिये १२०० पृष्ठोंका ६ ) रु. मूल्य होगा ।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध, ( जि. सातारा )



वर्ष ८

अंक १०

क्रमांक ९४



आश्विन

संवत् १९८४

अक्तबर

सन १९२७

# वैदिकधर्म



वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र ।  
संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ।  
स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

## गौका सबको आधार ।

—:o:—

वशां देवा उपजीवन्ति वशां मनुष्या उत ।  
वशेदं सर्वमभवद्यावत्सूर्यो विपश्यति ॥

अथर्व० १० । १० । ३४

( देवाः ) सब देव ( वशां उपजीवन्ति ) गौपर जीवित रहते हैं, मनुष्य ( उत ) भी गौपर ही जीवित रहते हैं । ( वशा ) गौ ( इदं सर्वं ) यह सब ( अभवत् ) बनी है ( यावत् ) जहां तक सूर्य देखता है ।

सब देव गौके दूधपर तथा घीपर जीवित रहते हैं, मनुष्य भी दूध, दही, मक्खन, घी, छाछ आदि गौसे प्राप्त करके जीवित रहते हैं । ऐसा भी कहो कि गौसे ही यह संपूर्ण जगत् बन चुका है जितना सूर्यप्रकाशसे प्रकाशित होता है, इतना गौका महत्त्व है ।

—o—



## सरल स्वभाव ।

संस्कृत भाषामें “ सरल स्वभाव ” का नाम “ आर्जव ” है। आर्जवका अर्थ है ऋजुता, सरलता, जिसमें तेढापन नहीं । इस सरलताके विषयमें भगवद्गीता में कहा है—

शमो दमस्तपः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च ॥

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥

भ. गी. १८।४२

“ ब्राह्मण का स्वभावजन्य कर्म शम, दम, तप, पवित्रता, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य वृद्धि है । ” यद्यपि ब्राह्मण का स्वाभाविक गुणधर्म “ सरलता ” है, तथापि इतर वर्णोंके लिये यह सरलता कोई दोष सिद्ध नहीं होगा । अर्थात् क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषादोंमें यदि सरल स्वभाव हुआ, तो जगत् में हानिकी संभावना नहीं होगी । स्वभावकी सरलता यह उच्चतम गुण है, इस लिये उसकी आवश्यकता हर एक मनुष्यकी उन्नतिके लिये निःसंदेह है । स्वभाव की सरलता, न्यायप्रियता, समता, विमलता, अकुटिलता, शुचिता, पवित्रता हर एक मनुष्यकी उन्नति कर सकती है । जो मनुष्य स्वभावसे ढोंगी, तेढा, अन्यायी, मलीन, कुटिल, अपवित्र होता है, उससे समाज में उपद्रव होते हैं, परंतु जो मनुष्य सरल स्वभावका होता है, उससे जनता में शांतिकी स्थापना हो सकती है । इस लिये स्पष्ट है कि हर एक मनुष्य के लिये सरल स्वभावकी आवश्यकता है । फिर प्रश्न होता है कि, श्रीमद्भगवद्गीतामें सरल स्वभाव ब्राह्मण का ही लक्षण क्यों बताया और अन्योका क्यों नहीं कहा ? इसके उत्तर में निवेदन है कि वर्ण धर्म की सामान्यता और विशेषता होती है । ब्राह्मण में ब्राह्मधर्म, क्षत्रियमें क्षात्रधर्म यद्यपि विशेष होता है, तथापि क्षत्रियमें थोड़ासा ब्राह्मधर्म और ब्राह्मणमें थोड़ासा क्षात्रधर्म अवश्य ही चाहिये, अन्यथा मनुष्यत्व की भी

सिद्धता नहीं हो सकती । शौर्य, तेजस्विता, धैर्य, दाक्षिण्य, युद्धसे न भागना, दान और ईश्वरभाव ये गुण क्षत्रियके स्वभाव धर्म भगवद्गीतामें कहे हैं, परंतु क्या ये गुण ब्राह्मण में नहीं होने चाहिये ? धर्म ग्रंथका यह आशय कदापि नहीं है । प्रत्येक मनुष्यमें सामान्यतः चातुर्वर्ण्य है, परंतु विशिष्ट वर्णमें विशिष्ट गुणधर्मका अत्यंत उत्कर्ष होनेसे वहां विशिष्ट वर्ण के अस्तित्वकी कल्पना की जाती है । तात्पर्य ज्ञान, शौर्य, धनोपार्जन, और कारीगरी ये गुण प्रत्येक मनुष्य में थोड़े थोड़े होनेही चाहिये, इसी प्रकार “ सरल स्वभाव ” यह गुण यद्यपि ब्राह्मणमें विशेष चाहिये, तथापि अन्यो में भी अत्यावश्यक ही है; क्यों कि यह एक प्रकारका तप है ।

देवद्विजगुरु प्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ॥

ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥

भ. गी. १७।१४

“ देव, द्विज, गुरु, ज्ञानी का पूजन, शुद्धता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा यह शरीरका तप है । ” यह तप हर एक को अवश्य करना चाहिये । इस तपमें “ स्वभाव की सरलता ” की भी गणना की है । क्यों कि यही दैवी गुण है—

स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ भ० गी. १६।१

“ स्वाध्याय करना, तप करना और सरल स्वभाव का व्यवहार करना यह दैवी संपत्तिका लक्षण है । इसके आगेही कहा है “ ढोंग, घमंड, क्रोध, कठोरता ” आदि राक्षस पनके लक्षण हैं । धर्म वह है कि जिसमें आसुर भाव दूर करके दैवी गुणोंको पास करना होता है । इस दैवीभाव का विकास करनेवाला “ आर्जव ” अर्थात् “ सरल स्वभाव ” है, इसलिये इसका विकास प्रत्येक मनुष्यमें होना आवश्यक है । मनुष्यको पुरुषार्थ की सिद्धि प्राप्त होने के लिये सरल स्वभाव की अत्यंत आवश्यकता है ।



वेदमें “ अ-ध्वर ” शब्द है उसका अर्थ “ अ-कुटिलता ” है। कुटिलतारहित व्यवहार करनेका नाम ही सरल अथवा सीधा व्यवहार है। पाठकों को पता है कि “ यज्ञ ” का नाम “ अ-ध्वर ” है, तात्पर्य “ सरल व्यवहार ” का नाम ही यज्ञ है। तेढ़े चाल चलन का नाम यज्ञ नहीं हो सकता।

### सरल व्यवहार क्यों करना चाहिये ?

पाठक पूछेंगे कि, सरल व्यवहार क्यों करें ? क्यों तेढ़ा आचरण न करें ? इसके उत्तर में धार्मिक प्रवृत्तिके मनुष्योंको कहा जा सकता है कि वेद “ अ-ध्वर ” अर्थात् अ-कुटिल क्रमोंका उपदेश करता है, और वेदमें सच्चा मनुष्यधर्म कहा है, इसलिये तेढ़ा आचरण करना उचित नहीं है और सीधा सरल व्यवहार करना योग्य है। जो वेदके श्रद्धालु हैं उनके लिये यह उत्तर पर्याप्त है, परंतु कई तार्किक इसके बाद भी शंका कर सकते हैं, उनकी शंका दूर करनेके लिये धर्मके तत्त्वका यहां थोड़ासा विचार करना चाहिये।

“ मैं ” और “ मेरे से भिन्न जगत् ” ये दो पदार्थ यहां हैं। यदि अकेला ही मैं होता, तो जैसा चाहिये वैसा आचरण किया जाता तो भी कोई पर्वाह न थी; परंतु मेरेसे भिन्न जगत् है, इस कारण विशेष प्रकारसे आचरण करनेकी आवश्यकता उत्पन्न हुई है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्यके साथ संबंधित है, पशुपक्षीके साथ और वृक्षादि शेष पदार्थोंके साथ भी उसका संबंध है। यह “ अटूट संबंध ” है। कोई मनुष्य जबतक इस शरीरमें जागृत है, तबतक यह संबंध नित्य है। इसलिये इस संबंधको ध्यानमें धर कर ही अपना आचरण मनुष्यको करना उचित है। इस संबंध का ध्यान कर योग्य कर्तव्यपालन करने का नाम धर्म है और कर्तव्य न करने का नाम अधर्म है।

एक मनुष्यका समाजके साथ संबंध नित्य है, इसलिये इस अटूट संबंधके अनुकूल कार्य करना मनुष्यके लिये अत्यावश्यक है। जो मनुष्य ऐसा नहीं करेगा वह पतित हो जायगा। जिस प्रकार कपासके धागे सूत्रमें होते हैं, सूत्रपटमें होते हैं, ईंटें दिवारमें

होती हैं, उसी प्रकार मनुष्य समाजमें हैं। एक सूत्र अपने स्थानसे हिलनेसे वस्त्र बिगड़ जाता है, एक पत्थर दिवारसे उखड़ जानेसे दिवार टूट जाती है, इसी प्रकार एक मनुष्य समाजके संगठन से विरुद्ध होनेसे समाजकी शक्ति कम हो जाती है। यदि मनुष्य विचार करेगा तो उसको इस अटूट संबंधका पता लगेगा। यह बात बतानेके लिये ही वेदने कहा है कि--

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥

स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥ १ ॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ॥

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥ १२ ॥

ऋ. १०।१०

“ एक पुरुष है जिसको सहस्रों मुख, सहस्रों आंख, और सहस्रों पांव हैं। वह भूमिके चारों ओर व्याप्त हो कर दशांगुल अवशिष्ट रहा है। इसका मुख ब्राह्मण है, क्षत्रिय इसके बाहू किये हैं, जंघायें वह हैं कि जो वैश्य है और पावों के लिये शूद्र हुआ है। ”

यह समाजका वर्णन है। समाज यह एक मनुष्य ( पुरुष ) है जिसको सहस्रों मुख, आंख, हाथ, पांव आदि अवयव हैं। इस प्रकारका यह सहस्रबाहु-वाला समाजरूपी पुरुष इस पृथ्वीपर चारों ओर है। इस समाज रूपी पुरुष का मुख ब्राह्मण है, बाहु क्षत्रिय है, जंघें वैश्य हैं और पांव शूद्र हैं। यद्यपि ब्राह्मणक्षत्रियादिके शरीर परस्पर एक दूसरेसे अलग हैं, तथापि वे सब एक शरीरके अवयव होनेसे वैसे ही एक हैं कि जैसे मुख, बाहु, पेट, जंघें और पांव भिन्न अवयव होनेपर भी शरीरके भावसे एकही होते हैं। विभिन्न वर्णोंमें इतनी एकता वेदको अभीष्ट है और वास्तवमें देखा जाय तो जिस समाजमें इस प्रकार का अभेद संबंध जीता जागता होगा, वही समाज जीवित रहेगा और वही उन्नति करेगा। आपसमें लड़नेवाला क्या उन्नति कर सकता है ?

यदि घड़ेसे मिट्टीके अणु अलग किये जायंगे तो स्थानपर घड़ा रहेगा ही नहीं, यदि समुद्रसे जल बिंदु अलग किये जायंगे तो स्थानपर समुद्र रहेगा नहीं, इसी प्रकार यदि समाजसे हर एक मनुष्य अलग होगा



तो समाज रहेगा ही नहीं। और जिस समय समाज नष्ट होगा उसी समय व्यक्तिका भी अस्तित्व हट जायगा क्यों कि “सबके आधार पर ही एक अंश रहा है।” सूर्य न रहा तो उसका एक किरण भी रह नहीं सकता।

प्रिय पाठको ! आप अपने प्रत्येक हलचल का विचार कीजिये तो आपको पता लग जायगा कि एक व्यक्तिका समष्टिके साथ कितना अटूट संबंध है। यदि आप अपने समाजके साथ अपने अटूट संबंधका विचार न करेंगे, तो सामाजिक धर्म का पालन आपसे किस प्रकार हो सकेगा ? आप बोलते हैं, सुनते हैं, देखते हैं, कार्य करते हैं तथा अन्य हलचल कर रहे हैं, इस सब व्यवहारमें आपका अन्योके साथ संबंध आ रहा है। बाल्यमें आप विद्या पढ़ते हैं, तारुण्यमें गृहस्थी बनकर विचरते हैं, पश्चात् वानप्रस्थी बनकर आश्रमवासी होते हैं, तदनंतर संन्यास धारण करके संपूर्ण जगत् को अपना परिवार समझते हैं, इस सब व्यवहार में आपका अन्यो से संबंध आ रहा है। आप विचार कीजिये तो आपको पता लग जायगा कि आपका समाजके साथ नित्य संबंध है। इसको आप दूर नहीं कर सकते।

यह संबंध नित्य सिद्ध होनेपर प्रश्न उत्पन्न होता है कि हम दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करें ? इसका उत्तर यही है कि “आप दूसरोंसे वैसाही व्यवहार कीजिये कि जैसा अन्योका व्यवहार आपके साथ होनेकी आपकी अपेक्षा है।” कोई नहीं चाहता कि दूसरा अपने साथ तेड़ा और खोटा व्यवहार करे। इसीलिये आपको भी चाहिये कि आप दूसरों के साथ तेड़ा और खोटा व्यवहार न कीजिये। आप चाहते हैं कि सब लोग आपसे सीधा व्यवहार करें इसलिये आपको उचित है कि आप भी दूसरों के साथ सीधा और सच्चा व्यवहार करें। यही बात निम्न मंत्र में बताई है—

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्॥  
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ॥  
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥

यजु० ३६। १८

- ( १ ) सब प्राणी मित्रकी दृष्टिसे मेरी ओर देखें,  
( २ ) मैं सबकी ओर मित्र दृष्टिसे देखूंगा,  
( ३ ) हम सब परस्पर मित्र दृष्टिसे देखें ।

यह मंत्र यद्यपि “मित्र दृष्टि” का वर्णन कर रहा है तथापि व्यवहारके सब आदर्श इसमें बीज रूपसे हैं और इस दृष्टिसे विचार किया जाय तो प्रकृत “सरल स्वभाव” के विषयमें उक्त मंत्रका रूपांतर निम्न प्रकार हो सकता है—(१) सब मनुष्य सरलता से मेरे साथ व्यवहार करें, (२) मैं सब के साथ सरल व्यवहार करूंगा, (३) हम सब परस्पर एक दूसरे के साथ सरल व्यवहार करें।

सब ही मनुष्य चाहते हैं कि अपने साथ लोग सरल सीधा और सच्चा व्यवहार करें। कोई यह नहीं चाहता कि सब लोग अपने साथ तेड़ा व्यवहार करें। परंतु वे नहीं समझते कि तबतक जनता आपके साथ सीधा व्यवहार नहीं करेगी कि जबतक आप स्वयं उनके साथ सरल व्यवहार न करेंगे। तात्पर्य यह कि “सरलता का स्रोत सबसे प्रथम अपने हृदयसे चलना चाहिये।” इस लिये मंत्रमें दूसरी ही प्रतिज्ञा है कि मैं अन्योके साथ बिल्कुल सीधा व्यवहार करूंगा। परंतु यहां भी वही कठिनता है कि यदि एक व्यक्ति ही सरल व्यवहार करती रही परंतु दूसरे तेड़ी चाल चलने वाले हुए तो उस एक व्यक्तिका नाश होगा। इस लिये मंत्रका तीसरा आशय यह है कि हमारा परस्पर एक दूसरेके साथ सरल व्यवहार हो। जिस समाजमें व्यक्तियोंका परस्पर व्यवहार अत्यंत सरल है, वही समाज अभ्युदय और निश्चयसके मार्ग में अखंड उन्नति कर सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। सरल व्यवहार का मार्ग निम्नप्रकार वेदने बताया है—

देहि मे, ददामि ते, नि मे धेहि, नि ते धे ॥  
निहारं, च हरासि मे, निराहन्, नि हराणि ते ॥

यजु० ३। ५०

- ( १ ) मुझे दो, मैं तुझे देता हूं। ( २ ) मेरे लिये धारण करो, मैं तेरे लिये धारण करता हूं। ( ३ ) मैं तेरे लिये लाता हूं, तू मेरे लिये ले आओ, ( ४ ) तू मेरे लिये लायेगा, तो मैं भी तेरे लिये लाऊंगा ॥



यह संकेत मंत्र है । परस्पर व्यवहार यथान्याय्य और योग्य होना चाहिये यह इस का तात्पर्य है । जैसा दूसरा मेरे साथ व्यवहार करेगा वैसा ही मैं दूसरे के साथ व्यवहार करूंगा, अथवा जैसा मैं दूसरों के साथ व्यवहार करूंगा उसके अनुकूल ही दूसरोंसे मेरे साथ व्यवहार होगा । यह नियम है इस लिये सबको उचित है कि वे आपसमें परस्पर सीधा, सरल और न्याय्य व्यवहार करें ।

साधारण मनुष्य कहते ही रहते हैं कि, लोग मेरे साथ सीधा व्यवहार नहीं करते, परंतु ऐसा कहने वाले मनुष्य अपना आचरण देखते ही नहीं। इसलिये हर एक को विचार करके देखना चाहिये कि अपने अंदर सरलस्वभाव है वा नहीं और अपना व्यवहार सरल है वा तेढ़ा है। यदि आप चाहते हैं कि जनता आपसे सरल व्यवहार करे, तो आप सबसे प्रथम अपना व्यवहार सीधा कीजिये । जब आप सीधे हो जायेंगे तब सब जगत् आपके साथ सीधाही हो जायगा । यह नित्य स्मरण रखिये कि आपका ही प्रतिबिम्ब जगत् में पड़ रहा है । इसलिये आप अपने मेंसे तेढ़ेपनका भाव पूर्णतया दूर कीजिये और दूसरोंसे किसी की अपेक्षा न करते हुए आप काया वाचा मन में सीधे और सरलस्वभाव युक्त बन जाइये । मनमें सरल भाव धारण कीजिये, मुखसे सरल शब्द सीधे भावसे कहिये और शरीरसे सीधे कर्म करते रहिये । इस प्रकार आपके अंदर मूर्तिमती सरलता रही, तो सब ठीक होता जायगा । परंतु जबतक दूसरोंसे सरल आचरण होनेकी प्रतीक्षा करते रहेंगे तबतक आपका सुधार होना नहीं है । इस कारण आपको अपना ही परीक्षण करके सबसे प्रथम अपना सरल स्वभाव बनाना चाहिये ।

जनताकी ओर देखने और व्यवहार करनेका जैसा आपका दृष्टिकोण होगा, उसी प्रकार जनता आपकी ओर देखेगी और आपके साथ व्यवहार करेगी । यह त्रिकालाबाधित सत्य नियम है । इस को अपना मार्गदर्शक समझकर यदि आप अपना व्यवहार उच्च और श्रेष्ठ करेंगे तो वेही गुण जनता के व्यवहारमें प्रकट होंगे । आप अपना प्रेम जानता को अर्पण कीजिये, जनता भी प्रेमसेही आपकी

पूजा करेगी । यही यज्ञ है, यदि आप वैदिक धर्मके यज्ञका तत्त्व समझनेका यत्न करेंगे तोही वैदिक धर्मके सार्वभौमिक श्रेष्ठताका तत्त्व आपके ध्यानमें आजायगा ।

यहां आप कहेंगे कि कई लोगोंमें यह भाव है कि हम थोड़ा देकर बहुत लेनेकी इच्छाकरना। बाजारों में जहां अनाड़ी लोग व्यवहार करते रहते हैं, वहां यही होता है । एक आनेकी चीज का मूल्य प्रारंभ में मूर्ख लोग एक रुपया कह देते हैं, परंतु मांगने वाला भी एक पाईको वह चीज मांगता है । इस प्रकार दोनों ओर का झगडा होते होते, बड़ा समय व्यतीत करनेपर दोनों लेने और देनेवाले, असली मूल्यपर आते हैं । अपने देशमें ऐसे लोग हैं, इसमें संदेह नहीं । परंतु यह अनाडियों की बात है, इसका सुधार होना चाहिये जो उद्यमी मनुष्य हों, उनके पास इतना समय नहीं है कि एक आनेकी जींच खरी देनेमें भावका निश्चय करनेके लिये ही घंटा आधा घंटा व्यर्थगमावें । इसलिये उक्त बातमें अवश्य सुधार करना चाहिये । यदि इस बातमें लेनेदेनेवाले सरल व्यवहार करेंगे, तो उन दोनोंका कितना समय बच सकता है, जो अच्छेसे अच्छे कार्य में लगाया जा सकता है । इस प्रकार सरल और सीधे व्यवहारसेही हित है । जिस समाज में इस प्रकारके सरल स्वभाव वाले लोग अधिक होंगे और सरल व्यवहार करनेवाले अधिक होंगे, वही समाज अन्योंसे आगे जा सकता है ।

सरल स्वभाव और सरल व्यवहार छोड़कर अधिक लाभकी आशा से जितना आप तेढ़े स्वभाव और कुटिल व्यवहार के मार्गसे जायेंगे, उतना पतन अधिक होगा । सब जगत् में सबसे सीधा उन्नतिका मार्ग यदि कोई है तो सरल और सीधा व्यवहार ही है । सब मनुष्य दिलसे यही चाहते हैं, परंतु भ्रमसे व्यवहार करने के समय मायाजाल में फस जाते हैं । और गिरते जाते हैं ।

कई वैदुलोग ऐसे दुष्ट होते हैं कि बीमारको थोखा देकर भिड़ी की गोली हो हेमगर्भ मात्राके मूल्यसे उसको बेच देते हैं और पैसेका माल पच्चीस रुपयों को बेचते हैं । परंतु इन वैदुओंका कौन मान



करता है ये दारोंदार घूमते फिरते हैं, इस लिये इनके शब्द को मूल्य भी कहा रहा है ? परंतु जो राज वैद्य होता है वह अपनी गद्दीपर बैठता है, अपना बीमार श्रीमान हो या दरिद्री हो, छोटा हो या बड़ा हो, मूढ़ हो या समझदार हो, उसके आरोग्य की ओर ध्यान देकर सरल स्वभाव से जो उसके हितके लिये योग्य वही कहता है, इस लिये उसीका सन्मान सर्वत्र होता है। यही बात संपूर्ण व्यवहारों में है, यह ध्यानमें रखिये।

पूर्व यजुर्वेद के मंत्रमें कहा ही है कि “ जितना हम लेते हैं, उतना ही देते हैं। ” यह देवोंका व्यवहार है। इंद्र कहता है कि—

देहि मे ददामि ते ॥ य० ३। ५०

“ मुझे दो, मैं तुम्हें देता हूं। ” अर्थात् हे भक्त ! तू जितना मुझे अर्पण करता है, उसी प्रमाणसे मैं तेरा हित करता हूं। यदि यही व्यवहार की सरलता और न्यायता ईश्वरमें है और यदि वह मनुष्य के कर्मके अनुसार ही उसको फल देता है, तो हमें भी उसीका अनुकरण करना योग्य है। हम लोगों से जितना लेंगे, उसी प्रमाणसे उनको वापस करना आवश्यक है, हम लोगोंसे जितना काम लेंगे उसी प्रमाणसे उनको वेतनादि देना योग्य होगा। कम देनेसे उनके हम ऋणी होंगे और अधिक देनेसे उनको सुस्त बताने का दोष हमारे ऊपर आ-जायगा इसलिये जिस प्रमाणसे लेना उसी प्रमाणसे देना योग्य है, यही भाव गीतामें भी कहा है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥

भ. गी० ४। ११

“ जो मुझे जिस प्रकार से भजते हैं, उन्हें मैं उसी प्रकार के फल देता हूं। ” यही न्याय्य और सरल व्यवहार है और सरल व्यवहार ही सबका हित करनेवाला है। मनुष्य अपनी परा-काष्ठा करके जगत्में परम पुरुषार्थ करता है। इस का योग्य फल उसको उस समय मिल सकता है कि जब सब अन्य लोग सरल स्वभाव वाले हों। साधु पुरुषों को कष्ट इसी कारण होते हैं कि उनको कुटिल लोगों में ही व्यवहार करना पड़ता है।

परंतु साधु पुरुषोंका पुरुषार्थ परमेश्वरके पास मंजूर होता है और इसी कारण उनकी ही पूजा पश्चात् सर्वत्र होने लगती है। तात्पर्य सरल व्यवहार किसीन किसी रूपमें लाभ अवश्य ही देता है। व्यवहार में भी सरल स्वभाव वाले ही अंतमें अधिक लाभ प्राप्त करते हैं, यदि उनके पास दक्षता, दीर्घाद्योग, तत्परता आदि विजयप्राप्तिकारक गुण होंगे। इस प्रकार सरल स्वभाव काही विजय होता है।

जगत् में झगड़े, फिसाद, युद्ध आदि अनर्थ “ तेढ़ी चाल ” के कारण ही उत्पन्न होते हैं। सब झगड़ोंका इतिहास विचारपूर्वक देखने से पता लगेगा कि उनके मूलमें “ कुटिलता ” का निवास अवश्य है। देवासुर संग्राम क्यों होता था अथवा होता रहा है ? देव सीधा और सरल बर्ताव करते हैं और राक्षस मायाजाल का उपयोग करते हैं। यही युद्ध का मूल कारण है। यदि दोनोंका सरल स्वभाव हुआ तो झगड़ेका बीजही दूर होगा। तात्पर्य देवासुर संग्रामके विचार सेभी सरल स्वभाव का महत्त्व ज्ञात हो सकता है।

आज कल अपने देशमें धनी लोग, सेठ साहुकार, सरदार और ओहदेदार, राजे और महाराजे गरीबों को “ बेगार ” समझकर विविध प्रकारसे उनके कार्यसे अयोग्य और अन्याय्य रीतिसे अपना लाभ करते हैं। इसके विरुद्ध मजूर अथवा कार्य करनेवाले लोग मालिक नहीं देखता है यह देखकर काम करना छोड़ते हैं। अर्थात् धनी एक रीतिसे वचना करता है और ऋणी दूसरी रीतिसे अपराध करता है। दोनों का स्वभाव सरल नहीं है। यदि दोनोंका व्यवहार सीधा होगा तो कितना आनंद फैलेगा उस का विचार कीजिये और वह आनंदपूर्ण अवस्था लानेके लिये अपनी ओरसे प्रयत्न कीजिये।

सरल स्वभाव यह अकेला ही सद्गुण नहीं है, इसके साथी कई और हैं। न्यायप्रियता यह एक सद्गुण इसका साथी है। यह कोई कल्पना नहीं कर सकता अन्यायी मनुष्य कभी सरल स्वभाव से युक्त होगा। इसलिये यदि आपको अपना स्वभाव सरल बनाना है, तो न्यायप्रियता आपको अपने अंदर



अवश्य बढ़ानी चाहिये । न्याय्य कार्य करने वाला ही सरल और सीधा मनुष्य हो सकता है । दूसरा गुण सहृदयता है । इस विषयमें वेद कहता है—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ॥

अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाध्या ॥

अ. ३०। ३०।१

“आपके अंदर सहृदयता, समनस्कता और आपस में झगडा न करनेका गुण मैं उत्पन्न करता हूँ। एक दूसरेके साथ आप ऐसा वर्ताव करें कि जैसा गायनूतन बछड़ेके साथ करती है ।” यह वेद इस लिये कह रहा है कि आपके अंदर सहृदयता उत्पन्न हो और आप सरल स्वभाव वाले बन जायें। सबका सब मनुष्य समाज सरल और सीधा बने, यह वैदिक धर्मका साध्य है। यदि पाठक प्रयत्न करेंगे तो ही वह सिद्ध हो सकता है। सब मनुष्य समाज को सरल स्वभावयुक्त बनानेकी जिम्मेवारी वैदिक धर्मीयोंपर है, देखना है कि वे कितना कर्तव्य पालन स्वयं कर सकते हैं और अपनी जिम्मेवारी पूर्ण करते हैं।

सरल स्वभावके लिये ज्ञान की भी आवश्यकता है। ज्ञानके बिना मनुष्य सदाचारी बनना अशक्य है। परंतु यह “संज्ञान” हो। अज्ञान, ज्ञान, विज्ञान, प्रज्ञान, संज्ञान, ऐसे ज्ञानके अनेक वर्ग हैं। इन सबमें “संज्ञान” मानवी उन्नतिके लिये विशेष साधक है।

ज्ञान, विज्ञान, प्रज्ञान भी योग्य ही हैं, परंतु संज्ञान का महत्व विशेष है। संज्ञान वह होता है कि जिस से मनुष्य मात्र की एकता होती है और सब मिल जुलकर रह कर उन्नति कर सकते हैं। “सरल स्वभाव” और “संज्ञान” का नित्य संबंध है। सब ज्ञानोंमें यही इसलिये श्रेष्ठ है। ज्ञानसे मन प्रगल्भ होता है, विज्ञानसे चतुर बनता है, प्रज्ञानसे निर्माणशक्ति से युक्त होता है, और संज्ञान से संग्राहक बनता है। मनुष्यके अंदर संज्ञान इसलिये बढ़ना चाहिये कि वह सबको इकट्ठा मिला सके और संग्रहशक्ति बढ़ा सके। संग्राहक भाव संज्ञानसे बढ़नेके कारण मनुष्य सहृदय बनता है और सरल स्वभावयुक्त भी बनता है। इतना इस संज्ञान का

महत्व है। ऋग्वेदमें इसी उद्देश्यसे एक संज्ञान सूक्त बनाया है देखिये उसका एक मंत्र—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्

ऋ. १०।१९।१२

“( १ ) संग्रह बनाओ, ( २ ) संवाद करो और ( ३ ) मन संज्ञानयुक्त करो।” यह वेद इस लिये कह रहा है कि सब लोक सरल स्वभाव से युक्त बनें। समाजमें कोई मनुष्य तेढा न रहे। जिस प्रमाणमें समाजमें संज्ञान फैलेगा उस प्रमाण में समाजसे तेढेपन दूर होगा। इतना संज्ञान का मानवी उन्नति के साथ संबंध है। सरल स्वभाव से दूसरोंके साथ ही सरल वर्ताव करना होता है, इसलिये दूसरों की ठीक ठीक अवस्था का जिसको ज्ञान ही नहीं है, वह उनके साथ सरल वर्ताव किस प्रकार कर सकता है ? यह कारण है, कि संज्ञान युक्त मनुष्य दूसरों की अवस्था ठीक ठीक जाननेका यत्न करता है, उनके साथ मिलता है प्रेमसे वार्तालाप करता है और ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करता है, इससे वह सरल वर्ताव करनेके योग्य बनता है।

इस ज्ञान-हीनता के कारण कई विजयी सम्राट् अपनी नूतन जित प्रजाकी ठीक ठीक अवस्था जान नहीं सके, इस लिये प्रजा के साथ उनका ठीक ठीक व्यवहार नहीं हो सका। इसी प्रकार अन्यान्य लोगों के विषयमें भी इतिहास में हुआ है। इसलिये संज्ञान प्राप्त करके सरल स्वभावयुक्त बनना मनुष्य के लिये अत्यावश्यक है। क्योंकि यही उन्नतिका सीधा मार्ग है।

इस लेखमें सरल स्वभाव का वर्णन चला है इस लिये कोई यह न समझे कि केवल स्वभाव सरल होनेसेही सब कार्यभाग होगा। सरल स्वभाव के साथ सरल व्यवहार होना आवश्यक है विचारके साथ आचार चाहिये। इसलिये हरएक को उचित है कि केवल विचार में ही सरलता न रहे, परंतु प्रत्यक्ष आचारमें आ जाय। आशा है कि पाठक इन बातोंका विचार करके अपनी उन्नतिका मार्ग इस रीतिसे आक्रमण करके अपनी और दूसरोंकी उन्नतिका साधन करेंगे।



## गो-मेध ।

### वेदका संकेत ।

वेदमें पशुओंके नाम आते हैं, इसलिये साधारण लोग, कि जो वेदकी वर्णन शैलीसे अनभिज्ञ होते हैं, वे समझते हैं कि यहां उक्त पशुका मांसही लेना चाहिये, परंतु यह उनका भ्रम है, क्योंकि इस शंका का समाधान वेदने ही स्वयं किया है—

पुष्टिं पशूनां परिजग्रमाहं चतुष्पदां द्विपदां  
यच्च धान्यम् । पयः पशूनां रस औषधीनां  
बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥

अथर्व. १९।३।५

“ मैं ( पशूनां पुष्टिं ) पशुओंकी पुष्टि लेता हूं, द्विपद और चतुष्पादों से भी पुष्टि लेता हूं और धान्य भी लेता हूं । पशुओं से दूध, औषधीयोंसे रस बृहस्पति सविता देवने मुझे दिया है । ”

यह मंत्र वेदका संकेत स्पष्ट करता है । पशु शब्द आनेसे पशु शरीर के किस पदार्थका ग्रहण करना चाहिये तथा औषधि शब्द आनेसे औषधिके कौनसे पदार्थका ग्रहण करना चाहिये यही विचार का प्रश्न यहां है। पशुके शरीरमें रक्त, मांस, हड्डी, चर्बी, दूध आदि बहुतसे पदार्थ होते हैं, इनमेंसे किस पदार्थ का ग्रहण करना चाहिये ? तथा औषधिमें फूल, पत्ते, त्वचा, जड़, रस, आदि बहुतसे पदार्थ होते हैं। इनमेंसे कौनसे पदार्थका स्वीकार करना योग्य है, इस शंका का उत्तर इस मंत्रने स्पष्ट शब्दों द्वारा दिया है । यह मंत्र कहता है कि जहां वेदमें पशुवाचक शब्द आया हो वहां ( पशूनां पयः ) पशुओंका दूध ही लेना चाहिये, तथा जहां औषधि वनस्पति का नाम आया हो वहां ( औषधीनां रसः ) औषधियोंका रस लेना चाहिये । यह वेदका संकेत यदि लोग ध्यानमें धारण करेंगे

तो उनको भ्रम नहीं हो सकता । वेदमें लुप्त तद्धित प्रत्यय होते हैं, यह बात इससे पूर्व बतायी गई है, इस पद्धतिसे पशुसे उत्पन्न होनेवाले पदार्थोंके लिये पशुके ही नाम का प्रयोग होता है। पशु शब्द पुल्लिंग में प्रयुक्त हुआ हो या स्त्रीलिंगमें प्रयुक्त हुआ हो, दोनों पक्षमें पशुका दूध ही लेना चाहिये । अर्थात् किसी स्थानमें पुल्लिङ्गी “ अज ” शब्दका प्रयोग वेदमें आया हो तो वहां बकरेका बोध नहीं लेना चाहिये, प्रत्युत बकरीके दूधका आशय लेना चाहिये। यह वेदकी परिभाषा या संकेत है । गौ, वृषभ आदि शब्दोंसे भी यही तात्पर्य है । उक्त मंत्रमें “ पशूनां पयः ” अर्थात् पशुओंका दूध ये शब्द प्रयोग बताते हैं कि किसी भी पशुका नाम आया हो उस जाती के स्त्रीपशुका दूध, घी आदि वेदमें अभीष्ट है, न की उसका मांस । यह वेदका संकेत हरएक को अवश्य ध्यानमें धरना चाहिये । अन्यथा अर्थका अनर्थ होगा ।

जहां जहां इस वैदिक संकेत की और पाठकोंका दुर्लक्ष्य हुआ है वहां वहां अर्थका अनर्थ हुआ है । गोमांस भक्षण वाले अर्थकी अथवा अनर्थकी उत्पत्ति इसप्रकार इस संकेतके अज्ञानमें है, यह बात यहां ध्यानमें धारण करनी चाहिये । इसी उद्देश्यसे अथर्व वेदमें कहा है—

आहरामि गवां क्षीरमाहार्षे धान्यं रसम् ॥

अथर्व. २ । २६ । ५

संसिंचामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम् ॥

अथर्व० २ । २६ । ४

इह पुष्टिरिह रसः ॥ अथर्व. ३ । २८ । ४

“ मैं गौओं से दूध लेता हूं तथा भूमीसे धान्य और औषधियोंसे रस लेता हूं ॥ मैं गौओंके दूधसे सिंचन करता हूं तथा घीसे बलवर्धक रस लेता हूं ॥



यहां गौके अंदर पुष्टि है और यहां गौके अंदर रस है ॥ ”

यहां भी गौसे दूध, भूमिसे धान्य और औषधीसे रस लेनेकी कल्पना स्पष्ट है । जो पूर्व स्थलमें दिये हुए संकेत मंत्रमें बताया है वही इस मंत्रमें अन्य शब्दोंसे व्यक्त हुआ है । इसलिये वेदका यह आशय ध्यानमें धरकर ही मंत्रोंका अर्थ लगाना चाहिये । यह अर्थ छोड़ कर जो गौ आदि पशुओं के अंगोंका हवन करते हैं उनको वेदने “मूर्ख” कहा है देखिये—

### मूढ याजक ।

मुग्धा देवा उत शुना यजन्तोत

गोरंगैः पुरुधा यजन्त । अथर्व० ७।१।१

यह मंत्र विशेष ध्यानसे देखने योग्य है । इसमें प्रारंभमेंही “मुग्धा देवाः” शब्द है, यहां “मुग्ध” शब्दका अर्थ, ( Perplexed, foolish, ignorant, silly, stupid, simple, erring, mistaken ) घबडा हुआ, मूर्ख, अनाडी, नादान, बुद्धिहीन, भोला, बहका हुआ, अपराध या अशुद्ध कार्य करनेवाला । ये मुग्ध शब्दके अर्थ यहां बता रहे हैं कि यहां का यज्ञ करनेवाले अनाडी ही हैं । अब इस मंत्रका अर्थ देखिये—

“( मुग्धाः देवाः ) मूढ याजक ही (शुना यजन्त) कुत्तेके अवयवों से यज्ञ करते हैं ( उत ) तथा ( गोः अंगैः ) गौके अवयवोंसे भी (पुरुधा यजन्त) बहुत प्रकारसे यज्ञ करते हैं । ”

यहां का देव शब्द याजकों का वाचक है । जो मूढ, अनाडी, अपराध करनेवाले याजक होते हैं, वेही कुत्तेके मांससे अथवा गौके मांससे हवन करते हैं, किंवा कुत्ते से लेकर गौतक के विविध पशुओं के मांसोंसे मूढ ही हवन करते हैं । परंतु जो ज्ञानी होंगे वे कदापि ऐसा कुकर्म कर नहीं सकते । वे तो गौके दूधका तथा उसके घीका ही हवन करते हैं । यहां मूढ याजक और ज्ञानी याजक का भेद वेदने ही स्पष्ट किया है । ज्ञानी याजक वे हैं कि जो पशुशब्द से दूधका ग्रहण करते हैं और मूढ याजक वे हैं कि जो वेदका उक्त संकेत न समझनेके कारण

भ्रांत होकर पशुमांस का हवन करते हैं । पाठक ही विचार करें कि यहां कौनसा यज्ञ वैदिक धर्मके अनुकूल सिद्ध हुआ है और किस का खंडन वेदने किया है । समांस यज्ञका खंडन और निर्मांस यज्ञका मंडन इस प्रकार वेदने स्वयं किया है । इतना होने पर भी जो लोग समांस यज्ञको वेदानुकूल समझते हैं उनको क्या कहा जाय यह समझमें ही नहीं आता । वास्तवमें इस मंत्रने समांस यज्ञ करने वालों को “मूढ याजक” कह कर समांस यज्ञका प्रबल निषेध किया है, और हमारे विचारमें इससे अधिक प्रबल निषेध करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है ।

गायका नाम “अ-ध्व्या” ( अवध्य ) है, यज्ञका नाम “अ-ध्वर” ( अहिंसामय कर्म ) है, और इस मंत्रमें समांस याजकोंको “मुग्ध देव” ( भूले भटक प्रमादी याजक ) कहा है । यह सब प्रमाण अहिंसा-पूर्ण कर्म करने के वैदिक धर्म के महासिद्धांत की सिद्धि ही कर रहे हैं । पाठक इनका खूब विचार करें ।

### गोत्र ।

वेदमें “गो-त्र” शब्द “पर्वत, जंगल, वन, घांसवाली भूमि, गौवों के लिये खास कर रखी भूमि, मानवकुल, मानववंश” आदिका, वाचक है । यह शब्द सिद्ध करता है कि ( गो-त्र ) गौओंका पालन करनेका खास प्रबंध वैदिक समयमें था अथवा वेदके धर्मका गौपालन का विशेष प्रबंध करना संमत है । अन्यथा “गो-त्र” शब्द इसप्रकार प्रचार में भी न आता । किसी अन्य पशुके नामसे इस प्रकार का कोई शब्द वेदमें या भाषामें बना नहीं है । गोत्र शब्दका अर्थ “गौका रक्षक अथवा गौद्वारा रक्षित” है यह शब्द पर्वत को लगाया जाता है तथा वंशकेलिये भी प्रयुक्त होता है । अर्थात् खास पर्वत अथवा भूमि गौओंकेलिये अलग रखी जाती थी । पश्चात् पर्वत का ही यह नाम पडा और मनुष्यों के वंश का भी नाम गोत्र हुआ, क्योंकि मानवोंका वंश गौओंसे रक्षित होता है । यह संस्कृत में और वेद की भाषामें “गो-त्र” शब्द का अस्तित्व गौका महत्त्व सिद्ध करता है । जिस समय मनुष्य के वंशके पालनका संबंध गौसे होने की संभावना



मानी जाती थी और उस कारण मानववंश का भी नाम “ गो-श ” रखा गया था, उस समय गौ की हिंसा कैसी होना संभव है यह हमारे समक्षमें नहीं आता। गौके वध का ही अर्थ मानवकुलका वध है, यह बात यहां स्पष्ट होती है, मानव वंशकी संरक्षक शक्ति “ गौ ” है, इस लिये वंशका नामभी “ गौ-त्र ” अर्थात् “ गौ द्वारा पालित होनेवाला मानव कुल ” है । इससे और अधिक गौकी महिमा तो क्या कही जा सकती है ? जगतीतलपर कई भाषाएं इस समय प्रचलित हैं, उनमें गौका संबंध इस प्रकार मानवजातिके साथ बताया नहीं है, परंतु संस्कृत के “ गो-त्र ” शब्द में यह सब महिमा वर्णन हुई है, पाठक इसका मनन अवश्य करें ।

## गौतम ।

ऋषियों के नामोंमें “ गौतम अथवा गौतम ” एक सुप्रसिद्ध नाम है। इसका अर्थ “ जिसके पास बहुत गौवें हैं ” ऐसा होता है। जिस प्रकार “ रथतम या रथितम ” शब्द बहुत रथ पास रखनेवालेका वाचक है, उसी प्रकार गौतम शब्द बहुत गौएं पास रखनेवालेका वाचक है। ऋषिनामों के अंदर यह नाम आता है और वेद मंत्रों में भी इसका कई बार प्रयोग हुआ है, यह शब्द सिद्ध करता है कि गौवें अपने पास अधिक होना एक विशेष प्रतिष्ठाका लक्षण वैदिक समय में था, अन्यथा ऐसे शब्द प्रयुक्त होना असंभव है। घरघर में गौका पालन वैदिक समय में होता था, इस विषय में किसीको भी शंका नहीं हो सकती, इस विषय में यहां प्रमाण भी देनेकी आवश्यकता नहीं है तथापि एक मंत्र उदाहरण के लिये देखिये—

स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय

सुभ्रमन्नमत्ति ॥ ऋ० २।३५।७

“ ( यस्य स्वे दमे ) जिस के अपने घरमें ( सुदुघा धेनुः ) सुगमतासे दूध देने वाली गौ रहती वह प्रतिदिन ( स्वधां पीपाय ) अमृत ही पान करता है और वही ( सुभ्रं अन्नं अत्ति ) बल बढ़ानेवाला अन्न खाता है । ”

घर में गौका होना इस प्रकार वेदमें प्रशंसाकी बात मानी है। जिसके घरमें गौ होती है वह अमृतपान करता है और अपना बल भी बढ़ाता है। यह भाव वैदिक समयमें था इसलिये ऋषिलोग अपने पास बहुत गौवें रखते थे और जिसके पास बहुत गौवें होती थी उसका एक प्रकार से आदर भी होता था। यह बात यदि ठीक प्रकार देखी जाय तो पता लग जायगा कि गौ एक संमान बढ़ानेवाली वस्तु वैदिक समयमें समझी जाती थी, इतनाही नहीं परंतु वंश वाचक गोत्र ( गो + त्र ) शब्द के मननसे स्पष्ट हो जाता है कि मानववंशका संरक्षण करनेका महत्त्वपूर्ण कार्य गौ ही करती थी, इसलिये वैदिक धर्मका पालन करने वाले सज्जन गौको केवल दूध देनेवाली धेनु ही समझते नहीं थे, प्रत्युत अपने वंशका संरक्षण करनेवाली यह गौ अपनी “ परम माता ” है ऐसा समझते थे। जन्मदात्री माता एक काही रक्षण करती है, परंतु यह माता गौ संपूर्ण वंशका, संपूर्ण कुलका और वंशके संपूर्ण स्त्री, पुरुष, बाल, तरुण, वृद्ध आदिका विशेष प्रकार रक्षण करती है, इसलिये जन्म दात्री मातासे भी गौ मनुष्योंकी परमश्रेष्ठ माता है। इस प्रकार जो धर्म गौको “ वंशरक्षक ” मानता है वह उसका वध करनेकी आज्ञा कैसी दे सकता है इसका विचार पाठक अवश्य करें। इसी लिये वेदने कहा है—

धेनूर्जिन्वतं भुत जिन्वतं विशो

हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ॥ ऋ० ८।३५।१८

“ ( धेनूः जिन्वतं ) गौओंको बढ़ाओ, ( विशः जिन्वतं ) प्रजाओं को पुष्ट करो, ( रक्षांसि हतं ) रोग बीजोंका नाश करो और ( अमीवाः सेधतं ) आमसे उत्पन्न होने वाली, अजीर्णसे बनने वाली बीमारियों को दूर करो । ”

ये चार वेद की आज्ञाएं हर एक आर्य सज्जन को मनन करने योग्य हैं। घरमें गौओं की संख्या बढ़ाओ और गौओं को पुष्ट रखो उनके दूधसे प्रजाओंकी पुष्टि बढ़ाओ, रोग के कारण दूर करो और अजीर्णादिको दूर रखो। ये चार आज्ञाएं



वैदिक समयका गौका महत्त्व वर्णन कर रही हैं। वंशका रक्षण गौ किस प्रकार करती है यह यहां स्पष्ट होता है। दृष्टपृष्ट गौके उत्तम दूधसे प्रजा पुष्ट होती है, उससे शरीरमें एक प्रकारका जीवनरस उत्पन्न होता है जो रोगबीजों को दूर करता है और रोगप्रतिबंधक शक्ति भी उत्पन्न करता है। जो इतना जानता है वह मांसके लोभसे कभी गोवध नहीं कर सकता। गोमांस से तो नाना प्रकार के रोग होनेकी संभावना है और गोदुग्धसे तो रोग कम होते हैं और आरोग्य बढ़ता है। इसलिये वेदकेलिये गोमांस भक्षण की अपेक्षा गोदुग्धपान ही अधिक अभीष्ट है यह बात संदेहरहित ही है।

### दुग्ध पान ।

उक्त मंत्र देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक समयमें गौके दूध पीनेकी प्रथा बहुत थी। आजकल जिस प्रकार चा काकी पीते हैं उसी प्रकार उस समय गौका दूध पिया जाता था। छोटे मोटे घडों में दूध भरकर रखा जाता था और वही लोग आनंद से पीते थे। आजकल छोटे छोटे कौलों में जैसा पीते हैं वैसा नहीं, परंतु दुग्धपानके लिये भी बड़े घर्तन बर्तें जाते थे, इस विषयमें यहां एक मंत्र देखिये-

अथ श्वेतं कलशं गोभिरक्षतमापिप्यानं मघवा  
शुक्रमन्थः । अध्वर्युभिः प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो  
मदाय प्रतिधत्पिबध्यै शूरो मदाय प्रतिधत्पिबध्यै॥

ऋ. ४ । २७ । ५

( अथ ) अब ( श्वेतं कलशं ) श्वेत घडा अर्थात् चांदीका घडा ( गोभिः अक्षतं ) गौओंके दूधसे भरा हुआ जो ( शुक्रमन्थः ) तेजस्वी अन्नसे परिपूर्ण है उसका ( मघवा आपिप्यानं ) इन्द्र स्वीकार करे, पीये। अध्वर्यु आदि याजकों द्वारा बनाया हुआ यह (( मध्वः अग्रं ) मधुर रस आनंदके लिये इन्द्र पीये तथा शूर पुरुष भी आनंदके लिये पीवे।

इस मंत्रमें स्पष्ट शब्दोंसे बताया है कि याजक लोग अनेक गौओंके दूधसे उत्तम सोनेचांदीके घडे भरकर रखते हैं और वीर पुरुषोंके श्रमपरिहारके लिये उनको पीनेके लिये देते हैं। वीर पुरुष उस दूधको पीते हैं और अपना बल बढ़ाते हैं। इस मंत्रमें ( गोभिः

अक्षतं कलशं ) “ गौओं द्वारा परिपूर्ण कलश ” ये शब्द हैं। यहां हर एक अर्थ करनेवाले यूरोपीयन और भारतीय लेखकने “ गौ ” शब्दका अर्थ गौका दूधही माना है किसीने भी गोमांस माना नहीं है। नहीं तो केवल गो शब्द देखनेसे ये लोग गोमांसकी भी कल्पना कर सकते हैं, अर्थात् ऐसे स्थानों में आनेवाला केवल गौ शब्द गौके दूधका वाचक है इसमें किसी को भी संदेह नहीं है। यदि मांस पक्षवाले लोक यही विचारपद्धति अन्यत्र भी लगा देंगे और सर्वत्र पूर्वापर संबंध युक्त अन्नवाचक प्रकरणमें गो शब्द से गौका दूध ही लेंगे तो कोई मतभेदही नहीं होगा।

प्रायः प्रत्येक यज्ञमें यह गोदुग्धपान एक महत्त्वका भाग था। अनेक सूक्तोंमें इसका उल्लेख है, अतः उनमें से एक मंत्र देखिये-

प्रति त्वं चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे ।

ऋ० १ । १९ । १

इंद्र ( चारुं अध्वरं ) सुंदर यज्ञमें ( गो-पीथाय ) गोदुग्धपानके लिये ( प्रहूयसे ) बुलाया जाता है। यज्ञमें देवताओंको बुलाना और उनको बहुत दूध पिलाना यह एक वैदिक कालकी विशेष बात थी। अतिथि आनेपर उसको भी गौका ताजा दूध पिलानेकी वैदिक रीति थी। और इसीलिये घर घरमें गौओंकी पालना होती थी, घरकी शोभा गौओंद्वारा बढ़ती है, ऐसा माना जाता था और हर एक मनुष्य गौको अपनी और अपनी जातीकी माता मानता था। इसीलिये गोहत्यारेको वधदंड वेदमें कहा है-

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पुरुषम् ।

तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसौ अवीरहा ॥

अथर्व० १ । १६ । ४

“ यदि तूं हमारी गौ, घोडे और मनुष्यका वध करेगा तो सीसेकी गोलीसे तेरा वध हम करेंगे। ” यहां मनुष्य, घोडा और गौके वधके लिये मृत्युका ही दण्ड कहा है। अर्थात् मनुष्य वधके लिये जो दण्ड है वही गोघात के लिये दण्ड कहा है जिससे गौकी योग्यता मनुष्यके इतनी वेदकी दृष्टिसे सिद्ध होती है। गौ मानवजातीकी माता होनेसे ही उस



गौकी इतनी योग्यता मानी गई है। हिंदु लोग आज-कल गौको माता मानते ही हैं, यह माता माननेकी प्रथा वेदके समान अतिप्राचीन है यह बात पूर्वोक्त मंत्रोंसे सिद्ध होती है ।

## विश्वरूपी गौ ।

वेदमें जो गौकी महती वर्णन की है वह किसीभी अन्य पुस्तकमें नहीं है। गौका नाम सूर्यचंद्रभूमि आदि देवताओंको भी दिया गया है, यह निःसंदेह गौ के महत्त्वका सूचक है अन्यथा सूर्यचंद्रभूमि आदिको गौ किस प्रकार कहा जा सकता है, देखिये -

पृथिवी धेनुः ॥ २ ॥ अंतरिक्षं धेनुः ॥ ४ ॥

द्यौर्धेनुः ॥ ६ ॥ दिशो धेनवः ॥ ८ ॥ अथर्व० ४।३९

“ पृथिवी, अंतरिक्ष, द्युलोक और दिशाएं ये सब धेनुएं अथवा गौवें हैं। ” पाठक यहां यह बात अवश्य देखें कि गौकी उपयुक्तताके समान उपयुक्तता इनकी होनेसे ही इनका नाम गौ हुआ है। अर्थात् आदर्श उपयुक्तता गौकी प्रत्यक्ष है। जिस प्रकार गौ दूध देती है और वह दूध हमारा पोषण का हेतु है, उसी प्रकार पृथ्वी, धान्य तथा औषधि वनस्पतियोंका रस देती है जिससे हमारा पोषण होता है, इसी रीतिसे अंतरिक्षलोकसे मेघोंकी वृष्टिद्वारा जल मिलता है, यह जीवनरस नामसे प्रसिद्ध ही है। इसी प्रकार द्युलोक धेनु है वहांसे जीवन शक्तिसे परिपूर्ण सूर्यका प्रकाश पृथ्वीपर आता है जो प्राणियोंके जीवनको सहायक होता है। दिशाएँ भी गौवें इसलिये हैं कि उनमें से ही सब खानपानके पदार्थ मिलते हैं। ये सब नामाभिधान गौके आदर्शसे ही दिये गये हैं, जैसा गौ रस आदि देकर हमें पुष्ट करती है, उसी प्रकार भूमि भी करती है, इसलिये उसको अलंकार की दृष्टिसे गौ कहा। सूर्य चंद्रादिकोंको भी इस प्रकार गौ कहना स्पष्टतापूर्वक गौका अत्यधिक महात्म्य वर्णन करता है। जिस समय इतना गौका महात्म्य होगा उस समय उस पवित्र गौमाता की हत्या होना किस प्रकार संभव माना जा सकता है ?

वेदमें गौको केवल पृथ्वी अंतरिक्ष और द्युलोक के साथही मिलाया नहीं है, प्रत्युत संपूर्ण ब्रह्माण्ड

के साथ तथा संपूर्ण देवदेवताओंके साथ भी मिला दिया है, इस विषयका सूक्त देखने योग्य है-

## गौका विश्वरूप

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृंगे, इन्द्रः शिरो, अग्निर्ललाटं, यमः कृकाटम् ॥ १ ॥ सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः ॥ २ ॥ विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृत्तिकाः स्कंधा घर्मो वहः ॥ ३ ॥ विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेप्यः ॥ ४ ॥ श्येनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्यं बृहस्पतिः ककुद् बृहतीः कीकसाः ॥ ५ ॥ देवानां पत्नीः पृष्ठय उपसदः पर्शवः ॥ ६ ॥ मित्रश्च वरुणश्चासौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणो महादेवो बाहू ॥ ७ ॥ इन्द्राणी भसद् वायुः पुच्छं पवमानो बालाः ॥ ८ ॥ ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणो बलमूरू ॥ ९ ॥ धाता च सविता चाष्टीवन्तौ जङ्घा गंधर्वा अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शफाः ॥ १० ॥ चेतो हृदयं यक्षुन्मेधा व्रतं पुरीतत् ॥ ११ ॥ क्षुत्कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥ १२ ॥ क्रोथो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेषः ॥ १३ ॥ नदी सूत्री वर्षस्य पतयः स्तनाः स्तनयित्स्वरूधः ॥ १४ ॥ विश्वव्यचाश्चर्मौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् ॥ १५ ॥ देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् ॥ १६ ॥ रक्षांसि लोहितमितरजना उवध्यम् ॥ १७ ॥ अभ्रं पीवो मज्जा निधनम् ॥ १८ ॥ अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना ॥ १९ ॥ इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः ॥ २० ॥ प्रत्यङ् तिष्ठन् धातोदङ् तिष्ठन्त्सविता ॥ २१ ॥ तृणानि प्राप्तः सोमो राजा ॥ २२ ॥ मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥ २३ ॥ युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम् ॥ २४ ॥ एतद्वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् ॥ २५ ॥ उपैतं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवस्तिष्ठन्ति य एवं वेद ॥ २६ ॥ अथर्व० १।७(१२)

इस सूक्त में गौका तथा बैलका विश्वरूप बताया है। भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण भगवान ने अपना विश्वरूप बताया है उसी प्रकारका विश्वरूप गौके विषय



में यहां इस सूक्तमें वर्णन किया है । म. त्रिफिथ इस सूक्तके विषयमें लिखते हैं- The hymn is a glorification of the typical Bull and Cow अर्थात् यह सूक्त गौ अथवा बैलकी प्रशंसापर है । अब इस सूक्तमें कही प्रशंसा देखिये-

“प्रजापति और परमेष्ठी इसके दो सींग, इन्द्र सिर, अग्नि ललाट और यम गलेका संधि है ॥१॥ सोम मस्तिष्क, द्युलोक ऊपरका जबड़ा और भूमि निचला जबड़ा है ॥ २ ॥ बिजुली जिह्वा, मरुत दांत, रेवती नक्षत्र गला, कृत्तिका नक्षत्र कंधा और गर्मीका समय कंधेकी हड्डी है ॥ ३ ॥ वायु इसका सब कुछ है, इसका लोक स्वर्ग है और पृष्ठवंश की हड्डी कृष्णद्र है ॥ ४ ॥ श्येन इसकी छाती, अंतरिक्ष इसका पेट, बृहस्पति इसका कूब है और बृहती इसकी छाती की हड्डी है ॥ ५ ॥ देवोंकी स्त्रियां इसकी पसलियां हैं और उनकी सेविकाएं अन्य साथवाली हड्डियां हैं ॥ ६ ॥ मित्र और वरुण कंधे हैं, त्वष्टा और अर्यमा हाथ हैं और महादेव इसके बाहू हैं ॥ ७ ॥ इन्द्राणी इसका पिछला भाग है, वायु इसकी पंछ और पवमान इसके बाल हैं ॥ ८ ॥ ब्राह्मण और क्षत्रिय इसके कुले हैं, बल जंघा है ॥ ९ ॥ धाता और सविता घुटनेकी हड्डियां हैं, गंधर्व जंघा हैं, अप्सराएं छोटी हड्डियां और अदिति खर हैं ॥ १० ॥ चित्त हृदय है, वृद्धि यकृत है, व्रत हृदयके पास की आंते हैं ॥ ११ ॥ भूख ही पेट है, पेय आंतरिक आंते हैं, और पर्वत आंतरिक भाग हैं ॥ १२ ॥ क्रोध मूत्राशय है, मन्यु अण्ड और प्रजा प्रजननका इंद्रिय है ॥ १३ ॥ नदी गर्भाशय है, वर्षाके अधिकारी देव स्तन हैं, गडगडाहट करने वाले मेघ ही दुग्धाशय है ॥ १४ ॥ व्यापिनी शक्ती चर्म है, औषधियां केश हैं, नक्षत्र इसका रूप है ॥ १५ ॥ देव जन इसकी गुदा है, मनुष्य इसकी आंते हैं, अन्य प्राणी इसका उदर है ॥ १६ ॥ राक्षस इसका रक्त है, अन्य लोग इसका पेट है ॥ १७ ॥ मेघ इसकी चर्बी है, विश्राम इसकी मज्जा है ॥ १८ ॥ बैठनेके समय यही अग्नि है, उठनेपर अश्विदेव हैं ॥ १९ ॥ पूर्वकी ओर देखनेके समय इन्द्र, दक्षिणकी ओर यम ॥ २० ॥ पश्चिमकी ओर धाता, उत्तरकी ओर ठहरनेके समय यही सविता है ॥ २१ ॥ जब यह घास लेती है तब

वही सोमराजा बनती है ॥ २२ ॥ जब वह देखती है तब उसका नाम मित्र होता है, जब घूमती है तब वही आनंद है ॥ २३ ॥ जब बैल जोता जाता है तब वह विश्वेदेव होता है, जब जोता होता है तब वह प्रजापति और जब खुला होता है तब सब कुछ बनता है ॥ २४ ॥ यही ( विश्वरूप ) विश्वरूप अर्थात् ( सर्वरूप ) सर्वरूप है और इसीका नाम ( गौरूप ) गौका रूप है ॥ २५ ॥ जिसको इस विश्वरूपका ठीक ज्ञान होता है उसके पास विविध आकारवाले अनेक पशु होते हैं ॥ २६ ॥ ”

यह सूक्त विशेषकर ( गौरूप ) गौके रूपका वर्णन करता है, परंतु इस सूक्तमें कई मंत्र हैं कि जो बैलके लिये ही हैं। अन्य मंत्र दोनोंके लिये समान हैं और कई केवल गौके वर्णन पर ही हैं । यहां गौका विभूति योग ही वर्णन किया है । इस सूक्तका कई प्रकारसे विचार किया जा सकता है, परंतु यहां केवल एक दो मुख्य बातों को ही बताना है, संपूर्ण सूक्तके सब कथनोंका विचार करनेका यहां प्रयोजन नहीं है । इस सूक्तके विचारणीय भाग जो अपने प्रचलित विषयके साथ उपयोगी हैं, अब यहां दिये जाते हैं-

१ ( मंत्र ९ ) ब्राह्मण और क्षत्रिय चूतर हैं ।

२ ( मंत्र १० ) गंधर्व जंघाएं और अप्सराएं छोटी हड्डियां हैं ।

३ ( मंत्र १६ ) देव इसकी गुदा हैं, मनुष्य आंते हैं और अन्य प्राणी पेट हैं ।

४ ( मंत्र १७ ) राक्षस रक्त है, इतर मनुष्य पेट है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, ( इतर जनाः ) वैश्य, शूद्र, निषाद, गंधर्व, अप्सरा, देव, मनुष्यमात्र, राक्षस अन्य प्राणी ये सब गौका रूप ही हैं । यह भाव उक्त मंत्रों में हैं । ये मंत्र इस वर्णनमें इसलिये आये हैं कि संपूर्ण जनता हृदयसे समझे कि हम सब मनुष्यमात्र गौके शरीरके अंग ही हैं, हम ही उस गौमाताके शरीरके भाग हैं, गौमाताके शरीर में और हमारे शरीरमें इस प्रकार एकरूपता देखें । गौके शरीरको कष्ट होनेसे वह कष्ट गौपर नहीं प्रत्यत हमपर है यह भाव मनमें धारण करें । यदि कोई मनुष्य गौको अधिक कष्ट देगा, या काटेगा या अन्य प्रकार दुःख



देगा तो वह मनुष्य केवल गौकोही दुःख देता है और गौके दुःखी होते हुए हम सुखी रह सकते हैं, यह हीन भाव मनसे हटा दें। चूँकि गौका हमारे साथ अवयवी और अवयवोंका संबंध है, हमही गौके अंग हैं इसलिये जो दुःख गौको मिलता है वह हमें ही मिला है ऐसा मानना चाहिये। और इसी भावनासे गौकी पालना और रक्षा करना चाहिये। अर्थात् जिस भावनासे अपनेपर दुःख आनेपर प्रतिकार किया जाता है उसी तीव्रतासे गौके कष्टोंको दूर करनेका यत्न करना चाहिये।

गौकी पालना, रक्षा और वृद्धि भी उक्त विचार मनमें जाग्रत रख करही करनी चाहिये। गौ केवल एक दूध देनेवाला पशुही नहीं है, प्रत्युत वह अपने कुटुंबका एक हकदार है अथवा वह कुटुंबका मालिक है और हम उसके परिवारके आदमी हैं, यह भाव मनके अंदर जीवित और जाग्रत रहना चाहिये।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद, राक्षस आदि सभी जातियोंके मनुष्योंमें यह विचार जाग्रत रहना चाहिये। ऐसा होनेसे संपूर्ण जगतीतल के ऊपर गौमाताकी ही पूजा होगी। यह संपूर्ण जगत् ही " गोरूप " अर्थात् गौका रूप है इसलिये इस गौके साथ किसी अन्य पदार्थकी तुलना होही नहीं सकती। हरएक अन्य पदार्थ के लिये विविध उपमाएं दी जा सकती हैं, परंतु गौही ऐसी है कि जो अनुपम है, क्योंकि वह संपूर्ण प्राणिमात्र की निरुपम माता है, मानव वंशोंका पालन करनेवाली और संपूर्ण मानव जातीही जिसके एक प्रकारसे अंग और अवयव है, ऐसी एकमात्र गौ है।

पाठक विचार करेंगे और गौके उपकारोंका मनन करेंगे तो यह वेदका कथन उनके मनमें ठीक रीतिसे आ सकता है। कई पछेंगे कि इतने वर्णनसे वेदने किस बातकी शिक्षा दी है ?

इस प्रश्नके उत्तर में निवेदन है कि वेदने इस सूक्तद्वारा अहिंसा का उत्तमोत्तम उपदेश दिया है। कोई मनुष्य या कोई प्राणी अपने आपकी हिंसा नहीं करता। शेर हो या बबर हो जगत् के अन्य प्राणियोंका घातपात करते हैं, जो राक्षस हैं वेभी दूसरोंको खा जाते हैं परंतु ये दूसरे के देहपर उपजी-

विहा करनेवाले क्रूर प्राणीभी अत्यंत भूख लगनेपर अपने ही देह के अवयवोंको कभी काटकर खाते नहीं हैं। व्याघ्र या सिंह कितना भी भूखा क्यों न हो, उसने कभी अपने देहका मांस खाया नहीं है, किसी राक्षसने भी अपने देहका मांस नहीं खाया है। इसलिये इस स्वाभाविक प्रवृत्तिको लेकर ही वेद मनुष्योंको इस सूक्त के वर्णन के द्वारा गाय और बैलके मांस से पूर्णतया निवृत्त करना चाहता है, यह बात इस सूक्तके वर्णन से स्पष्ट हो जाती है।

जिस समय संपूर्ण मनुष्य अपने आपको गौके शरीर के अवयव ही हृदयसे मानेंगे, तो वे इस विचारको मनमें रखनेवाले लोग गौका मांस या बैलका मांस किस प्रकार खा सकेंगे ? क्यों कि कोई भी अपने शरीर का ही मांस कभी नहीं खाता। पूरा मांसभोजी मनुष्य अथवा नरमांसभोजी मनुष्य भी अपने शरीर का मांस नहीं खाता। इस लिये यदि मनुष्य अथवा जो मनुष्य अपने आपको गौके शरीरके अवयव मानेंगे तो वे मनुष्य गोमांस भक्षण से पूर्णतया निवृत्त ही होंगे। देखिये कितनी प्रबल युक्तिसे वेदने लोगोंको, मांसभोजी राक्षस श्रेणीके लोगों को भी निर्मांसभोजी बनानेका यत्न किया है। इतनी प्रबल यह युक्ति है कि यदि इस प्रकार का विचार मनमें स्थिर हो जाय तो कभी कोई गोमांस खावे ही नहीं। इतनी प्रबल युक्ति देनेपर भी कई युरोपीयन इस समयतक मानते हैं कि वैदिक कालमें गोमांस भक्षण की प्रथा थी और बैल का भी मांस खाया जाता था। इन लोगोंसे हमारी प्रार्थना है कि वे इस प्रबल युक्तिका अधिक मनन करें और पश्चात् अपना मत बनावें।

गौ मेरे से भिन्न नहीं, मैं उस गौके शरीरका एक भाग हूं इस लिये मुझे अपनी रक्षा करनेके समान ही गौ की भी अवश्य रक्षा करना चाहिये। यह कितना उच्चतम उपदेश। है पाठक भी इस उपदेश का महत्त्व देखें।

दुराचारी मनुष्य भी जिस समय किसी स्त्रीको माता कहता है तो उसकी दृष्टीमें तत्काल पवित्रता आ जाती है। अर्थात् माता कहनेका तात्पर्य ही यह है कि उसकी और पवित्रता की दृष्टिसे देखना।



गौको माता कहनेका अर्थ ही यह है कि गौको पवित्र और पूज्य दृष्टिसे देखना है। अपनी साक्षात् पूजनीय वंदनीय और पालनीय परम माता यह है यह भाव मनमें हर समय रखना चाहिये। पाठक इस सूक्तका मनन इस दृष्टिसे करें। इन्द्रादि देव किसी भी अन्य स्थानमें नहीं हैं वे जीवित और जाग्रत गोमाताके देहमें हैं, जहां इन्द्रादि देव रहते हैं वही स्वर्ग है, अर्थात् “ गौ ” ही स्वर्ग लोक है, यही भाव पूर्वोक्त सूक्तके चतुर्थ मंत्रमें कहा है।

ये सब भाव इस समय हिंदुलोगोंके मनमें बीज रूपसे देखे जा सकते हैं। यद्यपि इस समय पुराने अथवा नये ख्यालवाले हिंदु लोग इस अथर्व वेदके सूक्तको जानते भी नहीं हैं तथापि उनके अंदर प्राचीन कालसे वैदिक धर्मके संस्कार रहनेके कारण उनके मनमें ये वैदिक संस्कार सुप्त अवस्थामें इस समय दिखाई देते हैं। वे गौको माता कहते हैं, गौके शरीरमें नाना देवताओंका होना मानते हैं, गौको देवता भी मानते हैं, यह सब मानते हुए भी उक्त उपदेश न समझनेके समान ही उनका आचरण होता है। इसका कारण उनका धर्म विषयक अज्ञान ही है। यदि वेदका यह उपदेश उनके मनमें जागता रहेगा तो वे गौकी रक्षा उत्तम प्रकार कर सकेंगे।

यह सूक्त गौके जिस गौरव का वर्णन कर रहा है वह गौरव जिस कालमें जनतामें होगा उस काल में गौका वध होना ही असंभव था। यह बात अब अधिक विस्तृत कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है। ऐसी अवस्थामें मांस पक्षी लोगोंका कैसा साहस होता है और वे किस आधारपर कह सकते हैं कि, वैदिक कालमें यज्ञोंमें गाय और बैलका मांस बर्ता जाता था और यज्ञशेष मांस खाया भी जाता था।

आजकल जो समांस यज्ञ करते हैं वे भी यज्ञशेष समझ कर जो मांस खाते हैं वह मांस प्रत्येक ऋत्विज के लिये दोतीन रत्ती भर भी नहीं मिलता है, प्रायः तीन चावलोंके बराबर ही वे लेते हैं। परंतु हमारा ख्याल यह है कि इतना मांस लेना भी वेदके मंत्र-भागसे सिद्ध नहीं होता है। परंतु इतनेसे मांसके लिये यज्ञयागका हजारों रु० का व्यय क्यों किया जाय अर्थात् जो समांस यज्ञ करते हैं वे भी मांसकी

लालचसे निःसंदेह नहीं करते, क्यों कि एकदो रत्ती मांस प्राप्त करनेसे लालचकी तृप्ति कैसी हो सकती है ? अर्थात् उनके अंदर मांसकी लालच नहीं होती, वे समझते हैं कि समांस यज्ञ करना वैदिक धर्म के अनुकूल है। इस लिये जो ऐसा मानते हैं उनको इस सूक्तका अच्छा विचार करना चाहिये। और वेदका अहिंसाही पक्ष है यह बात उनको अवश्य ध्यानमें धरनी चाहिये।

इतने विचार से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि वेदमंत्रों के आधारसे गोमांस भक्षण की प्रथा वैदिक समयमें थी, यह बात सिद्ध नहीं हो सकती, परंतु वेदमंत्रोंके प्रमाण से यह सिद्ध हो सकता है कि उस समय निर्मांस भोजन की प्रथा थी। शिष्टसंमत वैदिक यज्ञमें गोमांस का प्रयोग होनेकी संभावना भी वैदिक कालमें दिखाई नहीं देती, इसलिये कि गोमांस का यज्ञ करनेवालेको वेद मंत्रने ही “ मूढ याजक ” कहा है, अर्थात् जो याजक मूढ नहीं वह यज्ञमें मांसका प्रयोग नहीं करेगा। मूढ मनुष्य जो करता है उसका नाम धर्म नहीं हो सकता, इसलिये वैदिक कालमें मूढ पागल मनुष्य क्या करते थे और क्या नहीं, इसका विचार करनेकी हमें कोई आवश्यकता नहीं है, क्यों कि हमें वैदिक समयका शिष्टसंमत धर्मही देखना है। परंतु यदि किसीको देखना हो तो वह माने की वैदिक कालके मूढ लोग कुत्ते और गौके अवयवोंसे यजन करते थे। इससे इतनाही सिद्ध होगा कि यह धर्म शिष्ट संमत वैदिक धर्म नहीं था। मूढ लोग कभी धर्मके आदर्श नहीं होते हैं। वेदमें कई लोगोंका वर्णन है, कई राक्षस मनुष्यमांस खाते थे, पिशाच खून पीनेवाले थे, कई गर्भ को खानेवाले भी थे, कई अन्यान्य जानवरों को भी खाते होंगे, परंतु इन सबको दूर करनेके लिये ही वेदने कहा है, इनका यह व्यवसाय आदर्श करके वेदने नहीं कहा है, परंतु वेदने यह व्यवसाय ऐसा कहा है कि जिससे धार्मिक लोग अपने आपको दूर रखें।

इससे वेदका धर्म अहिंसावादी सिद्ध होता है। इस लेखमें जितने प्रमाण दिये हैं, उनको देखनेसे और अधिक प्रमाण देनेकी अब कोई आवश्यकता नहीं है, तथापि अथर्ववेद में गोमेध विषयक दो सूक्त हैं



जिनको मांसपक्षी लोग गोमांस भक्षण परक लगाते हैं, इसलिये उनका विचार अब करना आवश्यक है, देखिये अब वे दो सूक्त-

### गोमेध

अथर्ववेद कांड १० में सूक्त ९ और १० ये दो सूक्त हैं, इनका अब अर्थ देखिये-

अघायतामपि नह्य मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम् ।  
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः ॥

( अघायतां मुखानि ) पाप करने वालोंके मुंह ( अपि नह्य ) बंद करके ( सपत्नेषु एतं वज्रं अर्पयत ) शत्रुओंपर यह शस्त्र चलाओ : ( यजमानस्य गातुः ) यजमानको यश देनेवाली ( भ्रातृव्यघ्नी ) शत्रु का नाश करनेवाली ( प्रथमा शतौदना ) पहिली शतौदना गौ ( इन्द्रेण दत्ता ) इन्द्रने दी है ॥ १ ॥

इस मंत्र में पापी लोगोंके मुख बंद करो और शत्रु पर शस्त्र चलाकर उनको दूर भगा दो, ये दो उपदेश सबसे प्रथम कहे हैं, इस से यह सिद्ध होता है कि, इस सूक्त में जो आगे कथन होनेवाली बात है उसमें ( अघायत् ) पापी लोगोंका कोई प्रयोजन नहीं है। पाप वृत्तिवाले जो लोग होते हैं वे अच्छे कार्य को भी बिगाड़ देते हैं, इस लिये किसी अच्छे कार्यके साथ पापी मनुष्योंका संबंध न आजाय इस विषय में सावधानी रखनी चाहिये। पापी मनुष्योंको दूर करना और शस्त्रों द्वारा उनको सदा दूर रखना और पश्चात् अच्छा कार्य प्रारंभ करना चाहिये, नहीं तो पापवृत्तिवाले मनुष्य अच्छे से अच्छे कार्यका भी बिगाड़ करेंगे।

यहां से अब गोमेध का प्रकरण शुरू होता है, इस लिये इस पवित्र गोमेधमें ( अघायत् ) पापकर्म करनेवाले मूढ़ याजक ( भुग्धा देवाः ) न आवें और गोमेध की पवित्रता को न बिगाड़ें, इस लिये वेदने यहां इनको दूर भगानेकी सूचना सबसे प्रथम दी है।

इस मंत्रमें और इस सूक्तमें “ शतौदना गौ ” का वर्णन है। यह शतौदना गौ कौन है इसका अब विचार करना चाहिये। ( ओदन ) चावल्लोंके

( शत ) सौ भोजन देनेवाली गौ जो होती है उसका नाम शतौदना गौ है। एक साधारण मनुष्य के लिये पर्याप्त होने वाले चावल्लों का नाम “ एक ओदन ” है, तथा सौ मनुष्यों के लिये पर्याप्त होनेवाले चावल्लोंका नाम “ शत ओदन ” है। मान लें कि सौ मनुष्य केवल दूध चावलही खानेवाले हैं। जिस एक गौका एक दिनभर का दूध सौ मनुष्योंके पके चावल्लोंको भिगो सकता है उसका नाम “ शतौदना गौ ” है। अच्छी गौ प्रतिवार दस या पंद्रह सेर दूध देती है, और सवेरे, मध्यदिनमें और सायंकाल को अर्थात् यज्ञके तीन सवनोंमें तीनवार दूध निचोड़ा जाय तो तीस सेर से अधिक और पचास सेरसे कम दूध मिल सकता है। इतना दूध उक्त सौ मनुष्योंके चावल्लोंको भिगोनेके लिये पर्याप्त है। यह एक गौके दूधका प्रमाण है। जिसप्रकार आजकल यंत्रकी शक्ति घोड़ोंके प्रमाणों से देखी जाती है उसी प्रकार वैदिक कालमें गौकी दूध देनेकी शक्ति “ इतने ओदन दूध देनेवाली ” इस प्रमाणसे देखी जाती थी। जैसा शतौदना गौ, पञ्चौदना अजा ३०। पञ्चौदन अज का वर्णन अथर्ववेद ( काण्ड ९।५ तथा काण्ड ४।१४ ) में आया है। बकरीका अधिक से अधिक दूध “ पांच ओदन ” के लिये पर्याप्त होता है और गायका अधिकसे अधिक दूध “ सौ ओदन ” के लिये पर्याप्त होता है। बकरीको “ पंचौदन ” और गौको “ शतौदन ” शब्द क्यों प्रयुक्त हुए हैं इस का स्पष्टीकरण यह है। यह दूधका प्रमाण आजभी ठीक प्रतीत होता है। बकरीकी अपेक्षा बीस गुणा दूध गौ दे सकती है इस विषयमें किसीको शंका नहीं हो सकती।

इस मंत्रमें कहा है कि ऐसी उत्तम शतौदना गौ इन्द्रने सबसे पहिले ( दत्ता ) दान दी थी, तबसे शतौदना गौ दान देनेकी प्रथा शुरू हुई। इस मंत्रमें “ दत्ता ” शब्द है जो दान देनेका सूचक है, यह बात पाठक स्मरण रखें, क्यों कि इसका आगे बहुत संबंध है। आगे भी —

( १-३ ) यो ददाति शतौदनाम् ॥ अ. १०।१।५, ६, १०  
( ४ ) ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वलोकान्समश्नुते ॥

अ. १०।१०।३३



( १ ) जो शतौदना गौको दान देता है ।  
( २ ) ब्राह्मणोंको वशा गौ दान देनेसे संपूर्ण लोकोंकी प्राप्ति होती है ।”

इन मंत्रों में अर्थात् इसी गोमेधके सूक्तोंमें ब्राह्मणोंको शतौदना वशा गौ दान देना लिखा है । जो लोग गोमेधमें गोवध होता है ऐसा मानते हों उनको ये मंत्र ध्यानमें रखने चाहिये । जिस प्रकार इन पांच मंत्रोंमें गोदान करनेका भाव है उसी प्रकार इन्हीं सूक्तों में आगे गौका दान स्वीकार करनेका भी वर्णन है । इस विषयमें और एक मंत्र भी देखिये  
आपो देवीर्मधुमर्तुधृतश्चतुः

ब्रह्मणां हस्तेषु प्र पृथक् सादयामि ॥ अ. १०।१।२७

“ ब्राह्मणोंके हाथोंमें अलग अलग गौके समान मधुर दिव्य जल छोड़ता हूं ।” अर्थात् पूर्वोक्त गौके दान करनेके समय मैं हर एक ब्राह्मणको अलग अलग गौ देता हूं और दान का सूचक उदक भी मैं हर एक ब्राह्मणके हाथमें छोड़ता हूं । यह उदक सिंचन पूर्वक दानकी प्रथा आज तक चली आ रही है । यह बात पाठक स्मरण रखें । जिस प्रकार गोमेध में गौका दान करने की विधि है उस प्रकार यह शतौदना वशा गौ कौन ले सकता है इस विषय में भी कुछ नियम इसी गोमेध सूक्तमें लिखे गये हैं वे मंत्र अब देखिये-

( १ ) शिरो यज्ञस्य यो विद्यात्स वशां प्रतिगृह्णीयात् ॥

( २ ) य एवं विद्यात्स वशां प्रतिगृह्णीयात् ॥

( ३ ) य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥

( ४ ) सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥ अ० १०।१०।२, २७, ३२, २८

( १ ) जो यज्ञके सिरको जानता है वह वशा गौका दान लेवे, ( २ ) जो पूर्वोक्त ज्ञान जानता हो वह वशा गौका दान लेवे, ( ३ ) जो ऐसे विद्वान को वशा गौ दान देते हैं वे स्वर्ग में जाते हैं । दूसरों के लिये ( ४ ) वशा गौ दान में लेना अयोग्य है ।”

इन मंत्रों में विशेष तत्त्वज्ञानी ब्राह्मणही वशा गौको दानमें लेवे ऐसा स्पष्ट कहा है । जो ऐसा ज्ञानी ब्राह्मण न हो वह गौका दान लेनेका अधिकारी नहीं है । दान देनेवाला यजमान भी कौनसा ब्राह्मण गौ दान देने योग्य है इसका निश्चय इन कसौटियोंसे करे । लेनेवाला भी अपनी योग्यता होगी तो लेवे अन्यथा न लेवे ।

गोमेध सूक्तों में गौके दान के विषय के ये मंत्र सूचित कर रहे हैं कि गोमेधमें ब्राह्मणको गौ दान देनेकी बात अवश्य है । गोमेधसे गोमांस हवन की बात ही माननेवाले विद्वान इन मंत्रोंका अवश्य ही विचार करें और गोमेधमें गोदान है यह समझें । सर्वमेधमें अपने सर्वस्वका दानही दिया जाता है इसी प्रकार गोमेधमें गौका दान देना संभवतः उक्त मंत्रों के प्रमाणसे माना जा सकता है । इस प्रकार प्रथम मंत्रका विचार करनेके बाद अब आगेके मंत्र देखिये-  
वेदिष्टे चर्म भवतुर्बर्हिर्लोमानि यानि ते ।

एषा त्वा रशनाभ्रभीदग्रावा त्वैषोऽधि नृत्यतु ॥ २ ॥

बालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं मार्ष्य वक्ष्ये ।

शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ३ ॥

यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते ।

प्रीता ह्यस्य त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥ ४ ॥

स स्वर्गमारोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः ।

अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ५ ॥

स ताल्लोकान्तसमाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।

हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ६ ॥

अथर्व. १०।९

“ हे गौ ! तेरा चर्म वेदी बने, जो ( लोमानि ) लोम हैं वे यज्ञकी बर्हिके स्थानपर हों यह रसी तुझे ठीक रीतिसे धारण करे और यह यज्ञका प्रावा तेरे ऊपर ( नृत्यतु ) नाचता रहे ॥ २ ॥ तेरे बाल पवित्र जलके स्थान पर समझे जाय, हे ( अ-क्ष्ये ) हनन करने अयोग्य गौ ! तेरी जिह्वा ( सं मार्ष्य ) तुझे स्वच्छ करे । तू शुद्ध और यज्ञिय होकर, हे ( शतौदने ) शतौदन गौ ! तू ( दिवं प्रेहि ) स्वर्ग को जा ॥ ३ ॥ ( यः ) जो ( शतौदनां पचति ) शतौदनाको परिपक्व बनाता है ( सः कामप्रेण लभते ) उसको इच्छा पूर्ण होती है । इसके सब ऋत्विज संतुष्ट होकर जहां इच्छा हो वहां जाते हैं ॥ ४ ॥ ( स स्वर्गं आरोहति ) वह उस स्वर्ग पर पहुंचता है कि ( यत्र अदः दिवः त्रिदिवं ) जहां द्युलोक का तीसरा स्वर्ग है । ( यः अपूपनाभिं कृत्वा ) जो मिठे वडे बनाकर ( शतौदनां ददाति ) शतौदना गौको दान देता है ॥ ५ ॥ जो सोनेके चमकदार गहने पहनाकर शतौदना गौका दान करता है वह



इह परलोक में श्रेष्ठ लोक प्राप्त करता है ॥ ६ ॥ ”

इन मंत्रोंमें दो वाक्य हैं कि जो शंका करने योग्य समझे जाते हैं वे वाक्य ये हैं—

१ दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ३ ॥ २ यः शतौदनां पचति ॥ ४ ॥

“ ( १ ) हे शतौदने ! तू स्वर्गको जा । ( २ ) जो शतौदनाको पकाता है । ” साधारण लोग समझते हैं कि पहिले वाक्य में “ गौको स्वर्गको जा ” कर के जो कहा है वह गोवध का सूचक है तथा दूसरे वाक्यमें “ शतौदनाको पकानेका वर्णन स्पष्ट है । ” यह मांसपक्षियोंका कथन बिलकुल अयोग्य है देखिये इसके हेतु—

यदि पहिले वाक्यमें “ ( दिवं प्रेहि शतौदने ) शतौदने ! तू स्वर्गको जा ” इस कथनसे गौको काटनेका अनुमान करना है तो ऊपरके ही पंचम मंत्रमें “ ( स स्वर्गं आरोहति ) वह यजमान स्वर्ग पर चढ़ता है ” यह कथन है, क्या इससे यजमानको भी काटने का अनुमान करना है ? दोनों विधानोंसे एकही अनुमान निकल सकता है । स्वर्गमें जानेकी बातही यहां माननी हो तो जिस स्वर्गमें शतौदना गौ तत्काल जाती है, उसीमें तत्काल ही यजमान पहुंचता है क्यों कि स्वर्गमें चढ़नेके क्रियापद वर्तमान कालके ही बोधक हैं । आज गौको काटेगा वह यजमान मरणके पश्चात् स्वर्गको जायगा यह मंत्रका कथन नहीं है, परंतु कथन यह है कि “ जो शतौदना का पाक करेगा वह स्वर्गके तीसरे लोकमें उसी समय चढ़ता है । ( मंत्र. ५ ) ” अर्थात् यजमानकी तो उसी समय स्वर्गप्राप्ति है ! इस लिये यहांके शब्द प्रयोग विचारके साथ देखने योग्य हैं—

१ दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ( मंत्र ३ )

२ स ( यजमानः ) स्वर्गमारोहति ॥ ( मंत्र ५ )

प्रथम वाक्यमें शतौदनाको कहा है कि “ तू स्वर्गको जा । ” यहां ऐसा नहीं कहा कि शतौदना गौ तत्काल स्वर्गको जाती है । परंतु दूसरे वाक्यमें कहा है कि “ यजमान तो उसी समय स्वर्गपर चढ़ता है । ”

इन दोनों वाक्योंका भेद पाठक समझही सकते हैं । अर्थात् यदि स्वर्गको जानेका अर्थ हवन के लिये कट जाना ही मानना है, तो वह आपत्ति यजमानपर विशेष जोरसे और सबसे प्रथम आ जाती है । और

उसी युक्तिसे मानना पड़ेगा कि गोमेधमें गौ और यजमान इन दोनों की समान गति होती है !!!

पाठक यहां विचार करें कि यदि यज्ञमें कटे हुए पशुसे पूर्व ही यजमानको भी स्वर्ग मिलना हो तो इस प्रकार का कर्म, कि जिसमें अपना ही नाश उसी समय होना हो, कौन करेगा ? किसी भी अन्य यज्ञोंमें जो आपत्ति नहीं वह इस गोमेध में है । अन्य यज्ञोंके वर्णनोंमें यजमानको मरनेके पश्चात् स्वर्गप्राप्ति लिखी है, परंतु यहां तत्काल लिखी है । इस लिये यहांके इन वाक्योंका कुछ तात्पर्य अन्य ही समझना उचित है । इसलिये इसके अगला ही मंत्र देखिये—

स तांलोकानापनोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।  
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ६ ॥

अथर्व. १० । ९ । ६ ॥

“ जो स्वर्ग के और पृथ्वीपर के लोक हैं उन सबको वह यजमान प्राप्त होता है जो सुवर्णके आभूषण बनाकर शतौदन गौका दान करता है । ”

इस मंत्रमें कहा है कि सुवर्णके आभूषणोंसे सजी हुई गौका जो यजमान दान करता है वह इस भूमि परके तथा स्वर्ग के संपूर्ण लोकोंको प्राप्त करता है । इसी प्रकारका पंचम मंत्र है देखिये—

अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ५ ॥

हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ६ ॥

पहिले मंत्रने कहा है कि मीठे वडे बनाकर गौका दान करना चाहिये और दूसरे मंत्रका कथन है कि सुवर्णके आभूषणोंसे सजा कर गौका दान करना चाहिये ।

इन मंत्रोंका विचार करनेसे गौदान करनेकी वैदिक रीति ज्ञात होजाती है । जिस ज्ञानी ब्राह्मणको गौ दान करनी हो उसको अलंकारोंके सहित और मिठाईके सहित गौ दान देनी चाहिये । यह प्रथा इस समयतक चली आई है । गौ दान करनेके समय गौ पर कुछ जेवर रखते हैं और साथ कुछ मीठी चीज भी रखते हैं ।

इन मंत्रोंमें ( ददाति ) दान करनेका बोधक शब्द है । जो सजी सजाई गौ ब्राह्मणको देता है वह स्वर्ग का भागी होता है । ये मंत्र देखनेसे गौ काटनेका यहां कोई संबंध नहीं है । और यजमानको भी कोई



डरनेकी बात नहीं है क्यों कि यजमान तो जब गौ दान करेगा तबसे आयुकी समाप्ति तक ( पार्थिवाः लोकाः ) इह लोकका यश भोगेगा और मरनेके पश्चात् ( दिव्याः लोकाः ) दिव्य लोग प्राप्त करेगा । जिस प्रकार यह सरल है उसी प्रकार गौभी जिसका दान ब्राह्मणको हुआ हो वह अपनी आयुकी समाप्ति तक उसी ब्राह्मणके घर रहेगी और मृत्युके पश्चात् स्वर्गको पहुँचेगी । अर्थात् इस सूक्तके मंत्रोंमें गौ को “स्वर्गको जा ” कहने मात्रसे गौ काटनेकी कल्पना करना अत्यंत अयुक्त है । और अगर यहां वैसी कल्पना की गई तो वही बात यजमानपर भी आ जाती है, इसलिये ऐसी भयानक कल्पनाएं करना किसीको भी योग्य नहीं है ।

संपूर्ण वेदोंमें गोमेधके ये दोही सूक्त हैं और इन दो सूक्तोंमें ६१ मंत्र हैं । इनमें गौके दानके विषयमें कई मंत्र इससे पूर्व दिये हैं, उनके साथ निम्न लिखित मंत्र भी देखिये—

ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वालोकान्समश्रुते ॥

अ० १०।१०।३३

ब्राह्मणोंको वशा गौ दान देनेसे सब लोक प्राप्त करता है।” यदि गौ काटकर हवन करनेका मतलब इन सूक्तोंमें होता तो ऐसे दानवाचक मंत्र व्यर्थही हो जायेंगे । वास्तवमें देखा जाय तो गोमेधमें दो बातें हैं (१) एक गौ की गुणोंसे उन्नतिकरना और (२) दूसरा गुणोंसे उन्नत हुई गौ ब्राह्मणोंको दान देना ।

इन सूक्तोंमें एक भी मंत्र ऐसा नहीं है कि जो गौ को काटने और उसके अवयवोंके हवनका दर्शक माना जा सके । इसलिये इन सूक्तोंके ऊपर गोमांस हवन की कल्पना मढ़ देना सर्वथा अनुचितही है । गौके दान देनेके जो आठ दस मंत्र हैं वे स्पष्टतासे बता रहे हैं कि विद्वान ब्राह्मणको गौदान देनेका नाम गोमेध है । इस प्रकारका दान देनेसे यजमान इह लोकमें सुख भोग करके अंतमें स्वर्गको जाता है और यह गौका दान करना अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञोंसे भी अधिक पुण्य देनेवाला है, इस विषयमें इनही सूक्तोंमें आगे मंत्र आजायेंगे । इसलिये गौको ‘दिवं गच्छ’ इतना कहने मात्रसे उसका वध करनेकी कल्पना करना सर्वथा अनुचित है ।

अब आगेके कुछ मंत्र देखिये—

ये ते देवि पक्तारः शमितारो ये च ते जनाः ।  
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो मैषीः शतौदने ॥७॥  
वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा ।  
आदित्याः पश्चाद्गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव ॥८॥  
देवाः पितरो मनुष्या गंधर्वाः अप्सरसश्च ये ।  
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव ॥९॥  
अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान्मरुतौ दिशः ।  
लोकान्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम् ॥१०॥  
घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति ।  
पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीदिवं प्रेहि शतौदने ॥११॥  
ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये चेभ्यो भूम्यामधि  
तेभ्यस्त्वं धुश्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १२ ॥

अथर्व. १०।९

“हे देवि ! हे गौ ! जो लोग तेरे ( पक्तारः शमितारः ) पकानेवाले और तेरी शान्ति करनेवाले हैं, वे सब ( त्वा गोप्स्यन्ति ) तेरी रक्षा करेंगे । हे शतौदने गौ ! ( एभ्यः मा मैषीः ) इनसे तू मत डर, क्यों कि इनसे तुम्हें कोई भय नहीं प्राप्त होगा ॥ ७ ॥ दक्षिण की ओर से वसुदेव, उत्तर दिशासे मरुत् देव, पीछेसे आदित्य देव ( त्वा गोप्स्यन्ति ) तेरी रक्षा करेंगे वह तू ( अग्निष्टोमं अतिद्रव अग्निष्टोम नामक यज्ञसे भी आगे बढ़ ॥ ८ ॥ देव, पितर, मनुष्य, गंधर्व, अप्सरा ये सब ( त्वा गोप्स्यन्ति ) तेरी रक्षा करेंगे, ऐसी रक्षित होनेवाली तू ( अतिरात्रं अतिद्रव ) अतिरात्र नामक यज्ञसे भी आगे बढ़ जा ॥ ९ ॥ ( यः शतौदनां ददाति ) जो शतौदना गौका दान करता है वह उन सब लोकोंको प्राप्त करता है कि जो अन्तरिक्ष, द्यु, भूमि, आदित्य, मरुत और दिशाओंमें हैं ॥ १० ॥ घी देती हुई सौभाग्य युक्त गौ देवी देवोंके प्रति पहुँचती है । हे ( अघ्न्ये ) हवन के लिये अयोग्य गौ देवते ! ( पक्तारं मा हिंसीः ) परिपक्व करने वालेकी तू हिंसा मत कर ! और हे शतौदने ! ( दिवं प्रेहि ) स्वर्गको जा ॥ ११ ॥ जो देव द्यु लोक, अन्तरिक्ष और भूमिपर हैं उन सब देवोंके लिये दूध, घी और मधु तू ( धुश्व ) दे ॥ १२ ॥

इन मंत्रोंके अंदर “शमितारः, पक्तारः, पक्तारं”



ये तीन शब्द हैं, इसलिये मांसपक्षके लोग कहते हैं कि इन मंत्रोंमें गौका वध करके उसके मांसको पकानेका विधान है। ये लोग ऐसा इस लिये कहते हैं कि इनके ध्यानमें पूर्वापर संबंध आया नहीं है। यदि यहांके “ शमितारः पक्तारः ” ये शब्द गोवध का भाव बताते हैं तो ७, ८, ९ इन तीन मंत्रोंमें तीन बार “ गोप्स्यन्ति ” शब्द आया है जिसका अर्थ केवल “ रक्षण करेंगे ” यही असंदिग्ध रीतिसे निश्चित है, इसका क्या तात्पर्य होगा? देखिये—

- १ पक्तारः शमितारः जनाः त्वा गोप्स्यन्ति ॥ मं. ७ ॥
- २ वसवः मरुतः आदित्याः त्वा गोप्स्यन्ति ॥ मं. ८ ॥
- ३ देवाः पितरो मनुष्याः गंधर्वा अप्सरसः च त्वा गोप्स्यन्ति ॥ मं. ९ ॥

“ ( १ ) ( पक्तारः ) परिपक्व करने वाले, ( शमितारः ) शांत करने वाले तेरी रक्षा करेंगे ॥ ७ ॥ ( २ ) वसु, मरुत् और आदित्य तेरी रक्षा करेंगे ॥ ८ ॥ ( ३ ) देव, पितर, मनुष्य, गंधर्व, अप्सराएं तेरी रक्षा करेंगे ॥ ९ ॥ ”

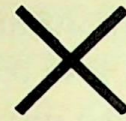
ये मंत्र गौकी रक्षा करनेका कार्य सूचित कर रहे हैं। इसमें “ मनुष्याः, जनाः ” ये दो शब्द तो “ गौकी रक्षा मनुष्य करेंगे ” यही भाव सूचित कर रहे हैं। यदि शमिताने गौका वध किया और पक्ताने गोमांस पकाया, तो रक्षण करनेवाले किसका रक्षण करें? अर्थात् यहां पक्ता और शमिताका उतना ही कर्म अभीष्ट है कि जिसके बाद गौ जीवित रहेगी और रक्षा करनेवाले रखवालेके पास दी जा सकेगी। मंत्रों का पूर्वापर संबंध देखनेसे यही स्पष्ट भाव प्रतीत होता है।

आजकल जो समांस यज्ञ किया जाता है उसमें “ शमिता ” नामक एक ऋत्विज रहता है जिसका कार्य यज्ञीय पशुका वध करना होता है। पक्ता शब्दका अर्थ पकानेवाला है इसमें भी हमें कोई आक्षेप नहीं है। परंतु ये अर्थ पूर्वापर संबंधसे यहां अपेक्षित नहीं हैं यही हमारा कथन है।

यहां विवादास्पद तीन शब्द हैं। “ शमितारः और पक्तारः ” ये शब्द वध और पकानेकी बात सूचित कर रहे हैं और दूसरी ओर “ गोप्स्यन्ति ” शब्द है जो तीनवार आनेके कारण गौरक्षा की बात

जोर से उद्घोषित करता है। यहां शब्दोंका युद्ध इस प्रकार है—

शमितारः



गोप्स्यन्ति ।

पक्तारः

सप्तम मंत्रमें तो विरोधालंकार सेही कहा है कि जो शमिता और पक्ता लोग हैं वेभी गौकी रक्षा करेंगे ( शमितारः पक्तारो जनाः त्वा गोप्स्यन्ति ) इस मंत्र भागका अर्थ यही होता है कि— “ हे गौ! जो तेरा वध करेंगे और जो तेरा मांस पकायेंगे वे तेरी रक्षा करेंगे! ” क्या यह अर्थ ठीक है? पाठक गण! विचार तो कीजिये।

यदि गौका वध करनेवाले और गोमांस पकाने वाले भी गोरक्षिणी सभाके सभासद हो सकेंगे तो फिर गौघातक किनका नाम हो सकेगा?

इतना विपरीत अर्थ मांस पक्षी लोग कैसा मानते हैं यही हमें आश्चर्य होता है! ऐसा प्रबल विरोध उत्पन्न होनेपर अर्थकी संगति लगानेके नियम मीमांसकों ने निश्चित किये हैं, यदि उनकी ओर ये लोग ध्यान देंगे तो ऐसे अनर्थ कारक अर्थसे ये लोग बच सकते हैं—

नियम—जिस समय परस्पर विरोधी अर्थवाले शब्द एकही वाक्यमें आजाय उस समय उन शब्दोंके अन्य अर्थ देखकर सब शब्दोंका अविरोधी अर्थ करना चाहिये।

पाठक गण इस नियमानुसार पूर्वोक्त सप्तम मंत्र का अर्थ देखें—

( १ ) “ गोप्स्यन्ति ” शब्दमें “ गुप् ” धातुका अर्थ “ रक्षा करना ” इतना एकही है। इसका कोई दूसरा अर्थ नहीं है।

इसके विरोधमें शमिता और पक्ताके अनेक अर्थ हैं देखिये—

( २ ) “ शमिता ” ( One who keeps his mind calm ) अपने मनको शांत रखनेवाला, शांत करनेवाला, संयमी पुरुष. ( Self-controlled ) आत्मसंयम करनेवाला। ( Killer ) हनन करने वाला।

“ पक्ता ” ( One who cooks ) पकाने वाला,



Ripening परिपक्व बनानेवाला । ( One who brings to perfection ) पूर्णता करनेवाला ।

ये अर्थ सब कोशोंमें हैं । युरोपीयनोंके बनाये कोशोंमें भी हैं । अब यहां पाठक देख सकते हैं कि "गोप्स्यन्ति" क्रिया केवल रक्षा का भाव बता रही है उसके साथ संबंध रखनेवाले "शमिता और पक्ता" के अर्थ हैं वा नहीं । "शांति रखनेवाला" यह शमिताका अर्थ और परिपूर्ण बनाने वाला यह पक्ता का अर्थ रक्षा अर्थके साथ संगत हो सकता है। ये अर्थ लेकर पूर्वोक्त सप्तम मंत्रके अर्थ देखिये-  
ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः ।

ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो मैषीः शतौदने ॥७॥

अथर्व. १० ९

हे ( देवी ) गो देवते ! ( ये ते ) जो तुझे ( शमितारः ) शांति रखने वाले और ( ये च ते पक्तारः ) और जो तुझे परिपूर्ण बनाने वाले ( जनाः ) लोग हैं ( ते सर्वे ) वे सब ( त्वा गोप्स्यन्ति ) तेरी रक्षा करेंगे । हे शतौदने ! हे गौ ! तू ( पृथ्वीः मा मैषीः ) इनसे मत घबराओ, क्योंकि ये तुम्हें किसी प्रकार कष्ट नहीं देंगे ॥ ७ ॥

"शम्" धातुका अर्थ शांति रखना है, उनको अशांति न बनाना, उनको चिड़ाना नहीं इत्यादि भाव शमिता शब्दमें हैं । पच् धातुका अर्थ परिपक्व बनाना, उन्नत करना यह है । पच धातुका अर्थ निश्चित करनेके लिये एक विशेष परिच्छेद ही इससे पूर्व लिखा गया है, वह पाठक यहां देखें । उस पच धातुके अर्थको लेनेसे यहां तात्पर्य यह होता है, और इस गोमेधके दो भाग होते हैं-

( १ ) एक भागमें-

(अ) गौका शरीर(शमितारः) शांति रखना अर्थात् उसमें विषमता उत्पन्न न होने देना, और

(आ) गौका उत्तम दूध देनेका जो स्वभाव गुण है वह सबसे अधिक (पक्तारः) बढ़ाना, यदि गौ चार सेर दूध देती हो तो उसको दस पंद्रह सेर दूध देनेवाली बनाना ।

( २ ) दूसरे भागमें--

ऐसी उत्तम परिपूर्ण गौको विद्वान् ज्ञानी ब्राह्मण के लिये (दातारः) समर्पण करना॥

गोमेधके ये दो भाग हैं । पहिले भागमें गौकी गुणविकास से उन्नति करना और दूसरे भागमें बुद्धिजीवी ब्राह्मणोंको दान देना । हर एक मेधमें ( १ ) संगम, ( २ ) संवर्धन और ( ३ ) समर्पण ये तीन भाग होते ही हैं । उत्तम बैलके साथ संगम करने तथा खानपान का योग्य प्रबंध करनेसे गौके गुण बढ़ जाते हैं । पश्चात् ऐसी गौवें गुरुकुल आदि में पढ़ानेवाले सुयोग्य गुरुदेवोंको समर्पित करना ।

"शमितारः, पक्तारः तथा दातारः" ये तीन शब्द इस गोमेध सूक्तमें आये हैं इनके प्रकरणानुकूल ये अर्थ हैं । पाठक भी विचार करें । ये अर्थ न करते हुए वध और पकानेके आशय यदि लिये जाय, तो दानके लिये गौ स्थानपर रहती ही नहीं और सूक्त का अर्थ बन हो नहीं सकता, यह बात ध्यानमें धरनी चाहिये । पाठक यहां देखें कि प्रकरण का संबंध न देखनेसे कितना अर्थका अनर्थ हो सकता है । यहां तक गो मेधके प्रथम सूक्तके १२ मंत्रोंका अर्थ हुआ । अब अगले मंत्रोंका अर्थ देखिये—

यत्ते शिरो यत्ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू ।

आमिक्षां दुहृतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१३॥

यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृंगे ये च तेऽक्षिणौ ।

आमि० ॥१४॥ यत्ते क्लोमा यद्धृदयं पुरीतत्सह-

कण्ठिका । आमि० ॥१५॥ यत्ते यक्ष्यते मतस्ने

यदान्नं याश्च ते गुदाः । आमि० ॥ १६ ॥ यस्ते

प्लाशीर्यो वनिष्ठु यौ कुक्षी यच्च चर्म ते । आमि०

॥१७॥ यत्ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यच्च

लोहितम् । आमि० ॥१८॥ यौ ते बाहू ये दोषणी

यावंसौ या च ते ककुत् ॥ आमि० ॥ १९ ॥

यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्ठीर्याश्च पर्शवः ।

अमि० ॥२०॥ यौ न ऊरू अष्टोवन्तौ ये श्रोणी

या च ते भसत् । आमि० ॥ २१ ॥ यत्ते पुच्छं

ये ते बाला यदूधो ये च ते स्तनाः । आमि०

॥२२॥ यास्ते जंघा याः कुष्ठिका कृच्छरा ये च ते

शफाः । आमि० ॥ २३ ॥ यत्ते चर्म शतौदने

यानि लोमान्यह्ये ॥ आमिक्षां दुहृतां दात्रे

क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२४॥ अथर्व. १० । ९

"हे ( अह्ये शतौदने ) हनन करने अयोग्य और हे सौ मनुष्योंके भोजन के लिये दूध देनेवाली



गौ! जो तेरे शरीर के अवयव अर्थात् सिर, मुख, कान, हनू, होंठ, नाक, सींग, आंख, हृदय, पेट, गला, यकृत, प्लीहा, आंतें, गुदा, बगलें, चर्म, मज्जा हड्डी, मांस, रक्त, बाहू, कंधे, कूब, गर्दन, पीठ, पसलियां, ऊरू, दूम, बाल, दुग्धाशय, स्तन, जंघाएं, खुर आदि अंग और अवयव हैं ये सब तेरा दान करनेवाले यजमान के लिये दूध, घी, मधुरता और दही आदि पदार्थ ( दुहूतां ) देते रहें ।”

इन बारह मंत्रोंमें गौके अंतर्वाह्य अंगों और अवयवोंके नाम गिने हैं। और कहा है कि ये सब अवयव गौका दान करनेवाले यजमानके घर में दूध घी, दही, मधुरता आदि पदार्थ विपुल परिमाणमें देते रहें। अर्थात् गौका दान करनेसे दाता के घर दूध आदि पदार्थों की न्यूनता न रहे, अर्थात् गौके दान करनेसे दाताके घरमें दूध देनेवाली गौ आँकी संख्या बढे।

इन मंत्रोंमें “ अघ्न्या ” शब्द आया है। जो मांस-पक्षी विद्वान् इन मंत्रों में भी गोमांस हवनकी संभावना मानते हैं वे इस “ अघ्न्या ” शब्दका खूब विचार करें। “ अघ्न्या ” शब्दका अर्थ “ हनन करने के लिये अयोग्य, हिंसा करनेके लिये अयोग्य, घातपात करनेके अयोग्य, अवध्य ” ऐसा है। “अघ्न्ये शतौदने” ये दो शब्द स्पष्टतासे सिद्ध करते हैं कि “शतौदना गौ अर्थात् जो सौ मनुष्यके भोजन लिये दूध देनेवाली गौ है वह अवध्य है।” इसी का नाम इस सूक्तमें वशा कहा है। इस लिये “अघ्न्या शतौदना वशा गौ” जिसका वर्णन इस गोमेधके सूक्तमें किया है, उसका वध किस प्रकार हो सकता है? पाठक यहां देखें कि जिस सूक्तमें सबसे प्रथम मंत्रमें ( अघायत् ) पापी और दुष्ट लोगोंको दूर करने को कहा है, जिस सूक्त में अवध्य अर्थ वाले अघ्न्या शब्द का प्रयोग हो गया है, जिस सूक्तमें सब देव और सब मनुष्य इस गौका ( गो-प्स्यन्ति ) संरक्षण करते हैं ऐसा कहा है, ऐसे पूर्ण अहिंसा वादी सूक्तपर ही गोवधपूर्वक मांस हवन का अर्थ मांस पक्षी लोगोंने मढ़ दिया है। ऐसा विपरीत अर्थ इस सूक्तपर कैसा लगाया जा सकता है यह हम समझही नहीं सकते।

इन बारह मंत्रोंमें “ गौका हर एक अवयव दुग्ध आदि पदार्थ देवे ” ऐसा जो कहा है वह मनन करने योग्य है। जो दूध पीना है वह नीरोग स्वास्थ्य से पूर्ण गौका ही पीना चाहिये। दूध का संबंध गौके हर एक अंग और अवयवसे है यह बात यहां स्पष्ट होती है। गौका कोई भी अंग अथवा अवयव रोगी हुआ हो तो उसका दोष दूधमें आता है। इस प्रकार रोगी गायका दूध आरोग्यवर्धक नहीं हो सकता। तथा दूधका धंदा करनेवाले गवालिये इसका विचार न करते हुए सब गौओंके दूध को इकट्ठा मिला देते हैं, वह पीना कितना घातक है यह बात यहां स्पष्ट हो गई है। नीरोग गौका ही दूध पीना चाहिये और गौके किसी भी अंगमें रोग या कम जोरी नहीं रहनी चाहिये। इस लिये पूर्वोक्त बारह मंत्रोंमें सूचित किया है कि गौके हर एक अंग और अवयवसे दूध का संबंध है। दूध पीनेवाले पाठक इस का विचार करें। इसका विचार करनेसे यही निश्चित होता है कि आयोंको अपने घरमें गौओंकी पालना अवश्य करनी चाहिये और दूध पीना चाहिये। मोल लिया हुआ दूध इस रीतिसे गौणही सिद्ध होता है।

इन मंत्रोंमें “आमिक्षा” शब्द बारहवार आया है। यह आमिक्षा तपे हुए दूधमें दही मिलाकर दूधको फाड़नेसे बनती है। इस प्रकार दूध फाड़कर जल अलग करके उस दूधके घन पदार्थमें मिश्री आदि मिलानेसे बड़ा स्वादु खाद्य बनता है। इसके कई अन्य पदार्थ मीठे और नमकीन भी बनते हैं। दहीका जल अलग करके भी उसका घन पदार्थ लेकर उसमें मीठा मिलानेसे बड़ा स्वादु पदार्थ बनता है। इसके भी अन्यान्य अनेक पदार्थ बनते हैं। यह “आमिक्षा” बड़ी पौष्टिक बलवर्धक और रुचीकर भी होती है। दूध, घी, दही, आमिक्षा ये पदार्थ तथा इसमें मीठास के लिये शहद अथवा मिश्री मिलाकर खानपानके बहुत पदार्थ बनते हैं। ये पदार्थ बनाना भी गोमेधका एक अंग है। अब आगे के मंत्र देखिये—  
क्रोडौ ते स्तां पुरोडाशावाज्येनाभिघारितौ।  
तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पक्तां दिवं वह ॥२५॥  
उलूखलेमुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः



यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष्टोता  
सुहुतं कृणोतु ॥ २६ ॥

अपो देवीर्मधुमतीधृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक्सा  
दयामि ।

यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोहं तन्मे सर्वं संपद्यताम्  
वर्यं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ २७ ॥ अथर्व. १०।९

“ हे ( देवि ) गौ देवी ! ( ते आज्येन अभि-  
घारितौ तेरे घीसे सिंचित हुए ( पुरोडाशौ कोडौ  
स्ताम् ) दो पुरोडाश मध्यमें हों । ये दो पुरोडाश  
( तौ पक्षौ कृत्वा ) दो पंख बनाकर वह तू  
( पक्तां दिवं वह ) तुझे परिपक्व बनानेवालेको  
स्वर्गपर उठाकर ले जा ॥ २५ ॥ उलूखल, मुसल,  
चर्म, शूर्प इनमें जो चावल या कण हों, जिसकी  
शुद्धता ( मातरिश्वा वायुः ) अंतरिक्षस्थानीय  
वायुने की है, उसका ( सुहुतं ) उत्तम अर्पण करने  
योग्य अन्न होता अग्नि ( कृणोतु ) करे ॥ २६ ॥ मैं  
यह दिव्यजल ( ब्रह्मणां हस्तेषु ) ब्राह्मणों के हाथों में  
( प्र पृथक् सादयामि ) पृथक् पृथक् छोड़ता हूँ ।  
अर्थात् हर एक ब्राह्मणको अलग अलग दान देता  
हूँ । जिस इच्छासे यह मैं सिंचन करता हूँ वह मेरी  
सब कामना पूर्ण ( संपद्यतां ) होवे और हम सब  
धनोंके स्वामी बनें ॥ २७ ॥

इस गोमेधके प्रथम सूक्तके ये अंतिम मंत्र हैं ।  
यहां प्रथम सूक्त समाप्त होता है । पाठक इस २७  
मंत्रोंके प्रथम सूक्तका अच्छी प्रकार आगे पीछेका  
संबंध देखकर बहुत मनन करें । इस में एक भी मंत्र  
नहीं है कि जो गौके मांसका हवन सिद्ध कर सकता  
हो । इसके विरुद्ध गौ अवध्य है, उसकी उन्नतिकरनी  
चाहिये, उसका दान करना चाहिये, उसको उत्तम अव-  
स्थामें रखना चाहिये इत्यादि बातें ही इस में कहीं हैं ।

इन तीन मंत्रों में पहिले अर्थात् इस सूक्तके २५  
वे मंत्र में दो पुरोडाश गायके घीसे उत्तम प्रकार  
भिगानेका विधान किया है । पुरोडाश का अर्थ पके

हुए चावल । इन पके चावलों की राशीपर जितना  
रह सके उतना गौका घी छोड़ना चाहिये । इसीका  
हवन भी होता है और यह खाया भी जाता है ।  
चावल खानेकी वैदिक रीति यही है कि चावलोंपर  
खूब घी छोड़ा जाय और वे खाये जाय । भोजन के  
दो पक्ष होते हैं जैसे महिनेके दो पक्ष होते हैं ।  
भोजन के पहिले भागमें चावल और घी खाना और  
दूसरे विभागमें भी चावल घीके साथ खाना चाहिये ।  
गायके घीके साथ पके चावल खानेसे बुद्धि की वृद्धि  
होती है । मेधा बुद्धिका वर्धन ही स्वर्ग प्राप्ति का चिन्ह  
है इसकी सूचना इसी मंत्रके उत्तरार्थ में कही है ।

चावलों को ठीक करनेके साधन २६ वे मंत्र में  
वर्णन किये हैं । उलूखल, मुसल, चर्म, शूर्प इन  
साधनोंसे छिलकोंसे चावल अलग किये जाते,  
स्वच्छ किये जाते, और वायुकी सहायतासे छिलके  
भूस आदि अलग किया जाता है । इस प्रकार स्वच्छ  
और सुंदर बनाये हुए चावल अग्निपर पकाकर  
उनका अन्न बनाया जाता है जिसको पुरोडाश कहते  
हैं । जो प्रथम देवोंको समर्पित करने के लिये हवन  
किया जाता है और पश्चात् यज्ञशेष पूर्वोक्त प्रकार  
खाया जाता है । दोनों अवस्थाओं में घीके साथ ही  
हवन और भक्षण होता है ।

यहां २६ वे मंत्रमें गोमेधका पूर्वार्ध समाप्त हुआ  
है । अगले २७ वे मंत्रमें यजमान कहता है कि जिस  
उद्देश्य से मैं यह गौओंका दान अलग अलग ब्राह्मणों  
को पृथक् पृथक् दिया है, वह मेरी मनकी कामना  
सफल हो जाय और मुझे बहुत धन, गोधन आदि  
प्राप्त हो । जितना मुझे प्राप्त होगा उतना अधिक मैं  
लोगोंके उपकार करनेमें लगाऊंगा और इस प्रकार  
मैं जनताका भला करूंगा ।

यहां गोमेध का प्रथम सूक्त समाप्त हुआ है । इस  
में गोमांस हवन का कोई संबंध नहीं है । आगे गो  
मेधके द्वितीय सूक्त का अर्थ देखेंगे—



## पैगंबर-यश-रक्षा-कानून ।

“ रंगीला रसूल ” नामक पुस्तक पंजाब में म० राज पाल द्वारा प्रकाशित होगई । उसको पढ़नेसे मुसलमान चिड़ गये और उन्होंने अपने पूजनीय पैगंबर के यशका संरक्षण करने के लिये सरकारी अदालतों की शरण ली ! सरकारी अदालतों में मुकदमा चला और उसमें म. राजपाल जी छूट गये। इससे मुसलमान और भी चिड़ गये और उन्होंने अपने पूज्य पैगंबर के यश की रक्षा करनेके लिये नया कानून घडनेकी दयामय अंग्रेज सरकार से प्रार्थना की । सरकार तो किसीके धर्म में हस्ताक्षेप नहीं करती, परंतु इस विषयमें उनको भी नया कानून घडने की आवश्यकता प्रतीत हुई और एक दो मास की अवधिमें नया कानून बना भी दिया । हमारे मुसलमान भाइयोंने जो हलचल मचाई उसमें वे अतिशीघ्रतासे यशस्वी हो गये इसलिये हम उनका हार्दिक धन्यवाद करते हैं।

बुरा हो या भला हो, जनता के एक चौथाई हिस्सेने जो कानून मांगा, वह इतनी शीघ्रतासे प्राप्त होनेका भारत में यही पहिला उदाहरण है । इससे अनुमान किया जा सकता है कि यदि सब हिंदु स्थानियोंने अपने मतभेद अलग रख कर एक दिलसे स्वराज्य की मांग इतनी ही तीव्रतासे की तो वह भी उनको इसी प्रकार मिल जायगा । भारत वर्ष की तैंतीस करोडकी आबादी में सात करोड मुसलमान हैं । यदि ये सात करोड आदमी एक दिलसे हलचल करके अपनी इच्छाके अनुसार नया अनावश्यक कानून घडना सरकार को आवश्यक कर देते हैं, तो क्या भारतीय तैंतीस करोड जनता एक दिलसे स्वराज्य मांगेगी और स्वराज्य मिलने तक एक दिलसे हलचल चलायेगी, तो कौनसी ऐसी शक्ति है कि जो भारतीयोंको स्वराज्य से दूर रख सकती है ? इस कानून की घडावटसे भारतीय जनता एक दिल होनेका महत्त्व समझे और उस मार्गसे आगे बढ़ कर अपना स्वराज्य प्राप्त करे !

पैगंबरोंके यश का संरक्षण विदेशी राजके कानून से हो सकता है, ऐसा हमारा ख्याल नहीं है । पैग-

बरों के यशका संरक्षण पैगंबरों के अनुयायोही कर सकते हैं, यह हमारा निश्चित मत है । इस समय तक सैंकड़ों मुसलमानों ने हिंदुओंके सहस्रों मूर्तियों की बेइज्जती की, सैंकड़ों मंदिर तोड़े, हजारों धर्म पुस्तक जला दिये और अन्य रीतिसे जो हिंदुधर्माचार्यों को बेइज्जती की उसका कोई हिसाबही नहीं है । इस इतिहासकी साक्षी काशीसे रामेश्वर तक के सहस्रों स्थान इस समय भी दे सकते हैं ।

पार्सीयोंके मंदिरोंका नाश और धर्म पुस्तकोंका नाश जो मुसलमानों ने किया है उसका वर्णन इतिहास में मौजूद है । अर्थात् परधर्मके आचार्य, पैगंबर, ग्रंथ और मंदिरोंके विषयमें जितना निरादर मुसलमानों ने बताया उतना किसी अन्य धर्मियोंने बताया नहीं है । इतना होते हुए भी एक “ रंगीला रसूल ” पुस्तक प्रकाशित होने पर इन लोगोंके अंतःकरण में प्रकाश पडा कि धर्माचार्य और धर्म-ग्रंथ की निंदा नहीं होनी चाहिये ! यदि यही प्रकाश इनके अंतःकरणमें इससे पूर्व पडता, तो निःसंदेह जगत् का इतना नाश न होता ।

इस समय तक इन मुसलमानोंने हिंदुओंके विभूतियोंकी जितनी निंदा की है उतनी हिंदुओंने इनके आचार्योंकी नहीं की है । श्रीकृष्ण, श्रीराम, पांडव आदि प्राचीन तथा अर्वाचीन हिंदू पूज्य पुरुषोंकी जो निंदा इन्होंने की है वह असह्य ही है, तथापि हम इस समय तक समझते आये हैं कि इस प्रकारकी असह्य निंदाका उत्तर सभ्य शब्दोंमें भी दिया जा सकता है । और इस प्रकार इनकी असह्य निंदाका हमने सभ्य उत्तर दिया भी है ।

श्रीकृष्ण भगवान् की निंदापर इन्होंने कई लेख छपे, स्त्रीविषयक बुरे भले आक्षेप इन्होंने प्रकाशित किये । परंतु इन असह्य निंदापूर्ण लेखोंका उत्तर हिंदुओंने सभ्यतासे ही दिया है । श्रीकृष्ण भगवान् की जिस लीलापर आक्षेप किया जाता है वह उनके नौ वर्षकी आयुके समय की बालक्रीडा है । इतना कहने मात्रसे निंदकोंकी निंदा व्यर्थ होजाती है । इस प्रकार हम निंदकोंकी निंदाका सप्रमाण खंडन कर

( आगे टायटल पृ० ३ पर देखिये )



अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

## चार द्वारों की चार आशाएँ ।

मनुष्यके शरीरमें चार द्वार हैं, इस बातका वर्णन इससे पूर्व कियाही है । इन चार द्वारोंके कारण चार आशाएँ मनुष्यके मनमें उत्पन्न होती हैं । जिस प्रकार घरके जितने द्वार होते हैं उनसे बाहर जाने और उन दिशाओंसे कार्य करनेकी इच्छा घरके मालिक की होती है; उसी प्रकार इस शरीररूपी घरके स्वामी आत्म देवकी आशाएँ इस घरके द्वारोंसे जगत्में गमन करके वहाँके कार्य क्षेत्रमें पुरुषार्थ करनेकी होती हैं । वास्तवमें इस शरीरमें अनेक द्वार हैं, इसमें नौ द्वार हैं ऐसा अन्यत्र कई स्थानोंमें कहा है । देखिये—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।

तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥

अथर्व० १०।२।३१

“आठ चक्र और नौ द्वारोंसे युक्त यह देवोंकी अयोध्या नामक नगरी है, इसमें सुवर्णमय कोश है वही तेजस्वी स्वर्ग है ।”

इस अथर्व श्रुतिमें शरीरका और हृदय गुहाका वर्णन करते हुए कहा है, कि इस शरीरमें नौ द्वार हैं । ये द्वार हैं इसमें कोई संदेह ही नहीं है । दो नाक, दो आँख, दो कान, एक मुख, गुदा और शिस्त ये नौ द्वार यहां कहे हैं । इन में से मुख पूर्व द्वार, गुदा पश्चिम द्वार, शिस्त दक्षिण द्वार इन तीनोंका संबंध इस अपने प्रचलित सूक्तक मंत्रमें है । जो चतुर्थद्वार है वह आठ चक्रवाले पृष्ठवंशके ऊपर मस्तिष्कसे भी ऊपर के भागमें विद्यति नामसे प्रसिद्ध है । इसका वर्णन अथर्ववेदमें इस प्रकार है—

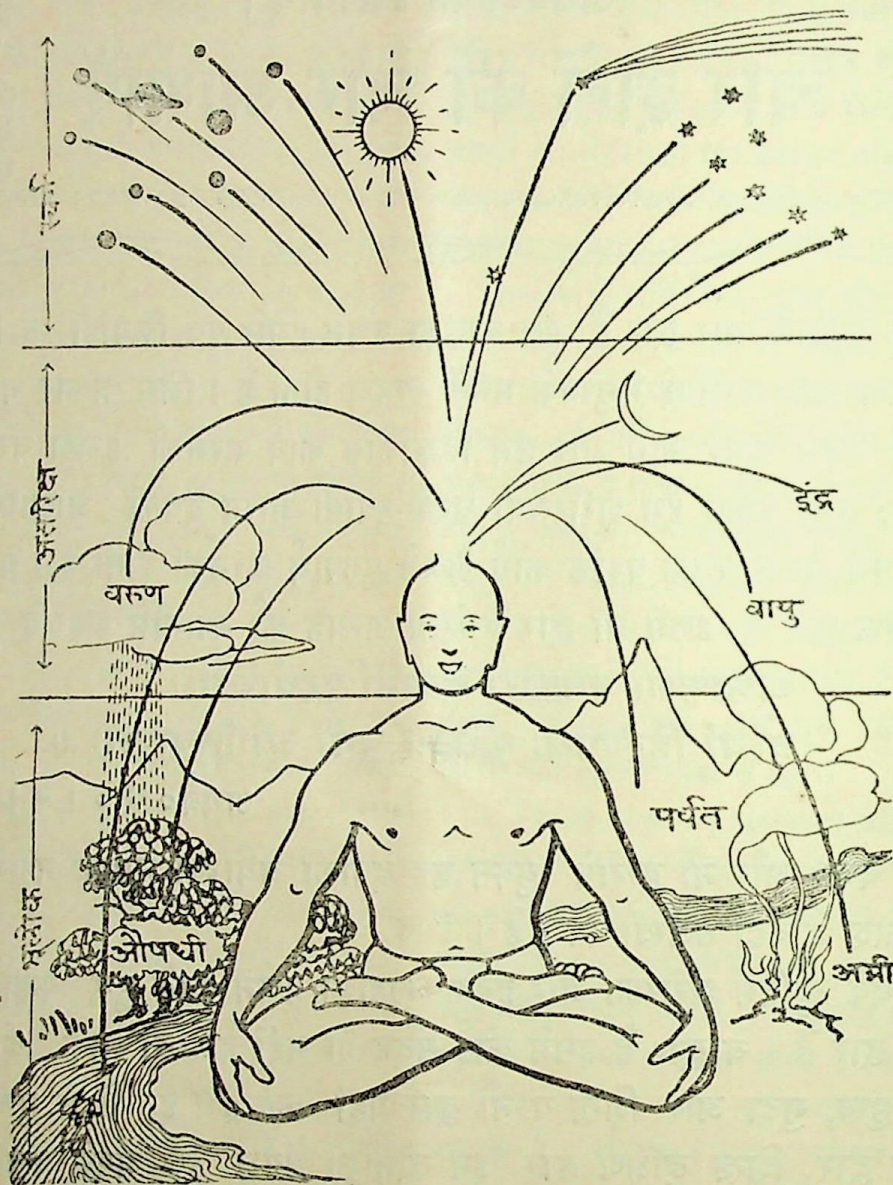
मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ।

मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शर्षितः ॥ अथर्व० १०।२।२६

“मस्तक और हृदय को सी कर अर्थात् एक केंद्रमें लीन करके मस्तकसे भी ऊपर सिरके बीचमें से प्राण फेंका जाता है ।”



## विदृति द्वार से प्रवेश ।



विदृति द्वारसे तैंतीस देवोंके साथ आत्माका शरीरमें प्रवेश । अंदर आनेपर यह द्वार बंद होता है । पश्चात् प्राणसाधन द्वारा अपनी इच्छासे इसी द्वारसे वापस जानेपर मुक्ति । साधारण जन देह त्याग करनेके समय किसी अन्य द्वारसे बाहर जाते हैं, परन्तु केवल योगीही अथर्ववेदके कहे मार्गसे मस्तिष्कके परे इसी द्वारसे जाता है और मुक्त होता है ।



इस मंत्रमें “मस्तिष्कात् ऊर्ध्वः । अधि शीर्षतः ।” आदि शब्दों द्वारा मस्तक के ऊपरले उत्तर द्वार का वर्णन किया है । अर्थात् जो चार द्वार हमने इस मंत्रके व्याख्यान के प्रसंगमें निश्चित किये हैं उनका वेदमें अन्यत्र वर्णन इस प्रकार आता है । नौ द्वारों में से तीन और इस मज्जा संस्थानका एक मिल कर चार द्वार हैं और उनकी चार आशाएं अथवा दिशाएं हैं । अब ये आशाएं देखिये—

### द्वार

### आशा

- १ पश्चिमद्वार = गुदा = की आशा विसर्जन करना । शरीर धर्म ।
- २ पूर्वद्वार = मुख = ,, ,, मधुर भोजन करना । अर्थ प्राप्ति ।
- ३ दक्षिणद्वार = शिखर = ,, ,, भोग का उपभोग करना । काम ।
- ४ उत्तर द्वार = विहति = ,, ,, बंधन से मुक्त होना । मोक्ष ।

### आरोग्यका आधार ।

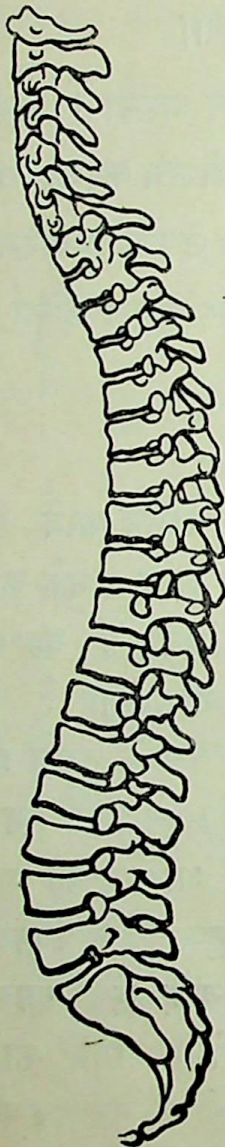
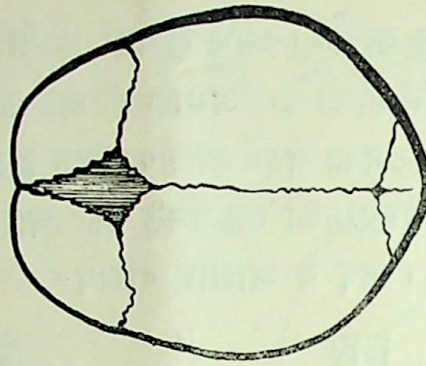
इसमें पश्चिमद्वारसे जो आशा है वह केवल “शरीर धर्म” पालन करने की ही है तथापि इस शौच धर्मसे अर्थात् पवित्र बनने के कर्मसे शरीर शुद्धि होनेके कारण इससे शरीर स्वास्थ्यकी प्राप्ति होती है । सब अन्य भोग इसके आश्रयसे हैं यह बात हर एक जान सकते हैं । इस द्वारका कार्य बिगड़ जानेसे शरीर रोगी होता है और अन्य द्वारों की आशाएं पूर्ण होने की असमर्थता होती है । इस के उत्तम प्रकार कार्य करने पर अन्य आशाएं सफल होने की संभावना है । इस लिये हम कह सकते हैं, कि इस पश्चिम द्वारकी आशा मनुष्य के मनमें “आरोग्य की प्राप्ति” रूप से रहती है । इस आशा का कार्य क्षेत्र बहुत बड़ा है, मनुष्य इस विषयमें जितना कार्य करेगा उतना वह स्वस्थता प्राप्त करेगा और वह यदि ऐसे व्यवहार करेगा कि इस पश्चिम द्वार के व्यवहार ठीक न चलें तो उसके रोगी होनेमें कोई शंका ही नहीं है ।

### खानपान ।

अब पूर्व द्वार की आशा देखिये । संक्षेपसे इतना कहना इस विषयमें पर्याप्त होगा कि इस द्वार से मनुष्य उत्तम अन्न और उत्तम पान करने की इच्छा करता है । मधुरताका प्रेम

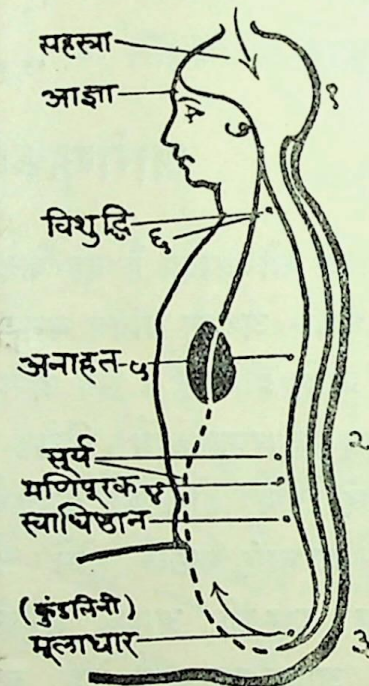


मस्तकमें  
विदृति द्वार



पृष्ठवंश

विदृतिद्वार



सहस्रार चक्र  
पृष्ठवंशमें चक्रों के स्थान ।



करते करते मनुष्य इतना अधिक खाता है कि वह अजीर्णसे बीमार हो जाता है । इस लिये इस विषयमें प्रयत्न पूर्वक संयम रखना चाहिये । रुची का गुलाम और जिह्वाका दास जो बनता है उसका आयु कष्टप्रद ही होता है । हर एक इंद्रिय के विषयमें यही बात है । इस प्रकार इंद्रिय भोग केलिये धन की आवश्यकता है इस हेतु इस द्वार की आशा “ अर्थ की प्राप्ति ” ही है । यह आशा अत्यधिक बढ़ानेसे कष्ट होंगे और संयम द्वारा अत्यावश्यकता के अनुसार भोग लेनेसे सुख बढ़ेगा, उन्नति होगी । मुख द्वारसे शब्द बोलनेका भी एक काम होता है । उत्तम शब्द प्रयोगसे जगत्में शांति फैलती है और कुशब्दके प्रयोगसे अशांति फैलती है । इस विषय में भी जिह्वापर संयम रहना आवश्यक है । अन्यथा अनर्थ होनेमें कोई देर नहीं लगेगी । इस प्रकार इस द्वितीय द्वार की आशा का संबंध मनुष्यकी उन्नतिके साथ है ।

### कामोपभोग ।

तीसरा दक्षिण द्वार है । इस शिखर द्वारा जगत् में उत्तम प्रजनन अर्थात् सुप्रजाजनन करना आवश्यक है । परंतु जगत् में इसके असंयमसे जो अनर्थ हो रहे हैं, वे किसीसे छिपे नहीं हैं । इसका संयम महत्प्रयाससे साध्य होता है । उर्ध्वरेता होना ही वैदिक धर्मका साध्य है । इसके विचारसे इस द्वारकी आशा का पता लग जायगा । यह केंद्र अत्यंत महत्त्वका है परंतु जनता का लक्ष्य इसके कार्यमें बिगाड़ करनेकी ओर अधिक है और सुधारके मार्गमें प्रयत्न अति कम है ।

### बंधन का नाश ।

अब चतुर्थ विद्वति द्वारपर हम आते हैं । यह विद्वति द्वार है । इससे जीवात्मा इस शरीरमें घुसा है, परंतु इसी द्वारसे बाहर जानेका मार्ग इसको मिलता नहीं है । युद्ध-भूमिमें प्रवेश करना यह जानता है, परंतु सुरक्षित वापस फिरनेकी विद्या इसे पता नहीं है । चक्र व्यूहमें घुसनेकी विद्या जाननेवाला, परंतु चक्रव्यूहमें घुस कर युद्धमें विजय प्राप्त करने और सुरक्षित वापस आनेकी विद्या न जानने वाला अभिनव कुमार अभिमन्यु यही है । यदि यह सुरक्षित वापस आनेकी विद्या जानेगा तो यह विजय-अर्जुन-होगा, फिर इसको डर किसका है ? “ विजय ” बननेके लिये ही यह सब धर्म मार्ग हैं । जिस समय आये हुए मार्गसे यह जीवात्मा वापस जानेकी शक्ति प्राप्त कर सकेगा उस समय इसको कोई बंधन कष्ट नहीं पहुंचा सकता । हर एक बंधन को दूर करनेकी



इच्छा इसमें इस द्वारके कारण है ।

इस प्रकार चार द्वार की चार आशाएं हैं और हर एक मनुष्य इन आशाओंके कार्य क्षेत्रमें बुरा या भला कार्य करता है और गिरता है या उठता है । इन आशाओंके कार्य क्षेत्र की कल्पना पाठकोंको ठीक प्रकार होगई, तो इस सूक्तके मंत्रोंका विचार समझनेमें कोई कठिनता नहीं होगी । इस लिये प्रथम इन चार द्वारोंका विचार पाठक वारंवार मनन द्वारा करें और यह बात ठीक प्रकार ध्यानमें धारण करें । तत्पश्चात् निम्न लिखित स्पष्टीकरण पढ़ें—

### अमर दिक्पाल ।

इस सूक्तके प्रथम मंत्रके कथनमें तीन बातें कही हैं— “ ( १ ) चार आशाओंके चार अमर आशा पालक हैं । ( २ ) वेही चार भूताध्यक्ष हैं । ( ३ ) उनकी पूजा हम हवन से करते हैं । ”

मनुष्यमें चार आशाएं कौनसी हैं, उन आशाओंका स्वरूप क्या है और उनके साथ मनुष्यके पतन अथवा उत्थापनका किस प्रकार संबंध है, यह पूर्व स्थलमें बताया ही है । चार आशाएं मनुष्यके अंदर सनातन हैं, ( १ ) शरीर-धर्मका ख्याल करना, ( २ ) भोग प्राप्त करना, ( ३ ) कामका भोग करना और ( ४ ) बंधन से निवृत्त होना, ये चार भावनाएं अथवा कामनाएं मनुष्यमें सदा जागती हैं, मूठमें तथा प्राज्ञमें ये समानतासे रहती हैं । पशु पक्षियोंमें भी अल्पांशसे ये रहती हैं अर्थात् भूतमात्रमें ये सदा रहती हैं, इसलिये इनका सनातन अधिकार प्राणिमात्रपर है, मानो ये ही भूतोंके अध्यक्ष हैं । इनको अध्यक्ष इसलिये कहा है कि इनकी प्रेरणासे ही प्राणी अपने अपने सब व्यवहार करते हैं । यदि ये आशाएं प्राणियोंके अंदर न रहें तो उनकी हलचल भी बंद हो जायगी । मनुष्यके संपूर्ण प्रयत्न इनकी आधीनतामें ही हो रहे हैं । इस लिये ये ही चार आशा-पालक मनुष्यके चार अधिकारी हैं । इनकी आधीनतामें रहता हुआ मनुष्य अपने व्यवहार करता है और उनका बुरा या भला परिणाम भोगता है ।

### हवनसे पूजन ।

इनका पूजन हवन से ही हो रहा है । पूर्व द्वार मुख है, उसमें अन्नपानका हवन हो रहा है । कौन प्राणी ऐसा है कि जो यह हवन नहीं करता । इसी प्रकार दक्षिण द्वार



शिशु देवके पूजक सब ही प्राणी हैं, इतनाही नहीं परंतु इस कामदेव की अति पूजा से लोग अपना ही घात कर रहे हैं । इतनी बात सत्य है कि उत्तर द्वार जिसका नाम विदृति है उस के पूजक अत्यंत अल्प हैं और पश्चिमद्वार की पूजा करना थोड़े ही जानते हैं । पश्चिम द्वार की पूजा योगमें प्रसिद्ध “ अपानायाम ” से की जाती है । जिस प्रकार नासिका द्वार से करनेका प्राणायाम होता है उसी प्रकार पश्चिम गुद द्वार से अपानायाम किया जाता है । इस की क्रिया भी थोड़े लोग जानते हैं । यह क्रिया योग शास्त्रमें प्रसिद्ध है और इससे नाभिके निचले भागका आरोग्य प्राप्त होता है । उत्तर द्वार विदृतिके उपासक खास योगी होते हैं वे इस स्थानकी चालना करके अपनी मुक्तता प्राप्त करते हैं । इनकी हवनसे पूजा यह है—

१ पूर्वद्वार— ( मुख )— अन्नपानादिके हवनसे पूजा,

२ दक्षिण द्वार— ( शिशु )— भोगादिद्वारा कामदेवकी पूजा,

३ पश्चिम द्वार— ( गुदा )— अपानायाम—अपानका प्राणमें हवन करके पूजा, इसका उल्लेख भगवद्गीतामें भी है — अपाने जुहति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे । भग० गी० ४-२९

४ उत्तर द्वार— ( विदृति )— मस्तिष्कके मज्जाकेंद्रके सहस्रारचक्रमें ध्यानादिसे पूजा ।

यहां पाठक जान गये होंगे, कि पहिली दो उपासनाएं जगत् में अधिक हैं और दूसरी दो कम हैं । परंतु बीजरूपसे हैं । प्रथम मंत्रमें “ हम चारों अमर आशापालोंकी हवन द्वारा पूजा करेंगे ” ऐसा स्पष्ट कहा है । यह इस लिये कि हरएक मनुष्य चारोंकी उपासना द्वारा अपना उद्धार करे ।

यहां नियमन की बात पाठकोंको ध्यानमें धारण करनी चाहिये । यह नियमन इस प्रकार है —

पूर्वद्वार



मुख

उत्तरद्वार



सिरमें विदृति

आंन

अन्नस्रोत

पृष्ठवंश

मज्जास्रोत

पश्चिमद्वार



गुदा

दक्षिणद्वार



शिशु



पूर्व तथा पश्चिम द्वार ये हमारे आंतोंके विरुद्ध दिशाके मुख हैं । मुखका अतिरेक होनेसे गुदाका कार्य बिगड़ता है, और गुदाका कार्य ठीक रहनेसे मुखकी रुची ठीक रहती है । इस प्रकार ये एक दूसरेपर नियमन करते हैं । इसी प्रकार मस्तिष्क और शिस्न ये परस्पर का नियमन करते हैं । यदि शिस्नदेवने अतिरेक किया तो मस्तिष्क हलका होता है, और मनुष्य बुद्धिका कार्य करनेमें असमर्थ होता है, पागल बनता है, निकम्मा होता है । तथा मस्तिष्कमें सुविचारोंको स्थिर करनेसे वे सुविचार शिस्न देव का संयम करनेमें सहायक होते हैं । इस प्रकार ये परस्पर उपकारक भी हैं और घातक भी हैं । पाठक सोच कर जाननेका प्रयत्न करें कि ये किस प्रकार उपकारक होते हैं और कैसे घातक होते हैं तथा इनकी उपासना किस प्रकार करनी चाहिये और इनके प्रकोप से किस प्रकार बचना चाहिये । अब द्वितीय मंत्रका विचार करेंगे—

### पापमोचन ।

द्वितीय मंत्रका आशय यह है— “ चार आशाओंके चार आशापालक देव हैं वे हमें पापसे तथा अधोगतिके पाशसे बचावें । ”

पूर्वोक्त वर्णनसे पाठकोंने जान लिया होगा कि ये चार देव हमें किस प्रकार बचा सकते हैं और किस प्रकार गिरा सकते हैं । देखिये —

१ पूर्वद्वार-मुख = जिह्वाकी गुलामीसे खानपानमें अतिरेक होकर, पेटका बिगाड़ और स्वास्थ्यका नाश । इसी जिह्वाके संयमसे आरोग्य प्राप्ति ।

२ पश्चिमद्वार-गुदा = पूर्वोक्त संयम और असंयम से ही इसका लाभ या हानि प्राप्त होनेका संबंध है ।

३ दक्षिणद्वार-शिस्न = ब्रह्मचर्यद्वारा संयमसे उन्नति, संयमपूर्वक गृहस्थधर्म पालनसे सुप्रजाप्राप्ति और असंयमसे क्षय ।

४ उत्तरद्वार-विहति--पूर्वोक्त समय और असंयमसे इसके लाभ और हानि प्राप्त होनेका संबंध है ।

इसका मनन करनेसे ये किस नियमसे पापसे छुड़ा सकते हैं इसका ज्ञान हो सकता है । पापसे छुड़ानेसे ही निर्ऋति के पाशसे मनुष्य छूट जाता है । निर्ऋतिका अर्थ नाश है पाप । करनेवालोंको निर्ऋतिके अर्थात् विनाशके पाश बांध देते हैं । और पुण्यवानोंका



उनसे कोई कष्ट नहीं होता । इस मंत्रका यह कथन बड़ा बोधप्रद है कि ये चार द्वारकी चार आशाएं मनुष्यको पापसे छुड़ा सकती हैं और बंधनसे भी मुक्त कर सकती हैं । पाठक अपनी अपनी अवस्थाका विचार करें और आत्मपरीक्षा द्वारा जाननेका यत्न करें कि उनके शरीरमें क्या हो रहा है । यदि कोई आशापालक उनके विरुद्ध कार्य करता हो, या शत्रुके आधीन हुआ हो, तो सावधानीसे अपने बचाव का यत्न करें । इस प्रकार द्वितीय मंत्रका विचार करनेसे इतना बोध मिला; अब तृतीय मंत्र देखते हैं—

### चतुर्थ देव ।

तृतीय मंत्रका आशय यह है—“मैं न थकता हुआ और अंगोंसे दुर्बल न होता हुआ हवनसे तथा घीसे इनकी तृप्ति करता हूँ । इन चार आशा पालोंमें जो चतुर्थ आशापालक देव है वह हमें सुखसे यहां आनंद स्थानमें पहुंचावे ।”

इस मंत्रमें कहा हुआ “तुरीयः देवः” अर्थात् चतुर्थ देव विद्वत्तद्वारका रक्षक मोक्षकी आशाका पालक है । इसी देव की कृपासे अन्य सब द्वारोंका नियमन हो सकता है । इसी दृष्टिसे अन्य सब कार्य व्यवहारका नियमन होना चाहिये । वैदिक धर्मके संपूर्ण कार्य व्यवहार इसी दृष्टिसे रचे गये हैं । मोक्षके मार्गके ध्यानसे जगत् के सब व्यवहार होने चाहिये । इसीका नाम धर्म है । बंधनसे मुक्त होना मुख्य साध्य है, उसके सहायकारी सब अन्य व्यवहार होने चाहिये । अन्यथा जगत्के व्यवहारको अधिक महत्त्व देनेसे और मोक्षधर्म को कम महत्त्व देनेसे मनुष्यमें लोभ वृद्धि होनेके कारण बड़ा अनर्थ होगा । त्यागपूर्ण जीवन और भोगपूर्ण जीवन का भेद यहां स्पष्ट होता है ।

मंत्रमें कहा है कि न थकता हुआ और अवयवोंसे विकल न होता हुआ मैं इन देवोंकी पूजा करूंगा । इस कथनका भाव स्पष्ट है कि मनुष्य प्रयत्न करके अपना शरीर सुदृढ़ बनावे और अनेक पुरुषार्थ करनेका उत्साह मनमें स्थिर करे ।

इन चार देवोंकी आज्ञादिसे तथा घी आदिसे तृप्ति करनी चाहिये । जिसका जो हवन है उसी के अनुकूल उसका घी भी है । वह जैसा जिसको देना है वह यथायोग्य रीतिमें देकर उसकी तृप्ति करनी चाहिये । इस विषयमें थकावट करना योग्य नहीं । न थकते हुए और न श्रांत होते हुए ये भोग प्राप्त करने और योग्य प्रमाणसे उनका स्वीकार भी करना चाहिये । अर्थात् बड़ी दक्षतासे जगत् का व्यवहार करना उचित है । परंतु सब व्यवहार करते हुए चतुर्थ देवकी कृपा संपादन करने का अनुसंधान रखना



चाहिये । क्यों कि उसी की कृपासे आनंद, उन्नति, यश, आदि की यहां प्राप्ति होती है और सद्गति भी मिल सकती है ।

### दीर्घ आयु ।

पूर्वोक्त प्रकार तीन मंत्रोंका विचार करनेके पश्चात् अब चतुर्थ मंत्र इस प्रकार हमारे सन्मुख आता है— “ इन आशापालोंकी सहायतासे हम तथा हमारे माता, पिता, इष्ट, मित्र, गाय, घोड़े, आदि सब सुखी हों । हमारा अभ्युदय होवे तथा हम ज्ञानी बनकर निःश्रेयस के भागी बनें और दीर्घायु बनें । ” इस मंत्रमें चार बातें कहीं हैं—

१ स्वस्ति (सु+ अस्ति) = सबका उत्तम अस्तित्व हो अर्थात् इस लोकका जीवन सुख पूर्वक हो ।

२ सुभूतं = (सु+ भूति) = उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त हो, यह उत्तम अभ्युदय का सूचक विधान है ।

३ सुविदत्रं = (सु+ विद+ त्रं) = उत्तम ज्ञान मिले । आत्म ज्ञान ही सब ज्ञानोंमें उत्तम और निःश्रेयस का हेतु है । वह हमें प्राप्त हो ।

४ ज्योक् = दीर्घकाल जीवन हो ! यह तो अभ्युदय और निःश्रेयससे सहज ही प्राप्त हो सकता है ।

वेद मंत्रोंमें बारंवार “ ज्योक् च सूर्यं दृशेम ” अर्थात् “ दीर्घकाल तक सूर्यको हम देखते रहें । ” यह एक महावरा है, इसका तात्पर्य “ हमारी आयु अतिदीर्घ हो ” यह है । परंतु यहां ध्यानमें विशेषतया धारण करनेकी बात यह है कि अति दीर्घ आयु प्राप्त करनेका संबंध सूर्यसे अवश्यही है । जहां जहां दीर्घ आयु प्राप्त करने का उपदेश वेदमें आया है वहां वहां सूर्यका संबंध अवश्य बताया है । इस लिये जो लोग दीर्घ आयु प्राप्त करना चाहते हैं वे सूर्यके साथ आयुष्य वर्धन का संबंध है यह बात न भूलें ! ब्रह्मकी कृपासे दीर्घ आयु प्राप्त होती है इस विषयमें अथर्ववेदमें अन्यत्र कहा है —

यो वै तां ब्रह्मणो वेदासृतेनावृतां पुरम् ।

तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥ २९ ॥

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ ३० ॥

अथर्व० १० । २



“जो निश्चयसे ब्रह्मकी अमृतसे परिपूर्ण नगरीको जानता है उसको स्वयं ब्रह्म और ब्रह्मके साथी अन्य देव चक्षु, प्राण और प्रजा देते हैं ॥ २९ ॥ अति वृद्धावस्थासे पूर्व उसको प्राण और चक्षु छोड़ते नहीं जो ब्रह्मपुरीको जानता है और जिस पुरीमें रहनेके कारण इसको पुरुष कहते हैं ॥ ३० ॥”

भाव स्पष्ट है कि ब्रह्मकी कृपासे दीर्घ आयु, सुसंतान और आरोग्य पूर्ण इंद्रियोंसे युक्त उत्तम शरीर प्राप्त होता है। यही भाव संक्षेपसे अपने प्रचलित सूक्तके चतुर्थ मंत्रमें कहा है। इस प्रकार यह ज्ञानी मनुष्य इह पर लोकेमें यशस्वी होता है। यही इस सूक्तका उपदेश है।

### विशेष दृष्टि ।

यह सूक्त केवल बाह्य दिशाएं और उनके पालकोंका ही वर्णन नहीं करता है। बाह्य दिशाओंका वर्णन इस सूक्तमें है, परंतु दिशा शब्द न प्रयुक्त करते हुए “आशा” शब्द का प्रयोग इसमें इसी लिये हुआ है कि मनुष्य अपनी आशाओं और उनकी पालक शक्तियोंको अपने अंदर अनुभव करे और उनके संयम, नियमन, और योग्य उपासन आदिसे अपना अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्ध करे।

इस सूक्तका यह श्लेषालंकार बड़ा ही महत्त्व पूर्ण है। और जो इस सूक्तको केवल बाह्य दिशाओंके लिये ही समझते हैं वे इसके महत्त्व पूर्ण उपदेशसे वंचित ही रहते हैं। पाठक इस दृष्टिसे इसका अध्ययन करें।

इस सूक्तका संबंध आयुष्य गण, अपराजित गण आदि अनेक गणोंसे विषयकी अनुकूलतासे है। यह सूक्त स्वयं वास्तोष्पतिगण अथवा वसु गण का है। इस लिये “यहांके निवास” के साथ इसका अपूर्व संबंध है। इस प्रकार की दृष्टिसे विचार करनेसे पाठक इससे बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं और उसको आचरणमें ढालकर अपना अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त कर सकते हैं।





## जीवन-रसका महासागर ।

( ३२ )

( ऋषिः— ब्रह्म । देवता— यावापृथिवी )

इदं जनासो विदथ महद्ब्रह्म वदिष्यति ।  
 न तत्पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ॥ १ ॥  
 अन्तरिक्ष आसां स्थाम श्रान्तसदामिव ।  
 आस्थानमस्य भूतस्य विदुष्टवेधसो न वा ॥ २ ॥  
 यद्रोदसी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षतम् ।  
 आर्द्रं तदद्य सर्वदा समुद्रस्यैव स्रोत्याः ॥ ३ ॥  
 विश्वमन्यामभीवार तदन्यस्यामधिश्रितम् ।  
 दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरं नमः ॥ ४ ॥

अर्थ—हे ( जनासः ) लोगों ! ( इदं विदथ ) यह ज्ञान प्राप्त करो । वही ज्ञानी ( महत् ब्रह्म वदिष्यति ) बड़े ब्रह्मके विषयमें कहेगा । ( येन वीरुधः प्राणन्ति ) जिससे औषधियां आदि प्राण प्राप्त करती हैं, ( तत् पृथिव्यां न, नो दिवि ) वह पृथ्वीमें नहीं और ना ही बुलोक में है ॥ १ ॥ ( आसां अन्तरिक्षे स्थाम ) इन औषधि आदिकोंका अन्तरिक्षमें स्थान है ( श्रान्त-सदां इव ) थक कर बैठेहुओंके समान ( अस्य भूतस्य आस्थानं ) इस बने हुएका स्थान जो है ( तत् वेधसः विदुः वा न ) वह ज्ञानी जानते हैं वा नहीं ? ॥ २ ॥ ( यत् रेजमाने रोदसी ) जो हिलने वाले यावापृथिवीने और ( भूमिः च ) केवल भूमिने भी ( निरतक्षतं ) बनाया ( तत् अद्य सर्वदा आर्द्रं ) वह आज तक सदासर्वदा रसमय है ( समुद्रस्य स्रोत्याः इव ) जैसे



समुद्रके स्रोत होते हैं ॥ ३ ॥ ( विश्वं ) सब ने (अन्यां अभीवार) दूसरीको घेरलिया है, ( तत् ) वह (अन्यस्यां अधिश्ठितम्) दूसरीमें आश्रित हुआ है । ( दिवे च ) बुलोक और (विश्ववेदसे च पृथिव्यै) संपूर्ण धनोंसे युक्त पृथिवीके लिये ( नमः अकरं ) नमस्कार मैंने किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे लोगो! यह समझो कि जो तत्त्वज्ञान समझेगा वही ज्ञानी उसका विवरण करेगा । तत्त्व ज्ञान यह है कि—जिससे बढ़नेवाली वनस्पतियां आदिक अपना जीवन प्राप्त करती हैं, वह जीवनका सत्त्व पृथ्वीपर नहीं है और नाहीं बुलोक में है ॥ १ ॥ इन वनस्पति आदिका स्थान अंतरिक्ष है । जैसे थकेमादे विश्राम करते हैं उसप्रकार ये वनस्पति आदिक अंतरिक्षमें रहते हैं । इस बने हुए जगत्का जो आधार है उसको कौनसे ज्ञानी लोग जानते हैं और कौनसे नहीं जानते ? ॥ २ ॥ हिलने जुलनेवाले बुलोक और पृथ्वीलोक के द्वारा जो कुछ बनाया गया है, वह सब इस समयतक बिलकुल नया अर्थात् जीवन रससे परिपूर्ण जैसा है, जैसे सरोवरसे चलनेवाले स्रोत रससे परिपूर्ण होते हैं ॥ ३ ॥ यह सब जगत् दूसरी शक्ति के ऊपर रहा है और वहभी दूसरी के ही आश्रयसे रही है । बुलोक और सब धनोंसे युक्त पृथ्वी देवीको मैं नमन करता हूं (क्योंकि ये दो देवताएं इस जगत् का निर्माण करनेवाली हैं । ) ॥ ४ ॥

### स्थूल सृष्टि ।

जो सृष्टि दिखाई देती है वह स्थूल सृष्टि है, इसमें मिट्टी पत्थर आदि अतिस्थूल पदार्थ, वृक्षवनस्पत्यादि बढ़ने वाले पदार्थ, पशुपक्षी आदि बढ़ने और हिलनेवाले प्राणी तथा मनुष्य बढ़ने हिलने और उन्नत होनेवाले उच्च कोटीके प्राणी हैं । पत्थर मिट्टी आदि स्थिर सृष्टीको छोड़ा जाय और वनस्पति पशु तथा मानव सृष्टिमें देखा जाय, तो ये उत्पन्न होते हैं, बढ़ते हैं और प्राण धारण करते हैं यह बात स्पष्ट दिखाई देती है । इसमें दिखाई देनेवाला जीवनतत्त्व कौनसा तत्त्व है ? क्या यह स्थूलही है या इससे भिन्न और कोई तत्त्व है इस का विचार इस सूक्तमें किया है ।

सब लोग यह जीवन रसका ज्ञान प्राप्त करें । यदि उनको जीवन से आनंद प्राप्त करना है तो उनको उचित है कि वे इस (जनासः ! विदथ ) ज्ञान को प्राप्त करें । यह



मनन करने योग्य सूचना प्रथम मंत्रके प्रारंभमें ही दी है । ( मंत्र १ )

यह जीवन रस की विद्या कौन देगा ? किससे यह प्राप्त होगी ? यह शंका यहां आती है, इसविषयमें प्रथम मंत्रने ही आगे जा कर कहा है कि, जो इस विद्याको जानता होगा, वही ( महत् ब्रह्म वदिष्यति ) बड़े ब्रह्मके विषयमें अर्थात् इस महत्व पूर्ण ज्ञान के विषयमें कहेगा । जिसको इस विद्याकी प्राप्ति करनेकी इच्छा हो, वह ऐसे विद्वान के पास जावे और ज्ञान प्राप्त करे । किसी अन्य के पास जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है ।

### जीवन का रस

सारांश रूपसे यह समझो कि “ जिस जीवनतत्त्वके आश्रयसे बढनेवाले वृक्ष वनस्पति प्राणी आदि प्राण धारण करते हैं यह जीवन का आधारतत्त्व न तो पृथ्वीपर है और ना ही द्युलोकमें है । “ ( मंत्र १ ) वह किसी अन्य स्थानमें है इस लिये उसको इस बाह्य द्यावापृथिवीसे भिन्न किसी अन्य स्थान में ही ढूंढना चाहिये ।

इस प्रथम मंत्रमें स्पष्ट शब्दोंसे कहा है कि जिससे जीवनका रस मिलता है वह तत्त्व इस स्थूल संसारसे बाहर अर्थात् वह अतिसूक्ष्म है । वह कहाँ है इसका पूर्ण उत्तर आगे के मंत्रोंमें आजायगा ।

### भूतमात्रका आश्रय ।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि— “ इस सृष्टिगत संपूर्ण पदार्थोंका आश्रय स्थान अंतरिक्ष है । इन स्थूल पदार्थ मात्रका जो अंतरिक्षमें आश्रय स्थान है वह ज्ञानी भी जानते हैं वा नहीं ? ” अर्थात् इसका ज्ञान सब ज्ञानियोंको भी एकसां है वा नहीं । ज्ञानियों में भी जो परिपूर्ण ज्ञानी होते हैं वे ही केवल जानते हैं । सृष्टि विद्याके जाननेवाले इस बातको नहीं जान सकते, परंतु आत्मविद्याका ज्ञान जाननेवाले ही इसको यथावत् जानते हैं । ( मंत्र २ )

इस द्वितीय मंत्रमें “ भूत ” शब्द है, इसका अर्थ “ बना हुआ पदार्थ । ” जो यह बनी हुई सृष्टि है इसीका नाम भूत है और इसकी विद्याका नाम भूतविद्या है । इस सब सृष्टिका आधार देनेवाला एक सूक्ष्म तत्त्व है जिसका ज्ञान अध्यात्मविद्या जाननेवाले ही जान सकते हैं । इसलिये जीवनरस विद्याका अध्ययन करनेवाले ऐसे सद्गुरुके पास जावें, कि जो इसका ज्ञाता हो और उसके पाससे वह जीवनकी विद्या प्राप्त करें । यह ही ज्ञानी ( महत् ब्रह्म वदिष्यति ) बड़े ब्रह्मका ज्ञान कहेगा । इस प्रकार द्वितीय मंत्रका प्रथम मंत्रके साथ संबंध है ।



## सनातन जीवन ।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि — “ जो इस द्यावापृथिवीके अंदर बना हुआ पदार्थ मात्र है वह सदा सर्वदा, जिस समय बना है उस समयसे लेकर इस समयतक बराबर जीवन रससे परिपूर्ण होनेके कारण नवीन सा रहा है, इसमें जीवन रस ऐसा भरा है जैसा सरोवरसे चलनेवाले विविध स्रोतोंमें सरोवरका जल चलता है । ”

## जगत्के माता पिता ।

अदिति भूमि जगत् की माता है और द्यौष्पिता जगत् का पिता है । भूलोक और द्युलोक, भूमि और सूर्य, स्त्रीशक्ति और पुरुष शक्ति, ऋण शक्ति और धन शक्ति, राशि शक्ति और प्राण शक्ति, प्रकृति और पुरुष, प्रकृति और आत्मा इस प्रकारके दो शक्तियोंसे यह जगत् बना है, इस लिये इनको जगत्के माता पिता कहा है । विविध ग्रंथकारोंने उक्त द्वन्द्व शक्तियोंके विविध नामोंमेंसे किसी नामका प्रयोग किया है और जगत्के मूल उत्पादक शक्तियोंका वर्णन किया है ।

## जीवनका एक महासागर ।

वेदमें द्यावा पृथिवी — द्युलोक और पृथ्वीलोक — को जगत् के माता पिता करके वर्णन किया है क्योंकि सम्पूर्ण जगत् इन्हींके अंदर समाया है । यह बना हुआ जगत् यद्यपि बननेके पश्चात् बढता और बिगडता भी है तथापि बने हुए संपूर्ण पदार्थोंमें जो जीवन तत्त्व व्याप्त रहा है वह एक रूपसे व्यापता है, इस लिये संपूर्ण जगत्के नियम अटल और एक जैसे हैं । हजारों वर्षोंके पूर्व जैसा जीवन संसारमें चलता था वैसा ही आज भी चल रहा है । इससे जीवनामृत की अगाध सत्ता की कल्पना हो सकती है ।

जिस प्रकार एकही सागरसे अनेक स्रोत चलते हों तो उनमें एकही जीवन रस सब में एकसा प्रवाहित होता रहता है, उसी प्रकार इस संसारके अंदर बने हुए अनंत पदार्थों में एक ही अगाध जीवन के महासागरसे जीवन रस फैल रहा है, मानो संपूर्ण पदार्थ उस जीवनामृतसे ओत प्रोत भरपूर हो रहे हैं ।

पाठक क्षणभर अपने आपको भी उसी जीवन महासागरमें ओत प्रोत भरनेवाले एक घड़ेके समान समझें और अपने अंदर वही जीवन स्रोत चल रहा है इसका ध्यान करें । जिस प्रकार तैरनेवाला मनुष्य अपने चारों ओर जलका अनुभव करता है उसी प्रकार मनुष्यभी उसी जीवन महासागर में तैरनेवाला एक प्राणी है, इस लिये इस प्रकार ध्यान करनेसे उस जीवनामृतके महासागर की अल्पसी कल्पना हो सकती है ।



यह जीवन सदाही नवीन है कभी भी यह पुराना नहीं होता, कभी बिगड़ता नहीं। अन्य पदार्थ बनने और बिगड़ने पर भी यह एकसा नवीन रहता है। और यही सबको जीवन देता है। ( तत् अद्य सर्वदा आर्द्र ) वह आज और सदा सर्वदा एक जैसा अभिनव रसपूर्ण रहता है। सबको जीवन देने पर भी जिसकी जीवन शक्ति रतिमात्र भी कम नहीं होती, इतनी अगाध जीवन शक्ति उसमें है।

### सबका एक आश्रय ।

चतुर्थ मंत्रका कथन है कि — “ संपूर्ण विश्व अर्थात् यह स्थूल जगत् एक दूसरी शक्तिके ऊपर रहता है और वह शक्ति और दूसरी शक्तिके आश्रयसे रही है। वही आधारका तत्त्व पृथ्वी और व्युलोक के स्वरूपमें दिखाई दे रहा है इस लिये मैं व्युलोकमें उसकी प्रकाशशक्तिको और पृथ्वीमें उसकी आधार शक्तिको नमस्कार करता हूं। ” अर्थात् संपूर्ण जगत्में उसकी शक्ति ही जगत् के रूप में प्रकट होगई है ऐसा जानकर, जगत्को देखकर उस शक्तिका स्मरण करता हुआ उस विषयमें अपनी नम्रता प्रकट करता हूं।

### स्थूल सूक्ष्म और कारण ।

इस मंत्रमें “विश्व” शब्द स्थूल जगत्का बोधक है। इस स्थूल का आधार (अन्या) दूसरा है, इससे सूक्ष्म है और वह इसके अंदर है अथवा उसके बाहर यह सब विश्व है। प्रत्येक स्थूल पदार्थके अंदर यह सूक्ष्म तत्त्व है और यह भी तीसरे अतिसूक्ष्म तत्त्व पर आश्रित है। यह तीसरा तत्त्व ही सबका एक मात्र आधार है और इसीका जीवन अमृत सबमें एक रस होकर व्याप रहा है। इसी जीवनके समुद्रमें सब विश्वके पदार्थ तैर रहे हैं अथवा संपूर्ण पदार्थ रूपी छोटे बड़े स्रोत उसी एक अद्वितीय जीवन-महासागर से चल रहे हैं। इनमें उसीका जीवन कार्य कर रहा है यह बताना इस सूक्तका उद्देश्य है। अनेकों में एकही जीवन भरा है इसका अनुभव यहां होता है।

यह सूक्त केवल पढ़नेके लिये नहीं है, प्रत्युत यह मनकी धारणा करके अपने मनमें धारणासे स्थिर करने के अनुष्ठानके लिये ही है। जो पाठक इस की उक्त प्रकार धारणा कर सकेंगे वे ही इससे योग्य लाभ प्राप्त कर सकेंगे। पाठक यहां देखें कि छोटेसे छोटे सूक्तों द्वारा वेद कैसा अद्भुत उपदेश दे रहा है। निःसंदेह यह उपदेश जीवन पलटा देनेमें समर्थ है। परंतु यह लाभ वही प्राप्त करेगा कि जो इसको जीवन में ढालने का यत्न करेगा।



# वाङ्मय क ग्रंथ ।

## ( १ ) स्वयंशिक्षक माला ।

- वेदका स्वयंशिक्षका १ प्रथम भाग ... मूल्य १॥ )  
 " " २ द्वितीय भाग ... " १॥ )

## ( २ ) योगसाधनमाला ।

- १ संध्योपासना । ... मूल्य १॥ )  
 २ संध्याका अनुष्ठान । ... " ॥ )  
 ३ वैदिक प्राण विद्या । ... " १ )  
 ४ ब्रह्मचर्य ( सचित्र ) । ... " १ )  
 ५ योगसाधनकी तैयारी । ... " १ )  
 ६ योगके आसन । ( सचित्र ) ... " २ )  
 ७ सूर्यभेदनव्यायाम सचित्र ... " ॥ )

## ( ३ ) यजुर्वेद स्वाध्याय ।

- १ यजु. अ. ३० । नरमेध । मूल्य मूल्य १ )  
 २ यजु. अ. ३२ । एकेश्वर उपासना । " ॥ )  
 ३ यजु. अ. ३६ । शांतिका उपाय । " ॥ = )

## ( ४ ) देवतापरिचय ग्रंथमाला ।

- १ रुद्र देवता परिचय । ... मूल्य ॥ )  
 २ ऋग्वेदमें रुद्र देवता । ... " ॥ = )  
 ३. ३३ देवताओंका विचार । ... " = )  
 ४ देवताविचार । ..... " = )  
 ५ अग्निविद्या । ... " १॥ )

## ( ५ ) धर्म शिक्षाके ग्रंथ

- १ बालकधर्मशिक्षा । प्रथमभाग । मू. - )  
 २ बालकधर्मशिक्षा । द्वितीयभाग । " = )  
 ३ वैदिक पाठमाला । प्रथम पुस्तक " = )

## ( ६ ) उपनिषद् ग्रंथमाला ।

- १ केन उपनिषद् .... मूल्य १। )  
 २ ईश उपनिषद् ... " ॥ = )

## ( ७ ) आगम-निबंध-माला

- १ वैदिकराज्यपद्धति । ... मू. १- )  
 २ मानवी आयुष्य । ... " १ )  
 ३ वैदिकसभ्यता ... " ॥ )  
 ४ वैदिक चिकित्साशास्त्र । ... " ॥ )  
 ५ वैदिक स्वराज्य की महिमा । ... " ॥ )  
 ६ वैदिक सर्प विद्या । .... " ॥ )  
 ७ मृत्युको दूर करनेका उपाय । ... " ॥ )  
 ८ वेदमें चर्खा । .... " ॥ )  
 ९ शिवसंकल्पका विजय । ... " ॥ )  
 १० वैदिक धर्मकी विशेषता ... " ॥ )  
 ११ तर्कसे वेदका अर्थ । .... " ॥ )  
 १२ वेदमें रोगजन्तु शास्त्र । ... " = )  
 १३ ब्रह्मचर्यका विस्त । .... " = )  
 १४ वेदमें लोहेके कारखाने । ... " १- )  
 १५ वेदमें कृषिविद्या । ... " = )  
 १६ वैदिक जलविद्या । ... " = )  
 १७ आत्मशक्तिका विकास । ... " १- )  
 १८ वैदिक उपदेश माला ... " ॥ )

## ( ८ ) ब्राह्मण- बोध-माला ।

- १ शतपथ बोधामृत । ... " १ )

## ( ९ ) अन्य पुस्तक ।

- १ वैदिक यज्ञसंस्था प्रथम भाग ... " १ )  
 २ " " द्वितीय " ... " १ )  
 ३ छूत और अछूत प्रथम भाग ... " १ )  
 ४ " " द्वितीय " ... " ॥ )

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि० सातारा )



# ‘केन’ उपनिषद् ।

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है—

- |  |  |
|--|--|
| १ केन उपनिषद् का मनन, २ उपनिषद् ज्ञान का महत्त्व, ३ उपनिषद् का अर्थ, ४ सांप्रदायिक झगड़े, ५ “केन” शब्द का महत्त्व, ६ वेदान्त, ७ उपनिषद् में ज्ञान का विकास, ८ अग्नि शब्दका भाव, ९ उपनिषद् के अंग, १० शांतिमंत्रोंका विचार, ११ तीनों शांति मंत्रों में तत्त्व ज्ञान, १२ तीन शांतियोंका भाव, १३ ईश और केन उपनिषद्, १४ “यक्ष” कौन है?, १५ हैमवती उमा, १६ पार्वती कौन है? १७ पर्वत, पार्वती, रुद्र, सप्तऋषि और अरुंधती, १८ इंद्र कौन है? १९ उपनिषद् का अर्थ और व्याख्या, २० अथर्ववेदीय केन सूक्तका अर्थ और व्याख्या, २१ व्यष्टि, समष्टि और परमेष्ठी, २२ त्रिलोकी | २३ अथर्वाका सिर, २४ ब्रह्मज्ञानी की आयुष्य मर्यादा, २५ ब्रह्म नगरी, अयोध्या, आठ चक्र, २६ आत्मवान् यज्ञ, २७ अपनी राजधानीमें ब्रह्मका प्रवेश, २८ देवी भागवतमें देवी की कथा, २९ वेदका वागांभूणी सूक्त, इंद्र सूक्त, वैकुण्ठ सूक्त, अथर्व सूक्त, ३० शाक्तमत, देव और देवताकी एकता ३१ वैदिक ज्ञान की श्रेष्ठता । |
|--|--|

इतने विषय इस पुस्तक में आगये हैं, इस लिसे उपनिषदों का विचार करने वालोंके लिये यह पुस्तक अवश्य पढ़ने योग्य है ।

मूल्य १। ) डाकव्यय= ) है ।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि० सातारा )

यज्ञकी पुस्तक

## वैदिक यज्ञ संस्था ।

प्रथम और द्वितीय भाग ।

प्रतिभागका मूल्य १ ) रु. डाकव्यय । )

प्रथम पुस्तक में निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है—

प्राचीन संस्कृत निबंध ।

- १ पिष्ट-पशु-मीमांसा । लेख १  
२ ” ” ” ” २  
३ लघु पुरोडाश मीमांसा ।

भाषाके लेख ।

- ४ दर्श और पौर्णमास (ले०-श्री० पं० बुद्धदेवजी)  
५ अद्भुत कुमार-संभव ” ” ”  
६ बुद्ध के यज्ञ विषयक विचार

( ले०-श्री० पं० चंद्रमणिजी )

७ यज्ञका महत्त्व

( संपादकीय )

८ यज्ञका क्षेत्र

”

९ यज्ञका गुढ तत्त्व

”

१० औषधियों का महामख

”

११ वैदिक यज्ञ और पशुहिंसा

( ले.- श्री. पं. धर्मदेवजी )

१२ क्या वेदों में यज्ञों में पशुओंका बलि करना

लिखा है? (ले० श्री० पं० पुरुषोत्तम लालजी )

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

## वैदिक उपदेश माला !

जीवन शूद्ध और पवित्र करनेके लिये बारह उपदेश अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी ।

है । इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन मूल्य ॥ ) आठ आने । डाक व्यय- ) एक आना ।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )



( पृष्ठ २१६ से समाप्त )

सकते हैं। इसलिये किसी हिंदुके मनमें अपने पुण्यपुरुषोंका यश सुरक्षित करनेके लिये विदेशी सरकार से कानून घडालेनेकी कल्पनाभी नहीं आयी, और जिस समय यह कानून घडाया जा रहा था उस समय भी कई हिंदु सभ्योंने कहा कि इस प्रकारके कानून द्वारा हिंदु पुण्यपुरुषोंके यशकी रक्षाका प्रबंध करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, हम अपने सभ्य लेखोंसे और अपने सदाचार से अपने पुण्य श्लोकोंके यश की रक्षा करनेमें समर्थ हैं।

हिंदुओंको इतना आत्मविश्वास था। परंतु मुसलमानोंको यह आत्मविश्वास नहीं था। इस लिये उन्होंने कानून की याचना की और दयामय सरकारने उनको मनी रथ पूर्ण किये ! यह कानून अब बन चुका है, तथापि हम इस समय भी समझ रहे हैं कि हरएक पैगंबर के यशकी रक्षा उसके अनुयायियोंके सदाचारसे ही हो सकती है। कानून के अंदर यह सामर्थ्य नहीं है।

तथापि यदि मुसलमीन लोग सचमुच समझते होंगेकि वे अपने सदाचार से और अपने सभ्य व्यवहार से अपने पूजनीय पैगंबरके यश की रक्षा नहीं कर सकते और उस कार्य के लिये विदेशी सरकारके कानून की आवश्यकता है तो उनको वैसा कानून मांगनेका अधिकार था। वह उन्होंने

मांगा और उन्हें प्राप्त भी हुआ है इस लिये वे प्रशंसा के भागी निःसंदेह हैं !!!

अपने पैगंबरोंके यश की सुरक्षिताके लिये हिंदु लोग कानून की याचना नहीं करते, कानून बनने के समय भी उनको ऐसे कानून की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। जैन बौद्धोंने अथवा ईसाईयोंको भी आजतक ऐसे कानून की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई, युरोप में ईसाके अस्तित्वके विषयमें भी शंका करनेवाले लोग हैं और उनकी उत्पत्तिके विषयमें बहुत कुछ लिखा गया है, परंतु युरोपके किसी देशमें पैगंबरके यश रक्षाके लिये कोई कानून सभ्य राज्यमें बनाया नहीं गया ( जगत् के किसी धर्मानुयायीयों को जैसे कानून की आवश्यकता बिलकूल प्रतीत नहीं हुई वैसे कानून की आवश्यक मुसलमानोंको ही क्यों हुई यह एक बड़ा विचारणीय प्रश्न इस समय सभ्य समाजके सम्मुख इसी कानून के कारण उपस्थित हुआ है। मुसलमानों के पूजनीय पैगंबर के संपूर्ण जीवन चरित्र का हमें ठीक पता नहीं है इसलिये हम इस विषय में अधिक कुछ लिख नहीं सकते। तथापि मुसलमानों को ही इसका उत्तर देना उचित है।

यह पैगंबर-यश-रक्षा का कानून जिन्होंने प्राप्त किया वे यशस्वी बने, या जिन्होंने कभी नहीं मांगा था वे यशस्वी हुए, यह भी एक बड़ा पेंचीदा सवाल है। हमारे विचार में समय ही इसका उत्तर देगा।



## Employment for millions STUDENTS' OWN MAGAZINE.

A Monthly English Teacher--Careers for Young men a speciality.

ANNUAL SUBSCRIPTION WITH SUPPLEMENTS, Rs. 3.

GET YOUR COPY FOR MARCH NUMBER RESERVED FOR 6 ANNAS STAMPS.

SAMPLE COPY POSITIVELY No.

APPLY TO--

CAPITAL INDUSTRIAL BUREAU, RAM GALLI, LAHORE.



# छूत और अछूत।

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ !! अत्यन्त उपयोगी !

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

- १ छूत अछूत के सामान्य कारण,
- २ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढ़ी,
- ३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
- ४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
- ५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
- ६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
- ७ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था,
- ८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
- ९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
- १० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
- ११ वैदिक कालकी उदारता,
- १२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,
- १३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था।

इस पुस्तकमें हर एक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है। यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है।

प्रथम भाग मू. १ )

द्वितीय भाग मू. III )

अतिशीघ्र मंगवाइये

स्वाध्याय मंडल. औंध ( जि. सातारा )

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवलेकर, भारत मुद्रणालय, औंध ( जि० सातारा )



ॐ

# वैदिक धर्म ।

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक मासिक पत्र ।

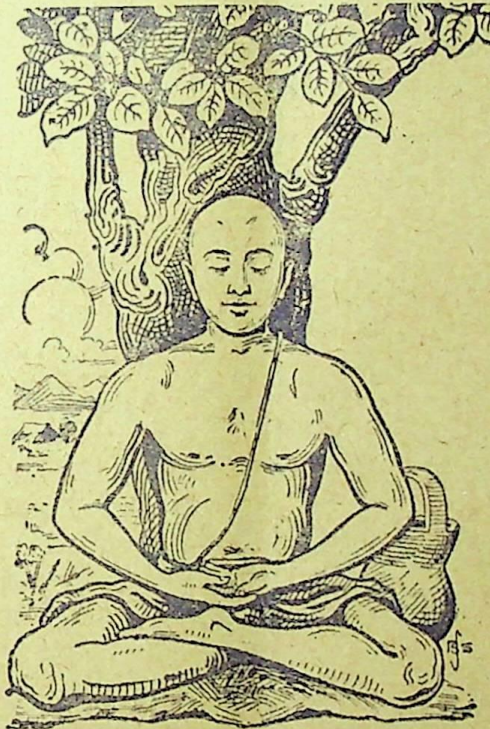
संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

वर्ष ८

अंक ११

क्रमांक

१५



कार्तिक

संवत् १९८४

नोव्हेंबर

सन १९२७

छपकर तैयार है।

## महाभारत की समालोचना

प्रथम भाग और द्वितीय भाग ।

प्रति भागका मूल्य ॥ ) डाकव्य ३ ) बी. पी. से॥ २ )

मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औध ( जि. सातारा )

वार्षिक मूल्य— म० आ० से ४ ) बी. पी. से ४॥ ) विदेशके लिये ५ )



- १ गौको नमन  
— २ यजुर्वेद का मुद्रण  
— ३ हिंदु मुस्लिम समस्या  
४ अथर्ववेद का स्वाध्याय—

२१७

२१८

२२१

जलसूक्त

मधुविद्या

तेजस्विता, बल, दीर्घायुष्य

प्रथमकांड का मनन

१८५

१८७

१९३

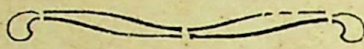
२०३

प्रथम कांड की विषयसूची

२१३



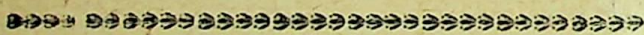
## आसनों का चित्रपट



आसनों का व्यायाम लेनेसे सहस्रों मनुष्योंका स्वास्थ्य सुधर चुका है, इस लिये आसन व्यायामसे स्वास्थ्य लाभ होनेके विषयमें अब किसी को संदेह ही नहीं रहा है। अतः लोग सब आसनोंके एक ही कागज पर छपे हुए चित्रपट बहुत दिनोंसे मांग रहे थे। वैसे चित्रपट अब मुद्रित किये हैं। २०—३० इंच कागज पर सब आसन दिखाई दिये हैं। यह चित्रपट कमरे में दिवार पर लगाकर उसके चित्रोंको देख कर आसन करनेकी बहुत सुविधा अब हो गई है।

मूल्य केवल ८०) तीन आने और डाक व्यय ८०)

स्वाध्याय मंडल, औंध ( सातारा )



कुस्ती, लाठी, पटा, बार वगैरह के

सचित्र **व्यायाम** मासिक

हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी और गुजराती इन

चार भाषाओं में

प्रत्येक का मूल्य २॥ )

रखवा गया है। उत्तम लेखों और चित्रों से पूर्ण होने से देखनेलायक है। नमूने का अंक मुफ्त नहीं भेजा जाता। वही. पी. खर्च अलग लिया जाता है। ज्यादाह हकीकतके लिये लिखो-

मैनेजर, —व्यायाम, राजपूरा, बड़ोदा

## योगमीमांसा ।

त्रैमासिक पत्र

संपादक— श्रीमान् कुवलयानंद जी महाराज ।

कैवल्यधाम आश्रममें योग शास्त्र की खोज हो रही है जिस खोजका परिणाम आश्चर्यजनक सिद्धियोंमें हुआ है, उन आविष्कारोंका प्रकाशन इस त्रैमासिक द्वारा होगा। प्रत्येक अंकमें ८० पृष्ठ और १६ चित्र दिये जायंगे।

वार्षिक चंदा ७ ) ; विदेशके लिये १२ शि०

प्रत्येक अंक २ ) रु.

श्री. प्रबंधकर्ता-योगमीमांसा कार्यालय, कुंजवन,

पोष्ट लोणावला, ( जि. पुणे )



## वैदिक उपदेश माला ।

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिए बारह उपदेश हैं। इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी। मूल्य ॥ ) आठ आने, डाकव्यय ८० ) एक आना

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )



वर्ष ८  
अंक ११  
क्रमांक १५

कार्तिक  
संवत् १९८४  
नवंबर  
सन १९२७



# वैदिक धर्म



वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र ।  
संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ।  
स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

गौको नमन ।

—:o:—

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः ।

बाफेभ्यः शफेभ्यो रूपायाध्न्ये ते नमः ॥१॥

अथर्ववेद १०।१०।१

“ हे ( अध्न्ये ) हनन के लिये अयोग्य गौ ! जन्मते समय ( ते नमः ) तुझे नमस्कार करता हूं, उत्पन्न होनेके बाद भी तुझे नमस्कार करता हूं, तेरे संपूर्ण रूपोंके लिये, यहां तक कि तेरे बाल और खुर भी जो हैं, उन सबका नमन करता हूं । ”

किसी भी अवस्थामें गौ वध्य नहीं है, परंतु हर एक अवस्थामें गौ पूजनीय और सत्कार करने योग्य है । गौ किसी भी आयुमें हो और किसी भी रूपमें सन्मुख आजाय वह पूजनीय और सत्कार करने योग्य ही है ।

—o—



## यजुर्वेदका मुद्रण.

काण्व शाखाके पाठ भेदोंका नमुना पृष्ठ सामने देखिये—

यजुर्वेदका मुद्रण समाप्त हो चुका है और शुक्ल यजुर्वेदकी काण्व शाखा की संहिताके पाठ भेदोंका मुद्रण शुरू हुआ है। ये सब पाठभेद देनेसे पाठकों के पास दोनों शाखाकी संहिता हो जायगी और जो मंत्रोंके अर्थोंका मनन करनेकी इच्छा करते हैं उनको बहुत ही लाभ होगा। यद्यपि काण्व, माध्यंदिन वाजसनेयी शुक्ल यजुर्वेदकी संहिता वास्तविक एक ही संहिता है तथापि काण्व संहिता और माध्यंदिन संहितामें पाठभेद बहुत हैं। अक्षरभेद, शब्दभेद, मंत्रपादभेद, मंत्रपादोंके क्रममें भेद, मंत्रपाठमें भेद, और मंत्रक्रममें भी भेद हैं। जिन लोगोंने ईशोपनिषद् के मंत्रपाठके काण्व पाठ और माध्यंदिन पाठ देखे होंगे उनको इस पाठभेदकी कल्पना आसकती है। काण्व पाठ ईशोपनिषद् में लिया है। और माध्यंदिन पाठ वाजसनेयी संहिताके चालीसवें अध्यायमें देख सकते हैं। जिस प्रकार इनमें पाठभेद हैं उससे भी अधिक पाठभेद पहिले ३९ अध्यायोंमें हैं।

ये पाठभेद अत्यंत सुबोध रीतिसे देनेकी रीति निश्चित करनेमें एक मास व्यतीत हुआ। तीन चार रीतिसे यह लिखकर तथा मुद्रित करके भी रखा, पश्चात् एक सुगमरीति निश्चित करके उस रीतिसे अब मुद्रण किया जा रहा है। हरएक पृष्ठके बायें भागमें माध्यंदिन वाजसनेयी संहिताके मंत्रांक दिये हैं। ये मंत्र जहां काण्व संहिता में आगये हैं वह बताने वाले काण्व संहिता मंत्रांक दहने पृष्ठभागमें दिये हैं। ये अंक देखनेसे साधारण पाठक कोभी पता लग जायगा कि इस संहिताका कौनसा मंत्र काण्व संहितामें कहां है और काण्व संहिताका कौनसा मंत्र इस माध्यन्दिन संहितामें कहां है। दोनों ओर दिये मंत्रांक देखनेसे एक संहिताके मंत्र दूसरी संहितामें ठीक कहां हैं इसका पता लग सकता है।

जो मंत्र माध्यंदिन वाजसनेयी संहितामें नहीं हैं और केवल काण्व संहितामें हैं उनका काण्वसंहिता का पता दहने पृष्ठभागमें दिया है और बायें स्थानमें ( ० ) ऐसा शून्य लिखा है। इसका भाव यही है कि यह मंत्र माध्यन्दिन वाजसनेयी संहितामें नहीं है।

जो मंत्र कुछ पाठ भेदके साथ आगये हैं उनका निर्देश करने लिये दहिनेके पृष्ठभागमें गोल कौंस ( ) में मंत्रांक दिये हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये मंत्र कुछ रूपान्तरसे दोनों संहिताओंमें हैं। जो मंत्र अन्य अध्यायोंमें आगये हैं उनको बतानेके लिये [ ] चतुरस्र के अंदर मंत्रांक लिखा है। इससे पाठक जान सकते हैं कि ये मंत्र अन्यत्र आगये हैं।

मंत्रके अंदर जो पाठभेद है वे पृष्ठके मध्यस्थानमें बताये हैं, शेष मंत्रभाग समान होनेसे दिया नहीं है। इससे पाठक दोनों शाखा संहिताओंकी तुलना अच्छी प्रकार कर सकते हैं और जान सकते हैं कि कौनसा मंत्र कहां है और किस रूपमें है।

वाजसनेयी संहितामें अध्याय और मंत्र हैं, तथा काण्व संहितामें अध्याय, अनुवाक और मंत्र हैं। इसको दर्शाने के लिये पृष्ठके मध्यमें अनुवाकोंके अंक दिये हैं। तात्पर्य इस रीतिसे हरएक मनुष्य जान सकेगा कि कौनसा मंत्र ठीक किस स्थानपर किस रूपमें है। यह सुगम रीति निश्चित करनेके लिये करीब एक मास व्यतीत हुआ और इस कारण गतमासमें कुछ मुद्रण नहीं हो सका। पाठकों के पत्र प्रतिदिन आ रहे हैं और मुद्रण के विलंब का कारण वे पूछ रहे हैं। मुद्रण में विलंब का कारण यह है। अब पाठक ही विचार करें कि यह विलंब सकारण है या निष्कारण हुआ है। अच्छा कार्य बननेके लिये



( ५ ) अनुवाकांकाः ।

वा०सं०मंत्राङ्काः

काण्व०मंत्राङ्काः

- ११ व्रतं कृणुत व्रतं कृणुत व्रतं कृणुत ॥ अग्नि० ०यज्ञियः ॥ १ ॥  
 " दैवी० ०सुमृळीकामभिष्टये ॥ वर्चोदाँ विश्वधायसः सु० स्वाहा ॥ २-३ ॥  
 १२-१४ श्वात्राः० ० पुनस्कृधि ॥ ४-६ ॥  
 ( १५ ) पुनर्मनः पुनरायुर्मऽआगात् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगात् ॥  
 पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगाद्वैश्वा० ०ग्निर्मा पातु दुरितादवद्यात् ॥ ७ ॥  
 १६ त्वमग्ने० ०वस्वदात् ॥ ८-९ ॥

( ६ )

- १७-१८ एषा तै० ॥ १ ॥ ०तनुयन्त्रमशीय स्वाहा ॥ चन्द्रमसि शुक्रमस्यमृ० ०मसि ॥ १-२ ॥  
 १९-२० चिदसि० ०सुप्रतीची भव ॥ ३ ॥ मित्रस्त्वा० ०क्षाय ॥ ०सयूध्यः ॥ ३-४ ॥  
 ,, सा दैवि० ०पुनरेहि ॥ ५ ॥

( ७ )

- २१-२२ वस्व्यस्य० ॥ १ ॥ अदि० ०इळायास्पदमसि० ॥ २ ॥ ०त्वे रायो अस्मे राय ॥ १-३ ॥  
 २२-२३ मावय० ०वीरान्विदेय तव देवि सन्धशि ॥ ४ ॥

( ८ )

- २४ एष तै० ०छन्दोमानानां साम्राज्यं गच्छतादिति मे सोमाय ब्रूतात् ॥ १ ॥  
 २४-२५ आस्माको० न्वन्तु ॥ २ ॥ अभि त्यं० कृपास्वः ॥ ३ ॥ प्रजाभ्यं० प्राणिहि ॥ २-४ ॥

( ९ )

- २६ चन्द्रं त्वा चन्द्रेण क्रीणामि शुक्रं शुक्रेणामृ० ॥ १ ॥ ०पुष्यम् ॥ १-२ ॥  
 २७-२९ मित्रो० ॥ ३ ॥ स्वा० कृशानो ॥ एते० दमन् ॥ ४ ॥ परि० ०वसु ॥ ३-६ ॥

( १० )

- ३०-३२ अदित्या० अस्तभ्राद्यामृषभो० ॥ १ ॥ ०मद्रौ ॥ २ ॥ ०कनीनकाम् य० श्विता ॥ १-३ ॥  
 ३३-३७ उस्त्रा एतं धूर्वाहौ यु० ॥ ४ ॥ ०सदनीमासीद ॥ ७ ॥ ०दुर्यान् ॥ ४-८ ॥

[ दशानुवाकेष्वेकोनपञ्चाशत् ॥ ४९ ॥ ] इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ [ २३५ ]

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

( १ )

- १-४ अग्नेस्तनू० ०तसाऽअरेपसौ० नः ॥ ३ ॥ अग्ना अग्नि० ०स्वाहा ॥ १-४ ॥



विलंब अवश्य लगता ही है। जो कार्य बननेके लिये विचार करनेकी आवश्यकता लगती है उसको अवश्य ही देरी लगती है और शीघ्रता करनेसे उतना ठीक कार्य नहीं होगा। स्वाध्याय मंडलमें जो वेदोंका मुद्रण हो रहा है वह विशेष अन्वेषणापूर्वक होनेके कारण वह मुद्रण अतिशीघ्र होना असंभव है। जो पाठक शीघ्रता न करनेके लिये हमें दोष दे रहे हैं उस देरीके दोष का हम आनंद से स्वीकार करते हैं।

## अथर्ववेद सुबोध भाष्य ।

अथर्ववेद सुबोध भाष्यका प्रथम काण्ड इस अंकमें समाप्त हुआ है। अगले अंक से दूसरे काण्ड का प्रारंभ होगा। पाठक इस सुबोध भाष्य को बहुत प्रसंद करते हैं और चाहते हैं कि इसका भी मुद्रण शीघ्र किया जाय। इस विषयमें हम इतना ही कहना चाहते हैं कि यह वेदका विषय है और यह उपन्यासों के समान अतिशीघ्र लिखा नहीं जा सकता। एक एक मंत्र का अर्थनिश्चय करनेके लिये बहुत अन्वेषण और बहुत विचार करना होता है इसलिये कई घण्टे व्यतीत होनेपर भी बहुत थोड़ा लेख तैयार होता है। इसलिये इस में भी शीघ्रता करना प्रायः असंभव है।

तथापि हमने इस माससे आठ पृष्ठ अधिक देनेका निश्चय किया है। इस समय तक वैदिक धर्म मासिक के चालीस पृष्ठ दिये जाते थे, इससे आगे आठतालीस पृष्ठ दिये जायंगे। परंतु पाठक इस बात का विचार करें कि यह व्यय की बात है और यदि इस व्यय को भुगताने योग्य ग्राहक संख्या न बढ़ी तो यह पृष्ठ-संख्या बढ़ानेका निश्चय हमेशा के लिये चलाना हमारे लिये असंभव हो जायगा। इसलिये पाठक इस अधिक व्ययको भुगताने के लिये आवश्यक साहायता होनेके लिये ग्राहक संख्या बढ़ानेमें सहायता दें। ग्राहक संख्या बढ़नेके विना यह हमारी इच्छा पूर्ण नहीं हो सकती।

जिस प्रकार यह अथर्व वेद सुबोध भाष्य का प्रथमकांड छपा है उसी प्रकार क्रमशः कांडोंकी छपाई होगी और इसी प्रकार ग्राहकों के पास भेजा जायगा। इसलिये जो पाठक अथर्व वेद का मुद्रण शीघ्र होनेके इच्छुक हैं और अथर्व वेदका मासिक स्वाध्याय कर रहे हैं वे ग्राहक संख्या बढ़ानेमें सहायता दें। ग्राहक संख्या बढ़नेके विना पृष्ठ संख्या हमेशाकेलिये बढ़ाना कठीण है।

## गोमेध ।

गोमेध का लेख गत अंकमें प्रकाशित हुआ है और इसी का उत्तरार्थ इस अंकमें प्रकाशित हुआ है। इससे पूर्व गोमांस भक्षण विषयक तीन लेख प्रकाशित हुए हैं। कई पाठक इन लेखों को पुस्तकाकार मुद्रित करनेकी प्रेरणा कर रहे हैं। हम भी जानते हैं कि यह विषय सामयिक महत्त्वका हुआ है इसलिये इसका विशेष अभ्यास करने की इच्छा कई पाठक कर रहे हैं। यह देख कर हमने भी निश्चय किया है कि पुस्तकाकार इसका मुद्रण शीघ्र किया जाय।

## गोमेध का शास्त्रार्थ ।

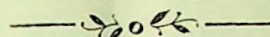
सातारा के एक विद्वान गोमांस भक्षण के विषयमें शास्त्रार्थ करनेके लिये उद्यत हुए हैं। हमने उनका आह्वान स्वीकार किया है। उनका कहना है कि प्राचीन कालके ऋषि गोमांस खाते थे और वेद मंत्रोंसे यह बात सिद्ध हो सकती है। हमने उनका आह्वान स्वीकृत किया है और उनसे प्रार्थना की है कि वे अपना पक्ष लेखद्वारा सिद्ध करें। यदि उनका लेख आगया तो वह हमारे उत्तर के साथ आगामी अंकमें प्रकाशित किया जायगा। अन्यथा जो बात बन जायगी सूचित की जायगी। और भी जो सज्जन इस विषयमें शंकासमाधान करना चाहते हैं उनका भी हम स्वागत करेंगे। परंतु जो अपना पक्ष प्रकाशित करना चाहते हैं वे लेखबद्ध प्रकाशित करें। और लेख सुपाठ्य हो।

“ संपादक ”





# हिंदु-मुस्लिम-समस्या !



इस भारतवर्ष में हिंदु, मुसलमान, पारसी, ईसाई, यहूदी आदि अनेक धर्मों और धर्मपंथोंको माननेवाले लोग रहते हैं; हिंदुधर्मके अंदर जैन, बौद्ध, सिख, लिंगायत आदि अनेक पंथ वास्तविक हिंदुधर्मके अंदरके ही पंथ हैं। इनके मूल प्रवर्तकोंने ये पंथ सनातन धर्मकी श्रद्धा करनेके लिये ही चलाये थे, परंतु वे अब अपने आपको अलग मान कर और स्वतंत्र होकर अपने छोटे छोटे फिरके बनाकर वृहत्समाज की शक्ति कम करनेमें भूषण मानने लगे हैं !!!

## अदृष्ट संबंध ।

एक देशके रहने वाले सब देशभाई होते हैं, देश-बंधु जितने भी हों वे सबके सब भाईपनके नातेसे एक दूसरेके साथ बंधे हैं। यह भाईपन का बंधन परमेश्वरनिर्मित होने से अदृष्ट है। देशभाईयोंने आपसमें कितने भी झगड़े खड़े किये तथापि उनमें पूरा विभक्तपन हमेशाके लिये स्थिररूपसे रह ही नहीं सकता। क्योंकि उनके मिलजुलकर रहनेसे जितना उनको लाभ प्राप्त हो सकता है, उतना उनके विभक्त रहनेसे नहीं हो सकता। इसलिये जो लोग पहिले वेसमझीसे झगड़े खड़े करते हैं, वेही झगड़ों से नुकसान होनेका अनुभव आनेके पश्चात् अवश्यही मित्रता करने लगते हैं। क्योंकि एक देशवासियोंके अंदर परस्पर मित्रता रहना परमेश्वरीय नियम है। यदि लोगोंने न माना तो परमेश्वर का नियम उनको अवश्य ही ठीक कर देगा।

हिंदुस्थानमें हिंदु, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी आदि जितने भी धर्म वाले लोग हैं वे इस समय तक एक दिलेसे कार्य करते आये हैं। यदि

वारंवार किसीका झगडा होता है तो मुसलमानोंका ही अन्योके साथ होता है। हिंदु-ईसाई, ईसाई-हिंदु, हिंदु-पारसी, पारसी-हिंदु, हिंदु-यहूदी, यहूदी-हिंदु ऐसे झगड़े कभी नहीं हुए। आजतक किसीने भी ऐसे झगड़े होनेकी बात सुनी नहीं है। परंतु मुसलमान×पारसी, मुसलमान×हिंदु, मुसलमान×ईसाई या यहूदी इस प्रकारके झगड़े अनेक बार सुनाई देते हैं। यदि इनका सर्व सामान्य कारण देखा जाय तो पता लग जायगा कि मुसलमानोंका मुसलमाने-तर जनतासे झगडा होता है। मुसलमान भाईयोंके साथ अन्योकी क्यों बनती नहीं है इसका विचार करना यह एक आजकलके सामयिक महत्त्वका विषय हो रहा है। यदि इसके कारण का पता लगा तो यह समस्या अतिशीघ्र हल हो जायगी।

हिंदु कहते हैं कि दोष मुसलमानोंका है और मुसलमान कहते हैं कि दोष हिंदुओंका है। झगड़े के समय ऐसा कहा ही जाता है। जगत में कौन ऐसा धर्म पुरुष है कि जो अपना दोष जाहिर कर दे। तथापि जो लोग निःपक्षपातसे देखेंगे उनको दोष कहां है इस का ठीक पता लग सकता है। हम इस लेखमें सच्चा दोष कहां है इसका प्रकाश करना चाहते हैं, पाठक भी इस का विचार करें और जहां जो दोष हो वह वहांसे दूर करनेका यत्न करें।

## वीर जाती ।

कईलोग इस समय तक समझते हैं कि मुसलमान जाती संघट्टीसे बड़ी वीर जाती है और हिंदु वैसी वीरजाती नहीं है, परंतु यह अनुमान कई प्रसंगोंका विचार करनेसे अशुद्ध सिद्ध हुआ, इसके कारण ये हैं—



१ जो वीर पुरुष होते हैं वे कभी वृद्ध, बीमार, असहाय, अशक्त पुरुषों तथा स्त्रियों, वृद्ध स्त्रियों अथवा बालकोंपर हमला नहीं करते । वीर पुरुष कभी असावधान शत्रुपर हमला नहीं करते । बीमारों पर, वृद्ध स्त्रियोंपर हमला करना भीरुता का कार्य है । श्री० स्वा० श्रद्धानंदजी महाराज वृद्ध और बीमार थे और अपने कमरेमें भी मुद्दिकलसे घूम सकते थे । ऐसे वृद्ध और विस्तरेपर सोये बीमार के छातीमें बिलकुल असहाय स्थितिमें गोलिएं चलाना वीरताका कार्य नहीं कहा जा सकता ।

२ तथापि कई लोग इस वधकर्तों को धर्म वीर माननेकी तैयार थे । इतने में इनके मौलवियोंके द्वारा धर्मज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् वधकर्ता "पागल" का रूप लेता है और धर्मवीर बननेसे इनकार करता है, यह आश्चर्य हमने देखा !!

३ सोलापुरके दंगेमें इसी प्रकार एक अति-वृद्ध स्त्रीका मुसलमानोंकी लाठीयोंसे वध हुआ । यह वृत्तांत वृत्तपत्रोंमें प्रकाशित हुआ है ।

४ बंगाल और पंजाबमें तथा नागपुर आदि स्थानोंमें कई मुसलमान हिंदु संन्यासियोंके वेशमें हिंदुओंके पास आने और हिंदुओंपर अचानक हमला करनेके वृत्तांत अखबारों में प्रकाशित हुए हैं ।

५ अब तो रात्रीके समय आनेजाने वाले हिंदुओं पर अंधेरे स्थानोंमें छिपकर मुसलमानोंद्वारा हमले होने के वृत्तत आगये हैं ।

ये वृत्तांत इस समय अनेक हैं । कई तो रेलमें सोने की अवस्थामें मारे गये, कई अन्योका वध अन्य प्रकार से असहाय और असावधान अवस्थामें हुआ है । इतने दंगे होगये उनमें एक भी ऐसा कृत्य मुसलमानोंका हमने नहीं सुना कि जो वीर पुरुषोंके योग्य माना जाने योग्य हो । जो दंगेके हाल प्रकाशित हो गये हैं वे सब सूक्ष्मदृष्टीसे देखे जायें तो पता लग जायगा कि इन की वीरता कम हो रही है औरी भीरुतापूर्ण क्रूरता इनमें अधिक बढ़ रही है । जो मौलवी स्थान स्थानमें मुसलमानों को उकसाते हैं और फिसाद करनेमें प्रवृत्त करते हैं, उनको उचित है कि

वे अपनी जातीमें वीरता बढ़ रही है या घट रही है इसका विचार करें । हमें तो इस बात का डर है कि एक समय जो मुसलमान जाती वीर जाती करके मानी जाती थी, वही आज वीर पुरुषके सर्वथा अयोग्य क्रूरतापूर्ण भीरुहमले करनेमें अपने आपको कृतकृत्य मानने लगी है !! मुसलमानों को इस विषयमें आत्मपरीक्षा करना आवश्यक है और शीघ्र ही सुधार की दिशासे प्रयत्न भी करना चाहिये । अन्यथा यह भीरुता बढ़ती ही जायगी ।

## अधर्म का पथ ।

मुसलमानी धर्मके प्रवर्तक आचार्यने कहा है कि किसी विधर्मीको जबरदस्ती करके शक्तिके जोरसे अपने महजबमें लाने का यत्न न करो, परंतु जबसे भारत वर्षमें मुसलमीन भाई आगये हैं तबसे जबरदस्ती से धर्मान्तर ही उन्होंने किया है । दूसरों के धर्ममतोंके विषयमें सहनशील रहनेका उपदेश इनके धर्माचार्य ने किया है परंतु ये दूसरों के धर्ममतों के विषयमें परम असहिष्णु रहते हैं । ये स्वयं उनके धर्मानुसार मूर्ति पूजाके विरोधी हैं, परंतु स्वयं ताबूद करके मूर्तिपूजक बने हैं । ऐसी कई बातें हैं कि जो ये स्वयं अपने ही धर्म सिद्धांतोंके बिलकुल विरुद्ध करते हैं । इस प्रकार अधर्म पथपर स्वयं चलते हुए धर्मके नामपर ये वारंवार झगडे कर रहे हैं, इसका विचार इनको करना उचित है ।

## संगठन का बल ।

हिंदु लोग संगठन का महत्व जानते नहीं, परंतु मुसलमान भाई संगठन के महत्त्वको भली प्रकार जानते हैं, इस लिये इन्होंने कई वर्ष पहिलेसे अपने धर्मियोंका संगठन अच्छी प्रकार चलाया है । अपनी धर्मसभाएं स्थान स्थानपर स्थापित करके ऐसा अपना संगठन दृढ़ किया है कि इनका छोटे और बड़े मुसलमान भाईयोंका अब पूर्ण रीतिसे एक मत हो गया है । अर्थात् इनमें अब मतभेद नहीं है । एकता का पूरा बल इनमें हो गया है । उत्तर भारत में ही इनका संगठन इस समयतक था, परंतु अब इनके कार्यकर्ता दक्षिण भारत में आकर स्थान



जमा करके बैठे हैं। इस लिये जहां पहिले कभी झगड़े नहीं थे वहां अब शुरू हो गये हैं। कन्हाड, तळेगांव, अक्कलकोट, मिरज आदि स्थानोंमें इनका पूरा प्रबंध हो चुका है।

जो सोलह वर्षके ऊपर की उम्र के मुसलमान हैं वे लाठी चलानेकी शिक्षा बाकायदा ले रहे हैं और इसके लिये इनका खास प्रबंध भी है। हमने स्वयं अपने धर्म प्रचारके दौरे में कई स्थानोंपर देखा कि रात्रीके समय मस्जिद के अंदर किटसन का प्रक्षेप लगाकर लाठी चलानेकी शिक्षा मुसलमान युवक ले रहे हैं। मस्जिद का उपयोग लाठी, पत्थर आदि युद्धके सामान इकट्ठे करने के लिये होता है यह बातें तो अखबारोंमें प्रकाशित हो चुकी हैं। उसके आगेकी तैयारी भी हमने यह देखा की मस्जिदके हाते को लाठीका आखाडा अब इन्होंसे बनाया गया है।

महाराष्ट्रमें मुसलमानोंकी ऐसी तैयारियां चल रही हैं। मुसलमानोंके अखबार और उपदेशक मौलवी तो खुलं खुला गुंडोंको उकसा रहे हैं। जिसका परिणाम कई स्थानोंमें मूर्तियां टूटनेमें हुआ। भोपाल राज्य और निजाम रियासत तो मुसलमानोंको धन की सहायता देती है और इस धनके बलसे भारत-वर्षमें मुसलमानी धर्म प्रचार तथा इन झगड़ोंके षड्यंत्र चलाये जा रहे हैं। भोपाल रियासतमें तो प्रति सप्ताह साठ हिंदु मुसलमानी धर्ममें प्रविष्ट होने ही चाहिये ऐसा प्रबंध है और यदि न हुए तो प्रश्न पूछा जाता है कि इस सप्ताहमें कम क्यों हुए। कई अन्य बातें भी हैं जिनका उल्लेख यहां करनेकी आवश्यकता नहीं है, “काफिरका मुख सवेरके समय न देखने के नियम” भी कई लोगोंने वहां किये हैं। ये सब बातें मुसलमीन खुलं खुला कर रहे हैं और साथ ही साथ महाराष्ट्रमें हम देख रहे हैं कि प्रतिवर्ष पठाणोंकी संख्या बढ़ रही है। जिन गांवोंमें दस वर्षके पूर्व एक भी पठाण नहीं था, वहां छोटेसे छोटे ग्राममें पांचचार पठाण अवश्य ही रहते हैं और प्रति वर्ष इनकी संख्या बढ़ायी जाती है। व्यक्तिशः ये लोग गांव के लोगों और स्त्रियोंपर अत्याचार तो करते ही हैं, परंतु संघशः भी ये अत्याचार में संमिलित

होते हैं। यदि किसी एक ग्राममें दंगा करना हो तो उस दिन आस पासके चारों ओर के ग्रामोंके पठाण उस ग्राममें इकट्ठे होते हैं और दंगेके दिन अपने मुसलमीन भाईयों को सहायता भी करते रहते हैं। इससे प्रतीत होता है कि महाराष्ट्रके हर एक ग्राममें या चार पांच ग्रामों में मिलकर पठाणोंके अड़े स्थिर करनेमें इनका कुछ गहरा हेतु है। हमें पता नहीं कि गुजरात, युक्त प्रांत आदि में भी ऐसे ही पठाण आकर रहते हैं वा नहीं। मुंबई और कलकत्ते में तो इनके कष्ट बहुत ही हैं। प्रतिवर्ष इनकी बढ़ती संख्या देखकर हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस देशके ग्रामों में पठाणोंकी संख्या प्रति वर्ष बढ़ानेमें इनका कुछ हेतु अवश्य ही होगा। भारतीय मुसलमानोंसे इनकी मित्रता प्रसिद्ध है। थोड़ी देर पूर्व जो हिंदु मुसलमानों का दंगा सोलापुर में हुआ था, उसमें सहायता देने के लिये आस पास के ग्रामों में रहने वाले पठाण वहां पहुंच रहे थे, तथा नागपुर के दंगेके समय भी उनकी इसी प्रकार हलचल हो रही थी।

भूपाल और हैदराबाद रियासत का धन, अफगाणि स्थानके पठाण, और भारतीय मुलामौलानाओं की चेतावनी मुसलमानोंको मिल रही है और इस बारूद के ऊपर बैठकर अपने हिंदु भाईयोंसे मारपीट करनेके लिये ये तैयार होते हैं। ऐसा कई विचारी लोगोंका ख्याल है। तथा दूसरे कई, विचारी भद्र पुरुष कह रहे हैं कि भारतवर्षमें मुसलमान लोग स्वराज्यके अधिक अधिकार अपने लिये चाहते हैं इसलिये अपनी शक्ति बतानेकी इच्छासे ये झगड़े खड़े कर रहे हैं।

ये सब मत वृत्तपत्रोंमें प्रकाशित हो चुके हैं, इन का यहां इसलिये उल्लेख किया है कि पाठकोंका अनुसंधान आगेके लेखके साथ ठीक प्रकार हो सके।

हमारा यह ख्याल है कि इस प्रकार दंगे फिसाद होना यह अस्वाभाविक बात है। अपने देशमें सब लोगोंका एक दिलसे रहना ही स्वाभाविक बात है। परंतु इस देशमें यह बिलकुल स्वाभाविक बात भी



दूर हो रही है और अपने नाश की बात स्वयं करने में इन लोगों की प्रवृत्ति बढ रही है। ऐसा क्यों होता है इसकी चिकित्सा अब करनी चाहिये—

### एकता की महत्ता ।

हिन्दू-मुस्लिम एकता का अर्थ यह कि हिन्दू मुसलमान तथा अन्य सब मतों के लोगों की एकता । इस एकता का वैसाही महत्व है जैसा कि स्वराज्य का । यदि भारतवासी स्वराज्य चाहते हैं, विशेषतः प्रातिनिधिक स्वराज्य की यदि उन्हें अभिलाषा है, तो उन्हें आपसमें झगडना न चाहिए। हिन्दू, मुसलमान, पार्सी, यहूदी, ईसाई, जैन, बौद्ध, तथा अन्य धर्मावलम्बी लोग हिन्दी राष्ट्र-पुरुष के अंग, उपांग हैं । जब तक राष्ट्र के भिन्न भिन्न अंग आपस में लड़ेंगे तब तक उन्हें स्वराज्य नहीं मिल सकता । इसीसे भारतवासियों के सन्मुख केवल दो मार्ग हैं: ( १ ) पहला मार्ग यह है कि आपसकी फुट छोड कर वे एकता करें और स्वराज्य प्राप्त कर अन्य देशवासियों की तरह उन्नत हो जावें । या ( २ ) दूसरा मार्ग यह कि आपस में लड़ाई, झगडा करते रहें और किसी तीसरे के आधीन अर्थात् पारतन्त्र्य में रहें । भारतवासी इन में से कौन मार्ग से चलना चाहते हैं सो हिन्दु मुसलमानों के झगडों के तस्फिया पर निर्भर है ।

### आगन्तुक झगडे ।

हिन्दु और मुसलमानों के बीच होने वाले झगडे स्वाभाविक नहीं कृत्रिम हैं । यदि ये लोग स्वभावही से झगडालू होते, तो ऐसे झगडे सदाही होते रहते । किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है ।

अफगाणिस्थान जैसे कट्टर मुसलमानों के देश में आज भी यदि हम जावें तो वहाँ भी हिन्दु मुसलमान लडते हुए नजर नहीं आवेंगे । प्रत्यक्ष काबुल में देखा जाता है कि हिन्दु मुसलमान एकही गांव में रहते हुए आपसमें लडते नहीं । अफगाणिस्थान में हिन्दुओंकी संख्या कम है और मुसलमानों की अधिक किन्तु वहाँ झगडे नहीं होते । अफगाणिस्थान में ऐसी कई बस्तियां हैं जहाँ हिन्दुओं के दो एक मकान होंगे बाकी सब मुसलमान हैं । यहाँ भी कभी झगडे

नहीं होते । आज से करीब चालीस वर्ष पहले भारत-वर्ष में आज जैसे हिन्दू मुसलमानों के झगडे न होते थे । किसी स्थान विशेष की कोई बात अप्रसन्नता उत्पन्न करती तो वह जरा देर में शांत हो जाती । दोनों समाजों में आज जैसी खलबली न मची थी ।

श्रीशिवाजी से पेशवों के समयतक मराठों के नौकर मुसलमान रहते थे तथा मुगल बादशाहोंके तथा सरदारों के नौकर हिन्दू रहते थे । पचीस वर्ष पहले बम्बई में चुनाव के समय लोग इस बात की फिकर न करते थे कि कौन्सिल में जाने वाला मनुष्य हिन्दू है, पारसी है वा मुसलमान । किसी के स्वप्नमें भी नहीं आताथा कि भूतपूर्व बड् दिन तैय्यजी, दे. भ. दादाभाई नौरोजी, सर फेरोज शाह मेहता, न्या. मूरानडे वा दे. भ. गोखले आदि लोग किस धर्म के हैं । आज भी वे लोग जीवित हैं जो इस प्रकार की एकता का अनुभव कर चुके हैं ।

निजाम रियासत में जब तक पिछले निजाम सरकार जीवित थे तब तक हिन्दू मुसलमानों में बिल्कुल विरोध न था । इसी लिए निजाम सरकारने एक समय कहा भी था कि “ हम प्रजा का पालन समता से करते हैं, इससे हमारी प्रजा में हिन्दू मुसलमानों के झगडे नहीं होते । ” परंतु इस समय यह बात नहीं रही है ।

कुछ समय पहले तक यह हाल था इसी से सिद्ध है कि हिन्दू मुसलमानों की स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं है कि आपस में लडकर अपने ही हाथों पैर पर कुल्हाडी पटक लें और अपना नाश कर लें । इसीसे कह सकते हैं कि किसी बाहरी कृत्रिम कारण ही से ये झगडे उठ खडे होते हैं ।

### बाहरी कारण ।

पिछले दोचार वर्षों के झगडों का बारीकी से पृथक्करण करें तो स्पष्टतया विदित होगा कि जब जनता की ओर से स्वराज्य की मांग की हलचल बडे जोरों से होने लगती है तब हिन्दू मुसलमानों के झगडे तीव्र होते हैं । इस समय में भी स्वराज्यकी दूसरी किस्त देनेका समय आगया है इस लिये चारों ओर झगडे बढ रहे हैं । शायद यह काकतालीय



न्याय हो। यदि इसमें कुछ भी कार्यकारण सम्बन्ध हो, तो स्पष्टतया कहना होगा कि जो लोग चाहते हैं कि भारतवासियों को स्वराज्य न मिले, वे ही झगड़ों को हुमसाते होंगे। परन्तु ऐसा कहने में प्रत्यक्ष प्रमाण अभी तक मिला नहीं है।

सब पक्ष के लोग आपस में समझौता कर स्वराज्य की मांग कायम करनेवाले हैं और इसके लिए सब पक्षों के नेताओं की ऐक्य परिषद् होनेवाली है। यह बात जाहिर होते ही खबरें आई कि एकसे एक भयंकर झगड़े देशमें हुए। इन झगड़ों के सदृश भयानक दंगे पिछले पचासवर्षों में नहीं हुए थे। इस प्रकार काकतालीय न्याय चरितार्थ होता है। तब यदि लोग समझ लें कि कोई तीसरा इसमें हस्तक्षेप करता है तो आश्चर्य ही क्या? किन्तु हमारा मत इससे भिन्न है।

### यथार्थ बात ।

हमारी समझ के अनुसार, ये झगड़े बाहरी कारण से होवें वा न होवें, वे किसी भी कारण से होते हों, मुसलमानों की दिमाग में कुछ अस्वाभाविक बिघाड अवश्य हुआ है। वरना छोटी छोटी बातों के लिए ऐसे भयानक दंगे न हुए होते। इसमें संदेह नहीं कि ये लोग किसी के भी चिढ़ाने से आपस में मारपीट कर आत्मघात के लिए प्रवृत्त हो जाते हैं। अंतःकरण यदि इस प्रकार बिगडा न हो तो आपसमें झगड़े होही नहीं सकते।

सारांश यह कि झगड़ों का यथार्थ कारण बाहर नहीं है; वह बिगडी हुई मनःस्थिति में है। इसी से यह बात निर्विवाद है कि झगड़ों को मिटाने के लिए अंतःकरणों में सुधार होना आवश्यक है।

### हिन्दुओं की सहनशीलता

यह बात शत्रुभी मानेंगे कि हिन्दू लोग स्वभाव ही से शान्त और सहनशील हैं। यह शान्ति और सहनशीलता अब इस हद तक पहुँची है कि लोग उन्हें 'कायर' 'डरपोक' कहने लगे हैं। उनमें यह भी सामर्थ्य नहीं दीखती कि अपने समाजकी

पतिव्रताओं की इज्जत की रक्षा करें। तबसे यह तो असम्भव ही है कि वे दूसरोंपर हमला करें।

दूसरे हिन्दु धर्म का सिद्धान्त है कि अपने अपने धर्मपर चलने से मोक्ष प्राप्त होता है। हर एक हिन्दु के हृदय में यह सिद्धान्त पूर्णतया जम गया है इसी से ये लोग परधर्म के लोगों से लड़ने को तैयार नहीं होते और दूसरों को अपने धर्म में लाने की चेष्टा विशेष कर करते हैं।

मुसलमान लोग दूसरों को काफिर समझते हैं और उनकी समझ है कि केवल अपने धर्म से ही मनुष्य स्वर्ग प्राप्त कर सकता है। उनके पवित्र कुरान का सार यह नहीं है। किन्तु अभाग्य से वर्तमान मुसलमान ऐसा ही समझते हैं। यदि ऐसा न होता तो हिन्दुओं के मन्दिर फोड़ने की आवश्यकता ही उनको प्रतीत न होती।

### हिन्दुओं का सहकार का स्वभाव.

आज दिन तक का हिन्दुस्थान के हिन्दुओं का इतिहास देखने से विदित होता है कि हिन्दुओं ने दूसरे धर्म पर कभी भी ऐसा अत्याचार न किया। इतिहास गवाही देता है कि पार्सी, ईसाई आदि अन्य धर्म के लोगों से हिन्दू लोग प्रेम का वर्ताव करते रहे हैं। इतनाही नहीं, बल्कि आज तक मुसलमानों ने जितने मन्दिर तोड़े उनके हिसाब से हिन्दुओं ने किसीभी प्रकार की क्रूरता उनपर नहीं दिखाई। मुसलमानों ने हिन्दुओं के मंदिर फोड़े, उसी तरह मराठों के राजत्व काल में हिन्दू बदला ले सकते थे, परन्तु बदला लेना हिन्दुओं का स्वभाव ही नहीं है। इन्हीं मराठों की सत्ता जब पराकाष्ठा को पहुँची थी, उस समय भी मसजिदों की उन्होंने रक्षा ही की है। वर्तमान समय गिरी हुई दशाका है। और मुगल सल्तनत का नाम, निशान तक मिट गया है तिस पर भी मुसलमान लोग मन्दिर और मूर्तियाँ तोड़ना ही आवश्यक समझते हैं। हिन्दू मुसलमानों के स्वभावों का यह अन्तर ध्यान देने योग्य है।

वास्तव में हिन्दुओं ने आज तक मुसलमानों से बहुत ही सहयोग किया है। इस सम्बन्ध में दो एक बातें नमूने के बतौर कहना अयोग्य न होगा—



( १ ) हिन्दू लोग मुसलमानों के पीर बाबा की पूजा करते हैं । अनेकों हिन्दू ताजिये भी बनाते हैं ।

( २ ) मोहरम में मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं की ही धूमधाम अधिक रहती है । यदि हिन्दू मोहरम में बिल्कुल न शामिल हों तो मोहरम की रौनक जाती रहेगी ।

( ३ ) हिन्दुओं ने अपनी ज्योतिष की पुस्तकों में विद्वान् मुसलमानों का उल्लेख बड़े आदर की " यव-नाचार्य " पदवी से किया है ।

इतने मंदिर तथा इतनी मूर्तियाँ दूटने पर भी हिन्दु का सहकारित्व कायम ही है ।

खिलाफत के लिए, जो केवल मुसलमानों के हित की हलचल थी, हिन्दुओं ने जो त्याग दिखाया, उसके बराबरी का उदाहरण इतिहास में दूसरा नहीं है ।

इस प्रकार हृद दर्जे का सहयोग करने पर भी मुसलमानों ने मूर्ति तोड़ना न छोड़ा । बरन् पुलवर्, देहली, कोहाट आदि स्थानों में उन्होंने वेरहमी से काम लिया । यह सब हाल अखबारों में छप चुका है । अब उसके दुहराने की आवश्यकता नहीं ।

## मुसलमानों का असहयोग ।

जैसे हिन्दू पीरबाबा की पूजा करते हैं या मोहरम में नाचते हैं, वैसे मुसलमान हिन्दू के किसी भी धार्मिक जलसे में शामिल नहीं होते । इन बातों में उनका असहयोग जगत् प्रसिद्ध है । उनके स्वभाव की यह असहिष्णुता परम विलक्षण है ।

हमें बिल्कुल पसंद नहीं है कि हिन्दू लोग मोहरम में नाचें और पीर की पूजा करें । ये बातें सनातन वैदिक धर्म के विरुद्ध हैं । तिसपर भी हम इस बात को लिखते हैं । क्यों कि हम इससे यही मतलब चाहते हैं कि हिन्दुओं में कैसी सहकारिता है और मुसलमानों में असहकारिता । इससे स्पष्टतया यही अनुमान होता है कि मुसलमान अपने धर्म के कट्टर अभिमानी हैं किन्तु हिन्दुओं में अपने धर्म का तीव्र अभिमान नहीं है । आज भी यही दृश्य हम देखते हैं कि मुसलमान जिस प्रकार अपने धर्म के लिए मरने को तैयार हैं वैसे हिन्दू नहीं होते ।

यह भी उतना ही सत्य है कि मुसलमानों के समान तीव्र असहयोग करने का हिन्दुओं का स्वभाव ही नहीं है । हिन्दुओं के इस गुण की कद्र मुसलमानों ने बिल्कुल न की ।

मुसलमानों में मनभेद के विषय में कैसी तीव्र असहिष्णुता है, इसका एक हाल ही में हुआ उदाहरण देखने योग्य है । कुछ समय पूर्व पंजाब में मिर्जा अहमद कादियानी नाम के एक साधु पुरुष हुए थे । आपने पवित्र कुरान शरीफ पर अच्छी टीका लिखी है और उसकी असम्बद्ध कथाओं का संबंध भी ठीक बतलाया है । वास्तव में देखा जाय तो इन मिर्जा साहब ने मुसलमान समाज पर महत् उपकार किये हैं । पंजाब में आपके मत का प्रचार भी अच्छा हो रहा है । इनके एक उपदेशक काबुल गये । उन्हें कुरान शरीफ के नवीन अर्थ का उपदेश करने के अपराध में गिरफ्तार किया । और उन्हें जमीन में आधा गाड़ कर पत्थरों से मारे जाने की सजा भुगतनी पड़ी । इस सत्शील मुसलमान उपदेशक के प्राण इस प्रकार लिये गये । इससे ज्ञात होगा कि मुसलमान भिन्न मतवालों के प्रति कैसे तीव्र असहिष्णु हैं !!

इसीसे यह नहीं कहा जा सकता कि यदि वे हिन्दुओं के विरुद्ध हमला करें तो वह उनके मत के विपरीत है ।

सहनशील हिन्दु और असहिष्णु मुसलमानों में आज कल झगड़े हो रहे हैं । बाहर का थोड़ा कारण भी मुसलमानों की असहिष्णुता को उत्तेजित करता है । और मंदिरों और मूर्तियों पर वे दूट पड़ते हैं । फिर हिन्दुओं ने उनसे कैसा भी प्रेम का बर्ताव क्यों न किया हो, उन्हें उसकी थोड़ी भी पर्वाह नहीं होती । महात्माजी को भी इसका अनुभव हुआ । इसीलिए उन्होंने अशक्त रहते हुए भी २१ दिन का उपवास किया ।

## महात्माजी के उपवास का सच्चा कारण ।

किसी को नए सिलसिले से बताने की आवश्यकता नहीं कि महात्मा गांधीजी संसार के पूजनीय मार्ग दर्शक हैं । ऐसे महापुरुष को २१ दिन का



कठिन उपवास करना क्यों आवश्यक हुआ यह बात उन्हीं के शब्दों में बतलाना आवश्यक है ।

“ मेरे उपवास का कारण मेरी ही गलती है । एक प्रकार से मैंने हिन्दुओं से विश्वास घात किया है । मैंने हिन्दुओं से कहा, ‘ आप लोग मुसलमान भाइयों से मिल जुल कर बर्ताव करें; उनके पवित्र क्षेत्रों की रक्षा के लिए अपना तन, मन, धन अर्पण करिए । ’ आज भी मैं हिन्दुओं से यही कहता हूँ कि आप लोग दूसरों को न मारें, खूद ही आत्मसमर्पण कर झगड़े की जड़ ही नष्ट कर दीजिए । किन्तु देखिए मेरे इस उपदेश का परिणाम क्या हुआ? हिन्दुओं के कितने मन्दिर मुसलमानों ने तोड़े! कितनी स्त्रियों का उन्होंने अपमान किया । कल ही मैंने हकीमजी से कहा कि अभी भी हिन्दु स्त्रियों को मुसलमान गुण्डों का डर बना है । मुसलमान गुण्डों ने जो अत्याचार बालकौपर किया है वह सहना असम्भव है । “ अब मैं किस मुंह से हिन्दुओं से कहूँ कि आप लोग सब कुछ सह लीजिए । ” मैंने हिन्दुओं को विश्वास दिलाया था कि आप मुसलमानों से मोहवात करें किन्तु आज मुझ में वह शक्ति कहाँ कि मैं उसे सिद्ध कर दिखाऊँ ? मेरा कहना मानने को आज कौन तैयार है? मैं अब भी हिन्दुओं को मरने का उपदेश करूँगा । मैं मरकर ही मरने की कुंजी दिखा सकूँगा । ” ( नवजीवनसे )

यह लेख नवजीवन से ही लिया गया है । मौ० महम्मद अली, शौकत अली, हकीम अजमल खाँ आदि बड़े बड़े लोग महात्माजी से विनय करने आये थे कि आप उपवास न कीजिए । उस समय उनसे महात्माजीने जो कहा वह अत्यन्त महत्व का है । महात्माजी के उपवास का सच्चा कारण यह था कि मुसलमानों ने उन्हें निराश कर दिया था । उपरोक्त भाषण से यह बात स्पष्टतया विदित हो जाती है । पिछले वर्षों से महात्माजी हिन्दुओं से कहते रहे हैं कि ‘ हिन्दू लोग मुसलमानों पर प्रेम करेंगे तो वे भी हिन्दूओं से प्रेम करेंगे । ’ किन्तु यह अंदाज गलत सिद्ध हुआ । मुसलमान लोग बिल्कुल ही भूल गये कि खिलाफत आदि बातों में हिन्दुओं ने

किस प्रकार सहायता पहुँचाई । वे हिन्दुओं के मंदिर और स्त्रियों पर अत्याचार करने में जरा भी हिचकिचाए । इससे महात्माजीको पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने २१ दिन अनशन व्रत कर बहुत तीव्र प्रायश्चित्त किया । इस बातसे हिन्दुओं को जो कुछ शिक्षा लेनी हो वे ले सकते हैं

## झगड़े की जड़ ।

मुसलमान हिन्दुओं से पहले न लड़ते थे किन्तु अब लड़ते हैं । सो क्यों ? इसका यथार्थ कारण यह है कि उनकी विचार-शैली में महत् अंतर हो गया है । कई लोग कहते हैं कि इसमें सरकार का भी अंश है । किन्तु हम नहीं समझते कि यह ठीक है । झगड़े की असली जड़ है सर सैय्यद अहमद खाँ साहब की शिक्षा । सर सैय्यद अहमद खाँ अलीगढ़ के मुस्लिम कालेज के संस्थापक एवं प्रसिद्ध मुसलमान नेता थे । आपने सब मुसलमानों को सचेत कर दिया कि “ मुसलमानों को चाहिए कि वे कभी भी हिन्दुओं से हिलमिल कर न रहें । उनको चाहिए कि वे हर एक राष्ट्रिय हक में अपने लिए अलग हक प्राप्त करें । वे राष्ट्रीय सभा में शामिल न हों क्योंकि वह हिन्दुओं की सभा है आदि ” । अलीगढ़ कालेज के लोग जहाँ कहीं जाते हैं वहाँ हिन्दु मुसलमानों के झगड़े होते हैं । निजाम सरकार की रियासत में जब तक अलीगढ़ वालों की पूछ पाछ न थी तब तक वहाँ हिन्दु मुसलमानों में दंगा न होता था । किन्तु पहले के नवाब साहब चले गये । उनके स्थान में नये निजाम साहब तख्तनशीन हुए । इन नये निजाम साहब के राजत्व कालमें रियासतमें अलीगढ़ के मुसलमान डिग्री-धारियों का बोलबाला बेहद बढ़ा । इसी कारण से गुलबर्गा का दंगा हुआ और कई मंदिर नष्ट हुए । कहा जाता है कि उस रियासत में हिन्दुओं की दुर्दशा की इससे भी बड़ी चढ़ी बातें होती हैं ।

उपरोक्त सर सैय्यद अहमद खाँ साहब की सिखावन से ही कई वर्षों तक मुसलमान कांग्रेस से अलग रहे । किन्तु वे जल्द ही जान गये कि यह भारी भूल है और अब फिर कांग्रेस में काम करने लगे । इसके सिवा एक और भेदमूलक कल्पना है ।



## सम्पूर्ण मुसलमानों का संघ ।

कई मुसलमान नेताओं ने एक विचार को चालन दिया है कि संसार के जितने मुसलमान हैं उन सब का एक अभेद्य संघ बनाया जावे । इसके कारण हिन्दुस्थान के मुसलमान समझते हैं कि बाहर देश के मुसलमानों से उनका अधिक निटक सम्बन्ध है और अपने हिन्दू भाईयों से वे अलग रहते हैं। हिन्दु-स्थान के मुसलमानों ने बलुचिस्थान, ईरान, तुर्क-स्थान, अरबस्थान, ईप्ति आदि सब मुसलमान देशों का एक संघ अपनी कल्पना में बना लिया है। वे अपने को इस संघ के अंग मानते हैं। वे समझते हैं कि इन देशों में हमारे स्वतन्त्र राजा हैं, इससे हिन्दुस्थान में भी हिन्दुओं की अपेक्षा इनका 'राज-कीय महत्व अधिक है।' इस प्रकार के विचार इनके हृदय में संचार करते हैं, इससे वे हिन्दुओं से जिन्हें हिन्दुस्थान के बाहर कोई आधार नहीं है, हिलमिल कर रहने को तैयार नहीं हैं।

## खिलाफत ।

खिलाफत की हलचल का सार यही था। सम्पूर्ण मुसलमानों का धर्मगुरु कान्स्टेन्टिनोपल का खलीफा है। ईसाइयों के द्वारा वह न उखाड़ दिया जाय इसी लिये हिन्दी मुसलमान बड़ी तेज हलचल मचा रहे थे। इस हलचल से हिन्दुओं का जरा भी सम्बन्ध न था। तिसपर भी केवल अपने बंधुत्व के नाते को निवाहने के लिए हिन्दुओं ने मुसलमानों को तन, मन, धन से मदद की। किन्तु उभागे खलीफा के दिनों ने ऐसा पल्टा खाया की नव-जवान मुसलमानों ने ही उसे उखाड़ दिया। इस नव-जवान तुर्की संघ ने इस हलचल के समय भारतीय मुसलमानों को पूछा तक नहीं। भारतीय मुसलमानों ने इस प्रश्न पर अपना मत प्रकाशित करने के लिए एक बड़ा लम्बा तार भेजा कि खिलाफत नष्ट न की जावे। किन्तु हिन्दी मुसलमानों के इस मत की नवीन तुर्कसंघ ने क्या इज्जत की सो सारा संसार जानता है। देश के बाहर जिनके मत की यह इज्जत होती है, वे बाहर के स्वतन्त्र देशों से अपना सम्बन्ध जोड़ना

चाहते हैं और हिन्दुओं की सहानुभूति का ठुकराना चाहते हैं। हर एक मनुष्य को विचार करना होगा कि यह बर्ताव कैसा राष्ट्र-हित-विघातक है।

सब ईसाई राष्ट्र मानते हैं कि राजनैतिक क्षेत्र में धर्म का दबाव न होना चाहिए। इस लिए उन लोगों ने अपने धर्म गुरु पोप महोदय को कठ पुतली के सदृश बना दिया है। यूरोप के नवीन-तुर्कों का केमाल पाशा आदिका यही विचार दिखाई देता है। उन्होंने निश्चय कर लिया है कि खिलाफत राजनैतिक क्षेत्र की आफत है। इसी विचार से उन्होंने खलीफा को निकाल दिया है। नवीन तुर्कों को इस बात में अन्य किसी भी देश के मुसलमानों की सलाह लेना आवश्यक प्रतीत न हुआ। इसीसे स्पष्ट होता है कि स्वतन्त्र देश के मुसलमान भारतीय मुसलमानों की कैसी कद्र करते हैं। केमाल पाशा के संघ द्वारा थोड़े दिनों के पूर्व यह घोषणा प्रकाशित हो चुकी है कि "वे लोग यद्यपि महजबसे मुसलमान हैं तथापि उनका संबंध अन्य मुसलमानों से नहीं रहा है। वे यूरोप के साथ संबंध जोड़ने में अपना भला समझते हैं।" इस घोषणा से भारतीय मुसलमान बहुत बोध ले सकते हैं।

वर्तमान समय में अन्य मुसलमानी देश नाम मात्र के स्वतन्त्र हैं। आगे चलकर वे पूर्ण स्वतन्त्र भी हो गये, यही नहीं, बल्कि वे संसार के मुख्य देश भी बन गये; तब भी इसमें भारी संदेह है कि उनकी प्रमुखता से भारतीय मुसलमानों की कहां तक भलाई होगी। आधुनिक राजकाज में धर्म का दबाव नहीं है। राजनैतिक क्षेत्र में धर्म का वही महत्व होता जो पहले था, तो जर्मनी और फ्रान्स सदृश दो ईसाई देशों में ऐसा घनघोर युद्ध कभी भी न हुआ होता। यूरोप के ईसाई देशों में व्यापार की स्पर्धा के कारण द्वेष रूप अग्नि धधक रही है। वह हजरत ईसा मसीह की बाइबिल के उपदेशों से शान्त नहीं होती। यदि भारतवासी मुसलमान यह सोचते हैं कि ऐसी द्वेषाग्नि भिन्न भिन्न मुसलमानी देशों में किसी भी स्पर्धा के कारण न होगी। तो वे भारी भूल कर रहे हैं। यूरोप के ईसाई देश जिस प्रकार संसार के राजनैतिक क्षेत्र में हलचल



कर रहे हैं, इसी प्रकार जब मुसलमानी देश को मौका मिलेगा तब उनमें भी इसी प्रकार का झगडा होना अत्यन्त स्वाभाविक बात है। आज हिन्दुस्थान के बाहरवाले मुसलमानी देश जिस शान्ति का अनुभव कर रहे हैं वह राजकाज-हीनता के कारण है। और इसी लिए उनमें स्पर्धा नहीं है। यह कदापि सम्भव नहीं कि वे देश राजकाजक्षम हो जाने पर उनमें वही शान्ति बनी रहे। सारांश यह कि भारतीय मुसलमान परकीय देशों से कैसा भी सम्बन्ध क्यों न करें, उससे उन्हें उस समय कुछ भी लाभ न होगा जब कि वे देश राजकाज करने में समर्थ हो जावेंगे। चीन और जापान दोनों बौद्ध धर्मी देश हैं। वे भी आज लड रहे हैं। सब ईसाई राष्ट्र भी आपस में लड रहे हैं। इन बातों को देखते हुए हम कैसे अनुमान कर सकते हैं कि जब मुसलमानी देश जागृत होकर राजनैतिक क्षेत्र पर उपस्थित हो जावेंगे तब वे आपस में न लडेंगे। राष्ट्रीय स्वार्थ के आगे धर्मबंधुत्व कम जोर हो जाता है। इतिहास यही शिक्षा देता है। भारतीय मुसलमान यदि इस शिक्षापर चलें, तो भारतवर्ष की भलाई तुरन्त होगी। इसी लिए हमारी भारतीय मुसलमानों से विनय है कि वे महम्मदी विश्वबंधुत्व के अवास्तव फल के लिए हिन्दी राष्ट्रीय हित के प्रत्यक्ष फल को न त्यागें।

### महत्त्व का भ्रम ।

सर सैय्यद अहमद खां साहब के पूर्वोक्त सब वचन असत्य सिद्ध हुए हैं। नवीन तर्कों ने सिद्ध कर दिया है कि महम्मदीय विश्वबंधुत्व का विचार गलत है। धर्म की बंधुता राजनैतिक क्षेत्र में काम-याब नहीं होती। भारतीय मुसलमान इन बातों का विचार करेंगे तो उनपर प्रकट हो जावेगा कि उनका भवितव्य भारत-माता के भवितव्य से निगडित है। इसी एक बात को यदि भारतीय मुसलमान समझ लें तो हिन्दू-मुसलमानों की एकता पल भर में हो जावेगी। किन्तु जब तक वे भारतवर्ष के बाहरवाले देशों से निकट सम्बंध करना चाहेंगे तबतक, हिन्दू कितनेही तम्र क्यों न हों, दोनों में एकता होना असम्भव है।

### अनन्यगतिक हिन्दू ।

हिन्दू मात्र किसी भी बाहर के देश से अपना सम्बन्ध नहीं बता सकता और न वह इस प्रकारका सम्बन्ध बताना चाहता ही है। यदि मुसलमानों की तरह जबरदस्ती से बाहर के देशों से सम्बन्ध बतलाने की हिन्दुओं को इच्छा हुई तो वे ऐसा सम्बन्ध, बौद्ध धर्म के कारण, जापान, चीन तथा तिब्बत से कर सकते हैं। ये देश स्वतन्त्र हैं और इन देशों के बौद्ध निवासी भारत-भूमिको “पवित्र भूमि” भी मानते हैं। परन्तु इस बादरायण सम्बन्ध से क्या लाभ हो सकता है? हिन्दूमात्र जानता है कि इस सम्बन्ध से उसकी राजनैतिक दशा में सुधार होना असम्भव है। तब उचित ही है कि हिन्दू हिन्द-माता को ही अपनी मातृ-भूमि मानते हैं और उसकी सेवा करने के लिए उद्यत हैं।

हिन्ददेश में स्वराज्य प्राप्त करने के लिए देशके सबलोगों में एकता होना अत्यन्त आवश्यक है। इसी बात पर लक्ष्य कर हिन्दू लोग एकदम हर तरह की नरमी स्वीकारकर अतीव स्वार्थत्याग करने को तत्पर हैं। क्यों कि वे खूब समझते हैं कि बाहर के देशों से सम्बन्ध जोड़नेसे कोई भी हित नहीं है।

### एकता की नींव ।

तब यह सिद्ध हुआ कि एकता की सच्ची और मजबूत जड एक ही है। वह यह कि भारतवासी हिन्दू, मुसलमान, पार्सी, ईसाई, यहूदी और अन्य सब धर्मों के लोग अपने को प्रथम “भारतीय” समझे और तदुपरान्त अपने अपने भिन्न धर्म के अनुयायी माने। मुसलमानों की भारी भूल यही ही रही है कि वे अपने को प्रथम “मुसलमान” मानते हैं और बाद भारतीय। वर्तमान तथा आगामी युग में “राष्ट्रीयता” ही एकता का साधन है। यदि यह बात वे भूल जावेंगे तो राष्ट्रीय जीवनसंग्राममें वे अक्षम सिद्ध होंगे।

### धर्म का प्रसार ।

ये झगडे धर्म के विश्वास के कारण नहीं होते। धर्मके प्रचारसे इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। आज-



कल मुसलमानों के सदृश ही, किं बहुना, उनसे अधिक मान में ईसाई लोग धर्म का प्रचार कर रहे हैं। किन्तु ऐसा कहीं भी नहीं हुआ कि ईसाईयोंने हिन्दुओं के मन्दिर तोड़े वा अन्य कोई अत्याचार किये हों। हिन्दुओं ने कभी भी किसी भी धर्म के मन्दिर नहीं तोड़े। ईसाई, बौद्ध जैन आदि अन्यान्य धर्म के लोग हिन्दुस्थान में हैं। किन्तु उनके रहते उनका हिन्दुओं से कभी झगडा नहीं हुआ। पार्सी लोगों की संख्या अल्प रहते भी उनपर हिन्दू ईसाई जैन और बौद्ध लोगों ने कभी भी धावा नहीं किया।

मुसलमान लोग अवश्यही हिन्दुपर, हिन्दुओं के मन्दिर पर, पारसियों पर और अन्य धर्म के अनुयायियों पर धावा करते रहते हैं। इसका यह कारण नहीं कि औरों की अपेक्षा उनकी धर्म-श्रद्धा श्रेष्ठ है किन्तु यह कि उनकी विचारपद्धति ही में भ्रम है। इस भ्रम को हम पहले बता चुके हैं। हर एक व्यक्ति को स्वधर्म का प्रचार करने का हक है। किन्तु यह काम करते समय शिष्टता का अतिक्रम न होने देना चाहिए। ईसाई पादरियों के सदृश यदि मुसलमानों में व्यवस्था (discipline) हो तो धर्म के कारण झगडे कभी भी न होंगे। मुसलमानों की विचार प्रणाली की यह भूल जब तक दुरुस्त न होगी-मिट न जावेगी-तब तक अस्म्भव है कि अन्य धर्मावलम्बियों से मुसलमानों की बने।

## स्वधर्म में वापिस लेने का अधिकार

वा शुद्धि ।

मुसलमानों का कथन है कि हिन्दु शुद्धियां न करें, इससे यह मतलब है कि मुसलमान, ईसाई आदि धर्मों में गये हुआ को हिन्दू लोग अपने धर्म में वापिस न लें। किन्तु उन्हें इस प्रकार कहने का अधिकार ही नहीं है। अन्य किसी को भी यह कहने का अधिकार नहीं है। यदि हम कहें कि मुसलमान और ईसाई अन्य धर्म के लोगों को भ्रष्ट न करें तो क्या वे मानेंगे ! कदापि नहीं। तब वे किस बुनयाद पर हिन्दुओं को शुद्धि के हक से वंचित रखना चाहते हैं? श्रीमत् शंकराचार्य जीने जैन, बौद्ध आदि पन्थों में गये हुए हिन्दुओं को शुद्ध कर फिर

हिन्दू धर्म में लेलिया और इस प्रकार हिन्दू धर्म का संगठन किया। इतिहास कहता है कि अन्य आचार्यों ने भी यही किया। हर एक धर्म को हक है कि पतित एवं भ्रम से दूसरे धर्म में गये हुआ को वापिस ले लें। इस हक का उपयोग मौका पडने पर करना वा न करना उस धर्म के लोगों की इच्छा पर अवलम्बित है। किन्तु यह कोई नहीं कह सकता कि इस अधिकार का उपयोग न करो। हिन्दू दूसरे धर्म के लोगों से यह नहीं कहते अन्य धर्म के लोग भी हिन्दुओं से न कहें। अच्छा यही है कि इस बात में हर एक धर्म स्वतन्त्र रहे।

## गौ-हत्या

मुसलमान कहते हैं कि गौहत्या करने का उन्हें हक है। और इस बात में हिन्दू लोग बिलकुल दखल न दें। उचित यही है कि जो बात निश्चित रूप से धर्म की है उस के लिए अन्य धर्मी लोग जिद न करें। इसी लिए यदि कुरान शरीफ की आज्ञा ही हो कि बकरिद के समय वा धर्म की किसी अन्य बात के समय गौ का वध करना अत्यन्त आवश्यक है तो अच्छी बात यही होगी हिन्दू जिद न करें और मुसलमानों के धर्म-कार्य में प्रतिबन्ध न करें।

किन्तु यथार्थ में देखें तो विदित होगा कि कुरान शरीफ में कहीं भी नहीं लिखा कि बकरिद के समय गौ का बलिदान अवश्य ही होवे। पोछे जब काबुल के अमीर साहब भारत में पधारे थे तब उन्होंने स्वयं अपने श्रीमुखसे मुसलमानों को जता दिया था कि, "गौ-हत्या कर हिन्दुओं के दिल न दुखाओ।" जब तक वे भारत में रहें, तब तक मुसलमानों ने तेवहार में भी गौ-हत्या न की। दूसरे, अरबस्थान ईरान, इजिप्त, तुर्कस्थान, अफगानिस्थान आदि मुसलमान देशों में भी मुसलमानों के तेवहारों में गौका बलिदान अवश्यमेव होता है यह नहीं। तब इस भारत-भूमि में जहाँ गाय, बैल अत्यन्त उपयोगी जानवर हैं- हिन्दु और मुसलमान दोनों के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं-धर्म की आवश्यक आज्ञा न रहते भी, वे गौहत्या करें और यह कहें कि यह हमारा हक है कैसा भारी आश्चर्य है ?



## बाजा !

मस्जिद के सामने बाजा बजाया जावे या नहीं यह प्रश्न आजकल बड़ा वादग्रस्त हो गया है। जरासी बात भारी महत्त्वकी सिद्ध होना हिन्दुस्थान में ही संभव है, अन्य देशों में नहीं। पाठक याद रखें कि भारतवासियों के सम्मुख कोई बड़े भारी महत्त्व की बात न रहने का ही यह फल है। स्वराज मिल जाने से जब राजकाज की जटिल समस्याओं के हल करने में भारतवासियों की बुद्धिभिड जावेगी तब ऐसी क्षुद्र बातों की ओर कोई देखेगा भी नहीं।

जब कि हिन्दुओं के मंदिरों के सामने से मुसलमानों के जुलूस शोर गुल और बाजों के साथ निकलते हैं तो हिन्दुओं के वा अन्य धर्म के लोगों के जुलूस मसजिद के सामने से बाजों के साथ क्यों न निकलें? कुरान शरीफ में एक भी वाक्य नहीं है जिससे यह सिद्ध हो सके कि 'मसजिद के पास वाले रास्ते पर बाजे न बजाए जाय।' तब फिर हमारे मुसलमान भाई ऐसी फजूल जिद क्यों करते हैं जो उनकी धर्म-पुस्तक से सिद्ध नहीं हो सकती।

हमारे मुसलमान भाई यदि यह कहते हों कि 'प्रार्थना के समय मन को एकाग्र कर मानस-पूजा वा उपासना करते हैं, इससे बाजा बजाकर हल्ला न करना चाहिए।' तो यह कथन युक्तिसिद्ध होगा। किन्तु जब प्रार्थना का समय नहीं है तब भी मसजिद के पास बाजा कोई भी कभी न बजावे। वे ही सोचें कि क्या यह कथन युक्तिसिद्ध है?

## थोड़ा अधिक विचार करो ।

हमारे मुसलमान भाईयों को चाहिए कि वे कुछ अधिक विचार करें। उन्हें यह सोचना अत्यन्त आवश्यक है कि यदि कोई मंदिर तोड़ा जावे और मूर्तियां भंग कर दी जावें तो उससे हिन्दू के हृदय में कैसी गहरी चोट लगेगी। वे यह भी देखें कि उन्होंने आज तक कितनी मूर्तियां और कितने मंदिर तोड़े हैं, किन्तु इसका बदला लेने के लिए क्या हिन्दुओं ने कभी इस प्रकार का अत्याचार किया है। यदि धर्म में 'सत्य' नामकी कोई विशेष महत्त्वकी ध्वात हो, तो उपरोक्त बात का अंदाज लगाना मुसल-

मान भाईयों के लिए अतीव आवश्यक है। इससे जो बात सिद्ध होगी उसे स्वीकृत करने के लिए भी उन्हें तैयार रहना चाहिए।

## एक ही नांव के यात्री

हिन्दू और मुसलमान एक ही नांव के यात्री हैं। इस नांव में परतन्त्रता रूप छेद पड़ गया है। दग्धता रूप खारा पानी नांव के भीतर आ रहा है। थोड़ी ही देर में हिन्दू, मुसलमान तथा इसी नांव के अन्य यात्री, उचित उपाय न करें तो सब के सब डूब कर काल के गाल में समा जावेंगे। इस समय दोनों को उचित नहीं कि वे क्षुद्र बात का झगडा बढ़ावें। दोनों का पहला कर्तव्य यही है कि परतन्त्रता रूप छेद स्वतन्त्रता से बन्द कर दिया जाय। यह न कर क्षुद्र बात के लिए हट से झगडा करना दोनों की भूल है। इससे सब लोगों को, झगडने तथा एक दूसरेका सिर धुनने के पूर्व, विचार करना चाहिए कि हमारी राजनैतिक, आर्थिक और औद्योगिक स्थिति कैसी है। यदि इन बातों पर वे विचार करें, तो उनका दिल झगडों के लिए कभी भी प्रवृत्त न होगा। इससे जो नेता चाहते हैं कि ये झगडे मिट जाय, वे इन सब को कोई राजनैतिक काम दें।

## हिंदुओं के दोष

### (१) जाति भत्सर

हिन्दुओं का दोष है जाति भत्सर। हिन्दू समाज के इस जातिद्वेष के कारण वह निर्बल हो गया है। ब्राह्मण-अब्राह्मण, अन्त्यजों की अछूत आदि इतनी बहुत बातें हिन्दू समाज में हैं, कि उनके कारण हिन्दुओं की संघ शक्ति में हानि हो रही है। सब प्रान्तों के हिन्दुओं को खूब समझ लेना आवश्यक है कि यदि उनमें संघशक्ति होती तो इतर जनों के हमले उनपर कदापि न हुए होते।

इस समय हिन्दुस्थान के सब मुसलमानों में अभेद्य एकता है। इसी लिए वे लोग अपने निज के हित के लिए कोई भी स्वार्थत्याग करने को तैयार हैं। उन्हें यदि केवल आभास ही हो जाय कि हमारा अपमान हुआ है, तो वे सब एक हो जाते हैं। और



सत्य असत्य का विचार न कर, जिसे प्रतिपक्षी समझते हैं, उसपर एकता से हमला करते हैं। इसमें वे अविचार के दोष से दोषी हो सकते हैं, पर उन में एकता का बड़ा भारी गुण निःसंदेह है।

अब हिन्दुओं की ओर देखिए। यदि ब्राह्मण कहें कि “सब को शिक्षा देनी चाहिए” तो अब्राह्मण कहेंगे “न देनी चाहिए।” और अन्त्यज कोई तिसरी ही बात निकालेंगे। हिन्दुओं का समाज इस प्रकार व्यवस्थाहीन और परस्पर विरोधी है। यदि हिन्दू इस बात में जल्द ही सुधार नहीं करते तो उनके कष्ट चूक नहीं सकते। कुछ भी क्यों न करना पड़े किन्तु हिन्दुओं को अंतःसंगठन करने की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि वे जीवित रहना चाहते हैं तो उन्हें अपनी संघशक्ति बढ़ानी ही होगी। इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं है।

सैकड़ों स्थानों में मुसलमानों ने हिन्दूपर, मंदिरों पर तथा मूर्तियों पर हमले किये। पिछले कुछ दिनों के दंगों का हाल देखने से पता चलता है कि दो एक स्थानों को छोड़ अन्य सब स्थानों में हिन्दुओं ने ही मार खाया है और बहुतेरे स्थानों में मंदिरों की हतक इज्जत हुई। हिन्दुओं के अव्यवस्थित शैथिल्य के कारण मुसलमानों को, जरा भी नरमी से पेश आकर हिन्दुओं से मित्रता करने की आवश्यकता प्रतीत न हुई। सारांश, मालूम होता है हिन्दुओं की आपस की फूट और द्वेष के कारण और कुछ बातों में हिन्दुओं के शारीरिक निर्बलता के कारण मुसलमानों को हिन्दुओं पर दूट पड़ना सहज हो गया है। इस पर विचार करने से पाठक गण समझ सकते हैं कि ये झगड़े मुसलमानों के अत्याचारी स्वभाव के कारण नहीं होते किन्तु हिन्दुओं की आपसी फूट और कमजोरी के कारण होते हैं।

इसीलिए यदि हिन्दू मात्र की यही इच्छा है कि ये झगड़े रुक जावें, और फिर न होवें, तो उन्हें अपने समाज की अन्तस्थ संघटना उत्तम प्रकार से करनी चाहिए, और अपना शारीरिक बल भी बढ़ाना चाहिए। जब तक यह नहीं होता तब तक हिन्दुओं को दूसरों की दया का आश्रय लेना होगा। और इसके लिए वे दूसरे को दोष नहीं देख सकते।

यदि हिन्दु संगठन कर अपना शारीरिक बल बढ़ावें तो उससे केवल हिन्दुओं का ही लाभ न होगा, मुसलमानों को भी होगा। क्यों कि हिन्दुओं का दृढ संगठन होने पर और उनमें पूर्ण एकता हो जाने पर मुसलमान खुद ही हमले न करेंगे। उन्हें मालूम हो जावेगा कि हिन्दु मित्रता के लिए योग्य हैं। सब लोगों को विचार करना चाहिए कि हिन्दुओं का दृढ संगठन हो जाने से बड़ी भारी शान्ति स्थापित हो सकती है।

इस विचार से पाठकों को पता लगा होगा कि ये झगड़े न तो सरकार खड़े करती है और नाही मुसलमान झगड़े करते हैं, झगड़ों की संपूर्ण जड़ हिन्दुओं की असंघटना में और कमजोरी में है। जब तक हिन्दु लोग अपने जातिविशिष्ट छोटेछोटे फिरकों में विभक्त रहेंगे और अपनी संघटना नहीं करेंगे, तब तक किसी भी सूरतसे झगड़े कम नहीं होंगे। यह निश्चित बात है। इसलिये कितने भी पोलीस शहरों में खड़े किये गये तो झगड़े कम नहीं होंगे।

इन झगड़ों में मनुष्यों का हाथ नहीं है, परमात्मा की प्रेरणासे ही ये झगड़े हो रहे हैं और बढ़ रहे हैं। कई शताब्दियों से हिन्दु जाति सुप्त अवस्थामें पड़ी है, न तो यह जाती अपनी शक्तिको जानती है और न अपनी शक्तिको बर्त सकती है। इस आर्य जाती को परमेश्वर अब सुप्त अवस्थामें रखना नहीं चाहता। इसलिये इसकी जागृति के लिये परमेश्वर ने ये झगड़े भेज दिये हैं। हमारा विश्वास है कि ये झगड़े हिन्दु जाती को उठाने विना शांत नहीं होंगे। जब तक हिन्दु अपना उत्तम संगठन नहीं करेंगे तब तक ये झगड़े बराबर होते रहेंगे।

कितनी भी ऐक्य परिषदें बनाइये, वह नाकाम-याव ही सिद्ध होगी, जब तक हिन्दुओं के आपस के झगड़े नहीं मिटते और हिन्दू अपना उत्तम संगठन नहीं करते तब तक अन्य संपूर्ण प्रयत्न व्यर्थ ही हैं। यह कारण-पाठक देखें और इस दृष्टि से सुधार करें। जितना इस दिशा से सुधार होगा उतनी शान्ति स्थापित होगी, शान्तिका यही एकमात्र उपाय है।



# गोमेध ।

( गतांसे आगे )

संपूर्ण वैदिक वाङ्मयमें गोमेधके केवल दोही सूक्त हैं और वे अथर्व वेदमें हैं । इन दो सूक्तों में से प्रथम सूक्तका अनुवाद उसके स्पष्टीकरण के साथ इससे पूर्व लेखमें प्रकाशित किया गया है । अब एक ही सूक्त रहता है उसका अनुवाद इस लेखमें देते हैं । जिस प्रकार पूर्व सूक्तमें गोवध, गोमांस-भक्षण अथवा गौके अवयवोंके हवनका कोई संबंध नहीं है, उसी प्रकार पाठक देखेंगे कि गोमेधके इस द्वितीय सूक्तमें भी मांस हवन का कोई संबंध नहीं है । गोमेधके दो सूक्तोंमें यदि कोई बात कही है तो वह यही है कि उत्तम दूध देनेवाली गौ तथा उत्तम बैल सुयोग्य विद्वान् ब्राह्मणको दान दी जावे । इस प्रकारके दानसे दाताको स्वर्ग प्राप्त होता है, गौको भी स्वर्ग मिलता है और सबको दुग्धादि पदार्थ विपुल प्राप्त होते हैं ।

इन दो सूक्तोंमें एक भी ऐसा वचन नहीं है कि जो गोमेधमें मांस हवन की संभावना सिद्ध कर सके । ऐसे उच्च शिक्षा देनेवाले सूक्तोंपर भी जब मांस पक्षी लोग अपना मांस का पक्ष मठ देनेका साहस करते हैं तब मन आश्चर्य से चकित हो जाता है और मनमें प्रश्न उत्पन्न होता है कि इतना अर्थका अनर्थ किस कार्य के लिये किया जा रहा है ? ये लोग गोदानवाचक सूक्तोंपर गोवध का अर्थ क्यों मठा देते हैं ? ऐसा अनर्थ करनेसे इनको कौनसा लाभ साध्य करना है ? दुराग्रह बढानेके सिवा और कुछ भी दूसरा इनके पल्ले पडना नहीं है । शोक है कि विद्वान् हो कर भी मंत्रोंका सरल अर्थ न देखकर मनमानी खींचातानी करते हैं । पूर्वापर संबंध देखनेसे मंत्रोंका अर्थ स्वयं खुल जाता है, इस बात की सचाई अब इस द्वितीय सूक्तमें पाठक देखें—

३

गोमेध का द्वितीय सूक्त ।

गौको नमन ।

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः ।

बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाभ्ये ते नमः ॥१॥

अथर्व. १०।१०

“ हे ( अह्ये ) हनन करने अयोग्य गौ ! जन्मते समय तुझे नमस्कार करता हूं, उत्पन्न होने के बाद भी तुझे नमस्कार करता हूं, तेरे संपूर्ण अवयवों और रूपों के लिये, यहां तक की जो तेरे बाल और खुर हैं, उन सबको मैं नमन करता हूं । ”

गोमेधके इस द्वितीय सूक्तका यह पहिला ही मंत्र है । इस में गौका “ अह्ये ” नाम आया है, इसका अर्थ “ अ-वध्य ” है । अवध्य गौ है, यह प्रथम मंत्रमें ही उपदेश है । गौ छोटी हो, या बड़ी हो, वह नमस्कार करने योग्य, सत्कार करने योग्य है यही यहां बताया है । गौका बछड़ा छोटा हो, अभी जन्मा हो अथवा कई महिनोंका हो, उसका सत्कार ही करना चाहिये । किसी प्रकार भी कठोरताका या क्रूरता का व्यवहार छोटी या बड़ी गौके साथ करना नहीं चाहिये । सब ही अवस्थाओंमें गौ सत्कार करने योग्य है । यह इस प्रथम मंत्रका तात्पर्य है ।

प्रथम मंत्रमें गौका अवध्यत्व और सत्कार योग्यत्व कहके पश्चात् द्वितीय मंत्रमें कहते हैं कि गौका दान-लेने का अधिकारी कौन है, देखिये वह द्वितीय मंत्र—

गौदान लेनेका अधिकारी ।

विद्या और आचार की योग्यता रखनेवाला ज्ञानी सत्पुरुष ही गौका दान लेवे, इस विषयमें इस द्वितीय मंत्र की शिक्षा विचार करने योग्य है—



यो विद्यात्सप्त प्रवतः सप्त विद्यात्परावतः ।

शिरो यज्ञस्य यो विद्यात् स वशां प्रतिगृहीयात् ॥

“ ( यः सप्त प्रवतः विद्यात् ) जो सात प्रवाह जानता है और जो ( सप्त परावतः विद्यात् ) सात अंतर्गो को जानता है तथा जो यज्ञका सिर जानता है वही ज्ञानी ( वशां प्रतिगृहीयात् ) गौका दान लेवे । ” अर्थात् जो यह ज्ञान नहीं रखता वह गौका दान लेनेका अधिकारी नहीं है ।

बृहदारण्यक उपनिषद् ( अ. ३।१ ) में कथा है कि राजा जनकने सुवर्णभूषित करके हजार गौओं का दान करना आरंभ किया । ब्राह्मण समुदाय इकट्ठा होनेके बाद उसने कहा जो ब्रह्मिष्ठ ब्राह्मण हो वह इन गौओं का दान लेवे—

ब्राह्मणा भगवन्तो यो वो ब्रह्मिष्ठः स

पता गा उदजतामिति ।

बृ० ३।१।२

“ हे ब्राह्मणों ! आपके अंदर जो ब्रह्मनिष्ठ हो वह ये सब गौवें ले जावे । ” वहां जमा हुए ब्राह्मणोंमें से कोई आगे नहीं हुए । इतनेमें याज्ञवल्क्य महामुनि उठे और उन्होंने अपने शिष्यको गौवें लेनेकी आज्ञा की । इत्यादि कथा बृहदारण्यक उपनिषदमें है । यह कथा इस प्रसंगमें देखने योग्य है । इस कथासे भी ज्ञात होता है कि ब्रह्मज्ञानी विद्वान ही गौका दान लेनेका अधिकारी है । साधारण मनुष्य गौका दान लेनेका अधिकारी नहीं है । इस मंत्रमें ब्रह्मनिष्ठके तीन ज्ञानोंका वर्णन किया है, उनका स्वरूप अब बताना चाहिये—

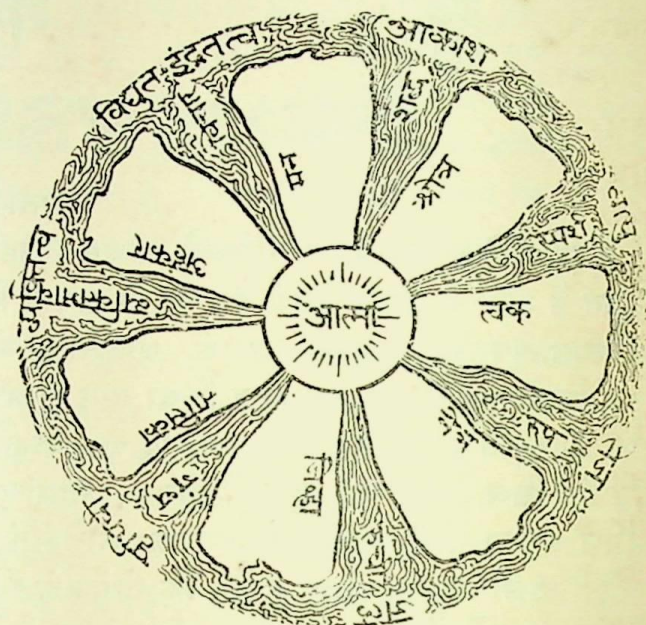
१ सात प्रवाहोंका ज्ञान

२ सात अंतर्गोका ज्ञान

३ यज्ञके सिर का ज्ञान

ये तीन ज्ञान जो यथावन् जानता है वह गौका दान लेनेका अधिकारी है । आत्मासे सात प्रवाह चलते हैं जो सप्त इंद्रियोंके नामसे प्रसिद्ध हैं— १ बुद्धि, २ मन, ३ जिह्वा वाणी, ४ नेत्र, ५ कर्ण, ६ नासिका, ७ चर्म ये सात नदियां आत्माके अमृतपूर्ण स्रोतसे चल रही हैं । इनके सात क्षेत्र हैं जिनमें जाकर ये अपने आपको कृतकार्य होती हैं । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पांच विषयोंके क्षेत्रोंमें पांच नदियां

जाती हैं और ज्ञान, मनन, अहंकारादि क्षेत्रोंमें शेष दो नदियां जाती हैं । इस प्रकार जाग्रतीमें आत्मा की



शक्ति लेकर ये नदियां अथवा इनके प्रवाह बाहर की दिशासे चलते हैं । सुषुप्तिमें येही प्रवाह उलटी दिशासे अंतर्मुख होकर चलने लगते हैं, जब सब प्रवाह उलटे अंदरमें जाकर लीन होते हैं तभी गह निद्रा लगती है । इस प्रकार जाग्रतीमें ये सात प्रवाह आत्मासे बाहर बहिर्मुख होकर चलते हैं और सुषुप्तिमें सब प्रवाह अंतर्मुख होकर चलते हैं, यह सात प्रवाहों का ठीक ठीक ज्ञान जिसको हुआ है और सातों प्रवाहोंपर जिसने अपना प्रभुत्व जमाया है अर्थात् सातों प्रवाहोंको अपनी इच्छासे अंतर्मुख या बहिर्मुख जो कर सकता है, वह सात प्रवाहोंको ठीक प्रकार जान सकता है ।

आत्मासे लेकर विषयक्षेत्र तक जो अंतर है उस का नाम है “ परावत् ” । आत्मामें अंतर का अभाव होता है, परंतु जिस समय जाग्रतीमें ये प्रवाह बहिर्मुख होकर कार्य क्षेत्रमें जाते हैं उस समय इनको अंतर काटना पड़ता है । आत्मासे दर्शन शक्ति चलती है और रूपके क्षेत्रमें जाकर अपना कार्य करती है । आत्मा और रूपका क्षेत्र इनमें जो अंतर है उसका नाम “ परावत् ” है । ये सात अंतर हैं । प्रत्येक नदीकी लंबाई इस अंतर से कही जाती है । जो इस अंतर को ठीक प्रकार जानता है,



अर्थात् आत्मासे उक्त शक्तिरूपी नदियां कैसी चलती हैं और वह संपूर्ण नदियां अपने अपने विषयों के कार्यभूमिमें कितनी दूरीपर जाकर कैसी कार्य करती हैं, इसका ज्ञान जो रखता है, इस अंतर की कल्पना जिसे उत्तम रीतिसे हो गई है, वही ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी गौका दान लेनेका अधिकारी है । अन्य साधारण मनुष्य गौका दान न लेवे । देनेवाला भी ऐसे ही ब्रह्मिष्ठ मनुष्यको गो दान देवे ।

तीसरा ज्ञान “यज्ञके सिरको जानना” है । “पुरुषो वाव यज्ञः ।” (छां० उ. ३।१६।१) मनुष्य ही यज्ञ है, वेद और उपनिषदों में यज्ञका वर्णन इसी प्रकार आता है । इसमें सिर अर्थात् प्रधान विभाग और अन्य गौण साधारण विभाग ये दो विभाग हैं । प्राण, मन, बुद्धि, आत्मा यह श्रेष्ठ, प्रधान या सिर स्थानीय विभाग है, और देह इन्द्रिय आदि स्थूल विभाग अर्थात् साधारण विभाग है । इसको सूक्ष्म और स्थूल, अमूर्त और मूर्त, प्राण और रयि, सिर और धड इत्यादि अनेक नाम अध्यात्म शास्त्रमें हैं । इन नामोंका भेद होनेपर भी वक्तव्य एकही है ॥

जो ज्ञानी पुरुष इस मानव शरीरमें चलनेवाले शातसांवत्सरिक यज्ञके सबसे मुख्य सिरोभाग को ठीक ठीक जानता है, अर्थात् जिसे आत्मज्ञान हुआ है वही गौका दान लेवे ॥ किसी दूसरेको गौदान लेनेका अधिकार नहीं है ॥ यही बात अन्य प्रकार निम्न लिखित मंत्रमें कही है—

वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः । शिरो  
यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥ ३ ॥

“मैं सात प्रवाहों को जानता हूँ, मैं सात अंतरोंको जानता हूँ और यज्ञके सिरका भी ज्ञान मुझे है, इतना ही नहीं प्रत्युत (अस्यां) इस गौके अंदर तेजस्वी सोम शक्ति रहती है यह भी मैं जानता हूँ ।” जो इतना ज्ञान रखता है वह गौका दान लेवे । जिसको इतना ज्ञान अपने अंदर रहनेका आत्म-विश्वास है वह गौका दान लेवे । किसी साधारण मनुष्यको गौ दान लेनेका अधिकार नहीं है ।

गोमेध सूक्त के ये तीन मंत्र पाठक देखेंगे तो उनको निश्चय हो जायगा कि गोमेधमें “गौका दान” है न कि गोवध । गोमांस हवन का गोमेधके साथ संबंध जोड़नेवालों का पक्ष इस सूक्त ने ऐसा काट दिया है कि वे किसी भी रीतिसे अपना पक्ष अब सिद्ध ही नहीं कर सकते । अस्तु । इस ढंग से गौ-दान लेनेवाले की योग्यता वर्णन करके अब चतुर्थ मंत्रसे गौके महत्त्वका वर्णन होता है, वह अब देखिये—

## गौका महत्त्व ॥

यया द्यौर्यथा पृथिवी ययापो गुपिता इमाः ।

वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥ ४ ॥

“जिसने द्यौ, पृथिवी और (आपः) इन जलोंका (गुपिताः) संरक्षण किया है उस सहस्र धाराओं से दूध देनेवाली वशा गौ को हम प्रार्थना पूर्वक इधर बुलाते हैं ।”

यहां गुप्त संकेतसे द्यूलोक, अंतरिक्ष लोक और पृथिवी लोकों का धारणपोषण करनेवाला परमात्माही गौ स्वरूपमें हमारे पास आता है और अपना अमृत रस हमें देता है, ऐसा वर्णन किया है । इसलिये गौको देख कर, यही अमृतरस देनेवाला परमात्माका रूप है ऐसा मानकर, उसका सत्कार करना चाहिये । पाठक इससे जान सकते हैं कि गौके विषयमें कितना आदरभाव मनमें धारण करनेका उपदेश वेद कर रहा है । और देखिये—

शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो  
अधिपृष्ठे अस्याः । ये देवास्तस्यां प्राणन्ति  
ते वशां विदुरेकधा ॥ ७ ॥

“सौ बर्तन, सौ दूध निचोड़नेवाले, सौ गोपाल इसके पीठ पर हैं । जो देव (अस्यां प्राणन्ति) इस गौके अंदर जीवन धारण करते हैं वेही (एकधा वशां विदुः) अद्वितीय रीतिसे गौको जानते हैं ।

इस मंत्रमें राजाके ठाठ के समान गौके सम्मान का ठाठ वर्णन किया है । इस गौके पीछे दूधके लिये सौ बर्तन लेकर मनुष्य सम्मानसे चलते हैं, दूध दोहनेवाले सौ मनुष्य इसके साथ आदर से रहते हैं और इसकी रक्षा करनेके लिये सौ गोपाल इसके



पीछे खड़े रहते हैं। यह गोमेधमें “गौकी सवारी का वर्णन” पाठक देखें और अनुमान करें कि गोमेधमें कितने सत्कारके साथ गौकी पूजा होती है। यदि कोई गौघातक गौका घात करने की इच्छासे वहां जायगा तो पूर्वोक्त तीनसौ रक्षकों की लाठियों की मारसे वह जीवित बचही नहीं सकता। वैदिक धर्मी आर्य इतनी गौरक्षा करते थे। वे मानते थे कि इस गौमाताके शरीरमें अनेक देव हैं जो वहां जीवनरस की रक्षा करते हैं ऐसी देवतामयी गौका वध वैदिक समय में होना सर्वथा असंभव है। यह मंत्र कहता है कि “गौका महत्त्व असंदिग्ध रीतिसे वेही जानते हैं कि जो गोदुग्धसे अपनी पुष्टि करते हैं।” यह सर्वथा सत्य है। आज कल गौका महत्त्व भारतीय लोग इसलिये नहीं जानते, क्योंकि वे गौके दूधसे अपने आपको पुष्ट नहीं करते, प्रत्युत गौके शत्रुरूपी भैंस के दूधसे अपने आपको पुष्ट करते हैं।

“गौरक्षा” का सच्चा शत्रु कसाई नहीं है, वह शत्रु निःसंदेह भैंस है। भैंसके दूधको पीने-वाले गाय के दूधके महत्त्वको कैसे जान सकते हैं? गोदुग्धसे जो आरोग्य और जो मेधावृद्धि हांती है वह कभी भैंसके दूधसे नहीं हो सकती। इसलिये गौके दूधका ही पान करना चाहिये। वेदका यही आदेश है। पाठक इसे स्मरण रखें। और देखिये—

यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका ।

वशा पर्जन्य पत्नी देवाँ अप्येति ब्रह्मणा ॥ ६ ॥

“(वशा) गौ (पर्जन्य-पत्नी) पर्जन्यसे उत्पन्न होनेवाले घास से पालित होती है, यह गौ (यज्ञ-पदी) यज्ञरूपी पांवसे युक्त, (इरा-क्षीरा) दुग्धरूपी अन्न देनेवाली, (स्वधा-प्राणा) अपनी धारण शक्ति युक्त प्राणवाली, (मही-लुका) भूमिको प्रकाशित करनेवाली है, यह (ब्रह्मणा) अपने अन्न से देवोंके पास जाती है।”

इस मंत्रके शब्द गौका महत्त्व विलक्षण उच्चतम भावके साथ बता रहे हैं, इसलिये इनका अधिक मनन करना चाहिये—

१ “पर्जन्य पत्नी वशा” = पर्जन्यसे पालित होने-वाली गौ है। अर्थात् वृष्टिसे घास उत्पन्न होता है,

झरनों में जल बहता है, यह घास यह गौ खाती है, यह पानी पीती है और पुष्ट होती है। यहां इस शब्द द्वारा सूचित किया है कि गौकी पालना जंगलके घाससे ही होनी चाहिये। मनुष्यनिर्मित कृत्रिम अन्नसे, अर्थात् अग्निपर पका कर बनाये अन्नसे नहीं होनी चाहिये। गौके दूधसे अधिक लाभ प्राप्त करना हो तो गौको चावल, रोटी आदि पका अन्न नहीं खिलाना चाहिये, प्रत्युत हरा घास ही खिलाना चाहिये। रोटी आदि पका अन्न गौको अधिक खिलानेसे तथा धान्य भी अधिक खिलानेसे गौके गोबर को बड़ी बढ़बू आती है। इसी प्रकार गौका दूध भी बिगड़ता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि धान्य और रोटी आदि पका हुआ अन्न खाने वाली गौके दूध की अपेक्षा घास खाने वाली गौका दूध अधिक गुणकारी है। पाठक इस बात का स्मरण रखें।

२ “इरा-क्षीरा” = दुग्धरूपी अन्न देनेवाली। जो लोग गोमांस खानेकी प्रथा वैदिक कालमें थी ऐसा मानते हैं, उनको यह शब्द बड़ा मनन करने योग्य है। गौसे जो अन्न मिलना है वह केवल दूध ही है और दूसरा नहीं है। जो लोग गौसे दूधके अतिरिक्त मांसादि पदार्थ भोजन के लिये लेते हैं वे वेदके विरुद्ध आचरण करते हैं। यदि वेदको गोमांसका भोजन अभीष्ट होता, तो गौवाचक शब्दों में “इरा-मांसा” ऐसे शब्द किसी स्थानपर आ जाते। परंतु ऐसा एक भी शब्द नहीं है जिससे गोमांस भोजन सिद्ध हो सके। यह शब्द तो दूध रूपी अन्न ही गौसे प्राप्त करना चाहिये, यह वैदिक मर्यादा बता रहा है। इसलिये इस शब्दने गोमांसका पक्ष तो जड़के साथही नष्ट हुआ है। गौ जो अन्न देती है वह केवल दूध ही है और दूधसे भिन्न कोई अन्न गौके शरीरसे लेना नहीं है। पाठक इस शब्द का खूब मनन करें।

३ “यज्ञपदी” = यज्ञरूपी पांववाली। गौके पांव यज्ञ ही हैं अर्थात् यह गौ यज्ञ भूमिमें, पवित्र स्थानमें भ्रमण करती है। गौ किस स्थान पर भ्रमण करे, इसका आदेश इस शब्द से ज्ञात हो सकता है। जहां लोक शौच करते हैं, मैला फेंकते हैं, ऐसे अमंगल स्थानों में गौको घुमाना नहीं चाहिये। परंतु



जहां यज्ञ होते हैं, ऐसी पवित्र भूमिमें कि जहां शुद्ध घास और शुद्ध पानी मिले, ऐसी पवित्र भूमिमें ही गौ घूमनी चाहिये । यह आदेश इसलिये कहा है कि यदि गौ अशुद्ध स्थान का घास खावे और अशुद्ध पानी पीवे तो उसका दूध रोगी बनेगा और मनुष्य में भी रोग बढेंगे । इस लिये यज्ञ भूमिमें गौ घूमे यह उपदेश इस शब्दसे सूचित किया है । इसके पद यज्ञ ही हैं, किसी अन्य स्थानमें इसके पद न लगे । गौको कितनी पवित्रता के साथ पालना चाहिये, इसका सूक्ष्म विचार इन मन्त्रों के अंदर पाठक देख सकते हैं ।

४ “स्वधा प्राणा” - स्वधा शक्ति से युक्त प्राणवाली । अर्थात् जिसमें प्राणशक्तिके साथ स्वधाशक्ति भी है । प्राणशक्ति सब लोग जानते हैं, सब प्राणियोंमें यह शक्ति है इसीलिये प्राणी जीवित रहते हैं । इसी प्रकार (स्व+धा) प्राणियोंके अंदर एक धारकशक्ति भी है उसका नाम “स्वधा” है । अपनी निज धारक शक्ति का नाम स्वधा है । यह शक्ति हर एक पदार्थ में है इसी लिये प्रत्येक पदार्थ अपने रूप में रहता है । मनुष्यमें यह स्वधा शक्ति बढानेका कार्य गौका दूध करता है । इसी लिये बालकों और वृद्धों तथा बीमारों के लिये गौके दूध के समान कोई दूसरा अन्न नहीं है । यह अपनी धारक शक्ति की वृद्धि करता है, इसीलिये उक्त अशक्त अवस्थामें गौ-दुग्धसे उनकी धारक-शक्ति बढती है और आयुष्य वृद्धिपूर्वक पुष्टि प्राप्त होती है । किसी भी अन्य दूधमें यह गुण नहीं है । इसी कारण गोदुग्ध मनुष्य के लिये सबसे अधिक लाभदायक है । मानो गोदुग्धमें मनुष्यकी प्राणशक्ति और धारणाशक्ति ही निवास करती है । इसीलिये ही गौ की रक्षा और पालना उत्तम रीतिसे होनी चाहिये ।

५ “महीलुका” = भूमिको तेजस्वी बनानेवाली गौ है । पूर्वोक्त शब्दोंके मननसे यह बात स्पष्ट हो जायगी ।

यह वर्णन गौका महत्त्व बता रहा है । पाठक इसका अधिक मनन करें । ये पांच शब्द गौके विषय में बड़े आदरपूर्ण महत्त्व के विचार प्रकाशित

कर रहे हैं । जिस समय ऐसे आदरपूर्ण विचार मनमें रहते हैं उस वैदिक समय गोवध होना बिल्कुल असंभव है ।

इस मंत्रका चतुर्थ पाद है-“देवान् अप्येति ब्रह्मणा” ( जो ब्रह्म के साथ अर्थात् मंत्रद्वारा उपासना, पूजा या सत्कारके साथ देवोंको प्राप्त होती है ) कई विद्वान ऐसे हैं कि जो इस मंत्रभागसे गोवध की कल्पना करते हैं और समझते हैं कि वेद मंत्रका उच्चार करके गोमांस की आहुतियां देनेकी कल्पना इससे सिद्ध होती है !!! यह इनकी कल्पना देख कर हमें बड़ा आश्चर्य होता है, क्यों कि ऐसा अर्थ माननेपर जो पूर्वापर विरोध हो रहा है इसका इन विद्वानों को कोई ख्यालही नहीं है !! इस सूक्तके प्रथम मंत्र मेंही गौको “अ-घ्न्या” ( अवध्य ) नामसे पुकारा है, इसलिये इस सूक्तमें आगे गोवध की कल्पना करना पूर्वापर संबंधसे युक्तियुक्त नहीं है । इस बातको छोड़ भी दिया जाय तो इसी मंत्रके शब्द देखिये । इसी मंत्रमें “इरा-क्षीरा” शब्द है जिससे बताया गया है कि गौसे दुग्धरूपी अन्न मिलता है । गौसे मांस-अन्न लेनेकी कल्पना किसी भी स्थानपर नहीं है । यह पूर्वापर संबंध देखनेसे पता लग सकता है कि “देवान् अप्येति ब्रह्मणा” इस मंत्रभागमें भी गोवध की कल्पना करनेके लिये कोई स्थान नहीं है । “ब्रह्म” शब्द के अनेक अर्थ हैं- पर ब्रह्म, आत्मा, ज्ञान, वेद, वेदमंत्र, मुक्ति, अन्न इतने अर्थ ब्रह्म शब्दके प्रसिद्ध हैं । इसमें अन्न शब्द लिया जाय तो इस मंत्र भाग का अर्थ निम्न लिखित प्रकार होता है- “यह गौ अपने दुग्धरूपी अन्नसे देवोंको प्राप्त होती है ।” यज्ञमें गौके दूध और घी का हवन होता है और देवताओंके उद्देश्य से आहुतियां छोड़ी जाती हैं, जब यह दूध और घी की आहुतियां देवताओं को पहुंचती हैं तब इन आहुतियों के अन्न से गौ भी मानो देवताओंको पहुंचती है । पूर्वापर संबंध देखकर किसी शब्दसे विरोध न करते हुए यह सरल अर्थ है । पाठक इस अर्थका मनन करें ।

इसके अतिरिक्त “देवान् अप्येति ब्रह्मणा” इस मंत्रभागमें गोवध की कल्पना करनेके लिये उसके “वध या मांस हवन” वाचक यहां एक भी



शब्द नहीं है । “ गौ देवोंको प्राप्त होती है ” ऐसा कहने मात्र से उसका वध करके उसकी मांसाहुतियों से वह देवोंको प्राप्त होती है इतनी लंबी कल्पना किस आधारपर की जाती है, यह हमारे समझमें नहीं आता है। यदि दूध घी के रूपसे गौके देवोंतक पहुंचनेकी संभावना न होती तो ऐसी लंबी कल्पना करना एकवार उचित भी माना जाता, परंतु गौको अ—वध्य रखते हुए उसके जीते जी प्राप्त होनेवाले दूध और घी रूपी अन्नकी आहुतियोंसे गौ देवोंको प्राप्त होती है यह बात हरएक यज्ञमें प्रत्यक्ष होनेकी अवस्थामें उतनी लंबी कल्पना—जो मंत्रके शब्दोंसे भी सिद्ध नहीं होती—करना अयोग्य और भाषाशास्त्र के नियमोंके सर्वथा विरुद्ध है। इसलिये इस प्रकारकी अयुक्त कल्पना करना सर्वथा अनुचित है। अब गौका महत्त्व देखिये—

अनु त्वाग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा ।

ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥७॥

“ हे ( भद्रे वशे ) कल्याण करनेवाली वशा गौ! तेरे अंदर अग्नि प्रविष्ट हुआ है, तेरे अंदर सोम प्रविष्ट हुआ है, तेरा दुग्धाशय पर्जन्य बना है और बिजलियांही तेरे स्तन बनी हैं। ” अर्थात् अग्नि, सोम, पर्जन्य और विद्युत् इन देवोंने तेरे शरीरमें ही आश्रय लिया है।

गौके दूधमें विलक्षण शक्तिवाली जीवन की विद्युत् रहती है, इसीलिये ताजा ताजा दूध—धारोष्ण दुग्ध—पीनेसे मनुष्यमें जीवन की विद्युत् बढ़ती है और आरोग्य तथा दीर्घजीवन प्राप्त होता है। जिस प्रकार पर्जन्य वृष्टिकी अनेक धाराओंसे मनुष्य को शुद्धोदक देता है और वह शुद्धोदक मनुष्यके लिये आरोग्यदायी होता है, ठीक उस प्रकार गौ भी अपनी अनेक धाराओंसे दूध देती है जो मनुष्यका आरोग्य बढ़ाने वाला होता है। सोम वनस्पति घास आदिके रूपसे गौके शरीरमें प्रविष्ट होता है, सोम नामक जीवन कलाकी वृद्धि करनेवाली वनस्पति भी गौ खाती है और जो जो वनस्पति इसप्रकार गौके शरीरमें जाती है उसका जीवनसत्त्व गौके दूधमें आता है जो मनुष्य का जीवन सुखमय करने का हेतु होता है। गौ जिस समय जंगलमें घास

खानेके लिये भ्रमण करती है उस समय सूर्य प्रकाश उसके शरीरपर पड़ता है, और सूर्य की उष्णता—अग्निरूप तेज—गौके शरीरमें प्रविष्ट होता है, इसका गौके दूधपर परिणाम बड़ा लाभकारी होता है। भैंस आदि पशु जो केवल कृष्णवर्ण होते हैं और जो उष्णता सह नहीं सकते इसलिये सदा जलमें डुबकियां लगाना चाहते हैं उन पशुओंमें सूर्यकिरणों का जीवनाग्नि प्रविष्ट नहीं होता इसलिये भैंस का दूध शीत गुणविशिष्ट होनेके कारण मनुष्य के लिये उतना लाभकारी नहीं हो सकता। परंतु गौ सूर्यका ताप सह सकती है और भैंसके समान जल में डुबकियां लगाना नहीं चाहती, इतना ही नहीं परंतु कपिल, लाल, पीला और श्वेत रंगोंसे युक्त गौके शरीर होनेके कारण सूर्य प्रकाशसे जीवनका अग्नेय तत्त्व गौके शरीरमें प्रविष्ट हो सकता है और वह मनुष्योंका आरोग्यवर्धन भी कर सकता है। गौके दूधसे लाभ और भैंसके दूधसे हानि होनेका वर्णन जो वैद्यग्रंथमें है और जो अनुभवमें भी है, उसका कारण यहां इसप्रकार इस मंत्रसे स्पष्ट हुआ है। गौ सूर्य प्रकाशसे अग्नेय जीवनतत्त्व अपने अंदर संगृहित करती है उस प्रकार भैंस नहीं कर सकती, इस कारण दोनोंके दुग्धोंके गुण—धर्मोंमें इतना अंतर है। इसी लिये गौ मनुष्योंकी माता कही जाती है वैसी भैंस नहीं। गौका दूध आरोग्यवर्धक है वैसा भैंसका नहीं। गौका दूध बुद्धिवर्धक है वैसा भैंसका नहीं। प्रतिदिन गौका दूध पीनेवाले को सूर्यतापज्वर (Sun stroke) की बीमारी होती नहीं, इसका भी यही कारण है। भैंसका दूध प्रतिदिन पीनेवालेको सूर्यतापज्वर की बाधा होती है। पाठक विचार करें कि गौका महत्त्व कितना है और मनुष्यके जीवनके साथ उसका कितना घनिष्ठ संबंध है। इसीलिये वेद गौका महत्त्व विविध रीतिसे वर्णन कर रहा है। तथा और देखिये—

### राष्ट्ररक्षक गौ।

अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे ।

तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥ ८ ॥

“ हे ( वशे ) वशा गौ! ( त्वं प्रथमा अपः धुक्षे )



तू सबसे प्रथम दूध देती है, ( त्वं अपरा उर्वरा ) तू पश्चात् भूमिकी कृषि कराती है, इस प्रकार ( त्वं क्षीरं अन्नं दत्त्वा ) तू दूध और अन्न देकर ( तृतीयं राष्ट्रं धुक्षे ) तीसरे राष्ट्रको परिपुष्ट बनाती है । ”

इस मंत्रमें गौके कितने उपकार वर्णन किये हैं देखिये । सबसे प्रथम गौ दूध देती है, यह दूध बाल, वृद्ध, रोगी स्त्रीपुरुषोंके लिये तथा सशक्त और अशक्तोंके लिये बड़ा उपकारी है । इसलिये यह गौ सबकी माता है । यह इसका पहिला उपकार है । गौका दूसरा उपकार यह है कि यह बैलों का उत्पन्न करती है और उन बैलोंके द्वारा खेती की जाती है जिस खेतीसे विपुल धान्य उत्पन्न होता है, अर्थात् बैलों द्वारा खेती करानेवाली गौ ही है । यह इस गौका मनुष्योंपर दूसरा उपकार है । इसप्रकार स्वयं दूध देने और बैलों द्वारा कृषि करवाके धान्य देनेसे मानो राष्ट्रका पालन पोषण और रक्षण गौ ही कर रही है, यह तीसरा उपकार है । ये तीन उपकार गौ कर रही है, पाठक इनका अनुभव करें । आज कल गौओंकी संख्या कम हो गई है इसलिये विपुल दूध मिलनेका अनुभव नहीं है, परंतु पंजाब, सिंध, यक्त प्रांत और गुजरात में प्रति समय दस पंद्रह-सेर दूध देनेवाली गौएं हैं, उनको देखनेसे पता लग सकता है कि यह गौ राष्ट्रका पालन किस प्रकार कर सकती है । भगवान् गोपाल कृष्णके समय पाठक देख सकते हैं कि घर घरमें गौओंकी पालना होती थी, हर एक मनुष्यको विपुल गोरस मिलता था, उससे उस समयके वीर कैसे दीर्घायु होते थे और कैसे सुदृढ होते थे । सत्तर असी वर्षवाले मनुष्य भी अपने आपको युवा होनेका अनुभव करते थे और मनुष्योंकी देडसौ वर्षकी आयु भी एक साधारण बात थी । परंतु आज प्रतिदिन सेकड़ों गौओंका वध हो रहा है और गौका दूध आज अति दुर्लभ सा हुआ है, इसका परिणाम दुर्बलता और अल्पायुतामें पाठक प्रत्यक्ष देख सकते हैं । इससे पाठक जान सकते हैं किस रीतिसे गौ राष्ट्रका पालन करती है । अर्थात् गौ एक “ राष्ट्रीय महत्त्वका धन ” है जिससे मनुष्य धन्य ही बनता रहेगा । इसलिये हर एक पंथके और धर्मके मनुष्यको यहां गोरक्षा अवश्यही

करनी चाहिये । यदि न को जाय तो न केवल उस व्यक्ति की अवनति होगी प्रत्युत उसके राष्ट्र की भी अवनति होगी । इसप्रकार राष्ट्रके उद्धार का संबंध गोरक्षासे है । पाठक इस रीतिसे गौमें राष्ट्र संरक्षण का गुण देखें और अन्य सब मतभेद छोड़ कर गोरक्षा में दत्तचित्त होकर पूर्णतया कटिबद्ध होकर गौकी रक्षा करनेका महत्त्वपूर्ण कार्य करें । राष्ट्रमें जो जो मनुष्य हैं उनके शरीरोंकी नीरोगता दीर्घ आयु और शक्ति रखने और बढ़नेका संबंध इसप्रकार गोरक्षणसे है, इसलिये गोरक्षा के विषयमें जो उदासीन रहते हैं, वे अपनी राष्ट्र रक्षामें भी उदासीन ही होते हैं अर्थात् गोरक्षा के बिना राष्ट्ररक्षा हो नहीं सकती है । यह बात समझ कर सब लोग गोरक्षा के कार्यमें विशेष दत्तचित्त हों और कभी उदासीन न हों, क्योंकि ऐसा गोवध होता रहा तो अन्य बातोंकी उन्नति होनेपर भी राष्ट्रकी सच्ची उन्नति होना असंभव है, मनुष्योंकी दीर्घायु, शारीरिक शक्ति, और नीरोगता न रही तो अन्य उन्नतिसे कौनसा लाभ प्राप्त हो सकता है? इस लिये गोरक्षा करना आत्मरक्षाके समान ही महत्त्वपूर्ण बात है इसको कभी भूलना नहीं चाहिये ।

### गौके लिये सोमरस ।

सोम बड़ी औषधि है जो जीवन कलाकी वृद्धि करने वाली है । वैदिक आदेशानुसार ऐसा प्रतीत होता है कि गौको सोमरस पिलाया जाता था और पश्चात् उसका दूध मनुष्य पीते थे; जिसमें सोमरस के गुणधर्म आजाते थे और उसकारण वह सोमरस पीनेवाली गौका दूध मनुष्यके लिये बड़ाही आरोग्य प्रद होता था, इस विषयमें अगला मंत्र देखिये—

यदादित्यैर्ह्यमानोपातिष्ठ क्रतावरि ।

इन्द्रः सहस्रं पात्रान् सोमं त्वापाययद्वशे ॥ ९ ॥

“ हे ( क्रतावरि वशे ) सरल स्वभाववाली वशा गौ! जब आदित्यों द्वारा बुलायी जा कर तू पास आती थी, तब इन्द्र तुझे हजारों बर्तनों से सोमरस पिताता था । ”

अर्थात् जब गौ जंगलसे वापस आती है तब उस गौके पानके लिये अनेक बर्तनोंमें सोम रस तैयार रखा जाता था । जिसका पान गौ करती थी और



पश्चात् गौको दुहा जाता था । पाठक देखें कि यह वैदिक प्रथा है, यह वैदिक समयमें गौका आदर था।

### वीरोंका दुग्धपान ।

युद्धके समय गौके दूधका पान वीर लोग करें इस विषयके दो मंत्र अब देखिये—

यदनूचीन्द्रमैरात् त्व ऋषभोऽह्वयत् ।

तस्मात्ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धो हरद्वशे ॥ १० ॥

यत्ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद्वशे ।

इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥ ११ ॥

“ हे ( वशे ) गौ! ( यत् ) जब तू ( इन्द्रं ) अनूचीः ( ऐः ) इन्द्रके साथ चली उस समय ( ऋषभः ) बलवान् वृत्रासुर ( त्वा अह्वयत् ) तुम्हारे लिये बुलाता रहा ( तस्मात् क्रुद्धः ) इससे क्रुद्ध हुए ( वृत्रहा ) वृत्रासुरका वधकर्ता इन्द्रने ( ते पयः क्षीरं ) तेरा अमृत जैसा दूध ( अहरत् ) लिया ॥ हे ( वशे ) गौ! जो क्रुद्ध हुए ( धन-पतिः ) इन्द्रने तेरा दूध लिया था, वही आज ( नाकः ) स्वर्ग रूपसे तीन पात्रोंमें रक्षण किया जाता है । ”

इन्द्र और वृत्रके युद्धके प्रसंगोंका वर्णन वेदमें अनेक स्थानोंमें आया है । वह वर्णन आधि दैविक सृष्टिमें सूर्य और मेघ, आधि भौतिक प्राणि सृष्टिमें धार्मिक राजा और अधार्मिक शत्रु, तथा आध्यात्मिक सृष्टिमें आत्मिक शक्ति और हीन मनोविकार, इनके युद्धके भाव बताता है । इस विषयका संपूर्ण रूपक यहां कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । यहां हमें इतना ही देखना है कि युद्धादि प्रसंगोंमें भी गौसे लाभ उठानेकी बात वेदमें किस महत्त्वके साथ कही है । वेदमें उपदेश देनेके जो अनेक मार्ग हैं उनमें यह भी एक मार्ग है कि “ इन्द्रादि देवोंने ऐसा किया और उसके करनेसे उनको यह लाभ हुआ । ” ऐसे वर्णनसे बताया जाता है कि मनुष्यभी वैसाही करे और लाभ उठावे । इस प्रकार उक्त मंत्रमें यह वर्णन है—

“ एक समय इन्द्र और वृत्रासुरका युद्ध हुआ इस युद्धमें इन्द्रके साथ गौवें थीं । जहां देवोंका सैन्य रहता था वहां गौवें भी रखी जाती थीं । जब देवोंके वीर जोशसे और क्रोधसे लड़ते थे और थक जाते थे, उस समय उनको गौओंका ताजा दूध

निचोड़ कर दिया जाता था । इस प्रकार दूध पीपी कर देववीर युद्ध करते थे । वृत्रासुरने यह बात देखी और एक समय इन्द्रकी गौओंपर हमला चढ़ाया । इससे इन्द्रको बड़ा क्रोध आया । देवोंनेभी असुरोंपर जोरसे हमला किया और उनका पराजय किया । तथा गौओंके दूधके बर्तन स्वर्गमें रख दिये, जिस का ( ण आजभी स्वर्गका महत्त्व सब मानते हैं ) ”

वेद मंत्रोंके मूल वर्णनसे ब्राह्मणादि ग्रंथोंमें इसी प्रकार कथाएं बनाकर लिखी हैं । ये कथाप्रसंग इतिहास बताने के लिये नहीं हैं, परंतु कुछ सनातन बोध देने के लिये बनाये जाते हैं । इस कथा प्रसंग से पाठक निम्नलिखित बोध ले सकते हैं—

( १ ) युद्ध करने वाले सैनिकोंको पीनेके लिये दूध मिले इस लिये सैन्यके साथ कुछ गौवें रखनी चाहिये और उनका ताजा दूध सैनिकों को पिलाना चाहिये । युद्ध करते समय थके हुए सैनिकोंको भी इसी प्रकार दूध देना चाहिये ।

( २ ) जब कोई जोशका कार्य करना हो, जिस समय कोई थकावट आनेवाला कार्य करना हो, जिस समय क्रोध आया हो तो उस समय गौका धारोष्ण दूध पीनेसे शरीरमें समता आ जाती है

यह सामान्य बोध उक्त मंत्रोंके वर्णन में पाठक देख सकते हैं । क्रोध, मोह, मद ( उन्माद ) की अवस्था प्राप्त हुई तो उस समय गौका दूध पीनेसे शरीरमें समता आती है और उक्त हीन मनोविकार दूर होते हैं । कामविषयक अत्याचार से मनुष्यके शरीरमें निर्वीर्यता उत्पन्न हुई हो तो गौके दूध पीनेसे दूर होती है । अतिश्रम से उत्पन्न हुई थकावट, हृदय की जलन, मस्तककी आग, नेत्रोंकी जलन, हृदय-विकार से होनेवाली मूर्च्छा आदि सब दोष गौके दूध पीनेसे दूर होते हैं । किसी भी अन्य दूधमें यह गुण नहीं है । इसलिये ऋषिमुनि गौका दूध पीकर योगादि साधन करके अजरामर होते थे । यदि इस समयमें भी भारतीय लोग गौकी रक्षा करेंगे तो उसी प्रकार की सिद्धी वे इस समयमें भी प्राप्त कर सकते हैं ।



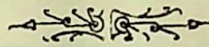


# अथर्ववेद

का

स्वाध्याय ।

प्रथमं काण्डम् ।



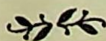
लेखक तथा प्रकाशक

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

प्रथम वार

संवत् १९८४, शक १८४९, सन १९२७



मूल्य २ ) डा. व्य. ॥ ) वी. पी. से २॥ ) रु.





## ब्रह्म और ज्येष्ठ ब्रह्म ।



ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।  
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम् ।  
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ।

अथर्व० १० । ७ । १७

“ ( ये ) जो ( पुरुषे ब्रह्म ) पुरुषमें ब्रह्म ( विदुः ) जानते हैं, वे परमेष्ठिनं ) परमेष्ठीको जानते हैं, जो परमेष्ठीको जानता है और जो प्रजापतिको जानता है, तथा जो ( ज्येष्ठं ब्राह्मणं ) श्रेष्ठ ब्रह्माको जानते हैं, वे स्कम्भ को ( अनुसंविदुः ) उत्तम प्रकार जानते हैं । ”

---

मुद्रक तथा प्रकाशक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.

स्वाध्यायमंडल, भारतमुद्रणालय, औंध ( जि. सातारा )

---



## अथर्व वेद ।

- १ अथर्ववेद यह मनःशक्तिके विकास का वेद है ।  
इसमें मानसिक शक्ति विकासके विविध उपाय  
कहे हैं ।
- २ अथर्ववेद यह अनुष्ठान करनेका वेद है । केवल  
इसका पाठ करने और अनुष्ठान न करनेसे बहुत  
लाभ नहीं हो सकता ।
- ३ अथर्ववेद के अनुष्ठान इतने सुगम हैं कि हरएक  
अवस्थामें रहनेवाला मनुष्य, प्रतिदिन थोड़ा समय  
इस कार्यके लिये अलग निकाल कर, ये अनुष्ठान  
कर सकता है और लाभ उठा सकता है ।
- ४ आत्मा, बुद्धि, मन और चित्त इन अंतःशक्तियों-  
की उन्नति जो करना चाहते हैं वे इस वेदका मनन  
प्रतिदिन करें । निःसंदेह लाभ होगा ।
- ५ हरएक सूक्तका मनन करनेसे उसका अनुष्ठान  
करनेकी रीति सहजहीमें ज्ञात हो सकती है ।  
तथापि इस “ अथर्ववेदके सुबोध भाष्य” में वह  
असंदिग्ध रीतिसे बतायी है । जिससे पाठक लाभ  
उठा सकते हैं ।
- ६ वैदिक धर्म यदि आप आचारमें लाना चाहते हैं  
तो आप अथर्व वेदका अध्ययन कीजिये । इससे  
आपका अनेक रीतिसे लाभ होगा ।



- ७ इसमें आरोग्यवर्धनके ऐसे सुगम उपाय बताये हैं कि जो सर्व साधारणको भी प्राप्त हो सकते हैं। इससे आप बिना व्यय आरोग्य प्राप्त कर सकते हैं।
- ८ सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति के विविध उपाय आप इससे जान सकते हैं। अथर्ववेदका इस विषयका उपदेश आज भी लाभदायक है। पाठक इसका अनुभव लें।
- ९ यह “सुबोध भाष्य” इतना सुबोध है कि इसको साधारण भाषा पढ़नेवाला भी उत्तम रीतिसे समझ सकता है और वैदिक आदेश जान सकता है।
- १० अपूर्व अलंकार, अद्भुत रूपक, आश्चर्यकारक उपमाएँ और सरल शब्दों द्वारा गंभीर उपदेश देनेकी वैदिक शैली यदि आप देखना चाहते हैं तो आप इस “अथर्ववेद-सुबोध भाष्य” को पढ़िये।
- ११ एक बार आप यह प्रथमकाण्ड पढ़ेंगे तो फिर आपको इस विषयमें अधिक कहने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

निवेदक,

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )



## जल-सूक्त ।

( ३३ )

( ऋषिः— शन्तातिः । देवता—आपः । चन्द्रमाः )

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यासुग्निः ।  
 या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥ १ ॥  
 यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।  
 या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥ २ ॥  
 यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।  
 या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥ ३ ॥  
 शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।  
 घृतश्रुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥ ४ ॥

अर्थ— जो ( हिरण्य - वर्णाः ) सुवर्णके समान चमकनेवाले वर्ण से युक्त ( शुचयः पावकाः ) शुद्ध और पवित्रता बढ़ानेवाला ( यासु सविता जातः ) जिनमें सविता हुआ है और ( यासु अग्निः ) जिनमें अग्नि है, ( याः सुवर्णाः ) जो उत्तम वर्णवाला जल ( अग्निं गर्भं दधिरे ) अग्नि को गर्भमें धारण करता है ( ताः आपः ) वह जल ( नः शं स्योनाः भवन्तु ) हम सबको शांति और सुख देने वाला होवे ॥ १ ॥ ( यासां मध्ये ) जिस जलके मध्यमें रहता हुआ ( वरुणः राजा ) वरुण राजा ( जनानां सत्यानृते अवपश्यन् ) जनोंके सत्य और असत्य कर्मोंका अवलोकन करता हुआ ( याति ) चलता है । ( याः सुवर्णाः ) जो उत्तम वर्णवाला जल अग्निको गर्भमें धारण करता है वह जल हम सबको शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ २ ॥ ( देवाः दिवि ) देव द्युलोकमें ( यासां भक्षं कृण्वन्ति ) जिनका भक्षण करते हैं, और जो ( अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ) अन्तरिक्षमें अनेक प्रकार से रहता है और जो उत्तमवर्ण वाला जल अग्निको गर्भमें धारण करता है वह जल हम सबको शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ ३ ॥ हे ( आपः ) जल ! ( शिवेन चक्षुषा मा पश्यत ) कल्याण कारक नेत्र द्वारा मुझको तुम देखो । ( शिवया तन्वा मे



त्वचं उपस्पृशत ) कल्याणमय अपने शरीरसे मेरी त्वचाको स्पर्श करो । जो (घृतश्रुतः) तेज देनेवाला (शुचयः पावकाः) शुद्ध और पवित्र (आपः) जल है (ताः नः शं स्योनाः भवन्तु) वह जल हमारे लिये शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ- अंतरिक्ष में संचार करनेवाले मेघमंडलमें तेजस्वी पवित्र और शुद्ध जल है, जिनमेघोंमें से सूर्य दिखाई देता हो, जिनमें विद्युत् रूपी अग्नि कभी व्यक्त और कभी गुप्त रूपसे दिखाई देता हो, वह जल हमें शांति और आरोग्य देनेवाला होवे ॥ १ ॥ जिनमेंसे वरुण राजा घूमता है और जाते जाते मनुष्योंके सत्य और असत्य विचारों और कर्मोंका निरीक्षण करता है, जिन मेघोंने विद्युत् रूपी अग्निको गर्भके रूपमें धारण किया है उन मेघोंका उदक हमें सुख और आरोग्य देवे ॥ २ ॥ ब्रूलोक के देव जिसका भक्षण करते हैं और जो विविध रूपरंगवाले अंतरिक्षस्थानीय मेघोंमें रहता है तथा जो विद्युतका धारण करते हैं उन मेघोंका जल हमारे लिये सुख और आरोग्य देवे ॥ ३ ॥ जल हमारा कल्याण करे और उसका हमारे शरीरके साथ होनेवाला स्पर्श हमें आल्हाद देनेवाला प्रतीत हो । मेघोंका तेजस्वी और पवित्र जल हमें शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ ४ ॥

### वृष्टिका जल ।

इन चारों मंत्रोंमें वृष्टिजलका काव्यमय वर्णन है । इन मंत्रोंका वर्णन इतना काव्यमय है और छंदभी ऐसा उत्तम है कि एक स्वरसे पाठ करनेपर पाठक को एक अद्भुत आनंद का अनुभव होता है । इन मंत्रोंमें जलके विशेषण “शुचि, पावक, सु-वर्ण” आदि शब्द वृष्टि जलकी शुद्धता बता रहे हैं । वृष्टि जल जितना शुद्ध होता है उतना कोई दूसरा जल नहीं होता । शरीर शुद्धिकी इच्छा करनेवाले दिव्य लोग इसी जलका पान करें और आरोग्य प्राप्त करें । इसके पानसे शरीर पवित्र और नीरोग होता है । सामान्यतया वृष्टि जल शुद्ध ही होता है परंतु जिस वृष्टिमें सूर्यकिरणें भी प्रकाशती हैं उसकी विशेषता अधिक है । इसी प्रकार चंद्रमाकी किरणोंका भी परिणाम होता है ।

इस सूक्तके चतुर्थ मंत्रमें उत्तम स्वास्थ्यका लक्षण बताया है वह ध्यानमें धारण करने योग्य है- “जलका स्पर्श हमारी चमड़ीको आल्हाद देवे ।” जबतक शरीर नीरोग होता है तबतकही शीत जलका स्पर्श आनंद कारक प्रतीत होता है, परंतु शरीर रुग्ण होते ही जल स्पर्श बुरा लगने लगता है ।



## मधु-विद्या ।

( ३४ )

( ऋषिः— अथर्वा । देवता-मधुवल्ली )

इयं वीरुन्मधुजाता मधुना त्वा खनामसि ।  
 मधोरधि प्रजातासि सा नो मधुमतस्कृधि ॥ १ ॥  
 जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ।  
 ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ २ ॥  
 मधुमन्मे निःक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।  
 वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंहशः ॥ ३ ॥  
 मधोरस्मि मधुतरो मदुवान्मधुमत्तरः ।  
 मामित्किल त्वं वनाः शाखां मधुमतीमिव ॥ ४ ॥  
 परिं त्वा परितत्तुनेक्षुणागामविद्विषे ।  
 यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापंगा असः ॥ ५ ॥

अर्थ- ( इयं वीरुन् मधुजाता ) यह वनस्पति मधुरता के साथ उत्पन्न हुई है, मैं ( त्वा मधुना खनामसि ) तुझे मधुसे खोदता हूँ । ( मधोः अधि प्रजाता असि ) शहदके साथ तू उत्पन्न हुई है अतः ( सा ) वह तू ( नः मधुमतः कृधि ) हम सबको मधुर कर ॥ १ ॥ ( मे जिह्वाया अग्रे मधु ) मेरी जिह्वाके अग्र भागमें मधुरता रहे । ( जिह्वामूले मधूलकं ) मेरी जिह्वाके मूलमें भी मीठास रहे । हे मधुरता ! तू ( मम क्रता इत् अह असः ) मेरे कर्ममें निश्चयसे रह । ( मम चित्तं उपायसि ) मेरे चित्तमें मधुरता बनी रहे ॥ २ ॥ ( मे निःक्रमणं मधुमत् ) मेरा चालचलन मीठा हो । ( मे परायणं मधुमत् ) मेरा दूर होना भी मीठा हो । मैं ( वाचा मधुमत् वदामि ) वाणीसे मीठा बोलता हूँ जिस से मैं ( मधुमन्हशः भूयासं ) मधुरताकी मूर्ति बनूंगा ॥ ३ ॥ मैं ( मधोः मधुतरः अस्मि ) शहदसे भी अधिक मीठा



हूं । ( मधुघात मधुमत्तरः ) मधुरपदार्थसे अधिक मधुर हूं । ( मां इत् किल त्वं वनाः ) मुझपर ही तू प्रेम कर ( मधुमतीं शाखां इव ) जैसे मधुर रसवाली वृक्ष शाखासे प्रेम करते हैं ॥ ४ ॥ ( अ-विद्विषे ) वैर दूर करने के लिये (परितत्नुना इक्षुणा त्वा परि अगाम्) फैले हुए ईश्वरके साथ तुझे घेरता हूं । ( यथा मां कामिनी असः ) जिससे तू मेरी कामना करनेवाली हावे और ( यथा मत न अपगाः असः ) जिससे तू मुझसे दूर न होनेवाली होवे ॥ ५ ॥

भावार्थ—यह ईश्वर नामक वनस्पति स्वभावसे मधुर है और उसको लगाने वाला और उखाड़नेवाला भी मधुरता की भावनासे ही उसको लगाता है और उखाड़ता है । इस प्रकार यह वनस्पति परमात्मासे मीठास अपने साथ लाती है, इस लिये हम चाहते हैं कि यह हम सबको मधुरतासे युक्त बनावे ॥ १ ॥ मेरी जिह्वाके अग्र भागमें मधुरता रहे, जिह्वाके मूल में और मध्यमें मधुरता रहे । मेरे कर्ममें मधुरता रहे, और मेरा चित्त भी मधुर विचारोंका मनन करे ॥ २ ॥ मेरा चालचलन मीठा हो, मेरा आना जाना मीठा हो, मेरे इशारे और भाव तथा मेरे शब्द भी मीठे हों । ऐसा होनेसे मैं अंदर बाहरसे मीठास की मूर्ति ही बनूंगा ॥ ३ ॥ मैं शहदसे भी मीठा बनता हूं, मैं मिठाईसे भी मीठा बनता हूं, इसलिये जिस प्रकार मधुर फलवाली शाखापर पक्षी प्रेम करते हैं इस प्रकार तू मुझपर प्रेम कर ॥ ४ ॥ कोई किसीका द्वेष न करे इस उद्देश्यसे व्यापक मधुरवल्लियोंका अर्थात् व्यापक मधुर विचारोंकी बाढ चारों ओर बनाता हूं ता कि इस बाढमें सब मधुरता ही बढे और सब एक दूसरेपर प्रेम करें और विद्वेषसे कोई किसीसे विमुख न हो ॥ ५ ॥

### मधुविद्या ।

वेदमें कई विद्याएं हैं अध्यात्मविद्या, देवविद्या जन विद्या, युद्ध विद्या; इसी प्रकार मधुविद्या भी वेदमें है । मधुविद्या जगत् की ओर किस प्रकार देखना चाहिये वह दृष्टि-कोण ही मनुष्य में उत्पन्न करती है । उपनिषदों में भी यह मधुविद्या वेद मंत्रोंसे ली है । यह जगत् मधुरूप है अर्थात् मीठा है ऐसा मानकर जगत् की ओर देखना इस बातका मधु विद्या उपदेश करती है । दूसरी विद्या जगत् को कष्टका आगर बताती है इसको पाठक कटुविद्या कह सकते हैं । परंतु यह कटुविद्या वेदमें नहीं है । वेद जगत् की ओर दुःख दृष्टिसे देखता नहीं, नाही दुःखदृष्टिसे जगत्को देखने का उपदेश करता है । वेदमें मधु-



विद्या इसी लिये है कि इसका ज्ञान प्राप्त करके लोग जगत् की ओर मधुदृष्टिसे देखनेकी बात सीखें । इस विद्याके मंत्र अथर्ववेदमें भी बहुत हैं और अन्य वेदोंमें भी हैं, उनका यहां विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । इस सूक्तके मंत्र ही स्वयं उक्तविद्याका उत्तम उपदेश देते हैं । पाठक इन मंत्रोंका विचार करें और उचित बोध प्राप्त करें ।

### जन्म स्वभाव ।

वृक्षोंमें क्या और प्राणियोंमें क्या हरएक का व्यक्तिनिष्ठ जन्मस्वभाव रहता है जो बदलता नहीं । जैसा सूर्यका प्रकाशना, अग्निका उष्ण होना, ईखका मीठा होना, करेलेका कड़वा होना, इत्यादि ये जन्मस्वभाव हैं । ये जन्मस्वभाव कहांसे आते हैं यह विचारणीय प्रश्न है । ईख मीठास लाता है और करेल कड़वाहट लाता है । एकही भूमिमें उगे ये दो वनस्पतियां परस्पर भिन्न दो रसोंको अपने साथ लाती हैं । कभी करेलेमें मीठा रस नहीं होता और ना ही ईखमें कड़वा । ऐसा क्यों होता है ? कहांसे ये रस आते हैं ?

कोई कहेगा कि भूमिसे । क्योंकि भूमिका नाम “रसा” है । इस भूमिमें विविध रस होते हैं जो जो पौधा उसके पास जाता है, वह अपने स्वभाव के अनुसार भूमिसे रस खींचता है और जनताको देता है । करेलेका स्वभाव कड़वा है और ईखका मीठा है । ये पौधे भूमिके विविध रसोंमें से अपने स्वभावके अनुकूल रस लेते हैं और उनको लेकर जगत् में प्रकट होते हैं ।

मनुष्यमें भी यही बात है । विभिन्न प्रकृतिके मनुष्य विभिन्न गुणधर्म प्रकट कर रहे हैं, उनको एकही खजानेसे एकही जीवनके महासागरसे जीवन रस मिलता है, परंतु एकमें वही जीवन शांति बढानेवाला और दूसरेमें अशांति फैलानेवाला होता है । ये स्वभाव धर्म हैं । एकही जल मेघोंमें जाता है और मीठा बनकर वृष्टिसे परिशुद्ध स्थितिमें प्राप्त होता है, जिसको पीकर मनुष्य तृप्त हो सकता है; वही जल समुद्रमें जाता है और खारा बनता है, जिसको कोई पी नहीं सकता यह स्वभाव भेद है ।

अन्य पदार्थ अथवा अन्य योनियां अपने स्वभाव बदल नहीं सकतीं । मरने तक उनमें बदल नहीं होता । परंतु मनुष्य योनी ही एक ऐसी योनि है कि जिस योनीके लोग सुनियमोंके आचरणसे अपना स्वभाव बदल सकते हैं । दुष्टोंके सुष्ट बन सकते हैं, मूर्खोंके प्रबुद्ध बन सकते हैं, दुराचारियोंके सदाचारी हो सकते हैं, इसी लिये वेद मनुष्योंकी भलाई के लिये इस मधुविद्याका उपदेश दे रहा है । मनुष्य अपनी कड़वाहट कम करे और अपनेमें मीठास बढावे यही यहां इस विद्याका उद्देश्य है ।



अब मधुविद्याका प्रथम मंत्र देखिये—“यह ईख नामक वनस्पति मीठास के साथ जन्मी है, मनुष्य मीठी भावनाके साथ उसे खोदते हैं । यह मधुरता लेकर आ गई है, इस लिये हम सबको यह वल्ली मीठाससे युक्त करे ।” ( मंत्र १ )

यह प्रथम मंत्र बड़ा अर्थपूर्ण है । इसमें चार बातें हैं—( १ ) स्वयं मीठे स्वभाव का होना, ( २ ) मीठे स्वभाव वालोंसे संबंध करना, ( ३ ) स्वयं मधुर जीवन को व्यतीत करना, और ( ४ ) दूसरोंको मीठा बना देना । पाठक देखें कि—( १ ) ईख स्वयं स्वभावसे मीठा होता है, ( २ ) मीठा उत्पन्न करने की इच्छा वाले किसानोंसे उसकी मित्रता होती है, ( ३ ) ईख स्वयं मीठा जीवन रस अपने साथ लाता है और ( ४ ) जिस चीज के साथ मिलता है उसको मीठा बनाता है । क्या पाठक इस आदर्श मीठे जीवनसे बोध नहीं ले सकते ?

ये चार उपदेश हैं जो मनुष्यको विचार करने चाहियें । यह ईख अपने व्यवहार से मनुष्यको उपदेश दे रहा और बता रहा है कि इस प्रकार व्यवहार करनेसे मनुष्य मीठा बन सकता है । इसके मननसे प्राप्त होनेवाले नियम ये हैं —

१ अपना स्वभाव मीठा बनाना । अपनेमें यदि कोई कटुता, कठोरता या तीक्ष्णता हो तो उसको दूर करना तथा प्रति समय आत्मपरीक्षा करके, दोष दूर करके, अपने अंदर मीठा स्वभाव बढानेका यत्न करना ।

२ मनुष्यको उचित है कि वह स्वयं ऐसे मनुष्योंके साथ मित्रता करे कि जो मीठे स्वभाव वाले हों अथवा मधुरता फैलाने के इच्छुक हों ।

३ अपना जीवन ही मीठा बनाना, चालचलन, बोलना चालना मीठा रखना । अपने इशारेसे भी कटुताका भाव व्यक्त न करना ।

४ प्रयत्न इस बातका करना कि दूसरोंके भी स्वभाव मीठे बनें और कठोर प्रकृतिवाले मनुष्य भी सुधर कर उत्तम मधुर प्रकृतिवाले बनें ।

पाठक प्रथम मंत्रका मनन करेंगे तो उनको ये उपदेश मिल सकते हैं । “ ईख स्वयं मीठा है, मीठा चाहनेवाले किसान से मित्रता करता है, अपनेमें मधुर जीवन रस लाता है और जिसमें मिल जाता है उनको मीठा बना देता है ।” इस प्रथम मंत्रके चार पादोंका भाव उक्त चार उपदेश दे रहे हैं । पाठक इन उपदेशोंको अपनानेका प्रयत्न करें । ( मंत्र १ )

यहां अन्योक्ति अलंकार है । पाठक इस काव्यमय मंत्रका यह अलंकार देखें और समझें । वेदमें ऐसे अलंकारोंसे बहुत उपदेश दिया है ।



## मीठा जीवन ।

पूर्वोक्त प्रथम मंत्रके तीसरे पादमें अन्योक्ति अलंकारसे सूचित किया है कि “मनुष्य मीठास के साथ जीवन व्यतीत करे ।” अर्थात् अपना जीवन मधुर बनावे । इसी बातकी व्याख्या अगले तीन मंत्रोंमें स्वयं वेद करता है, इसलिये उक्त तीन मंत्रोंका भाव थोड़ा विस्तार से यहां देते हैं—

( दूसरा मंत्र ) - “मेरी जिह्वाके मूल, मध्य और अग्रभागमें मीठास रहे अर्थात् मैं वाणीसे मधुर शब्द ही बोलूंगा । कभी कटु शब्दका प्रयोग बोलनेमें और लेखमें नहीं करूंगा, कि जिससे जगत्में कटुता फैले । मेरा चित्त भी मीठे विचारोंका चिंतन करेगा । इस प्रकार चित्तके विचार और वाणीके उच्चार एक रूपता से मीठे बनगये तो मेरे (क्रतु) आचार व्यवहार अर्थात् कर्मभी मीठे हो जायेंगे । इस प्रकार विचार उच्चार आचारमें मीठा बना हुआ मैं जगत् में मधुरता फैलाऊंगा । मेरे विचार से, मेरे भाषणसे और मेरे आचार व्यवहार से चारों ओर मीठास फैलेगी ।”

( तीसरा मंत्र ) - “मेरा आचार व्यवहार मीठा हो, मेरे पासके और दूरके व्यवहार मीठे हों, मेरे इशारे मीठे हों, मैं वाणीसे मधुर ही शब्द उच्चारूंगा और उस भाषणका आशयभी मधुरता बढ़ानेवाला ही होगा । जिस समय मेरे विचार उच्चार और आचार में स्वाभाविक और अकृत्रिम मधुरता टपकने लगेगी, उस समय मैं माधुर्य की मूर्ति ही बनूंगा । ”

(चतुर्थ मंत्र) — “जब शहदसेभी मैं अधिक मीठा बनूंगा, और लड्डू-सेभी मैं अधिक मीठा बनूंगा, तब तुम सब लोग निःसंदेह मुझपर वैसा प्रेम करोगे कि जैसा पक्षिगण मीठे फलोंसे युक्त वृक्षशाखापर प्रेम करते हैं ।”

ये तीन मंत्र कितना अद्भुत उपदेश दे रहे हैं इसका विचार पाठक अवश्य करें । ऊपर भावार्थ देते समय ही भावार्थ ठीक व्यक्त करने के लिये कुछ अधिक शब्द रखे हैं, उनके कारण इनका अब अधिक स्पष्टीकरण करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

## प्रतिज्ञा ।

ये मंत्र प्रतिज्ञा के रूपमें हैं । मैं प्रतिज्ञा इस प्रकार करता हूं यह भाव इन मंत्रोंमें है । जो पाठक इन मंत्रोंसे अधिकसे अधिक लाभ उठानेके इच्छुक हैं वे यही प्रतिज्ञा करें,



यदि उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा की और उस प्रकार उनका आचरण हुआ तो उनका यश सर्वत्र फैल जायगा । यह पूर्ण अहिंसा की प्रतिज्ञा है । अपने विचार उच्चार आचारसे किसी प्रकार किसकी भी हिंसा न हो, किसीका द्वेष न हो, किसीका वैर न हो, किसीकी शत्रुता न हो, इस प्रकार अपना आदर्श जीवन बननेपर जगत्में आनंदका ही साम्राज्य बन जायगा । इस आनंदका साम्राज्य स्थापन करना वैदिक धर्मियोंका परम धर्म ही है और इसी लिये इस मधुविद्याका उपदेश इस सूक्तमें हुआ है ।

### मीठी बाड ।

खेतको बाड बनाते हैं जिससे खेतका नाश करने वाले पशु उस खेततक पहुंच नहीं सकते और खेत सुरक्षित रहता है । इसी प्रकार स्वयं मीठा और मधुरता फैलानेवाला मनुष्य अपने चारों ओर मीठी बाड बनावे । जिससे उसके विरोधी शत्रु-क्रौर्य द्वेषभाव आदि शत्रु-उस तक न आसकें । यह बाड अपने मनमें सुविचारोंकी हो, अपने इंद्रियोंके साथ समय की हो, अपने घरमें परस्पर प्रेमकी हो, समाजमें परस्पर मित्रताकी हो । अपने सब मित्रभी उत्तम मीठे विचार जीवन में लाने और मधुरता फैलाने वाले हों । ऐसी बाड होगई तो अंदरका मीठास का खेत बिगड़ेगा नहीं । इसविषयमें पंचम मंत्र देखने योग्य है—

( पंचम मंत्र ) — “ मैं विद्वेषको हटानेके लिये चारों ओर फैलनेवाले मीठे ईखोंकी बाड तुम्हारे चारों ओर करता हूं जिससे तू मेरी इच्छा करेगी और मुझसे दूर भी न होगी । ”

यह जितना स्त्री पुरुषके आपसके अविद्वेषके लिये सत्य है उतनाही अन्य परिवारों और मित्रजनोंके अविद्वेष और प्रेम बढानेके विषयमें सत्य है । परंतु अपने चारों ओर मीठी बाड करनेकी युक्ति पाठकोंको अवश्य जाननी चाहिये । अपने साथ ईख की गंडेरियां लेनेसे यह कार्य नहीं होगा । यह कार्य करनेके लिये जो ईख चाहिये वे विचार उच्चार और आचार के तथा मनोभावना के ईख चाहिये । जो पाठक अपने अंतःकरणके क्षेत्रमें ईख लगायेंगे और उसकी पुष्टि अपने मीठे जीवन से करेंगे, वे ही यह वैदिक उपदेश आचरणमें ढाल सकते हैं ।

ये मंत्र स्पष्ट हैं । अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है, परंतु पाठक इनको काव्य की दृष्टिसे समझनेका यत्न करेंगे तभी वे लाभ उठा सकेंगे ।



# तेजस्विता बल और दीर्घायुष्य

की प्राप्ति ।

( ३५ )

( ऋषिः— अथर्वा । देवता— हिरण्यं, इन्द्राग्नी, विश्वेदेवाः । )

यदावध्नन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।  
 तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ १ ॥  
 नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत् ।  
 यो विभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ २ ॥  
 अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि ।  
 इन्द्र इवेन्द्रियाण्यर्धं धारयामो असिन्तदक्षमाणो विभरद्विरण्यम् ॥ ३ ॥  
 समानां मासामृतुभिर्ह्वा वयं संवत्सरस्य पर्यसा पिपर्मि ।  
 इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहणीयमानाः ॥ ४ ॥

अर्थ— ( सुमनस्यमानाः दाक्षायणाः ) शुभ मन वाले और बलकी वृद्धि करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष ( शत - अनीकाय ) बल के सौ विभागों के संचालक के लिये ( यत् हिरण्यं अबध्नन् ) जो सुवर्ण बांधते रहे ( तत् ) वह सुवर्ण ( आयुषे वर्चसे ) जीवन, तेज, ( बलाय ) बल और ( शतशारदाय दीर्घायुत्वाय ) सौ वर्षकी दीर्घ आयुके लिये ( ते बध्नामि ) तेरे ऊपर बांधता हूं ॥ १ ॥ ( न रक्षांसि, न पिशाचाः ) न राक्षस और न पिशाच ( एनं सहन्ते ) इस पुरुष का हमला सह सकते हैं ( हि ) क्योंकि ( एतत् देवानां प्रथमजं ओजः ) यह देवोंसे प्रथम उत्पन्न हुआ सामर्थ्य है । ( यः दाक्षायणं हिरण्यं विभर्ति ) जो मनुष्य दाक्षायण सुवर्ण धारण करता है ( सः जीवेषु दीर्घ आयुः कृणुते ) वह जीवोंमें अपनी दीर्घ आयु करता है ॥ २ ॥ ( अपां



तेजः ज्योतिःओजः बलं च) जलका तेज, कान्ति, पराक्रम और बल (उत) तथा (वनस्पतीनां वीर्याणि) औषधियोंके सब वीर्य (अस्मिन् अधि धारयामः) इस पुरुषमें धारण कराते हैं ( इन्द्रे इन्द्रियाणि इव ) जैसे आत्मामें इन्द्रिय धारण होते हैं । इस प्रकार ( दक्षमाणः हिरण्यं विभ्रत् ) बल बढ़ाने की इच्छा करनेवाला सुवर्ण का धारण करे ॥ ३ ॥ (समानां मासां ऋतुभिः) सम महिनोके ऋतुओं के द्वारा (संवत्सरस्य पयसा) वर्ष रूपी गौके दूधसे (त्वा वयं पिपर्मि) तुझे हम सब पूर्ण करते हैं । (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि (विश्वे देवाः) तथा सब देव (अहणीयमानाः) संकोच न करते हुए (ते अनु मन्यन्तां) तेरा अनुमोदन करें ॥ ४ ॥

भावार्थ — बल बढ़ाने वाले और मनमें शुभ विचारों की धारणा करने वाले श्रेष्ठ महात्मा पुरुष सेना संचालकके देहपर बलवृद्धिके लिये जिस सुवर्ण के आभूषण को लटका देते हैं, वही आभूषण मैं तेरे शरीरपर इस लिये लटकाता हूँ कि इससे तेरा जीवन सुधरे, तेज बढे, बल तथा सामर्थ्य वृद्धिगत हो और तुझे सौ वर्षकी पूर्ण आयु प्राप्त हो ॥ १ ॥ यह आभूषण धारण करनेवाले वीर पुरुषके हमलेको न राक्षस और ना ही पिशाच सह सकते हैं, वे इसके हमलेसे घबराकर दूर भाग जाते हैं, क्यों कि यह देवोंसे निकला हुआ सबसे प्रथम दर्जेका बल ही है । इसका नाम दाक्षायण अर्थात् बल बढ़ाने वाला सुवर्णका आभूषण है । जो इसका धारण करता है वह मनुष्योंमें सबसे अधिक दीर्घ आयु प्राप्त करता है ॥ २ ॥ हम सब इस पुरुषमें जीवन का तेज, पराक्रम, सामर्थ्य और बल धारण कराते हैं और साथ साथ औषधियोंसे नाना प्रकारके वीर्यशाली बल भी धारण कराते हैं । इस प्रकार इन्द्रमें अर्थात् आत्मामें इन्द्रिय शक्तियां रहती हैं उसी प्रकार इस सुवर्णका आभूषण धारण करने वाले मनुष्यके अंदर सब प्रकारके बल रहें, वे बाहर प्रकट हो जाय ॥ ३ ॥ दो महिनोका एक ऋतु होता है । प्रत्येक ऋतुकी शक्ति अलग अलग होती है, मानो संवत्सररूपी गौका दूध ही संवत्सरके छह ऋतुओंमें निछोडा हुआ है । यह दूध मनुष्य पीवे और बलवान् बने । इसकी अनुकूलता इन्द्र अग्नि तथा अन्य सब देव करें ॥ ४ ॥



## दाक्षायण हिरण्य ।

हिरण्य शब्दका अर्थ सुवर्ण अथवा सोना है, यह परिशुद्ध स्थितिमें बहुत ही बलवर्धक है । यह पेटमें भी लिया जाता है और शरीर पर भी धारण किया जाता है । श्री० यास्काचार्य हिरण्य शब्दके दो अर्थ देते हैं—“ हितरमणीयं, हृदयरमणीयं ” अर्थात् यह सुवर्ण हितकारक और रमणीय है तथा हृदयकी रमणीयता बढ़ानेवाला है । सुवर्ण बलवर्धक तथा रोग नाशक है इसलिये आरोग्य चाहने वाले इसका उपयोग कर सकते हैं ।

इस सूक्तमें “ दाक्षायण ” शब्द (दक्ष+अयन) अर्थात् बलकेलिये प्रयत्न करने वाला इस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है । प्रथम मंत्रमें यह शब्द मनुष्योंका विशेषण है और द्वितीय मंत्रमें यह सुवर्णका विशेषण है । तृतीय मंत्रमें इसी अर्थका “ दक्ष-माण ” शब्द है जो शक्तिवान का वाचक है । पाठक विचार करेंगे तो उनका निश्चय होगा कि “ दाक्षायण और दक्षमाण ” ये दो शब्द करीब शक्तिमान् के ही वाचक हैं । दक्ष शब्द बलवाचक वेदमें प्रसिद्ध है । इसप्रकार इस सूक्तमें बल बढ़ानेका जो मार्ग बताया है, उसमें सबसे प्रथम हिरण्यधारण है । हिरण्यधारण दो प्रकारसे होता है, एक तो आभूषण शरीरपर धारण करना और दूसरा सुवर्ण शरीरमें सेवन करना । सुवर्ण शरीरमें खानेकी रीति वैद्यग्रंथोंमें प्रसिद्ध है । सब अन्य धातु तथा औषधियां सेवन करनेपर शरीरमें नहीं रहती, परंतु सुवर्णकी ही यह विशेषता है कि वह शरीरके अंदर हड्डियोंके जोड़ोंमें जा कर स्थिर रूपसे रहता है और मृत्युके समय तक साथ देता है । इस प्रकारकी सुवर्णधारणासे अनेक रोगोंसे मुक्तता होती है । इस रीतिसे धारण किया हुआ सुवर्ण देह मृत होनेपर उसके जलानेके बाद शरीरकी राखसे सबका सब मिलता है । अर्थात् यदि किसी पुरुषने एक तोला सुवर्ण वैद्यकीय रीतिसे सेवन किया तो वह तोलाभर सुवर्ण मृतशरीरके दाह होने के पश्चात् उसके संबंधियोंको प्राप्त हो सकता है । इस प्रकार कोई हानी न करता हुआ यह सुवर्ण बल और आरोग्य देता है ।

जो वैद्य इस सुवर्ण धारण विधिको जानते हैं उनका नाम “ दाक्षायण ” प्रथम मंत्रने कहा है । इस प्रकारका परिशुद्ध सुवर्ण बलवर्धक होनेसे उसका नाम भी “ दाक्षायण ” है यह बात द्वितीय मंत्रने बता दी है । जो मनुष्य इस प्रकार सुवर्ण धारण विधिसे अपना आयुष्य बढ़ाना चाहता है उसका भी नाम वेदने तृतीय मंत्रमें “ दक्ष-माण ” बताया है । इस प्रकार यह सूक्त बलवर्धन की बात प्रारंभसे अंत तक बता रहा है ।



## दाक्षायणी विद्या ।

बल बढानेकी विद्या का नाम दाक्षायणी विद्या है । ( दक्ष + अयनः ) बल प्राप्त करनेके मार्ग का उपदेश इस विद्यामें होता है । इस विद्यामें मनके साथ विशेष संबंध रहता है । ( सु+मनस्यमानः ) उत्तम मनसे युक्त अर्थात् मनकी विशेष शक्तिसे संपन्न । कमजोरी की भावनासे मन अशक्त होता है और सामर्थ्य की भावनासे बलशाली होता है । मनकी शक्ति बढानेकी जो विद्या है उस विद्याके अनुसार मन सुनियमोंसे युक्त बनानेवाले श्रेष्ठ लोग “सुमनस्यमानाः दाक्षायणाः” शब्दों द्वारा वेदमें बताये हैं । पाठक अपने मनकी अवस्थाके साथ अपने बलका संबंध देखें और इन शब्दों द्वारा जो सुमनस्क होने की सूचना मिलती है, वह लें और इस प्रकार मानसिक धारणासे अपना बल बढावें ।

## सुवर्ण धारण ।

यद्यपि प्रथम मंत्रमें केवल स्थूल शरीरपर सुवर्ण बांधनेका विधान किया है तथापि आगे जाकर पेटमें वीर्य वर्धक नाना रस पीनेका उपदेश इसी सूक्तमें आनेवाला है । सुवर्ण तथा अन्य कई रत्न हैं कि जो शरीरपर धारण करनेसे भी बलवर्धन तथा आरोग्य वर्धन कर सकते हैं । यह बात सूर्यकिरण चिकित्सा तथा वर्णचिकित्साके साथ संबंध रखनेवाली है । अर्थात् सुवर्ण रत्नादिका धारण करना भी शरीरके लिये आरोग्य-प्रद है । औषधियोंके जड़ोंके मणी शरीरपर धारण करनेसे भी आरोग्य की दृष्टीसे बड़ा लाभ करते हैं । संसर्ग जन्य रोगोंमें वचा-माणिके धारणसे अनेक लाभ हैं । यही बात सुवर्ण रत्नादि धारण से होती है । परंतु इसके लिये शुद्ध सुवर्ण चाहिये ।

इस विषयमें प्रथम मंत्रमें कहा है कि — “ बल बढानेकी विद्या जाननेवाले और उत्तम मनःशक्तिसे युक्त श्रेष्ठ पुरुषोंके द्वारा शरीरपर लटकाया-हुआ सुवर्ण जीवन, तेज, बल, तथा दीर्घ आयुष्य देता है । ” इसमें शरीरपर सुवर्ण लटकाने वाले मनुष्यों की उत्तम मनोभावना भी लाभदायक होती है यह सूचित किया है; वह मनन करने योग्य है ।

इस मंत्रमें “शतानीकाय हिरण्यं वध्नामि” का अर्थ “ सौ सैन्य विभागोंके संचालक के शरीरपर सुवर्ण लटकाता हूं ” ऐसा किया है, परंतु इसमें और भी एक गूढ़ता है



वह यह है कि “अनीक” शब्द बल वाचक है । बल शब्द सैन्य वाचक और बल वाचक भी है । विशेषतः “अनीक” शब्दमें “अन्-प्राणने” धातु है जो जीवन शक्तिका वाचक प्रसिद्ध है । इसलिये जीवन शक्ति का अर्थ भी अनीक शब्द में है । इस अर्थके लेनेसे “शतानीक” शब्दका अर्थ “सौ जीवन शक्तियाँ, अथवा सौ जीवन शक्तियोंसे युक्त” होता है । यह भाव लेनेसे उक्त मंत्र भागका अर्थ ऐसा होता है कि—

शतानीकाय हिरण्यं बध्नामि । ( मंत्र १ )

“सौ जीवन शक्तियोंकी प्राप्ति के लिये मैं सुवर्ण का धारण करता हूँ ।” सुवर्ण के अंदर सेकड़ों वीर्य हैं, उन सबकी प्राप्ति के लिये मैं उसका धारण करता हूँ । यह आशय प्रथम मंत्र भाग का है । इस प्रथम मंत्रमें इनमेंसे कुछ गुण कहे भी हैं—

आयुषे । वर्चसे । बलाय । दीर्घायुत्वाय । शतशारदाय ।

“आयु, तेज, बल, दीर्घ आयु, सौ वर्षकी आयु” इत्यादि शब्द जीवन शक्तियोंके ही सूचक हैं । इनका थोड़ासा परिगणन यहां किया है । इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं और जान सकते हैं कि इसी प्रकार अनेक जीवन शक्तियाँ हैं, उनकी प्राप्ति अपने अंदर करनी और उनकी वृद्धि भी करनी वैदिक धर्मका उद्देश्य है । इस विचार से ज्ञात हो सकता है कि यहां “शतानीक” शब्दका अर्थ “जीवन के सौ वीर्य, जीवन की सेकड़ों शक्तियाँ” अभीष्ट है । यद्यपि यह अर्थ हमने मंत्रार्थ करते समय किया नहीं है तथापि यह अर्थ हमें यहां प्रतीत हो रहा है । इस लिये प्रसिद्ध अर्थ ऊपर देकर यहां यह अर्थ लिखा है । पाठक इसका अधिक विचार करें ।

इस प्रकार प्रथम मंत्रका मनन करनेके बाद इसी प्रकारका एक मंत्र यजुर्वेदमें थोड़ेसे पाठभेदसे आता है उसको पाठकों के विचार के लिये यहां धर देते हैं—

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।

तन्म आबध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥

वा. यजु. ३४ । ५२

“उत्तम मनवाले दाक्षायण लोग शतानीक के लिये जिस सुवर्ण भूषणको बांधते रहे, (तत्) वह सुवर्ण भूषण (मे आबध्नामि) मैं अपने शरीरपर बांधता हूँ इस लिये कि



मैं ( आयुष्मान् ) उत्तम आयुसे युक्त और ( जरदष्टिः ) वृद्ध अवस्थाका अनुभव करनेवाला होकर ( यथा शतशारदाय आसं ) जिस प्रकार सौ वर्षकी पूर्ण आयुको प्राप्त होऊँ । ”

इसका अधिक विवरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्यों कि पूर्वोक्त भावही इस मंत्रमें अन्य रीतिसे और भिन्न शब्दोंसे व्यक्त हुआ है । इस मंत्रका द्वितीय अर्ध ही भिन्न है, प्रथमार्ध वैसाका वैसाही है । यहाँ प्रथम मंत्रका विवरण समाप्त हुआ, अब द्वितीय मंत्रका विचार करते हैं—

## राक्षस और पिशाच ।

नरमांस भोजन करनेवाले राक्षस होते हैं और रक्त पीनेवाले पिशाच होते हैं । ये सबसे क्रूर होनेके कारण सब लोग इनसे डरते रहते हैं । परंतु जो पूर्वोक्त प्रकार “सुवर्ण प्रयोग करता है उसके हमलेको राक्षस और पिशाच भी सह नहीं सकते ।” इतनी शक्ति इस सुवर्ण प्रयोगसे मनुष्यको प्राप्त होती है । सुवर्ण में इतनी शक्ति है । क्यों कि “यह देवोंका पहिला ओज है ।” अर्थात् संपूर्ण देवोंकी अनेक शक्तियां इसमें संगृहित हुई हैं । इसलिये द्वितीय मंत्रके उत्तरार्धमें कहा है कि—“जो यह बल वर्धक सुवर्ण शरीरमें धारण करता है वह सब प्राणियोंसे भी अधिक दीर्घ आयु प्राप्त करता है ।” अर्थात् इस सुवर्ण प्रयोगसे शरीरका बल भी बढ़ जाता है और दीर्घ आयु भी प्राप्त होती है । यह द्वितीय मंत्रका भाव पहिले मंत्रका ही एक प्रकारका स्पष्टीकरण है, इसलिये इसका इतना ही मनन पर्याप्त है । यही मंत्र यजुर्वेदमें निम्न लिखित प्रकार है—

न तद्रक्षांसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत् ।

यो विभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः

स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥

यजु० ३४।५१

“ यह देवोंसे उत्पन्न हुआ पहिला तेज है, इस लिये राक्षस और पिशाच भी इसके पार नहीं हो सकते । जो दाक्षायण सुवर्ण धारण करता है वह देवोंमें दीर्घ आयु करता है और वह मनुष्योंमें भी दीर्घ आयु करता है । ”

इस मंत्रके द्वितीयार्धमें थोडा भेद है और जो अथर्व पाठमें “ जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ” इतनाही था, वहाँ ही इस में “ देवेषु और मनुष्येषु ” ये शब्द अधिक हैं । “ जीवेषु ” शब्दकाही यह “ देवेषु, मनुष्येषु ” आदि शब्दों द्वारा अर्थ हुआ है । इस प्रकार अन्य शाखासंहिताओंके पाठभेद देखनेसे अर्थ निश्चय करने में बड़ी सहायता होती है ।



यहां तक दो मंत्रोंका मनन हुआ । इन दो मंत्रों में शरीर पर सुवर्ण धारण करनेकी बातका उपदेश किया है । अब अगले दो मंत्रोंसे जल वनस्पति तथा ऋतुकालानुसार उत्पन्न होनेवाले अन्य बलवर्धक पदार्थोंका अंतर्बाह्य सेवन करनेकी महत्त्व पूर्ण विद्या दी जाती है, उसका पाठक विशेष ध्यानसे मनन करें ।

तृतीय मंत्रमें कहा है— “जल और औषधियोंके तेज, कांति, शक्ति, बल और वीर्य वर्धक रसोंको हम वैसे धारण करते हैं कि जैसे आत्मामें इंद्रिय शक्तियां धारण हुई हैं । इसी प्रकार बल बढानेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य सुवर्णका भी धारण करे । ”

जलमें नाना औषधियोंके गुण हैं यह बात इसके पूर्व आये हुए जल सूक्तों में वर्णन हो चुकी है । वे सूक्त पाठक यहां देखें ! औषधियोंके अंदर वीर्यवर्धक रस हैं, इसी लिये ही वैद्य औषधि प्रयोग करते हैं, अथर्व वेदमें भी यह बात आगे आजायगी । जिस प्रकार जल अंतर्बाह्य पवित्रता करके बल आदि गुणोंकी वृद्धि करता है, इसी प्रकार नाना प्रकारकी वीर्य वर्धक औषधियोंके पथ्य हित मित अन्न भक्षण पूर्वक सेवनसे मनुष्य बल प्राप्त करके दीर्घ जीवन भी प्राप्त करता है । सुवर्ण सेवन से भी अथवा सुवर्णादि धातुओंके सेवन से भी इसी प्रकार लाभ होते हैं, इसका वैद्य शास्त्रमें नाम “ रस प्रयोग ” है । यह रस प्रयोग सुयोग्य वैद्य ही के उपदेशानुसार करना चाहिये । यहां यजुर्वेदका इसी प्रकरण का मंत्र देखिये—

### सुवर्णके गुण ।

आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषमौद्भिदम् ।

इदं हिरण्यं वर्चस्वजैत्रायाविशतादु माम् ॥

वा. यजु. ३४ । ५०

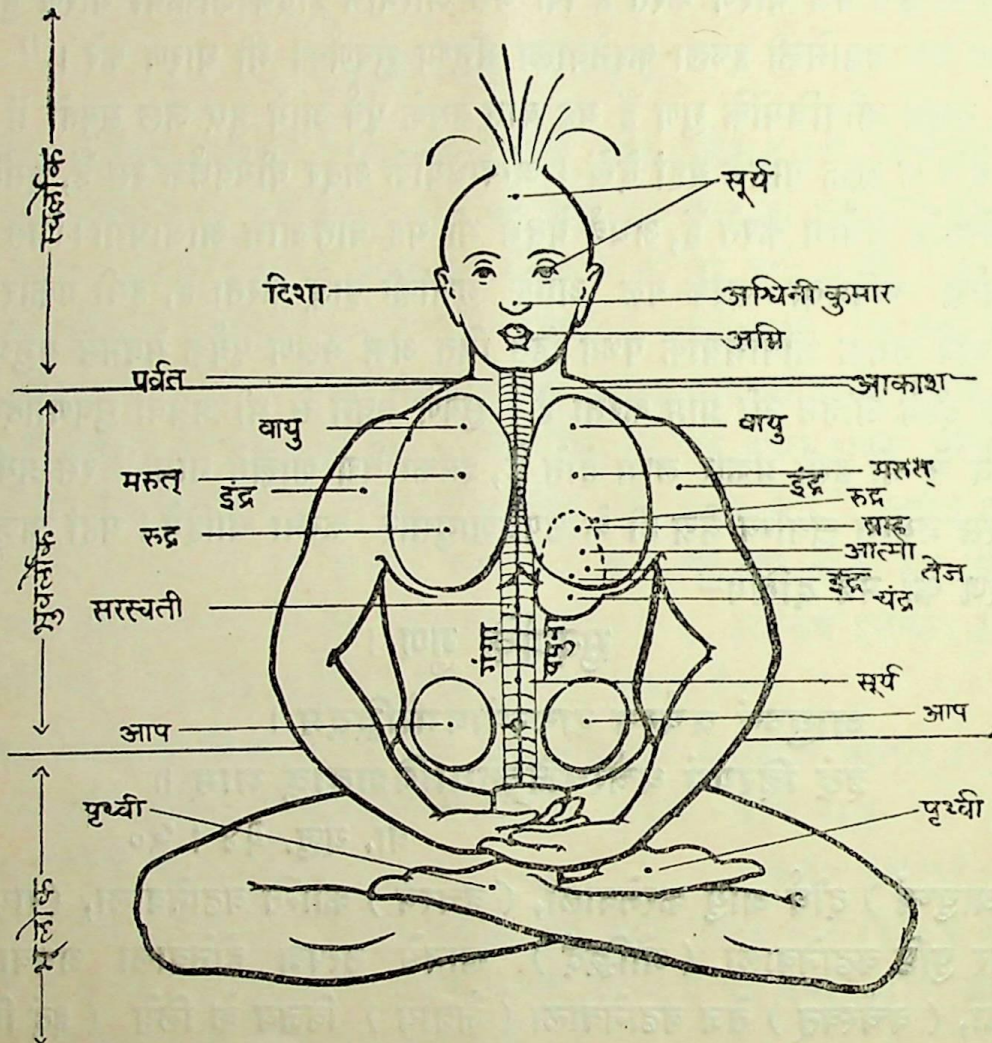
“ ( आयुष्यं ) दीर्घ आयु करनेवाला, ( वर्चस्यं ) कान्ति बढानेवाला, ( रायस्पोषं ) शोभा और पुष्टि बढानेवाला, ( औद्भिदं ) खानसे उत्पन्न होनेवाला अथवा ऊपर उठानेवाला, ( वर्चस्वत् ) तेज बढानेवाला ( जैत्राय ) विजय के लिये ( इदं हिरण्यं ) यह सुवर्ण ( मां उ आविशतात् ) मुझे अथवा मेरे शरीरमें प्रविष्ट हो । ”

### सुवर्णका सेवन ।

यह मंत्र सुवर्णके अनेक गुण बता रहा है । इतने गुणोंकी वृद्धि करनेके लिये यह सुवर्ण मनुष्यके शरीरमें प्रविष्ट हो, यह इच्छा इस मंत्रमें स्पष्ट है । अर्थात् परिशुद्ध सुवर्णके सेवनसे इन गुणोंकी शरीरमें वृद्धि हो सकती है । इस मंत्र में “ हिरण्यं आविशत् ” ये



## मनुष्यके शरीर में देवोंके अंश ।



जगत् में जो अग्नि आदि देव हैं उनके अंश शरीर में हैं । इनके स्थान इस चित्रमें बताये हैं । इसके मननसे ज्ञात हो सकता है कि बाह्य जगत् के अग्नि आदि देवों की सहकारिता के साथ शरीरके स्वास्थ्य का कितना धनिष्ठ संबंध है ।



शब्द “ सुवर्णका शरीरमें घुस जाने ” का भाव बताते हैं अर्थात् यह केवल शरीर पर धारण करनाही नहीं प्रत्युत अन्यान्य औषधियोंके रसोंके समान इसका अंदर ही सेवन करना चाहिये । शरीरपर सोनेका धारण करना और सुवर्णका अंदर सेवन करना, इन दोनों रीतियोंसे मनुष्य पूर्वोक्त गुण बढ़ाने द्वारा अपना दीर्घ आयुष्य प्राप्त कर सकता है । अब चतुर्थ मंत्र देखिये—

### काली कामधेनुका दूध ।

इस चतुर्थ मंत्रमें कहा है—कालरूपी संवत्सरका ( काली कामधेनुका ) दूध जो ऋतुओंके द्वारा मिलता है, उससे मनुष्यकी पूर्णता करते हैं । इस कार्यमें इन्द्र अग्नि विश्वे देव आदि सब पूर्णतासे अनुकूल रहें । ”

संवत्सर—वर्ष अथवा काल—यह एक कामधेनु है । काल संबंधी यह धेनु होनेसे इसको काली धेनु कहते हैं, यह इस लिये कामधेनु कही गई है कि मनुष्यादिकोंके इच्छित फल धान्य आदि पदार्थ ऋतुओंके अनुकूल देकर यह मनुष्यादि प्राणियों की पुष्टी करती है । प्रत्येक ऋतुके अनुकूल नाना प्रकार के फल और फूल संवत्सर देता है, इस लिये वेदमें संवत्सर को पिताभी कहा है और यहां मधुर दूध देनेवाली कामधेनु कहा है । हरएक ऋतुमें कुछ नवीन फल, फूल, धान्य आदि मिलता है, यही इस धेनुका दूध है । यह दूध हरएक ऋतु इस संवत्सर रूपी गौसे निचोडकर मनुष्यादि प्राणियोंको देते हैं, यह अद्भुत अलंकार इस मंत्रमें बताया है । पाठक इस काव्यपूर्ण अलंकार का आस्वाद यहां ले ।

प्रत्येक मास में, प्रत्येक ऋतुमें तथा प्रत्येक कालमें जो जो फल फूल उत्पन्न होते हैं उनका योग्य उपयोग करनेसे मनुष्यके बल, तेज, वीर्य, आयुष्य आदि बढ़ सकते हैं । यह इस मंत्रका आशय हरएक मनुष्यको मनन करने योग्य है । मनुष्य अपने पुरुषार्थ प्रयत्नसे ऋतुके अनुसार फल फूल धान्य आदिकी अधिक उत्पत्ति करे और उनके उपयोग से मनुष्योंको लाभ पहुंचावे ।

पूर्व मंत्रमें “ ( अपां वनस्पतीनां च वीर्याणि ) जल तथा वनस्पतियोंके वीर्य ” धारण करनेका जो उपदेश हुआ है उसीका स्पष्टीकरण इस चतुर्थ मंत्रने किया है । जिस ऋतुमें जो जल और जो वनस्पति उत्तम वीर्यवान् प्राप्त होनेकी संभावना हो, उस ऋतुमें उसका संग्रह करके, उसका सेवन करना चाहिये । और इस प्रकार आयु, बल, तेज, कांति, शक्ति, वीर्य आदि गुण अपने में बढ़ाने चाहिये ।



यह वेदका उपदेश मनन करने और आचरण में लाने योग्य है । इतना उपदेश करनेपर भी यदि लोग निर्वीर्य, निःसत्त्व, निस्तेज, निर्बल रहेंगे और वीर्यवान बननेका यत्न नहीं करेंगे तो वह मनुष्यों का ही दोष है । पाठक इस स्थानपर विचार करें और निश्चय करें कि वेदका उपदेश आचरणमें लानेका यत्न वे कितना कर रहे हैं और कितना नहीं । जो वैदिक धर्मी लोग अपने वैदिक धर्मके उपदेश को आचरण में नहीं ढालते वे शीघ्र प्रयत्न करके इस दिशासे योग्य सुधार अवश्य करें और अपनी उन्नतिका साधन करें ।

इस मंत्रके उत्तरार्धका भाव भी मनन करने योग्य है । “इन्द्र अग्नि आदि सब देव इसकी अनकूलतासे सहायता करें ” अग्नि आदि देवताओंकी सहायताके बिना कौन मनुष्य कैसा उन्नतिको प्राप्त हो सकता है ? अग्निही हमारा अन्न पकाता है, जलही हमारी तृषा शांत करता है, पृथ्वी हमें आधार देती है, बिजुली सबको चेतना देती है, वायु सबका प्राण बनकर प्राणियोंका धारण करता है, सूर्यदेव सबको जीवन शक्ति देता है, चंद्रमा अपनी किरणोंद्वारा वनस्पतियोंका पोषण करने के हमारा सहायक बनता है, इसी प्रकार अन्यान्य देव हमारे सहायक हो रहे हैं । इन के प्रतिनिधि हमारे शरीर में रहते हैं और उनके द्वारा ये सब देव अपने अपने जीवनांश हमतक पहुंचा रहे हैं । इस विषयमें इस के पूर्व बहुत कुछ लिखा गया है, इस लिये यहां अधिक विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

इतने विवरणसे यह बात पाठकोंके मन में आगई होगी कि अग्नि आदि देवताओंकी सहायता किस रीतिसे हमें हो रही है और यदि इन की सहायता अधिक से अधिक प्राप्त करने और उससे अधिकसे अधिक लाभ उठाने की विधि ज्ञात हो गई, तो मनुष्योंका बहुत ही लाभ हो सकता है । आशा है कि पाठक इसका विचार करेंगे और अपना आयु, आरोग्य बल और वीर्य बढ़ा कर जगत् में यशस्वी होंगे ।

यहां षष्ठ अनुवाक और

प्रथम काण्ड समाप्त ।



## प्रथम काण्ड का मनन ।

### थोडासा मनन ।

इस प्रथम काण्डमें दो प्रपाठक, छः अनुवाक, पैंतीस सूक्त और १५३ मंत्र हैं ।  
इस काण्डके सूक्तोंके ऋषि, देवता, और विषय बतानेवाला कोष्टक यहां देते हैं—  
जो पाठक इस काण्डका विशेष मनन करना चाहते हैं उनको यह कोष्टक बहुत लाभ  
दायक होगा—

### अथर्व वेद प्रथम काण्ड के सूक्तों का कोष्टक ।

सूक्त	ऋषि	देवता	गण	विषय
१	अथर्वा	वाचस्पति	वर्चस्यगण	मेधाजनन
२	"	पर्जन्य	अपराजितगण सांग्रामिक गण	विजय
३	"	मंत्रोक्त(पृथ्वी, मित्र, वरुण, चंद्र, सूर्य)	—	आरोग्य
४	सिंधुद्वीपः	आपः	—	"
५	"	"	—	"
६	"	"	—	"
( इति प्रथमोऽनुवाकः )				
७	चातनः	इन्द्राग्नी	—	शत्रुनाशन
८	"	अग्निः, बृहस्पतिः	—	"
९	अथर्वा	वस्वादयः	वर्चस्य गण	तेजकी प्राप्ति
१०	"	असुरो वरुणः	—	पापनिवृत्ति
११	"	पूषा	—	सुखप्रसूति

( इति द्वितीयोऽनुवाकः )



१२	भृग्वंगिराः	यक्ष्मनाशन	तक्मनाशनगण	रोगनिवारण
१३	"	विद्युत्	---	ईशानमन
१४	"	यमो वरुणो वा	---	कुलवधुविवाह
१५	अथर्वा	सिन्धु	----	संगठन
१६	चातनः	अग्नि, इंद्र, वरुणः	शत्रुनाशन गण	शत्रुनाशन
( इति चतुर्थोऽनुवाकः प्रथमः प्रपाठकश्च समाप्तः । )				
१७	ब्रह्मा	योषित्	----	रक्तस्त्राव-दूरीकरण
१८	द्रविणोदाः	विनायक, सौभाग्यं	---	सौभाग्यवर्धन
१९	ब्रह्मा	ईश्वरः, ब्रह्म	सांग्रामिकगण	शत्रुनाशन
२०	अथर्वा	सोम	---	महान शासक
२१	"	इन्द्रः	अभयगण	प्रजापालन

( इति चतुर्थोऽनुवाकः )

२२	ब्रह्मा	सूर्यः, हरिमा, हृद्रोगः	---	हृद्रोग तथा कामिला रोग नाशन
२३	अथर्वा	ओषधिः	---	कुष्ठनाशन
२४	ब्रह्मा	आसुरी वनस्पतिः	---	"
२५	भृग्वंगिराः	अग्निः, तक्मा	तक्मनाशनगण	ज्वरनाशन
२६	ब्रह्मा	इन्द्रादयः	स्वस्त्ययनगण	सुखप्राप्ति
२७	अथर्वा	इन्द्राणी	"	विजयी स्त्री
२८	चातनः	स्वस्त्ययनं	"	दुष्टनाशन

( इति पंचमोऽनुवाकः )

२९	वसिष्ठः	अभीवर्तमणिः	---	राष्ट्रवर्धन
३०	अथर्वा	विश्वेदेवाः	आयुष्यगण	आयुष्यवर्धन
३१	ब्रह्मा	आशापालाः, वास्तोष्पतिः	वास्तुगण	आशापालन
३२	"	द्यावापृथिवी	---	जीवनतत्त्व
३३	शन्ताति	आपः । चन्द्रमाः	शांतिगण	जल
३४	अथर्वा	मधुवल्ली	----	मीठा जीवन
३५	"	हिरण्यं, इन्द्राग्नी, विश्वेदेवाः	---	दीर्घायु

( इति षष्ठोऽनुवाको द्वितीयः प्रपाठकश्च समाप्तः )

इति प्रथमं काण्डम् ।

इन सूक्तोंका मनन करनेके लिये ऋषि और गणोंका विभाग जाननेकी भी अत्यंत आवश्यकता है इस लिये वे कोष्टक नीचे देते हैं—



## ऋषि विभाग ।

- १ अथर्वा ऋषिः— १-३; ९-११; १५; २०, २१; २३; २७; ३०; ३४, ३५ इन चौदह सूक्तों का अथर्वा ऋषि है ।
- २ ब्रह्मा ( किंवा ब्रह्म ) ऋषिः—१७, १९, २२, २४. २६, ३१, ३२, इन सात सूक्तोंका ऋषि ब्रह्मा है ।
- ३ चातन ऋषिः—७, ८, १६, २८ इन चार सूक्तोंका चातन ऋषि है ।
- ४ भृग्वंगिरा ऋषिः— १२—१४; २५ इन चार सूक्तोंका भृग्वंगिरा ऋषि है ।
- ५ सिंधुद्वीप ऋषिः—४—६ इन तीन सूक्तोंका सिंधुद्वीप ऋषि है ।
- ६ द्रविणोदा ऋषिः— १८ वे एक सूक्तका यह ऋषि है ।
- ७ वसिष्ठ ऋषिः— २९ वे एक सूक्तका यह ऋषि है ।
- ८ शन्ताती ऋषिः—३३ वे एक सूक्तका यह ऋषि है ।

इस प्रकार आठ ऋषियोंके देखे मंत्र इस काण्डमें हैं । यह जैसा ऋषियोंके नामसे सूक्त विभाग हुआ है, उसी प्रकार एक एक ऋषिके मंत्रों में किन किन विषयों का विचार हुआ है यह अब देखिये—

- १ अथर्वा ऋषि—मेधाजनन, विजयप्राप्ति, आरोग्यप्राप्ति, तेजःप्राप्ति, पापनिवृत्ति, सुखप्रसूति, संगठन, राजशासन, प्रजापालन, कुष्ठरोगनिवृत्ति, विजयी स्त्री, आयुष्यवर्धन, मीठा जीवन, आयुष्य बलादिसंवर्धन ।
- २ ब्रह्माऋषि— रक्तस्राव दूरकरना, शत्रुनाशन, संग्राम, हृदय तथा कामिला रोग-दूरीकरण, कुष्ठनाशन, सुखवर्धन, आशापालन, दीर्घजीवन ।
- ३ चातन ऋषिः—शत्रुनाशन, दुष्टनाशन ।
- ४ भृग्वंगिरा ऋषिः—रोगनिवारण, ज्वरनाशन, ईशनमन, विवाह ।
- ५ सिंधुद्वीप ऋषिः—जलसे आरोग्य ।
- ६ द्रविणोदा ऋषिः— सौभाग्यवर्धन ।
- ७ वसिष्ठ ऋषिः — राष्ट्रसंवर्धन ।
- ८ शन्ताती ऋषिः— वृष्टि जलसे स्वास्थ्य ।

इस प्रकार किन ऋषियोंके नामोंसे किन किन विषयोंका संबंध है यह देखना बड़ा बोध प्रद होता है । ( १ ) सिंधुद्वीप ऋषिके नाममें “ सिंधु ” शब्द जल प्रवाह का



वाचक है और यही जल देवताके मंत्रोंका ऋषि है । ( २ ) चातन ऋषि के नामका अर्थात् “चातन” शब्दका अर्थ “हंकालना, घबरादेना, भगादेना, शत्रुको उखाड़ देना” है और इस ऋषिके सूक्तोंमें भी यही विषय है । इस प्रकार सूक्तोंके अंदर आनेवाला विषय और ऋषिनामोंका अर्थ इसका कई स्थानोंपर घनिष्ठ संबंध दिखाई देता है । इसका विचार करना योग्य है ।

### सूक्तों के गण ।

जिन प्राचीन मुनियोंने अथर्व सूक्तों पर विचार किया था उन्होंने इन सूक्तों के गण बना दिये हैं । एक एक गणके संपूर्ण सूक्तों का विचार एक साथ होना चाहिये । ऐसा विचार करने से अर्थज्ञान भी शीघ्र होता है और शब्दोंके अर्थ निश्चित करना भी सुगम हो जाता है । इस प्रथम कांडके पैंतीस सूक्तों में कई सूक्त कई गणोंके अंदर आ गये हैं और कई गणोंमें परिगणित नहीं हुए हैं । जो गणोंमें परिगणित नहीं हुए हैं उनको अर्थ की दृष्टिसे हम अन्यगणोंके साथ पढ़ सकते हैं । इस प्रकार गणशः विचार करने से सूक्तों का बोध शीघ्र हो जाता है, देखिये —

१ वर्चस्य गण— इसके सूक्त १ , ९ ये हैं । तथापि तेज, आरोग्य आदि बढ़ाने का उपदेश करनेवाले सूक्त हम इस गणके साथ पढ़ सकते हैं, जैसे — सूक्त ३ - ६ , १८ , २५ , २६ , ३० , ३१ , ३४ , ३५ आदि ।

२ अपराजित गण, सांघ्रामिक गण— इसके सूक्त २ , १९ ये हैं तथापि इसके साथ संबंध रखनेवाले अभयगणके सूक्त हैं, तथा राष्ट्र शासन और राज्य पालन के सब सूक्त इनके साथ संबंधित हैं, जैसे—सूक्त ७ , ८ , १५ , १६ , १७ , २० , २१ , २७ , २९ , ३१ , आदि ।

३ तक्मनाशन गण— इस गणके सूक्त १२ , २५ ये हैं तथापि सब रोग नाशक और आरोग्य वर्धक सूक्त इस गणके सूक्तों के साथ पढ़ना चाहिये । जैसे सूक्त ३ - ६ ; १७ , २२ , २३ , २५ , ३३ , ३५ आदि—

४ स्वस्त्ययनगण — इस गणके सूक्त २६ , २७ ये हैं ।

५ आयुष्यगण — इस गणके सूक्त ३० , ३५ ये हैं, तथापि स्वस्त्ययन गण,



वर्चस्यगण, तक्मनाशनगण तथा शांतिगणके सूक्तोंका इससे संबंध है ।

६ शांतिगण - जल देवताके सब सूक्त इस गणमें आते हैं ।

७ अभयगण - इसका सूक्त २१ वां है, तथापि इसके साथ संबंध रखनेवाले गण स्वस्त्ययनगण, अपराजितगण, तक्मनाशनगण, चातनसूक्त ये हैं ।

इस प्रकार यह सूक्तोंके गणोंका विचार है और इस रीतिसे सूक्तोंका विचार होनेसे बहुत ही बोध प्राप्त होता है ।

### अध्ययन की सुगमता ।

कई पाठक शङ्का करते हैं कि एक विषयके सब सूक्त इकट्ठे क्यों नहीं दिये और सब विषयोंके मिलेजुले सूक्त ही सब काण्डोंमें क्यों दिये हैं? इसका उत्तर यह है कि यदि जल आदि विषयोंके संपूर्ण सूक्त इकट्ठे होते, तो अध्ययन करने वालेको विविधताका अभाव होनेके कारण अध्ययन करनेमें बड़ा कष्ट हो जाता । अध्ययनकी सुविधा के लिये ही मिलेजुले सूक्त दिये हैं । अच्छी पाठशालाओंमें घण्टे दो घण्टेमें भिन्न भिन्न विषय पढ़ाये जाते हैं, इसका यही कारण है, कि पढ़ने वालोंके मस्तिष्क को कष्ट न हो । सवेरेसे शामतक एक ही विषयका अध्ययन करना हो तो पढ़ने पढ़ानेवालोंको अतिकष्ट होते हैं । इस बातका अनुभव हरएकको होगा ।

इस से पाठक जान सकते हैं कि विषयोंकी विभिन्नता रखनेके लिये विभिन्न विषयों के सूक्त मिलेजुले दिये हैं ।

इसमें दूसरा भी एक हेतु प्रतीत होता है, वह यह है कि, पूर्वापर संबंध का अनुमान करने और पूर्वापर संबंधका स्मरण रखनेका अभ्यास हो । यदि जलसूक्त प्रथम कांडमें आया हो, तो आगे जहां जल सूक्त आजाय वहां वहां इसका स्मरण पूर्वक अनुसंधान करना चाहिये । इस प्रकार स्मरण शक्ति भी बढ सकती है । स्मरण शक्तिका बढना और पूर्वापर संबंध जोडनेका अभ्यास होना ये दो महत्त्व पूर्ण अभ्यास इस व्यवस्थासे साध्य होते हैं ।

इस प्रथम काण्डके दो प्रपाठक हैं, इस "प्रपाठक" का तात्पर्य ये दो पाठ ही हैं । दो प्र-पाठ-क" अर्थात् दो विशेष पाठ हैं । गुरुसे एकवार जितना पाठ लिया जाता है उतना एक प्र-पाठ-क होता है । इस प्रकार यह प्रथमकाण्ड दो पाठोंकी पढ़ाई है । अथवा एक अनुवाक का एक पाठ अल्पबुद्धिवालोंकेलिये माना जाय तो यह प्रथम काण्ड की पढ़ाई छः पाठों की मानी जा सकती है । एक अनुवाकमें भी विषयोंकी विविधता है और



एक प्रपाठकमें भी पाठ्य विषयोंकी विविधता है और इस विविधता के कारण ही पढ़ने पढ़ानेवालोंको बड़ी रोचकता उत्पन्न हो सकती है ।

आजकल इतनी पढ़ाई नहीं हो सकती, यह बुद्धि कम होने या ग्राहकता कम होनेका प्रमाण है । यह अथर्ववेद प्रबुद्ध विद्यार्थी के ही पढ़नेका विषय है । इसलिये अच्छे प्रबुद्ध तथा अन्य शास्त्रोंमें कृतपरिश्रम उक्त प्रकार पढ़ाई कर सकते हैं; इसमें कोई संदेह नहीं है ।

## अथर्ववेदके विषयोंकी उपयुक्तता ।

जो पाठक इस प्रथम कांडके सब मंत्रोंको अच्छी प्रकार पढ़ेंगे और थोड़ा मनन भी करेंगे तो उनको उसीसमय इस बातका पता लग जायगा कि, इस वेद का उपदेश इस समय में भी नवीन और अत्यंत उपयोगी तथा आज ही अपने आचरणमें लाने योग्य है । सूक्त पढ़नेके समय ऐसा प्रतीत होता है कि, यह उपाय आज ही हम आचरण में लायेंगे और अपना लाभ उठावेंगे । उपदेश की जीवितता और जाग्रतता इसी बात में पाठकोंके मनमें स्पष्ट रूपसे खड़ी हो जाती है ।

वेद सब ग्रंथोंसे पुराने ग्रंथ होने पर भी नवीन से नवीन हैं और यही इनकी “सनातन विद्या” है; यह विद्या कभी पुरानी नहीं होती । जो जिस समय और जिस अवस्थामें पढ़ेगा उसको उसी अवस्थामें और उसी समय अपनी उन्नति का उपदेश प्राप्त हो सकता है । इस प्रथम कांडके सूक्त पढ़कर पाठक इस बातका अनुभव करें और वेद विद्याका महत्त्व अपने मनमें स्थिर करें ।

ये उपदेश जैसे व्यक्तिके विषयमें उसी प्रकार सामाजिक, राष्ट्रीय और धर्म प्रचार के विषयमें भी सत्य और सनातन प्रतीत होंगे । इस समय जिनका उपयोग नहीं हो सकता ऐसा कोई विधान इसमें नहीं है । परंतु इन उपदेशोंका महत्त्व देखनेके और अनुभव करनेके लिये पाठकोंको इस काण्डका पाठ कमसे कम दस पांच बार मनन पूर्वक करना चाहिये ।

## व्यक्तिके विषयमें उपदेश ।

प्रथम काण्डके ३५ सूक्तोंमें करीब १६ सूक्त ऐसे हैं कि जो मनुष्य के स्वास्थ्य, आरोग्य, नीरोगता, बल, आयुष्य, बुद्धि आदि विषयोंका उपदेश देनेके कारण मनुष्यके दैनिक व्यवहार के साथ संबंध रखते हैं । हरएक मनुष्य इस समय में भी इनके उपदेश



से लाभ उठा सकता है । आरोग्य वर्धन के वैदिक उपायोंकी ओर हम पाठकोंका विशेष ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं । जो इस गणके सूक्त हैं उनका मनन पाठक सबसे अधिक करें और अपनी परिस्थितिमें उन उपायोंको ढालनेका जितना हो सकता है उतना यत्न करें । आरोग्य वर्धन के उपायोंमें सारांशरूपसे इन उपायोंका वर्णन विशेष बलके साथ इस काण्डमें किया है—

१ जलसे आरोग्य— जलसे आरोग्य होता है, शरीरमें शांति, सुख, नीरोगता आदि प्राप्त होती है यह बतानेवाले जल देवता के चार सूक्त दिये हैं । अनेक प्रकारके जलोंका इन सूक्तोंमें वर्णन करनेके बाद “ दिव्य जल ” अर्थात् मेघोंसे प्राप्त होने वाले जलका महत्त्व बताया है वह कभी भूलना नहीं चाहिये । वृष्टिके दिनोंमें—जिन दिनोंमें शुद्ध जलकी वृष्टि होती है— उन दिनोंमें इस जलका संग्रह हरएक गृहस्थी कर सकता है । जहां वृष्टि बहुत थोड़ी होती है वहांकी बात छोड़ ही जाय तो अन्यत्र यह जल सालभरके पीनेके लिये पर्याप्त प्रमाणमें मिल सकता है । परंतु स्मरण रखना चाहिये कि घरके छप्पर पर जमा हुआ जल लेना नहीं चाहिये परंतु छत पर खुले और बड़े मुख वाला बर्तन रखकर उस में सीधी वृष्टिधाराओं से जल संगृहित करना चाहिये । अर्थात् ऐसा इंतजाम करना चाहिये कि वृष्टि जल की धाराएं सीधी अपने बर्तन में आजाय । बीचमें वृक्ष, छप्पर आदि किसी का स्पर्श न हो । इस प्रकारका इकट्ठा किया हुआ जल स्वच्छ और निर्मल बोतलों में भर कर रखने से सालभर रहता है और बिगड़ता नहीं । यह जल यदि अच्छा रखा तो दो वर्षतक रहता है और इसका यह न बिगड़ने का गुण ही मनुष्य का आरोग्य वर्धन करता है ।

उपवासके दिन इसका पान करनेसे शरीरके सब दोष दूर होते हैं । चौबीस घंटोंका उपवास कर के उस में जितना यह दिव्य जल पिया जाय उतना पीना चाहिये । यह प्रयोग हमने अजमाया है और हर अवस्थामें इस से लाभ हुआ है । इस प्रकारके उपवास के पश्चात् थोड़ा थोड़ा दूध और घी खाना चाहिये और भोजन अत्यन्त लघु होना चाहिये । हर दिन भी पीने के लिये इसका उपयोग करनेवाले बड़ा ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं । इसका नाम “ अमरवारुणी का पान ” है । इसी को “ सुरा ” भी कहते हैं । सुरा शब्द केवल मद्य अर्थमें आजकल प्रयुक्त होता है, परंतु प्राचीन ग्रंथोंमें इसका अर्थ “ वृष्टि जल ” भी था । वरुण राजाका साम्राज्य मेघ मंडल में है और वही इस आरोग्य वर्धक वृष्टि जल को देता है । इसका वर्णन वेदके अनेक सूक्तों में है ।

वेदका यह आरोग्य प्राप्तिका सीधा, सुगम और व्ययके विना प्राप्त होनेवाला उपाय



यदि पाठक व्यवहारमें लायेंगे तो वे बड़ा ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये हम सानुरोध पाठकों से निवेदन करते हैं कि वे इस विषयमें दत्तचित्त हों और अपना लाभ उठावें।

### आरोग्य साधनके अन्य उपाय ।

जलके पश्चात् आरोग्य साधनके उपाय जो वेदने बताये वे अब देखिये—

( २ ) तैजस तत्त्वोंसे आरोग्य - अग्नि, विद्युत् और सूर्य किरण ये तीन तैजस तत्त्व हैं। इनसे आरोग्य प्राप्त करने के विषयमें वेदमंत्रोंमें बारंबार उपदेश आता है। इन में से सूर्य प्रकाश का महत्त्व तो सबसे अधिक है, यहाँ तक इसका महत्त्व वर्णन किया है कि इसको प्राणदाता, जीवन दाता, इतना ही नहीं परंतु प्रत्यक्ष आत्मा भी कहा है। सूर्य प्रकाशसे आरोग्य और दीर्घ आयु प्राप्त होनेके विषयमें वेदका निश्चित और असंदिग्ध मत है। संपूर्ण आधुनिक शास्त्र भी आजकल इसकी पुष्टि कर रहे हैं।

जिस प्रकार वृष्टि जल गरीबसे गरीब को और अमीर से अमीरको प्राप्त हो सकता है, उसी प्रकार सूर्य प्रकाश भी हरएक को प्राप्त हो सकता है। धनसे प्राप्त होने वाले आरोग्य साधक उपाय तो धनी लोगही प्राप्त कर सकते हैं, गरीबोंको उनसे कोई लाभ नहीं हो सकता। परंतु जो साधन वेद बता रहा है, वे उपाय गरीब को भी प्राप्त हो सकते हैं। यह इन साधनोंका महत्त्व देखें और इन उपदेशोंकी सच्चाई अनुभवमें लानेका यत्न करें।

आजकल कपडे बहुत बर्ते जाते हैं इसलिये शरीरकी चमड़ी अति कोमल हो रही है। इस कारण व्याधियाँ शरीरमें शीघ्र घुसती हैं। जो लोग नंगे शरीर खेत आदिमें काम करते हैं उनको उतनी व्याधियाँ नहीं होतीं, जितनी कमरोंमें विविध तंग कपडे पहनने वाले बाबु लोगोंको होती हैं; इसका कारण यही है कि, जिनका शरीर सूर्य किरणोंके साथ संबंध होनेके कारण निरोग रहता है वे तन्दुरुस्त रहते हैं और जो नानाकपडे पहननेके कारण कमजोर चमड़ी वाले बनते हैं वे अधिक बीमार हो जाते हैं।

रामायण महाभारत के समयमें रामकृष्णादि वीर अतिदीर्घ आयुवाले थे। ये वीर लोग धोती पहनते थे और धोती ही ओढ़ते थे। प्रायः अन्य समय शरीरपर एक उत्तरीय पहनते थे। पाठक इनके वर्णन यदि पढ़ेंगे तो उनके ध्यानमें यह बात आजायगी कि सभाओंमें भी ये लोग केवल धोती पहन कर ही बैठते थे। इसकारण इनके शरीरके साथ वायु और सूर्य प्रकाशका संबंध अच्छी प्रकार होजाता था। अनेक कारणोंमें यह भी एक कारण है कि जिस हेतु वे अतिदीर्घायु वाले और अति बलवान् थे। वह



साजीदगी इस समय नहीं रही है और इस समय बड़ी कृत्रिमता हमारे जीवन व्यवहारमें आगयी है, इसीका परिणाम हमारे अल्पायु दुर्बल और रोगी होनेमें हो रहा है । पाठक वेदके उपदेशके साथ इस इतिहासिक बातकाभी मनन करें ।

सूर्य प्रकाश इतने विपुल प्रमाणमें भूमिपर आता है कि वह आवश्यकतासे कई गुणा अधिक है । इतना होते हुएभी तंग गलियें, तंग मकान, अंधेर कमरे और उनमें अत्यधिक मनुष्योंकी संख्या होनेके कारण जीवन देनेवाला सूर्यनारायण हमारे आरोग्यवर्धन के लिये प्रतिदिन आता है, तथापि हमारेलिये वह उतना लाभ नहीं पहुंचा सकता जितना कि वह पहुंचाने में समर्थ है । ये सब दोष मनुष्यकृत हैं । ऋषिजीवन का हमें इस विषयमें बहुत विचार करना चाहिये और जहांतक हो सके वहां तक यत्न करके वह साजीदगी हमारे खानपान, वस्त्राभूषण तथा अन्यान्य व्यवहारमें लानी चाहिये । वेदके उपदेशानुसार ऋषिजन अपना व्यवहार रखते थे, इस लिये ऋषि लोगोंको अतिदीर्घ आयु प्राप्त होती थी, और हम उसके बिलकुल उलटे जा रहे हैं, इस लिये मृत्युके वशमें हम अधिक हो रहे हैं ।

( ३ ) वायुसे आरोग्य—सूर्य प्रकाशके समान ही वायुका महत्त्व है । यही प्राण बनकर मनुष्यादि प्राणियोंके शरीरोंमें रहता है और इसीके कारण प्राणी प्राण धारण करते हैं । यदि वायु अशुद्ध हुआ तो मनुष्य रोगी होनेमें बिलकुल देरी नहीं लगेगी । यह बात सब लोग जानते हैं, मानते हैं और बोलते भी हैं; परंतु इसका पालन कितने लोग करते हैं, इसका विचार करनेसे पता लग जायगा कि, इस विषयकी मनुष्योंकी उदासीनता निंदनीय ही है । खुली वायु और खुला सूर्य प्रकाश मनुष्योंको पूर्ण आयु प्रदान करनेमें समर्थ है, परंतु जो मनुष्य उनसे दूर भागते हैं उनका लाभ कैसा हो सकता है ?

वृष्टिजल, सूर्य प्रकाश और शुद्ध वायु ये तीन पदार्थ वेद मंत्रों द्वारा आरोग्य बढ़ाने वाले बताये हैं और आजकल के शास्त्रभी इस बातकी पुष्टि कर रहे हैं, इतनाही नहीं परंतु युरोप अमरिकामें जहां शीत अधिक होता है, उन देशोंमें भी ऐसी संस्थाएं स्थापित हुई हैं कि जहां आरोग्य वर्धन के लिये सूर्य प्रकाशमें करीब करीब जंगा रहना आवश्यक माना गया है । जिन लोगोंने तंग कपडे पहननेके रिवाज जारी किये, वे ही युरोप अमरिकाके लोग इस प्रकार ऋषिजीवन की ओर झुक रहे हैं, यह देख कर हमें वेदकी सचाईका जगत् में विजय हो रहा है यह अनुभव होनेसे अधिक ही आनंद होता है । विना प्रचार किये हुए ही लोग भूलते और भटकते हुए वैदिक सचाईका इस प्रकार ग्रहण कर रहे हैं; ऐसी अवस्थामें यदि हम अपने वेद का अध्ययन करेंगे,



उन वेद मंत्रोंके उपदेशको अपने आचरण में ढालेंगे, और अनुभव लेने के पश्चात् अपने धार्मिक जीवनसे उस सचाईका जगत्में प्रचार करेंगे तो जगत् में इस सचाईका विजय होनेमें कोई देरी नहीं लगेगी ।

इस लिये हम पाठकोंसे निवेदन करना चाहते हैं कि वे वेदका पाठ केवल मनोरंजकता के लिये न करें, केवल पारलौकिक भावनासे भी न करें, प्रत्युत वह उपदेश इस जगत् के व्यवहार में किस प्रकार ढाला जा सकता है; इसका विचार करते हुए वेदका अध्ययन करें । तब इसके महत्त्वका पता विशेष रीतिसे लग जायगा ।

### राष्ट्रीय जीवन ।

जैसी वैयक्तिक जीवनके लिये वैदिक उपदेशकी उपयोगिता है, उसी प्रकार सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के लिये भी वेदके उपदेश अति मनन करने योग्य हैं । यह विषय आगेके कांडोंमें विशेष रीतिसे आनेवाला है, और वहांही इसका अधिक निरूपण होगा । इस प्रथम कांडके भी राष्ट्र विषयक मंत्र बड़े ओजस्वी और अत्यंत बोध प्रद हैं ।

उनचीसवें सूक्तमें “राष्ट्रके लिये मुझे बढाओ,” तथा “राष्ट्रकी सेवा करनेके लिये यह आभूषण मेरे शरीरपर बांधा जावे” इत्यादि ओजस्वी उपदेश हरएक समयमें और हरएक राष्ट्रके मनुष्यों और राजपुरुषोंके लिये आदर्श रूप हैं । राष्ट्रीय दृष्टिसे यह वासिष्ठ सूक्त हरएक मनुष्यको विचार करने योग्य है ।

इस प्रथम कांडमें कई महत्त्वपूर्ण विषय आगये हैं उन सब का यहां विचार करनेके लिये स्थान नहीं है । उस उस सूक्तके प्रसंगमें ही विशेष बातका दिग्दर्शन किया है । इसलिये उसको दुहराने की यहां कोई आवश्यकता ही नहीं है । पाठक इस कांडका बारंबार मनन करेंगे तो मननसे उनके मनमें ही विशेष बातें स्वयं स्फुरित हो जायंगी, जो ऊपरके विवरणमें लिखी नहीं हैं । वेदका अर्थ जाननेके लिये मनन ही करना चाहिये ।

आशा है कि पाठक मनन पूर्वक इस कांडका अभ्यास करेंगे और इस उपदेशसे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने का यत्न करेंगे तथा जो विशेष बात अनुभव में आ जायगी उसका प्रकाशन जनताकी भलाई के लिये करेंगे । इस प्रकार करने से सब का ही भला हो जायगा ।

निवेदक

विजया दशमी }  
आश्विन सं० १९८४ }

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर  
स्वाध्याय मंडल, औंध जि० सातारा



# अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

## प्रथमकाण्डकी विषय-सूची ।

सूक्त	विषय	पृष्ठ	सूक्त	विषय	पृष्ठ
	प्राथमिक वक्तव्य ।	१		पर्जन्यसे आरोग्य ।	२७
	अथर्ववेद प्रथम काण्ड ।	२		मित्र ( प्राण ) वायुसे आरोग्य ।	॥
१	मेधाजनन ।	३		वरुण ( जल ) देवसे आरोग्य ।	॥
	बुद्धिका संवर्धन करना ।	॥		चन्द्र ( सोम ) देवसे आरोग्य ।	२८
	मनन ।	१७		सूर्य देवसे आरोग्य ।	॥
	अथर्ववेदके विषयमें			पञ्च पाद पिता ।	॥
	स्मरणीय कथन ।	९		पृथ्वीमें जीवन ।	२९
	अथर्ववेदका महत्व ।	॥		मूत्रदोष निवारण ।	३०
	अथर्वशाखा ।	१०		पूर्वापर सम्बन्ध ।	३१
	अथर्वके कर्म ।	॥		शारीर शास्त्र का ज्ञान ।	३२
	मनका सम्बन्ध ।	१२	४	जल सूक्त ।	३३
	शान्तिकर्म के विभाग ।	१३	५	॥	३४
	मन्त्रोंके अनेक उद्देश्य ।	१५	६	॥	३५
	सूक्तोंके गण ।	॥		जलकी भिन्नता ।	३६
	अनुसंधान ।	१६		जलमें औषध ।	३७
२	विजय-सूक्त ।	१७		समता और विषमता ।	३८
	वैयक्तिक विजय ।	१८		बलकी वृद्धि ।	३९
	पिताके गुण-धर्म-कर्म ।	१९		दीर्घ आयुष्यका साधन ।	४०
	माताके गुण-धर्म-कर्म ।	॥		प्रजनन शक्ति ।	॥
	पुत्रके गुण-धर्म-कर्म ।	२०	७	धर्म-प्रचार-सूक्त ।	४१
	एक अद्भुत अलंकार ।	२१		अग्नि कौन है ?	४२
	कुटुम्ब का विजय ।	॥		ज्ञानी उपदेशक ।	४३
	पूर्वापर सम्बन्ध ।	२३		ब्रह्म क्षत्रिय ।	४४
	कुटुम्बका आदर्श ।	२४		इन्द्र कौन है ?	॥
	औषधि प्रयोग ।	॥		धर्मोपदेश का क्षेत्र ।	॥
	राष्ट्रका विजय ।	॥		दुष्टोंका सुधार ।	४६
३	आरोग्य सूक्त ।	२५		मित भोजन करो ।	४७
	आरोग्य का साधन ।	२६		दुष्ट जीवनका पश्चात्ताप ।	४८



धर्मोपदेशक कार्य चलावे ।	४८	धाईकी सहायता ।	७५
दुष्टोंकी पश्चात्तापसे शुद्धि ।	४९	सूचना ।	"
धर्मका दूत ।	५०	१२ श्वासादि-रोग-निवारण	
डाकुओंको दण्ड ।	"	सूक्त ।	७६
ब्राह्मण और क्षत्रियोंके प्रयत्नका		महत्त्वपूर्ण रूपक ।	७७
प्रमाण ।	५१	आरोग्य का दाता ।	७८
८ धर्म-प्रचार-सूक्त ।	५२	सूर्य किरणोंसे चिकित्सा ।	७९
धर्मोपदेशका परिणाम ।	५४	१३ अन्तर्यामी ईश्वरको नमन । ८१	
नवप्रविष्टका आदर ।	"	सूक्त की देवता ।	८२
दुष्टोंकी सन्तानका सुधार ।	५५	तप का महत्त्व ।	८४
घरोंमें प्रचार ।	५६	परम धाम ।	"
९ वर्चः-प्राप्ति-सूक्त ।	५७	युद्धमें सहायता ।	८५
देवताओंका सम्बन्ध ।	५८	नमन ।	"
उन्नतिका मूलमन्त्र ।	६०	१४ कुलवधू सूक्त ।	८६
विजय के लिये संयम ।	६१	पहिला प्रस्ताव ।	८७
ज्ञानसे जातिमें श्रेष्ठताकी प्राप्ति ।	६२	प्रस्ताव का अनुमोदन ।	८९
जनताकी भलाई करना ।	"	वरकी परीक्षा ।	"
उन्नतिकी चार सीढियां ।	६३	पति के गुणधर्म ।	९०
इन सूक्तोंका स्मरणीय उपदेश ।	६४	वधू परीक्षा ।	९१
१० असत्य भाषणादि पापों से		कन्याके गुणधर्म ।	"
छुटकारा !	६५	मंगनीका समय ।	९२
सूक्त का सम्बन्ध ।	६६	सिरकी सजावट ।	"
पापसे छुटकारा पानेका मार्ग ।	६७	मंगनीके पश्चात् विवाह ।	९३
एक शासक ईश्वर ।	"	१५ संगठन-महायज्ञ-सूक्त ।	९४
ज्ञान और भक्ति ।	६८	संगठन से शक्तिकी वृद्धि ।	९५
प्रायश्चित्त ।	"	यज्ञमें संगतिकरण ।	९७
पापी मनुष्य ।	६९	संगठन का प्रचार ।	"
११ सुख-प्रसूति-सूक्त ।	७०	पशुभाव का यज्ञ ।	"
प्रसूति प्रकरण ।	७२	पशुभाव छोड़नेका फल ।	९८
ईशभक्ति ।	"	१६ चोर-नाशन-सूक्त ।	९९
देवोंका गर्भमें विकास ।	७३	सीसेकी गोली ।	१००
गर्भवती स्त्री ।	"	शत्रु ।	"
गर्भ ।	७४		
सुख प्रसूतिके लिये आदेश ।	"		



आर्य वीर ।	१०१
१७ रक्तस्राव बन्द करना ।	१०२
घाव और रक्तस्राव ।	१०३
दुर्भाग्य की स्त्री ।	"
विधवाके वस्त्र ।	१०४
१८ सौभाग्य-वर्धन-सूक्त ।	१०५
कुलक्षण और सुलक्षण ।	१०६
वाणीसे कुलक्षणोंको हटाना ।	१०८
वाणीसे प्रेरणा ।	"
हाथों और पावोंका दर्द ।	१०९
सौभाग्यके लिये ।	"
सन्तान का कल्याण ।	"
१९ शत्रु-नाशन-सूक्त ।	११०
आन्तरिक कवच ।	१११
इस सूक्तके दो विभाग ।	११२
वैदिकधर्म का साध्य । ब्राह्मकवच "	
अन्य कवच । क्षात्र कवच ।	११३
दास भाव का नाश ।	"
२० महान् शासक ।	११४
पूर्व सूक्तसे सम्बन्ध ।	११५
आपसकी फूट हटादो ।	"
बडा शासक ।	११६
२१ प्रजापालक-सूक्त ।	११७
क्षात्र धर्म ।	११८
२२ हृदयरोग तथा कामिला रोग	
की चिकित्सा ।	११९
वर्ण चिकित्सा ।	१२०
सूर्य किरण चिकित्सा ।	"
परिधारण विधि ।	"
रूप और बल ।	१२१
रंगीन गौके दूधसे चिकित्सा ।	१२२
पथ्य ।	"
२३ श्वेत-कुष्ठ-नाशन-सूक्त ।	१२३

श्वेतकुष्ठ ।	१२४
निदान ।	"
दो भेद और उनका उपाय ।	"
रंगका घुसना ।	१२५
औषधियोंका पोषण ।	"
२४ कुष्ठ-नाशन सूक्त ।	१२६
वनस्पतिके माता पिता ।	१२७
सरूप-- करण ।	"
वनस्पति पर विजय ।	१२८
सूर्यका प्रभाव ।	"
सूर्यसे वीर्य प्राप्ति ।	"
२५ शीत—ज्वर—दूरीकरण	
सूक्त ।	१२९
ज्वरकी उत्पत्ति ।	१३०
ज्वरका परिणाम ।	१३१
हिमज्वरके नाम ।	१३२
नमः शब्द ।	१३३
२६ सुख-प्राप्ति-सूक्त ।	१३४
देवोंसे मित्रता ।	१३५
विशेष सूचना ।	१३६
२७ विजयी स्त्री का पराक्रम ।	१३७
इन्द्राणी ।	१३८
वीरस्त्री ।	"
शत्रुवाचक शब्द ।	१३९
तीन गुणा सात ।	१४०
निर्जरायु ।	"
२८ दुष्ट-नाशन-सूक्त ।	१४१
पूर्वापर सम्बन्ध ।	१४२
दुर्जनोके लक्षण ।	१४३
दुष्टों का सुधार ।	"
२९ राष्ट्र-संवर्धन-सूक्त ।	१४५
अनुसन्धान ।	१४७
अभीवर्त मणि ।	"



इस सूक्तका संवाद ।	१४७
राजाके गुण ।	१४८
राजचिह्न ।	१५०
शत्रुके लक्षण ।	"
सब की सहायता ।	१५१
केवल राष्ट्रके लिये ।	"

### ३० आयुष्य - वर्धन - सूक्त । १५३

आयुका संवर्धन ।	१५४
सामाजिक निर्भयता ।	१५५
देवोंके आधीन आयुष्य ।	१५६
हम क्या करते हैं ?	१५७
आदित्य देवोंकी जाग्रती ।	१५८
देवों के पिता और पुत्र ।	१५९
देवोंके स्थान ।	१६१
देवताओंके चार वर्ग ।	१६३

### ३१ आशा - पालक - सूक्त । १६५

दिक्पाल ।	१६६
देहमें चार दिक्पाल ।	१६७
आशा और दिशा ।	१६८
सूक्तका मनुष्य वाचक भावार्थ ।	"
चार द्वारोंकी चार आशाएँ ।	१६९

### विद्वति द्वारसे प्रवेश । (चित्र) १७०

द्वार, आशा ।	१७१
आरोग्यका सुधार ।	"
खानपान ।	"
मस्तकमें विद्वति द्वार । (चित्र)	१७२
पृष्ठ वंश ( चित्र )	"
विद्वतिद्वार, सहस्रारचक्र, पृष्ठ- वंशमें चक्रोंके स्थान । ( चित्र )	"
कामोपभोग ।	१७३
बंधनका नाश ।	"
अमर दिक्पाल ।	१७४

हवनसे पूजा ।	१७४
पापमोचन ।	१७६
चतुर्थ देव ।	१७७
दीर्घ आयु ।	१७८
विशेष दृष्टि ।	१७९

### ३२ जीवन रसका महासागर १८० ।

स्थूल सृष्टि ।	१८१
जीवन का रस ।	१८२
भूतमात्रका आश्रय ।	"
सनातन जीवन	१८३
जगत् के मातापिता	"
जीवन का एक महासागर	"
सबका एक आश्रय	१८४
स्थूल सूक्ष्म और कारण	"

### ३३ जल सूक्त । १८५

वृष्टिका जल	१८६
-------------	-----

### ३४ मधु विद्या । १८७

मधुविद्या	१८८
जन्म स्वभाव	१८९
मीठा जीवन	१९१
प्रतिज्ञा	"
मीठी बाड	१९२

### ३५ तेजस्विता, बल और

### दीर्घायुष्यकी प्राप्ति । १९३

दाक्षायण हिरण्य	१९५
दाक्षायणी विद्या	१९६
सुवर्ण धारण	"
राक्षस और पिशाच	१९८
सुवर्णके गुण	१९९
सुवर्ण का सेवन	"
शरीरमें देवोंके अंश ( चित्र )	२००
काली काम धेनुका दूध	२०१
प्रथम काण्डका मनन ।	२०३



# अथर्व वेदका सुबोध भाष्य ।

प्रथम काण्ड । मूल्य २) रु. डा. व्य.॥) वी. पी. से २॥। )

अथर्व वेद के सुबोध भाष्यका प्रथम काण्ड तैयार हुआ है । यह भाष्य धर्म जिज्ञासुओं के लिये अत्यंत उपयोगी है । जो एक बार पढ़ेंगे उनको इसकी सुबोधताका पता लग जायगा । यह इतना सुबोध है कि केवल भाषा जानने-वाला इसको अच्छी प्रकार समझ सकता है और लाभ उठा सकता है । अनुष्ठानके प्रयोग भी इसमें दिये हैं ।

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

## गुजराती पुस्तक ।

स्वाध्याय मंडलके निम्नलिखित पुस्तकों का गुजराती अनुवाद हो चुका है। पुस्तक निम्नलिखित पतेसे मिलेंगे।

बालकोंकी धर्म शिक्षा	१ ला. भाग	मूल्य. ० - १-०
" " "	२ रा. भाग	" ० - २-०
सूर्यभेदन व्यायाम		" ० - ६-०
आसन और आरोग्य	(कच्चा पुठा)	" ०-१२-०
	(पका पुठा)	" १ - ०-०

बापुभाई कु. पटेल

पुस्तक मिलनेका पता—

आर्य समाज, आणंद ( जिल्हा खेडा )

## Employment for millions STUDENTS' OWN MAGAZINE.

A Monthly English Teacher—Careers for Young men a speciality.


ANNUAL SUBSCRIPTION WITH SUPPLEMENTS, Rs. 3.

SAMPLE COPY POSITIVELY No.

APPLY TO—

CAPITAL INDUSTRIAL BUREAU, RAM GALL, LAHORE.





# छूत और अछूत ।

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ !! अत्यन्त उपयोगी !

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

- १ छूत अछूत के सामान्य कारण,
- २ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और  
किस प्रकार बढी,
- ३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
- ४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
- ५ वेदमें बताए हुए उद्योग भंद्दे,
- ६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
- ७ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था,
- ८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
- ९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
- १० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
- ११ वैदिक कालकी उदारता,
- १२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,
- १३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था ।

इस पुस्तकमें हरएक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण, इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है । यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है ।

प्रथम भाग म. १ )

द्वितीय भाग म. III )

अतिशीघ्र मंगवाइये

स्वाध्याय मंडल. औंध ( जि. सातारा )



ॐ

# वैदिक धर्म ।

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक मासिक पत्र ।

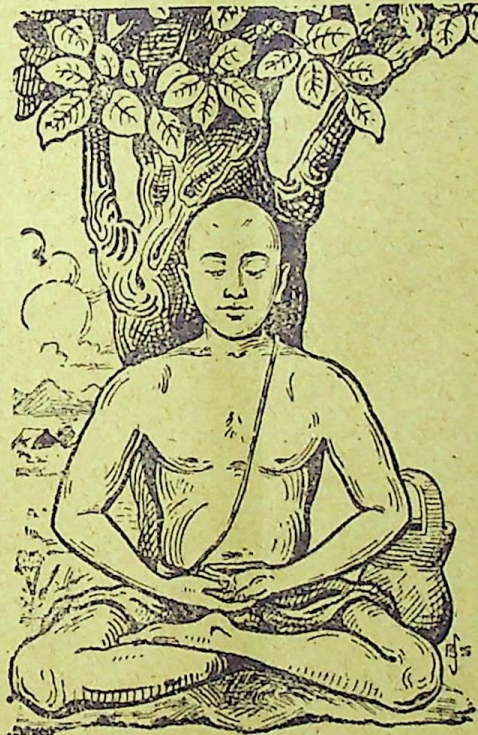
संपादक— श्री पाद दामदर सातवलेकर

वर्ष ८

अंक १२

क्रमांक

९६



मार्गशिर्ष

संवत् १९८४

दि-बर

सन १९२७

छपकर तैयार है।

## महानारायण की समालाचना

प्रथम भाग और द्वितीय भाग ।

प्रति भागका मूल्य ॥ ) डाकव्य ३ ) बी. पी. से ॥ २ )

मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औध ( जि. सातारा )

वार्षिक मूल्य— म० आ० से ४ ) बी. पी. से ४॥ ) विदेशके लिये ५ )



१ गौ देवोंका खजाना है	२४१	३ क्या योगी परोपकार नहीं करता?	२५०
२ गोमेध	४४२	५ प्रेतविद्या	२५९
६ अथर्ववेद द्वितीय काण्ड		१-२४	



## आसनों का चित्रपट ।

## योगमीमांसा ।

### त्रैमासिक पत्र

संपादक— श्रीमान् कुवलयानन्द जी  
महाराज ।

कैवल्यधाम आश्रममें योग शास्त्र की खोज हो रही है जिस खोजका परिणाम आश्चर्यजनक सिद्धियोंमें हुआ है, उन आविष्कारोंका प्रकाशन इस त्रैमासिक द्वारा होगा । प्रत्येक अंकमें ८० पृष्ठ और १६ चित्र दिये जायंगे ।

वार्षिक चंदा ७ ) ; विदेशके लिये १२ शि०  
प्रत्येक अंक २ ) रु.

श्री. प्रबंधकर्ता-योगमीमांसा कार्यालय, कुंजवन;  
पोष्ट-लोणावला, ( जि. पुणे )

## वैदिक उपदेश माला ।

संन शब्द और पवित्र करनेके लिए बारह उपदेश हैं । इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी-  
मूल्य ॥ ) आठ आने, डाकव्यय - ) एक आना  
मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

आसनों का व्यायाम लेनेसे सहस्रों मनुष्योंका स्वास्थ्य सुधर चुका है, इस लिये आसन व्यायामसे स्वास्थ्य लाभ होनेके विषयमें अब किसी को संदेह ही नहीं रहा है । अतः लोग सब आसनोंके एक ही कागज पर छपे हुए चित्रपट बहुत दिनोंसे मांग रहे थे। वैसे चित्रपट अब मुद्रित किये हैं । २०—३० इंच कागज पर सब आसन दिखाई दिये हैं। यह चित्रपट कमरे में दिवार पर लगाकर उसके चित्रोंको देख कर आसन करनेकी बहुत सुविधा अब हो गई है ।

मूल्य केवल ८=) तीन आने और डाक व्यय - ) एक आना है । स्वाध्याय मंडल, औंध ( सातारा )

कुस्ती, लाठी, पटा, बार वगैरह के

सचित्र व्यायाम मासिक

हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी और गुजराती इन  
चार भाषाओं में

प्रत्येक का मूल्य २॥ )

रखवा गया है । उत्तम लेखन और मध्यम २० पूर्ण होने से देखनेलायक है। नमूने का अंक मुफ्त नहीं भेजा जाता । व्ही. पी. खर्च अलग लिया जाता है। ज्यादा हकीकतके लिये लिखो-  
मैनेजर,— व्यायाम, राजपूरा, बडोदा



# संस्कृत पाठ माला।

[ चौबीस भागोंमें सब संस्कृत पढाई हो गई है । ]

चारह पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ३ ) और बी. पी. से ४ )

चौबीस पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ६ ) रु. और बी. पी. से ७ )

प्रतिभाग का मूल्य १- ) पांच आने और डा. व्य. - ) एक आना ।

अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति ।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

## १ प्रथम द्वितीय और तृतीय भाग ।

इन तीन भागोंमें संस्कृत भाषाके साथ साधारण परिचय कर दिया गया है ।

## २ चतुर्थ भाग ।

इस चतुर्थ भागमें संधि विचार बताया है ।

## ३ पंचम और षष्ठ भाग

इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया गया है ।

## ४ सप्तम से दशम भाग ।

इन चार भागोंमें पुलिग, स्त्रीलिग और नपुंसक. लिङ्गी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है ।

## ५ एकादश भाग ।

इस भागमें “ सर्वनाम ” के रूप बताये हैं ।

## ६ द्वादश भाग ।

इस भागमें समासों का विचार किया है ॥

## ७ तेरहसे अठारहवें भाग तकके ६ भाग ।

इन छः भागों में क्रियापद विचार की पाठविधि बताई है ।

## ८ उन्नीससे चौबीसवें भाग तकके ६ भाग ।

इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है ।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे उन को अल्प परिश्रमसे बड़ा लाभ हो सकता है ।

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )



# अग्नि विद्या ।

इस पुस्तक में निम्न लिखित विषय हैं ।

- १ अग्नि शब्दका भाव, २ अग्निके पर्याय शब्द, ३ पहिला मानव अग्नि, ४ वृषभ और धेनु, ५ अंगिरा ऋषि, ६ वैश्वानर अग्नि, ७ ब्राह्मण और अत्रिय, ८ जनता का केन्द्र, ९ सब धन संघका है, १० बुद्धिमें पहिला अग्नि, ११ मनुष्यमें अग्नि, १२ मन्यौमें अमर अग्नि, १३ वाणीमें अग्नि, १४ पुरोहित अग्नि, १५ शक्ति प्रदाता अग्नि, १६ हस्त-पाद-हीन गुह्य अग्नि, १७ वृद्ध नागरिक, १८ मूकमें वाचा, १९ अनेकों का प्रेरक एक देव, २० जीवनाग्नि, २१ अग्निकी दस बहिनें, २२ देवोंके साथ रहनेवाला अग्नि, २३ यज्ञका झंडा, २४ गुहा निवासी अग्नि, २५ सात संख्याका गुह्य तत्त्व, २६ तनूनपात् अग्नि, २७ यज्ञ पुरुष, यज्ञशाला, मंदिर ( चित्र ), २८ परमाग्नि, २९ अग्नि सूक्त का अर्थ और व्याख्या ।
- हर एक विषयको सिद्ध करने के लिये वेद के विपुल प्रमाण दिये हैं । इस पुस्तकके पढ़ने से अग्नि विद्या की वैदिक कल्पना ठीक प्रकार ज्ञात हो सकती है ।
- मूल्य १॥ ) रु. डाकव्यय = ) है  
मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

## महाभारत ।

हिंदी भाषा—भाष्य—समेत

तैय्यार हैं ।

- १ आदिपर्व पृष्ठ संख्या ११२५ मूल्य म. आ. से ६ ) रु. और वी. पी. से ७ ) रु.  
२ सभापर्व पृष्ठ संख्या ३५६ मूल्य म. आ. से २ ) और वी. पी. से. ) रु. २॥ )  
३ वनपर्व पृष्ठ संख्या १५३८ मूल्य ८ ) रु. और वी. पी. से. ९ ) रु.  
४ विराटपर्व पृष्ठ संख्या ३०६ मू० म. आ. से १॥ ) और वी. पी. से २ ) रु.  
५ उद्योगपर्व पृष्ठ संख्या ९५३ मू. म. आ० से ५ ) रु. और वी. पी. से ६ रु.

### ६ महाभारत समालोचना—

- १ प्रथम भाग । मू. म. आर्डरसे ॥ ) वी. पी. से ॥ = ) आने ।  
२ द्वितीय भाग । मू. म. आर्डरसे ॥ ) वी. पी. से ॥ = ) आने ।  
महाभारतके ग्राहकोंके लये १२०० पृष्ठोंका ६ ) रु. मूल्य होगा ।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध, ( जि. सातारा )



वर्ष ८  
अंक १२  
क्रमांक ९६



मार्गशीर्ष  
संवत् १९८४  
दिजंबर  
सन १९२७

# वैदिक धर्म

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र ।  
संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर ।  
स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

गौ देवोंका खजाना है ।

—:o:—

वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।  
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥

अथर्व वेद १२।४।२९

“ ( वशा ) गौ ( बहुधा चरन्ती ) बहुत प्रकार से घूम रही है, यह गौ ( देवानां निधिः ) देवों का खजाना ही है । ( यदा ) जब यह अपने ( स्थाम जिघांसति ) स्थानपर आना चाहती है उस समय ( रूपाणि ) अपने रूपोंसे विविध भाव प्रकट करती है । ”

घास खानेके लिये गौ आनंदसे स्वेच्छासे बहुत घूमती है। यह गौ साधारण पशु नहीं है, परंतु यह देवताओं का अमूल्य खजाना ही है । जब यह जंगल से वापस आना चाहती है उस समय वह अपनी इच्छाके दर्शक मनोभाव अपने चाल चलनसे दर्शाती है । ऐसी यह प्रेममयी देवताओंकी मूर्तिही है । इसलिये इसका सत्कार करना हरएक का आवश्यक कर्तव्य है ।

—o—



# गोमेध ।

( गतांकसे आगे )

वीर लोग गौओंको साथ लेकर समुद्रके पार जा कर वहां पराक्रम करें इस विषयका संकेत निम्न लिखित मंत्रोंमें पाठक देख सकते हैं--

त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्यहरद्वशा ।  
 अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १२ ॥  
 सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता ।  
 वशा समुद्रमध्यष्टाद्वधर्वैः कलिभिः सह ॥ १३ ॥  
 सं हि वातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः ।  
 वशा समुद्रे प्रानृत्यद्वचः सामानि बिभ्रती ॥ १४ ॥  
 सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा ।  
 वशा समुद्रमत्यख्यद्भद्रा ज्योतीषि बिभ्रती ॥ १५ ॥  
 अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ क्रतावरि ।  
 अश्वः समुद्रो भूत्वाऽध्यस्कंदद्वशे त्वा ॥ १६ ॥  
 तद्भद्राः समगच्छन्त वशा देष्टुयथो स्वधा ।  
 अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १७ ॥

“ ( देवी वशा ) दिव्य गौने ( तं सोमं ) उस सोमको ( त्रिषु पात्रेषु आहरत् ) तीन वर्तनोंसे उस यज्ञमें लाया जहां ( हिरण्यये बर्हिषि ) सुवर्णके आसनपर दीक्षित हो कर अथर्वा बैठा था ॥ १२ ॥ सोमके साथ तथा सब पांववालों के साथ होकर था ( कलिभिः गंधर्वैः ) वह युद्धप्रिय वीर गंधर्वों के साथ ( वशा ) गौ समुद्रपर विजयके लिये चली ॥ १३ ॥ वह वायुके साथ और सब ( पतत्रिभिः ) खवालोंके साथ होकर ऋचा और सामोंको धारण करती हुई ( वशा ) गौ समुद्रपर ( प्रानृत्यत् ) नाचने लगी ॥ १४ ॥ वह सूर्यके साथ और सब पांखवालोंके साथ होकर विविध ज्योतियोंको धारण करती हुई ( भद्रा वशा ) कल्याण करनेवाली गौ ( समुद्रं अख्यत् ) समुद्रका निरीक्षण करने लगी ॥ १५ ॥ हे ( क्रतावरि ) सीधे आचारवाली गौ !

जब तू ( हिरण्येन ) सुवर्णके आभूषणों से सुभूषित हो कर खड़ी हुई तब समुद्र घोड़ा बना और उसने अपने पीठपर तुझे उठाया ॥ १६ ॥ वहां उस यज्ञमें ये तीनों कल्याण करनेवाली इकट्ठी मिली- १ ( वशा ) गौ, २ ( देष्टी ) आदेश करनेवाली और ३ ( स्वधा ) अपनी धारक शक्ति । जहां दीक्षित होकर अथर्वा सुवर्णमय आसनपर यज्ञके मध्यमें बैठता है ॥ १७ ॥ ”

पूर्वोक्त प्रकार आलंकारिक कथाके रूपमें इन मंत्रोंका भावार्थ अब लिखते हैं जिससे इन मंत्रोंमें कही बात पाठकोंके ध्यानमें अतिशीघ्र आजायगी-

“ यज्ञमें अथर्ववेद जाननेवाला ऋत्विज होता है वह गौके दूध के साथ सोमरस को तीन वर्तनों में रखकर ले आता है और सबको पिलाता है । ऐसे याजकों के साथ और सोम आदि वनौषधियां साथ लेकर गंधर्व वीर अपने सब सैनिकोंको संग लेकर विजय करनेके लिये समुद्र परसे चले, उनके साथ गौवेंभी बहुत सी थीं ॥ जिन नौकाओं में बैठकर यह गंधर्व सेना शत्रुपर हमला करनेके लिये चली थी उन नौकाओं को वायुके द्वारा चलने वाले पंखोंसे चलाया जाता था । इसी नौकामें ब्राह्मण लोग यज्ञ करते थे, ऋचाओं को बोलते थे और सामगायन भी करते थे, वहां गौएं तो आनंदसे नाचती थी ॥ गौओंको साथ रखते हुए नौकाओं में बैठे हुए सब लोगोंने सूर्य प्रकाशके उजाले के साथ अपने आंखोंसे ही संपूर्ण समुद्रको तथा आसपासके सब दृश्यको देखा ॥ इस समय गौवें सुवर्णके भूषणों से सजी हुई थीं, मानो समुद्रका ही घोड़ा बनाकर उस घोड़ेकी पीठपर सब गौवें सवार होकर चली थीं ॥ वहां जो यज्ञ किया उसमें अथर्व वेदका ज्ञानी



दीक्षित होकर यज्ञ करता था, इस यज्ञमें तीनोंका बड़ा संगठन हुआ था ( वशा ) गौका पालन करने वाले वैश्य, ( देष्टी ) आदेश देनेवाले अर्थात् हुकुमत करनेवाले क्षत्रिय वीर, तथा ( स्वधा ) अपनी आत्मिक शक्तिका धारण करनेवाले ब्राह्मण ॥ ”

पाठक यदि पूर्वोक्त शब्दार्थको इस भावार्थके साथ साथ पढ़ेंगे तो उनको मंत्रोंका आशय शीघ्रही समझेगा । हमारे प्रचलित गोरक्षा विषय के साथ इन मंत्रोंके आशयका बहुत कुछ संबंध है । वीर लोग भूमिपर युद्ध करनेके लिये जिस समय जावें उस समय दूध पीने के लिये गौवें साथ रखें यह बात पूर्व स्थलमें बता दी है । यहां यह बात बतानी है कि समुद्रमें नौका द्वारा भी देशदेशान्तरोंमें विजय प्राप्त करने या अन्य काम काज केलिये जाना हो तो साथ गौवोंको ले जावें, उनके लिये पर्याप्त घास साथ रखा जावे । तथा साथ याजक ब्राह्मण, गोपालक तथा व्योपार करनेवाले वैश्य रहें और इस प्रकार त्रैवर्णिक अपना संगठन करते हुए देश देशान्तरमें संचार करें और अपना यश जगत् में फैला दें ।

इसमें समुद्रका घोड़ा बनानेकी कल्पना है । नौका से इधर उधर आने जानेवाले समुद्रका ही घोड़ा बनाते हैं यह बात स्पष्ट ही है । इन मंत्रोंमें यज्ञ द्वारा त्रैवर्णिकोंका संगठन करनेकी कल्पना विशेष महत्वपूर्ण है । यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन शब्दोंको न लिखते हुए उनके कर्मोंको लिखा है । ब्राह्मण स्वाहा-स्वधा आदिका उच्चारण करते हुए हव्य कव्य करते रहते हैं, क्षत्रिय वीर आदेश देते हैं, हुकुमत करते हैं और वैश्य गौका पालन, कृषि और व्योपार करते हैं । ये तीनों व्यवसाय यज्ञसे संगठित हों, अर्थात् ये तीनों व्यवहार करनेवाले लोग परस्पर सहकार्य करते हुए उन्नतिको प्राप्त हों यह उक्त मंत्रोंका आशय है । गो रक्षा करते हुए अपनी उन्नति करनेका महत्वपूर्ण कार्य यही है । ये सब मंत्र गोमेध सूक्तके हैं, इससे पाठक जान सकते हैं कि गोमेध का तात्पर्य वास्तवमें क्या है और आज कल कैसा समझा जाता है ।

## गौ सबकी माता ।

पूर्वोक्त वर्णनसे पाठकों के मन में यह बात आगई होगी कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदिकों के संपूर्ण हलचलोंका केन्द्र गौ ही था । सब लोग गौका ही मान करते थे । ब्राह्मण लोग यज्ञ में गौका सत्कार करते थे, क्षत्रिय लोग युद्धादि कों के अंदर भी अपने साथ गौओंको रखते और पालते थे, वैश्य तो पशुपालन करते ही थे और खेतीद्वारा उनको पुष्ट करते थे । जिस प्रकार अपनी माता सबको पूजनीय होती है उसी प्रकार गौमाता भी सबको पूजनीय ही थी इसी का स्पष्ट बोध करने के लिये निम्न लिखित मंत्रमें कहा है—

वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव ।  
वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥१८॥

“ ( वशा ) गौ क्षत्रिय की माता है, हे ( स्वधे ) आत्मिक शक्ति वाले ! तेरी भी माता यह गौ है । यज्ञ मानो गौकाही एक शस्त्र है, इसीसे जनतामें चेतना हुई है । ”

क्षत्रिय लोगोंकी माता गौ है, इसलिये क्षत्रियोंको भी यह गौ पूजनीय है, फिर वे इस मातृवत् पूजनीय गौका वध कैसा कर सकते हैं और अपनी ही माता का वध करके उसके मांसका सेवन कैसा कर सकते हैं ! आत्म शक्तिका धारण करने वाली स्वधावाली ब्राह्मण जाती की भी माता गौ ही है । इसलिये ब्राह्मणोंको भी गौ मातृवत् पूज्य है इस कारण ब्राह्मण भी गोवध कर नहीं सकते और नाहीं गोमांस खा सकते हैं । कृषि गोरक्षा करने वाले वैश्य तो स्वकर्तव्य से ही गोरक्षक हैं, वे तो कभी गोवध कर नहीं सकते । अर्थात् इस प्रकार त्रैवर्णिक आर्य गौको माता मानते हैं, इसलिये इनसे गोवध होना सर्वता असंभव है ।

कई लोग यहां शंका करेंगे कि इस सूक्तके मंत्रोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों का उल्लेख करके उनकी माता गौ है ऐसा कहा है, परंतु शूद्र का उल्लेख इसमें नहीं है । इसलिये गौ शूद्र की माता नहीं है तो क्या शूद्र गौका मांस खा सकता है ? इस विषय



विस्तारपूर्वक कहनेके लिये यहां स्थान नहीं है, परंतु संक्षेपसे इतना कहना आवश्यक है कि इस समय में भी गाय बैल आदि के मृत शरीरके मांस को खानेवाली जातियां अंत्यजों में हैं। इसी लिये उनको “वृष-ल” अर्थात् “बैलके शरीर को काटने वाली जाती” कहा जाता है। वृषल शब्द इसी जातीका वाचक है, परंतु पश्चात् यह शब्द “धर्म हीन” का वाचक माना गया और सब धर्म-हीन शूद्रों के लिये बर्ता जाने लगा। वास्तवमें मृत गौ अथवा मृत बैल के शरीर को काटकर उस मुर्देका मांस खानेवाले अंत्यज अथवा पंचमों का वाचक यह “वृष-ल” शब्द है। जो लोग इस प्रकारके मांसभक्षण त्याग देते थे और त्रैवर्णिक द्विजों के साथ रहना पसंद करते थे उनकी गिनती संच्छद्रोंमें होती थी और वे गौरक्षक बन कर त्रैवर्णिक आर्योंके सत्संगमें संमिलित होते थे। परंतु जिन्होंने गोमांसभक्षण नहीं छोड़ा वे इस समय तक बहिष्कृत रहे हैं। संच्छद्र और असंच्छद्र में यह भेद है। इस लिये आर्योंके चातुर्वर्ण्य में जो संमिलित हुए, वे चतुर्थ वर्णवाले शूद्र भी त्रैवर्णिक आर्योंके समान गौरक्षक ही हुए थे और इस समय तक वैसे ही गौरक्षक हैं। परंतु जिन्होंने मृत गौ-मांसभक्षण नहीं छोड़ा, वे इस समय तक अंत्यज बहिष्कृत ही रहे हैं। पाठक इससे जान सकते हैं कि वैदिक धर्म में गौरक्षा के विषयमें कितनी विशेष तीव्र भावना है और यह कितनी प्राचीन कालसे चली आयी है।

इस मंत्रमें “वशा गौका आयुध यज्ञ है,” ऐसा कहा है। इससे भी सिद्ध होता है कि यज्ञ का उपयोग करने वाली गौ है। “शूर का यह आयुध है।” ऐसा कहने से उस आयुध के लिये शूरका वध करना चाहिये ऐसा कोई मानता नहीं, क्योंकि वैसा मानना अयोग्य है। आयुध का उपयोग शूरवीर करते हैं। इसी प्रकार यज्ञरूपी आयुधका उपयोग गौ करती है, यज्ञ में अपना दूध, घी आदि अर्पण करके देवोंतक पहुंचाती है। इस लिये यज्ञमें गोवध अभीष्ट नहीं है यह बात इस वचनसे भी स्पष्ट हो जाती है।

“यज्ञ से जनतामें चेतना उत्पन्न हुई” यह कथन मनन करने योग्य है। जनतामें राष्ट्रकर्तव्यों की जाग्रती यज्ञके कारण उत्पन्न हुई, जनतामें संगठन हुआ, जनताका एकीकरण हुआ, सब मिलजुलकर रहने लगे और सब लोग संघकी भलाई करनेमें तत्पर हुए यह यज्ञका कार्य इस मंत्र भागमें वर्णन किया है। यज्ञ का यही महत्त्व है। यज्ञसे बहुत लाभ होते हैं उनमें यह एक है। यहां इस लेख में यज्ञ का महत्त्व बतानेके लिये हमारे पास स्थान नहीं है इसलिये यह विषय यहां ही छोड़ देते हैं और प्रस्तुत सूक्तके आगेके मंत्र देखते हैं—

ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरत् ब्रह्मणः ककुदादधि ।

ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत ॥ १९ ॥

आस्नस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं वशे ।

पाजस्याज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव ॥ २० ॥

ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव ।

आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ॥ २१ ॥

यदुदरं वरुणस्यानु प्रविशथा वशे ।

ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत् स हि नेत्रमवेत्तव ॥ २२ ॥

“ब्रह्मकी उच्च शक्तिसे एक बिंदु ऊपर चढ़ा, उससे हे गौ! तू उत्पन्न हो गई है। उसके पश्चात् होता अर्थात् तुझे बुलाने वाला भी उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ तेरे मुख से गाथाएं उत्पन्न हुई और हे गौ! तेरे गले के स्थानसे बल हुआ। पेटके स्थानसे यज्ञ बना और स्तनोंसे किरण बने हैं ॥ २० ॥ आगेके पांवींसे और पीछली जंघाओंसे (अयनं जातं) गति उत्पन्न हुई है, आंतोंसे भक्षक बने और उदर से वनस्पतियां उत्पन्न हो गई ॥ २१ ॥ हे गौ! जब तूने वरुण के उदर में प्रवेश प्राप्त किया, तब वहां ब्रह्माने तुझे बुलाया और वही (तव नेत्रं) तेरा मार्गदर्शक हो गया ॥ २२ ॥

इन चार मंत्रोंमें केवल गौका महत्त्व वर्णन किया है। ब्रह्मा के परम उच्च शक्ति से गौकी उत्पत्ति प्रथम मंत्रमें कही है। यहाँ गौ शब्दका श्लेष है। गौ शब्द का अर्थ गौभी है, और वाणी भी है वह यहां अपेक्षित है। ब्रह्म की तथा आत्मा की प्रेरणासे वाणी की उत्पत्ति होती है, इसलिये वागरूपी गौ ब्रह्मकी



शक्तिसे जन्म लेती है। इसी प्रकार दुग्धरूपी जीवन-रस देनेवाली गौ ब्रह्म की जीवनशक्ति अपने में लाती है और दुग्धद्वारा हमें अर्पण करती है। इत्यादि आशय यहां समझना योग्य है। गाथा आदि उत्पन्न होनेका वर्णन जो अगले मंत्रमें है वह भी वारूपी गौसे ही समझना योग्य है, क्योंकि कि गद्यपद्य वाङ्मय वाणीके स्तनोंसे ही निचोड़ा जाता है। गौ और वाणीका मिलाजुला वर्णन इन मंत्रों में है वह बता रहा है कि वाणीके समान यह गौभी अध्यात्म-शक्तिसे युक्त है, इसलिये गौका महत्त्व विशेष है।

इन मंत्रोंकी कई बातें विशेषसंकेतसे किसी सूक्ष्म बातका वर्णन कर रही हैं, परंतु वह बात विशेष विचार करनेपर भी हमारे समझमें अभी तक नहीं आई। यदि किसी पाठक के मनमें ये मंत्र विशेष खुल गये हों तो वह हमें बतावें। परन्तु इतनी बात सत्य है कि ये मंत्र गौकी श्रेष्ठता का वर्णन कर रहे हैं और उसका विशेष महत्त्व प्रदर्शित कर रहे हैं। इन मंत्रोंमें गोवध या गोमांसका हवन आदि बातें कुछ भी नहीं हैं। मातृवत् पूजनीय गौ है और उस में ब्रह्मसे जीवन शक्ति आकर रहती है। इस लिये सबको गौका योग्य आदर करना चाहिये यह इस वर्णन का तात्पर्य है। आगेके चार मंत्रों में भी इसी प्रकार गौका महत्त्व वर्णन किया है और ज्ञानी पुरुष ही गौका दान लेवे ऐसा सूचित किया है। ये मंत्र अब देखिये—

सर्वे गर्भाद्वेपन्त जायमानादसूस्वः ।

ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभिः कलप्तः स  
ह्यस्या बंधुः ॥ २३ ॥

युध एकः संसृजति यो अस्या एक इद्वशी ।

तरांसि यज्ञा अभवन् तरसां चक्षुरभवद्वशा ॥ २४ ॥

वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद् वशा सूर्यमधारयत् ।

वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह ॥ २५ ॥

वशामेवाभृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते ।

वशेदं सर्वमभवद् देवा मनुष्या असुरा पितर

ऋषयः ॥ २६ ॥

य एवं विद्यात्स वशां प्रतिगृह्णीयात् ।

तथा हि यज्ञः सर्वपादुहे दात्रेऽनपस्फुरन् ॥ २७ ॥

तिस्रो जिह्वावरुणस्यान्तर्दीर्घत्यासनि ।

तारां मध्ये या राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥ २८ ॥

“ जो ( अ-सू-स्वः ) जन्म नहीं देता उससे उत्पन्न होने वाले गर्भ को देखकर सब ( अवेपन्त ) कांपने लगे । ( स-सूव इति तां आहुः ) उसने जन्म दिया ऐसा उसे वे कहते हैं ( वशा इति ) वही वशा गौ है । यह ( ब्रह्मभिः कलप्तः ) मंत्रोंसे समर्थ हुई है ( स हि अस्याः बंधुः ) वही उसका बंधु या संबंधी है ॥ २३ ॥ ( एकः युधः संसृजति ) वह अकेला ही युद्ध करता है जो इस गौ को अकेला ही वश में रखनेवाला है । ( यज्ञाः तरांसि अभवन् ) यज्ञ वेगवान् अर्थात् सर्वत्र विजयी हो गये और ( वशा ) वशा गौ हो सब ( तरसां चक्षुः ) हलचलोंका आंख बनी है ॥ २४ ॥ ( वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णात् ) गौ ने यज्ञका स्वीकार किया है । ( वशा सूर्यमधारयत् ) गौ ने सूर्यका धारण किया है । ( ब्रह्मणा सह ) मंत्रों के साथ ( ओदनः ) चावल ( वशायां अंतः अविशत् ) वशा गौ के अंदर प्रविष्ट हुआ है ॥ २५ ॥ ( वशां अमृतं आहुः ) गौ को अमृत कहते हैं तथा ( वशां मृत्युमुपासते ) गौ को मृत्यु समझकर भी उसकी उपासना करते हैं । देव, मनुष्य, असुर, पितर, ऋषि ( इदं सर्वं वशा अभवत् ) यह सब गौ ही बन गई है ॥ २६ ॥ ( यः एवं विद्यात् ) जो यह जानता है वह ( वशां प्रतिगृह्णीयात् ) गौका दान लेवे । ( तथा हि ) इसी प्रकार ( सर्वपात् यज्ञः ) संपूर्ण यज्ञ ( अनपस्फुरन् ) अविरोधसे ( दात्रे दुहे ) दाताके लिये फलीभूत होता है ॥ २७ ॥ वरुण के मुखमें चमकने-वाली तीन जिह्वाएं हैं । ( तासां मध्ये या विराजति ) उनके बीचमें जो प्रकाशती है वह ( सा वशा ) गौही है इसलिये यह गौ ( दुष्प्रतिग्रहा ) दान लेना कठिन है ॥ २८ ॥

ये मंत्र कई कारणोंसे विशेष मनन करने योग्य हैं । यद्यपि इन मंत्रों में भी कई दुर्बोध स्थल हैं तथापि गोवध की जो मुख्य बात इस लेख में विचारणीय है उस विषयके सब विधान इन मंत्रों में स्पष्ट हैं । तेइस वे मंत्र में “ असूसु और ससू ” ये दो शब्द



हैं। “अ-सूसु” का अर्थ है संतान उत्पन्न न करना अर्थात् वंध्या होना। और “स-सू” का अर्थ है संतान उत्पन्न करना। मनुष्यों में क्या और पशुओं में क्या स्त्रियों के दो भेद होते हैं। एक वंध्या स्त्री और दूसरी संतानोत्पत्ति में समर्थ। पाठक विशेष ध्यानसे यह मंत्र देखेंगे तो उनको पता लग जायगा कि इस में—

“ससूव हि तामाहुः वशेति”

यह मंत्रभाग है जिसका अर्थ “जो वशा है वह संतान उत्पन्न करने में समर्थ है” ऐसा होता है। जो लोग गोमेध में वंध्या वशा गौका वध करके उसकी मांसाहुतियोंसे हवन करने की कल्पना मानते हैं उनका तो यह मंत्र खंडन कर रहा है। क्योंकि इसमें “वशा ससूव” अर्थात् “प्रसूत होनेवाली वशा गौ” कहा है। क्या कभी वंध्या भी प्रसूत होती है। इसके पूर्व वशा गौके दूधका भी वर्णन आया है। वंध्या गौका दूध किसीने पिया है? ये सब प्रमाण सिद्ध कर रहे हैं कि गोमेध के इन दो सूक्तों में जो वशा शब्द आया है उसका अर्थ “वंध्या गौ” नहीं है। किसीको भी इस विषयमें शंका न हो इसलिये इस मंत्रने स्वयं वशा का अर्थ बताया कि (ससूव हि तां वशा इति आहुः) बच्चा पैदा करनेवाली गौका नाम ही वशा गौ है। अस्तु। इस प्रकार अपना ही अर्थ स्वयं प्रकट करनेके कारण इस विषयमें किसीको भी संदेह नहीं हो सकता। जो “असूसु” अर्थात् प्रजा उत्पन्न न करनेवाला है वह इसका (बंधुः) भाई अथवा संबंधी अर्थात् वह बैल है। ये अर्थ देख कर कोई भी ऐसा न समझे कि गोमेध के सूक्तों में “वशा” का अर्थ “वंध्या” गौ है।

जो बैल होता है वह (एकः युधः संसृजति) अकेलाही युद्ध करता रहता है। परिपुष्ट बैल युद्ध करते हैं यह बात सबने देखी ही होगी। यह बैल इस गौको (वशी) वश में रखनेवाला है। इस योग्य बैल का उत्तम गौसे संमेलन करना एक प्रकार का “यज्ञ” ही है। इस प्रकार का गौसे बैल का संमेलन करना गोमेध का एक भाग है। इससे

संतान उत्तम होती है और दूध भी उत्तम होता है। यह यज्ञ जब प्रथम शुरू हुए तब वे (यज्ञाः तरांसि अभवन्) वेगसे फैले, क्योंकि इन यज्ञोंसे जनता का लाभ होता था, इस लिये सब जनता का मन इन गोमेधोंकी ओर आकर्षित हुआ। परंतु (तरांसि चक्षुः वशा अभवत्) वेगसे फैलने वाले यज्ञों की आंख वशा गौ ही बन गई। अर्थात् इन सब वेगसे फैलनेवाले यज्ञोंका एकमात्र यही उद्देश्य था कि उत्तमसे उत्तम गौ उत्पन्न करना।

गोमेध में गोदान होता है यह बात इससे पूर्व कई बार कही गयी है; अब यहां गौकी उत्तम संतान पैदा करना भी गोमेध का एक भाग बताया है। पाठक ही विचार करें कि ऐसे प्रसंगोंमें गौका वध करनेके लिये स्थानही कहाँ है। जो गोमेधमें गोवध की कल्पना करते हैं उनको गोमेध का वास्तविक तात्पर्य ही नहीं समझा यह बात यहां निश्चित रूपसे सिद्ध हो गई है।

आगे २५ वे मंत्रमें कहा है कि उक्त प्रकार के यज्ञ का स्वीकार (वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णात) वशा गौने किया है। अर्थात् उक्त प्रकारके यज्ञसे वशा गौ सब जगत्का धारण कर रही है यहां तक उसका फैलाव हुआ है कि वह गौ मानो (वशा सूर्यं आधारयत्) सूर्यको धारण कर रही है। अर्थात् जो सूर्य काभी धारण करती है वह हम जैसे मनुष्योंका धारण करती है इस में क्या संदेह है? (ब्रह्मणा सह ओदनः) ब्रह्मके साथ अर्थात् प्रार्थना मंत्रके साथ अन्न वशा गौके शरीरमें जाता है। अर्थात् मंत्रोंसे परिशुद्ध अन्न वशा गौ खाती है और अपने पवित्र अमृतरूपी दूधसे मनुष्य मात्रका धारण करती है। यहां यज्ञशेष प्रसाद रूपी अन्न गौ खाती है ऐसा कहा है। यज्ञशेष अन्न यजमान ऋत्विज तथा अन्य सज्जन खाते हैं, उसका थोड़ा अवशेष गौको भी दिया जाता है। यहां यज्ञशेष अन्न खानेका अधिकार गौका भी है यह बात विशेष महत्त्व रखती है, क्योंकि इससे गौका अधिकार यजमान और ऋत्विजों के बराबरीका हो जाता है। कई अन्य प्रमाणोंसे भी यह बात सिद्ध की जा सकती है, परंतु यहां तो यह बड़ा ही परिपुष्ट प्रमाण मिला है। मंत्र के द्वारा पुनीत हुआ अन्न यज्ञमें



डाला जाता है, यज्ञशेष अन्न प्रसाद रूप मान कर यजमान, ऋत्विज आदि भक्षण करते हैं, इसी प्रकार उसका अंश गौको दिया जाता है। जहां गौका अधिकार ऋत्विजों के जितना माना है वहां उसी गौका वध करके उसके मांस का हवन करनेकी कल्पना संभवनीय भी कैसी मानी जा सकती है, इसका पाठक ही विचार करें और ऐसी अशुभ कल्पनासे पाठक सदा दूर ही रहें ।

आगे छव्वीसवे मंत्रमें ( वशां अमृतं आहुः ) वशा गौ को अमृत कहते हैं, ऐसा कहा है वह बड़ा मनन करने योग्य है । वशा गौ अमृत भो है ( वशां मृत्युं उपासते ) और गौ मृत्यु भी है । यह अमृत किस समय होती है और मृत्यु किस समय होती है यह विचारणीय बात है । यह वशा गौ पूर्वोक्त प्रकार यज्ञमें सत्कार करनेसे अमृत रूप होकर कृपा करती है और उससे क्रूरताका संबंध करनेसे वही मृत्यु रूप होकर क्रूरता का व्यवहार करनेवाले का नाश करती है । इस प्रकार यह एक ही गौ अमरत्व देनेवाली और मृत्यु देनेवाली होती है । जिस समय घर घरमें गौ माताकी पूजा होती थी उस समय इस देश के लोग बड़े दीर्घायु होते थे, परंतु अब घर घरमें गौ की पालना बंद होगई है और चारों ओर गौका घातपात शुरू है, इस लिये वही गौ भारतवर्षी लोगों के लिये मृत्युरूप हो रही है । पाठक इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव देखें और अपना कर्तव्य जानें । देव, पितर, मनुष्य, असुर, राक्षस ऋषि सब केलिये गौसे लाभ प्राप्त होता है, सब ही उसके दूधसे पुष्ट होते हैं, इसलिये मंत्रमें कहा है कि ( वशा इदं सर्वं अभवत् ) वशा गौ ही इस सब मनुष्य देव आदिकों के रूपमें परिणत हुई है। अर्थात् गौके दूध पीने से ही इनकी पुष्टि होती है, इस लिये सबको ही यह गौ अपनी माता मानना चाहिये ।

आगे सताइसवे मंत्रमें कहा है कि ( यः एवं विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ) जो ये सब बातें जानता है वही वशा गौका दान लेवे जिसको यह ज्ञान नहीं है वह गौका दान न लेवे । जो ऐसी गौ उत्तम ज्ञानी ब्राह्मण को दान देता है उस दानीको वह “ दान यज्ञ ”

सब रीतिसे फलीभूत होता है । उसका यश फैलता है और अनेक प्रकार से उसका लाभ होता है ।

## वरुण की तीन जिह्वाएँ ।

अठाईस वे मंत्र का विधान ( वशा दुष्प्रतिग्रहा ) “ गौ का दान लेना अत्यंत कठीन है, ” हर एक मनुष्य गौका दान नहीं ले सकता, विशेष ज्ञानी अधिकारी पुरुष ही ले सकता है, इत्यादि आशय व्यक्त कर रहा है । यह विधान सुसंगत ही है क्योंकि गौ दान लेनेके अधिकारीके लक्षण इस से पूर्व बताये गये हैं, उनसे भी यही सिद्ध होता है । इस मंत्रमें वरुण के मुख का वर्णन है, वरुण शासक देवता है । वरुण के पाश आदि वेद मंत्रोंमें अनेक-वार आते हैं । अपराध का योग्य दण्ड देना इसके आधीन है, कोई अपराधी इसके दण्डसे विना सजा पाये छूट नहीं सकता । ऐसे धर्मशासक देवताके मुखकी मध्य जिह्वा गौ है ऐसा कहने मात्रसे उस गौ का रक्षण करना चाहिये यह बात निःसंदेह सिद्ध होगी । पुलिस कमिशनर की गौ का वध करने की अपेक्षा भी वरुणदेव की जिह्वा रूपी गौका काटना अधिक भयप्रद निःसंदेह है । वरुणदेव के मुखमें तीन जिह्वाएँ हैं -- ( १ ) एक वाणी, ( २ ) दूसरी गाय और ( ३ ) तीसरी भूमि । इन तीनों के लिये वेदमें “ गौ ” यह एकही नाम है और तीनोंका संबंध जिह्वासे ही है । वाणी तो जिह्वासे संबंधित ही है, “ जवान ” ही उसको कहते हैं, यह वरुण की पहिली जिह्वा है । अमृत रूपी दूध देनेवाली जिसके अमृत रस का स्वाद जिह्वा ले सकती है यह वरुण की बीच की जिह्वा गौ ही है, जो गौका दूध पीते हैं वे इसका स्वाद जानते ही हैं । वरुण की तीसरी जिह्वा भूमि है, यह भी षड्रस अन्न देती है जो जिह्वासे खाया जाता है । इसप्रकार वरुण की ये तीन जिह्वाएँ हैं जिनका नाम “ गौ ” है और जिनके रसोंका संबंध जिह्वाओंके साथ ही है । ये तीनों जिह्वाएँ सुरक्षित रखनी चाहिये । इनके सुरक्षित रखनेसे लाभ और अरक्षित रखनेसे हानि होती है । देखिये- वाणी का संयम न किया, जिस



प्रकार चाहे शब्द प्रयोग शुरू किया, तो जगतमें झगड़े पैदा होते हैं और अनर्थ होते हैं। भूमि का संरक्षण नहीं किया तो देश और राष्ट्रकी परतंत्रता होकर विविध कष्ट होते हैं, उनका अनुभव पराधीन देशवासी जनोको है। गाय का रक्षण नहीं किया तो अशक्तता अल्पायुता आदि होना स्वाभाविक ही है। इससे वरुण की ये तीन जिह्वाएँ हैं, इनको सुरक्षित रखना चाहिये, इस वेदके कथन का महत्त्व ध्यानमें आ सकता है। इनके बीच में ( तासां मध्ये वशा ) जो गौ रूपी मध्य जिह्वा है उसका महत्त्व विशेषही है। वाणी रूपी वरुणकी जिह्वा तो प्रायः हरएक मनुष्यको मिली है, थोड़े ही गूंगे हैं कि जो इसका दुरुपयोग करनेके कारण इसके उपयोग से वंचित रखे गये हैं। भूमिरूपी वरुण की जिह्वा कुछ थोड़े मनुष्योंके अधिकार में है, अर्थात् हरएक मनुष्यके मलकियत की भूमि नहीं है, अर्थात् वाणी रूपी वरुण की जिह्वा की अपेक्षा भूमिरूपी वरुण जिह्वा थोड़े मनुष्यों को प्राप्त हुई है। परंतु गाय रूपी जो वरुण की जिह्वा है वह तो उनसे भी थोड़े लोगोंके पास रहती है और उसका दान लेनेका अधिकार तो अति अल्प ब्रह्मनिष्ठ आत्म-ज्ञानीयों को ही केवल है। यह तीन गौओंकी अवस्था पाठक देखें और इस मंत्रका आशय समझें।

गाय तो बिकनी भी नहीं चाहिये। आर्य लोग कभी गाय की विक्री नहीं करते थे। इस समय ब्राह्मणोंने ही इस प्रथा की रक्षा इस समय तक की है। हमें अन्य स्थानोंका पता नहीं, परंतु महाराष्ट्रके ब्राह्मण इस समय भी गौका बेचना पाप समझते हैं और प्रायः गोविक्रय नहीं करते। यह वैदिक काल की प्रथा इस समय थोड़ीसी अवशिष्ट है।

## गौका वीर्य ।

चतुर्धा रेतो अभवद्वशायाः ।

आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशव-  
स्तुरीयम् ॥ २९ ॥

वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः ।

वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥ ३० ॥  
वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये  
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥ ३१ ॥

“( वशाया रेतः ) वशा गौ का वीर्य ( चतुर्धा अभवत् ) चार प्रकारसे फैला है। ( आपः तुरीयं ) जल रूपसे एक भाग, ( अमृतं तुरीयं ) दूध रूपसे एक भाग, ( यज्ञः तुरीयं ) यज्ञ रूपसे एक भाग और ( पशवः तुरीयं ) पशुरूपसे एक भाग ॥ २९ ॥ यह वशा गौ द्युलोक, पृथ्वी लोक, विष्णु और प्रजापति परमात्मा रूप है। साध्य देव और वसुदेव वशा गौका दूध पीते हैं ॥ ३० ॥ साध्या और वसु देव यहां गौका ही दूध पीते हैं इस लिये ( ब्रध्नस्य विष्टपि ) स्वर्गमें भी उनको गौका दूध मिलता है ॥ ३१ ॥ ”

वशा गौके चार रूप हैं द्युलोक, पृथ्वीलोक, विष्णु और प्रजापति। इन चारोंके साथ गौके चार वीर्य संबंधित हैं। अर्थात् ( १ ) द्युलोक से सूर्यकी प्रेरणासे वृष्टि होकर जलकी प्राप्ति होती है, ( २ ) पृथ्वी लोक में सोमादि वनस्पतियों का रस, अन्न और दुग्ध आदिकी प्राप्ति होती है, ( ३ ) विष्णु अर्थात् व्यापक परमात्माकी उपासनो यज्ञ में घृता-हुतीयोंसे की जाती है और ( ४ ) पशुओंसे प्रजापति की प्रजाका पालन होता है। यह विभाग गौके चार वीर्योंका है। द्यु, सूर्य, मेघ, भूमि, परमात्मा, आत्म तथा इनकी शक्तियाँ आदिका नाम “ गौ ” है इस लिये यह कथन श्लेषालंकारसे ठीक है। इस से गौका महत्त्व ही व्यक्त होता है।

साध्य और वसुदेव यहां अपना अनुष्ठान करते हैं और केवल गौके दूधपर रहते हैं अन्य कुछ नहीं खाते। यह इनका नियम इनके लिये ऐसा फलीभूत हुआ है कि उक्त नियम के कारण स्वर्गमें भी इनको दूध मिलने लगा। अर्थात् जो जो मनुष्य नियम पूर्वक प्रतिदिन गौका दूध पीयेंगे उनको स्वर्गमें भी नियम पूर्वक दूध मिलता रहेगा। पाठक इस प्रलोभनमें गोरक्षा का महत्त्वही देखें। इस प्रकार के अर्थवाद के वाक्य शब्दार्थ द्वारा व्यक्त होने वाले अर्थ



बताने के लिये नहीं होते प्रत्युत विशेष गूढ अर्थका भाव मनमें प्रकाशित करनेके लिये होते हैं। यहां गोरक्षा का महत्त्व इन वाक्यों द्वारा कहा है। “ जो लोग प्रतिदिन गाय का दूध नियमपूर्वक पीनेका निश्चय करेंगे और उसका पालन विला नागा करेंगे, उनको स्वर्ग में भी नियमपूर्वक कामधेनु का दूध मिलता रहेगा। ” पाठक सोच सकते हैं कि यदि यह नियम लोग करेंगे तो गोरक्षा स्वयं हो जायगी। स्वास्थ्य रक्षा के साथ इस नियमका अत्यंत महत्त्व है। वेदने यह साधारण सी बात कही है परंतु इसका परिणाम बहुत ही व्यापक है, पाठक इसका बहुत विचार करें।

## गौ दान का फल ।

सोममेनामेके दुहे घृतमेक उपासते ।

य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥ ३२ ॥

ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वाल्लोकान्समश्रुते ।

ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्मास्थो तपः ॥ ३३ ॥

वशां देवा उपजीवन्ति वशां मनुष्या उत ।

वशेदं सर्वमभवद्यावत्सूर्यो विपश्यति ॥ ३४ ॥

अथर्व० १०।१० ।

“कई लोग सोम के लिये इस गौसे दूध निकालते हैं, कई लोग इस गौसे प्राप्त होनेवाले घी के लिये इसके पास जाते हैं। उत्तम विद्वान् ब्राह्मणको जो लोग गौका दान करते हैं वे स्वर्ग को जाते हैं ॥ ३२ ॥ जो लोग ब्राह्मणों को गौका दान करते हैं वे सब लोकों को प्राप्त करते हैं क्योंकि इस गौमें ऋत, ब्रह्म और तप रहता है ॥ ३३ ॥

गौ से देव जीवित रहते हैं और मनुष्य भी गौ से ही जीवित रहते हैं। गौ ही संपूर्ण जगत् रूप बनी है, जहां तक सूर्यप्रकाश पहुंचता है वह सब मानो गौ ही है ॥ ३४ ॥

यज्ञकर्ता लोग सोमरस के अंदर दूध का मिश्रण करनेके लिये गाय का दोहन करते हैं, कोई ऋत्विज लोग हवन को घी प्राप्त करनेके लिये गौका दोहन करते हैं। इस प्रकार गौ से यज्ञ होता है।

ये सब पूर्वोक्त बातें जो विद्वान् जानता है उस ज्ञानी पुरुष को ही गौ दान देनी योग्य है। जो लोग

ऐसे सत्पुरुष को गौका दान करते हैं वे स्वर्ग के अधिकारी होते हैं। विद्वान् ज्ञानी ब्राह्मणोंको गौका दान करनेसे सब प्रकार की श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है। गौके अंदर ( ऋत ) सत्य, ( ब्रह्म ) अन्न और तप रहता है, इसलिये गौका महत्त्व अधिक है। इस गौका हर एक को उपयोग है।

देव क्या और मनुष्य क्या गौके दुग्धादिसे ही जीवित रहते हैं, पुष्ट होते हैं और बढ़ते भी हैं। इस दृष्टीसे देखा जाय तो इस गौ का ही यह सब रूप है ऐसा प्रतीत होगा, यह सब विश्व, सब जगत् मानो गौका ही व्यक्त रूप है। जब मनुष्य गौके दूध, दही, छास, मक्खन, घी आदिसे पुष्ट होते हैं तब संपूर्ण मानवी जगत् गौका ही रूप मानना योग्य है। मानो गौ ही मानवी रूप में परिणत होती है।

इस प्रकार गौका महत्त्व सब लोग जानें और गोरक्षा, गोवृद्धि और गोपुष्टि करके अपना और देशका उद्धार करें।

( यहां गोमेधका द्वितीय सूक्त समाप्त हुआ । )

वेदमें जो गोमेध के दो सूक्त हैं उनका अर्थ और स्पष्टीकरण यह है। पाठक इन मंत्रोंके मननसे देखें कि इन मंत्रोंमें गोवध और गोमांसहवन के लिये क्या प्रमाण है ? इसके लिये एक भी प्रमाण नहीं है, परंतु गोरक्षा, गोवृद्धि, गोपुष्टि आदिके लिये अनेक रीतिसे कहा है, गौका महत्त्व तो काव्यालंकारोंसे अनेक प्रकारसे कहा है। इसलिये गोमेधमें गौका वध मानना प्रमाणहीन होनेके कारण अयोग्य है।

वेदमें “गौ” के विषयमें जो मंत्र आगये हैं, उनकी संगति इससे पूर्व बतायी है। इन सब का विचार करनेसे यह बात निश्चित होती है कि वेद मंत्रोंमें गौका वध करके उसका हवन करने तथा गोमांस भक्षण करनेके लिये कोई प्रमाण नहीं है। इस विषयमें मांस पक्षी लोगोंकी जो कल्पना है वह निर्मूल है।

“ गोरक्षा ” ही आयौका श्रेष्ठ धर्म है। गोरक्षा करनेसे ही सबकी उन्नति हो सकती है।

“ गां मा हिंसीः । ”

वा. यजु. १३।४२



योग मार्ग से अरुचि या भयके कारण ।

[ १ ]

## क्या योगी परोपकार नहीं करता ?

( ले०- पं० अभय देव शर्माजी )

देवतास्वरूप भाई परमानन्दजी पूरे जोष के साथ तथा अपनी स्वाभाविक सरलता के साथ कई व्याख्यानों में कहा करते हैं कि “ योगियों से हमें क्या मतलब, योगी हमारे किस काम के । हिमालय पर जैसे और बहुत से दरख्त खड़े हैं हमारे लिये योगी भी वैसे ही हैं । ” इसी प्रकार लेखक को एकबार मुलतान आर्य समाज में एक मान्य आर्योपदेशक का व्याख्यान सुनने का सुयोग हुआ था जिसमें उन्होंने यह आशय प्रकट किया था कि आजकल जो कई लोग आर्यसमाज या प्रचार का कार्य छोड़कर योग करने बैठ जाते हैं यह वास्तविक वैदिक धर्म नहीं है। इन दो उदाहरणों में पाठक वह बात देख सकते हैं जो कि आजकलके हम नौजवानों की योगमार्ग से अरुचि ( बल्कि घृणा ) या भय का प्रथम कारण है । स्पष्ट शब्दों में कहें तो आजकल के हम नव शिक्षित लोगों का यह विचार है- ‘परोपकार करना मनुष्य का कर्त्तव्य है, समाज व देश की सेवा के लिये हम सब को कर्म करने चाहिये । पर योगाभ्यासी लोग स्वार्थ में रत हो अपनी ही उन्नति करने में लग जाते हैं और कर्म छोड़ बैठते हैं । उनकी इस उपकार कार्य से उदासीनता के कारण देश को लाभ नहीं होता, यही नहीं किन्तु बड़ी हानि होती है ।’ सारांश यह कि परोपकार और कर्मण्यता जैसे अत्यावश्यक गुणों से मनुष्य योग मार्ग में जाकर वंचित हो जाता है यह देखकर हम लोग कमसे कम ऐसे योग को नापसंद करने लगे हैं ।

इसमें बहुत कुछ सचाई है । हमारे देश में इस समय उपर्युक्त दोनों गुणों की सख्त आवश्यकता है । यह सब जानते हैं कि हम में ५२ लाख लोग

‘ साधु ’ ही बने ( जिन में से शायद बहुत थोड़े इस पवित्र और उच्च नाम से कहलाने योग्य हैं ) हुवे हैं जो कि ( कुछ सच्चे साधुओं को छोड़कर ) वास्तव में स्वार्थमय और अकर्मण्य जीवन ही बिता रहे हैं और इस तरह अपने को तथा औरों को हानि पहुंचा रहे हैं । ईश्वर करे कि सच्चे साधुओं का ध्यान ( अभी कुछ खिंचा है पर और अधिक ) आकर्षित हो और उनके यत्न से भारत में फिर एक सच्चे साधुओं का प्रबल शक्तिशाली साधुसंघ स्थापित हो जो कि असल में सब जगत् का भला कर सके । यह होगा धीरे धीरे ही, पर यहां इस प्रसंग में शायद एक बात की तरफ उन महानुभावों का ध्यान खींचना ठीक होगा । आजकलके ये साधु लोग ‘ रजोगुण ’ से बहुत डरते हैं । लेखक को बहुत बार ऐसे ‘ साधुओं ’ से ( जो कि वैसे बड़े सज्जन थे ) मिलने का अवसर मिलता रहा है जिन्होंने कि देशोन्नति तथा देशभक्तों के कार्यों की चर्चा छिड़ने पर बड़ी गंभीरता और संतोषके साथ कहा ‘ गांधी जी ( या अन्य देशभक्त ) में रजोगुण प्रवृत्त हो रहा है । अत एव वे ये सब हलचल करते फिरते हैं । रजोगुण की बीमारी ही लोगों को सताती है इत्यादि ’ । पहिली ही बार जब लेखक ने ऐसी बात सुनी थी तब वह भी कुछ देर के लिये प्रभावित हुआ था और अन्तर्मुख हो सोचने लगा था । पर पीछे से वह समझ गया कि इसमें बहुत सा भ्रम है । सचमुच हमारे बहुत से साधु इस बड़े भारी भ्रम में हैं कि वे रजोगुण से ऊपर होगये हैं, जब कि असलमें वे तमोगुण ( जो कि रजोगुण से भी हीन है ) के वशीभूत पड़े हैं । ऐसे साधु बहुत ही विरले हैं जो कि सत्वगुण के उत्कर्षके कारण अचंचल



या शान्त है। जो ऐसे हैं उनकी तो चरणरज हम सब को मस्तक पर लगानी चाहिये। नहीं तो, दुःख से कहना पड़ता है, कि अधिकतर 'साधु' तमोगुण की बीमारी में ग्रस्त हैं जिसका कि कुछ जोरदार इलाज होना चाहिये। साधुजागृति के लिये यह आवश्यक है।

परशायद योगसाधन साधुओंका कार्यसमझे जाने कारण इस 'अपरोपकारशीलता' का तथा 'अकर्मण्यता' का भी संबन्ध योगमार्ग से जुड़ गया है। और इसलिये बहुत से आजकल के नवशिक्षित युवक भाई सचमुच योग से डरते हैं- उतना ही डरते हैं जितना कि साधु रजोगुण से डरते हैं। योग को अकर्मण्यता से जोड़ने में बहुत सा भाग अभीतक साधुओं में बहुत प्रचलित योगसंबन्धी साहित्य ने ( जो कि योग के पुराने मूल ग्रंथों को कुछ अशुद्ध समझने तथा अधूरे वेदान्त के प्रचार से बना है ) भी किया है। पर वास्तव में यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि योगीजितना भारी परोपकार तथा सच्चा कर्म कर सकता है और करता है उतना अयोगी कभी नहीं कर सकता। आशा है कि यदि पाठक निम्नलिखित कथन से सहमत हो सकेंगे तो वे इस अनुचित बड़े भय से यूँ हो जायेंगे।

स्पष्टता के लिये हम 'परोपकार' और 'कर्मण्यता' इन दोनों पर पृथक् पृथक् विचार करेंगे। पहिले परोपकार को लेते हैं।

वैसे तो अपनी उन्नति (स्वोपकार) और परोपकार का अर्थात् व्यक्तिवाद और समाजवाद (Individualism और Socialism) का झगडा शुरूसे-शायद अनादि काल से चला आता है। पर अन्तमें सभी ज्ञानी लोगों का यही मत है कि इन दोनों की समता में ही सत्य है। अर्थात् यदि हम ठीक मार्ग से चलें तो आत्मोपकार और परोपकार में विरोध, भेद नहीं रहता, आत्मोपकार भी परोपकार हो जाता है, या परोपकार भी आत्मोपकार हो जाता है। पर वह ठीक मार्ग कौनसा है? यह योगमार्ग है, अपनी शक्तिओं को स्वाभाविक-तया विकास करने का मार्ग है।

❀

पहिले आत्मोपकार की दृष्टि से देखें तो हमें पता लगेगा कि जिसने अपनी उन्नति नहीं की वह परोपकार क्या करेगा। जिसने योग द्वारा अपने को समर्थ बनाया है, कुछ प्राप्त किया है वही दूसरों को कुछ दे सकता है। क्या यह सच नहीं है कि आजकल 'परोपकार' की हवा चली है अतः सब लोग परोपकार करने निकल पड़े हैं, जब कि असल में 'परोपकार' नामक क्रिया द्वारा वे अपना ही कुछ स्वार्थ साध रहे हैं। हमारी इन क्रियाओं का प्रेरक कारण क्या होता है यदि यह हम अपने अन्दर घुस कर देखें तो शायद हमारी आखें खुल जाय, हम परोपकार करते हैं यह भ्रम हट जाय, तब शायद हमें दीखे कि यह प्रेरक कारण यदि पैसा कमाने की इच्छा या इन्द्रियों की प्यास बुझाने के अवसर पानेकी इच्छा आदि हीन कारण नहीं हैं तो अधिकसे अधिक 'यश की इच्छा,' 'लोकैषणा' या केवल 'रजोगुण से पीड़ित होना' इन के मूल है। तो क्या ये कार्य 'परोपकार' शब्दसे कहलाने योग्य हैं? अतः परोपकार करनेके लिये पहिले आत्मोन्नति करनी चाहिये, योगसाधन द्वारा आत्मविकास करना चाहिये। जब मनुष्य स्वयं तृप्त हो जाता है, स्वयं इतना उन्नत हो जाता है कि अपनी कुछ इच्छा, तृष्णा नहीं रहती तभी वह सच्चा परोपकार कर सकता है।

फिर परोपकारकी दृष्टिसे देखें तो भी पता लगेगा कि योगसाधन (सब वैयक्तिक विकास) असल में परोपकार के लिये ही है। पातंजल योगदर्शन में स्पष्टतया परोपकार का नाम न आनेसे हमें भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये। ग्रंथ जिस समय जिन परिस्थितिओं में लिखे जाते हैं उन्हीं के अनुसार उनमें शब्द प्रयुक्त होते हैं। अतः योगदर्शन के कई स्थलों को जब हम आजकल की भाषा में पढ़ेंगे तो हमें वहां परोपकार लिखा दीखेगा। इन स्थलों के एक दो उदाहरण तो पाठक अभी इस लेख में देख सकेंगे जहां कि करुणा भावना का उल्लेख एवं योगशास्त्र के 'ईश्वर' के कार्य तथा सिद्धों के कार्य का उल्लेख आवेगा। परन्तु असल में योग की नींव में ही जो पांच यम हैं वे सब (आधु



निक भाषा में कहें तो) परोपकार पर ही आश्रित हैं और उनमें पहिला यम अर्थात् अहिंसा (जिसे कि व्यास जी ने भाष्य में सब यमों का एक यम कहा है) को यदि हम विधेयात्मक (Positive) रूप में लाकर देखें तो यह परोपकार ही है। एवं योग का आधार ही परोपकार पर है। इसी लिये आजकल जो लोग स्वानुभवसे योग पर लिखेंगे वे इसका स्पष्ट उल्लेख करेंगे। उदाहरण के लिये आधुनिक प्रसिद्ध योगी भी अरविन्द को पेश किया जा सकता है। उन्होंने अपनी 'योग का उद्देश्य' (Object of yoga) नामक पुस्तिकामें पहिला ही वाक्य यह लिखा है कि योग अपने लिये नहीं है, योग सब संसार के लिये होता है। सच्चे योगियों के जीवन भी (यदि हम उन्हें ध्यान से देखें) हमें यही बताते हैं। यद्यपि आपको आजकल कई सच्चे योगाभ्यासी महात्मा ऐसे मिलेंगे जो कि सिद्धान्ततः यह नहीं मानते दीखते कि योगी को परोपकार करना चाहिये, परन्तु यदि उनका जीवन देखेंगे तो पता लगेगा कि वे करुणा से भरे हुवे हैं और वे सदा दूसरों के कल्याण में ही रत हैं। हां, वे बेशक व्याख्यान नहीं देते या लेख नहीं लिखते। पर जब हम अपने अन्तःस्थ करुणासागर में कुछ गहरे प्रविष्ट हो जायेंगे तो शायद हमें पता लगेगा कि परोपकार के साधन सैकड़ों हैं जो कि एक से एक महान हैं और जिनमें से ये दो साधन व्याख्यान और लेख अतिसाधारण बल्कि तुच्छ हैं। हमारे कई जोषीले राजनैतिक भाई कहा करते हैं कि श्री अरविन्द जो कि बड़ा देशका काम कर सकते थे भला पांड-चेरी में बैठे क्या उपकार कर रहे हैं। पर लेखक की नम्र सम्मति में वे एक महान् योगी की तरह जो संसार का अदृश्य किन्तु बड़ा उपकार अभी कर रहे हैं, तथा भविष्य में जो उनद्वारा इससे भी बहुत बड़े कल्याण होने की संभावना है (जिनका कुछ निर्देश आगे आवेगा) उसे छोड़ भी दें तो भी जो उन्होंने अभी तक थोड़ीसी साहित्य सेवा की है—'आर्य' पत्रिकामें लिखे उनके लेख तथा अन्य अमूल्य पुस्तकें—वही पर्याप्त बड़ा उपकार है जिसका कि हम अभी पूरी तरह अंदाजा नहीं लगा सकते अस्तु। श्री अरविन्द

तो योग को संसार के लिये मानते ही, पर जो योगी ऐसा नहीं मानते दीखते उनके जीवन में भी परोपकार का स्वयं आना इस बात का चिन्ह है कि योगमार्गमें परोपकार स्वाभाविक और अवश्यभावी है योगशास्त्र के सिद्धान्तों से भी यह सिद्ध है। क्यों कि योगसाधन करने से अहंकार या अपनापन नष्ट होने लगता है, योग की परिभाषामें कहें तो उसका 'अस्मिता' नामक क्लेश का तनुकरण होने लगता है (यदि किसी अभ्यासी का स्वार्थ या अपनापन कम नहीं होता दीखता तो उसे समझना चाहिये वह योगमार्ग पर ठीक नहीं चल रहा) जितना जितना उस का यह 'अपनापन' नष्ट होता जाता है उतना उतना उसके लिये यह असंभव होता जाता है कि वह अपने लिये कुछ करे, तब वह जो कुछ करता है वह परोपकार ही करता है। एवं अभ्यासी में चित्तप्रसादन के साथ करुणाभाव का बढ़ना भी आवश्यक है (देखो योगसूत्र १-३३)। यह करुणाभाव भी अन्ततः परोपकार में ही चरितार्थ होता है। अतएव यह देखा जाता है कि सच्चे योगाभ्यासी बड़े कारुणिक और परोपकारी होते हैं। पर यदि हम इन योगशास्त्र की बातों तथा योगियों के जीवनो को भी जाने दें और केवल थोड़ासा अपनी वृद्धि से विचार कर के ही देखें तो भी हम इसी परिणाम पर पहुँचेंगे। यदि हम यह कल्पना कर सकें कि जिसने अपनी सब उन्नति कर ली है, प्राप्त्य पा लिया है, जो आप्तकाम है अतएव जिसे अपनी कुछ इच्छा नहीं रही है (यद्यपि यह बड़ी ऊँची अवस्था है जिसकी कि असल में हम पूरी तरह कल्पना भी नहीं कर सकते हैं, तो भी इतना समझ सकते हैं कि) वह उस समय सिवाय परोपकार के—सिवाय खालिस परोपकार के और क्या करेगा; और योग द्वारा विकसित अपनी इन शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, बौद्धिक तथा ईक्षण (Will) शक्तिसे (जो कि विकसित हो जाने पर एक से एक बढ़ कर आश्चर्यकारी शक्तियाँ हैं) वह जो कार्य करेगा वह कितना विस्तृत और कितना प्रभावशाली होगा। हमें यह भी पता होना चाहिये कि उस स्थानपर पहुँचा



योगी इतना परोपकारमय हो जाता है कि वह अपने वैयक्तिक मोक्ष की इच्छा भी छोड़ देता है। (यह पाठकों को उलटा सा मालूम होगा पर यह सत्य है कि अपनी मोक्षप्राप्तियोग्य उन्नति कर लेनेपर आगे जब तक योगी को मोक्ष की इच्छा रहती है तब तक उसे मोक्ष नहीं प्राप्त होता। मोक्ष तो तब मिलता है जब कि अन्य सब इच्छाओंकी तरह मोक्ष की इच्छा भी छूट जाती है)। तब उस के लिये 'त्रिषु लोकेषु किंचन, नानवाप्तमवाप्तव्यं' होता है। वहां पहुंचे हुवे उस पर परोपकारी के परोपकार की कल्पना करनी चाहिये। ऐसे थे महा योगी श्रीकृष्ण जी। अतः यह केवल कल्पना नहीं है। ऐसे और भी बहुतसे पुराने इतिहासों में सुने जाते हैं। (और शायद अब भी कहीं ऐसे सिद्ध हैं और शायद सदा रहते हैं)। इन्हीं सिद्धों का उदाहरण देकर योगदर्शन व्यास जी ने लिखा है 'जिन्हें अपना कुछ भी नहीं सिद्ध करना है जो कि मुक्त हैं वे भी कारुणिक होकर केवल परोपकार के लिये ही- संसार के लिये ही- देह धरते हैं' ऐसा देखा जाता है, जैसे कि आदिविद्वान् कपिल सिद्ध मुनिने 'निर्माणकाय' लेकर (अर्थात् आत्म शक्ति से अपना शरीर बनाकर) आसुरि को (अद्भुत सांख्य) तंत्र का उपदेश दिया जो कि तंत्र फिर साठ बडे बडे तंत्र (शास्त्र) होकर सब संसार में फैला। अस्तु, तात्पर्य यह है कि सब तरह से हमें यही अङ्गीकार करना होगा कि योग का अन्तिम फल परोपकार—शुद्ध और शक्तिशाली परोपकारही है।

यह सच है कि योग का अभ्यासी (साधक) अपना सब यत्न, अपनी सब शक्ति अपने पर ही संयोजित करता है तथा अपना सब ध्यान अपने विकास में ही खर्च करता है। पर असल में वह यह सब अपने को केवल केन्द्र बनाकर सब संसार के लिये करता है। परमात्माने मनुष्यका व्यक्तित्व (अहंकार तत्त्व) इसी लिये दिया है कि वह अपने को केन्द्र बनाकर सहजता से काम कर सके। जो पुरुष स्वयं जुदा है अर्थात् जिसने सब संसार से तथा संसार की परम आत्मा से अपना

संबन्ध जुदा नहीं देखा उसके लिये योगमार्ग नहीं है। योग की प्रारंभिक सीढ़ियां (यम और नियम) ही अभ्यासी को संसार के सब मनुष्यों से तथा परमात्मा से ठीक संबन्ध में जोड़ देते हैं। आगे वह योग के अग्रिम अंगों में ज्यों ज्यों बढ़ता है त्यों त्यों उसका यह संबन्ध दृढ़ होता जाता है और अन्त में जब वह सिद्ध योगी होने लगता है तब वह सचमुच अपने आप को सब संसार में फैली हुई या सब सब संसार से जुड़ी हुई एक शक्ति अनुभव करता है जिसका कि केन्द्र वह अपने व्यक्तित्व में देखता है। वहां उसे 'सब भूत आत्मा में तथा सब भूतों में आत्मा' दीखती है। पर इस सब जगत् से संबद्ध अपनी अवस्था को पाने के लिये विकास इसी केन्द्र का, इसी व्यक्तित्व का करना होता है। यही कारण है कि योगशास्त्र का सब जोर आत्मोन्नति पर ही है। इसी लिये हमें योगशास्त्र में 'स्वार्थ' की गन्ध आती है। और योग में अहिंसा यमको जो विधेयात्मक रूपमें नहीं लिखा है, निषेधात्मक रूप में लिखा है इसका भी एक कारण शायद यही है। पर यह अनिवार्य है, क्यों कि हम अपने को ही धीरेधीरे विकसित करके सब संसारके बन सकते हैं, यही एक उपाय है। एवं हमने देखा होगा कि किस तरह योग मार्गमें आत्मोपकार और परांपकार सम हो जाते हैं, एक हो जाते हैं। (क्योंकि 'अहिंसा' की जगह 'परोपकार' कहने में आत्मोन्नतिका भाव छिप जाता है।)

योग का साधक अपनी तरफ से बेशक अपनी ही उन्नति में लगता है, पर उस द्वारा परोपकार भी उसी समय साथ ही शुरू हो जाता है, क्यों कि उसका यह प्रारंभिक साधन भी जगत् के लिये है तथा उस साधन का चारों तरफ के जगत् पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। क्योंकि उसके बिना चाहे, बिना यत्न किये उसके मानसिक विकास की सुगन्धि चारों तरफ फैलती है जो कि लोगों को लाम पहुंचाती है। वैसे तो प्रत्येक मनुष्य ही अपने मन की विचार लहरों से चारों तरफ के मनोमय आकाश को प्रभावित किया करता है, परन्तु जहां अयोगी अपने असंयत, रागद्वेष से पूर्ण, कलुषित मन द्वारा बिना जाने अपने साथ अन्य लोगों को



भी हानि पहुंचाता है वहां एक योगाभ्यासी जो कि चित्तवृत्तिओं को नानातरह संयत और निरुद्ध करने द्वारा अपने मन को प्रसन्न, स्वच्छ, पुण्यमय बना रहा है, अपने इस विकसित होते मन द्वारा चारों तरफ के जगत् का बड़ा अदृश्य उपकार करता है ( ठीक उसी तरह जैसे कि एक विकसित पुष्पद्वारा चारों तरफ का वायुमण्डल अपने आप सुगन्धि से भर जाया करता है ) और ज्यों ज्यों योगी का यह आत्मविकास बढ़ता है त्यों त्यों इस सुगन्ध का विस्तार और बल भी बढ़ता जाता है। इसलिये यह सत्य है कि बड़े बड़े सिद्ध योगियों का संसार में रहना ( विना उनके कुछ अन्य कार्य किये ) ही बड़ा भारी उपकार है ।

पर यह बात नहीं कि योगी यह अदृश्य उपकार ही करता है, अपितु कुछ आगे चल कर ज्यों ज्यों अभ्यासी में अन्दर से शक्ति निकलती है त्यों त्यों वह उस नवप्राप्त शक्ति से दृश्य उपकार भी परिमाण के साथ करने लगता है ( जैसा कि ऊपर कहा है कि योगाभ्यासी परोपकाररत देखे जाते हैं ) । पर वह उपकार में उतना ही पड़ता है जितने से कि उसके असली कार्य ( अर्थात् आत्मविकास की साधना ) को क्षति न पहुंचे या ( दूसरे शब्दों में ) जितने के लिये उसके पास वास्तविक शक्ति विद्यमान होती है या ( अन्य शब्दों में ) जितना परोपकार करना उसके आत्मविकास में सहायक होता है । अतएव यह स्वाभाविक है कि प्रारंभ प्रारंभ में वह ऐसा दृश्य उपकार सर्वथा नहीं करता, तब तक सब समय सीधा अपने विकास के लिये ही देता है । इसीलिये हमारी प्राचीन आश्रमव्यवस्था में पहिले २५ वर्ष मुख्यतया केवल आत्मविकास ( आजकल भी विद्यार्थी को सार्वजनिक आन्दोलनों में क्रियात्मक भाग लेनेसे रोका जाता है ) के लिये होते थे और उस आश्रम में उसके लिये 'योगाभ्यास' नित्यकर्म होता था । उसी समय 'योगमार्ग' में दीक्षित हो जाने पर आगे जब वह स्नातक होता था और तब उपकार कार्य भी करता था तो वह उपकार कार्य भी उसके योगसाधन का ही अंग होता था । यह 'कर्मयोग' नामक योग की एक अवस्था

होती थी । पर अभ्यासी को उस समय भी उतना ही यह उपकारकार्य करना चाहिये जितने के लिये कि उसके पास रक्षित शक्ति विद्यमान है अर्थात् जितना उसके आत्मविकास के लिये आवश्यक है । यह सत्य है कि ऐसा कर्म योग अभ्यासी की उन्नति के लिये होता है । यदि वह उस समय कर्म-योग न करे तो उसके आत्मिक विकास में न्यूनता पड़ेगी, उसे क्षति पहुंचेगी । गीता में सत्य लिखा है कि आत्मविशुद्धि के लिये निष्काम कर्म करने चाहिये । जब अभ्यासी प्रथम बार स्वयं स्वाभाविक-तया कुछ ऐसा दृश्य उपकार करता है तो उससे उसको अगले आत्मविकास में सहायता मिलती है और फिर उस नयी विकसित शक्ति से वह उसी के अनुसार और कुछ अधिक उपकार करने के योग्य हो जाता है । इसी तरह ( बहुत से जन्मों में चलता हुआ ) ज्यों ज्यों वह आगे आगे बढ़ता है त्यों त्यों उसकी आत्मोन्नति की आवश्यकता घटती जाती है और परोपकार की शक्ति तथा क्षेत्र बढ़ता जाता है जिससे कि अन्त में सिद्धयोगी होकर उसका परोपकार ऐसा पूरा जगत् व्यापक हो जाता है वह अब केवल उपकार ही करता है—स्वोपकार के लिये कुछ भी कर्त्तव्य नहीं रहता ( ठीक इसी तरह जैसे कि प्रारंभ प्रारंभ में वह केवल स्वोपकार ( आत्म-विकास ) में ही लगा था और दृश्य परोपकार कुछ भी न करता था ) ।

एकवार यह लेखक कुछ दिनों के लिये एक जंगल के बंगले में रहता था जहां कभी दूसरे चौथे दिन किसी मनुष्य प्राणी की मूर्ति दिखायी देती थी । वहां एक दिन जंगल के एक 'रेन्जर' महाशय आये और बात करते हुवे कहने लगे " आप यहां व्यर्थ जंगल में क्यों पड़े हैं, आप पढ़े लिखे हैं, कुछ कार्य करना चाहिये " इत्यादि । वैसे तो लेखक को यह बात सुनकर प्रसन्नता हुई कि भारतवासी अब साधुओं के निठलपन को इतनी घृणा की दृष्टि से देखने लगे हैं कि उन्हें जंगल में भी चैन नहीं लेने देंगे और मन में ऋषि दयानन्द तथा अन्य ऐसे प्रचारकों का धन्यवाद किया, पर उन्हें यह समझाया कि " आप जब थक कर रातको पड़े सो



रहे हों जिसका अर्थ है कि अगले दिन ( और अधिक ) कार्य करने की शक्ति संचय कर रहे हों तब मैं आपको पकड़ कर जगाऊँ और उठा दूँ कि काम करो, मनुष्य को काम करना चाहिये, तो आप क्या कहेंगे ? अतः मुझे भी नींद ले लेने दीजिये।”

आत्मोपकार और परोपकार में शयन और जागरण का सा ही संबन्ध प्रतीत होता है। जब हम केवल आत्मोन्नति में लगे होते हैं तो हम वेशक संसारके लिये सो रहे होते हैं, पर यह शयन हमारे अगले जागने के लिये—जाग कर नये परोपकार कार्य की शक्ति लाने के लिये—आवश्यक होता है। एवं अभ्यासी कुछ समय लगातार आत्मोन्नति में लगता हुआ और फिर जो कुछ कमाया है उसे परोपकार में खर्च करने के लिये अगला कुछ लगातार समय विशेषतया परोपकार में लगाता हुआ—सोता हुआ और नयी शक्ति से जागता हुआ—चलता है। और यदि वह अपना नैतिक साधन ठीक तरह जारी रखता है ( परोपकार कालमें भी ) तो उसे यह स्वयं पता लग जाता है कि उसे अब परोपकार के लिये जागना चाहिये या जब उसकी वह शक्ति समाप्त होने लगती है अर्थात् जब कि वह विना नयी शक्ति पाये परोपकार को सच्ची तरह जारी नहीं रख सकता तब भी पता लग जाता है कि उसे अब सोकर नयी शक्ति पानी चाहिये। यह शयन या जागरण एक पूरे जन्म तक चलते हों यह भी संभव है। पर ज्यों ज्यों उन्नति होती है त्यों त्यों अगला शयन थोड़ा होता है और जागरण बढ़ता है जब कि सिद्ध के लिये जागरण ही केवल रह जाता है। ( अथवा ठीक शब्दों में कहें तो वह दिन रात से ऊपर हो जाता है और हम उसकी अवस्था को अपनी मति के अनुसार केवल दिन या केवल रात कहते हैं। असल में हमें उसे दिन समझना चाहिये )।

यहां यह भी स्पष्ट है कि जिनका सिद्ध होना तो दूर रहा जिन्होंने योग की प्रारंभिक शक्तियां भी नहीं पायीं वे यदि 'परोपकार' की धुन में इसे ही

जारी रखते हैं, अर्थात् जिन्हें कभी विश्राम लेकर आत्मोन्नति करने की इच्छा ही नहीं पैदा होती उन्हें समझना चाहिये की उन्हें 'अनिन्द्रा' का रोग हो गया है। यदि इसकी चिकित्सा न करेंगे तो उनका देह थक कर थोड़ी देर में इतना खराब हो जायगा कि आगे परोपकार तो (कम से कम 'सच्चा परोपकार') कर ही नहीं सकेंगे, पर साथ में यह भी पूरा डर है कि उनमें स्थित वह परोपकार का बीज भी कहीं नष्ट न हो जाय जो कि यत्नद्वारा विकास पाकर कभी बड़े भारी परोपकार का वृक्ष बन सकता है।

परोपकार करने के दो रास्ते हैं। एक योगी का, दूसरा अयोगी का। उदाहरणार्थ, एक आम की गुठली यदि अपने को परोपकार में खर्च करना चाहे तो दो तरह से कर सकती है। (१) एक तो यह है कि वह पृथ्वी में (गुफा में) घुसकर अपने को—अपनी गर्भित शक्तियों को—धीरे धीरे करके योग द्वारा एक विशाल आम्रवृक्ष के रूप में विकसित करे। (२) दूसरा उपाय यह है कि वह जैसी है (विना योगसाधन किये) वैसी ही अपने को शीघ्र ही परोपकार में खतम करना चाहे। दूसरी अवस्था में उससे अधिक से अधिक उपकार शायद यह हो सकता है कि कोई वैद्य उससे कुछ औषध बना ले या कोई भूखा प्राणी जिसे इससे उत्तम अन्न न मिल सके वह इसे या इसकी गिरि को खाकर कुछ उपकृत हो जाय। पर यदि वह गुठली (यत्नसे और वेशक बहुत देरमें) योगद्वारा आम्रवृक्ष बन जाती है तो न जाने कितने प्राणियोंको सहस्रों सुमधुर फलों के रूप में उत्तम भोजन देती है, वैद्यको सहस्रों गुठलियां दे सकती हैं, बहुत बार धूपसे संतप्त जीवों को अपनी शीतल छाया देकर उपकार करती है, अपनी लकड़ी से यज्ञ की अग्नि तथा अन्य अग्निओंकी समिधा बनती है, लकड़ी रूपमें और न जाने कितने काम आती है, वायु से प्राणवायु खींच कर संसार के लिये देने का साधन बनती है, कुछ अंशमें बादलों के बरसाने में भी सहायक होती है, इत्यादि इत्यादि। तात्पर्य यह कि योगद्वारा अपनी गुप्त



आत्मशक्तिओंके विकास से जितना भारी परोपकार होता है उसका हजारवां भाग भी हम बिना आत्मोन्नति किये नहीं कर सकते ।

पर सब बात यह है कि इस योगमार्ग में जाने के लिये बड़ा भारी धैर्य चाहिये । असल में यह धैर्य की कमी है जो हमें उस मार्ग से डराती है, नहीं तो यह समझना कठिन नहीं है कि वास्तव में हम परोपकारी उधर ही जाकर हो सकते हैं । प्रारंभमें योगमार्गावलंबी में वह 'श्रद्धा' का बल चाहिये जिससे कि वह अनजान लोगोंके कहने की परवाह न करे जब कि वे कहते हैं कि " यह जमीन में व्यर्थ घुसा पड़ा है " । अपनी श्रद्धा द्वारा उसे यह असंदिग्ध दीखना चाहिये कि जमीन के अन्धकार में पड़नेसे वह वास्तवमें संसार का उपकार ही कर रहा है । सत्कार्यवादी योगी लोग तो अपनी उच्च प्रज्ञा से देखने के कारण "कारण और कार्यमें भेद नहीं देख सकते " । उन्हें उस भूमिस्थ गुठली में ही सब फलों से लदा वृक्ष दिखायी देता है । अतः वे क्षणभर के लिये भी नहीं भूलते कि वे इस सब लंबे समय में (जो अन्यो को एक व्यर्थ नष्ट होता बड़ा लंबा समय दीखता है) परोपकार नहीं कर रहे हैं । इस श्रद्धा में अविचलित बने रहने से फिर उसमें 'वीर्य' आ जाता है जिसके कि सामर्थ्य से वह वीर अपने को मट्टी में गला देने से भी भय नहीं खाता, क्योंकि वास्तव में योगसाधन द्वारा अभ्यासी को एक बार मर जाना होता है और मर कर कुछ और बनना, होता है ( एक प्रकार का पुनर्जन्म पाना होता है ) । एवं स्मृति और समाधि की अवस्था के भी बाद जब उसमें 'प्रज्ञा' का अंकुर उदय होता है तब कुछ लोगों को समझ में आता है कि इससे शायद बड़ा भारी परोपकार हो । ( देखो योगसूत्र १-२० ) । इसप्रकार यह योगमार्ग बेशक बड़ा कठिन है, पर इसी ही मार्ग से हम क्षुद्र लोग भी अब की अपेक्षा अनन्तों गुणा परोपकारी बन सकते हैं ।

अब पाठक इस योगी के परोपकार की तुलना में अयोगी के परोपकार पर भी एक दृष्टिपात कर सकते हैं । जिसने योगद्वारा अपनी शक्तिओं को

विकसित नहीं किया अतएव जिसे आत्मतृप्ति का कुछ भी मजा न मिलने के कारण जो नाना प्रकार की असंख्यातों इच्छाओं और कामनाओं से पीड़ित है, पर वह किसी कारण ( ? ) चाहता है परोपकार करना, तो इस का क्या परिणाम होगा, यह पाठक स्वयं सोच सकते हैं । इसका परिणाम होता है ढोंग । जो जितने अंश में एक परोपकार कार्य के अयोग्य होता हुआ उसे करता है, उसे उतने अंश में वहां ढोंग करना पड़ता है । अर्थात् परोपकार के नाम से वह स्वार्थ साधन (उतने अंश में) करता है, निष्काम के नाम से सकाम कार्य करता है । और क्योंकि उसके ये कर्म निष्काम नहीं होते, अतएव ये कर्म ( उतने ही अंश में ) कर्मयोग नहीं बनते, जैसे कि योगी के परोपकार ( निष्काम ) कर्म कर्मयोग होते हैं ( यद्यपि उसके ये कर्म अयोगी की अपेक्षा मात्रा में कम होते हैं, क्योंकि वह अपनी योग्यता से आगे बढ़ कर तनिक भी ' परोपकार ' ( ? ) नहीं करता ) । फलतः इन कमों से न तो उसकी आत्मा की विशुद्धि ही होती है, और न लोगों का कुछ भला होता है । लोगों को लाभ तो तब हो जब कि उसमें वास्तव में उस परोपकार करने की शक्ति, योग्यता विद्यमान हो । जो कुछ शक्ति होती है वह थोड़ी देर में समाप्त हो जाती है और उसका सच्चा उपकार भी तभी समाप्त हो जाता है । आगे उसे उचित तो यह है कि वह योगी बनकर उस कार्य के लिये योग्य होने लायक शक्ति को आत्मविकास द्वारा प्राप्त करे, पर वह प्रायः रजोगुण से बताया हुआ, मनेवृत्तिओं का दास बना हुआ और षड्रिपुओं का भ्रमाया हुआ उसे छोड़ना नहीं चाहता, उसमें यूँ ही लगा रहना चाहता है । योगी की तरह उसे स्पष्ट पता भी नहीं लगता कि उसे अब ( या कभी ) आत्मोन्नतिमें लगने की जरूरत है तो अब वह बिचारा क्या करे, अतः वह अपने उन्हीं स्वार्थमय परोपकारों में लगा रहता है ।

वास्तव में ( एक वाक्य में कहें तो ) योगी और अयोगी के कमों में भेद यह है कि अयोगी जो परोपकार करता है वह भी स्वार्थ के लिये होता



है और योगी जो साधन कालमें अपना कार्य करता है वह भी परोपकार के लिये होता है। पर सिद्ध योगी हो जाने पर, साधनकाल पूरा हो जानेपर, तो वह परोपकार के लिये भी कुछ नहीं करता, अपितु सब परोपकार ही करता है। ऊपर जो गुठली के आभ्रवृक्ष रूपमें आजानेपर उसके परोपकार का कुछ विस्तार से वर्णन किया गया है। वह यं ही नहीं किया है। वह इस बातको हृदयपर अच्छी तरह अंकित करने के लिये किया है कि वास्तवमें सिद्ध पुरुषोंका उपकार इतना ही विशाल, इतना ही अनन्तगुणित, इतनाही व्यापक और सर्वतो मुख होता है। योगी यद्यपि साधनावस्थामें भी नानातरहसे दृश्य और अदृश्य उपकार करता हुआ आगे बढ़ता जाता है परन्तु उसका असली महान् शुद्ध केवल उपकार सिद्ध बननेपर ही प्रारंभ होता है, जैसे कि आभ्रबीजसे असली उपकार तभी होता है जब कि वह पूर्णविकसित फलशाली विशाल वृक्ष बन जाता है। पर भेद इतना है कि उन सिद्धों के ये व्यापक महान् उपकार हमें इन स्थूल चर्मचक्षुओं से दिखलायी नहीं देते। पर इससे यह नहीं समझना चाहिये कि वे अपनी प्राप्त विभूतिओं से ( जो कि निःसंदेह केवल परोपकारार्थ ही वहां हैं ) हम पर-उपकारों की वर्षा नहीं कर रहे हैं। कई बार मनमें आया करता है कि हम अज्ञानी लोकों द्वारा नित्य किये गये इतने पापों से भरा यह संसार दिनोदिन नीचे गिर नष्ट नहीं होजाता इसका कारण संसार में ऐसे परम कृपालु, स्वयं आप्तकाम, किन्तु 'सर्व भूतहिते रत' मुक्त पुरुषों की सत्ता का होना ही है। ये लोग स्थूल बन्धनों से मुक्त हो आत्माकी (मानसिक, बौद्धिक, शक्तिक आदि) सूक्ष्म (अत एव महाबलशाली) शक्तिओं से निरन्तर संसार को मार्ग दिखा रहे हैं, और नाश से बचा रहे हैं। क्या मालूम हम में जो बहुत बार एकदम नये ज्ञानकी स्फुरण सी होजाती है वह इन्हीं के चलायी हुयी मनोधाराओंमें से किसी के स्पर्शका फल होता है। और क्या आश्चर्य कि भाई परमानन्दजी के देवतुल्य सरल हृदयमें जो इस तरह अकर्मण्यता का खण्डन करने की प्रेरणा होती है उसके मूल में भी ऐसे ही किन्हीं

महापरोपकारी, अदृश्य, सिद्ध योगी की शक्ति ही हो। जो हो, यह सत्य है कि हमारी उन्नति की पराकाष्ठा हो जानेपर परोपकार ही एक मात्र कृत्य रह जाता है और अन्त में परमगुरु परमात्मा जहां कि ज्ञान की तरह अन्य सब गुणों की भी पराकाष्ठा है संसारस्थ अपने अनन्तों पुत्रोंके लिये केवल परोपकार स्वरूपी पिता हैं। व्यासजी ने योगभाष्य में उनके प्रसंग में कहा है कि वे परम कारुणिक भगवान् संसारार्णव में डूबते जीवों के उद्धार के लिये अपने सत्वोत्कर्ष द्वारा संसार में वेद का दान करते हैं। "तस्यात्मानुग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रहः प्रयोजनम्। ज्ञानधर्मोपदेशेन कल्पप्रलयमहाप्रलयेऽपि संसारिणः पुरुषानुद्धरिष्यामि इति"। यहां 'आत्मानुग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रहः' इन शब्दों से शुद्ध परोपकार का स्वरूप बताया गया है। अस्तु।

पर (जैसा कि अभी कहा है) हमें न तो स्वयं भगवान् उपकार करते हुवे दीखते हैं, नहीं उनकी इच्छा में अपनी इच्छा मिलाकर सिद्धता प्राप्त किये हुवे योगी ही उपकार करते दीखते हैं। इसी (स्थूल दृष्टिसे) न दीखने के कारण ही हम लोग इस अज्ञान के शिकार हो जाते हैं कि ये योगी (या परम-योगी परमात्मा) उपकार करना छोड़ बैठे हैं। यदि हम जरा सोचेंगे तो पता लगेगा कि उनके उपकार कर्मों का (स्थूल में) न दीखना ही इस बात का चिन्ह है कि उनके उपकार कर्म कितने अपरिमित हैं। चूंकि हम सूक्ष्म से स्थूल की तरह ज्यों ज्यों बढ़ते हैं त्यों त्यों परिमितता बढ़ती जाती है (इस बात का अधिक स्पष्टीकरण अगले 'कर्म' के प्रकरण में आवेगा) अतः स्थूल की परिमितताओं और विविधताओं में फंसे हुवे हम लोग सिद्धोंके सूक्ष्म किन्तु (शक्ति और विस्तार में) अपरिमित उपकारों को नहीं देख पाते। और उन्हें तो जरूरत है ही नहीं कि वे हमें जतलाते फिरें कि हम द्वारा ये ये इतने महान् उपकार हो रहे हैं। यह तो हम अशुद्ध तथा स्वार्थ मल दूषित उपकार करनेवालों की इच्छा हुवा करती है कि उपकृत को पता लगे कि 'मैंने' उपकार किया



है; हमें उपकार करने का अभिमान भी होता है कि मैं यह उपकार कर रहा हूँ। पर हमें यह खूब समझ लेना चाहिये कि यह अभिमान ही हमारे उपकार के विशुद्ध होने में सब से बड़ी रुकावट है। अर्थात् हम में उपकार करने का जितना अभिमान होता है (अतएव दिखाने की इच्छा होती है) उतना ही वह उपकार स्वार्थभय होता है; उसकी पहुँच, प्रभाव, बल भी उतनी ही मात्रा में कम (परिमित) होते हैं। शुद्ध परोपकारी को यह 'भान' होना ही बन्द हो जाता है कि 'मैं' उपकार करता हूँ 'मैं' का अभिमान जाता रहता है। अतः सिद्ध लोग उपकार करते हैं 'यह कहने की अपेक्षा ऐसा कहना अधिक ठीक है कि सिद्धों द्वारा परोपकार 'होता है-स्वयमेव होता है'। संसार में सूर्य चन्द्र पृथिवी आदि देवों को देखना चाहिये कि ये कैसे निरभिमान और निर्मान होकर इतना बड़ा भारी परोपकार चला रहे हैं। सिद्ध योगियों का परोपकार भी इसी कोटि का होता है। ये सिद्ध भी एक मात्र परमोपकारी परमात्मा के अनन्त उपकार कार्य के लिये सूर्य चन्द्रादि की तरह ही उनके हाथ में एक बड़े भारी (निरभिमान, निर्मान, जडसदृश और अदृश्य) साधन बन जाते हैं। केवल सर्वथा परोपकारी बनने के लिये यही विधि है। यहां हम यह भी देख सकते हैं कि कई सच्चे योगी जो अपने सन्मुख परोपकार को सिद्धान्ततः नहीं रखते हैं इस का क्या अभिप्राय है। वास्तव में ही परोपकार हमने करना नहीं है वह स्वयं हम से होगा। यदि पाठकों ने पिछला विवेचन ध्यान से पढ़ा है तो उन्होंने यह देखा होगा कि साधनावस्था में (सिद्धावस्था से पहिले) भी योगी का परोपकार ऐसा ही सहज परोपकार होता है (जो स्वयं सामने आता है वह हठ से नहीं किया जाता)। अस्तु। तात्पर्य यह कि यह जान कर कि चूंकि वास्तविक परोपकार निरभिमान और सूक्ष्म होने के कारण साधारणतया दृश्य नहीं होता है, हमें उस महान परोपकार की सत्ता से इनकार नहीं करना चाहिये, अपितु स्वयं

स्थूल से ऊँचा उठकर उसे देखने का यत्न करना चाहिये।

आशा है अब यह स्पष्ट है कि योगमार्गाबलंबी प्रारंभ से अन्त तक सच्चे अर्थों में परोपकारी होता है तथा अन्त में उसी के लिये 'परोपकाराय सतां विभूतयः' यह वाक्य ठीक उतरता है, क्योंकि उसी सत्पुरुष के पास सच्चे अर्थों में विभूतियाँ होती हैं और वही एकमात्र शुद्ध परोपकार कर सकता है और स्वभावतः करता है।

इसलिये यदि कोई धीर पुरुष इस दिव्य आत्म विकास के कार्य के लिये समाज से जुदा होते दिखाई दें तो इसे बुरा न मानना चाहिये, बल्कि इसे अपरिमित परोपकार का प्रारंभ समझ इसमें उनकी यथाशक्ति सहायता करनी चाहिये। कुछ काल तक कोई दृश्य उपकार होता हुआ न देख कर अधीर नहीं होना चाहिये। आभ्रबीज से आभ्र-फल एकदिन में नहीं मिल सकते। पाश्चात्य देशों के व्यापारी (जिनका उद्देश्य कुछ उच्च नहीं होता प्रायः तो दूसरे निर्वल देशों का आर्थिक शोषण करना होता है) अपने यहां आविष्कारों के लिये वैज्ञानिकों को रखते हैं। यह कार्य एक वैज्ञानिक के जीवन भर और कभी कभी पुश्तों तक चलता रहता है पर कोई इष्ट आविष्कार नहीं निकलता। इस पर भी वे घबराते नहीं। उनमें दूर दृष्टि होती है जिससे कि वे जानते हैं कि यदि सौ वर्षों में भी एक आविष्कार उनके उस व्यापार का सहायक हो जायगा तो उससे सब क्षति पूर्ति हो जायगी। वहां वे इस कार्य को 'समय बरबाद करना' नहीं कह सकते। पर हम पतंजलि आदि ऋषिओं की सन्तान योगसाधन के कार्य (जिससे अपना तथा जगत् का कल्याण ही होता है) में बहुत सा काल लगाने से डरें यह कितने आश्चर्य की बात है। आशा है जब हम योगमार्ग की परोपकारमयता को समझ जायेंगे तो सौवर्ष ही नहीं बल्कि कई जन्मों (जीवनों) तक को हम योगसाधन में लगाने के लिये उद्यत होंगे।



# प्रेत-विद्या.

( ले०-उदयमानुजी . )

आजकल प्रेतविद्या का बोलबाला है। समाचार पत्रों में इसको खासी चर्चा होती है। केवल योरोपमें ही नहीं किन्तु भारतमें भी इसका प्रचार दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। पाश्चात्य जगत्में कई बार इसके विरुद्ध आन्दोलन किया गया परन्तु भारत तो सदा से श्रद्धा के लिए प्रख्यात है, यहाँ कोई भी सिद्धान्त हो, न्याय और सत्य की दृष्टि से चाहे उसका मूल्य कितना ही कम क्यों नहीं, वह भारत में बिजली की तरह व्याप जाता है। यही कारण है कि प्रत्येक साम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए जितनी अनुकूल वायु भारत में मिल सकती है, उतनी अन्य किसी भी देशमें नहीं। धर्म की भी जितनी शाखाएँ भारत वर्ष में हैं उतनी संसार के किसी देश में नहीं पाई जाती। कहने का तात्पर्य यह है भारतवर्ष में प्रत्येक सिद्धान्त के माननेवाले को अपने प्रचार-कार्य में बड़ी सफलता मिल सकती है।

आज हमें प्रेत-विद्या का विचार करना है। उनके सिद्धान्त कैसे हैं, उनमें न्याय और सत्यता का अंश कितना है; इसका विचार इस लेख में किया जायगा। मुझे देखकर बड़ा दुःख होता है कि सभ्य और शिक्षित मनुष्य तक भी इसके प्रचार कार्य में हाथ दे रहे हैं। इस लेख को प्रकाशित करनेका मेरा विचार कई मास से हो रहा था; किन्तु समयाभाव वश मैं इसे पूर्ण नहीं कर सका।

## आत्म कथा

अपनी कथा को वर्णन करने की आदत प्रायः सभी मनुष्योंमें पाई जाती है और इससे कभी कभी बहुत लाभ भी हो जाया करता है। अतः मैं भी अपनी कथा पाठकों के सम्मुख रखता हूँ, इससे आपको पता चल जायगा कि शिक्षित और विरोधी मनुष्य भी कैसे इनके चंगुल में फँस जाया करते हैं। यह कथा वहाँ तक तो लिखी जायगी जहाँ तक इसका इस विषय से सम्बन्ध है।



मुझे गुप्त विद्या ( Occult-Sciences ) संबंधी पुस्तकें पढ़ने का प्रायः कई वर्षों से शोक है। मैंने मेसमेरीजम, हिपनाटीजम आदि सभी विद्याओं का अध्ययन और अनुभव भी प्राप्त किया। तब मुझे गुप्त विद्याओं में पूर्ण विश्वास हो गया।

प्रारंभ में मैं प्रेतविद्या का विरोध करता था और मुझे प्रेतविद्या ( Spiritualism ) में तनिक भी विश्वास नहीं था। परन्तु इस विषय के लेख 'श्रीव्यंकटेश्वर समाचार', 'प्रभा', प्रभृति सुप्रसिद्ध पत्रों में पढ़कर मुझे इसका ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा हुई और वह भड़कीले विज्ञापनों के पढ़ने से उत्तरोत्तर बढ़ती गई। मैं यह विचारता था कि बिना प्रत्यक्ष किये किसी सिद्धान्तपर अविश्वास प्रकट करना अनुचित है। मैं यह भी सोचने लगा कि यदि प्रेत विद्या में मुझे सफलता मिल गई तो ऋषियों की प्रेतात्माओं से मिलकर मैं आर्य जनता में एक विशेष प्रकार का आन्दोलन कर सकूँगा। ऋषि के विचारोंको मैं अब भी प्रकाशित कर सकूँगा, इत्यादि इत्यादि।

तबसे मैं इस विषयकी पुस्तक पढ़ने लगा। यह बात लगभग सन १९२२ की है। बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी मुझे सफलता नहीं हुई। इन पुस्तकों में एक पुस्तक ऐसी भी थी कि जिसका मूल्य ५० ) था, और अन्य पुस्तकें भी कुछ कम मूल्य की न थी। लगभग ६ मास तक लगातार अध्ययन और परिश्रम करता रहा किन्तु किसी भी प्रकार मुझे सफलता नहीं हुई। तब मैंने एक विज्ञापन Indian review में पढ़ा। उसमें एक अंगूठी की कई लोगों ने प्रशंसा की थी। मैंने उसे तथा कई अन्य प्रेतविद्या सम्बन्धी साधन ( लैपेट आदि ) मंगवाये। मैं, मेरी माताजी तथा मेरी दो बहिनों द्वारा अंगूठी का प्रयोग लगभग चार मास तक चलता रहा परन्तु परिणाम में वही असफलता और निराशा दिखाई दी। तब मैं कई अन्य प्रेतात्मवादियों से मिला।



उनकी सहायता से मुझे लैप्चेट और thought transference की सिद्धी प्राप्त हुई। तब प्रेतात्माओं से मेरी बातचीत होने लगी। मुझे स्वामी दयानन्द, तथा मेरे पितामह आदिकी प्रेतात्माओं से वार्तालाप होने लगी। कुछ दिन तक इसी प्रकार कार्य चलता रहा। इसमें मेरे अन्य मित्रभी सम्मिलित होने लगे। परन्तु कुछ दिनोंके उपरान्त मुझे इसकी असत्यता का पता लगा और यह पूर्ण ज्ञात हो गया कि यह केवल एक मानसिक भ्रम है, इसकी परीक्षा मैं पाठकों के सम्मुख प्रश्नोत्तर रूपमें आगे रखूंगा। इसके प्रथम इसके सिद्धान्तोंका दिग्दर्शन करा देना आवश्यक समझता हूँ।

### प्रेतात्म विद्याके सिद्धान्त—

मनुष्यकी आत्मा अमर है। शरीर के नष्ट हो जाने से आत्मा का नाश नहीं होता। यह आत्मा मृत्यु के पश्चात् फिर जन्म नहीं लेती किन्तु अन्तरिक्ष में कुछ दूर रहती है। ये आत्माएँ अपने स्थानसे पृथ्वी-पर आती हैं और अपने सम्बन्धियों से प्रेम करती, उनकी रक्षा करती और उनसे मिलने के लिए सदा प्रयत्न करती रहती हैं। इन्हें भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञान रहता है और ये सूक्ष्म शरीर में रहती हैं। ये हमें देख सकती हैं और हमारी आवाज को सुन सकती हैं पर हम इन्हें न देख सकते हैं और न इनकी आवाज को सुन सकते हैं। सम्बन्धीयों के रोने से प्रेतात्माओं को दुःख होता है। मनुष्य लोक में आने से इनका दम घुटने लगता है। इनके बुलाने में बड़ी जोखिम है। प्रेतलोकमें मृतमत्तान्तर का सर्वथा अभाव है अतः वहाँ सामाजिक मनो-मालिन्य तनिक भी नहीं है। प्रेतात्माओं को फिर किसी प्रकारकी मृत्युका सामना नहीं करना पड़ता।

### वैदिक मत—

मनुष्यकी आत्मा अमर तो है किन्तु बार बार जन्म-मरण के चक्कर में घूमती रहती है। मृत्यु के पश्चात् आत्मा सूक्ष्म शरीर के साथ रहती है। जब तक उसका पुनर्जन्म नहीं होता तब तक उसकी प्रेत संज्ञा रहती है। प्रेत यमलोक में ही रहते हैं। यहाँ यमलोक से किसी भयानक एवं अदृश्य लोक से तात्पर्य नहीं अपितु अन्तरिक्ष से है।

इतना विवरण करने के पश्चात् हम यहाँ अपने पाठकों की सुविधाके लिए प्रश्नोत्तर रूपमें उन सब शंकाओं का समाधान करते हैं जो इसके मानने में लोगों को प्रायः हुआ करती है।

प्र—क्या तुम प्रेत-विद्या (modern spiritualism) का खंडन करते हो।

उ—हाँ।

प्र—प्रेतविद्या का सिद्धान्त अत्यन्त पुराना है। इसे सभी धर्म के लोग मानते आये हैं अतः तुम्हारा खंडन करना योग्य नहीं।

उ—जिन सिद्धान्तों को तुम मानते हो उन्हें अत्यन्त प्राचीन मानना भ्रम है क्योंकि वैदिक काल में इसका वर्णन कहीं नहीं पाया जाता।

प्र—हम इसकी प्राचीनता सिद्ध करते हैं—

( १ ) नूनमतः परं वक्ष्या ... ..  
... .. स्वधासंग्रहतत्पराः ॥

कालिदास.

अर्थात् मृत्यु के पश्चात् आत्मा में इच्छा पूर्वक इधर उधर घूमनेकी शक्ति आजाती है और मृतआत्माएँ नगरके ऊपर चक्कर लगाया करती हैं।

( २ ) कई अन्य काव्यों में भी ऐसाही वर्णन आता है कि अमुक के पितर उसको देखने को स्वर्ग से आगये इत्यादि ॥

( ३ ) “As for Egypt there is in the British museum a papyrus which dates from about 6000 years B. C. and which tells of the sorrow which the writer suffered through the death of his young wife. He would go into her tomb, and there by means of ‘raps’ he would hold conversation with the spirit of his deceased wife.”

अर्थात् आजसे लगभग ६००० वर्ष पहिले इस पत्रके लेखक की धर्म पत्नी मर गई थी। वह इसे अत्यन्त प्रिय थी अतः उसके मरनेपर इसे हृदय विदारक दुःख हुआ, कि जिसका पता हमें इस पत्र से मिलता है। किसी भी प्रकार के ‘खटखट’ शब्दसे यह व्यक्ति उसकी कबर में जाकर वह अपनी



मृतपत्नी की आत्मा से बात करता था। यह पत्र मिश्र देश का है और ब्रीटिश म्यूझियममें अभी विद्यमान है।

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध होता है कि यह सिद्धान्त अति प्राचीन कालसे प्रचलित है और प्राचीन काल के लोगों को प्रेतविद्या के अनुभव भी होते थे।

उ—इस विद्या की उत्पत्ति का समय—

जैमिनि मुनि से महर्षि दयानन्द तक का काल एक 'चमत्कार-काल' कहा जा सकता है। चमत्कार वे घटनाएँ कहलाती हैं कि जो नियम विरुद्ध हो या जिनके नियम दर्शक न समझ सकें। जैसे वर्तमान समय में प्रत्येक वस्तु की सत्ता को सिद्ध करनेके लिए प्रत्यक्ष प्रमाण की आवश्यकता होती है ठीक इसी प्रकार उस 'चमत्कार काल' में प्रत्येक वस्तु की सत्ताको सिद्ध करने के लिए चमत्कार की आवश्यकता थी। लोग प्रत्येक घटना को ऐसी बना देते थे कि जिससे दर्शक लोग उसकी स्वाभाविकता को न समझ सकें। इस समय के किसी भी महापुरुष का अध्ययन कीजिए। ज्ञात होगा कि उनकी ख्याति किसी सत्याचरण या विद्या के कारण नहीं हुई किन्तु उन घटनाओं के कारण हुई है कि जो चमत्कार पूर्ण थीं। इसी कारण लोगों ने उन महापुरुषों के नामपर अनेक मन गढ़ंत कथाएँ रचकर अपना स्वार्थ सिद्ध किया।

आपने जो कालिदास इत्यादि के काव्यों का उदाहरण दिया है वे सब इसी चमत्कार काल की उपज हैं अतः अमान्य हैं।

आपने जो ६००० वर्ष पूर्व का मिश्रदेश के एक पत्र का उदाहरण दिया है वह भी हमारी समझ में उतना पुराना नहीं नजर आता। क्यों कि किसी पत्र को केवल अनुमान से इतना पुराना बतला देना प्रमाणित नहीं माना जा सकता। संभव है वह इतना पुराना न हो। क्यों कि पेटी महोदयने लिखा है "प्राचीन मिश्र के पुरोहितों की रहस्यमयी शिक्षाओं में यह विचार पाया जाता था कि आत्मा ३००० वर्ष तक पशु आदि के शरीरों में जन्म ग्रहण करता है"। देखिए आपकी रचित पुस्तक "Personal religion in Egypt before Christianity" पृष्ठ

सं. ४३. जब पेटी महोदय ईसा के पहिले मिश्र देश में पुनर्जन्मवादका प्रचार मानते हैं तब आपका अनुमान बिलकुल गलत ठहरता है। और सिद्ध होता है कि वह पत्र जो आपने इतना पुराना बतलाया था वास्तव में इतना पुराना नहीं है।

मिश्र में एक शिलालेख मिला है उसमें लिखा है "पुनर्जन्मके चक्कर में आकर आत्माएँ कीट, मत्स्य, चतुष्पाद, पशु, पक्षी और मनुष्य इन क्रमोंमें से गुजरती हैं और कभी कभी इससे विपरीत क्रम में भी जन्म लेती हैं।" इस पर विवेचन करते हुए पेटी महोदय लिखते हैं "But it is not in the Egyptian form, and the Indian influence appears already at work" मिश्र के इस पुनर्जन्मवाद में भारतीयता की झलक स्पष्ट है। पेटी महोदय एक प्रसिद्ध लेखक और इतिहासज्ञ हैं। आपने मिश्रदेश की प्राचीन घटनाओं को बड़ी खोज के साथ लिखा है और यह सिद्ध किया है कि प्राचीन काल में पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रचार मिश्रदेश में खूब था और यहाँ के लोगों ने इस सिद्धान्त को भारत से ही सीखा था। जैसा प्रेतवाद आप मानते हैं वैसा मिश्र देश में प्राचीन काल में प्रचलित नहीं था।

अमेरीका में भी यह विद्या एक आधुनिक और अवैज्ञानिक लोगों की कल्पना है। देखिए— "The phenomena of spiritualism dates from the year, 1847, when The Fox sisters (of Rochester, America) gave evidence of possessing powers" आधुनिक प्रतात्म-विद्या की कल्पना अमेरिकामें सन १८४७ ई० में प्रकट हुई।

प्र—जब लैप्चेट द्वारा प्रेतात्मा से प्रत्यक्ष बातचीत होती है तब पुनः उसकी असत्यता क्यों सिद्ध करते हो।

उ—लैप्चेट की रचना ऐसी है कि जो जरा से धक्के से चल सकता है। वह किसी प्रेत के द्वारा नहीं चलता किन्तु उस पर हाथ धरनेवाले मनुष्य की शक्ति से चलता है। उसके द्वारा स्पष्ट शब्द तो नहीं लिखे जाते किन्तु केवल टेढ़ी—मेढ़ी लकीरें खिंच जाती हैं जिसे प्रश्नकर्ता अपने मनोगत



भावों के अनुसार पढ़ता है। यदि लपैचेट प्रेत द्वारा चलाया जाता तो प्रश्न कर्ता के हाथों की आवश्यकता नहीं होती।

प्र- आप यह कैसे सिद्ध करते हो कि प्रश्न कर्ता अपने मनोगत भावों के अनुसार पढ़ता है।

उ- इसे सिद्ध करनेके लिए हमारी परीक्षाओं में से एक प्रयोग दिया जाता है। यदि पाठकवृन्द उसे विचार की दृष्टि से देखेंगे तो इन प्रेतात्मवादियों का रहस्य खुल जायगा। यह प्रयोग मैंने ७ जुलाई सन् १९२३ को किया था। उसे मैं अपनी नोट बुक में से जैसा का वैसा उद्धृत करता हूँ।

“आज मुझे यह तीव्र जिज्ञासा हुई कि मैं इसकी परीक्षा करूँ कि लपैचेट प्रेत के द्वारा चलता है या मेरे हाथ के द्वारा। इस कारण तीन कमरों में प्रयोग एक ही समय तीन व्यक्तियों द्वारा किये गये। एक मैं स्वयं, दूसरी मेरी माताजी और तीसरे एक मेरे मित्र थे। हम तीनों को मेरे पितामह की प्रेत आत्मा मिल गई थी। इसी कारण आज भी उन्हीं की आत्मा से बातचीत करनेका विचार किया। हम लोगों ने यह भी विचार किया कि आज हम प्रेतों से उस भाषा में लिखने की प्रार्थना करेंगे जिसे हम न जानते हैं। ठीक ढवजे सायंकाल को कार्य प्रारंभ किया गया। मैं उर्दू न जानता था इस कारण आज तक मेरी जिन जिन प्रेतों द्वारा बातचीत हुई थी वह अंग्रेजी या हिन्दी में ही हुई थी। आज मैंने अपने सहायक प्रेत ( Spirit-guide ) से कही कि मैं यह चाहता हूँ कि आप मुझे उर्दू में जबाब दें। परन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी मुझे उर्दू में उत्तर न मिला और न कागज पर ही कुछ लिखा गया। पश्चात् मेरी बात चीत हिन्दी और अंग्रेजी में ही हुई। ”

मेरे मित्र हिन्दी और अंग्रेजी नहीं जानते थे वे केवल उर्दू ही जानते थे। उनको केवल उर्दू भाषा में ही बातचीत होती थी उनके साथ भी वे ही प्रेत थे जो मेरे साथ उन्हें बातचीत उर्दू के सिवाय अन्य किसी भाषा में न हुई। ठीक इसी प्रकार मेरी माताजी को भी उसी समय मेरे पितामह मिले और उन्होंने केवल हिन्दी में बातचीत की। आज

हम तीनों व्यक्तियों के प्रश्न एक ही थे किन्तु जो उत्तर हम को मिले थे वे भिन्न भिन्न थे।

विचारणीय बात—

मेरे पितामह हिन्दी और मराठी के सिवाय अन्य कोई भाषा न जानते थे। उनके द्वारा मुझे अंग्रेजी में उत्तर दिया जाना और मेरे मित्रको उर्दू में उत्तर मिलना; इस बात का द्योतक है कि यह विषय संशयात्मक है। ठीक इसी प्रकार एक ही आत्मा द्वारा तीन व्यक्तियों को एक ही समय में और भिन्न भिन्न उत्तर मिलना भी संशय युक्त है पाठक वृन्द ? यह मेरे विचार उस रोज इस परीक्षा से उत्पन्न हुए थे। क्योंकि उस समय मैं इसकी पूर्ण कमजोरियों को नहीं जान सका इस कारण केवल संशय ही हुआ था। उसके पश्चात् मैंने कई अन्य भी प्रयोग किये, जिन्हें विस्तार भय से यहाँ नहीं दे सकता; परन्तु मुझे यह दृढ निश्चय हो गया कि यह केवल एक मानसिक भ्रम है अन्य कुछ भी नहीं। पाठकों के सम्मुख मैंने जैसे का वैसा उद्धरण रखा है; अब आप भी उसका विचार करें।

प्र- क्या टेबल का हिलना और खटखट शब्द होना भी मिथ्या है।

उ- अवश्य मिथ्या है। न कहीं टेबल हिलती है और न कहीं शब्द होता है। भोले लोगों को फँसाने की केवल बाते हैं। परीक्षा के समय यदि किसी व्यक्ति ने कुछ भ्रम देख लिया तो ठीक है अन्यथा प्रेतात्मवादी कह देते हैं कि इसकी सिद्धि आपको न होगी। मुझे भी ऐसा ही उत्तर दिया जाता है किन्तु जब मैं प्रश्न करता हूँ कि टेबल किसी प्रेतसे हिलती है या मेरे से। यदि कहो कि प्रेत से तो प्रत्येक व्यक्ति को इसका हिलना दिखाई देना चाहिए और यदि कहो कि यह एक सिद्धि है और किसी किसी को हुआ करती है तो अपनी सिद्धि को प्रकट करने के लिए प्रेतकी आवश्यकता नहीं रहती। जहाँ प्रेत की अपेक्षा होगी वहाँ स्वयं की सिद्धि हो नहीं सकती। आश्चर्य तो यह है कि जब ये लोग मानते हैं कि प्रेत टेबल में आकर उसे हिला देता है तब वह मृत शरीर में क्यों कर नहीं आसकता। यदि टेबल हिल सकती है, लपैचेट हिल सकता है, जीवित



आदमी को बेहोश करके उसमें प्रेतस्थित हो सकता है तब वह मृत शरीर में क्यों कर नहीं आ सकता?

सिद्धान्त यह है कि जीव बिना प्राणके नहीं रह सकता, प्राण बिना वीर्य के नहीं रह सकता अतः टेबल या प्लैचेट में जीव की कल्पना करके उसके कार्य को सिद्ध करना भ्रमात्मक है ।

प्र—देखो हम मनुष्य को बेहोश करके उसमें प्रेतात्माका आवाहन कर सकते हैं ।

उ - यह बिलकुल मिथ्या है। क्यों कि यदि बेसुद मनुष्य में प्रेत आजाता है तो मृत शरीर में क्यों नहीं आ सकता । मनुष्य का बेहोश हो जाना किसी अदृश्य प्रेत का द्योतक नहीं किन्तु उस मनुष्य की मानसिक वृत्ति का द्योतक है । यह वृत्ति ( कि जिस में मनुष्य बेहोश रहता है ) कई कारणों से जाग्रत हो सकती है । प्रेतात्म विद्या के प्रयोगों में यह वृत्ति कभी कभी भय से भी उत्पन्न होती है और कभी कभी प्रयोक्ता (operator) के संकल्प—बल से भी उत्पन्न होती है ।

प्र - बेहोश मनुष्य नहीं बोल सकता । परन्तु वह मनुष्य हमारे चक्र ( circle ) में बोलता है अतः ज्ञात होता है कि वह कोई प्रेतात्मा ही बोलती है ।

उ - बेहोश मनुष्य नहीं बोल सकता यह ठीक है परन्तु बेहोशी हालत में जब उसको दिव्य-दृष्टि (clairvoyance) प्राप्त हो जाती है तब वह बोल सकता है । उस समय वह समस्त कार्य कर सकता है किन्तु प्रयोक्ता के दृढ़ संकल्प से, अपने निजी संकल्प से नहीं । इसके लिए (mesmerism) मोहिनी विद्या का अध्ययन कीजिए ।

जो आप एक शरीर में दो आत्माओं का ( एक तो शरीर का अधिष्ठाता और दूसरी प्रेतात्मा ) होना बताते हैं वह बिलकुल असम्भव है। दिव्य दृष्टि प्राप्त होजाने पर उसके कार्यों से अनुमान होता है कि इस समय भी शरीर का अधिष्ठाता आत्मा एकही है । इस समय उस पुरुष को प्रत्यभिज्ञा, और शरीरपर कार्य करने का अधिकार पूर्ण रहता है । हाँ, यह बात अलग है कि वह बिना प्रयोक्ता को कोई कार्य न कर सके ।

प्र—प्रेतात्मविद्या को कई वैज्ञानिक भी मानने लग गये हैं, पुनः क्यों खण्डन करते हो ।

उ--जो जिस विषय का ज्ञाता और अनुभवी होता है, उस विषय में उसके वाक्य प्रमाणित माने जा सकते हैं; अन्य विषय में नहीं । आत्मविद्या विज्ञान का विषय ही नहीं फिर वैज्ञानिकों का कथन क्या कर प्रमाणित माना जाय ।

जो वैज्ञानिक इस विषय में अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करते हैं उनकी संख्या बिलकुल ही कम है । प्रत्युत इस विषय का घोर आन्दोलन पाश्चात्य पत्र पत्रिकाओं में कई बार किया जा चुका है । इनमें सब से प्रथम अमेरीका का प्रसिद्ध पत्र "Scientific American" प्रमुख रहा है । उसने खुले शब्दों में यह कह दिया है कि यह पाश्चात्य प्रेतात्म-वादी विज्ञान का घोर शत्रु है और यदि यह न रोका गया तो विज्ञान के मार्ग में कई रुकावटें आने की शंका है । इसकी सूचना हिन्दी भाषी जनता को "माधुरी" द्वारा दी जा चुकी है । देखिए उसकी गत वर्ष की संख्या १ पृष्ठ सं. १४३, मास-माघ ।

प्रेतात्मविद्याको मान लेने से सभी धर्मों के सिद्धान्तोंपर कुठाराघात होगा, पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर बड़ी आपत्ति आवेगी, और कर्म व्यवस्था ठीक नहीं बैठेगी । यदि प्रेतों का आना जाना मान भी लिया जाय तो यह मानना पड़ेगा कि हमारी आत्मा भी हमारे पूर्वजों से मिलने जा सकती है । परन्तु यह प्रत्यक्ष के विरुद्ध है । जैसे हमारी आत्मा किसी से मिलने नहीं जा सकती और जैसे हमें पूर्व जन्म का ज्ञान नहीं होता ठीक इसी प्रकार हमारे मरने के पश्चात भी हमें इस लोक का स्मरण नहीं रहता और न हम ( मृत्युके पश्चात कभी अपने यहाँ के सम्बन्धियों से मिल सकते हैं ।

आत्मा मर कर पुनर्जन्म को प्राप्त करता है यह वैदिक मत है और निर्विवाद है । इसके लिए निम्न लिखित प्रमाण देखिये—

१ सूर्य चक्षुर्गच्छतु.....

अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमौषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥ ऋ. १०.१६



हे जीव ? तेरा नेत्र सूर्य को प्राप्त हो ... ..  
...तू ओषधियों में प्रतिष्ठित हो, प्रगट हो ॥ इससे  
सिद्ध होता है कि जीव मर कर ओषधियों में भी  
जन्म लेता है ।

२ पुनः पुनर्वशमापद्यते मे । क. उ. २. ६.  
मनुष्य बार बार मुझ मृत्यु के वश में आता है ।

३ यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदा ऽ शुचिः ।  
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ।  
यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ।  
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥

क. उ ३- ७.८

जो विवेक रहित सदा मनके पीछे चलता है अर्थात्  
जिसका मन अपने काबू में नहीं है, जो सदा अप-  
वित्र होता है, वह उस शान्त पद को प्राप्त नहीं होता ।  
किन्तु जन्म-मरण के प्रवाहको प्राप्त होता रहता है ।  
जो मनुष्य शुद्ध और विवेक सम्पन्न है और जिसने  
अपना मन वश में कर लिया है वही उस अपनि-  
धाम मोक्ष को प्राप्त करता है ।

४ हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्भोता । क. उ. ५. २

यह जीव एक शरीरसे दूसरे शरीरको जानेवाला,  
और अनेक योनियों में निवास करनेवाला है ।

५ मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति । मु. उ. ५. २. ७.

मूर्ख मनुष्य बार बार जरा और मृत्युको प्राप्त  
करते हैं ।

‘ अपसर्पणमुपसर्पणमशितपीतसंयोगाः

कायान्तरसंयोगाश्चेत्यदृष्टकारितानि ’ ।

वैशे. द-५-२ १७.

अर्थात् प्रारब्ध कर्म के नाश हो जानेपर जीवात्मा  
एक शरीर से दूसरे शरीर को प्राप्त होता है ।  
इसका कारण अपने किये हुवे कर्म हैं ।

प्रश्न- अपसर्पण किसे कहते हैं ?

उत्तर- मन और प्राणके साथ जीवात्मा का  
शरीर में से निकलना अपसर्पण है ।

प्र- उपसर्पण क्या है ?

उ- मन और प्राण के साथ जीवात्मा का दूसरे  
शरीर में प्रवेश-उपसर्पण है ।

आशय यह है कि जीवका प्राण और मनके साथ  
मिलकर एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में

जाना अवश्य भावी है ( जबतक मोक्षके लिए  
उपाय न किया जाय. ) ।

७- आवृत्तिस्तत्राप्युत्तरोत्तरयोनियोगाद्देयः ।

समानं जरामरणादिजं दुःखं ।

सांख्य ३-५२, ५३,

आगे भी योनियों में आने-जाने का चक्र चलता  
रहता है । बूढ़ापा और जरा-मृत्यु का दुःख सब  
लोकों में ( अर्थात् आगे भी ) समान है ।

८ पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः । न्याय. द. १. १९.

मृत्यु के पश्चात् पुनर् जन्म होता है । इसे प्रेत्य-  
भाव कहते हैं ।

९ वासांसि जीर्णानि यथा विहाय

नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-

न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ गीता-२-२२.

जैसे मनुष्य जीर्ण वस्त्रको छोड़कर नये वस्त्रको  
धारण करता है उसी प्रकार आत्मा भी जीर्ण शरीर  
को छोड़कर नवे शरीरको धारण करती है ।

एनी. बीसेन्ट महोदयाने भी लिखा है कि जीवन  
मरण का प्रश्न धान्य के सदृश है । जैसे धान्य उत्पन्न  
होता है फिर नष्ट हो जाता है, फिर उत्पन्न होता है;  
ठीक इसी प्रकार आत्मा पुनः पुनः शरीर धारण  
करती है ।

‘ It is called argument from analogy’  
see Ani Bisents ‘ Reincarnation’

‘ The idea ( of Punarjanma ) was never  
made the subject of philosophical demon-  
stration, but was regarded as some thing  
self evident, which with the exception  
of the Charvakas or materialists no  
philosophical school or religious sect  
ever doubted ’

see-philosophy of Ancient India’ by  
Prof R. Garbe.

अर्थात् प्रोफेसर गॉर्बे महोदय लिखते हैं कि  
प्राचीन भारत में चारवाक और उसके कतिपय  
मतावलंबियों को छोड़कर शेष सब लोग पुनर्जन्म  
में विश्वास करते थे ।

( आगे कवर पृ. ३ पर देखिये )





# अथर्ववेद ।

स्वाध्याय ।

( अथर्ववेदका सुबोध भाष्य । )

## द्वितीयं काण्डम् ।

लेखक और प्रकाशक.

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

प्रथम वार

संवत् १९८४, शक १८४९, सन १९२७





## सबका पिता ।

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।  
यो देवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥ ३ ॥

अथर्ववेद २ । १ । ३

“ वह ईश्वर हम सबका पिता, उत्पादक और बन्धु है, वही सब स्थानों और भुवनोंको यथावत् जानता है । उसी अकेले ईश्वरको अन्य सम्पूर्ण देवोंके नाम दिये जाते हैं और सम्पूर्ण भुवन उसी प्रशंसनीय ईश्वरको प्राप्त करने के लिये घूम रहे हैं । ”



मुद्रक तथा प्रकाशक- श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.

भारत मुद्रणालय, स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )





# अथर्ववेद का स्वाध्याय ।

## द्वितीय काण्ड ।



इस द्वितीय काण्डका प्रारंभ “ वेन ” सूक्तसे और “ वेन ” शब्दसे होता है । यह मंगल वाचक शब्द है । “ वेन ” शब्दका अर्थ “ स्तुति करने वाला, ईश्वरके गुण गानेवाला भक्त ” ऐसा है । परमात्मा पूर्ण रीतिसे स्तुति करने योग्य होनेसे उसीके साक्षात्कारके और उसी के गुण वर्णन के मन्त्रोंका यह सूक्त है । इस परमात्माकी विद्याके नाम “ गुप्त विद्या, गूढ विद्या, गुह्य विद्या, परा विद्या, आत्मविद्या ” आदि अनेक हैं । इस गुह्य विद्यामें परमात्माका साक्षात्कार करनेके उपाय बताये जाते हैं । यह इस विद्याकी विशेषता है । विद्याओंमें श्रेष्ठ विद्या यही है जो इस काण्डके प्रारंभमें दी गई है, इस लिये इसका अध्ययन पाठक इस दृष्टिसे करें ।

जिस प्रकार प्रथम काण्ड मुख्यतया चार मन्त्रवाले सूक्तोंका है, उसी प्रकार यह द्वितीय काण्ड पांच मन्त्रवाले सूक्तोंका है । इस द्वितीय काण्डमें ३६ सूक्त हैं और २०७ मन्त्र हैं । अर्थात् प्रथम काण्डकी अपेक्षा इसमें एक सूक्त अधिक है और ५४ मन्त्र अधिक हैं । इस द्वितीय काण्डमें सूक्तोंकी मन्त्र संख्या निम्न लिखित प्रकार है—

५ मंत्रोंके	सूक्त	२२ हैं,	इनकी मंत्र संख्या	११० है
६	”	”	५ ” ”	” ३० ”
७	”	”	५ ” ”	” ३५ ”
८	”	”	४ ” ”	” ३२ ”

कुल सूक्त संख्या ३६

कुल मंत्र संख्या २०७



इस द्वितीय काण्डके ऋषि देवता छंद आदि निम्नलिखित प्रकार हैं—

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद.
<b>प्रथमोऽनुवाकः</b>				
१	५	वेनः	ब्रह्म, आत्मा	त्रिष्टुप्; ३ जगती
२	"	मातृनामा	गंधर्व, अप्सराः	" ; १ विराड्जगती, ४ त्रिपाद्विराण्नाम गायत्री ५ भूरिगनुष्टुप्
३	६	अंगिराः	भैषज्यं, आयुः, धन्वन्तरिः	अनुष्टुप्; ६ स्वराडुपरिष्ठा- न्महाबृहती.
४	"	अथर्वा	चंद्रमाः, जङ्घिडः	" १ विराट् प्रस्तारपंक्तिः
५	७	भृगुः (आथर्वणः)	इन्द्रः	त्रिष्टुप्; १, २ उपरिष्ठाद्बृहती (१ निचृत्, २ विराट्); विराट् पथ्या बृहती, ४ जगती पुरोविराट्
<b>द्वितीयोऽनुवाकः</b>				
६	५	शौनकः (संपत्कामः)	अग्निः	" ; ४ चतुष्पदार्षी पंक्तिः ५ विराट् प्रस्तारपंक्तिः
७	"	अथर्वा	भैषज्यं, आयुः, वनस्पतिः	अनुष्टुप्, १ भूरिक्, ४ विराडुपरिष्ठाद्बृहती
८	"	भृगुः, (आंगिरसः)	वनस्पतिः, यक्ष्मनाशनं,	" ३ पथ्यापंक्तिः, ४ विराट्, ५ निचृत् पथ्यापंक्तिः
९	"	" "	" "	" ; १ विराट् प्रस्तारपंक्तिः
१०	८	" "	निर्ऋति, द्यावापृथिवी, नानादेवताः	१ त्रिष्टुप्, २ सप्तपादष्टिः ३-५, ७, ८ ( १ ) सप्तपदी धृतिः, ६ सप्तपदी अत्यष्टिः ८ ( २, ३ ) द्वौ पादौ उष्णिहौ ।



सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
तृतीयोऽनुवाकः				
११	५	शुक्रः	कृत्यादूषणं, कृत्यापरिहरणं	१ चतुष्पदा विराट्, २-५ त्रिपदा परोष्णिहः, ४ पिपीलिकमध्या निवृत्
१२	८	भरद्वाजः	नानादेवताः	त्रिष्टुप्; २ जगती; ७, ८ अनुष्टुभौ
१३	५	अथर्वा	" , अग्निः	" ; ४ अनुष्टुप्; ५ विराट् जगती
१४	६	चातनः	शाला, अग्निः, मंत्रोक्तदेवताः	अनुष्टुप्, २ भूरिक्, ४ उपरिष्ठाद्विराट् बृहती.
१५	"	ब्रह्मा	प्राणः, अपानः, आयुः	त्रिपाद्वायत्री.
१६	७	"	"	१, ३ एकपदासुरी त्रिष्टुप्, २ एकपदासुरी उष्णिक्, ४, ५ द्विपदासुरी गायत्री
१७	"	"	"	१-६ एकपदासुरी त्रिष्टुप्, ७ आसुरी उष्णिक्.

## चतुर्थोऽनुवाकः

१८	५	चातनः	अग्निः	साम्नी बृहती.
		( सप्तन क्षयकामः )		
१९	"	अथर्वा	"	१-४ निवृद्धिषमा गायत्री ५ भूरिग्विषमा.
२०	"	"	वायुः	" "
२१	"	"	सूर्यः	" "
२२	"	"	चंद्रः	" "
२३	"	"	आपः	" "
२४	८	ब्रह्मा	आयुष्यं	पंक्तिः



सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
२५	५	चातनः	वनस्पतिः	अनुष्टुप्, ४ भूरिक्
२६	"	सविता	पशुः	त्रिष्टुप् ३ उपरिष्टाद्वि- राड्बृहती ४, ५ अनु ष्टुभौ ( ४ भूरिक् )

## पञ्चमोऽनुवाकः

२७	७	कापिञ्जलः	वनस्पतिः	अनुष्टुप्
			रुद्रः, इन्द्रः	
२८	५	शम्भू	जरिमा, आयुः	त्रिष्टुप्, १ जगती, ५ भूरिक्
२९	७	अथर्वा	बहुदेवता	" १ अनुष्टुप् ४ पराबृहती निचृत्प्रस्तारपंक्तिः
३०	५	प्रजापतिः	अश्विनौ	अनुष्टुप्, १ पथ्यापंक्तिः ३ भूरिक्
३१	"	काण्वः	मही, चंद्रमाः,	" २ उपरिष्टाद्विराड्बृहती, ३ आर्षीत्रिष्टुप् ४ प्रागुक्ता बृहती, ५ प्रागुक्ता त्रिष्टुप्.

## षष्ठोऽनुवाकः

३२	६	"	आदित्यः	" १ त्रिपाङ्गरिग्गायत्री. ६ चतुष्पान्निचृगुष्णिक्
३३	७	ब्रह्मा	यक्षमविबर्हणं, चन्द्रमाः, आयुष्यं	" ३ ककुमती, ४ चतुष्पाङ्गारि- गुष्णिग्, ५ उपरिष्टा- द्विराड्बृहती, ६ उष्णि- ग्गर्भा निचृदनुष्टुभ्. ७ पथ्यापंक्तिः
३४	५	अथर्वा	पशुपतिः	त्रिष्टुप्.
३५	"	अंगिराः	विश्वकर्मा	" १ बृहतीगर्भा, ४, ५ भूरिक्.
३६	८	पतिवेदनः	अग्नीषोमौ	" १ भूरिक् २, ५-७ अनुष्टुप्. ८ निचृत्पुर उष्णिग्



इस प्रकार सूक्तोंके ऋषि देवता और छंद हैं । स्वाध्याय करनेके समय पाठकों को इनके ज्ञानसे बहुत लाभ हो सकता है । अब हम ऋषि क्रमसे सूक्तोंका कौष्टक देते हैं—

१	अथर्वा—	४, ७, १३, १९-२३, २९, ३४	ये दस सूक्त ।
२	ब्रह्मा—	१५—१७, २४, ३३,	ये पांच सूक्त ।
३	आंगिरसो भृगुः—	८-१०	ये तीन सूक्त ।
४	चातनः—	१४, १८, २५, " " "	
५	अंगिराः—	३, ३५	ये दो सूक्त ।
६	काण्वः—	३१, ३२ " " "	
७	आथर्वणो भृगुः—	५	यह एक सूक्त ।
८	वेनः —	१ " "	
९	मातृनामा—	२ " "	
१०	शौनकः —	६ " "	
११	शुक्रः —	११ " "	
१२	भरद्वाजः —	१२ " "	
१३	सविता —	२६ " "	
१४	कपिञ्जलः—	२७ " "	
१५	शम्भू —	२८ " "	
१६	प्रजापतिः—	३० " "	
१७	पतिवेदनः—	३६ " "	

ये ऋषि-क्रमानुसार सूक्त हैं । अब देवता-क्रमानुसार सूक्तों की गणना देखिये—

१	ब्रह्म, आत्मा—	१	यह एक सूक्त ।
२	गंधर्वः —	२ " "	
३	इन्द्रः —	५ " "	
४	अग्निः —	६, १३, १४, १८, १९,	ये पांच सूक्त ।
५	वनस्पतिः —	३, ७-९, २५, २७	ये छः सूक्त ।
६	दीर्घायुष्यं —	३, ७, १५-१७, २४, २८	ये सात सूक्त ।
७	आरोग्यं —	८, ९, ११, १५-१७, २८	ये सात सूक्त ।
८	चंद्रमाः —	४, २२, ३१, ३३	ये चार सूक्त ।



९ जंगिडः	— ४	यह एक सूक्त
१० निर्ऋतिः	— १०	” ”
११ वायुः	— २०	” ”
१२ सूर्यः	— २१	” ”
१३ आदित्यः	— ३२	” ”
१४ आपः	— २३	” ”
१५ अश्विनौ	— ३०	” ”
१६ विश्वकर्मा	— ३५	” ”
१७ अग्नीषोमौ	— ३६	” ”
१८ पशुपतिः	— ३४	” ”
१९ पशुः	— २६	” ”

अन्य सूक्तों में अनेक देवताएं हैं, जो प्रत्येक मंत्रके विवरण में पाठक देख सकते हैं। समान देवताके सूक्तोंका अर्थविचार एक साथ करना चाहिये। अर्थ विचार करने के समय ये कोष्टक पाठकों के लिये बड़े उपयोगी हो सकते हैं। इस कोष्टकसे कितने सूक्तों का विचार साथ साथ करना चाहिये। यह बात पाठक जान सकते हैं और इस प्रकार विचार करके मंत्रों और सूक्तोंका अनुसंधान कर सकते हैं।

इतनी आवश्यक बात यहां कहके अब इस द्वितीय काण्डका अर्थ विचार करते हैं—





अथर्व वेदका स्वाध्याय ।

द्वितीय काण्ड ।

गुह्य-अध्यात्म-विद्या ।

( १ )

[ ऋषिः— वेनः । देवता—ब्रह्म, आत्मा ]

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।  
इदं पृश्निरदुहजायमानाः स्वर्विदो अभ्यनूषत वाः ॥ १ ॥  
प्र तद्वोचेदमृतस्य विद्वान्गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत् ।  
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत् ॥ २ ॥  
स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।  
यो देवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥ ३ ॥  
परि द्यावापृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य ।  
वाचमिव वक्तारिं भुवनेष्ठा धास्युरेष नन्वेक्षो अग्निः ॥ ४ ॥  
परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दूशे कम् ।  
यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त ॥ ५ ॥

अर्थ— (वेनः तत् परमं पश्यत्) भक्त ही उस परमश्रेष्ठ परमात्माको देवता है, (यत् गुहा) जो हृदय की गुफामें है और (यत्र विश्वं एकरूपं भवति) जिस में सम्पूर्ण जगत् एकरूप हो जाता है । (इदं पृश्निः जायमानाः अदुहत्) इसीका प्रकृतिने दोहन करके ही जन्मलेनेवाले पदार्थ बनाये हैं और इसलिये (स्वर्विदः वाः) प्रकाश को जानकर व्रत पालन करने वाले मनुष्य ही इसकी (अभ्यनूषत) उत्तम प्रकारसे स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ (यत् गुहा) जो हृदय की गुफा में है (तत् अमृतस्य परमं धाम) वह अमृतका श्रेष्ठ स्थान (विद्वान् गन्धर्वः प्रबोचत्) ज्ञानी वक्ता कहे । (अस्य त्रीणि पदा) इस के तीन पद (गुहा निहिता) हृदय की गुफा में रखे हैं, (यः तानि वेद) जो उनको जानता है (सः पितुः पिता असत्) वह



पिताका भी पिता अर्थात् बड़ा समर्थ हो जाता है ॥ २ ॥ ( सः नः पिता ) वह हम सबका पिता है, ( जनिता ) जन्म देनेवाला ( उत सः बंधुः ) और वह भाई है, वह ( विश्वा भुवनानि धामानि वेद ) सब भुवनों और स्थानोंको जानता है । ( यः एकः एव ) वह अकेलाही एक ( देवानां नाम-धः ) सम्पूर्ण देवों के नाम धारण करनेवाला है, ( तं सं-प्रश्नं ) उसी उत्तम प्रकारसे पूछने योग्य परमात्माके प्रति ( सर्वा भुवना यन्ति ) संपूर्ण भुवन पहुंचते हैं ॥ ३ ॥ ( सद्यः ) शीघ्र ही ( द्यावा—पृथिवी परि आयं ) द्युलोक और पृथ्वी लोकमें सर्वत्र मैं घूम आया हूं और अब ( ऋतस्य प्रथमजां उपातिष्ठे ) सत्यके पहिले उत्पादक की उपासना करता हूं । ( वक्तारि वाचं इव ) वक्तामें जैसी वाणी रहती है, उसी प्रकार यह ( भुवने-स्थाः ) सब भुवनों में रहता है, और ( एषः धास्युः ) यही सबका धारक और पोषक है, ( ननु एषः अग्निः ) निश्चयसे यह अग्नि ही है ॥ ४ ॥ ( यत्र ) जिस में ( अमृतं आनशानाः देवाः ) अमृत खानेवाले सब देव ( समाने योनौ ) समान आश्रयको ( अध्यैरयन्त ) प्राप्त होते हैं, उस ( ऋतस्य ) सत्यके ( विततं कं तन्तुं दृशे ) फैले हुए सुखकारक भागोंको देखनेके लिये मैं ( विश्वा भुवनानि परि आयं ) सब भुवनोंमें घूम आया हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिसमें जगत् की विविधता भेदका त्याग कर एकरूपताको प्राप्त होती है और जिसका निवास हृदयमें है, उस परमात्माको भक्तही अपने हृदयमें साक्षात् देखता है । इस प्रकृतिने उसी एक आत्माकी विविध शक्तियोंको निचोड़ कर उत्पन्न होनेवाले इस विविध जगत् को निर्माण किया है, इस लिये आत्मज्ञानी मनुष्य सदा उसी एक आत्माका गुणगान करते हैं ॥ १ ॥ जो अपने हृदयमें ही है उस अमृतके परम धाम का वर्णन आत्मज्ञानी संयमी वक्ता ही कर सकता है । इसके तीन पाद हृदयमें गुप्त हैं, जो उनको जानता है, वह परम ज्ञानी होता है ॥ २ ॥ वही हम सबका पिता, जन्मदाता और भाई भी है, वही संपूर्ण प्राणियोंकी सब अवस्थाओंको यथावत् जानता है । वह केवल अकेलाही एक है और अग्नि आदि संपूर्ण अन्य देवों के नाम उसीको प्राप्त होते हैं अर्थात् उसको ही दिये जाते हैं । जिज्ञासू जन उसीके विषयमें बारंबार प्रश्न पूछते हैं और ज्ञान प्राप्त करते हुए अन्तमें उसीको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥ द्युलोक और पृथ्वी लोकके अंदर जो



अनंत पदार्थ हैं, उन सबका निरीक्षण करनेके बाद पता लगता है, कि अटल सत्य नियमोंका पहिला प्रवर्तक एकही परमात्मा है, इसलिये मैं उसीकी उपासना करता हूं। जिस प्रकार वक्तामें वाणी रहती है, उसी प्रकार जगत्के सब पदार्थों अथवा सब प्राणियोंमें वह सबका धारण पोषण कर्ता एक आत्मा रहता है, उसको अग्नि भी कह सकते हैं अर्थात् जैसा अग्नि लकड़ीमें गुप्त रहता है उसी प्रकार वह सब पदार्थोंमें गुप्त रहता है ॥ ४ ॥ जिस एक परमात्मामें अग्नि वायु सूर्यादि देव समान रीतिसे आश्रित हैं और जिसकी अमृत मयी शक्ति संपूर्ण उक्त देवोंमें कार्य कर रही है, वही एक सर्वत्र फैला हुआ व्यापक सत्य है, उसी का साक्षात्कार करनेके लिये सब वस्तुमात्रका निरीक्षण मैंने किया है और पश्चात् सबके अंदर वही एक सूत्र फैला है यह मैंने अनुभव किया है ॥ ५ ॥

### गूढ विद्या ।

गूढ विद्या का अर्थ है गूढ तत्त्वको जाननेकी विद्या । कई समझते हैं कि, यह विद्या गुप्त रखनी है, इस लिये इसको गूढ अथवा गुह्य विद्या कहते हैं, परंतु यह ठीक नहीं है । दृश्य संसारके अंदर सबका आधारभूत एक तत्त्व है, संसारके पदार्थ दृश्य हैं और यह सर्वव्यापक अधारतत्त्व अदृश्य है । हर एक मनुष्य सब पदार्थोंके रंग रूप आकार तोल आदिको देख सकता है, परंतु उस पदार्थ के अंदर व्यापने वाले तत्त्वको, जिससे कि उस पदार्थ का अस्तित्व अनुभव होता है, उस अदृश्य तत्त्वको, वह नहीं जान सकता; बहुत थोड़ेही उसका अनुभव कर सकते हैं । मनुष्य का स्थूल देह सब देख सकते हैं, परंतु उसी देहमें रहने वाले गुह्य अथवा गुप्त आत्माका दर्शन कौन करता है ? परंतु जितना देहका अस्तित्व सत्य है उसमें भी अधिक सत्य देहधारी आत्माके अस्तित्वमें है । इसी प्रकार संपूर्ण जगत् के अंदर व्यापने वाले गुह्यतत्त्व के विषयमें समझना चाहिये ।

दृश्य आकारवाला जगत् दिखाई देता है, इसलिये वह गुह्य नहीं है, परंतु इस दृश्य जगत् को आधार जिस गुह्य तत्त्वने दिया है, वह इस प्रकार स्पष्टतासे नहीं दिखाई देता है; इसको ढूंढना, इसका अनुभव लेना, इस का साक्षात्कार करना, इस “गुह्य विद्या” का कार्य क्षेत्र है । इसलिये इसको “गुह्यविद्या गूढविद्या, गुप्तविद्या, गुह्यादु-ह्यतर का ज्ञान, आत्मज्ञान, ब्रह्मविद्या, परविद्या, विद्या” आदि अनेक नाम हैं । इन सब शब्दोंका तात्पर्य “उस जगदाधार आत्मतत्त्वका ज्ञान” यही है ।



वेदमंत्रोंमें यह विद्या विशेष रीतिसे बतायी है । स्थान स्थानमें तथा विविध रीतियोंसे इसका वर्णन किया है । कई मंत्रोंमें स्पष्ट वर्णन है और कईयोंमें गुह्य वर्णन है । यह सूक्त स्पष्ट वर्णन करनेवाला है, इस लिये उपासकों को इसके मननसे बड़ा लाभ हो सकता है ।

### गूढविद्याका अधिकारी ।

सब विद्याओंमें यह गुह्य विद्या मुख्य है, इस लिये हरएक को इस विद्याकी प्राप्ति के लिये यत्न करना चाहिये । वास्तवमें देखा जाय, तो सब ही मनुष्य इसकी प्राप्ति के मार्ग में लगे हैं, कई दूर के मार्गपर हैं और कईयोंने समीपका मार्ग पकड़ा है, इन अनेक मार्गोंमेंसे कौनसा मार्ग इस सूक्तको अभीष्ट है, यह बात यहां अब देखेंगे—

वेनः तत्पश्यत् ॥ १ ॥

“ वेनही उसको देखता है, ” यह प्रथम मंत्रका विधान है । यहां प्रत्यक्ष देखता है, जिस प्रकार मनुष्य सूर्यको आकाशमें प्रत्यक्ष देखता है उस प्रकार यह भक्त इस आत्मा को अपने हृदयमें प्रत्यक्ष करता है, यह भाव स्पष्ट है । यह अधिकार “ वेन ” का ही है यह “ वेन ” कौन है ? “ वेन् ” धातुके अर्थ— “ भजन पूजन करना, विचार से देखना, भक्ति करना, तथा इसी प्रकार के उपासनाके कार्य करनेके लिये जाना ” ये हैं । ये ही अर्थ यहां वेन शब्द में हैं । “ जो ईश्वर का भजन पूजन करता है, हृदय से उसकी भक्ति करता है, विचारकी दृष्टिसे उसको जाननेका प्रयत्न करता है ” इस प्रकारका जो ज्ञानी भक्त है, वह वेन शब्दसे यहां अभिप्रेत है । इसलिये केवल “ बुद्धिमान ” अर्थ ही यहां लेना उचित नहीं है । कितनी भी बुद्धिकी विशालता क्यों न हुई हो, जब तक उसके हृदय में भक्ति की लहरें न उठती हों, तबतक उस प्रकारके शुष्क ज्ञानसे परमात्माका साक्षात्कार नहीं हो सकता, यह यहां इस सूक्त द्वारा विशेष रीतिसे बताना है ।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि—

अमृतस्य धाम विद्वान् गन्धर्वः ॥ २ ॥

“ अमृतके धाम को जाननेवाला गंधर्व ही उसका वर्णन कर सकता है । ” इसमें “ गंधर्व ” शब्द विशेष महत्त्वपूर्ण है । गंधर्व शब्द का अर्थ “ संत, पवित्रात्मा ” कोशों में प्रसिद्ध है और यह शब्द वेन शब्दके पूर्वोक्त अर्थके साथ मिलता जुलता भी है । तथापि “ गां वाणीं धारयति ” अर्थात् “ अपनी वाणीका धारण करनेवाला ” यह अर्थ यहां विशेष योग्य है । वाणीका धारण तो सब करते ही हैं, परंतु यहां वाणीका बहुत प्रयोग न करते हुए अपनी वाक्शक्तिका संयम करनेवाला, अत्यन्त आवश्यकता होनेपर ही वाणीका उपयोग करनेवाला, यह अर्थ गंधर्व शब्दमें है । विशेष अर्थ से परिपूर्ण परंतु



अल्प शब्द बोलनेवाला विद्वान् गन्धर्व शब्दसे यहाँ लिया जाता है। प्रायः आत्मज्ञानी वक्ताका वक्तृत्व मूकतासे ही होता है, किंवा थोड़े परंतु अर्थपूर्ण शब्दोंसे ही आत्मज्ञानी पवित्रात्मा आप्त पुरुष जो कुछ कहना है, कह देता है। जबतक लौकिक विद्याका ज्ञान मनुष्यके मनमें खिलविली मचाता रहता है, तब तकही मनुष्य मेघगर्जनाके समान वक्तृत्व करता रहता है, परंतु इसका परिणाम श्रोताओंपर विशेष नहीं होता। जब आत्मज्ञान होता है और ईश्वर साक्षात्कार होता है, तब इसका वक्तृत्व अल्प होने लगता है। परंतु प्रभाव बढ़ता जाता है। वाक्शक्तिपर संयम होने लगता है। यह गन्धर्व अवस्था समझिये।

यहाँ “वेन और गन्धर्व” ये दो शब्द आत्मज्ञानके अधिकारीके वाचक शब्द हैं। उपासक, भक्त तथा गंभीर शब्दोंका प्रयोग संयम के साथ करनेवाला जो होता है, वही परमात्माका साक्षात्कार करता है और वही उसका वर्णन भी कर सकता है।

### पूर्व तैयारी । ( प्रथम अवस्था )

उक्त उपासक आत्मज्ञानी हो सकता है, परंतु इसके बननेके लिये पूर्व तैयारी की आवश्यकता है, यह पूर्व तैयारी निम्न लिखित शब्दों द्वारा उस सूक्तमें बताई है—

सद्यः द्यावा पृथिवी परि आयम् ॥ ४ ॥

विश्वा भुवनानि परि आयम् ॥ ५ ॥

“एकवार द्युलोक और पृथ्वीलोकमें चकर लगा कर आया हूं। संपूर्ण भुवनोंमें घूमकर आया हूं।” अर्थात् द्युलोक और पृथ्वीलोक तथा अन्यान्य भुवनों और स्थानों में जो जो द्रष्टव्य, प्राप्तव्य और भोक्तव्य है, उस को देखा, प्राप्त किया और भोगा है। जगत् में खूब भ्रमण किया, कार्यव्यवहार किये, धनदौलत कमायी, राज्यादि भोग प्राप्त किये, विजय कमाये, यश फैलाया, सब कुछ किया, मनुष्यको जो जो अभ्युदय विषयक करना संभव है, वह सब किया। यह गूढतत्त्वके दर्शन की प्रथम अवस्था है। इस अवस्थामें भोगेच्छा प्रधान होती है।

### द्वितीय अवस्था ।

इसके बाद दूसरी अवस्था आती है, जिस समय विचार उत्पन्न होता है, कि ये नाशवन्त भोग कितने भी प्राप्त किये, तथापि इनसे सच्ची तृप्ति नहीं होती; इस लिये सच्ची तृप्ति, सच्चा मनका समाधान प्राप्त करनेके लिये कुछ यत्न करना चाहिये। इस द्वितीय अवस्थामें भोगोंकी ओर प्रवृत्ति कम होती है और अमौक्तिक तत्त्व दर्शन की ओर प्रवृत्ति बढ़ती जाती है; इसका निर्देश इस सूक्तमें निम्न लिखित प्रकार किया है—



अमृतस्य विततं कं तन्तुं दृशे विश्वा भुवनानि परि आयम् ॥ ५ ॥

“अमृतका फैलाहुआ सुख कारक मूल सूत्र देखनेके लिये मैंने सब भुवनोंमें चकर मारा,” अर्थात् इस द्वितीय अवस्थामें इसका चकर इस लिये होता है, कि इस विविधतासे परिपूर्ण जगत्के अंदर एकताका मूल स्रोत होगा तो उसे देखें; इस दुःख कष्ट भेद लडाई झगडों के परिपूर्ण जगत्में सुख आराम ऐक्य और अविरोध देनेवाला कुछ तत्त्व होगा तो उसको ढूँढेंगे, इस उद्देश्यसे इसका भ्रमण होता है। यह जिज्ञासुकी दूसरी अवस्था है। इस अवस्था का मनुष्य तीर्थों क्षेत्रों और पुण्यप्रदेशों में जाता है, वहाँ सज्जनोंसे मिलता है, देशदेशांतरमें पहुँचता है और वहाँसे ज्ञान प्राप्त करता है, इसका इस समय का उद्देश्य यही रहता है, कि इस विभेद पूर्ण दुःख मय अवस्थासे अमेद मय सुखकारक अवस्थाको प्राप्त करें। इतने परिश्रम करनेसे उसको कुछ न कुछ प्राप्त होता रहता है और फिर वह प्राप्त हुए ज्ञानको अपने में स्थिर करनेका यत्न करनेकी तैयारी करता है। इस प्रकार वह दूसरी अवस्थासे तीसरी अवस्थामें पहुँचता है। इस तीसरी अवस्थाका वर्णन इससूक्तमें निम्न लिखित शब्दों द्वारा किया है—

### तृतीय अवस्था ।

द्यावापृथिवी परि आयं सद्यः ऋतस्य प्रथमजां उपातिष्ठे ॥ ४ ॥

“मैं द्युलोक और पृथ्वीलोक में खूब घूम आया हूँ और अब मैं सत्य के पाहिले प्रवर्तक की उपासना करता हूँ ।”

जगत् भरमें घूम कर विचार पूर्वक निरीक्षण करनेसे इसको पता लगता है कि, इस विभिन्न जगत् में एक अभिन्न तत्त्व है और वही ( कं ) सच्चा सुख देनेवाला है । जब यह ज्ञान इसको होता है, तब यह उसके पास जानेकी इच्छा करता है । उपासनासे भिन्न कोई अन्य मार्ग उसको प्राप्त करनेका नहीं है, इस लिये इस मार्ग में अब यह उपासक आता है । ये अवस्थायें इस सूक्तके मंत्रों द्वारा व्यक्त होगई हैं, इन मंत्रों के साथ यजुर्वेद वाजसनेयी संहिताके मंत्र देखनेसे यह विषय अधिक खुल जाता है; इस लिये वे मंत्र अब यहां देते हैं —

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ।

उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि सं विवेश ॥ ११ ॥

परि द्यावा पृथिवी सद्य इत्वा परि लोकान्परि दिशः परि स्वः ।

ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तद्रूपयत्तद्भवत्तदासीत् ॥ १२ ॥

वा. यजु. अ. ३२

“ (भूतानि परीत्य) सब भूतोंको जानकर या भूतों में घूमकरके (लोकान्



परीत्य ) सब लोकोंमें भ्रमण करके ( सर्वा दिशः प्रदिशः च परीत्य ) सब दिशा और उपदिशाओंमें भ्रमण करके अर्थात् इन सबको यथावत् जानकर ( ऋतस्य प्रथमजां उपस्थाप्य ) सत्यके पहिले नियमके प्रवर्तक की उपासना करके (आत्मना आत्मानं) केवल आत्मस्वरूपसे परमात्माके प्रति ( अभि सं विवेश ) सब प्रकारसे प्रविष्ट होता हूँ ॥ ११ ॥ ( सद्यः द्यावा-पृथिवी परि इत्त्वा ) एक समय द्युलोक और पृथ्वीलोकके सब पदार्थोंको देखकर ( लोकान् परि ) सब लोकोंको देखकर, ( दिशः परि ) दिशाओंका परीक्षण करके ( स्वः परि ) आत्म प्रकाशको जानकर ( ऋतस्य विततं तन्तुं ) अटल सत्यके फैले हुए धागेको अलग करके जब ( तत् अपश्यत् ) उस धागेको देखता है, तब ( तत् अभवत् ) वह वैसा बनता है कि, जैसा ( तत् आसीत् ) वह पहिले था ॥ १२ ॥ ”

ये दो मंत्र उपासककी उन्नतिके मार्गका प्रकाश उत्तम रीतिसे कर रहे हैं। जगत् में घूम आनेकी जो बात अथर्ववेदने कही थी, उसका विशेष ही स्पष्टी करण इन दो मंत्रोंके प्रथम अर्धोंद्वारा हुआ है। “ सब भूत, सब लोकलोकान्तर, सब उपदिशाएँ, द्यु और पृथ्वीके अंतर्गत सब पदार्थ, अथवा अपनी सत्ता जहाँ तक जासकती है, वहाँ तक जाकर, वहाँतक विजय करके, वहाँतक पुरुषार्थ प्रयत्नसे यश फैलाकर तथा उन सबका परीक्षण निरीक्षण समीक्षण आदि जो कुछ किया जाना संभव है, वह सब करके देख लिया। इतने निरीक्षणसे ज्ञात हुआ कि अटल सत्यनियमोंको चलानेवाला एकही सूत्ररूप आत्मा सबके अंदर हैं, वही सर्वत्र फैला है, उसीके आधारसे सब कुछ है, उसके आधार के बिना कोई ठहर नहीं सकता। जब यह जान लिया तब उसकी ही उपासना की, और केवल अपने आत्मासेही उसमें प्रवेश किया। जब वहाँका अनुभव लिया, तब उपासक वैसा बन गया, जैसा पहिले था।

पाठक इन मंत्रोंके इस आशयको देखेंगे तो उनको पता लग जायगा, कि जो अथर्ववेदके इस सूक्तके मंत्रों द्वारा आशय व्यक्त हुआ है, वही बड़े विस्तारसे इन मंत्रोंमें वर्णित हुआ है। और ये मंत्र उन्नतिकी अवस्थाएँ भी स्पष्ट शब्दोंद्वारा बता रहे हैं, देखिये—

१ प्रथम अवस्था—(अज्ञानावस्था)—अपने या जगत् के विषय का पूर्ण अज्ञान।

२ द्वितीय अवस्था—(भोगावस्था)—जगत् अपने भोग के लिये है, ऐसा मानना, और जगत्को अपने स्वाधीन करनेका यत्न करना। जगत् पर प्रभुत्व स्थापित करना। इसी अवस्थामें राज्यैश्वर्य भोग बढ़ाये जाते हैं।



३ तृतीय अवस्था- (त्यागावस्था) -जगत्के भोगोंसे असमाधान होकर विभक्तोंमें व्यापक अविभक्त सत्तावाली सद्बस्तुको ढूंढनेका प्रयत्न करना । यह जिज्ञासुकी अवस्था है ।

४ चतुर्थ अवस्था- (भक्तावस्था)- मनुष्य विभिन्न विश्वमें व्यापक एक अभिन्न आत्मतत्त्वको देखने लगता है और श्रद्धा भक्तिसे उसकी उपासना करने लगता है ।

५ पंचम अवस्था- (स्वरूपावस्था) -उपासना और भक्ति दृढ़ और सहज होनेपर वह तद्रूप हो जाता है, मानो उसमें एक रूप होकर प्रविष्ट होता है, या जैसा था वैसा बन जाता है । यही साक्षात्कार की अवस्था है, यहां इसको सब ज्ञान प्रत्यक्ष होता है ।

यही मार्ग इस अथर्व सूक्तमें वर्णन किया है । यहां पाठकोंको स्पष्ट हुआ होगा कि पूर्व तैयारी कौनसी है और आगेका मार्ग क्या है ।

### पूर्णविस्था ।

पूर्वोक्त यजुर्वेदके मंत्रोंमें कहा ही है कि-

उपस्थाय प्रथमजामृतस्य

आत्मनात्मानमभि सं विवेश ॥ ११ ॥

ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य ।

तदपश्यत्तदभवत्तदासीत् ॥ १२ ॥ वा. यजु. अ. २२

“सत्यके पहिले प्रवर्तक परमात्माकी उपासना करके आत्मासे परमात्मामें प्रविष्ट हुआ ॥ सत्यके फैले हुए धागेको अलग देख कर वैसा हुआ जैसा कि पहिले था ।” यह सब वर्णन पूर्ण अवस्थाका है ॥ इसीको निम्नलिखित शब्दोंद्वारा इस अथर्व सूक्तमें कहा है—

स्वर्विदः ब्राः अभ्यनूषत ॥ १ ॥

अमृतस्य धाम विद्वान् ॥ २ ॥

यस्तानि वेद स पितुष्पिताऽसन् ॥ २ ॥

“ ( ब्राः ) ब्रत पालन करनेवाले ( स्वर्विदः ) आत्मज्ञानी उसी की स्तुति करते हैं । वे अमृतके धामको जानते हैं । जो ये धाम जानता है वह पिताका पिता अर्थात् सबमें अधिक ज्ञानी अथवा सबमें अधिक समर्थ होता है ।” यह अंतिम फल है पूर्ण अवस्थामें पहुंचनेका निश्चय इससे हो सकता है ।



प्रथम मंत्रमें “व्राः” शब्द बड़ा महत्त्व रखता है। व्रतों या नियमोंका पालन करने वाला अपनी उन्नतिके लिये जो नियम आवश्यक होंगे उनको अपनी इच्छासे पालन करने वालेका यह नाम है। नियम स्वयं देखकर स्वयंही उस व्रतका पालन करना बड़े पुरुषार्थसे साध्य होता है। इसमें व्रतभंग होनेपर अपने आपको स्वयंही दंड देना होता है, स्वयंही प्रायश्चित्त करना होता है। महान् आत्माही ऐसा कर सकते हैं। हरएक मनुष्य दूसरे पर अधिकार चला सकता है, परंतु स्वयं अपने पर अधिकार चलाना अति कठिन है। अपनी संपूर्ण शक्तियां अपने आधीन रखनी और कभी कुविचार आदि शत्रुओंके आधीन न होना इत्यादि महत्त्व पूर्ण बातें इस आत्मशासनमें आती हैं। परंतु जो यह करेगा, वही आत्मज्ञानी और विशेष समर्थ बनेगा और उसीका महत्त्व सब लोग मानेंगे।

### सूत्रात्मा ।

मणियोंकी माला बनती है, इस मालामें जितने मणि होते हैं, उन सब में एक सूत्र होता है, जिसके आधारसे ये मणि रहते हैं। सूत्र टूट गया तो माला नहीं रहती और मणि भी बिखर जाते हैं। जिस प्रकार अनेक मणियोंके बीचमें यह एक सूत्र या तंतु होता है, उसी प्रकार इस जगत् के सूर्यचंद्रादि विविध मणियोंमें परमात्माका व्यापक सूत्र तन्तु या धागा है, जिसके आधारसे यह सब विश्व रहा है, इसीका दर्शन नहीं होता, सब मालाकाही वर्णन करते हैं, परंतु जिस धागेके आधारसे ये सब मणि मालारूपमें रहे हैं, उस सूत्रका महत्त्व तत्त्वज्ञानी ही जान सकता है और वह उस जगदाधार को प्राप्त कर सकता है।

वेद में “तन्तु, सूत्र” आदि शब्द इस अर्थमें आगये हैं। जगत्के संपूर्ण पदार्थ मात्रके अंदर यह परमात्माका सूत्र फैला है, कोई भी पदार्थ इसके आधारके बिना नहीं है। यह जानना, इस ज्ञानका प्रत्यक्ष करना और इसका साक्षात्कारसे अनुभव लेना गूढ़ विद्याका विषय है, जो इस सूक्त द्वारा बताया है।

### अमृत का धाम ।

यही आत्मा अमृतका धाम है, इसको दूढ़ना हरएकका आवश्यक कर्तव्य है। इसको कहां दूढ़ना यही प्रश्न बड़ा विचारणीय है, इसकी प्राप्तिके लिये ही संपूर्ण जगत् घूम रहा है, विचारकी दृष्टिसे देखा जाय, तो पता लग जायगा कि, सुख और आनंदके लिये हरएक प्राणी प्रयत्न कर रहा है, और हरएकका ख्याल है कि, बाह्य पदार्थकी प्राप्तिसे सुख होता है। इस लिये मनुष्य क्या अथवा अन्य कीटपतंगादि प्राणी क्या, भ्रमण कर रहे हैं, एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जा रहे हैं, इष्ट पदार्थ प्राप्त होनेपर क्षणभर सुखका



अनुभव लेते हैं और पश्चात् दुःख जैसा का वैसा बनारहता है । इसका मनन करते करते मनुष्यके मन में विचार आजाता है कि, आनंद कंद को अपने से बाहर ढूँढते रहने की अपेक्षा उसको अपने अंदर तो ढूँढकर देखेंगे । यही बात " मैंने व्यावापृथ्वीमें भ्रमण किया, मैंने संपूर्ण भूतों में चक्कर मारा, सब दिशाएं और विदिशाएं देख लीं और अब मैं सर्वत्र व्यापक एक सूत्रात्माको जानकर उसकी उपासना करता हूँ । " इत्यादि जो भाव चतुर्थ और पंचम मंत्र का है उसमें दर्शाई है । गूढ विद्याका प्रारंभ इसके पश्चात् के क्षेत्रमें है, यहांसे ही गूढ तत्त्वकी खोज शुरू होती है । जिस प्रकार आंख संपूर्ण पदार्थोंको देखती है परंतु आंखमें पड़े कणको देख नहीं सकती, इसी प्रकार मनुष्य सब जगत् का विजय करता है, परंतु अपने अंदरका निरीक्षण करना उसको कठीन होता है । यही गुप्त विद्याका क्षेत्र है । इस लिये इसको कहां ढूँढना है, यह देखना चाहिये । इस सूक्त में इस विषयका स्पष्टीकरण करनेवाले शब्द ये हैं—

### गुहा ।

यत् परमं गुहा ॥ १ ॥ यत् धाम परमं गुहा ॥ २ ॥

“ यह परम धाम गुहामें है । ” इस लिये इसको गुफा में ही ढूँढना उचित है । इसी हेतुसे बहुतसे लोग पर्वतोंकी गुफाओंमें जाते हैं, और वहां एकान्त सेवन करते हैं । योग्य गुरुके पास रहकर पर्वत कंदरामें एकान्त सेवन करने और अनुष्ठान करनेसे इस गुह्य विद्याका अनुभव लेनेके विषयमें बड़ा लाभ निःसंदेह होता है; परंतु यह एक बाह्य साधन है । सच्ची गुफा हृदय की गुहा ही है । हृदय की गुफा सब जानते ही हैं । इसी में इस गुह्यतत्त्वकी खोज करनी चाहिये ।

सब प्राणी तथा सब मनुष्य बाहर देखते हैं, इस बहिर्दृष्टिसे गुह्यतत्त्वकी खोज नहीं हो सकती । इस कार्य के लिये दृष्टि अंतर्मुख होनी चाहिये, अपनी इंद्रिय शक्तियों का प्रवाह अंदर की ओर अर्थात् उलटा शुरू होना चाहिये । तभी इस गुह्य तत्त्वकी खोज हो सकती है । अपने हृदयमें ही उस गुप्त आत्माको देखना चाहिये । अर्थात् इसकी प्राप्ति के लिये बाह्य दिशाओंमें भ्रमण करनेकी आवश्यकता नहीं है, अंतर्मुख होकर अपनी हृदयकी गुफामें देखना चाहिये ।

### चार भाग ।

यह अमृतका धाम हृदयमें है । यदि इस अमृत के चार भाग मान लिये जाय, तो तीन भाग अंदर गुप्त हैं और केवल एक भाग ही बाहर व्यक्त है । जो बाहर दिखता



है, जो स्थूल दृष्टिसे अनुभवमें आता है वह अत्यंत अल्प है, परंतु जो अंदर गुप्त है, वह बहुत विस्तृत ही है । अपने शरीर में भी देखिये आत्मा-बुद्धि, मन, प्राण ये हमारी अंतःशक्तियां अदृश्य हैं और स्थूल शरीर यह दृश्य है । यदि शक्तिकी तुलना की जाय तो स्थूलशरीर की शक्ति की अपेक्षा आंतरिक शक्तियां बहुत ही प्रभाव शाली हैं । अर्थात् स्थूल और व्यक्त की शक्तिकी अपेक्षा सूक्ष्म और अव्यक्त की शक्ति बहुतही बड़ी है । यही यहां निम्नलिखित शब्दोंद्वारा व्यक्त हुआ है—

त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितृष्वपिताऽसत् ॥ २५ ॥

“ इसके तीन पाद गुहामें गुप्त हैं, जो उनको जानता है वह समर्थसेभी समर्थ होता है । ” अर्थात् स्थूलशरीर की शक्तिकी स्वाधीनता होनेकी अपेक्षा आंतरिक शक्तियों पर प्रभुत्व प्राप्त होनेसे अधिक सामर्थ्य प्राप्त होता है । इसीविषयमें ये मंत्र देखिये—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाऽभवत्पुनः ॥ ४ ॥ ऋ. १०।९०॥वा. य. ३१

त्रिभिः पद्भिर्व्यामरोहत्पादोऽस्येहाऽभवत्पुनः ॥ अथर्व १९।६

त्रिपाद्वत्स्य पुरुषं वितष्टे तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ अथर्व. ९।१०।१९

“ उसके एक पादसे सब भूत बने हैं और तीन पाद अमृत दुलोक में है ॥ तीन पाद पुरुष का ऊपर उदय हुआ है, और एक पाद पुरुष यहां बारंबार प्रकट होता है ॥ तीन पावोंसे स्वर्गपर चढ़ा है और एक पाद यहां पुनः पुनः होता है ॥ तीन पाद ब्रह्म बहुत रूप धारण करके ठहरा है, जिससे चारों दिशाएं जीवित रहती हैं । ”

इन सब मंत्रोंका तात्पर्य वही है, जो इस सूक्तके ऊपर दिये हुए भागमें बताया है । उस अमृतकी अल्पसी शक्ति स्थूल में प्रकट होती है, शेष अनंत शक्ति अप्रकट स्थितिमें गुप्त रहती है और उस गुप्त शक्तिसे ही इस व्यक्त में कार्य होता रहता है । पाठक मनकी शक्ति की शरीरकी शक्तिके साथ तुलना करेंगे, तो उक्त बातका पता उनको लग जायगा । मनकी शक्ति बहुत है, उसका थोड़ासा भाग शरीरमें आगया है और यहां कार्य कर रहा है । यह स्थूलमें कार्य करनेवाला अंशरूप मन बारंबार मूल गुप्तमनकी शक्तिसे प्रभावित होता है, नवजीवन प्राप्त करता है और बारंबार शरीरमें आकर कार्य करता है । यही बात अधिक सत्यतासे अमृततत्त्वके साथ संगत होती है । उसका केवल एक अंश प्रकट है, शेष अनंत शक्ति गुप्त है, इसके साथ अपना संबंध जोड़ना गूढविद्याका साध्य है ।



## एक रूप ।

जगत्में विविधता है और इस आत्मतत्त्वमें एकरूपता है । जगत्में गति है इसमें शांति है, जगत्में भिन्नता है इसमें एकता है; इस प्रकार जगत्का और आत्माका वर्णन किया जाता है, सब लोग इस वर्णन के साथ परिचित हैं, इस सूक्तमें भी देखिये—

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ॥

इदं पृथिरदुहजायमानाः स्वर्विदो अभ्यनूषत ब्राः ॥ १ ॥

“ ज्ञानी भक्त ही उसको देखता है, जो हृदयकी गुहामें है और जिसमें सम्पूर्ण विश्व अपनी विविधताको छोड़कर एकरूप हो जाता है । इसकी शक्तिको प्रकृति खींचती है और जन्म लेनेवाले पदार्थ पैदा करती है । इस लिये आत्मज्ञानी व्रतपालन करनेवाले भक्त उस आत्माकाही गुण गान करते हैं । ”

पाठक अपने अंदर इसका अनुभव देख लें, जाग्रतीमें जगत्की विविधता का अनुभव आता है, स्वप्न में भी काल्पनिक सृष्टिमें विविधताका अनुभव आता है, परंतु तृतीय अवस्था गाढ निद्रा-सुषुप्ति में भिन्नताका अनुभव नहीं आता और केवल एकत्वका अनुभव व्यक्त करना असंभव है, इस लिये उस समय किसी प्रकारका भान नहीं होता । सुषुप्ति, समाधि और मुक्तिमें “ ब्रह्म रूपता ” होती है, तम-रज-सत्त्व गुणोंकी भिन्नता छोड़ दी जाय तो उक्त तीनों स्थानोंमें ब्रह्मरूपता, आत्मरूपता अथवा साधारण भाषामें ईशरूपता होती है और इस अवस्थामें भिन्नत्वका अनुभव मिटजाता है; इस लिये इस अवस्थाको “ एक-त्व ” न कहते हुए “ अ-द्वैत ” कहते हैं । इसी उद्देशसे इस मंत्रमें कहा है कि—

यत्र विश्वं एकरूपं भवति ॥ १ ॥

“ जहां संपूर्ण विश्व एकरूप होता है। ” अर्थात् जिसमें जगत् की विविधता अनुभवमें नहीं आती, परंतु उस सब विविधता को एकताका रूप सा आजाता है । वृक्ष के जड़, शाखा, पल्लव आदि भिन्न रूपताका अनुभव है, परंतु गुठली में इस भिन्नता की एक रूपता दिखाई देती है । इसी प्रकार इस जगद्रूपी वृक्षकी विविधता मूल उत्पत्तिकारण में जाकर देखनेसे एकरूपता में दिखाई देगी । इसी मुख्य आदि कारणसे विविध शक्तियां प्रकृति अपने अंदर धारण करके उत्पत्ति वाले पदार्थ निर्माण करती है । इस रीतिसे न उत्पन्न होने वाले एक तत्त्वसे उत्पन्न होने वाले अनेक तत्त्व बनते हैं । इनका ही नाम उक्त मंत्रमें “ जायमानाः ” कहा है । इनमें मनुष्यभी संमिलित हैं और अन्य प्राणी तथा श्रप्राणी भी हैं । इन में मनुष्यही ( ब्राः ) व्रतपालनादि सुनियमोंसे अपनी



उन्नति करके आदि मूलको जानता और अनुभव करके और ( स्वर्विदः ) प्रकाश प्राप्त करके प्रतिदिन अनुष्ठान करता हुआ समर्थ बनता जाता है ।

### अनुभव का स्वरूप ।

आत्मज्ञानी मनुष्य को अमृत धामका अनुभव किस प्रकार होता है, उसके अनुभव का स्वरूप अब देखना चाहिये — “ आत्मज्ञानी मनुष्य अमृतधाम को अपनी हृदयकी गुह्यामें अनुभव करता है, अनंत शक्तियां वहां ही इकट्ठी हुई हैं, यह उसका अनुभव है । ” ( मंत्र २ देखो )

और वह अनुभव करता है कि — “ वही परमात्मा हम सबका पिता, उत्पादक, और भाई है, वही सर्वज्ञ है । ” ( मंत्र ३ ) इतनाही नहीं परंतु “ वही हमारी माता और वही हमारा सच्चा मित्र है ” यह भी उसका अनुभव है । यहां ऋग्वेद और अथर्व मंत्रों की तुलना कीजिये —

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ॥

यो देवानां नामध एक एव तं सं प्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥ अथर्व. २।१।३

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ॥

यो देवानां नामधा एक एव तं सं प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ ऋग्वेद १०।८२।३

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ॥

वा. यजु. ३२।१०

इनमें कुछ पाठभेद है, परंतु सबका तात्पर्य ऊपर बताया ही है । यही ज्ञानी भक्त का अनुभव है । और एक अनुभव यजुर्वेदके मंत्रमें दिया है वह भी यहां देखिये —

### जगत् का ताना और बाना ।

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।

तस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥

वा. यजु. ३२।८

“ ज्ञानी भक्त उस परमात्माको जानता है जो हृदय की गुह्यामें है और जिसमें संपूर्ण विश्व एक घोंसले में रहनेके समान रहता है, तथा जिसमें यह सब विश्व एक समय ( सं एति ) मिल जाता है या लीन होता है और दूसरी समय ( वि एति ) अलग होता है । ( सः विभूः ) वह सर्वत्र व्यापक तथा वैभवसे युक्त है और ( प्रजासु ओतः प्रोतः ) प्रजाओं में ताना और



बाना किये हुए धागों के समान फैला है ।”

धोती में जैसे ताने और बानेके धागे होते हैं, उस प्रकार परमात्मा इस जगत् में फैला है, यह उस ज्ञानीका अनुभव है ।

बालक पर आपत्ति आती है उस समय वह बालक अपने माता पिता, बड़े भाई, चचा, दादा, नाना आदिके पास सहायतार्थ जाता है । वही बालक बड़ा होनेपर आपत्ति आ गई तो अपने समर्थ मित्रके पास जाता है और उससे सहायता लेता है । इसी प्रकार अन्य प्रसंगों में गुरु, राजा, आदिकों की सहायता लेता है । ये सब संबंध परमात्मामें ज्ञानी अनुभव करता है अर्थात् ज्ञानी भक्तके लिये परमात्माही सम्राट्, राजा, सरदार, शासक, शिक्षक, गुरु, माता, पिता, मित्र, भाई आदि रूप हो जाता है ।

### एकके अनेक नाम ।

एक ही मनुष्यको उसका पुत्र पिता कहता है, स्त्री पति कहती है, उसका भाई उसको बंधु कहता है, इस प्रकार विविध संबंधी उस एकही पुरुषको विविध संबंधोंके अनुभव होनेके कारण विविध नामोंसे पुकारते हैं । इस रीतिसे एक मनुष्यको विविध नाम मिलने पर भी उसके एकत्वमें कोई भेद नहीं आता है ।

इसी ढंगसे परमात्मा एक होने पर भी उसके अनंत गुणोंके कारण और उसके ही अनंत गुण सृष्टीके अनंत पदार्थोंमें आनेके कारण उसको अनंत नाम दिये जाते हैं । जैसा अग्निमें उष्णता गुण है वह परमात्मा से प्राप्त हुआ है, इस लिये अग्निका अग्नि नाम वास्तविक गुणकी सत्ताकी दृष्टिसे परमात्माका ही नाम है, क्योंकि वह अग्निकाही अग्नि है । इसी प्रकार अन्यान्य देवोंके नामोंके विषयमें जानना योग्य है ।

शरीरमें भी देखिये—आंख नाक कान आदि इंद्रियां स्वयं अपने अपने कर्म नहीं कर सकतीं, परंतु आत्माकी शक्तिको अपने अंदर लेकर ही अपने कर्म करनेमें समर्थ होती हैं । इस लिये सब इंद्रियोंके नाम आत्मामें सार्थ होते हैं, अतः आत्माको आंखका आंख, कानका कान कहते हैं । इसी प्रकार परमात्मा सूर्यका सूर्य, विद्युतका विद्युत है । देवोंके नाम धारण करनेवाला परमात्मा है ऐसा जो तृतीय मंत्रमें कहा है, वह इस प्रकार सत्य है ।

वह एकही है ।

परमात्मा एकही है, यह बात इस तृतीय मंत्रमें “ एक एव ” ( वह एक ही है ) इन शब्दों द्वारा जोरसे कही है । किसीको परमात्माके अस्तित्वके विषयमें यत्किंचित् भी शंका न हो, इस लिये “ एव ” पदकी योजना यहां की है । भक्त को भी ईश्वरके



एकत्वका अनुभव होता है, क्योंकि “ विभक्तोंमें आविभक्त ” आदि अनुभव उसको होता है, इत्यादि विषय इससे पूर्व बताया ही है ॥

ज्ञानी भक्तका विशेष अनुभव यह है कि, वह परमात्मा “ सं-प्रश्न ” है अर्थात् प्रश्न पूछने योग्य और उससे उत्तर लेने योग्य है । भक्तिसे जब भक्त उसे प्रश्न पूछता है, तब वह उसका उत्तर साक्षात्कार से देता है । कठिन प्रसंगोंमें उसकी सहायताकी याचना की, और एकान्त में अनन्य शरण वृत्ति से उस की प्रार्थना की, तो वह प्रार्थना निःसंदेह सुनता है, और भक्तके कष्ट दूर करता है । अन्य मित्र सहायतार्थ समयपर आसकेंगे या नहीं इसका नियम नहीं, परंतु यह परमात्मा ऐसा मित्र है, कि वह अनन्य भावसे शरण जानेपर सदा सहायतार्थ सिद्ध रहता है और कभी ऐसा नहीं होता कि, वह शरणागत की सहायता न करे । इस लिये सहायतार्थ यदि किसीसे पूछना हो, तो अन्य मित्रोंकी प्रार्थना करनेकी अपेक्षा इसकी ही प्रार्थना करना योग्य है; क्यों कि हर समय यह सुननेके लिये तैयार है और इसका उदार दयामय हस्त सदा हम सबपर है ।

यह सबका ( धास्युः ) धारण पोषण करनेवाला है और ( भुवने-स्थाः ) संपूर्ण स्थिरचर जगत्में ठहरा है अर्थात् हरएक पदार्थमें व्याप्त है । कोई स्थान उससे खाली नहीं है । वक्तामें जैसा वक्तृत्व है, उस प्रकार जगत्में यह है, सचमुच यह अग्नि ही है । ( मंत्र ४ ) इसी प्रकार पाठक कह सकते हैं कि, यह सूर्य है और यही विद्युत् है, क्यों कि पदार्थ मात्रकी सत्ता ही यह है; फिर अग्नि वायु रवि यह है यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? परन्तु यहां सबकी सुबोधताके लिये ऐसा कहा है । मनुष्यका शब्द आत्मशक्तिसे उत्पन्न होता है उसी प्रकार सूर्यभी परमात्माकी शक्तिसे ही प्रकाशता है ।

### देवोंका अमृतपान ।

इस सूक्तके पांचवें मंत्रमें कहा है, कि उस परमात्मामें देव अमृतपान करते हैं—

यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त ॥ ५ ॥

“उस परमात्मामें देव अमृतपान करते हुए समान अर्थात् एकही आश्रयमें पहुंचते हैं ।”

अर्थात् सब देव उसमें समान अधिकार से, समान रूपसे अथवा अपनी विभिन्नताको छोड़ कर एक रूप बनकर उसमें लीन होते हैं और वहां का अनुपमेय अमृत पीते हैं ।

मुक्ति, समाधि और सुषुप्ति में यह बात अनुभवमें आती है । मुक्ति और समाधि तो हरएक के अनुभवमें नहीं है, परंतु सुषुप्ति हरएक के अनुभवमें है । इस अवस्थामें सब जीव ब्रह्म रूप होते हैं । इस समय मानवी शरीरमें रहनेवाले देव- अर्थात् सब



इन्द्रियां-अपना भेदभाव छोड़कर एक आदि कारणमें लीन होती हैं और वहां आत्मामें गोता लगाकर अमृतानुभव करती हैं। इस अमृतपानसे उनकी सब थकावट दूर होती है और जब सुषुप्तिसे हटकर ये इन्द्रियां जाग्रतावस्थामें पुनः लौट आती हैं, तब पुनः तेजस्वी बनती हैं। यदि चार आठ दिन सुषुप्ति न मिली, तो मनुष्य-शरीर निवासी एक भी देव अपना कार्य करनेके लिये योग्य नहीं रहेगा। बीमारी में भी जबतक सुषुप्ति प्रतिदिन आती रहती है, तब तक बीमार की अवस्था चिंताजनक समझी नहीं जाती। परंतु यदि चार पांच दिन निद्रा बंद हुई तो वैद्य भी कहते हैं कि, यह रोगी आसाध्य हुआ है ! इतना महत्त्व तमोगुणमय सुषुप्ति अवस्थामें प्राप्त होनेवाली ब्रह्म रूपताका और उसमें प्राप्त होनेवाले अमृतपानका है। इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि समाधि और मुक्ति में मिलनेवाले अमृतपानसे कितना लाभ और कितना आनंद होता होगा।

यजुर्वेदमें यही मंत्र थोड़े पाठ भेदसे आगया है, वह भी यहां देखने योग्य है—

यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ वा. यजु. ३२।१०॥

“ वहां देव अमृत का भोग करते हुए तीसरे धाम में पहुंचते हैं। ” पूर्वोक्त मंत्र में जहां “ समाने योनौ ” शब्द हैं वहां इस मंत्र में “ तृतीये धामन् ” शब्द हैं। समान योनी का ही अर्थ तृतीय धाम है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति यदि ये तीन अवस्थाएं मान लीं जाय, तो तीसरी अवस्था सुषुप्ति ही आती है जिसमें सब देव अपना भेद भाव छोड़ कर एक रूप होकर ब्रह्मरूप बनकर अमृत पान करते हैं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण ये प्रकृतिके रूप यहां लिये जाय, तो सब इन्द्र चन्द्र सूर्यादि देव अपनी भिन्नता त्यागकर उस ब्रह्ममें लीन होकर अमृत रूप होते हैं। ज्ञानी भक्त महात्मा साधुसंत ये लोग अपने समान भाव से मुक्त अवस्थामें लीन होते हुए अमृत भोगके महानंदको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार हर एक स्थानमें इसका अर्थ देखना चाहिये। [ पाठक इस सूक्तका मनन कां० १। सू० १३ और २० इन दो सूक्तोंके साथ करें ]

यहां इस प्रथम सूक्तका विचार समाप्त होता है। यदि पाठक इस सूक्तके एक एक मंत्रका तथा मंत्रके एक एक भागका विचार करेंगे और उसपर अधिक मनन करेंगे, तो उनके मनमें गूढविद्याकी बातें स्वयं स्फुरित होंगी। इस सूक्तमें शब्द चुन चुनके रखे हैं, और हर एक शब्द विशेष भाव बता रहा है। विशेष विचार करनेकी सुगमता के लिये ऋग्वेद और यजुर्वेद के पाठ भी यहां दिये हैं, इससे पाठक इसका अधिक मनन कर सकते हैं। वेदकी यह विशेष विद्या है, इसलिये पाठक इस सूक्तके मननसे जितना अधिक लाभ उठावेंगे उतना अधिक अच्छा है।



# वैदिक धर्म के ग्रंथ ।

## ( १ ) स्वयंशिक्षक माला ।

- वेदका स्वयंशिक्षक। १ प्रथम भाग ... मूल्य १॥ )  
 " " २ द्वितीय भाग ... " १॥ )

## ( २ ) योगसाधनमाला ।

- १ संध्योपासना । ... मूल्य १॥ )  
 २ संध्याका अनुष्ठान । ... " ॥ )  
 ३ वैदिक प्राण विद्या । ... " १ )  
 ४ ब्रह्मचर्य ( सचित्र ) । ... " १। )  
 ५ योगसाधनकी तैयारी । ... " १ )  
 ६ योगके आसन । ( सचित्र ) " २ )  
 ७ सूर्यभेदनव्यायाम सचित्र " ॥ )

## ( ३ ) यजुर्वेद स्वाध्याय ।

- १ यजु. अ. ३० । नरमेध । मूल्य मूल्य १ )  
 २ यजु. अ. ३२ । एकेश्वर उपासना । " ॥ )  
 ३ यजु. अ. ३६ । शान्तिका उपाय । " ॥ = )

## ( ४ ) देवतापरिचय ग्रंथमाला ।

- १ रुद्र देवता परिचय । .. मूल्य ॥ )  
 २ ऋग्वेदमें रुद्र देवता । ... " ॥ = )  
 ३. ३३ देवताओंका विचार । " = )  
 ४ देवताविचार । ..... " = )  
 ५ अग्निविद्या । ... " १॥ )

## ( ५ ) धर्म शिक्षाके ग्रंथ

- १ बालकधर्मशिक्षा । प्रथमभाग । मू. - )  
 २ बालकधर्मशिक्षा । द्वितीयभाग । " = )  
 ३ वैदिक पाठमाला । प्रथम पुस्तक " = )

## ( ६ ) उपनिषद् ग्रंथमाला ।

- १ केन उपनिषद् .... मूल्य १। )  
 २ ईश उपनिषद् " ॥ = )

## ( ७ ) आगम-निबंध-माला

- १ वैदिकराज्यपद्धति । ... मू. १- )  
 २ मानवी आयुष्य । ... " १ )  
 ३ वैदिकसभ्यता ... " ॥ )  
 ४ वैदिक चिकित्साशास्त्र । ... " ॥ )  
 ५ वैदिक स्वराज्य की महिमा । " ॥ )  
 ६ वैदिक सर्प विद्या । .... " ॥ )  
 ७ मृत्युको दूर करनेका उपाय । " ॥ )  
 ८ वेदमें चर्खा । .... " ॥ )  
 ९ शिवसंकल्पका विजय । " ॥ )  
 १० वैदिक धर्मकी विशेषता " ॥ )  
 ११ तर्कसे वेदका अर्थ । .... " ॥ )  
 १२ वेदमें रोगजन्तु शास्त्र । " = )  
 १३ ब्रह्मचर्यका विघ्न । .... " = )  
 १४ वेदमें लोहेके कारखाने । " १- )  
 १५ वेदमें कृषिविद्या । " = )  
 १६ वैदिक जलविद्या । " = )  
 १७ आत्मशक्तिका विकास । " १- )  
 १८ वैदिक उपदेश माला " ॥ )

## ( ८ ) ब्राह्मण- बोध-माला ।

- १ शतपथ बोधामृत । " १ )

## ( ९ ) अन्य पुस्तक ।

- १ वैदिक यज्ञसंस्था प्रथम भाग " १ )  
 २ " " द्वितीय " " १ )  
 ३ छूत और अछूत प्रथम भाग " १ )  
 ४ " " द्वितीय " " ॥ )

स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि० सातारा )



# ‘केन’ उपनिषद् ।

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है—

१ केन उपनिषद् का मनन, २ उपनिषद् ज्ञान का महत्त्व, ३ उपनिषद् का अर्थ, ४ सांप्रदायिक झगड़े, ५ “ केन ” शब्द का महत्त्व, ६ वेदान्त, ७ उपनिषदों में ज्ञान का विकास, ८ अग्नि शब्दका भाव, ९ उपनिषद् के अंग, १० शांतिमंत्रोंका विचार, ११ तीनों शांति मंत्रों में तत्त्व ज्ञान, १२ तीन शांति-योंका भाव, १३ ईश और केन उपनिषद्, १४ “ यक्ष ” कौन है ?, १५ हैमवती उमा, १६ पार्वती कौन है ? १७ पर्वत, पार्वती, रुद्र, सप्तऋषि और अरुंधती, १८ इंद्र कौन है? १९ उपनिषद् का अर्थ और व्याख्या, २० अथर्ववेदीय केन सूक्तका अर्थ और व्याख्या, २१ व्याधि, समष्टी और परमेष्ठी, २२ त्रिलोकी

२३ अथर्वाका सिर, २४ ब्रह्मज्ञानी की आयुष्य मर्यादा, २५ ब्रह्म नगरी, अयोध्या, आठ चक्र, २६ आत्म-वान् यज्ञ, २७ अपनी राजधानीमें ब्रह्मका प्रवेश, २८ देवी भागवतमें देवी की कथा, २९ वेदका वागां-भृणी सूक्त, इंद्र सूक्त, वैकुण्ठ सूक्त, अथर्व सूक्त, ३० शाक्तमत, देव और देवताकी एकता ३१ वैदिक ज्ञान की श्रेष्ठता ।

इतने विषय इस पुस्तक में आगये हैं, इस लिये उपनिषदों का विचार करने वालोंके लिये यह पुस्तक अवश्य पढ़ने योग्य है ।

मूल्य १। ) डाकव्यय= ) है ।

मंत्री--स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि० सातारा )

यज्ञकी पुस्तक

## वैदिक यज्ञ संस्था ।

प्रथम और द्वितीय भाग ।

प्रतिभागका मूल्य १ ) रु. डाकव्यय । )

प्रथम पुस्तक में निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है—

प्राचीन संस्कृत निबंध ।

१ पिष्ट-पशु-मीमांसा । लेख १

२ ” ” ” ” ” २

३ लघु पुरोडाश मीमांसा ।

भाषाके लेख ।

४ दर्श और पौर्णमास ( ले०-श्री० पं० बुद्धदेवजी )

५ अद्भुत कुमार-संभव ” ” ”

६ बुद्ध के यज्ञ विषयक विचार

( ले०-श्री० पं० चंद्रमणिजी )

७ यज्ञका महत्त्व

( संपादकीय )

८ यज्ञका क्षेत्र

”

९ यज्ञका गुह्य तत्त्व

”

१० औषधियों का महामख

”

११ वैदिक यज्ञ और पशुहिंसा

( ले०- श्री. पं. धर्मदेवजी )

१२ क्या वेदों में यज्ञों में पशुओंका बलि करना

लिखा है? ( ले० श्री० पं० पुरुषोत्तम लालजी )

मंत्री--स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )

## वैदिक उपदेश माला !

जीवन शुद्ध और पवित्र करनेके लिये बारह उपदेश | अपनायेंगे उनकी उन्नति निःसंदेह होगी ।

है । इस पुस्तकमें लिखे बारह उपदेश जो सज्जन मूल्य ॥ ) आठ आने । डाक व्यय- ) एक आना ।

मंत्री--स्वाध्याय मंडल, औंध ( जि. सातारा )



पाश्चात्य-विज्ञान बड़ा अशान्ति फैलानेवाला है । इसी कारण लौरा फिंच महोदय लिखते हैं—

Oh India ? Will you not help us ? ...  
Be patient with us India ?

Remember we are your children, you are old and learned and wise before we existed....

Our path is steep and thorny. ...  
help, us, Mother India. ...

We, your real vedic children, are turning our gaze to our mother land for guidance. ...

But with you, India hand in hand together. ...

We can become the great regenerating and moralising force of this world !

( By—Laura Finch, Paris. )

लौरा फिंच महोदय पेरिस के एक प्रसिद्ध लेखक हैं । आपने अपनी कविता में कहा है कि है “भारत-माता ! हम तेरे पुत्र हैं, तू हमें सहायता है, तेरी सहायता और सहानुभूतिके लिए हम टक-टकी

लगाए हुए हैं, हमारा मार्ग अशान्त और कंटक-मय है । हम पुत्र हैं, हमारे आविर्भाव के पहिले ही से तू उन्नति के उच्चतम शिखर को पहुँच चुकी है, हम भी तेरी ही सहायता से संसार में उन्नति कर सकते हैं, अतएव हे भारतमाता ! तू हमें मदद दे ।”

इसी प्रकार हम असंख्य प्रमाण दे सकते हैं । किन्तु लेख का कलेवर बहुत बढ गया है अतः यहीं समाप्त किया जाता है । यदि सम्पादक महोदयका आज्ञा हुई तो फिर किसी समय इस विषयपर विशेष लिखूँगा । जिन सज्जनों को इस अवैदिक प्रेतात्म-विद्याके गुप्त कारवाइयों का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हो और जिनके द्वारा हमारे भोले भाले भाई इसके चंगुल में फँस जाते हैं; उनसे मेरा निवेदन है कि वे वैदिक धर्मके पूर्व अंक ८ और ९ वर्ष संख्या ६ लेखका शीर्षक ‘लन्दन में प्रेतात्मविद्या के अमृत दृश्य’ अवश्य देखें । उसमें इस विद्या के सब चमत्कारों की पोल बड़ी खूबी के साथ लिखी गई है ।

उदय भानु

१०२ रावजी बाजार

इन्दौर

## Employment for millions STUDENTS' OWN MAGAZINE.

A Monthly English Teacher--Careers for Young men a speciality.

ANNUAL SUBSCRIPTION WITH SUPPLEMENTS, Rs. 3.

SAMPLE COPY POSITIVELY No.

APPLY TO—

CAPITAL INDUSTRIAL BUREAU, RAM GALI, LAHORE.



# छूत और अछूत ।

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ !! अत्यन्त उपयोगी !

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है-

- १ छूत अछूत के सामान्य कारण,
- २ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुईं और  
किस प्रकार बढ़ी,
- ३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
- ४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
- ५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
- ६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
- ७ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था,
- ८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
- ९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
- १० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
- ११ वैदिक कालकी उदारता,
- १२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता,
- १३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था ।

इस पुस्तकमें हर एक कथन श्रुतिस्मृति, पुराण, इतिहास, धर्मसूत्र आदि के प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है । यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है ।

प्रथम भाग मू. १ )

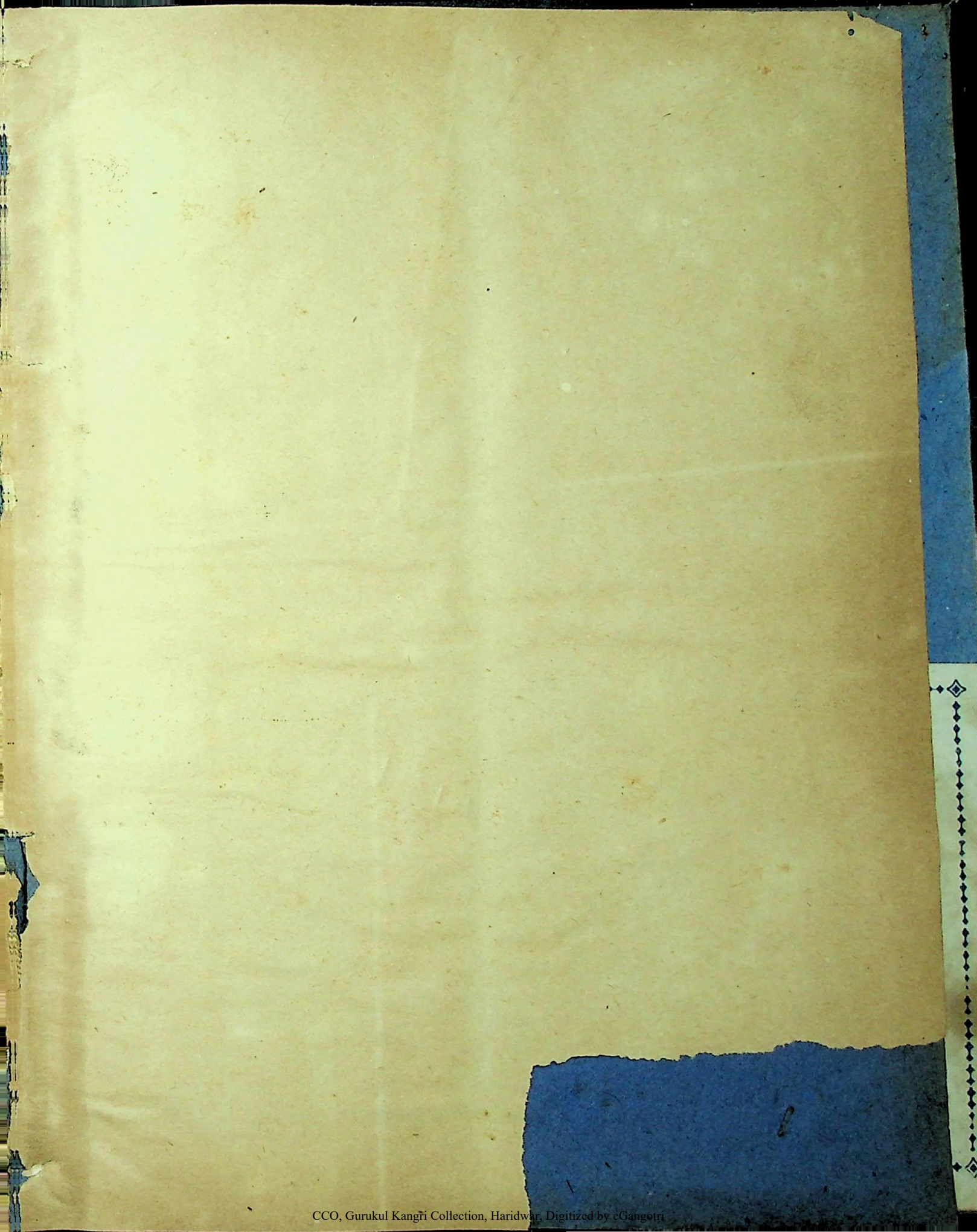
द्वितीय भाग मू. III )

अतिशीघ्र मंगवाइये

स्वाध्याय मंडल. औंध ( जि. सातारा )

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवलेकर, भारत मुद्रणालय, औंध ( जि० सातारा )







०१११११



स्वाध्याय मंडल.

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवलेकर,





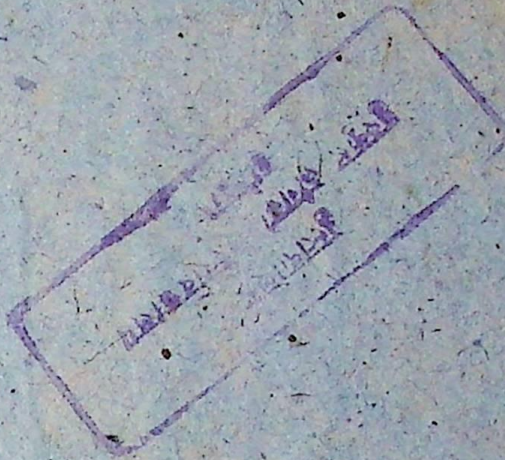




151440


ARCHIVES DATA BASE  
2011-12





गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, देहरादून

पुरनकालय



विषय संख्या ५१७२६

पुस्तक संख्या ५१७२६

आगत पंजीकी संख्या ५१७२६

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाता

बर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय

तक पुस्तक अपने पास न रखें।



